इतिहास-प्रवेश

[भारतीय इतिहास का दिग्दर्शन]

प्रारम्भिक काल से आज तक

लेखक

जयचन्द्र विद्यालङ्कार

प्रकाशक

हिन्दी भवन

जालन्धर और इलाहाबाद

सस्करण] १९५२ [मूल्य ८)

वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कन्दी स सुकवेर्गुणः ।
येनायाति यशःकायः स्थैर्यं स्वस्य परस्य च ॥
कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः ।
कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥
न पश्येत्सर्वसंवेद्यान् भावान् प्रतिभया यदि ।
तदन्यद् दिव्यदृष्टित्वे किमिव ज्ञापकं कवेः ॥
कथादैर्घ्यानुरोधेन वैचित्र्येऽप्यप्रपञ्चिते ।
तदत्र किंचिदस्त्येव वस्तु यत्प्रीतये सताम् ॥
श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता ।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥

(कल्हण की उक्ति लग० ११४६ ई० की)

सुधा के स्राव को मात करने वाला क्रान्तदर्शी लेखक का वह कोई गुण—इतिहास लिखने की योग्यता—वन्दनीय है जिससे अपना और दूसरों का भी यश काय स्थायी हो जाता है।

रम्य निर्माण करने वाले ऐतिहासिक स्रष्टाओं को छोड़ कर और कौन बीते युग को प्रत्यक्ष बना कर दिखा सकता है?

सर्वसाधारण के वेदनागत भावों को यदि अपनी प्रतिभा से न देखे तो कैसे जाना जाय कि ऐतिहासिक में सच्ची अन्तर्दृष्टि है?

कहानी लम्बी होने के कारण विविध बातों का प्रपञ्च नहीं किया जा सका, तो भी इस कृति में सहृदयों को साहित्यिक दृष्टि से भी कुछ खिंचाव तो लगेगा ही।

वही गुणवान् प्रशंसा के योग्य है जिसकी वाणी राग द्वेष से परे और अडिग रहती हुई तथ्यों को जैसे का तैसा कहती है।

(उपर्युक्त का १९५२ ई० की भाषा में अनुवाद)

प्रस्तावना

§१ **इतिहास का अर्थ**—"इतिहास (का अध्ययन) राष्ट्र का आत्मपर्यवेक्षण, आत्मानुचिन्तन, आत्मस्मरण और आत्मानुष्ठान है"*—वह अतीत की ज्योति से अपने वर्तमान स्वरूप को पहचानने और भविष्य के मार्ग को उजियारा करने की चेष्टा है। राष्ट्र की आत्मानुभूति अपने इतिहास के स्मरण द्वारा होती है। संसार की जीवनधारा में किसी राष्ट्र के लोग अपना यथोचित कार्य कर सकें इसके लिए यह आवश्यक है कि वे ठीक ऐतिहासिक दृष्टिक्रम से अपनी स्थिति को देखें पहचानें।

§२ **भारतीय इतिहास का पुनरुद्धार**—हम भारत के लोग अपने इतिहास को बहुत कुछ भूल गये थे और उसके कुछ अंशों की याद यदि हमें थी भी तो अत्यन्त उलटपुलट और धुँधली। इसी से हम अपनी उपस्थित स्थिति को भी ठीक देख समझ न पाते और यही हमारे पराभव का मुख्य कारण हुआ। हमारे इतिहास का पुनरुद्धार अक्षरशः टुकड़े टुकड़े कर के हुआ। उस पुनरुद्धार का आरम्भ तब हुआ जब युरोपियों ने आ कर हमारी प्रकृति और हमारी दशा को ठीक ठीक समझना चाहा और इसलिए हमारे अतीत के बारे में पूछने जाचने लगे। अठारहवीं शताब्दी के मध्य से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक युरोपियों के मुकाबले में भारत के लगातार पराभव की चोट से भारत का नव जागरण आरम्भ हुआ, जिसकी प्रेरणा से बहुत से भारतीयों को भी अपने अतीत के बारे में जिज्ञासा जगी और वे भी उस नई खोज में लग गये। उस खोज से मिले टुकड़ों को जोड़ कर भारत का पहला पूर्ण इतिहास १८६५ ई० में हरप्रसाद शास्त्री ने पेश किया। उसके बाद कई अंग्रेजों ने भी वैसे इतिहास लिखे और भारत की शिक्षा का पूरा नियन्त्रण अंग्रेजों के हाथ में रहने से वे खूब चले भी। किन्तु इन अंग्रेजी इतिहासों में भारत के अतीत को ठीक

---

* अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागपुर, की इतिहासपरिषद् के सभापति पद से मेरा अभिभाषण, २८ ४ १९३६।

रूप में और ठीक दृष्टिक्रम से पेश किया जाने के बजाय बहुत कुछ बेढंगे रूप में या तोड़-मरोड़ कर पेश किया जाता रहा।

§३. **भारत के अंग्रेज़ी इतिहास**—अंग्रेजों द्वारा हमारे इतिहास की यों छीछालेदर होने के तीन कारण थे। एक तो यह कि "अपने इतिहास को समझने के लिए जो अन्तर्दृष्टि हममें हो सकती है, वह विदेशियों में नहीं हो सकती" *। "किसी राष्ट्र के अतीत इतिहास के पुनर्ग्रथन में उस राष्ट्र की सन्तानों को ऐसी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जिन्हें कोई भी विदेशी...नहीं पा सकता।...हम (अपने) ऐतिहासिक अतीत के जीवित अवतार हैं; वह अतीत हमारे खून और हमारी हड्डियों में, हमारे विचार और विश्वास में व्याप्त है।"† फलतः विदेशियों के लिए, चाहे वे कितने ही निष्पक्ष होकर विचार क्यों न करें, अनेक बार हमारे इतिहास की मूल प्रेरणाओं और प्रवृत्तियों को समझना बहुत कठिन होता है। दूसरे, १८७० ई० के लगभग से युरोप की विश्वप्रभुता और युरोपी भूमि और नृवंश की श्रेष्ठता का अन्ध-विश्वास युरोपी अभिजात वर्ग के दिमाग पर इस तरह आविष्ट हो गया और उस आवेश का रंग उनकी आँखों पर इस तरह छा गया कि इतिहास अथवा विद्यमान मानव जीवन के किसी भी पहलू को वे उस विश्वास का रंग दिये बिना देख ही न पाते रहे। उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले और बीसवीं के पहले अंश का युरोप का बहुत सा ऐतिहासिक और सामाजिक चिन्तन इस विश्वास से दूषित रहा। पर इन सूक्ष्म कारणों के अतिरिक्त एक तीसरा बहुत ही स्पष्ट और स्थूल कारण था जिससे अंग्रेज लेखक हमारे इतिहास को तोड़-मरोड कर पेश करते रहे। उनका इसमें सीधा स्वार्थ था। सन् १९१९ में विंसेंट स्मिथ की "औक्सफर्ड हिस्टरी आव इंडिया" की आलोचना करते हुए भारत के प्रमुख समाजशास्त्री अध्यापक विनयकुमार सरकार ने लिखा था—"ऐतिहासिक दृष्टिक्रम से देखने की योग्यता का श्री स्मिथ के लेखों

---

*बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आरा, की इतिहास परिषद् के सभापति पद से मेरा अभिभाषण, २५-१२-१९३७।

†भारतीय इतिहास परिषद्, आरम्भिक अधिवेशन, बनारस, के सभापति पद से सर यदुनाथ सरकार का अभिभाषण, ३०-१२-१९३७।

में प्राय अभाव है। ऑक्सफर्ड हिस्टरी मे एक और पक्षपात का भाव है जो कि उन निहित स्वार्थों और उपस्थित शक्तियों की तरफ से, जिनकी सेवा में स्मिथ की विद्वत्ता जुती हुई है,राजनीतिक प्रचार करने के कारण पैदा हुआ है। यह ग्रन्थ भारतीय विद्यालयों के छात्रों द्वारा पाठ्य पुस्तक रूप में रटा जाने को है, इसलिए (उन्हें) घटनाओं को इस प्रकार जुटाना था कि दौड़ते आदमी को भी 'गोरों के बोझ' का युक्तिमगत होना प्रमाणित दिखाई दे जाय ।" *

§४ **भारतीय दृष्टि से इतिहास का मनन**—अध्यापक सरकार की इस आलोचना से प्रकट है कि भारत के नव जागरण से प्रेरित वे विद्वान् जिन्हें अंग्रेजी जमाने में भी स्वतन्त्र सोचने और बोलने की हिम्मत थी, अंग्रेजों की भारतीय इतिहास विषयक कृतियों की त्रुटियों को बराबर देखते दिखाते रहे। इससे बढ कर, वे भारतीय दृष्टि से अपने इतिहास का मनन कर उसके अनेक पहलुओं को पेश करते रहे। हरप्रसाद शास्त्री, म० गो० रानाडे, रमेशचन्द्र दत्त, गौ० ही० ओझा, वि० का० राजवाडे, गो० स० सरदेसाई, काशीप्रसाद जायसवाल, यदुनाथ सरकार, वामनदास बसु, राखालदास बनर्जी, तारकनाथ दास आदि विद्वानों की परम्परा ने भारतीय दृष्टि से अपने इतिहास को खोजने पेश करने का सघर्ष बराबर जारी रखा। इस दिमागी संघर्ष में यह भावना कभी न रही कि अपने इतिहास के बुरे पहलुओं को छिपाया या लीप पोत कर दिखाया जाय। प्रत्युत इन विद्वानों ने विभिन्न युगों में भारतीयों की अवनति या अधोगति की दशाओं और कारणों पर जैसा प्रकाश डाला वैसा कोइ विदेशी न डाल सकता। यह बात स्पष्ट रूप से कही जाती रही कि "राष्ट्रीय दृष्टि से अपने इतिहास के मनन का यह अर्थ हरगिज नहीं कि हम अपने राष्ट्र की कमजोरियों को नजरन्दाज करें। उलटा उन्हीं को समझने के लिए हमें अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। और हमीं उन्हें ठीक समझ सकते हैं।" (आरा अभिभाषण)। "राष्ट्रीय इतिहास घटनाओं के वर्णन में सच्चा और उनकी व्याख्या करने में तर्कसंगत होना चाहिए । यह

---

* पोलिटिकल साइंस क्वार्टर्ली, न्यूयोर्क, जि० ३४ (१९१९), पृ० ६४५-४६।

राष्ट्रीय होगा इस अर्थ में नहीं कि वह हमारे अतीत की किन्हीं लज्जास्पद घटनाओं को छिपाने या लज्जास्पद चरित्रों पर सफेदी पोतने की कोशिश करेगा।" (सर यदुनाथ का पूर्वोक्त अभिभाषण)।

और इस राष्ट्रीय प्रयत्न की परम्परा में जहाँ भारतीय इतिहास के अनेक पहलू स्पष्ट किये जाते रहे, वहाँ समूचे भारतीय इतिहास को भारतीय दृष्टि से उपस्थित करने की माँग भी बराबर बनी रही। अध्यापक विनयकुमार सरकार ने अपने उस लेख मे १६१६ मे ही कहा था—"स्मिथ ने जिस सामग्री को बरता है, कोई भारतीय विद्वान् उसी का उपयोग करता तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिलकुल दूसरी कहानी पेश करता।" भारतीय "प्राच्य" सम्मेलन (ओरियंटल कान्फरेंस) के छठे अधिवेशन (पटना, १६३०) के सभापति पद से डा० हीरालाल ने कहा था—"इस समय विशेष कर एक बड़ी आवश्यकता उत्कट रूप से अनुभव होती है और वह है भारतीय दृष्टि से लिखे हुए एक इतिहास की।"

१६३८-४० मे इस "इतिहासप्रवेश" का प्रकाशन उसी आवश्यकता के उत्कट अनुभव का फल था। इसके द्वारा अध्यापक सरकार की १६१६ की भविष्योक्ति पूरी तरह सत्य सिद्ध हुई। मेरी पेश की हुई कहानी अंग्रेजों द्वारा चलाई हुई कहानी से "बिलकुल दूसरी" है, यह तो इसके प्रत्येक पन्ने से प्रकट होगा। किन्तु इसकी मुख्य विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाने की आवश्यकता है, जो कि यहाँ बहुत संक्षेप से किया जायगा।

§५. **भारतीय इतिहास का युगविभाग**—अंग्रेजों ने हमारे राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास में काल का फिरकेवार बँटवारा चलाया। उदाहरण के लिए "कैम्ब्रिज शौर्टर हिस्टरी" में वैदिक युग से विजयनगर के पतन तक "हिन्दू काल" की कहानी पहले दी गई है। फिर आठ शताब्दियाँ पीछे लौट कर भारत मे इस्लाम के प्रवेश की बात से "मुस्लिम काल" की कहानी आरम्भ की गई है जो १८५७ मे बहादुरशाह दूसरे के पतन के साथ समाप्त होती है। फिर चार शताब्दी पीछे लौट कर पुर्तगालियों के भारत आने के वृत्तान्त से "ब्रितानवी काल" आरम्भ किया गया है। इस विभाजन की बेहूदगी मैंने सन् १६३६ में अपने नागपुर अभिभाषण मे दिखाई थी; यहाँ एक बार फिर दिखा दूँ।

सातवीं शताब्दी के मध्य से इस्लाम भारत की सीमाओं पर टकराने लगता और आठवीं के शुरू में सिंध में स्थापित हो जाता है। इन घटनाओं की उपेक्षा कर के क्या प्रतिहार और राष्ट्रकूट साम्राज्यों और उस युग के अन्य हिन्दू राज्यों का ठीक चित्र अंकित किया जा सकता या उनके प्रशासकों की मनःस्थिति की ठीक व्याख्या की जा सकती है? राजेन्द्र चोळ और भोज की कहानी आप "हिन्दू काल" में कह चुकते हैं, और महमूद गजनवी की 'मुस्लिम काल' में लाते हैं। तीनों की समकालीनता पर ध्यान दिये बिना क्या भोज का या महमूद का या राजेन्द्र का भी ठीक चरित समझ में आ सकता है? १४वीं शताब्दी आरम्भ की भारत की दुर्दशा को स्पष्ट किये बिना विजयनगर के उदय की कहानी कहना आकाश में चित्र बनाने के समान है।

१६वीं १७वीं शताब्दियों में भारत के तट की युरोपी बस्तियों से भारत के सब बड़े राज्य गोलाबारूद, तोपें और तोपची पाते थे। उन युरोपी बस्तियों और उनके साथ भारतीय समुद्र में मँडराने वाले युरोपी चाञ्चियों (जल डाकुओं) का हाल जाने बिना क्या मुगल मराठा युगों के प्रशासकों की परिस्थिति और मन स्थिति समझी जा सकती है? १७४०–१७५१ ई० में मराठों को पहलेपहल स्थल युद्ध की नई युरोपी शैली से वास्ता पड़ा। उस शैली को अधूरा समझ कर पानीपत में उन्होंने उसे बरतना चाहा और यही उनकी हार का कारण हुआ। युरोपी शक्ति के उदय की बात आप "ब्रितानवी काल" में बतायेंगे और पानीपत की कहानी उससे पहले समझा देना चाहेंगे। क्या यह सम्भव है?

पलाशी की लड़ाई १७५७ ई० में हुई और पानीपत की १७६१ में। पर आप पानीपत की कहानी पहले कहते हैं और पलाशी की पीछे। पलाशी के २½ मास बाद रुहेलों का नेता मराठों से समझौते की मिन्नत करता है, पर वे उसकी नहीं सुनते और पंजाब पर चढ़ाई करते हैं। सितम्बर १७६० में एक तरफ अब्दाली उनसे समझौते की बात करता है, दूसरी तरफ पुदुच्चेरी का फ्रांसीसी सेनापति उनसे तमिळनाड में अपनी सेना ला कर अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने की प्रार्थना करता है, पर वे दोनों की नहीं सुनते। ये बातें कितने महत्त्व की हैं! पर आप पानीपत की कहानी पलाशी से पहले कहते हैं तो आपकी नजर

में ये नहीं आ सकतीं और यों आप उस युग के इतिहास के तत्त्व को देखने से चूक जाते हैं। नाना फड़नीस और वारन हेस्टिंग्स एक दूसरे के मुकाबले के पुरुष थे जो दस बरस डट कर लड़े। हैदरअली का अंग्रेजों से युद्ध उनके युद्ध का एक पहलू था। पर जब आप नाना की कहानी एक युग में कहना चाहते हैं और वारेन हेस्टिंग्स और हैदरअली की दूसरे में, तब क्या तीनों में से किसी का चरित भी स्पष्ट होता है?

किसी भी युग की समूची परिस्थिति में से एक अंश को साम्प्रदायिक कारण से अलग काट रख कर जो चित्र खींचा जायगा, उसकी पृष्ठभूमि गलत होने से वह मूलतः गलत होगा। "भारतवर्ष के इतिहास को यों मजहबी ढाँचे पर चढ़ाना जीवित प्राणी को काठ के शिकंजे में कसना है।" (नागपुर अभिभाषण)। अथवा, जैसा कि मैंने सन् १९३८ में कहा था*, "भारतीय इतिहास का साम्प्रदायिक युगविभाग...एक तरफ उभरा हुआ, एक तरफ पिचका हुआ और बीच बीच में उखड़ा हुआ आइना है जो हमारे इतिहास को अत्यन्त विरूप बना कर दिखाता है।"

ऊपर के विवेचन से यह भी प्रकट होना चाहिए कि अंग्रेज़ों के गढ़े हुए युगों के केवल नाम बदल देने से—'हिन्दू' 'मुस्लिम' और 'ब्रितानवी' 'कालों' को प्राचीन मध्य और अर्वाचीन काल कह देने से—कोई अन्तर नहीं पड़ता, जब तक कि उनके भीतर का विषय-विभाजन उसी ढंग का है। और बारहवीं शताब्दी तक के समूचे काल को प्राचीन और उन्नीसवीं शताब्दी मध्य तक के काल को मध्य काल कहना है भी गलत। कालक्रम से भारत की पूरी परिस्थिति को देखते हुए और उसके राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के पूरे विकास को टटोलते हुए, उस विकास की जो मंजिलें प्रकट होती हैं, वही भारतीय इतिहास के ठीक युगविभाग को सूचित करती हैं। जहाँ तक मुझे मालूम है, अंग्रेज़ों ने भारतीय इतिहास को साम्प्रदायिक युग-विभाग के जिस काठ के शिकंजे में कसा

---

* अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, शिमला, में इतिहास-परिषद् के सभापति पद से अभिभाषण, १८-९-१९३८।

था उससे उसे छुड़ा कर पूरे भारतीय इतिहास का राष्ट्रीय जीवन की विकास-मंजिलों का सूचक युगविभाग पहलेपहल सन् १९३६ में मेरे नागपुर अभिभाषण में ही प्रकट किया गया। देश के प्रमुख विचारकों ने उसकी सत्यता स्वीकार की। "इतिहास प्रवेश" का ढाँचा उसी के अनुसार है।

इस ग्रन्थ के मनन से उस युगविभाग की स्वाभाविकता स्पष्ट दिखाई देगी। यहाँ केवल इतनी बात की ओर और ध्यान खींच दिया जाय कि नागपुर भाषण वाला यह युगविभाग भारत की सांस्कृतिक परिणति की मंजिलें वैसी ही स्पष्ट दिखाता है जैसी राजनीतिक की, यह बात राय कृष्णदास जैसे भारतीय कला इतिहास के मर्मज्ञ ने उस युगविभाग को अपनाते हुए बार बार दोहराई है। भारतीय कलाकृतियों का बौद्ध, जैन, हिन्दू, मुस्लिम आदि शीर्षकों में बँटवारा उनके विषय में बड़ी भ्रान्ति उत्पन्न करता रहा है। "अपने देश की कला में कभी सम्प्रदायपरक भेद नहीं रहा है। उसमें जो कुछ अन्तर है सो राजनीतिक युग या काल-परक है।"*

§६. **समूची सामग्री का सामञ्जस्य**—प्रत्येक काल की पूरी परिस्थिति पर जैसे ध्यान देना चाहिए, वैसे ही उसके इतिहास की समूची सामग्री का सामञ्जस्य करके तथ्यों का निश्चय करना चाहिए। साम्प्रदायिक दृष्टि-ग्रस्त लोग ऐसा नहीं करते रहे। उदाहरण के लिए, सल्तनत युग चूँकि उनकी दृष्टि में मुस्लिम युग है, इसलिए उसका इतिहास वे मुस्लिम तवारीखों के आधार पर उनकी यथेष्ट आँच किये बिना ही बनाते रहे। इस कारण उनके चित्र अनेक बार कितने एकतरफा और गलत बने, इसका कुछ आभास इस ग्रन्थ में महमूद गजनवी का चरित [७,५§५—पृ० २४५.४६] अथवा परिशिष्ट ४, अंश ४ (पृ० २६०) पढ़ने से और विशेष पता इसके सल्तनत पर्व का उनके इसी प्रकरण से मिलान करने से मिलेगा। सब तरफ की सामग्री का सामञ्जस्य करके इस युग के इतिहास के पुनर्निर्माण की पद्धति पहलेपहल मेरे स्वर्गीय गुरु प० गौ० ही० ओझा और स्व० राखालदास बनर्जी ने अपने राजस्थान, बंगाल और

* कृष्णदास—भारत की चित्रकला, बनारस, १९३९, पृ० ७१।

उडीसा के इतिहासों में दिखाई थी। इस ग्रन्थ में समूचे भारत के लिए वही पद्धति बरती गई है। महमूद, शहाबुद्दीन गोरी और अल्तमश के सिक्के, चित्तौड़ कीर्त्ति-स्तम्भ की दीवारें और संस्कृत के अनेक अभिलेख और ग्रन्थ जो कहानी बताते हैं वह प्रचलित कहानी से कितनी भिन्न है! शम्सुद्दीन इलियासशाह की नेपाल चढ़ाई [८,५६४—पृ० ३२२] का उल्लेख किसी तवारीख में नहीं है, उसका पता मिला है काठमांडू के पशुपतिनाथ मन्दिर में शम्सुद्दीन के खुदवाये संस्कृत शिलालेख से, जिसे पहलेपहल मेरे स्वर्गीय गुरु काशीप्रसाद जी जायसवाल ने पढ़ा और प्रकाशित किया। कश्मीर में हिन्दू राज्य के पतन और सल्तनत के उदय का इतिहास, पिछली राजतरंगिणियों के आधार पर, पहलेपहल स्पष्ट रूप में 'इतिहासप्रवेश' के इस चौथे संस्करण मे ही दिया जा रहा है। समूचे भारत के लिए भी वह कितना शिक्षाप्रद है!

§७. **भारतीय इतिहास की सामासिक धारा**—प्रत्येक युग में समूचे भारत और इतिहास की चौतरफा सामग्री पर ध्यान देने से भारत की विविधता में एकता सुन्दर रूप में प्रकट हुई है। अंग्रेजी साँचे के इतिहास पटना या दिल्ली या कलकत्ता जैसे किसी केन्द्रीय राज्य का पल्ला पकड़ कर भारत का इतिहास कहते और दूसरे प्रदेशो की उपेक्षा करते हैं। जिन युगों में वैसा कोई सहारा न मिले और प्रादेशिक राज्य ही रहे हों उनमे वे भुवनकोश (गजेटियर) के ढंग से एक के बाद दूसरे राज्य या राजवंश को लेते हैं जिससे प्रत्येक प्रदेश की शताब्दियो की घटनाएँ एक दूसरे से असम्बद्ध अलग अलग धारा में आती हैं। इतिहासप्रवेश की पद्धति मे समूचे भारत के घटना-प्रवाह पर एक साथ नजर रखते हुए इसपर ध्यान दिया जाता है कि शक्ति का समतुलन किस प्रकार होता रहा और गुरुताकेन्द्र कैसे एक तरफ से दूसरी तरफ खसकता रहा। किसी माने हुए केन्द्रीय राज्य की घटनाओं को योंही महत्त्व न देकर "घटनाओ के आपेक्षिक महत्त्व की…(परख इस कसौटी पर की जाती) है कि किस घटना ने कितने व्यापक प्रदेश पर कितना चिरस्थायी प्रभाव किया।" (शिमला अभिभाषण)। यों प्रादेशिक राज्यों के बीच भी भारत की एकता-प्रवृत्ति और भारतीय इतिहास की सामासिक धारा तथा प्रत्येक प्रदेश की उस धारा में देन स्पष्ट दीख पडती है,

परस्पर असम्बद्ध निर्जीव घटना-तालिका के बजाय एक जानदार घटना माला सामने आती है और प्रत्येक प्रदेश की कहानी अपने पड़ोसियों की कहानी से सम्बद्ध हो जाने के कारण सार्थक लगने लगती है। अंग्रेजी साँचे के इतिहासों और इ० प्र० के ऐसे युगों के वृत्तान्तों के मिलान से यह अन्तर स्पष्ट दिखाई देगा। ८वीं ९वीं शताब्दियों में किस प्रकार भारत में साम्राज्यस्थापना का संघर्ष चलता रहा, प्राय सातवीं से दसवीं तक और छोटे पैमाने पर बारहवीं तक भी किस प्रकार उत्तर दक्खिन भारत के दो साम्राज्य बने रहे, १४वीं १५वीं शताब्दियों के प्रादेशिक राज्यों ने किस प्रकार देश में राजनीतिक सुव्यवस्था पुन स्थापित की और सांस्कृतिक पुनरुत्थान में प्रेरणा और सहायता दी, १८वीं शताब्दी के मध्य में पेशवा बालाजीराव का "स्थिति के तर्क निपट अन्धापन" किस प्रकार भारत में विदेशी राज्य स्थापित होने का कारण बना, यह सब इस सामासिक पर्यालोचन की पद्धति से ही प्रकट हुआ है। अंग्रेजों को भारत की छिन्न भिन्नता और भारतीय इतिहास की अर्थहीनता को बढ़ा कर दिखाना था, इसलिए वे इन तथ्यों की ओर से आँख फेर लेते रहे। पर जो कुछ वे दिखाते रहे वह सच से बहुत भिन्न है।

§८ बृहत्तर भारत और भारत के विदेश-सम्बन्ध—अंग्रेज ऐतिहासिक एक और बात को बड़े उत्साह से बखानते रहे, और वह थी—भारत का "जगमग एकाकीपन", उसका दुनिया से अलग बने रहना! पिछली पौन शताब्दी की ऐतिहासिक खोज ने उससे ठीक उलटी बात सिद्ध की है। भारत के विदेश सम्बन्धों और बृहत्तर भारत की यह कहानी भारत के इतिहास का अपरिहार्य अंश है। 'इतिहासप्रवेश' में वह श्रृंखलाबद्ध रूप में यथा स्थान दी गई है और विश्व इतिहास के या विदेशों के इतिहास के जिन पहलुओं का भारत पर प्रभाव पड़ा है उन्हें भी स्पष्ट करके दिखाया गया है।

§९. 'भारत में अंग्रेजी राज'—अंग्रेजी साँचे के भारत के इतिहास में मिजापी युग विशेष कर इस ढंग से अंकित किया जाता कि (अध्यापक विनयकुमार सरकार के शब्दों में) अंग्रेजों के साम्राज्यनिर्माण का "समूचा सारा गुनाह्यों गुनाह्यों" में दबा देख पड़े, और कि उनका प्रत्येक प्रतिद्वन्द्वी

शठ या सनकी प्रतीत हो ! गवर्नर-जनरलों के युद्धों की और "भारत की नैतिक और भौतिक प्रगति" के लिए उनके बनाये कानूनों की कहानी से ही उनके इस युग के इतिहास का ताना-बाना बनता । भारत के पुनर्जागरण को भी अंग्रेजों के उन प्रयत्नों का फल बना कर दिखाया जाता—मनुष्य में स्वाधीनता के लिए जो सहज तड़पन है उसकी प्रेरणा से भी भारतीयों ने कभी कुछ किया इस विचार को नजदीक न फटकने दिया जाता । अंग्रेज राजनेताओं की काली करतूतों और साजिशों की तथा इंग्लिस्तान द्वारा भारत के लुंठन और विदोहन-शोषण की कहानी को तो छिपाया ही जाता, भारत के साधनों द्वारा ब्रितानवी साम्राज्य कैसे बढ़ता गया और ब्रितानिया कैसे विश्व-शक्ति बन गया इस पहलू को भी आँखों से ओझल रक्खा जाता । इस तरह के इतिहासों से केवल बच्चे बहलाये जा सकते थे; पश्चिम के अन्य देशों के विद्वान् भी, जो घटनाओं की युक्तिसंगत व्याख्या चाहते, संतुष्ट न हो पाते ।' इसीलिए, जैसा कि अध्यापक वि० कु० सरकार ने कहा था, पाश्चात्य विद्वान् भारत के ब्रितानवी युग का भी कोई अच्छा साधारण इतिहास न होने की प्रायः शिकायत करते रहे । भारतीय इतिहास के ब्रितानवी युग के उक्त पहलुओं पर रमेशचन्द्र दत्त, विनायक सावरकर, वामनदास वसु, तारकनाथ दास जैसे भारतीय विद्वान् प्रकाश डालते रहे । इ० प्र० में उनका अनुसरण और उनकी खोजों का पूरा उपयोग किया गया है और भारतीय इतिहास के ब्रितानवी युग का बहुत संक्षिप्त होते हुए भी पूर्ण इतिहास शायद पहली बार दिया गया है । सन् १६३६ से १६५२ तक का घटनापूर्ण इतिहास भी स्पष्ट सुबोध रूप में पहलेपहल इस ग्रन्थ के लघु संस्करण या इस चौथे संस्करण में ही दिया गया है ।

§१०. **राष्ट्रीय इतिहास की पद्धति**—ऊपर के विवेचन से प्रकट है कि भारतीय दृष्टि से लिखे भारतीय इतिहास का युगविभाजन और घटनाओं का चुनाव तथा उनके संकलन का क्रम अंग्रेजी साँचे के इतिहासों से बहुत भिन्न होना चाहिए । सुनिश्चित और प्रमाणित घटनाओं का उनके आपेक्षिक मूल्य अर्थात् प्रभाव की व्यापकता को देखते हुए सर्वथा सहज स्वाभाविक क्रम से संकलन इस पद्धति की विशेषता होनी चाहिए । अच्छे बुरे किसी पहलू को

छिपाया न जाय प्रत्युत ठीक क्रम और ठीक अनुपात से दिखाया जाय। "आप सच्चित्र चित्र देना चाहते हैं तो कैमरे का फोकस दूरी पर रखिए। पर यदि आप रंग छू कर शक्लें मिटाने की कोशिश करते हैं तो यह ईमानदारी नहीं है। जो घटना कैमरे की मार में आती है उसे रखना ही होगा। यदि हमारे पुरखा कभी गलत रास्ते पर चलते रहे तो बताना चाहिए कि उनका रास्ता गलत था और कि वह क्यों गलत था।" (शिमला अभिभाषण)। इन सिद्धान्तों पर इस ग्रन्थ में बराबर आचरण किया गया है।

इस पद्धति से विद्यार्थियों के दिमाग पर बोझ पड़ने के बजाय उनकी रुचि और चिन्तन शक्ति जगेगी इसकी पूरी आशा है। इ० प्र० के प्रकट होने से पहले नागपुर अभिभाषण को पढ़ कर ही श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने कह दिया था कि "इस वैज्ञानिक और सत्य से भरे कालविभाग का आश्रय लिया जाय तो छात्रों में अपनी सूझ से देखने की क्षमता उत्पन्न होगी।"

§ ११ भारतीय इतिहास की चित्र-सामग्री—ऐतिहासिक अवशेषों की खोज से जो सामग्री निकली है और आये दिन निकल रही है, उससे भारतीय जनता के अतीत जीवन पर भरपूर प्रकाश पड़ता है। पर जिन्हें भारतीय इतिहास को सूनी घटना-तालिका रूप में पेश करना था, उन्होंने उस सामग्री के बहुत से पहलुओं को भी नजरन्दाज किया। भारतीय दृष्टि से इतिहास के मनन में उस चित्र-सामग्री के अध्ययन का भी विशिष्ट स्थान है। इ० प्र० से उस सामग्री का ठीक स्वरूप और मूल्य प्रकट होगा। भारतीय इतिहास पर अमूल्य प्रकाश डालने वाले अनेक दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण चित्र इसमें पहली बार प्रकाशित किये गये हैं। चित्रों के प्रामाणिक होने पर उतना ही ध्यान दिया गया है जितना पाठ्यवस्तु के।

§ १२. शैली और भाषा—छोटे ग्रन्थ में विवादों की गुंजाइश न थी, न मूल लेखों के प्रतीक देने की, इसलिए भरसक विवादों के भँवरों से बच कर रहने की कोशिश की गई है। पर घटनाओं की चुनाई जिस स्वाभाविक विकास-क्रम से की गई है उससे वे स्वयं बोलेंगी, अर्थात् उनका पूर्वापर-समन्वय और कार्य-कारण-सम्बन्ध स्वतः स्पष्ट होगा, ऐसी आशा है। मूल लेखों के शब्द

भरसक उद्धृत किये गये हैं, और इस ढंग से कि कहानी में ठीक फब जायँ तथा साथ ही उस उस विषय के विज्ञ पहचान लें कि कहाँ से। नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते—निर्मूल कुछ न लिखा जाय और बिना आवश्यकता के कुछ न कहा जाय, यह आदर्श बराबर सामने रक्खा गया है।

भाषा को विषय और उक्त पद्धति और शैली के अनुकूल रखने का पूरा जतन किया गया है। मानव हृदय का कोई ऐसा स्थायीभाव नहीं है जो भारतीय जनता के तीन हजार बरस के तजरबे को सुन कर जगता न हो। अत्यन्त संक्षेप करते हुए भी उस तजरबे का पूरा चित्र देने का यत्न किया गया है।

§ १३. इतिहास की शिक्षा—अंग्रेजी ज़माने में हमारे बालकों और युवकों की इतिहास-शिक्षा दूषित रहने के स्पष्ट कारण थे। पर अंग्रेजों के जाने के बाद के पाँच बरसों में भी वे दोष बने रहे हैं। हमारे गणराज्य का संविधान लिखने वालों ने इस बात को ठीक पहचाना कि भारत की संस्कृति में सामासिक (कम्पोजिट) एकता है (अनुच्छेद ३५१)। पर अंग्रेजी साँचे के जो इतिहास अब भी हमारे बच्चों को पढ़ाये जा रहे हैं वे सामासिक एकता की कहानी सुनाते हैं या बुनियादी और स्थायी छिन्नभिन्नता की? वे अपने अतीत का ठीक स्वरूप विद्यार्थियों को बतलाते हैं या उसके बारे में उन्हें उलटा भ्रम में डालते हैं? जिस साम्प्रदायिक विद्वेष को भड़का कर अंग्रेज अपना शासन यहाँ चलाते थे उसे भड़काने में भारतीय इतिहास का मिथ्या-शिक्षण उनका विशेष हथकंडा था। १९४७ का हमारे देश का बँटवारा उसी मिथ्या-शिक्षण के विष-बीजों की फसल थी। पर आज भी वे बीज क्यों पनप रहे हैं?

स्वतन्त्र होने के बाद देश पर जो जिम्मेदारियाँ आई हैं, उन्हें ठीक से निभा सकने के लिए बड़ी संख्या में प्रशिक्षित युवकों की आवश्यकता है। इन युवकों के प्रशिक्षण में अपने इतिहास की ठीक शिक्षा का विशेष स्थान है। अपने राष्ट्र के ठीक स्वरूप और स्थिति को तथा उसके आदर्शों को वे इतिहास के आलोक से ही देख समझ सकते हैं। मातृभूमि का यह इतिहास हमारे देश के युवक-युवतियों को ऊँचे आदर्शों की ओर खींचता रहे।

§ १४. अध्यापकों से निवेदन—मेरी पेश की हुई कहानी प्रचलित

कहानी से 'बिलकुल दूसरी' होने के कारण कुछ लोगों को पहलेपहल नवीन और अपरिचित सी लगेगी। पर अपने अतीत और वर्तमान को यदि ठीक ठीक समझना है तो इससे परिचित होना ही होगा। हमारा देश क्षेत्रफल और जनसंख्या में बहुत बड़ा है, उसका इतिहास बहुत लम्बा है। उस इतिहास का पूरा चित्र हृदयगत करने के लिए कुछ श्रम करना ही पड़ता है। यदि हमारी शिक्षा पद्धति विकृत न हो तो यह श्रम हमें अत्यन्त रुचिकर भी लगे, क्योंकि भारत की कहानी जितनी लम्बी और पेचीदा है उतनी ही मनोरंजक भी। दो एक साधारण बातें हैं जिनपर ध्यान देने से छात्रों और अध्यापकों के लिए इस ग्रन्थ की शैली से भारतीय इतिहास का पढ़ना पढ़ाना बहुत रुचिकर हो सकता है।

सब से पहले भारत के परम्परागत जनपदों (बंगाल, महाराष्ट्र, बुन्देलखंड आदि) को, जो इस ग्रन्थ के पहले अध्याय में दिये गये हैं, हृदयगत कर लीजिए, और घटनाओं का वृत्तान्त पढ़ते समय उल्लिखित स्थानों को बराबर नक्शे या ऐटलस में देखते जाइए। इससे घटनाओं का स्वरूप स्पष्ट समझ में आयगा। दूसरे, यह समझ लीजिए कि सब घटनाओं को कोई भी कभी याद नहीं रख सकता, उनके स्वरूप और उनकी प्रेरणा को समझना ही लक्ष्य होना चाहिए। बहुत सी तिथियाँ और तफसील जो दी गई हैं वे रटने के लिए नहीं, प्रत्युत घटनाओं को स्पष्ट करने के लिए ही। उदाहरण के लिए १०, २ §§ १०, ११ में पलाशी की लड़ाई की, नजीबखाँ के दिल्ली छोड़ने की और रघुनाथ के पंजाब जीतने की ठीक तिथियाँ दी गई हैं। उन तिथियों पर ध्यान देने से यह प्रकट होता है कि अंग्रेजों के बंगाल बिहार जीत लेने के २३ मास बाद रुहेलों का नेता मराठों और पठानों के बीच स्थायी सन्धि करा देने का प्रस्ताव करता है, पर मराठा नेता उस दशा में भी उस प्रस्ताव पर ध्यान नहीं देते, और बंगाल बिहार को वापिस लेने का यत्न करने के बजाय पंजाब की ओर व्यर्थ पराक्रम करते हैं। अपनी स्थिति को उन्होंने कितना गलत देखा समझा था! ठीक तिथियाँ जो दी गई हैं सो इसी बात को स्पष्ट करने के लिए, न कि रटने के लिए। इसी प्रकार अर्वाचीन काल की और विशेष कर निकट अतीत की घटनाओं की बहुत सी तफसील की बातें केवल घटनाओं को स्पष्ट

और उनके वृत्तान्त को रुचिकर बनाने को दी गई हैं (जैसे, अंग्रेज-नेपाल युद्ध —११, १ § १३—या दूसरे आंग्ल-अफ़गान-युद्ध—११, ७ § ७—का विवरण, १९४६ के चुनाव-फलों का ब्योरा—११, १० § १६—आदि), उनमें के सब नाम या सब बातें कण्ठस्थ कर लेने की आशा विद्यार्थियों से कभी न की जानी चाहिए।

परीक्षाओं के प्रश्नपत्र इन बातों को ध्यान में रख कर बनाने चाहिएँ। यदि मेरा बस चले तो मैं तो अंग्रेजों की चलाई परीक्षापद्धति को सर्वथा ही बदल दूँ। उदाहरण रूप में, राष्ट्रीय विद्यापीठों में मैंने यह तजरबा किया और यह सदा ही सफल रहा कि परीक्षा के समय विद्यार्थियों को पाठ्य ग्रन्थ साथ लाने की इजाजत दे दी। प्रश्न यदि ऐसे हों जिनसे विषय को समझ कर लिखने की योग्यता की जाँच हो सकती हो, जिन्हें हल करने के लिए ग्रन्थ के आगे पीछे के कई अंशों का मिलान करना अपेक्षित हो तो ग्रन्थ को देख कर भी प्रत्येक छात्र जो कुछ लिखेगा उससे उसकी योग्यता की जाँच हो सकती है। पर जब तक हमारी परीक्षापद्धति में सुधार न हो तब तक भी अध्यापक यदि अपनी साधारण बुद्धि से काम लेंगे तो विद्यार्थियों के लिए अपने देश का इतिहास न केवल कठिन न होगा, प्रत्युत अब तक जैसा सूखा रहा है आगे वैसा ही रुचिकर हो सकेगा।

प्रयाग, रामनवमी २००८ वि०
(३-४-१९५२)

जयचन्द्र

ग्रन्थ का ढाँचा

प्राचीन काल

१ भूमिका पर्व — पृष्ठ १— २८
२ आरम्भिक आर्य पर्व — २९— ५०
३ महाजनपद पर्व — ५१— ८२
४ नन्द मौर्य साम्राज्य पर्व (३६६–२११ ई० पू०) — ८३—१०९
५ सातवाहन पर्व (२१० ई० पू० से २०० ई०) — ११०—१५१
६ वाकाटक-गुप्त पर्व (२००–५४५ ई०) — १५२—१९१

मध्य काल

७ कन्नौज-कर्णाटक-साम्राज्य पर्व (५४४–११९४ ई०) — १९२—२८१
८ सल्तनत पर्व (११९४–१५०६ ई०) — २८२—३६८

अर्वाचीन काल

९ मुगल पर्व (१५०६–१७२० ई०) — ३६९—४५८
१० मराठा पर्व (१७२०–१७६६ ई०) — ४५९—५६५
११ अंग्रेजी राज पर्व (१७६६–१९४७ ई०) — ५६६—७६५
१२. अभिनव भारत पर्व (१९४७–) — ७६६—८०६

विषय-तालिका

पृष्ठ-संख्या

मंगलाचरण — उ

प्रस्तावना — ऌ

§१. इतिहास का अर्थ §२. भारतीय इतिहास का पुनरुद्धार §३. भारत के अंग्रेजी इतिहास §४. भारतीय दृष्टि से इतिहास का मनन §५. भारतीय इतिहास का युगविभाग §६. समूची सामग्री का सामञ्जस्य §७. भारतीय इतिहास की सामासिक धारा §८. वृहत्तर भारत और भारत के विदेश-सम्बन्ध §९. 'भारत में अंग्रेज़ी राज' §१०. राष्ट्रीय इतिहास की पद्धति §११. भारतीय इतिहास की चित्र-सामग्री §१२. शैली और भाषा §१३. इतिहास की शिक्षा §१४. अध्यापकों से निवेदन

ग्रन्थ का ढाँचा — ञ

विषय-तालिका — ट

नक्शा-सूची — ल

संकेत — व

१. भूमिका पर्व — १—२८

अध्याय १—हमारा देश — *१*

§१. सीमाएँ §२. उत्तर भारत का मैदान §३. मध्य-मेखला §४. दक्खिन §५. सीमा-पर्वतों के प्रदेश §६. समुद्र §७. भारतवर्ष की विविधता में एकता §८. उत्तर भारत के मुख्य राजपथ §९. सीमान्त के रास्ते §१०. मध्य-मेखला के रास्ते §११. दक्खिन के रास्ते §१२. भू-परिवर्तन

अध्याय २—हमारे देश के लोग — *१३*

§१. भारतवर्ष की भाषाएँ और उनके क्षेत्र §२. आर्य और द्राविड नृवंश §३. किरात नृवंश §४. मुंड या निषाद नृवंश

§ ५ भारतवर्ष की लिपियाँ और भारतीय वर्णमाला
परिशिष्ट १—भारतीय भाषाओं के नमूने १६
आर्य, द्राविड, किरात, मुंड
अध्याय ३—सभ्यता का उदय २०
§ १ हमारे पुरखों की विरासत § २ मानव सभ्यता की सीढ़ियाँ § ३ सभ्यता के चिह्न—इतिहास के उपकरण § ४ भारत और संसार की पहली सभ्यताएँ
२. प्रारम्भिक आर्य पर्व २९—५०
अध्याय १—आर्यों का भारत में फैलना २६
§ १ पौराणिक ख्यातें § २ मानव और ऐळ वंश § ३ भरत का आख्यान § ४ राम दाशरथि का आख्यान § ५ यादव और पौरव § ६ भारत युद्ध का आख्यान
अध्याय २—आरम्भिक आर्यों का समाज ४२
§ १ वेद § २ आर्यों का सामाजिक संघटन § ३ वैदिक आर्यों का आर्थिक जीवन § ४ राज्य-संस्था § ५ धर्म-कर्म § ६ सामाजिक जीवन, खान-पान, वेश भूषा, विनोद आदि
३ महाजनपद पर्व ५१—८०
अध्याय १—जनपद और साम्राज्य ५१
§ १ जनपदों का उदय § २ सोलह महाजनपद § ३ महाजनपदों की चढ़ाऊपरी § ४ सात अपरिहाणि धर्म § ५ पारसी साम्राज्य § ६ मगध का पहला साम्राज्य § ७ पाड्य, चोळ, केरल और सिंहल राष्ट्रों की स्थापना
अध्याय २—महाजनपद युग का भारतीय जीवन ६६
§ १ वर्णाश्रम का उदय § २ उपनिषदों का तत्त्वचिन्तन § ३ बुद्ध का जीवन और उपदेश § ४ वर्धमान महावीर § ५ बुद्ध युग का आर्थिक जीवन § ६ राज-काज की संस्थाएँ § ७ सामाजिक जीवन § ८ बुद्ध युग का वाङ्मय

४. नन्द मौर्य साम्राज्य पर्व ८३—१०९

अध्याय १—नन्द साम्राज्य और अलक्सान्दर की चढ़ाई ८३

§१. नन्द वंश §२. अलक्सान्दर का दिग्विजय स्वप्न §३. अलक्सान्दर का सुग्ध में पहुँचना §४. उत्तरपूर्वी अफगानिस्तान में युद्ध §५. पुरु से युद्ध §६. कठ राष्ट्र §७. मालव क्षुद्रक और सिन्ध §८. अलक्सान्दर का कार्य

अध्याय २—मौर्य साम्राज्य का दिग्विजय युग ६०

§१. चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य §२. बिन्दुसार §३. अशोक §४. खोतन उपनिवेश §५. मौर्य साम्राज्य का अनुशासन

अध्याय ३—अशोक का धर्म-विजय और पिछले मौर्य सम्राट् १००

§१. अशोक के सुधार §२. अशोक का धर्म-विजय §३. अशोक की इमारतें §४. पिछले मौर्य सम्राट् §५. मौर्य भारत की सभ्यता

५. सातवाहन पर्व ११०—१५१

अध्याय १—सातवाहन, चेदि, यवन, शुंग ११०

§१. महाराष्ट्र और कलिंग में सातवाहन और चेदि वंश §२. पार्थव और बाख्त्री राज्य §३. डिमित, शातकर्णि (१म) और खारवेल §४. पुष्यमित्र §५. यवन राज्य §६. गणराज्यों का पुनरुत्थान §७. उज्जयिनी के लिए संघर्ष

अध्याय २—शक, सातवाहन, पह्लव ११८

§१. कम्बोज वाह्लीक में ऋषिक तुखारों का आना §२. शकों का भारत-प्रवास §३. उज्जयिनी मथुरा और पंजाब में शक §४. गौतमीपुत्र शातकर्णि §५. मालव या विक्रम' संवत् §६. कन्दहार के पह्लव §७. सातवाहनों की चरम उन्नति

अध्याय ३—ऋषिक और सातवाहन १२५

§१. तारीम काँठे में चीन और हिन्द का मिलना §२. कुषाण कफ्स §३. ऋषिक-सातवाहन-युद्ध §४. मध्य एशिया में खोतन और चीन का साम्राज्य §५. देवपुत्र कनिष्क §६. उज्जयिनी मे

नये शक वंश की स्थापना §७ कनिष्क के वंशज, शक रुद्रदामा और यज्ञश्री शातकर्णि §८ तमिळ और सिंहल राष्ट्र
अध्याय ४—बृहत्तर भारत १३४
§१ मध्य एशिया में भारतीय उपनिवेश और प्रभाव §२ "गंगा पार का हिन्द" §३ चीन और रोम से सम्बन्ध
अध्याय ५—सातवाहन युग की सभ्यता और संस्कृति १४०
§१ पौराणिक धर्म और महायान §२ नवीन संस्कृत, प्राकृत, तमिळ वाङ्मय §३ सातवाहन कला §४ आर्थिक जीवन §५ राज्यसंस्था §६ सामाजिक जीवन
९ वाकाटक-गुप्त पर्व १५२—१९१
अध्याय १—यौधेय, नाग, वाकाटक १५२
§१ आभीर, चुटु, इक्ष्वाकु §२ दक्षिण कोशल का मघ वंश §३ यौधेय, कुणिन्द, मालव §४ भारशिव और नाग §५ नेपाल के लिच्छवि §६ वाकाटक §७ अफगानिस्तान सिंध पर सासानी आधिपत्य §८ सम्राट् प्रवरसेन §९ काञ्ची के पल्लव §१० गुप्त वंश का उदय
अध्याय २—गुप्त साम्राज्य का उदय और उत्कर्ष १५८
§१ दिग्विजयी समुद्रगुप्त §२ गन्धार में किदार §३ कर्णाटक में कदम्ब §४ समुद्रगुप्त का साम्राज्य §५ कंगवमा और पृथ्वीषेण (१म) §६ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य §७ प्रभावती गुप्ता §८ कुमारगुप्त (१म) §९ मध्य एशिया में हूण
अध्याय ३—गुप्त साम्राज्य, हूण और यशोधर्मा १६८
§१ स्कन्दगुप्त §२ पिछले गुप्त सम्राट् §३ गन्धार में हूण, तोरमाण और मिहिरकुल §४ वाकाटक हरिषेण §५ जनेन्द्र यशोधर्मा
अध्याय ४—वाकाटक-गुप्त युग का बृहत्तर भारत १७३
§१ भारत का विस्तार §२ आर्यों का विस्तार, जुआरी और

खोतनदेशी वाङ्मय §३. परले हिन्द के भारतीय राज्य §४. फा-हियेन, कुमारजीव, गुणवर्मा §५. कोरिया और जापान का धर्म-विजय §६. सीता-काँठे पर मरुभूमि की बाढ़

अध्याय ५—वाकाटक-गुप्त युग का भारतीय समाज १८०

§१. गुप्त शासन §२. ग्रामों और जनपदों के संघ, शिल्पियों की श्रेणियाँ, व्यापारियों के निगम §३. वाकाटक-गुप्त युग का धर्म, कला, वाङ्मय, ज्ञान और संस्कृति

७. कन्नौज-कर्णाटक-साम्राज्य पर्व १९२—२८१

अध्याय १—पिछले गुप्त, मौखरि, वैस और चालुक्य १९२

§१. पिछले गुप्त §२. कुरु-पंचाल के नये राज्य §३. गुर्जर और मैत्रक §४. मौखरि साम्राज्य §५. चालुक्य और पल्लव §६. प्रभाकरवर्धन §७. राज्यश्री §८. हर्षवर्धन §९. सत्याश्रय पुलिकेशी §१०. हर्ष-युगीन भारत §११. पल्लव नरसिंहवर्मा और विक्रमादित्य चालुक्य १म §१२. आदित्यसेन और विनयादित्य

अध्याय २—छठी-सातवीं शताब्दी में भारत के सीमान्त और बृहत्तर भारत २०५

§१. हूण और तुर्क §२. चीन का ताङ सम्राट् वंश §३. चीन-हिन्द §४. शूलिक और तुखार §५. जागुड, बामियाँ, कपिश §६. कश्मीर, टक्क, सिन्धु §७. मध्य हिमालय और पच्छिमी तिब्बत §८. नेपाल, कामरूप §९. तिब्बत का उत्थान §१०. श्रीक्षेत्र, द्वारवती, ईशानपुर, महाचम्पा §११. शैलेन्द्रों का राज्य

अध्याय ३—इस्लाम का उदय और भारत में प्रवेश २१९

§१. हजरत मुहम्मद §२. खिलाफत का विस्तार §३. भारत के सीमान्त पर धावे §४. मध्य एशिया में अरब बाढ़ §५. सिन्ध-विजय §६. सिन्ध का अरब राज्य §७. कन्नौज सम्राट् यशोवर्मा §८. मध्य एशिया में तिब्बत, अरब और चीन की कशमकश §९. मुक्तापीड ललितादित्य §१०. सिन्ध से आगे बढ़ने की

अरबों की चेष्टाएँ § ११ विक्रमादित्य चालुक्य २य § १२ मध्य एशिया में अरबों की अन्तिम सफलता § १३ भारतीय संस्कृति का अरबों पर प्रभाव § १४ अरब साम्राज्य का टूटना
परिशिष्ट २—ललितादित्य और यशोवर्मा की साम्राज्य-सीमा २२५
अध्याय ४—पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट २२६
§ १ पूरबी भारत में पाल राजवंश का उदय § २ कन्नौज का दूसरा सम्राट् वंश § ३ कलिंग में गंग राजवंश की स्थापना § ४ दक्खिन में राष्ट्रकूट वंश का उदय § ५ गुर्जर देश का प्रतिहार राजवंश § ६ जयापीड § ७ धर्मपाल और चक्रायुध § ८ वत्सराज प्रतिहार और ध्रुव धारावर्ष § ९ नागभट २य और गोविन्द § १० अमोघवर्ष और अकालवर्ष § ११ देवपाल § १२ मिहिर भोज और महेन्द्रपाल § १३ चोळ, कश्मीर, ओहिन्द के नये राज्य § १४ महीपाल और इन्द्र नित्यवर्ष § १५ दसवीं शताब्दी के नये राज्य § १६ परमार सोलंकी-द्वन्द्व
परिशिष्ट ३—राजपूत जातियों का उद्भव २३८
अध्याय ५—गजनी और तंजोर के साम्राज्य २३९
§ १ तुर्कों का फिर बढ़ना § २ सुबुक्तगीन § ३ महमूद गज़नवी, उसका पंजाब जीतना § ४ महमूद की ठेठ हिन्दुस्तान, कश्मीर और सुराष्ट्र पर चढ़ाइयाँ § ५ महमूद का चरित § ६ राजराज चोळ § ७ राजेन्द्र चोळ
अध्याय ६—पहले मध्य काल के अन्तिम राज्य २५१
§ १ महमूद के वंशज § २ भोज, गांगेय और कर्ण § ३ कीर्तिवर्मा चन्देल और चन्द्र गाहड़वाल § ४ कुलोत्तुंग चोळ और अनन्तवर्मा चोड़गंग § ५ विक्रमाङ्क चालुक्य, विजयसेन और नान्यदेव § ६ सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल § ७ अजमेर के चौहान § ८ चौथा कन्नौज साम्राज्य § ९ द्वारसमुद्र और ओरंगल राज्य § १० देवगिरि के यादव

अध्याय ७—पहले मध्य काल में बृहत्तर भारत २५७

§ १. चीन हिन्द का ह्रास और अन्त § २. चम्पा की अवनति § ३. कम्बुज का उत्कर्ष-युग § ४. श्रीविजय का साम्राज्य

अध्याय ८—पहले मध्य काल का भारतीय जीवन २६१

§ १. राजनीतिक और आर्थिक जीवन § २. बौद्ध सम्प्रदाय की अवनति, वज्रयान § ३. शंकराचार्य § ४. पौराणिक मत की अवनति, मूर्त्तिपूजा और भक्ति मार्ग § ५. ललित कला § ६. अपभ्रंश शैली § ७. विद्या और वाङ्मय § ८. अपभ्रंश और देशी भाषाएँ § ९. सामाजिक जीवन, जात-पाँत

८ सल्तनत पर्व २८२—३६८

अध्याय १—दिल्ली और लखनौती में तुर्क राज्य की स्थापना २८२

§ १. शहाबुद्दीन गोरी के पहले प्रयत्न § २. अजमेर और दिल्ली का पतन § ३. बिहार-बंगाल में तुर्क सल्तनत § ४. विन्ध्य और हिमालय की तरफ बढ़ने की विफल चेष्टाएँ § ५. खोकरों का स्वतंत्र होना

परिशिष्ट ४—कुछ प्रचलित भ्रम २८६

अध्याय २—गुलाम, गंग, पाण्ड्य २९१

§ १. कुतुबुद्दीन ऐबक § २. अल्तमश § ३. मध्य एशिया में मंगोल § ४. अल्तमश का गौड जीतना और मालवे पर चढ़ाई § ५. मेवाड के गुहिलोत § ६. रज़िया और नरसिंहदेव § ७. बलबन § ८. चोळ राज्य का टूटना, पांड्य राजवंश का उदय § ९. जटावर्मा पांड्य § १०. रुद्रम्मा § ११. कुलशेखर पांड्य § १२. बघेल-सोलंकियों का उदय § १३. चेदि राज्य का टूटना § १४. मालवे के परमार और जझौती के चन्देल § १५ गंग, सेन, कर्णाट राज्य § १६. कश्मीर और अन्य पहाडी राज्य

अध्याय ३—मंगोलों का विश्व-साम्राज्य और परला हिन्द ३०४

§ १. मंगोल साम्राज्य का विस्तार § २. परले हिन्द और असम में

चीन किरात जातियों का आना §३. मंगोलिया में बौद्ध मत का प्रचार

अध्याय ४—सल्तनत का चरम उत्कर्ष २०७

§१ जलालुद्दीन खिलजी, मालवे का विजय §२ अलाउद्दीन की महाराष्ट्र चढ़ाई §३ गुजरात राजस्थान विजय §४ मंगोलों के आक्रमण §५. मलिक काफूर की दक्खिन चढ़ाइयाँ §६ रविवर्मा कुलशेखर §७ अलाउद्दीन का शासन §८ लखनौती सल्तनत का विस्तार §६ तिरहुत का कर्णाट राज्य §१० नासिरुद्दीन खुसरो §११ गयासुद्दीन तुगलक §१२ दिल्ली सल्तनत का चरम विस्तार §१३ कश्मीर में डुल्च और रिंचन

अध्याय ५—दिल्ली साम्राज्य का ह्रास और प्रादेशिक राज्यों का उदय २१६

§१ मुहम्मद तुगलक §२ मेवाड़ के सीसोदिया §३ विजयनगर का उदय और मदुरा की सल्तनत §४ बंगाल सल्तनत का उदय §५ बहमनी सल्तनत का उदय §६ सुराष्ट्र के चूडासमा §७ कश्मीर की दरद सल्तनत का उदय §८ फीरोज तुगलक §६ सिन्ध के जाम §१० इलियासशाह और गणेश्वर §११ बहमनी विजयनगर का पहला संघर्ष §१२ तैमूर की चढ़ाई §१३ प्रादेशिक राज्यों का उदय

अध्याय ६—पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रादेशिक राज्य २३१

§१ राणा लाखा और मोकल §२ राजा गणेश और शिवसिंह §३ इब्राहीम शर्की §४ हुशंग गोरी और अहमदशाह गुजराती §५ जसरथ खोक्खर और जैनुलाबिदीन §६ सिन्ध के जाम और खिज्रखाँ सैयद §७ बुन्देलखंड, बघेलखंड, छत्तीसगढ़, गोंडवाना §८. फीरोज और अहमद बहमनी §६ कुम्भा और महमूद खिलजी §१० अलाउद्दीन बहमनी और देवराय २य §११ कपिलेन्द्र और पुरुषोत्तम §१२ बहलोल लोदी

§ १३. बंगाल और बहमनी सल्तनत का टूटना, उड़ीसा की अवनति §१४. महमूद बेगड़ा §१५. हुसेनशाह बंगाली और सिकन्दर लोदी

परिशिष्ट ५—शर्की-उड़ीसा-युद्ध ३४५

अध्याय ७—उपनिवेशों और स्वतन्त्र विदेश-सम्बन्धों का अन्त ३४६

§ १. चम्पा और कम्बुज राष्ट्र का अन्त §२. बिल्वतिक्त साम्राज्य §३. हिन्द महासागर में पुर्तगालियों का आना §४. दीव की लड़ाई §५. पहली पृथ्वी-परिक्रमा

अध्याय ८—पिछले मध्य काल का भारतीय जीवन ३५१

§ १. हिन्दुओं का राजनीतिक पतन और उसके कारण §२. तुर्कों और हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन और शासन की तुलना §३. सामन्त शासनप्रणाली और जागीर-पद्धति §४. सामाजिक जीवन—जातपाँत, परदा, बालविवाह §५. धार्मिक जीवन—(अ) जडपूजा, वाम मार्ग और अन्धविश्वास (इ) तौहीद और मूर्त्तिपूजा (उ) सन्त और सूफ़ी सम्प्रदाय (ऋ) भारतीय इस्लाम §६. ललित कला §७. साहित्य §८. पन्द्रहवीं शताब्दी का पुनरुत्थान §९. मध्य काल का ज्ञान और अर्वाचीन काल का आरंभ

९. मुगल पर्व ३६९—४५८

अध्याय १—साम्राज्य के लिए पहला संघर्ष—सांगा और बाबर ३६९

§ १. कृष्णदेव राय और दक्खिनी मंडल का संघर्ष §२. सांगा और पच्छिमी मंडल का संघर्ष §३. उत्तरी मंडल का संघर्ष और बाबर का पूर्व चरित §४. मध्य एशिया में उज्बकों का प्रवेश और बाबर का काबुल आना §५. बाबर का उत्तरी पंजाब जीतना §६. बाबर का ठेठ हिन्दुस्तान जीतना §७. राजस्थान के लिए युद्ध §८. बाबर की पूरब चढाई §९. बहादुरशाह गुजराती और शेरखाँ का उदय

अध्याय २—साम्राज्य के लिए दूसरा संघर्ष और सूर साम्राज्य ३८१
§१ हुमायूँ §२ बहादुरशाह गुजराती की बढ़ती §३ हुमायूँ की गुजरात चढ़ाई §४ पुर्तगालियों का तट राज्य §५ शेरखाँ का बिहार बंगाल का बेताज बादशाह बनना §६ हुमायूँ की बंगाल चढ़ाई §७ शेरखाँ का बंगाल जौनपुर का सुल्तान बनना §८. शेरशाह का उत्तर भारत का सम्राट् होना §९ राजस्थान में मालदेव का उठना §१० शेरशाह का राजस्थान और उत्तरी सिन्ध जीतना §११ शेरशाह के समकालीन भारतीय राज्य §१२. शेरशाह की शासन-व्यवस्था §१३ शेरशाह युग की कला और साहित्य §१४ इस्लामशाह सूर

अध्याय ३—साम्राज्य के लिए तीसरा संघर्ष—अकबर ३९५
§१. हुमायूँ की वापिसी §२ हेमू §३ अकबर के गद्दी बैठने पर भारतीय राज्य §४ अकबर के पहले विजय और सुधार §५ विजयनगर का पतन §६ मेवाड़ और उड़ीसा का पतन §७ गुजरात बंगाल विजय

अध्याय ४—मुगल साम्राज्य का वैभव ४०२
§१ अकबर की शासन-व्यवस्था §२ अकबर की धर्म सम्बन्धी नीति §३ अकबर के पिछले युद्ध और विजय §४ अकबर युग में साहित्य और कला §५ चित्रकला की मुगल कलम §६ पहले सिक्ख गुरु §७ जहाँगीर §८ जहाँगीर के प्रशासन में साम्राज्य की घटबढ़ §९ अराकानी और पुर्तगाली जलदस्यु §१० भारतीय समुद्र में ओलन्देज, अंग्रेज और फ्रांसीसी §११ कन्दहार का छिनना §१२ शाहजहाँ §१३ चम्पतराय और हरगोविन्द §१४ शाहजहाँ की दक्खिन चढ़ाई §१५ कन्दहार बलख बदख्शाँ के युद्ध §१६ शाहजहाँ के प्रशासन में पुर्तगाली, ओलन्देज और अंग्रेज §१७ शिवाजी का उदय §१८ उत्तराधिकार के लिए संघर्ष §१९ मुगल साम्राज्य का वैभव

अध्याय ५—शिवाजी और औरंगज़ेब ४२४

§ १. गद्दी के लिए भ्रातृ-युद्ध § २. चम्पतराय का बलिदान § ३. शिवाजी के खिलाफ अफजलखाँ और शाइस्ताखाँ § ४. चटगाँव का विजय § ५. शिवाजी का कैद होना और भागना § ६. असम का स्वतन्त्र होना § ७. पठानों का संघर्ष § ८. शिवाजी की शासन-व्यवस्था § ९. औरंगजेब की धर्मान्ध नीति § १०. गोकला जाट, सतनामी और तेगबहादुर § ११. शिवाजी का अभिषेक § १२. शिवाजी की तमिळ चढ़ाई § १३. छत्रसाल का उदय § १४. राजस्थान का युद्ध § १५. सम्भाजी § १६. बीजापुर-गोलकुंडा का पतन § १७. महाराष्ट्र का स्वतन्त्रता-युद्ध § १८. बुन्देलखंड, ब्रज, मारवाड़, पंजाब में संघर्ष § १९. औरंगज़ेब के समय में फिरंगी व्यापारी और चांचिये

अध्याय ६—मुगल साम्राज्य की घटती कला ४५०

§ १. बहादुरशाह § २. बन्दा वैरागी § ३. मराठों का गृह-युद्ध § ४. फर्रुखसियर § ५. फर्रुखसियर के समय में राजस्थान पंजाब और ब्रज § ६ राजकर्त्ता सैयद बन्धु § ७. निज़ाम का दक्खिन भागना और सैयदों का पतन § ८. अंग्रेजों की प्रमुख सामुद्रिक शक्ति

१०. मराठा पर्व ४५९—५६५

अध्याय १—मराठा साम्राज्य की नींव पड़ना ४५९

§ १. मराठा राज्य का लक्ष्य § २. बुन्देलखंड ब्रज राजस्थान पंजाब गुजरात में संघर्ष § ३. निजाम का दक्खिन में स्थापित होना और बाजीराव के पहले विजय § ४. निजाम का षड्यन्त्र § ५. मराठों का मध्य मेखला में स्थापित होना § ६. उत्तर भारत पर पहली मराठा चढ़ाई § ७. बाजीराव की दिल्ली चढ़ाई § ८. आंग्रे और अंग्रेज़; पुर्तगाली युद्ध § ९. नादिरशाह की चढ़ाई § १०. बराड के भोंसले

अध्याय २—मराठों के मुकाबले में अंग्रेजों का खड़ा होना   ४७२

§१. तमिळनाड के लिए संघर्ष, पूर्वी प्रान्तों पर मराठा आधिपत्य §२ "भारतीय सिपाही का आविष्कार" §३ राजस्थान और महाराष्ट्र के भीतरी झगड़े §४ उत्तर भारत में पठान और मराठे §५ दक्खिन में फ्रांसीसी और अंग्रेज शक्ति का उदय §६ बालाजीराव की दिशामूढ़ नीति §७ बालाजी की दक्खिन दिग्विजय चेष्टा §८ मराठा जंगी बेड़े का ध्वंस §९. दिल्ली के शासन में मराठों का पहला हस्तक्षेप §१० अब्दाली की दिल्ली मथुरा चढ़ाई और अंग्रेजों का बंगाल बिहार जीतना §११ मराठों का पंजाब जीतना §१२ फ्रांसीसी शक्ति का अन्त §१३ मराठा अफगान युद्ध §१४ बालाजीराव का चरित

अध्याय ३—मराठा साम्राज्य-स्थापना का पुन प्रयत्न   ५१३

§१ पेशवा माधवराव §२ पठानों का पंजाब और ब्रज से संघर्ष §३ सिक्ख मिसलें §४ मीर कासिम और अंग्रेज कम्पनी §५ गंगा काँठे, आन्ध्रतट और तमिळनाड में अंग्रेजी राज की स्थापना §६ हैदरअली §७ बंगाल बिहार में दुराज और दुर्भिक्ष §८ नेपाल में गोरखा राज्य की स्थापना §९. मराठा साम्राज्य स्थापना का पुन प्रयत्न

अध्याय ४—नाना फड़नीस और वारन हेस्टिंग्स   ५२६

§१ भारत में अंग्रेजी शासन-पद्धति की नींव पड़ना §२ वारन हेस्टिंग्स §३ पेशवा नारायण राव और 'दादा भाई' §४ अवध रुहेलखंड अंग्रेजी शिकंजे में §५. पहला अंग्रेज मराठा युद्ध §६ सालबाई और मंगलूर की सन्धियाँ §७ पिट का भारत-शासन विधान, और कार्नवालिस का स्थायी बन्दोबस्त §८ नेपालियों का पहाड़ी साम्राज्य §९. टीपू §१० उत्तर भारत में महादजी शिन्दे §११ मराठों की अन्तिम सफलता §१२ मराठा साम्राज्य में अन्धेरगर्दी

अध्याय ५—मुगल-मराठा युग का भारतीय समाज ५४८

§ १. पन्द्रहवीं-सत्रहवीं शताब्दी का पुनरुत्थान § २. मराठी और हिन्दी की सीमाएँ मिलना § ३. जनता का आर्थिक सामाजिक जीवन § ४. ज्ञान-जागृति का अभाव § ५. जागृति के अग्रदूत § ६. सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में साहित्य और कला § ७. चित्रकला की पहाडी कलम § ८. व्यावसायिक क्रान्ति

२१ अंग्रेज़ी राज पर्व ५६६—७२५

अध्याय १—अंग्रेजों का मराठा साम्राज्य जीतना ५६६

§ १. हैदराबाद मैसूर पर आधिपत्य § २. जमानशाह की चढ़ाई § ३. तमिळनाड और पंचाल दखल § ४. गायकवाड और पेशवा का अंग्रेजों का आश्रित बनना § ५. दूसरा अंग्रेज-मराठा युद्ध § ६. यशवन्तराव होल्कर § ७. अमरसिंह और भीमसेन थापा § ८. मराठा राज्यों की अवनति § ९. अंग्रेजों की पहली उत्तर-पच्छिमी सन्धियाँ § १०. रणजीतसिंह का उदय और उसकी रोक-थाम § ११. भारतीय समुद्र पर एकाधिपत्य § १२. भारत को उपनिवेश बनाने का यत्न § १३. अंग्रेज़-नेपाल युद्ध § १४. पिंडारी तथा तीसरा अंग्रेज़-मराठा युद्ध § १५. अब्दाली साम्राज्य का अन्त, सिक्ख राज्य की बढ़ती § १६. पहला आंग्ल-बरमा युद्ध § १७. बारकपुर का कत्ले-आम § १८. भरतपुर का पतन

परिशिष्ट ६—बलभद्र की समाध ६१०

अध्याय २—अंग्रेज़ों का कृषिभूमि का बन्दोबस्त और शासन का ढाँचा ६१२

§ १. जमींदारी, रैयतवारी और महालवारी बन्दोबस्त § २. अंग्रेजी शासन-ढाँचा और गाँव-पंचायतों का टूटना § ३. नमक और अफीम का एकाधिकार § ४. शिक्षा, कानून और अन्य सुधार § ५. बैंटिंक के समय की राजनीतिक घटनाएँ

अध्याय ३—अंग्रेजों का सिक्ख राज जीतना ६२४

§१ मध्य एशिया में रूसी और अंग्रेज अग्रदूत §२. सिंधु नौवाहन योजना §३ बर्न्स की मध्य एशिया यात्रा §४. सिक्ख राज का दक्खिन और पच्छिम से घेरा जाना §५ काबुल में अंग्रेज 'वाणिज्य' दूत §६ सिक्खों का लदाख जीतना §७. त्रिपक्ष षड्यन्त्र §८ अंग्रेजों की अफगानिस्तान चढ़ाई §९. नौनिहाल-सिंह और रामजंग पाडे §१०. सिक्ख सेना की शक्ति का उदय §११ अफगानों का उठना §१२ पहला अफीम युद्ध §१३ पहले अंग्रेज-अफगान युद्ध का अन्त §१४ सिन्ध दखल किया जाना §१५ ग्वालियर का अधीन होना §१६. पंजाब में सेना का राज और उसके विरुद्ध तैयारी §१७. सतलज की लड़ाइयाँ §१८. नेपाल में राणाशाही का उदय

अध्याय ४—डॅलहौसी की सफाई ६५२

§१ डॅलहौसी की सफाई §२. दूसरा अंग्रेज सिक्ख युद्ध §३. दूसरा अंग्रेज-बरमा युद्ध §४. कलात पर आधिपत्य §५ ज़ब्तियाँ और दखल

अध्याय ५—पहला स्वाधीनता-युद्ध ६५७

§१ स्वाधीनता-युद्ध का विचार और आयोजन §२ मंगल पाडे और मेरठ का बलवा §३ दबाने की पहली चेष्टायें §४ विप्लव का फूटना—(१) दोआब-रुहेलखंड और अवध (२) बिहार बंगाल (३) राजस्थान बुन्देलखंड (४) पंजाब और नेपाल (५) दक्खिन §५ इलाहाबाद और कानपुर का पतन §६ दिल्ली का पतन §७. लखनऊ और झाँसी का पतन §८. अवध रुहेलखंड की पिछली कशमकश §९. लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे §१०. विफलता का कारण

अध्याय ६—कम्पनी-राज में भारत की आर्थिक सामाजिक दशा ६७३

§१. कम्पनी के शासन में भारतीय किसान §२. कारीगरों की दशा

§ ३. कारीगरी का नाश § ४. लिरान तथा राष्ट्रीय ऋण § ५. गोरे कृषिव्यवसायी और भारतीय कुली § ६. भारत में अंग्रेजी उपनिवेशों का न पनपना § ७. नमक का एकाधिकार § ८. नहरें और रेलपथ § ९. अंग्रेज़ी सरकार का कम्पनी से भारत को खरीदना § १०. भारत का घोरतम पतन § ११. समाज-सुधार और ज्ञान-प्रसार के पहले प्रयत्न § १२. भारत विषयक अध्ययन का उदय

अध्याय ७—विक्टोरिया युग ६९३

§ १. विक्टोरिया युग § २. सन् ५७ के बाद का नीतिपरिवर्तन § ३. कृषक-स्वत्व कानून § ४. वली उल्लाही और नामधारी § ५. भारत अंग्रेजी पूँजीशाही के शिकजे में § ६. भारत द्वारा ब्रितानवी साम्राज्य-वृद्धि § ७. दूसरा आंग्ल-अफ़गान युद्ध § ८. मिस्र पर अंग्रेजी शिकंजा § ९. रूस-अफ़गान-सीमा-निर्णय § १०. तीसरा आंग्ल-बरमी युद्ध § ११. राणाशाही की दूसरी पीढ़ी § १२. सीमान्तों पर अग्रसर नीति का नया दौर § १३. टकसालों का बन्द किया जाना और विनिमय का नियन्त्रण § १४. भारत द्वारा ब्रितानवी साम्राज्य-साधन का नया दौर § १५. नव जागरण का उदय § १६. विधान-सभा तथा पंजाब भूमिहस्तान्तरण कानून

परिशिष्ट ७—जगदीशचन्द्र वसु और बेतार की बिजली ७२२

अध्याय ८—क्रान्तिकारी दलों का उदय ७२५

§ १. क्रान्ति-टोलियों की नींव पड़ना § २. फ़ारिस-खाड़ी और तिब्बत पर चढ़ाई § ३. बंग-भंग § ४. स्वदेशी आन्दोलन § ५. आंग्ल-रूसी समझौता § ६. मौर्ले मिंटो सुधार और दमन § ७. बंग-भंग का रद्द होना § ८. दक्खिन अफरीका सत्याग्रह § ९. कोमागाता मारू § १०. चीन में क्रान्ति, तिब्बत में अंग्रेजी दस्तन्दाजी § ११. पहला विश्व-युद्ध § १२. पहले विश्व-युद्ध के समय की क्रान्ति-चेष्टाएँ § १३. किसान जागरण, कांग्रेस-लीग समझौता

§ १४. मौंटेगू चेम्सफोर्ड सुधार और जलियाँवाला कत्लेआम § १५ अफगानिस्तान की स्वतन्त्र होना।

अध्याय ९—गान्धी युग ७४२

§ १ खिलाफत और असहयोग § २ साम्प्रदायिक विद्वेष का उभड़ना § ३ "स्वराज" पक्ष § ४ बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी पूँजीशाही द्वारा भारत का निदोहन § ५ अकाली और अन्य सत्याग्रह § ६ क्रान्ति दलों का फिर उठना, युवक और मजदूर जागरण § ७ अफगानिस्तान में राजक्रान्ति § ८ नमक सत्याग्रह और गोलमेज सम्मिलनी § ९ सन् १९३५ का शासन विधान और कांग्रेस का अंग्रेजी साम्राज्य से सहयोग § १० रजवाड़ों में जन-जागृति § ११ गांधी युग में सामाजिक सांस्कृतिक प्रगति

अध्याय १०—आजाद हिन्द का उदय ७६६

§ १ जापान और चीन § २ युरोप में युद्ध § ३ पाकिस्तान की माँग, भारतीय कांग्रेस में मतभेद और सांकेतिक असहयोग § ४ जर्मनी की रूस पर चढ़ाई § ५. पूर्वी एशिया में युद्ध § ६ आजाद हिन्द फौज की नींव पड़ना § ७ क्रिप्स पेशकश और 'भारत छोड़ो' घोषणा § ८ आजाद हिन्द फौज में संकट खड़ा होना § ९ आ० हि० फौज का पुनः संघटन और आजाद-हिन्द सरकार की स्थापना § १० बंगाल दुर्भिक्ष § ११ आजाद हिन्द फौज की भारत चढ़ाई § १२ इरावती की लड़ाइयाँ § १३ दूसरे विश्वयुद्ध का अन्त § १४ नौसेना विद्रोह § १५. अंग्रेजों का भारत छोड़ने का संकल्प § १६ सन् १९४६ के निर्वाचन § १७. ब्रितानवी मन्त्रि प्रतिनिधिमण्डल § १८ अंग्रेजों का भारत को तोड़ कर जाना

१२. अभिनव भारत पर्व ७९६–८०६

अध्याय १—अंग्रेजी राष्ट्रपरिवार में खण्डित भारत का गणराज्य ७९६

§ १. विभाजन कृत जनोच्छेद § २ कश्मीर का झगड़ा

§३. भारतीय समुद्र पर अंग्रेजी अधिकार का बना रहना §४. गांधी की हत्या §५. रजवाड़ों का भंजन §६. पख्तून संघर्ष §७. भारत गणराज्य का संविधान §८. नेपाल में लोकतन्त्र का उदय §९. पाकिस्तान में विप्लव-चेष्टा और बँगला आन्दोलन §१०. सन् १९५१-५२ के निर्वाचन §११. उपसंहार।

भूलचूक

पृष्ठ	पंक्ति	छपा है	बना लीजिए
२४२	२४	§३.	§२.
२२५	६	के सेना	की सेना
२७८	२५	§८.	§६.
३६८	२२	(०)	(१)
४७१	१४	§११.	§१०.
५४३	१४	तजरवे ने	तजरवे से
५४४	२२	वीस	तीस
५८३	२२	धौलपुर, लोहारू, पटौदी, जींद	धौलपुर, जींद
६२२	१३	लदाख	फिर लदाख
६७४	७	विना	वे विना
७०८	१५	१७७८	१८७८

नक्शा-सूची

१ भारतवर्ष के मुख्य प्रदेश पृष्ठ ४ के सामने
२ भारतवर्ष का उत्तरपच्छिमी सीमान्त पृष्ठ १ के सामने
३ भारतवर्ष का पूरबी सीमान्त पृष्ठ १०
४ भारतवर्ष की भाषाएँ पृष्ठ १६ के सामने
५ कुरु पञ्चाल, उत्तरी अंश पृष्ठ ३२
६ आर्यावर्त पृष्ठ ४१
७ भारतवर्ष महाजनपद युग में पृष्ठ ५२
८. पारसी और मकदूनी साम्राज्य पृष्ठ ६१
९. अलक्सान्दर की चढाई के समय उत्तरपच्छिमी भारत पृष्ठ ८५
१० मौर्य साम्राज्य अशोक के समय पृष्ठ ९२
११ अशोक का धर्मविजय क्षेत्र पृष्ठ १०३
१२ जातियों के प्रवाह पृष्ठ १७ के सामने
१३ गुप्त साम्राज्य पृष्ठ १६४
१४. पहले मध्य काल के मुख्य प्रदेश और स्थान पृष्ठ २१५
१५ उत्तरापथ के भारतीय उपनिवेश पृष्ठ २४० के सामने
१६. परला हिन्द पृष्ठ २४१ के सामने
१७. हर्षकालीन भारत पृष्ठ २८८ के सामने
१८ दिल्ली और लखनौती की सल्तनतें पृष्ठ २८९ के सामने
१९ प्रादेशिक राज्य १४८६-८९ ई० में पृष्ठ ३३६ के सामने
२० भारतवर्ष १५२७-३० ई० पृष्ठ ३३७ के सामने
२१ मुगल साम्राज्य का विकास पृष्ठ ४४८ के सामने
२२ दक्खिनी रियासतें पृष्ठ ४४९ के सामने
२३ शिवाजी का राज्य पृष्ठ ५६० के सामने

२४. राजस्थान का युद्ध १६७६–८१ पृष्ठ ४३७
२५. रेनल का बनाया भारत का नक्शा पृष्ठ ५६१ के स
२६. पेशवाई जमाने का दक्खिन भारत का मराठा नक्शा पृष्ठ ५६१
२७. आजाद हिन्द फौज का युद्ध १६४४–४५ पृष्ठ ७८४ के सा
२८. भारत गणराज्य और पाकिस्तान पृष्ठ ७८५ के सा

संकेत

ग्रन्थ में पूर्वापर-सम्बन्ध बताने के लिए पीछे या आगे किस विषय की चर्चा कहाँ आई है इसकी सूचना उसके पर्व अध्याय और परिच्छेद की संख्याओं का सीधे कोष्ठों में उल्लेख कर दी गई है; जैसे पृ० ५१ पर "भारत राजवंश [२,१ §§ ३,५]" का अर्थ है कि भारत राजवंश का उल्लेख दूसरे पर्व के पहले अध्याय के तीसरे और पाँचवें परिच्छेदों में हो चुका है; पृ० ३६६ पर "मुगल कलम [६,४ § ५]" का अर्थ है कि मुगल कलम का उल्लेख नौवें पर्व के चौथे अध्याय के पाँचवें परिच्छेद में किया जायगा। जहाँ उसी अध्याय में किसी विषय की चर्चा पहले आई हो, वहाँ केवल परिच्छेद की संख्या द्वारा इसकी सूचना दी गई है; जैसे पृ० ४४६ पर "[ऊपर § १०]" का अर्थ है कि इस विषय की चर्चा इसी अध्याय के १०वें परिच्छेद में आ चुकी है।

नक्शा—२

भारतवर्ष का उर

७५
८०
लाहौर
अमृतसर
फीरोजपुर
मुलतान
सतलुज न०
पानीपत
दिल्ली
मेरठ
बरेली
गंगा न०
लखनऊ
कानपुर
आगरा
जयपुर
अजमेर
जोधपुर
लूनी न०
चम्बल न०
ग्वालियर
झांसी
प्रयाग
चित्तौड़
कोटा
सिरोंज
अयोध्या
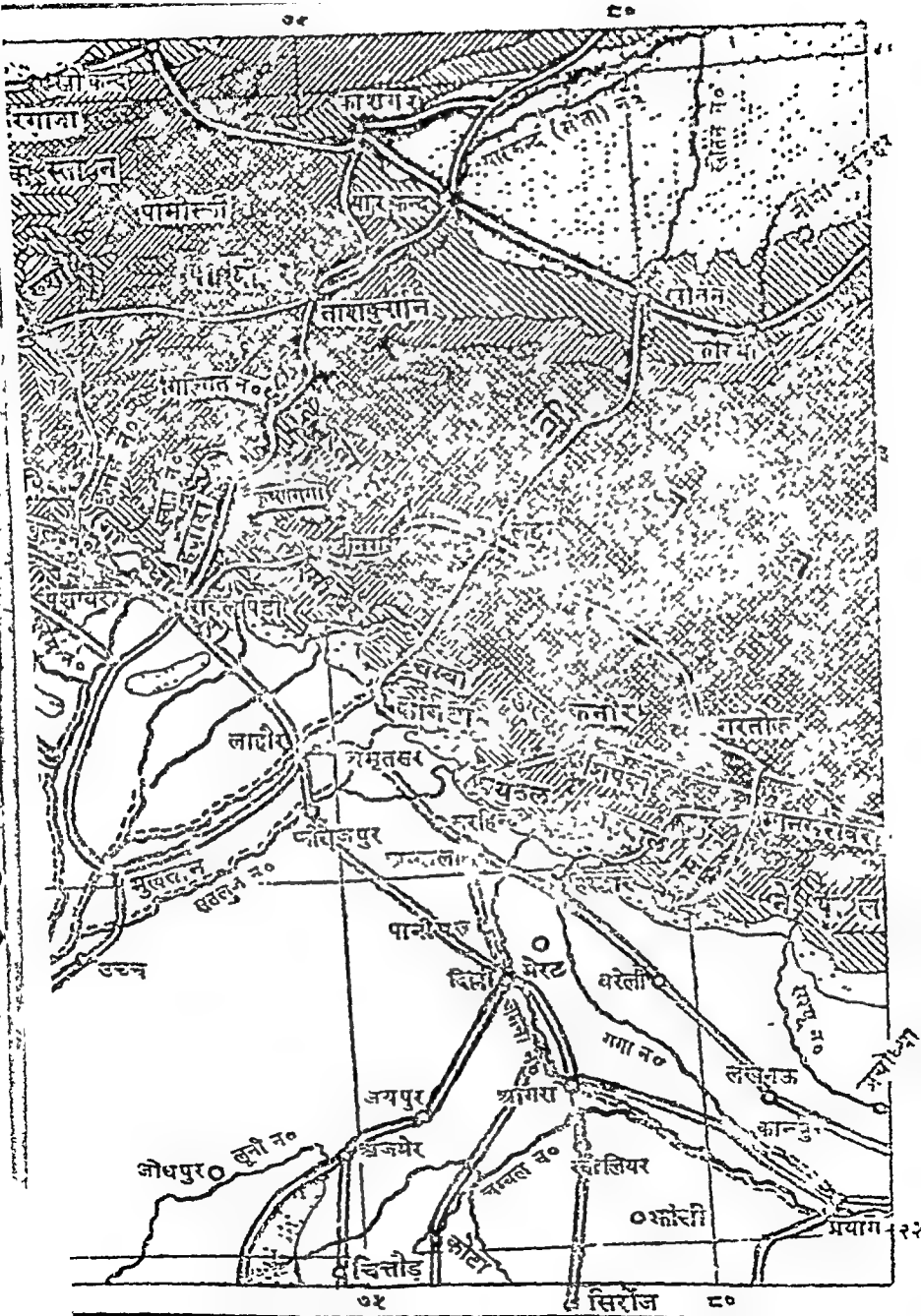
इतिहास-प्रवेश

१. भूमिका पर्व

अध्याय १

हमारा देश

§१ सीमाएँ—प्रकृति ने हमारे देश भारतवर्ष की बड़ी सुन्दर और स्पष्ट हदबन्दी की है। संसार भर में सब से ऊँचा पर्वत हिमालय इस के उत्तर लगातार चला गया है। उत्तरपच्छिम तरफ पामीर और हिन्दूकुश पहाड़ तथा अफगानिस्तान और कलात पठार और उत्तरपूरब तरफ नामस्किउ, पातकोइ, नगा और लुशाइ के पहाड़ हिमालय के साथ मिल कर हमारे देश का परकोटा बनाते हैं। पूरब, दक्खिन और पच्छिम की बाकी आधी चौहद्दी समुद्र ने पूरी की है। सन् १९४७ में हमारे देश के दो टुकड़े हो गये, तो भी इतिहास की दृष्टि से यह समूचा देश एक ही है।

§२ उत्तर भारत का मैदान—हिमालय और पूरबी पच्छिमी समुद्र के बीच, उत्तर भारत का खुला और विस्तृत मैदान है। हिमालय से उतरने वाला सब पानी इस मैदान को सींचता हुआ समुद्र में बह जाता है। उस पानी के दो प्रस्रवण क्षेत्र यानी बहाव के रास्ते हैं। सिन्ध का पानी हिमालय से निकल कर दक्खिन-पच्छिम को जाता है, गंगा के पानी का रुख दक्खिन पूरब है।

उत्तर भारत में बरखा अधिकतर पुरवाई चलने पर होती है। पुरवाई जिन बादलों को लाती है वे बंगाल की खाड़ी से उठने वाली भाप के बने होते

है। इस से उन बादलों का ज़ोर गंगा के काँठे* पर अधिक होता है, सिन्ध के काँठे में कम रह जाता है। इसी कारण गंगा का काँठा सिन्ध के काँठे से अधिक हरा-भरा और आबाद है। यह दुनिया भर के सब से अधिक उपजाऊ और आबाद प्रदेशों में से है।

सिन्ध और गंगा के पानी का रुख एक तरफ नहीं है। इस से प्रकट है कि दोनों के बीच एक ऊँचा पनढाल है, जिस के कारण सतलज और जमना एक दूसरे से हटती गई हैं। सतलज के खादर† को जमना के खादर से ऊपर तो कुरुक्षेत्र का बाँगर† अलग करता है, और नीचे जा कर उन दोनों के बीच आडावळा‡ के पहाड़ और थर या ढाट** मरुभूमि आ गई है। सिन्ध के काँठे से गंगा के काँठे तक जाना हो तो इस थर को और आडावळा के पहाड़ी जंगलों को लाँघना कठिन होता है। उन के बीच एकमात्र सुगम रास्ता कुरुक्षेत्र-पानीपत के तंग बाँगर में से ही है। इसी कारण यह बाँगर सिन्ध और गंगा के काँठों के बीच एक भारी नाका है। भारतवर्ष के इतिहास की अनेक भाग्य-निर्णायक लड़ाइयाँ इसी बाँगर में हुई हैं।

नक्शे पर देखने से सिन्ध और गंगा के काँठों के कई स्पष्ट हिस्से दिखाई देते हैं। सिन्ध नदी ने ऊपर जहाँ अपनी पाँचों बाँहें फैला रक्खी हैं वह पंजाब है। जहाँ उस का समूचा पानी सिमट कर एक धारा में आ गया है वह सिन्ध प्रान्त है। गंगा-जमना का रुख शुरू में जहाँ दक्खिन-पूरब है, वह

---

* काँठा = मैदान में किसी नदी के दोनों तरफ की भूमि। किसी नदी का काँठा यदि पहाड़ में घिरा हो तो उसे दून (द्रोणी) कहते हैं। अंग्रेजी में दोनों के लिए व्हैली शब्द है।

† खादर = नदी के काँठे की उपजाऊ ज़मीन, बाँगर = नदियों की पहुँच से बची ऊँची ज़मीन।

‡ अंग्रेजी में इसे 'आडावर्ला' लिखते हैं, जिसे अशुद्ध पढ़ कर लोगों ने 'अरवली' बना डाला है। आडा = तिरछा, वळा = पहाड़।

** थर उस का सिन्धी नाम है, ढाट राजस्थानी।

उपरला गंगा काँठा या ठेठ हिन्दुस्तान है। बीच में जहाँ गंगा प्राय पूरब बहती है वह निचला गंगा काँठा बिहार प्रान्त है और फिर जहाँ गंगा ने समुद्र की तरफ मुँह फेर कर अपनी बाँहें फैला दी हैं और ब्रह्मपुत्र भी उस में आ मिला है वह निचला गंगा काँठा बंगाल है। ब्रह्मपुत्र का उपरला अकेला काँठा अलग है, उस में असम प्रान्त बना है।

§ ३ **मध्य-मेखला**—आडावळा के दक्खिनी भाग से उसकी कई बाहियाँ पूरब दक्खिन बढ़ी हुई हैं। इन बाहियों समेत आडावळा का पुराना नाम पारियात्र है। इसके पूरब, जमना और गंगा काँठों के दक्खिन जो जमीन का उठान लगातार चला गया है, और जो नदियों के दक्खिन से उत्तर बहने में सूचित होता है, वह विन्ध्य पर्वत के कारण है। विन्ध्य के पूरबी अंश में नर्मदा के स्रोतों के पास से फट कर एक शृङ्खला नर्मदा के बाँयें बाँयें चली गई है, जिसमें मैकल महादेव और सातपुड़ा पहाड़ हैं। इस शृङ्खला का पुराना नाम ऋक्ष है। पारियात्र, विन्ध्य और ऋक्ष मिल कर भारत की मध्य मेखला बनाते हैं। इस मेखला के उत्तरी अचल को बनास, चम्बल, बेतवा, केन, सोन आदि नदियाँ धोती हैं। पच्छिमी अंचल को लूनी, साबरमती और मही, दक्खिनी अचल को नर्मदा, ताप्ती, वर्धा, वेणगंगा, महानदी और वैतरणी, तथा पूरबी अचल को सुवर्णरेखा और दामोदर। आबू और पारसनाथ पहाड़ मध्यमेखला के पच्छिमी और पूरबी बुर्ज हैं।

इस मेखला के पच्छिमी छोर पर गुजरात काठियावाड़ का हरा भरा मैदान है। उसके उत्तरपूरब पारियात्र और थर का बगला प्रदेश राजस्थान है, जिसका दक्खिनपूरबी अंश मालवा पठार है।

आगे बेतवा और केन के काँठों तथा नर्मदा के उपरले काँठे वाला प्रदेश बुन्देलखण्ड है। उसके पूरब सोन का उपरला काँठा बघेलखण्ड है, और सोन के समानान्तर दक्खिन तथा नर्मदा-काँठे के पूरब, महानदी का उपरला काँठा छत्तीसगढ़। बघेलखण्ड-छत्तीसगढ़ के पूरब मध्य मेखला का बाकी पहाड़ी अंश झारखण्ड या छोटा नागपुर है और उसके दक्खिन समुद्रतट का प्रदेश उड़ीसा है।

§४. **दक्खिन**—तापी या ताती, और महानदी के दक्खिन, समुद्र की तरफ बढ़ा हुआ, तिकोना पठार यानी पहाडी मैदान "दक्खिन" कहलाता है। इस तिकोने के पच्छिमी किनारे के साथ-साथ सह्याद्रि या पच्छिमी घाट चला गया है, और पूरबी किनारे पर महेन्द्र और मलय पर्वत अथवा पूरबी घाट। दक्खिन की सब बडी नदियाँ पच्छिम से पूरब बहती हैं। इसका यह अर्थ है कि सह्याद्रि के पूरब तरफ ढाल है, और महेन्द्र मलय शृंखलाएँ बीच-बीच मे ऐसी टूटी हुई हैं कि उसमे से बडी नदियाँ लाँघ सकती हैं। पच्छिमी और पूरबी दोनो घाटों और समुद्रो के बीच मैदान की एक-एक हरी किनारी है। पच्छिम तरफ की किनारी बहुत सँकरी है, पूरब का हाशिया अच्छा चौडा है। पच्छिमी किनारी के उत्तर वाले हिस्से को कोंकण, मध्य के हिस्से को कन्नड या कर्णाटक तट और दक्खिन वाले हिस्से को केरल या मलबार कहते हैं। पूरबी किनारी का दक्खिनी अश चोलमंडल * और उत्तरी अंश कलिंग है।

कृष्णा नदी दक्खिन के पठार को दो भागों में बाँटे हुए है। उसके उत्तर के भाग का पच्छिमी अश महाराष्ट्र और पूरबी अंश कृष्णा-गोदावरी के मुहानो सहित आन्ध्र या तेलगाना है। कृष्णा के दक्खिन सह्य और मलय पर्वत एक दूसरे के निकट आते-आते नीलगिरि पर मिल गये हैं। उनके मेल से बना ऊँचा पठार कर्णाटक है। कर्णाटक के पूरब तट का मैदान चोलमडल या तमिळ देश है। नीलगिरि के दक्खिन मलय पर्वत फिर उठ कर भारत की दक्खिनी नोक तक चला गया है। वहाँ उस के पच्छिम केरल और पूरब चोलमडल है। समुद्र पार सिंहल द्वीप भी इतिहास की दृष्टि से भारतवर्ष का भाग है।

दक्खिन मे मैदान के जो तंग फीते हैं, वे उत्तर भारत के विशाल मैदान के मुकाबले में बहुत छोटे हैं। तो भी वे बड़े उपजाऊ हैं। कोंकण और केरल तो मानो भारतवर्ष के बाग ही हैं। नारियल, अनन्नास, काजू और बाइस किस्म के केले के सिवाय लौंग, इलायची आदि मसालो के पौधे भी केरल में होते हैं, और उसके पडोस का मलय पर्वत अपने सुपारी, चन्दन और कपूर के जंगलों

---

* अंग्रेजी कौरोमडल इसी का बिगड़ा हुआ रूप है।

के लिए प्रसिद्ध है। चोलमंडल का तट उपज और आबादी में गंगा के कांठे से कम नहीं है। ताप्ती या तापी और वर्धा के उपरले कांठों—खानदेश और बराड—की काली मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ है। उन में भारत की सब से अच्छी कपास पैदा होती है। इसके अलावा दक्खिन और मध्यमेखला के पहाड़ और पठार अपनी कीमती खनिज सम्पत्ति के लिए सदा से प्रसिद्ध रहे हैं और आज भी प्रसिद्ध हैं।

§५ **सीमा-पर्वतों के प्रदेश**—भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर जो बड़े बड़े पहाड़ हैं, उन की श्रृंखलाओं के फैलाव के बीच भी अनेक आबाद प्रदेश और बस्तियाँ हैं। सिन्ध और ब्रह्मपुत्र दोनों नद हिमालय की पीठ पीछे कैलाश पर्वत के पास से निकलते हैं। दोनों उलटी दिशाओं को रवाना होते, और ७८० मील का सफर कर एकाएक भारत के मैदान में उतर पड़ते हैं। उन नदों के उन मोड़ों को आजकल के विद्वान हिमालय की पच्छिमी और पूरबी सीमा मानते हैं। हिमालय की गोद में पच्छिम से पूरब, हजारा, कश्मीर, कांगड़ा, कुल्लू, क्युठल, कनौर, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल, भूटान आदि रमणीक प्रदेश हैं।

भारत के उत्तरपूरब के पहाड़ों में मणिपुर, त्रिपुरा आदि बस्तियाँ हैं। इन पहाड़ों की एक बाँही खासी जयन्तिया और गारो पहाड़ियों के रूप में बीच पच्छिम बढ़ी हुई है, जिससे उत्तरी बंगाल के आगे ब्रह्मपुत्र का और पूरबी बंगाल के आगे सुरमा नदी का काँठा उत्तरपूरबी सीमान्त पहाड़ों के अन्दर घुसे हुए मैदान के काने से लगते हैं।

उत्तरपच्छिम के पहाड़ी प्रदेश बड़े महत्त्व के हैं। सिन्ध नदी में पच्छिम तरफ से गिलगित, स्वात, कुनड़, काबुल, कुर्रम, गोमल आदि नदियाँ हिन्दूकुश और अफगानिस्तान का पानी लाती हैं। भूमि की बनावट की दृष्टि से इनकी दूनें भी भारतवर्ष का अंग हैं। आजकल अफगानिस्तान एक अलग राज्य है, किन्तु पिछले जमानों में यह प्रायः भारत के अन्तर्गत रहा है। पामीर और अफगानिस्तान पठारों के उत्तरी छोर अक्सर भारतवर्ष की उत्तरपच्छिमी सीमा रहे हैं।

पामीर का पठार—जिसे दुनियाँ की छत कहा जाता है—हमारे देश के

मस्तक पर मुकुट के समान है। उसके पच्छिमी धोवन को लिये हुए, हिन्दूकश के उस पार, आमू दरिया बहता है। उसी का पुराना नाम वंक्षु है। पामीर का पूरबी पानी रस्कम या यारकन्द दरिया में जाता है, जिसका पुराना नाम सीता है। सीता नदी आगे चल कर तारीम मे जा मिली है। वंक्षु पामीर से निकल कर बदख्शाँ और बलख प्रदेशो की उत्तरी सीमा बनाता गया है। पामीर के पच्छिम बदख्शाँ है और फिर बलख। तीनो हिन्दूकश के उत्तर सटे हुए हैं। वंक्षु, सीता और तारीम के काँठो से हमारे देश का बडा सम्बन्ध रहा है।

हिन्दूकश के इस तरफ, उसके और काबुल नदी के बीच, कपिश (काफिरिस्तान) और गान्धार प्रदेश हैं; फिर हिन्दूकश, पामीर और कृष्णगगा* दून के बीच दरद देश। काबुल नदी के दक्खिन, हेलमन्द नदी के बिचले काँठे और सुलेमान पहाड तक ठेठ अफगान प्रदेश है। सुलेमान के किनारे से सिन्ध के मैदान की एक नोक—जिस मे सिबी की बस्ती है—पहाडो मे पच्चर की तरह बढ़ी हुई है। उसी नोक के ऊपर बोलान दर्रा है।

सिन्ध मैदान के पच्छिम पहाडो में कलात और लासबेला प्रदेश हैं। वे प्रदेश तथा उनके पच्छिम मे ठेठ बलोचिस्तान का पूरबी अंश मिला कर अब पाकिस्तान का बलोचिस्तान प्रान्त बनता है। सच कहे तो बलोचिस्तान नाम अंग्रेज़ो ने इस प्रान्त पर झूटमूठ चिपकाया था। इसका उत्तरपूरबी भाग—सिबी बोलान तक का—पठान या अफगान प्रदेश है, तथा कलात-लासबेला के पच्छिम जो असल बलोच प्रदेश है वह भारतवर्ष का भाग नहीं, ईरान का अंश है। इस तरफ हिंगोल नदी और रास (अन्तरीप) मलान हमारे देश की सीमाएँ रही हैं।

दरद प्रदेश की पूरबी सीमा हिमालय के घाटे जोजी ला† पर लगती है। उसके पूरब तिब्बत है, जो असम (आसाम) की उत्तरपूरबी सीमा से भी आगे तक चला गया है। तिब्बत का पच्छिमी प्रदेश लदाख अब कश्मीर रियासत मे है।

---

* जेहलम मे उत्तरपच्छिम से आ कर मिलने वाली नदी।

† ला = घाटा। यह तिब्बती शब्द है।

यदि हम भारतवर्ष के उत्तरी और उत्तरपश्चिमी सीमान्त पर ध्यान दें तो दोनों में एक स्पष्ट भेद दिखाई देता है। हिमालय के उस पार तिब्बत लम्बा-चौड़ा और बीहड़ पठार है। किन्तु इधर हिन्दूकुश के उस पार आमू और सीर दरिया के काठे गंगा जमना के काँठों की तरह हैं। पामीर के पूरब सीता और तारीम का काँठा भी खुला मैदान है। आमू सीर और तारीम के मैदानों तथा सिन्ध के मैदान के बीच जो पहाड़ी बाँध है वह तिब्बत के पहाड़ी बाँध से बहुत कम चौड़ा है। इसी कारण हिमालय और तिब्बत के आरपार भारत का दूसरे देशों के साथ वैसा सम्बन्ध नहीं रहा, जैसा कि हिन्दूकुश पामीर के रास्ते से।

§ ६ **समुद्र**—भारत को तीन तरफ से घेरने वाला समुद्र बड़े महत्त्व का है। उस के द्वारा विदेशों से भारत का सम्बन्ध बहुत पुराने समय से रहा है। आजकल के जहाज महासागरों में भी चलते हैं, पर पुराने समय के समुद्री व्यापारपथ प्रायः तट के साथ साथ थे। एशिया के नक्शे पर ध्यान देने से दिखाई देगा कि भारतवर्ष के एक तरफ अफरीका, अरब और ईरान हैं, तो दूसरी तरफ हिन्दचीनी प्रायद्वीप, हिन्द द्वीपावली (इन्दोनीसिया) और चीन। अमरीका को हम नयी दुनिया कहते हैं। पुरानी दुनिया के लोगों को उस का पता कोई साढ़े चार सौ बरस से मिला है। लेकिन जो पुरानी दुनिया के सभ्य देश थे, उनके समुद्री रास्तों के ठीक बीचोबीच भारतवर्ष पड़ता था। इसी कारण यह सभ्य जगत के समुद्री व्यापार का सदा केन्द्र रहा।

§ ७ **भारतवर्ष की विविधता में एकता**—हमारा देश विशाल है, और उस में अनेक प्रकार के प्रदेश हैं। कहीं खुले विस्तृत मैदान हैं तो कहीं तंग पहाड़ी दूनें, कहीं हरे भरे खादर तो कहीं बंजर मरुभूमि, इत्यादि। किन्तु हमारे देश की बनावट में कुछ बातें ऐसी भी हैं जो इस की विविधता में गहरी एकता पैदा कर देती हैं। समुद्र और हिमालय, जो कि इस की सीमाएँ हैं, इसे स्पष्ट एक देश बना देते हैं। फिर यही समुद्र और हिमालय मानो हमारे समूचे जीवन को भी चलाते हैं। समुद्र से गर्मी में जो भाप के बादल उठते हैं, वे हिमालय को नहीं लाँघ पाते। वे या तो लौट कर भारत के मैदानों

पर बरसते हैं, या हिमालय की गोदी मे बरफ बन कर बैठ जाते और फिर नदियो के रूप मे उन्ही मैदानो को सीचते हुए समुद्र मे वापिस जा पहुँचते है। समुद्र और हिमालय के बीच पानी उछालने का जो यह खेल लगातार चलता है, इसी से हमारी सर्दी, गर्मी और बरसात की ऋतुएँ होती हैं, हमारी खेती-बारी होती है और हमारी नदियों के तथा उन के द्वारा हमारे वाणिज्य-व्यापार के रास्ते निश्चित होते हैं। समूचे भारत की ऋतु-पद्धति इसी कारण एक है। सच कहे तो उत्तर भारत का विशाल खादर हिमालय की ही देन है। वह नदियो द्वारा बहा कर लाई हुई उसी की मिट्टी से बना है। नदियो के किनारे ही प्रारम्भिक बस्तियाँ बसी और नदियो के द्वारा ही उनमें पहलेपहल परस्पर व्यापार चला। स्थल के रास्ते भी मनमानी दिशा में नहीं जा सकते, वे नदियों, पहाडो आदि की बनावट देख कर चलते है। इसी कारण हमारे देश मे पुराने समय से कई एक प्रमुख रास्ते चले आते हैं, जिन के कारण भारत के विभिन्न प्रदेशो मे परस्पर गहरा सम्बन्ध बना रहा है। उन रास्तो की सामान्य दिशा सदा एक सी रही है।

§८. **उत्तर भारत के मुख्य राजपथ**—उन मे सब से मुख्य वह रास्ता है जो उत्तर-भारतीय मैदान को आरपार पच्छिम से पूरब लाँघता है। अटक (सिन्ध नदी) के पच्छिम से चल कर, पंजाब की नदियो को उथले घाटो पर लाँघता हुआ, कुरुक्षेत्र के बाँगर में से हो कर, वह गंगा के काँठे मे पहुँचता है और फिर बनारस के पास गंगा के दक्खिन उतर कर उसके दाहिने किनारे के साथ साथ बंगाल के बन्दरगाहो तक जा निकलता है। कुरुक्षेत्र के बाँगर के अतिरिक्त उस रास्ते के दो और बड़े नाके हैं। एक तो सिन्ध और जेहलम नदी के बीच, जहाँ वह नमक-पहाडियो की शृंखला को लाँघता है; दूसरे बिहार और बगाल की सीमा पर मुंगेर से राजमहल तक, जहाँ गंगा तक बढ़ी हुई झाडखड की पहाडियाँ उसे तंग दर्रों मे से गुजरने को बाधित करती हैं।

उपरले गंगा काँठे से इस राजपथ की एक बडी शाखा हिमालय के नीचे-नीचे अवध से असम तक चली गई है। उसी प्रकार एक बडी शाखा पंजाब से सिन्ध की तरफ पंजाब की नदियों की दिशा मे गई है। इस मुख्य

उत्तर पूरबी सीमान्त पर रास्तों के तीन स्पष्ट समूह हैं। पहला उपरले ब्रह्मपुत्र काँठे से पातकोई पहाड़ों को पार कर छिंद्विन, इरावती, सालवीन या मेकौङ की उपरली दूनों में पहुँचता, और उन नदियों के साथ हिन्दचीन के खुले मैदान में उतर जाता है। दूसरा सुरमा के काँठे से मणिपुर के पहाड़ लाँघ कर छिंद्विन और इरावती के काँठों में पहुँचता है और फिर उनके साथ, अथवा और पूरब बढ़ कर सालवीन या मेकौङ के साथ, दक्खिन उतरता है। तीसरा चटगाँव से समुद्र तट के साथ साथ जाता है।

§ १०. **मध्य-मेखला के रास्ते**—उत्तर भारत को गुजरात और दक्खिन से मिलाने वाले रास्ते सब पारियात्र या विन्ध्य मेखला को लाँघ कर जाते हैं। सिन्ध से सीधे गुजरात भी जा सकते हैं, पर बीच में थर का दक्खिनी छोर और कच्छ का रन (अरण्य=जंगल) पड़ने से वह रास्ता बहुत कठिन है। कच्छ का रन असल में उथला कीचड़ है जिसे झाड़ झंखाड़ ने और भी बीहड़ बना दिया है। इस कारण पंजाब से यदि गुजरात या महाराष्ट्र जाना हो तो दिल्ली और राजस्थान के रास्ते जाना होता है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र पानीपत का नाका जैसे पंजाब से गंगा-काँठे के रास्ते को काबू करता है, वैसे ही वह पंजाब और दक्खिन के बीच के रास्तों को भी दबाये हुए है।

अजमेर का नाका राजस्थान के रास्ते को ठीक बीच में काबू करता है। यहीं वह रास्ता आड़ावळा को पार कर उस के पच्छिम जा निकलता है, और यहीं से उस की एक शाखा सीधे दक्खिन मालवे को चली जाती है। मालवे का रास्ता, ठेठ हिन्दुस्तान और दक्खिन के ठीक बीच पड़ने से मध्य मेखला के रास्तों में सब से मुख्य रहा है। मालवे से निकल कर उस रास्ते की एक शाखा पच्छिमी तट के बन्दरगाहों को चली जाती है और फिर दूसरी नर्मदा और तापी को उपरले घाटों पर लाँघ कर बराड़ पहुँचती है, और फिर वर्धा नदी के साथ पूरबी तट को जाती है। प्रयाग के पास से दक्खिन जाना चाहें तो बुन्देलखण्ड लाँघ कर जाते हैं। किन्तु यदि उससे और पूरब, बिहार से दक्खिन जाना हो तो छोटा नागपुर को लाँघने के बजाय उसका चक्कर लगा कर, बंगाल उड़ीसा हो कर, जाना सुगम होता है। इसी रास्ते छोटा नागपुर

या झाडखंड को उत्तर से दक्खिन या दक्खिन से उत्तर जाने वाले विजेताओं ने बहुत कम लाँघा है, और उसके जंगलों में आज तक भी बहुत सी जंगली जातियाँ आराम से रहती आ रही हैं। बंगाल से उड़ीसा होता हुआ समुद्रतट के साथ-साथ जाने वाला रास्ता सुगम है।

§११. **दक्खिन के रास्ते**—पूरबी तट के इस रास्ते के सिवाय दक्खिन के सब प्रमुख रास्ते उसकी नदियों के बहाव के साथ-साथ पच्छिम से पूरब जाते हैं। एक ताप्ती के घाटों को गोदावरी के मुहाने से, दूसरा उत्तरी महाराष्ट्र को कृष्णा के मुहाने से, तीसरा दक्खिनी महाराष्ट्र और कर्णाटक को कावेरी के मुहाने से, तथा चौथा केरल को कावेरी या वैगै के मैदान से मिलाता है। यह अन्तिम रास्ता नीलगिरि और मलयगिरि के बीच पालकाड* से गुजरता है।

गोदावरी और कृष्णा के रास्तों के बीच पड़ने से गोलकुंडा-हैदराबाद पठार का बड़ा महत्त्व है। उसी प्रकार कृष्णा-तुंगभद्रा का दोआब महाराष्ट्र और कर्णाटक के रास्तों को बीचोंबीच काबू करने से बड़े महत्त्व का है। यह दोआब तो दक्खिन का कुरुक्षेत्र है। इस हिसाब से महाराष्ट्र दक्खिन भारत का अफगानिस्तान है, और चोलमंडल उसका गंगा का मैदान। महाराष्ट्र के पठार से कोंकण तट के बन्दरगाहों तक जाने को सह्याद्रि के ऊँचे घाट लाँघने पड़ते हैं। घाटों के वे तंग रास्ते भी महत्त्व के हैं और उनकी तुलना हिन्दूकुश और आमू काँठे के बीच के घाटों से हो सकती है।

§१२. **भू-परिवर्तन**—भूमि की रचना मनुष्यों के जीवन पर प्रभाव डालती है, किन्तु वे अवस्थाएँ स्वयं भी बदलती रहती हैं। पहाड़ की बनावट में भूकम्प आदि के बिना परिवर्तन नहीं होते, पर नदियों के रास्तों और समुद्रतट की शकल प्रायः बदला करती है। बंगाल में तामलूक, ताम्रपर्णी के मुहाने पर कोरकई, और सिन्ध में ठट्ठा पिछले युगों में बन्दरगाह थे; पर अब वे सब सूखे में हैं। बहुत पुराने समय में राजस्थान का थर उथला समुद्र था और सरस्वती नदी उसी में मिलती थी।

*अंग्रेज़ी रूप—पालघाट।

नदियाँ भी प्रायः अपने रास्ते बदला करती हैं। बाईस सौ बरस पहले पटना शहर गंगा और सोन के संगम पर था। अब सोन उससे बारह मील पच्छिम खिसक गया है। व्यास नदी बहुत पुराने समय में आजकल की तरह सतलज में मिलती थी, फिर बहुत समय तक वह अपनी धारा बदल कर मुलतान के नीचे चिनाब में मिलती रही। मनुष्य अपने हाथों भी भूमि सम्बन्धी अवस्थाओं को बहुत कुछ बदल लेता है। जंगल काट कर, नहरें निकाल कर, तालाब बाँध कर और दलदलें सुखा कर जमीन की शक्ल बदल डालता और वर्षा के परिमाण को भी बहुत कुछ घटा बढ़ा देता है। भारतवर्ष के सब उपजाऊ मैदान पहले घने जंगल थे, और हमारे पुरखों ने शताब्दियों मेहनत करके उन्हें साफ किया था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ भारतीय इतिहास की अनेक भाग्य निर्णायक लड़ाइयाँ कुरुक्षेत्र पानीपत प्रदेश में क्यों हुईं?

२ पारियात्र और ऋक्ष किन पर्वतों के पुराने नाम हैं?

३ बघेलखंड, चोलमण्डल, लाट, कर्णाटक, बनारस, कपिश और [illegible] देश की स्थिति बताओ।

४ सुरमा, वंक्षु, [illegible], हिरमोन और कृष्णा नदियाँ कहाँ हैं?

५ इतिहास में हमारे देश की सीमाएँ क्या रही हैं?

६ भारत को एक देश बनाने वाले प्राकृतिक कारण क्या हैं?

७ भारत की उत्तरपच्छिमी सीमा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

८ भारत की बहुत सी आदिम जातियाँ छोटा नागपुर में क्यों केन्द्रित हैं?

अध्याय २

हमारे देश के लोग

§१ **भारतवर्ष की भाषाएँ और उन के क्षेत्र**—भारतवर्ष बड़ा देश है। उसमें कई दरजों के लोग रहते हैं। भिन्न भिन्न दरजों को उन की बोली से पहचाना जाता है। कहावत है कि "कोस कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी।" वास्तव में बानी या बोली प्रायः सौ डेढ़ सौ मील तक एक सी

रहती है, भले ही चार-पाँच कोस पर एकाध शब्द बदल जाय। और अड़ोस-पड़ोस की कई बोलियाँ भी गोतिया होती हैं, उन के व्याकरण और शब्दकोष में विशेष अन्तर नहीं पड़ता। प्रायः चार-पाँच बोलियों को मिला कर एक भाषा बनती है। हमें यह देखना है कि भारत में कौन-कौन सी भाषा कहाँ कहाँ है।

कुरुक्षेत्र से प्रयाग या राजमहल तक और हिमालय से विन्ध्य तक की भूमि को प्राचीन काल में मध्यदेश कहते थे। उसके चारों तरफ क्रमशः प्राची, दक्खिणापथ, पश्चिम, और उत्तरापथ देश थे। उत्तरपच्छिम के प्रदेश भी उत्तरापथ में गिने जाते थे।

पुराने मध्यदेश में आजकल लिखने पढ़ने की भाषा हिन्दी है, पर वास्तव में उसमें चार भाषाक्षेत्र हैं—हिन्दी, राजस्थानी, कोशली और बिहारी। प्राची या पूरब में तीन भाषाएँ हैं—असमिया, बँगला और उड़िया। दक्खिन में छः—मराठी, तेलुगु, कन्नड, तमिळ, मलयाळम और सिंहली। पच्छिम में तीन—गुजराती सिन्धी और ब्राहुई। उत्तरपच्छिम में पाँच—पंजाबी, पश्तो, अफगान-पारसी, दरदी या कपिश-कश्मीरी और गल्चा। उत्तर में एक—पहाड़ी। नक्शा संख्या ४ में इन सब के क्षेत्र अंकित हैं। इसे देखने से प्रकट होगा कि भारत के भाषाक्षेत्र तथा उस के वे प्राकृतिक विभाग जिन्हें हम ने पिछले अध्याय में देखा है, बहुत कुछ एक हैं।

उक्त भाषाओं में दो साधारण सी बातें किस प्रकार कही जाती हैं, उसके नमूने परिशिष्ट १ में दिये गये हैं। इन नमूनों पर ध्यान देने से प्रकट होगा कि हिन्दी, बँगला, मराठी, सिंहली, सिन्धी, पंजाबी, कश्मीरी और पश्तो आदि भाषाओं का एक परिवार है, तथा तेलुगु, कन्नड, तमिळ और मलयाळम का एक। हिन्दी आदि का परिवार आर्य तथा तेलुगु आदि का द्राविड कहलाता है*। भाषाएँ जीवित सत्ताएँ हैं, उन की क्रम-परिणति होती रहती है। किसी भाषा का रूप चाहे जितना बदलता जाय, उस में अपने वंश की विशेषताएँ बनी रहती हैं।

---

* ब्राहुई, अफगान-पारसी और गल्चा के नमूने नहीं दिये जा सके। ब्राहुई द्राविड परिवार की है और शेष दोनों आर्य।

§२ आर्य और द्राविड नृवंश—आर्य और द्राविड भाषाएँ बोलने वाला के पुरखा अलग अलग नृवंशों के थे। उन के रंग रूप में भी भेद था। आर्य के चिह्न हैं—रंग गोरा या गेहुँआ, कद ऊँचा, माथा उभरा हुआ, नाक लम्बी और नुकीली, दाढ़ी मूँछ भरपूर। काला रंग, कद कुछ कम और चौड़ी नाक द्राविडों की विशेषताएँ हैं। किंतु ऐसा न समझना चाहिए कि आज जो आर्य भाषाएँ बोलते हैं वे सब पुराने आर्यों की ही सन्तान हैं, और जो द्राविड भाषाएँ बोलते हैं वे द्राविडों की ही। दोनों मूलवंशों में परस्पर मिश्रण भी खूब हुआ है। दोनों की भाषाओं का भी एक दूसरे पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बहुत लोगों ने अपनी भाषा छोड़ कर जहाँ बस गये वहाँ की प्रधान भाषा अपना ली। आज भारतवर्ष में ७६.५ की सदी आर्यभाषी, और २०.५ की सदी द्राविडभाषी हैं। बाकी ३ की सदी और लोग हैं।
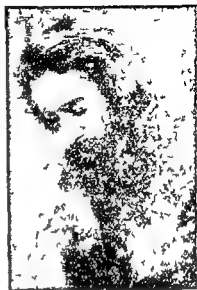
आर्यावर्त्त आर्य
[श्री दत्त संग्रहालय के सौजन्य से]

द्राविड
[श्री आ० अय्यप्पन के सौजन्य से]

द्राविड भाषाओं का भारत के बाहर कोई रिश्ता नाता नहीं दिखाई देता। किन्तु आर्य भाषाओं का परिवार बहुत बड़ा है। ईरान और युरोप की सब मुख्य भाषाएँ इसी वंश की हैं। इन सब को बोलने वालों के पुरखा शुरू में कहीं ... आर्य

भारतीय किरात
[लाहुल (जि० कांगड़ा) के एक सज्जन]

इस पर अनेक अटकलें लगाई गई हैं। मध्य-एशिया, पच्छिमोत्तर युरोप, उत्तरी ध्रुव, गंगा-काँठा, आर्मीनिया, डगल, दान्यूब-काँठा या सिबिरिया में विभिन्न विद्वानों ने आर्यों का मूल अभिजन होने का अन्दाज लगाया है। अभी इस विषय का अन्तिम निपटारा हुआ नहीं कहा जा सकता।

§ ३. **किरात नृवंश**—भारतवर्ष की जनसंख्या के तीन फी सदी गौण नृवंशों की भाषाएँ बोलने वालों में से आधे से अधिक एक ऐसे नृवंश के हैं, जो हिमालय के उत्तरी अंचल और पूरबी सीमा पर पाया जाता है। इन की भाषाएँ तिब्बत और बरमा की भाषाओं से मिलती हैं। उन भाषाओं और उन के बोलने वालों को आजकल के विद्वान् तिब्बत-बरमी कहते हैं। उनके वंश का पुराना नाम किरात है। किरात और चीनी नृवंश मिला कर मनुष्यजाति का एक बड़ा वंश बनता है, जिसे चीन-किरात (Tibeto-Chinese) कहते हैं। उस की मुख्य पहचानें हैं—नाक की जड़ कुछ चपटी, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई, दाढ़ी-मूँछ न के बराबर तथा चेहरा चपटा। नेपाल के नेवार भारतीय किरात का नमूना है। हमने भारतीय किरातों की जो संख्या कही है उसमें केवल उनकी गिनती है जो अब भी किरात भाषाएँ बोलते हैं; किन्तु असम बंगाल और हिमालय की जनता

मुंडा
[श्री सुरेश सिंह के सौजन्य से]

आर्य भाषाएँ
द्राविड भाषाएँ
मुंड भाषाएँ
किरात भाषाएँ
अन्य भाषाएँ
भाषा सीमा
—x—x—x— दरद भाषा की प्राचीन पूर्वी सीमा
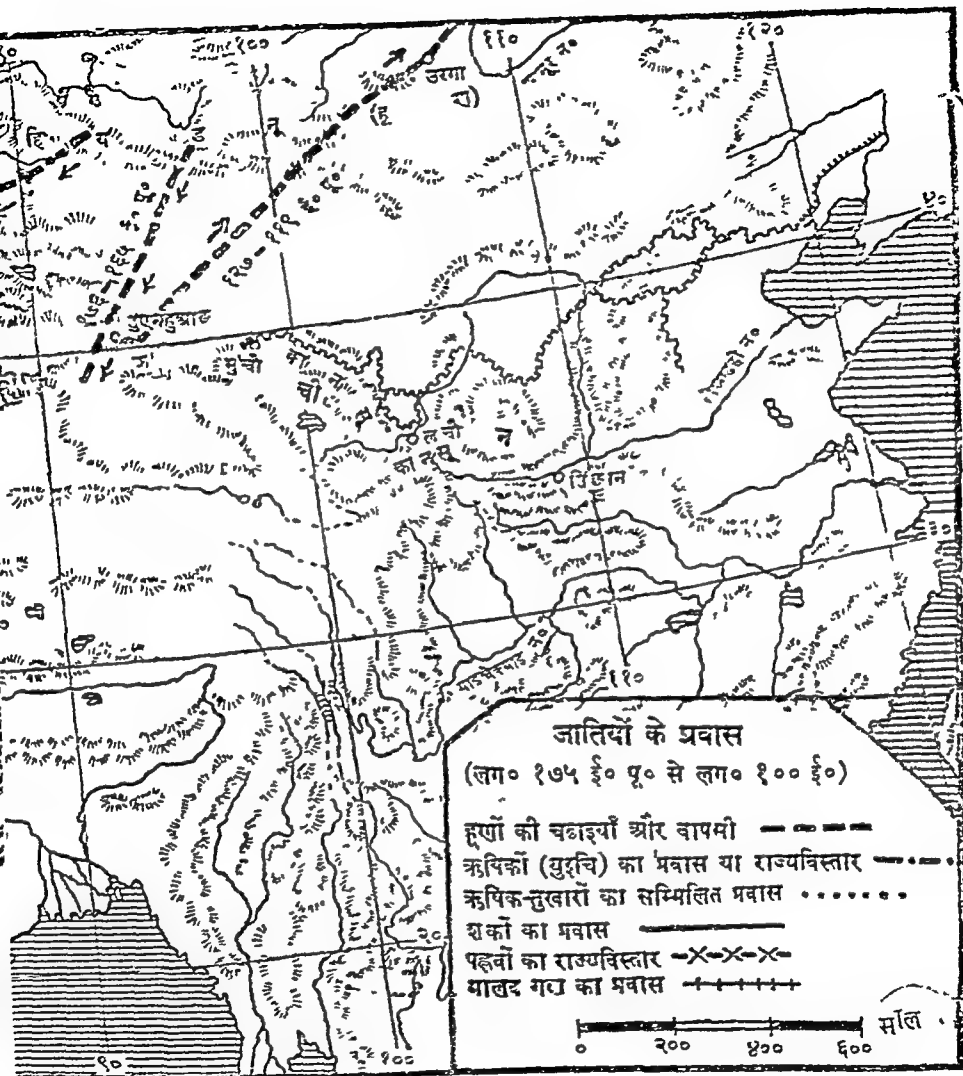
में बहुत से आर्यभाषी भी हैं जिनकी नसों में अशत चीनकिरात खून बहता है।

§४ मुंड या निषाद वंश—दूसरे गौण वंश का नाम मुंड या निषाद है। मुंड भाषाएँ बोलने वाले विशेष कर झाड़खंड या उस के पास पड़ोस में और खासी जयंतिया पहाड़ों में रहते हैं। सन्थाल, मुंडा, शबर, खासी आदि उन में से मुख्य हैं। उन्हें कोल भी कहते हैं। शक्लसूरत में वे कुछ द्राविडों के से हैं, पर उन की बोली बिलकुल अलग है। भारतवर्ष में वे थोड़े हैं, किन्तु बाहर उन का वंश बहुत दूर दूर तक फैला है। आज भी हिन्दचीन प्रायद्वीप में उन का बड़ा अंश है, पर किसी जमाने में तो वहाँ यही लोग बसते थे। हिन्द द्वीपावली में भी उसी वंश के लोग हैं। वह वंश संसार के आग्नेय अर्थात् दक्खिनपूरबी कोण में रहता है, इसलिए एक आधुनिक जर्मन विद्वान ने उस का नाम आग्नेय (Austric) रक्खा है*। मुंड इसी वंश की एक शाखा है। भारत में उस के बहुत से लोग *आर्य और द्राविड भाषाएँ* बोलने वालों में मिल चुके हैं। यहाँ के सब से पुराने निवासी शायद वही हैं।

§५ भारतवर्ष की लिपियाँ और भारतीय वर्णमाला—हमने अभी तक अपने देश की भाषाओं पर ध्यान दिया है। वे भाषाएँ किन लिपियों में लिखी जाती हैं, यदि हम इस पर ध्यान दें तो हमें कई काम की बातें मालूम होंगी।

हिन्दी, मराठी और पर्बतिया की लिखावट बिलकुल एक है। वे तीनों नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। नागरी, बंगला और गुजराती में थोड़ा थोड़ा अन्तर दिखाई देता है, पर तीनों के अक्षर या वर्णमाला बिलकुल एक हैं। नागरी में जैसे अ, आ, इ, ई, क, ख, ग, हैं, ठीक वैसे ही गुजराती में और वैसे ही बंगला में। भारत की शेष सब भाषाओं की वर्णमाला भी यही है। बात यह है कि पहले सारे भारत में एक ही लिपि थी और वर्तमान सब लिपियाँ उसी से निकली हैं। वर्णमाला उन सब की अब भी वही एक है। वह वर्णमाला पहले आर्य भाषाओं की थी, पीछे द्राविड भाषाओं ने भी उसे

---

* इन सब जातियों के एक ही मूलवंश के होने की बात कुछ विवादग्रस्त है।

अपना लिया। आर्य और द्राविड नृवंशों का एक दूसरे से किस प्रकार मिश्रण हुआ है तथा भारत की विविधता के भीतर कैसी एकता है; इसका यह भी एक नमूना है। भारत के बाहर बरमा, तिब्बत, स्याम और कम्बुज (कम्बोदिया)

नागरी	अ	इ	उ	ए	क	का	कि	कु	के
गुजराती	અ	ઇ	ઉ	એ	ક	કા	કિ	કુ	કે
गुरुमुखी	ਅ	ਇ	ਉ	ਏ	ਕ	ਕਾ	ਕਿ	ਕੁ	ਕੇ
बँगला	অ	ই	উ	এ	ক	কা	কি	কু	কে
उड़िया	ଅ	ଇ	ଉ	ଏ	କ	କା	କି	କୁ	କେ
तेलुगु	అ	ఇ	ఉ	ఎ	క	కా	కి	కు	కె
कन्नड	ಅ	ಇ	ಉ	ಎ	ಕ	ಕಾ	ಕಿ	ಕು	ಕೆ
तमिळ	அ	இ	உ	எ	க	கா	கி	கு	கெ
मलयाळम	അ	ഇ	ഉ	എ	ക	കാ	കി	കു	കെ
सिंहली	අ	ඉ	උ	එ	ක	කා	කි	කු	කෙ
तिब्बती	ཨ	ཨི	ཨུ	ཨེ	ག		གི	གུ	གེ
ब्रह्म (बरमी)	အ	ဣ	ဥ	ဧ	က	ကာ	ကိ	ကု	ကေ
स्यामी	อ	อิ	อุ	เอ	ก	กา	กิ	กุ	เก

आदि की भाषाओं ने भी हमारी वर्णमाला को अपना रक्खा है। यह कैसे हुआ, सो हम आगे चल कर देखेंगे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. आधुनिक भारत की मुख्य आर्य और द्राविड भाषाएँ कौन सी हैं और उनमें से कौन कौन किस किस प्रदेश में बोली जाती है?

२ प्राचीन भारत में मध्यदेश किसे कहते थे ?

३ भारत में कितने नृवंश हैं ? उन की मुख्य पहचान क्या है ?

४ हमारे देश में कितनी मुख्य लिपियाँ हैं और कितनी वर्णमालाएँ ? उनमें विद्यमान अन्तर या समानता का कारण बताइए ?

५ भारत के बाहर आर्य जाति कहाँ कहाँ पाई जाती है ?

परिशिष्ट १

भारतीय भाषाओं के नमूने

आर्य

संस्कृत	अहम् अद्य आत्मनो [मम] गृहं गच्छामि [व्रजामि, यामि]	एकस्य पितुर् द्वौ पुत्रौ आस्ताम्
पालि	अहं अज्ज मम घरं गच्छामि	एकस्स पितुनो द्वे पुत्ता अहेसुं
हिन्दी	मैं आज अपने घर जाता हूँ	एक बाप [पिता] के दो बेटे [पुत्र] थे
गुजराती	हुँ आजे मारे घर जाउँछुँ	एक बाप ना बे बेटा हता
पहाड़ी	आज म आफ्नो घर जान्छु	यौटा बाबु को दुइटा छोरा थिये
बँगला	आमि आज आमार बाड़ी जाइतेछि	एक पितार दुइ पुत्र छिल
असमिया	मँइ आजि मोर घरलै जाम	एजन पितेकर दुजन पुतेक आछिल
उड़िया	मुँ आजि आपणा घरकु जाउछि	एक पिताकर दुइटि पुत्र थिले
मराठी	मी आज आपल्या घरीं जात आहे	एका पित्यास दोन पुत्र होते
सिंहली	मम अद मगे गेदर यमि	एक पियेकुट पुत्रयो देदेनेक वूह
पंजाबी	मैं अज आपणे घर जांदा हाँ	इक प्यो दे दो पुत्तर सन
हिन्दकी (पश्चिमी पंजाबी)	मैं अज आपणे घर वैंदाँ	हिक पिउ दे डु पुत्र हन
सिन्धी	मां अजु पहिंजे घरि वञाथो	हिक पीउजा ब पुट हुआ

कश्मीरी	ब छुस अज पनुन गर गछान [मै हूँ आज अपने घर जाता]	अकिस मालिस आस्य ज न्यचिव्य [एक बाप के थे दो बेटे]
पश्तो	जें निन अःवपुज़ा कोर ते [ला] ज़ॅम	यवो पिलार द्वा ज़मन अवूः

द्राविड

तेलुगु	नेनु ईरोजनां माइंटिकि वेल्लु चुन्नानु	वोक तंड्रिकी इद्दरु कोडुकुलु उंडिरि
कन्नड	इवत्तु नानु [नन्न] मनेगे होगुत्तेने [आज मै मेरे घर जाता हूँ]	ओब्ब तन्देगे इब्बरु मक्कलु इद्दरु
तमिळ	नान इन्रु एन्नुडैय वीट्टिर्कु पोकिरेन	ओरु तकप्पनारुक्कु इरंडु कुमारर्कल इरुन्दनर
मलयाळम	ञान् इन्नु स्वगृहत्तिल् पोकुन्नु	ओरु पिताविन्नु रंडु पुत्रन्मार उंटायिरुन्नु

किरात

नेवारी	जि थौ थःगु छे वनेत्यना	छम्ह अबुया निम्ह काय् दु

मुंड

मुंडारी	आइङ तिसिङ अःना ओड़ाइङ सेनोताना	मियाद आपुआ बारिया कोड़ा-घेनकिङ ताइकेना

अध्याय ३

सभ्यता का उदय

§१. **हमारे पुरखों की विरासत**—हमारा देश कैसा है, और उस मे रहने वाले लोग कौन-कौन हैं, यह हम ने देखा। हमारे पुरखों का ब्यौरेवार वृत्तान्त ही हमारे देश का इतिहास है। जरा विचार कर देखें, हमारे पुरखों का

हम पर कितना एहसान है ! आज जिन खेतो से हमे खाने को अनाज मिलता है, उन्हें दो चार बरस खाली छोड़ दें तो उन की क्या हालत हो ? जगली झाड उन्हें घेर लें और जगली जानवर उन मे मँडराने लगें ! भारतवर्ष के सब उपजाऊ प्रदेश शुरू मे वैसे ही डरावने जगल थे और हमारे पुरखों ने बड़ी मेहनत कर उन्हें आबाद किया था । अनेक बार अपना खून बहा कर उन्हों ने उन की रक्षा की थी। जिन कुओं, तालाबों, झीलो और नहरों से आज हमारे खेतों और बगीचों की सिंचाई होती है, वे सब उन्हीं की मेहनत के फल हैं। जिन रास्तों से हमारा आना जाना और वाणिज्य व्यापार होता है, जिन दुर्गों और गढ़ों से देश की रक्षा होती है और जिन बस्तियों में हम आराम से रहते हैं, वे सब उन्हीं की रचनाएँ हैं। इन बाहरी चीजों का क्या कहना, हमारी जो बोल चाल, रहन सहन और रीति रिवाज हैं, वे सब भी हमें अपने पुरखों से प्राप्त हुए हैं। जो ज्ञान और विचार पा कर हम शिक्षित कहलाते हैं, वह भी अधिकांश हमारे पुरखों की खोज और मेहनत से सचित हुआ था। आज हमारी जो मानसिक निधि है वह भी बहुत कुछ उन्हीं की विरासत है।

हमारे देश की चप्पा-चप्पा भूमि हमारे पुरखों के महान् कार्यों की याद दिलाती है। उन के उन कार्यों का वृत्तान्त हमें अपने इतिहास मे मिल सकता है। सच्चे इतिहास से हमें न केवल उन की खूबियाँ प्रत्युत उन की गलतियाँ भी मालूम होंगी। और यदि हम में बुद्धि है तो हम उन के अनुभव से लाभ उठा कर उन की गलतियों से बचेंगे और उन के गुणों का अनुसरण करेंगे । मनुष्य का मनुष्यत्व इसी में है कि वह अपने पुरखों के ज्ञान से लाभ उठाता और उसे आगे बढ़ाता है। इसी प्रकार मनुष्य की सभ्यता में उन्नति होती चली आती है।

§२. **मानव सभ्यता की सीढ़ियाँ**—मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ कहा जाता है। उस की श्रेष्ठता इस बात मे है कि उस मे सोचने विचारने की शक्ति है। इसके अलावा दूसरे बहुत से जानवरों से उस में एक और भी विशेषता है। वह यह कि वह गोयाया है। मनुष्य सामूहिक प्राणी है, और बड़ा अनुकरणशील है। एक मनुष्य जो करता है उसे दूसरा भी झट सीख लेता

है। सामूहिक प्राणी होने के कारण मनुष्य अकेले अकेले नहीं रहते। उन के झुंड या गिरोह शुरू से रहे हैं जो बाद में 'जन' और राष्ट्र बन गये।

संसार के सब जन्तुओं में और जन्तुओ के झुंडो में लगातार जीवन का संग्राम चल रहा है, जिसमे प्रबल और योग्य का विजय होता है और कमजोर

पत्थर के हथियार—बाँदा ज़िले से [लखनऊ संग्रहालय]

और निकम्मे मारे जाते हैं। मनुष्य जिन बातो के कारण जीवन की कशमकश में दूसरे प्राणियो से आगे बढ़ा, वे हैं उस का दिमाग, उस की सामूहिक शक्ति और उस के हाथ। मनुष्यजातियाँ आपस की कशमकश मे भी अपने ज्ञान, अपने सामूहिक संघटन और अपने हाथो के हथियारो और उपकरणों को लगातार उन्नत कर रही हैं। हाथो से मनुष्य हथियार बना और चला सकता तथा अस्त्र फेंक सकता है। दुनिया की लडाई में इस से उसे बड़ी शक्ति मिली।

शुरू मे उस ने लकड़ी, पत्थर और हड्डी के हथियार बनाये। बाद में जब धीरे धीरे उसे धातुओं का ज्ञान हुआ तब उस ने खाने खोदना और धातें साफ करना सीखा। तब वह काँसे, ताँबे और लोहे के हथियार बनाने लगा।

किन्तु हथियार किस लिए थे? अपनी रक्षा और अपनी जीविका के लिए। मनुष्य अपनी जीविका मे भी लगातार उन्नति करता गया है। पहले

मनुष्यों के झुंड दूसरे जानवरों की तरह शिकारी थे—अर्थात् वे प्रकृति से
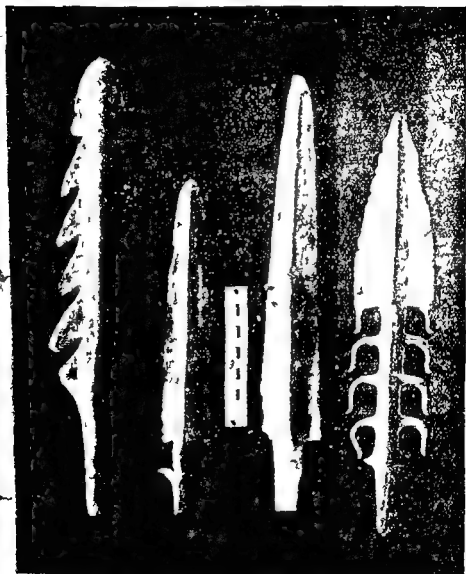
ताँबे के हथियार—बिठूर (जि० कानपुर) सरथौली (जि० शाहजहाँपुर) तथा राजपुर (जि० बिजनौर) में [लखनऊ संग्र०]

अपना भोजन सीधे ले लेते थे, जंगल में फल-मूल बीन कर या शिकार कर गुजारा करते थे। जानवरों का आखेट करते-करते धीरे-धीरे उन्हों ने जानवर पालना सीखा। यह एक बड़ा आविष्कार था जिस ने मनुष्य का तमाम जीवन बदल दिया। एक जानवर मार कर खाने से जितने दिन गुज़ारा हो सकता था उस के दूध से उस से कहीं अधिक दिन काम चलने लगा। इस प्रकार एक वर्गमील जंगल के शिकार से जितने मनुष्यों का गुजारा हो सकता था, एक वर्गमील चरागाह में चरने वाले जानवरों से उस से कहीं अधिक मनुष्यों का काम चलने लगा। फिर पैदल और घुड़सवार की लड़ाई में क्या कोई मुकाबला है! इस प्रकार पशुपालक मनुष्य कोरे शिकारियों से आगे बढ़ गये और जीवन के क्षेत्र में फूलने फलने लगे।

शिकारी मनुष्य भी जब फल बीन कर लाता तब अपने डेरे के पड़ोस में कई बार गुठलियों या बीजों से पौदे उगते देखता था। इस प्रकार पौदे उगाने का ज्ञान शायद उसे शिकारी दशा में ही हो गया था। किन्तु असल खेती तब शुरू हुई जब उस ने जानवरों को पाल कर उन से हल जोतना शुरू किया। कृषि सीख जाने से मनुष्यों की जीविका में बड़ी उन्नति हुई और उन के समाज और भी बढ़ने लगे।

शिकारी और पशुपालक खानाबदोश होते हैं। कृषकों ने जहाँ खेत बोया वहाँ कम से कम फसल काटने तक उन्हें रहना चाहिए। फिर जहाँ सिंचाई का सामान किया गया, बगीचे लगाये गये, वहाँ तो हमेशा के लिए बस जाना होता है। इस प्रकार कृषि शुरू होने पर मनुष्यों के समूह टिक कर रहने लगे, और उन में असली सभ्यता का उदय हुआ। तब उन के राज्य और समाज स्थापित तथा संघटित होने लगे और लिखने की कला का आविष्कार हुआ। खानाबदोश दशा में भी कुछ ज्ञान-विचार और शिक्षा थी, पर लिखने की कला का आविष्कार होने पर शिक्षा देने और पाने की परिपाटी चली जिससे ज्ञान और साहित्य चमका।

कृषि के बाद मनुष्य ने अनेक प्रकार के शिल्प निकाले। कई शिल्प—जैसे ऊन कातने-बुनने का—खानाबदोशों में भी थे किन्तु टिक कर बस जाने के

बाद शिल्पों की बहुत उन्नति हुई, यहाँ तक कि आजकल का युग तो शिल्प-युग ही है, क्योंकि कल-कारखानों के ज्ञान के बिना आज कोई राष्ट्र जिन्दा नहीं रह सकता।

§३ सभ्यता के चिह्न—इतिहास के उपकरण—सभ्यता अपने चिह्न पीछे छोड़ती जाती है। पुराने लोगों के बनाये हुए पत्थर और हड्डी के हथियार अब तक दबे हुए निकल आते हैं। ताँबे, काँसे और लोहे के पुराने किस्म के हथियार भी पुरानी बस्तियों की खुदाई में पाये जाते हैं। सभ्य मनुष्य ने अनेक प्रकार के उपकरणों और उन की बनाई हुई इमारतों से उनका हाल जाना जाता है। मकान बनाने का शिल्प चलने पर भी, लकड़ी की बहुतायत के कारण, बड़े अरसे तक हमारे देश में लकड़ी की इमारतें बनती रहीं। वे सुरक्षित न रह सकती थीं। किन्तु बाद की पत्थर की इमारतों से हमें उन युगों की हालत का बहुत कुछ पता मिलता है। फिर हमारे पूर्वज अपने पीछे जो साहित्य और लेख छोड़ गये हैं—वे लेख चाहे पत्थर पर हों, चाहे सिक्कों पर, चाहे पुस्तकों में—उन से तो उन का वृत्तान्त जानने में बड़ी सहायता मिलती है। सभ्यता के ये सभी चिह्न हमारे इतिहास के उपकरण हैं।

§४ भारत और संसार की पहली सभ्यताएँ—हमारे देश में जो पत्थर के पुराने हथियार पाये गये हैं, वे आर्यों के नहीं हैं, क्योंकि आर्य लोग जब पहले पहल इस देश में प्रकट हुए, तब उन में साहित्य का उदय हो चुका था, और उस साहित्य से हम जानते हैं कि वे तब कृषि और धातुओं का प्रयोग जानते थे। पुराने पत्थर के हथियार बरतने वाले जो लोग उत्तर भारत के जंगलों में रहते थे, वे प्राचीन द्राविड़ हों, मुंड हों, या उन सब से भिन्न कोई लोग हों। आर्यों ने जब उन के जंगल काट कर साफ किये, तो वे भाड़खंड जैसे दूर प्रदेशों में भाग गये, नष्ट हो गये, या कुछ अंश में आर्यों में मिल गये।

सभ्य जातियाँ पहले पहल नदियों के उपजाऊ काँठों में बसीं। संसार भर में नदियों के चार काँठे, जिनमें सब से पहले सभ्यता का विकास हुआ, बहुत प्रसिद्ध हैं। एक, चीन की याङ्चेक्याङ और ह्वांग्हो नदियों के काँठे, दूसरे, हमारे गंगा जमना और सिन्ध-सतलज के काँठे, तीसरे, ईरान की

खाड़ी में गिरने वाली तिग्रिस और फरात नदियों के काँठे, और चौथे, मिस्र की नील नदी का काँठा । नील काँठे में पहलेपहल मिस्र के पुराने निवासी हामी या हैमेटिक लोगों की सभ्यता का उदय हुआ; तिग्रिस-फरात के तटों पर पहले अक्काद और सुमेर नाम की और फिर बाबुल (Babylon) और खल्द (Chaldea) नाम की बस्तियाँ थीं। अक्काद और सुमेर के लोग न जाने कौन थे। उन के द्राविड या तूरानी (तुर्कों तातारों के सजातीय) होने की अटकल लगाई गई है, पर वे किसी और नृवंश के भी हो सकते हैं। बाबुली लोग सामी या सैमेटिक जाति के थे, जिसमें अब अरब और यहूदी हैं। हमारे उत्तर भारत में आर्य जाति थी और चीन में चीनी । प्राचीन जगत् में ये ही सभ्य जातियाँ थीं और यही सभ्यता के केन्द्र थे।

शव दफनाने का मटका—हड़पा से [भा० पु० वि०]

हमारे सिन्ध प्रान्त के लारकानो जिले में मुअन जो दड़ो (अर्थात् मुओं का भीटा)* नामक स्थान की खुदाई से एक बड़ी पुरानी सभ्यता के अवशेष

* बस्ती के खँडहरों के दब जाने से बनी ढेरी को प्रयाग की बोली मे भीटा कहते हैं। उसी को पच्छिमी पंजाब मे भिड या ढेरी, पूरबी पंजाब मे थेह, भोजपुरी मे भीट या डीह और सिन्धी में दड़ो कहते है।

मुअन जो दड़ो की खुदाई में प्राप्त मुहरें, मूर्तियाँ आदि
(दूसरी पंक्ति में एक आधुनिक शिवलिंग तुलना के लिए रक्खा है।)
[illegible]

मिले हैं। उस स्थान पर एक सुन्दर नगरी थी जिस की इमारतें ईंट और पत्थर की थी, और जिस के मकान, नालियाँ, गलियाँ और बाजार बड़े सिलसिले से बने थे। वहाँ के लोग गेहूँ की खेती, कपास के कपड़े बनाना और लिखना भी जानते थे। उस नगरी के खँडहरों में बाट भी पाये गये हैं, जो क्रमशः एक दूसरे से दूने तोल के हैं, जिससे सिद्ध होता है कि वहाँ के लोग कुछ गणित भी जानते थे और व्यापार-विनिमय भी करते थे। वहाँ से जो हथियार निकले हैं वे सब पत्थर और ताँबे के हैं; लोहे का पता वहाँ के लोगों को न था। अन्य कई जानवरों से परिचित होते हुए भी वे घोड़े को न जानते थे। कला की रुचि उन में थी। वह बस्ती अन्दाजन पाँच हजार बरस पुरानी है। उसी तरह के अवशेष साहीवाल या मंटगुमरी जिले के हड़पा, कलात पठार के नाल आदि स्थानो में भी पाये गये हैं; और उन मे तथा सुमेर अक्काद के अवशेषों में बड़ी समानता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाँच हजार बरस पहले पच्छिम एशिया से सिन्ध काँठे तक एक ही सभ्यता फैली थी। वह सभ्यता किस जाति की थी सो अभी कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। मुअन जो दड़ो की मुहरों के लेख अभी तक पढ़े नही जा सके; उनके पढे जाने पर इस प्रश्न का निपटारा हो सकेगा।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. आरम्भिक मनुष्य की जीविका क्या थी? उसके आगे जीविका मे उन्नति होते हुए सभ्यता का विकास कैसे हुआ?

२. ससार में पहली सभ्यताओं का उदय कहाँ कहाँ हुआ?

३. मुअन जो दड़ो के लोग किस किस धातु और पशु से परिचित थे और किस से अपरिचित?

---

२. आरम्भिक आर्य पर्व

अध्याय १

आर्यों का भारत में फैलना

§१ **पौराणिक ख्यातें**—आर्य लोग भारतवर्ष में कब, कैसे और किधर से आये, इन प्रश्नों पर बड़ा विवाद है। आर्यों का समूचे उत्तर भारत मध्यमेखला और महाराष्ट्र में फैल जाना हमारे इतिहास की सब से बड़ी घटना है। उस घटना की "अनुश्रुति" अर्थात् परम्परा से सुनने में आते हुए आख्यान हमारे पुराण नाम के ग्रन्थों में मिलते हैं। पुराण का अर्थ ही है पुराना आख्यान। शुरू में उन ग्रन्थों में उन आख्यानों या ख्यातों के सिवा और कुछ न था। किन्तु बाद के लोगों ने पुराणों में धर्मोपदेश की और अन्य अनेक विषयों की भी बात मिला दी और उन ख्यातों को भी अनेक कल्पित कहानियों में उलझा दिया, जिस से आज उन में से सच को बीनना कठिन हो गया है। तो भी यदि हम समूचे पौराणिक वृत्तान्त का सार ले लें तो उस से भारत के ठीक उस भाग में जिस में कि आज आर्य भाषाएँ बोली जाती हैं आर्यों के फैलने का सर्वथा स्वाभाविक क्रमबद्ध ब्यौरा निकल आता है।

हमारे पुराणों में आर्य राज्यों के आरम्भ से ले कर गुप्त राजाओं—जिन की आगे चर्चा की जायगी—तक की ख्यातें हैं। उन ख्यातों में महाभारत का युद्ध बहुत प्रसिद्ध है। उस युद्ध पर आर्य इतिहास का पहला प्रकरण समाप्त होता है। हमारे देश में बहुत लोगों का विश्वास है कि वह युद्ध आज से पाँच हजार बरस पहले हुआ था, जब कि कलियुग संवत् चला। किन्तु वह विक्रम संवत् से ३०४४ बरस पहले चला, यह बात पीछे की बनी हुई है। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार उस युद्ध के बाद के राजा परीक्षित से राजा नन्द के समय तक

१०१५ या १०५० वर्ष जीते थे, जिस से उस युद्ध का समय लग० १४०० ई० पू० आता है। फिर पुराणों की ख्यातों में राजा इक्ष्वाकु के समय से भारत युद्ध के समय तक राजाओं की कुल ९३-९४ पीढ़ियाँ लिखी हैं। एक पीढ़ी का समय औसतन १६ बरस मानने से इक्ष्वाकु का समय भारत-युद्ध से प्रायः १५०० बरस पहले आता है। इक्ष्वाकु से पहले की अनुश्रुति सुलझाई नहीं जा सकी, और भारत में आर्यों के फैलने की कहानी प्रायः इक्ष्वाकु के बाद से ही चलती है, इसलिए वहीं से हम अपने इतिहास का आरम्भ करते हैं। शायद किसी का यह ख्याल हो कि एक पीढ़ी के लिए १६ बरस बहुत कम समय है, हमारे पुरखा बहुत वर्षों तक जिया करते थे। यदि हम यह मान लें कि हमारे पुरखा औसतन १३० बरस जीते थे, तो भी एक राजा जब मरा तो उस के बेटे की आयु १०५ या ११० की हुई; फिर वह तो केवल २५ या २० बरस ही राज्य कर सकेगा और उस के मरने पर उस का बेटा भी बूढ़ा हो चुकेगा। इस तरह औसत प्रायः वही निकल आयगा।

§२. **मानव और ऐळ वंश**—पुराणों के अनुसार हमारे देश में पहले दो वंशों के राज्य थे—एक मानव या सूर्य वंश, दूसरे ऐळ या चन्द्र वंश के। मानवों के कई राज्य थे, जिनमें से अयोध्या और विदेह (उत्तर बिहार) के कई युगों तक चलते रहे। विदेह का राजवंश जनक कहलाता था। ऐळों का पहला राज्य प्रतिष्ठान में था, जो शायद सरस्वती कांठे में कोई बस्ती थी। अयोध्या के इक्ष्वाकु का छोटा समकालीन ऐळ पुरूरवा था। पुरूरवा से चौथी पीढ़ी पर ययाति हुआ। उसके पाँच बेटे थे—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु। इन भाइयों के नाम से अलग-अलग वंश चले—यादव, तुर्वसु, द्रुह्यु, आनव और पौरव। पुराणों के अगले आख्यान इन्हीं वंशों की शाखा-प्रशाखाओं का सारे आर्यभाषी भारत में फैलना बतलाते हैं। पौरव मध्यदेश में रहे, यादव बुन्देलखंड राजस्थान गुजरात और महाराष्ट्र में फैले, तुर्वसु द्रुह्यु और आनव पंजाब सिन्ध में तथा आनवों की एक शाखा बिहार में।

इक्ष्वाकु के वंश में २०वीं पीढ़ी पर मान्धाता और ३२वीं पर हरिश्चन्द्र हुआ। मान्धाता आर्यावर्त यानी आर्यों के देश का पहला सम्राट् था।

रेशचन्द्र की रानी "शैव्या" अर्थात् शिवि लोगों में से थी जो कि दक्खिनी जाब में बसे आनवों की एक शाखा थे। उसके बाद की पुरानी ख्यातों में तीन आख्यान या वृत्तान्त सब से अधिक प्रसिद्ध हैं—एक पौरव वंश के राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत का, दूसरा इक्ष्वाकु वंश के राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र का और तीसरा महाभारत युद्ध का। भरत का समय पुरूरवा से ४२वीं पीढी पर और रामचन्द्र का इक्ष्वाकु से ६४वीं पर है। इस हिसाब से भरत हुए अन्दाजन १२५० ई० पू० में और रामचन्द्र अन्दाजन १६०० ई० पू० में।

§३ भरत का आख्यान—पौरव वंश में राजा दुष्यन्त के पुरखा अपना राज खो चुके थे। दुष्यन्त ने फिर से एक नया राज स्थापित किया, जो गंगा जमना दोआब के उत्तरी हिस्से में प्रायः आजकल के मेरठ बिजनौर जिलों में था। दुष्यन्त अपनी जवानी के दिनों में एक बार हिमालय की तराइ में शिकार खेलने गया। दो बीहड़ जंगल पार कर उसकी सेना खुले सुनसान मैदान में जा निकली, जिसके आगे एक मनोरम वन दिखाइ दिया। उस वन के

कण्व के आश्रम में दुष्यन्त का आगमन। सहजाति के भीटे (जिला इलाहाबाद) की खुदाई में पाये गये शुंग युग के एक मिट्टी के ठिकरे पर अंकित इस सुंदर चित्र में शकुन्तला की कहानी अंकित जान पड़ती है। [भा० पु० वि०]

परले छोर को मालिनी नदी धोती थी (देखिए नकशा ५), जिसके किनारे एक

कुरु-पञ्चाल, उत्तरी अंश
पैमाना ४० मील
देव प्रयाग
हरद्वार
लालढाग
कोटद्वार
नजीबाबाद
शुक्रताल
बिजनौर
हस्तिनापुर
मुरादाबाद
रामपुर
नैनीताल
काठगोदाम
अल्मोड़ा
गढ़मुक्तेश्वर
सम्भल
चंदौसी
शेरगढ़
रामनगर
(अहिच्छत्रा)
आँवला
बरेली
अनूपशहर
महसवाँ
बदायूँ
सोरों
अलीगढ़
तिलहर
गंगा न०

नक्शा ५
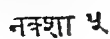
ऋषि का आश्रम बना जान पड़ता था। मालिनी अब मालिन कहलाती है, और गढ़वाल में तराइ के पहाड़ों से निकल कर नजीबाबाद के पच्छिम बहती हुई गंगा में जा मिलती है। उस के तट पर का आश्रम कण्व ऋषि का था। गढ़वाल में चौकीघाटा नामक स्थान के उत्तर आज भी लोग किनकसोत नाम का कुंज दिखलाते और उसे कण्व आश्रम के स्थान पर कहते हैं। आश्रम को देख राजा ने सेना वहीं छोड़ दी और कुछ एक साथियों के साथ आगे बढ़ा। ऋषि के स्थान की तरफ जाते हुए वह अकेला रह गया। वहाँ उसे "सूखे पत्तों में खिली कली के समान" तापसी वेश में एक युवती दिखाई पड़ी। कण्व फल लाने को बाहर गये हुए थे और दो दिन बाहर ही रहे। उन की अनुपस्थिति में उन की पुत्री शकुन्तला ने ही राजा का आतिथ्य किया। दुष्यन्त और शकुन्तला का परस्पर प्रेम और विवाह भी हो गया। कण्व के लौट आने पर शकुन्तला सकोच में बैठी थी, उन का बोझा उतारने को आगे नहीं बढ़ी। सब हाल जान लेने पर पिता ने उसे आशीर्वाद दिया।

शकुन्तला की गोद से पराक्रमी भरत हुआ। बड़ा होने पर उस ने थानेसर के पास की सरस्वती नदी से गंगा तक और गंगा से अवध की सीमा तक समूचा प्रदेश जीत लिया। वह 'चक्रवर्ती' (यानी जिस के रथ का चक्र समूचे आर्यावर्त्त में चले) और सम्राट् कहलाया। उस के वंशज भारत कहलाये। और उन भारतों में बड़े-बड़े राजा और ऋषि हुए। भरत के वंश में उस से छठी पीढ़ी पर राजा हस्ती हुआ, जिस ने हस्तिनापुर नाम की बस्ती बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। मेरठ जिले के उत्तरपूरबी कोने में अब भी गंगा के पाँच मील पच्छिम हसनापुर नाम का कस्बा उस बस्ती को सूचित करता है (दे० नक्शा ५)।

भरत के राज्य में अवध के पच्छिम का ठेठ हिन्दुस्तान का समूचा प्रदेश था। किन्तु पीछे हस्तिनापुर के राज से उस का पूरबी हिस्सा अलग हो गया। वह पंचाल देश कहलाने लगा। उस के भी दो टुकड़े हुए। गंगा जमना दोआब का निचला हिस्सा दक्खिण पंचाल कहलाता। उस की राजधानी काम्पिल्य थी, जिस का नाम आज तक फर्रुखाबाद जिले के काँपिल गाँव न

नाम से जिन्दा है। उस के उत्तर गंगा पार उत्तर पंचाल था। उस की राज-धानी अहिच्छत्रा थी, जिस के खँडहर बरेली जिले में आँवला कस्बे के नजदीक रामनगर गाँव में हैं (दे० नक्शा ५)। इटावा-फर्रुखाबाद प्रदेश को अब भी पचार कहते हैं, जो कि 'पंचाल' का रूपान्तर है।

§४. **राम दाशरथि का आख्यान**—अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु के वंशजों का राज्य चला आता था। अयोध्या के ही नाम से वह प्रदेश अब अवध कहलाता है। उस का पुराना नाम कोशल था। इक्ष्वाकु के वंश में ६१वीं पीढ़ी पर रघु हुआ, रघु का पोता दशरथ था। दशरथ की तीन रानियों में से बड़ी "कौशल्या" अर्थात् कोशल की थी, दूसरी "कैकेयी" केकय की। इन रानियों के व्यक्तिगत नाम हम नहीं जानते। केकय लोग आनवों की एक शाखा थे जो चिनाब नदी के पच्छिम नमक-पहाड़ियों तक रहते थे। आजकल के गुजरात, शाहपुर और जेहलम जिले उन के देश को सूचित करते हैं। राजा दशरथ के अपनी रानियों से चार बेटे होने और जेठे बेटे रामचन्द्र का सीता से विवाह होने की कहानी सुविदित है।

बुढ़ापे में राजा दशरथ ने रामचन्द्र को युवराज-तिलक दे राज-काज से छुट्टी पाने का विचार किया। प्रजा ने राम का अभिषेक करने की स्वीकृति दे दी। उस समय के आर्यावर्त्त में नये राजा को जब राज्य मिलता, तब उस का एक संस्कार होता था, और उसे प्रजा के साथ कई प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती थीं। उसी समय उस का 'अभिषेक' यानी सींचने या शुद्ध करने की रस्म होती थी, जिस के लिए गंगा सरस्वती आदि पवित्र नदियों का पानी लाया जाता, और जिस देश का वह राजा होता, उस के एक तालाब का पानी भी उन पानियों में मिलाया जाता। राम के अभिषेक की सब तैयारी हो चुकने पर किस प्रकार कैकेयी ने वह निश्चय बदलवा दिया और राम को १४ वर्ष का वनवास मिला, वह कहानी भी प्रसिद्ध है।

राम की वनयात्रा प्रयाग से चित्रकूट, पंचवटी, किष्किन्धा हो कर लंका तक है। प्रचलित विश्वास के अनुसार लंका सिंहल है और पंचवटी गोदावरी तट पर नासिक अथवा बस्तर में पर्णशाला नामक स्थान। किन्तु रामायण

के अनुमार चित्रकूट से पंचवटी प्राय ७८ मील और किष्किंधा ६६ मील थी।

रामचन्द्र अहल्या का उद्धार करते हुए (?)
देवगढ़ (जि० झांसी) के गुप्तकालीन मंदिर का एक मूर्त्त दृश्य
[भा० पु० वि०]

'लंका' का अर्थ गोंडी द्राविड बोली में टापू, ऊँचाई और ऊँचा टीला तीनों है। 'गोदारि' शब्द उस बोली में नदी का वाचक है, उसी का संस्कृत रूप गोदावरी है। विन्ध्य के गोंड लोग अपने को रावण का वंशज मानते आये हैं। यह सब देखते हुए आधुनिक विवेचकों ने निर्णय किया है कि लंका अमरकंटक की चोटी थी, जहाँ से एक तरफ नर्मदा और दूसरी तरफ सोन निकलता है, और जिस के नीचे बड़े जलाशय हैं। वहाँ के निवासी गोंड हैं, जिन के पड़ोस में ओरॉव और शबर भी रहते हैं। ओरॉव रामायण के वानर हैं, और शबर ऋक्ष। कल्पना ने उनके विचित्र रूप बना दिये हैं। पर वे मनुष्य जातियाँ ही थीं, और आर्यों के साथ उन के विवाह-सम्बन्ध भी होते थे। जंगली जातियाँ पशुओं, पेड़ों आदि की पूजा किया करती हैं, और जिस वस्तु को पूजती हैं, उस के चित्र से अपने देह को आँकती हैं और उसी के नाम से उन का नाम पड़ जाता है। गोंडों में तब मनुष्य-मांस खाने की प्रथा रही होगी, इस लिए वे राक्षस कहलाये।

अमरकंटक बघेलखंड के दक्खिनी छोर पर है, उस के दक्खिन छत्तीसगढ़ है, जिस का नाम आगे चल कर दक्षिण कोशल पड़ा। उत्तर कोशल से दक्षिण कोशल तक अब एक ही भाषा है (दे० नक्शा ४)। इस प्रकार राम के आख्यान में उत्तर कोशल के आर्यों के दक्खिन बढ़ने का चित्र अंकित है।

वाल्मीकि-रामायण में अंकित राम की वनयात्रा से उस युग में जमना के दक्खिन प्रदेश की दशा पर प्रकाश पड़ता है। चित्रकूट छोड़ने पर रामचन्द्र सब से पहले अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुँचे। चित्रकूट के पास उस आश्रम का स्थान अब भी उसी नाम से बताया जाता है। वहाँ के तपस्वियों ने राम को सावधान करते हुए दंडक वन में जाने का सुगम मार्ग बतलाया। कई ऋषियों के आश्रमों को देखते हुए वे शरभंग के आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्हें निकटवर्त्ती सुतीक्ष्ण के आश्रम में जाने की सलाह दी गई, पर साथ ही चेतावनी दी गई कि चित्रकूट से पम्पा तक राक्षसों का बड़ा उपद्रव है। सुतीक्ष्ण के आश्रम में राम कुछ दिन रहे, फिर कई वर्ष घूमघाम कर वहीं लौट आये। वहाँ से चार योजन पर वे अगस्त्य के भाई के आश्रम को गये, फिर

उस के निकट ही अगस्त्य के आश्रम को। अगस्त्य ने अपने आश्रम से दो योजन पर गोदावरी तट पर पञ्चवटी स्थान बताया। वहीं कुटी बना कर राम रहने लगे और वहीं से सीता को रावण हर ले गया। राम सीता की खोज में निकले तो तीन कोस की दूरी पर क्रौञ्चारण्य में पहुँचे। उसे पार कर पूरब मुड़ने पर एक घोर वन में घुसे और फिर एक खोह पार कर मतङ्गारण्य में। वहाँ कबन्ध राक्षस मिला जिस ने बताया कि वहाँ से दक्खिन पम्पा सरोवर के तट पर ऋष्यमूक पर्वत है, जिस पर सुग्रीव वानर रहता है। ऋष्यमूक के निकट ही किष्किन्धा थी, जहाँ सुग्रीव का भाइ वालि रहता था। यों चित्रकूट से सुतीक्ष्ण का आश्रम प्राय १० मील, वहा से पञ्चवटी लगभग ४८ मील, और पञ्चवटी से किष्किन्धा लगभग १८ मील थी। और चित्रकूट से ही वन जगत आरम्भ हो जाते थे, जिन में गोंड कोरगाँव और शबर लोग विचरते और शिकार से जीविका करते थे, और जिन के बीच बीच आर्य ऋषियों ने अपने आश्रम बनाये थे।

भरत दाशरथि को अपने ननिहाल का केकय राज्य मिला था। केकय के साथ लगा हुआ सिन्धु देश था (दे० नक्शा ६) जिस के अन्तर्गत आजकल के सिन्धसागर दोआब का समूचा पहाड़ियों के दक्खिन का अंश और डेराजात (सिन्ध काठे के डेरा इस्माइलखां, डेरा गाजीखाँ जिले) शामिल थे। सिन्धु भी भरत के राज्य में था। ईरानी लोग इसी सिन्धु देश को 'हिन्दु' बोलते थे और इसी से हमारे सारे देश का नाम 'हिन्द' या 'इन्द' पड़ा।

आजकल जिसे हम सिन्ध प्रान्त कहते हैं उस का नाम सौवीर था। सिन्धु कहने से सिन्ध नदी का निचला काँठा ही समझा जाता था। सिन्धु के उत्तर और केकय के उत्तरपच्छिम गन्धार लोग रहते थे, जो कि द्रुह्यु वंश के थे। भरत दाशरथि के पुत्र तक्ष और पुष्कर थ। कहते हैं उन्हों ने गन्धार जीत कर तक्षशिला और पुष्करावती बस्तियाँ बसाईं। पुष्करावती कुभा (काबुल) और सुवास्तु (स्वात) नदियों के सङ्गम पर थी। तक्षशिला का प्रदेश पूरबी गन्धार था और पुष्करावती का पच्छिमी गन्धार। आगे चल कर हमें इन प्रदेशों और नगरियों से बहुत वास्ता पड़ेगा (दे० नक्शा ६, ७)।

§५. **यादव और पौरव**—रामचन्द्र से पहले यादवों की जो वृद्धि हुई थी, पीछे और भी हुई। उन के राज्य मथुरा से गुजरात और विदर्भ तक फैल गये थे। मथुरा का प्रदेश शूरसेन कहलाता था। जमना के दक्खिन का प्रदेश जिसे अब बुन्देलखंड कहते हैं, चेदि कहलाता था: वहां भी यादव बसे हुए थे। आजकल के मालवा के पच्छिम भाग को अवन्ति और पूरब को दशार्ण कहते थे (दशार्ण देश में दशार्णा नदी बहती थी जो अब भी धसान कहलाती है)। अवन्ति और दशार्ण में तथा आजकल के गुजरात-काठियावाड़ में भी यादव बसे थे। अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी (उज्जैन) के दक्खिन नर्मदा नदी में एक टापू है जिसे आजकल मान्धाता कहते हैं। वहाँ माहिष्मती नाम की यादवों की नगरी थी। अवन्ति से दक्खिन जाने वाले रास्ते को वह सब से बड़े नाके पर काबू करती थी। उस के दक्खिन विदर्भ देश (बरार) भी एक यादव राज्य था (दे० नक्शा ६, ७)।

उधर उत्तर पंचाल में ६७वीं पीढ़ी के समय राजा सुदास हुआ, जिस ने दक्खिन पंचाल जीता, हस्तिनापुर के राजा संवरण को उस की राजधानी से मार भगाया, और फिर पंजाब के राष्ट्रों पर चढ़ाई की। परुष्णी (रावी) नदी के किनारे उस ने जिन दस राजाओं को इकट्ठा हराया उन में पौरव संवरण के अतिरिक्त मत्स्य, तुर्वसु, द्रुह्यु, शिवि, पक्थ आदि के नाम हैं। मत्स्य मथुरा के पच्छिम आजकल के मेवात (अलवर) के लोग थे। पक्थ आधुनिक पठानों के पुरखा थे।

सुदास की मृत्यु के बाद संवरण ने अपना राज्य वापिस ले उत्तर पंचाल भी जीत लिया। संवरण का बेटा प्रतापी कुरु हुआ। उसी के नाम से सरस्वती का काँठा कुरुक्षेत्र कहलाने लगा। कुरु के वंशज कौरव कहलाये। उस वंश की एक छोटी शाखा में आगे चल कर राजा वसु हुआ। वसु ने चेदि,कौशाम्बी और मगध को जीत लिया। आजकल के प्रयाग का प्रदेश तब वत्स कहलाता था। उस की राजधानी कौशाम्बी प्रयाग से ३२ मील ऊपर जमना पर थी, जहाँ अब कोसम का ढहा हुआ गढ़ है। मगध दक्खिनी बिहार का नाम था, जिस में अब पटना और गया जिले हैं। वसु के समय से पहले वह निरा जंगल

था, और उस में आर्यों की बस्ती नाम को ही थी, किन्तु वसु के पीछे उस के जो वंशज मगध मे रहे, उन्हों ने उसे एक बडा राज्य बना दिया। मगध का राजा जरासन्ध और चेदि का शिशुपाल वसु के वंशज थे।

§६ भारत युद्ध का आख्यान—कौरव वंश की बड़ी शाखा हस्तिनापुर मे राज्य करती रही। उस वंश में धृतराष्ट्र और पाडु दो भाइ हुए। उन के पुत्रों की कहानी सुविदित है, और उस का ऐतिहासिक सार यों है। धृतराष्ट्र की रानी "गान्धारी" अर्थात् गन्धार राजकुमारी से उस के बहुत से बेटे हुए, जिन में दुर्योधन जेठा था। पाडु की दो रानियाँ थीं—कुन्ती और 'माद्री'। मद्र लोग रावी और चिनाब के बीच रहते थे, उन की राजधानी शाकल (= स्यालकोट) थी। मद्र की स्त्रियाँ हमारे प्राचीन इतिहास मे अद्वितीय सुन्दरियाँ प्रसिद्ध थीं। पाडु की छोटी रानी मद्र की होने से माद्री कहलाइ। विवाह से पहले कुन्ती के एक बेटा हो चुका था जिसे उस ने शर्म के मारे बहा दिया था। एक सूत ने उसे उठा कर पाल लिया था। उस का नाम कर्ण था। उसे दुर्योधन ने शरण दी थी। पाडु के बेटे पाडव कहलाये। धृतराष्ट्र के बेटे कौरव ही कहलाते रहे। कौरवों और पाडवों मे बचपन से बड़ी डाह रही।

जरासन्ध ने मगध के राज्य को एक साम्राज्य बना लिया। सब पड़ोसी राजा उसे अपना बड़ा मानते थे। चेदि का शिशुपाल उस का मित्र था। मथुरा के अन्धक यादवों का राजा कंस भी, जो जरासन्ध का दामाद था, उसे अपना अधिपति मानता और उस के सहारे प्रजा पर जुल्म करता। अन्धकों ने उस के विरुद्ध अपने पड़ोसी वृष्णि-यादवों से मदद माँगी। वृष्णियों का नेता वासुदेव कृष्ण था। कृष्ण ने कंस को मार डाला। किन्तु जरासन्ध का मुकाबला वे लोग न कर सकते थे। अन्धक और वृष्णि द्वारका की तरफ चले गये, जहाँ उन का एक 'संघ' अर्थात् पचायती राज्य स्थापित हुआ। इस संघ के दो 'संघ मुख्य' एक साथ चुने जाते थे। उग्रसेन एक मुखिया था और वासुदेव कृष्ण दूसरा।

इधर पाडवों ने दक्षिन पचाल के राजा द्रुपद यज्ञसेन की लड़की कृष्णा को स्वयंवर में प्राप्त कर उस से विवाह किया। उन्हों ने राज्य में अपना हिस्सा माँगा, पर कौरव उन्हें कुछ न देना चाहते थे। अन्त में यह ठहरा कि

जमना पार कुरुक्षेत्र के दक्खिन के जंगल को वे बसा लें। वह जंगल तब खांडव वन कहलाता था। उसे जला कर पांडवों ने वहाँ इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया जिस के नाम की याद अब दिल्ली के पुराने किले के पास इन्द्रपत बस्ती में है। इन्द्रप्रस्थ की समृद्धि जल्द बढने लगी। पांडव महत्त्वाकांक्षी थे, चुपचाप न बैठ सके। उन के नये राज्य के दक्खिन लगा हुआ शूरसेन देश था, जहाँ जरासन्ध की तूती बोलती थी। यो जरासन्ध से उन का वैर और वासुदेव कृष्ण से मैत्री हो गई। कृष्ण की सहायता से उन्हों ने जरासन्ध को मार डाला। उस का साम्राज्य टूट गया। मगध के ठीक पूरब का अग देश (मुंगेर-भागलपुर) पहले उस के अधीन था। अब दुर्योधन की सहायता से कर्ण वहाँ का राजा बना। इधर चेदि का राजा शिशुपाल अपने पडोसियो मे प्रबल हो गया।

आर्यों के महत्त्वाकांक्षी राजा दिग्विजय करके राजसूय या अश्वमेध यज्ञ किया करते थे। पांडवो ने भी राजसूय किया। कई पडोसी राजाओं ने खुशी से, कई एक ने डर और दबाव से, उन की शक्ति मानी और उन के यज्ञ में भाग लिया। धृतराष्ट्र के बेटो को अपने भाइयो के विजयोत्सव मे आना पडा। जरासन्ध के मित्र शिशुपाल को कृष्ण से विशेष चिढ़ थी। उन की स्पर्धा यहाँ तक बढ़ी कि उसी यज्ञ मे कृष्ण ने उसे मार डाला। यो पांडवो के एक और पडोसी प्रतिद्वन्द्वी का अन्त हुआ।

कौरवो के मामा गन्धार के शकुनि ने उन्हें पांडवों के पराभव का एक उपाय सुझाया। उस युग के आर्यों में जुआ खेलने का बडा व्यसन था। जुए की चुनौती से मुँह मोडना वैसा ही लज्जास्पद समझा जाता था जैसा युद्ध से। शकुनि और दुर्योधन ने पांडवो को जुए का निमन्त्रण दिया। उस में वे अपना राज्य तक हार बैठे, और उन्हे बारह बरस बनवास और एक बरस अज्ञात वास का दंड मिला।

उन के पीछे दुर्योधन ने अपना पक्ष दृढ किया। पाडव तेरहवें बरस अपने राज्य के पडोस मे मत्स्य देश (आजकल के अलवर) के राजा विराट् के यहाँ आ गये। वह बरस बीतने को था कि कौरवों ने अपने पड़ोसी त्रिगर्त्त देश (जलन्धर-हुशियारपुर-कांगडा जिलो) के राजा के साथ मिल कर मत्स्यो पर धावा

नक्शा ६

किया और उन के डंगर लूट ले चले। पांडवों की सहायता से विराट् ने उन्हें हराया।

उस के बाद पांडवों ने अपना राज्य वापिस माँगा, पर दुर्योधन ने कहा—मैं युद्ध के बिना सुई की नोक बराबर भूमि भी न दूँगा। दोनों पक्षों में युद्ध ठन गया और वह घरेलू आग भभक कर भारत के सब राज्यों में फैल गई। त्रिगर्त का राजा दुर्योधन का मित्र था, और गन्धार का शकुनि उस का मामा था। इन के अतिरिक्त सिन्धु देश का राजा जयद्रथ भी उस का बहनोई था। इन तीनों के दबाव से पंजाब के प्रायः सभी राज्य कौरवों की तरफ हो गये। इसी तरह कर्ण के दबाव से पूरब के राज्य भी। मध्यदेश और गुजरात के राज्य दोनों तरफ बँटे थे। पांडवों की सेनाएँ मत्स्य की राजधानी उपप्लव्य पर जुटने लगीं; कौरवों की सेनाएँ पंजाब के पूरबी छोर और हस्तिनापुर पर जमा होने लगीं। सन्धि की बातचीत विफल होने पर पांडव सेना उन के बीच उत्तर को बढ़ी, और कुरुक्षेत्र पर दोनो तरफ के प्रवाह आ टकराये। अठारह दिन के घमासान युद्ध के बाद पांडवों की जीत हुई। वे कुरु देश के राजा और आर्यावर्त्त के सम्राट् हुए।

रामायण की ख्यात से महाभारत की ख्यात की तुलना करें तो यह स्पष्ट होता है कि इस बीच आर्यों की बस्तियाँ काफी फैल गई थीं। वे पूरब तरफ मगध और अंग तक, और दक्खिन तरफ माहिष्मती और विदर्भ तक जा पहुँची थीं। यों तो महाभारत में और आगे पूरब और दक्खिन के राजाओं के भी नाम दिये हैं, पर छानबीन से पाया जाता है कि वे पीछे जोड़े गये हैं। विदर्भ और अंग इस युद्ध के समय तक आर्यावर्त्त की अन्तिम सीमाएँ थीं (दे० नक्शा ६)।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. दुष्यन्त किस वंश का था और कौन से प्रदेश पर राज करता था?

२. उत्तर और दक्षिण पञ्चाल देश कहाँ हैं? उन की राजधानियों को आधुनिक कौन से स्थान सूचित करते हैं?

३. इक्ष्वाकु से भारत युद्ध तक राजाओं की कुल कितनी पीढ़ियों ने राज किया? रामचन्द्र का समय इक्ष्वाकु से कौन सी पीढ़ी पर है?

४ तक्षशिला और पुष्करावती को किस ने स्थापित किया ? ये किन प्रदेशों की राजधानियाँ थीं ?

५ महानीरा, सुवास्तु, कुभा, मालिनी और दशार्णा नदियों के आजकल क्या नाम हैं ? ये किन प्रदेशों को सींचती हैं ?

६ राम दाशरथि के आख्यान का ऐतिहासिक तत्त्व लिखिए।

७ निम्न नगरों और देशों को नक्शे में दिखाइए और उन के आधुनिक नाम बताइए—अहिच्छत्रा, हस्तिनापुर, कौशाम्बी, माहिष्मती, अवन्ति, विदर्भ, चेदि, मद्र, मत्स्य और अंग।

अध्याय २

आरम्भिक आर्यों का समाज

§१ वेद—आर्यावर्त्त के आर्यों में वेद नाम का साहित्य प्रचलित था। वेद का अर्थ है ज्ञान। वेद का बड़ा अंश कविता में है। उस में जो एक एक साधारण पद्य होता है उसे ऋच् या ऋचा कहते हैं। जो ऋचाएँ गाने लायक हैं, अर्थात् जो गीतियाँ हैं, उन्हें साम कहते हैं। वेद का कुछ अंश गद्य भी है, और उस गद्य के एक एक सन्दर्भ को यजुर् कहते हैं। ऋचाओं, सामों और यजुओं को मन्त्र भी कहते हैं।

प्रत्येक वेदमन्त्र अर्थात् प्रत्येक ऋचा साम और यजुर् के साथ किसी न किसी ऋषि का नाम जुड़ा हुआ है। बहुत से हिन्दू वेदों को अपौरुषेय मानते हैं। उन का कहना है कि ऋषियों ने वेदों का दर्शन पाया था, वे 'मन्त्रद्रष्टा' थे। आधुनिक और कुछ प्राचीन विवेचक वेदमन्त्रों को बनाने का श्रेय ऋषियों को देते हैं। उन का कहना है कि ऋषि वे प्रतिभाशाली कवि थे, जिन्हों ने ऋचाएँ (और साम तथा यजुर् भी) रचीं।

विश्वामित्र ऋषि
दूसरी शताब्दी ई० पू० के औदुम्बर गण के एक सिक्के पर से

आर्य लोग निरे योद्धा नहीं थे। उन में अपने चारों तरफ की वस्तुओं को ध्यान से देखने और उन के विषय में सोचने-विचारने की उत्कट प्रवृत्ति थी। अपने विचारों को उन्हों ने सुन्दर भाषा में प्रकट किया है। सब से पहला प्रसिद्ध ऋषि विश्वामित्र इक्ष्वाकु से २६ वीं पीढ़ी के समय था। ऋषियों की परम्परा उस के बाद प्रायः चालीस पीढ़ी चलती रही। ऋचाएँ, साम और यजुष् पहले फुटकर रूप में थे। भिन्न-भिन्न ऋषियों के परिवारों या शिष्य-परम्पराओं में उन का संग्रह होता गया। यों उन की संहिताएँ बनीं। संहिता का अर्थ है संकलन या संग्रह।

महाभारत युद्ध के प्रायः दो शताब्दी पहले हमारे देश में लिखने की कला चली। उसी समय आर्यावर्त्त की भाषा के सब उच्चारणों का पूर्ण विश्लेषण कर के कुछ वैज्ञानिक विचारकों ने भारतीय वर्णमाला-पद्धति का "प्रणयन" किया। इस वर्णमाला का आविष्कार संसार के सब से पूर्ण आविष्कारों में से एक था। अभी तक उच्चारणों का इतना पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण और किसी वर्णपद्धति में नहीं है।

लिखना आरम्भ होने से साहित्य के संकलन की प्रवृत्ति और बढ़ी तथा सब प्रकार के ज्ञान को पुष्टि मिली। महाभारत युद्ध के समय कृष्ण द्वैपायन मुनि हुए। उन्हों ने अन्तिम बार अपने समय तक के समूचे 'वेद' अर्थात् ज्ञान की संहिताएँ बना दी, जो आज तक चली आती हैं। उन्हों ने ऋचाओं की एक संहिता बनाई जिस में ऋचाओं को छाँट कर ऋषि-वार और विषय-वार बाँट दिया। इसी तरह सामों और यजुषों की अलग-अलग संहिताएँ कर दीं। ये तीनों ऋक्संहिता सामसंहिता और यजुःसंहिता मिल कर "त्रयी" कहलाईं। त्रयी हमारे साहित्य का सब से पुराना संग्रह है। ऋक्-संहिता में कुल १०१७ सूक्त या कविताएँ हैं जो दस मंडलों में बँटी हैं। 'सूक्त' का अर्थ है अच्छी उक्ति, सुभाषित। प्रत्येक सूक्त में ३-४ से ले कर ५०-१०० तक ऋचाएँ हैं। साम-संहिता, ऋक्संहिता की लगभग तिहाई है, और उस में बहुत से साम ऐसे हैं जो ऋक्संहिता में आ चुके हैं। यजुःसंहिता और भी छोटी है, और वह कुल ४० अध्यायों में बँटी है। दूसरे प्रकार के कुछ विविध मन्त्रों को कृष्ण द्वैपायन ने

त्रयी से अलग अथर्वसंहिता में संगृहीत किया, और फिर उसी तरह सूतों के आख्यानों की भी एक संहिता बनाई जिस का नाम हुआ पुराणसंहिता। त्रयी के साथ अथर्ववेद और पुराणवेद (अथवा इतिहासवेद) को मिला कर पाँच वेद बन गया। वेद अर्थात् ज्ञानकोश का इस प्रकार बँटवारा करने के कारण कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास अर्थात् वेद विभाजक कहलाये।

आजकल जिसे हम हिन्दी की खड़ी बोली कहते हैं, वह उसी प्रदेश की ठेठ बोली है, जहाँ हस्तिनापुर और उत्तर पञ्चाल के प्राचीन राज्य थे (दे० नक्शा ५)। ऋग्वेद भी उसी प्रदेश की पुरानी भाषा में है। अधिकतर ऋषि भरत वंश के और उत्तर पञ्चाल तथा हस्तिनापुर राज्यों के ही थे।

वेद का मुख्य अंश कविता ही है और उस कविता में भी मुख्यतः देवताओं की स्तुति और प्रार्थना है। पर उस से गणित आदि का अच्छा ज्ञान भी सूचित होता है, जिस का विकास लिखना आरम्भ होने के बाद ही हो सकता था।

§ ७. आर्यों का सामाजिक संगठन—आर्य लोग पशुपालक, कृषक और योद्धा थे। वे ऐसे छोटे छोटे समूहों में रहते जो परिवार के नमूने पर बने हुए थे। उन समूहों को वे 'जन' कहते थे। जन के सब आदमी 'सजात' यानी एक ही वंश के कहे जाते थे। एक जन के सब सजात मिला कर 'विश' अर्थात् प्रजा कहलाते। कृषक होने के कारण प्रत्येक जन की विश किसी न किसी प्रदेश में प्रायः बस चुकी थी, किन्तु कोई कोई विश 'अनवस्थित' अर्थात् खाना-बदोश भी थी। प्रत्येक जन की कई ग्वालें या टुकड़ियाँ होतीं जो 'ग्राम' कहलाती थीं। ग्राम शब्द का असल अर्थ है जत्था या समुदाय। बाद में एक एक ग्राम जहाँ बस गया, वह बस्ती भी ग्राम कहलाने लगी। वेद सूक्तों में [illegible] ग्रामों का हाल भी मिलता है। ग्राम का नेता 'ग्रामणी' कहलाता था। लड़ाई के लिए जन के सब लोग ग्रामवार जमा होते थे, उन का वह ग्रामवार जमाव 'संग्राम' कहलाता था। उसी से 'संग्राम' का अर्थ युद्ध हो गया। समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने [illegible] पर [illegible] था। सामान्य लोग [illegible] [illegible] कहलाते थे। [illegible] [illegible] थे। [illegible] का उल्लेख नहीं मिलता। [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]

और फरसा मुख्य शस्त्र थे। बाण या शर प्रायः सरकंडे के होते थे और उन की अनी, सींग हड्डी या धातु की।

युद्ध आर्यों के जनों मे परस्पर भी होते थे और 'दासों' अर्थात् पुराने निवासियों के साथ भी। 'दास' आर्यों से भिन्न रंग के, काले, होते थे और उन की नाक नुकीली और उभरी न होती थी। इस कारण आर्य लोग उन्हे 'अनासः' अर्थात् बिना नाक के कहते थे।

एक-एक ग्राम का मुखिया जैसे ग्रामणी कहलाता था, वैसे ही सारे जन का राजा। वह जन या विशः का राजा होता था न कि भूमि का। उस का राज्य 'जानराज्य' अर्थात् जन का मुखियापन कहलाता था और वह एक किस्म का "ज्यैष्ठ्य" यानी जेठापन या नेतृत्त्व था, न कि स्वामित्व।

§३. वैदिक आर्यों का आर्थिक जीवन—पशुपालन और कृषि आर्यों की मुख्य जीविकाएँ थीं। कृषि के लिए सिचाई भी होती थी। खादों का प्रयोग शायद न होता था, उस समय बागबानी भी शुरू न हुई थी। खेती की उपज मुख्य कर अनाज थे। आर्य लोग कपास को न जानते थे। उस समय संसार की दूसरी जातियों को भी प्रायः उस का पता न था। लोगों का धन मुख्यतः उन के पशुओं के रेवड़ और दास-दासियाँ होती थीं। भूमि भी पारिवारिक सम्पत्ति मे गिनी जाती थी, पर उस के खरीदने-बेचने का रिवाज नही के बराबर था। दाय-भाग से, जंगल साफ करने से या नये देश खोजने या जीतने से नयी भूमि पाई जा सकती थी। युद्ध मे जीती भूमि राजा की न होती, वह सारे जन मे बँट जाती थी। जंगम सम्पत्ति का क्रय-विक्रय या विनिमय काफी था। गाय तो प्रायः सिक्के का काम देती थी; चीजों के दाम गौवों में गिने जाते थे।

निष्क नाम का एक सोने का सिक्का भी चलता था; पर शुरू मे तो वह भूषण था और बाद मे प्रायः दान या खंडनी (ransom) देने मे उस का अधिक जिक्र आता है, व्यापार में नहीं। ऋण देने-लेने की प्रथा थी, और प्रायः जुए में हारना ऋण लेने का कारण होता था। ऋण न चुकाने से दास बनना पड़ता था। दास-दासियाँ जरूर थीं, पर लोग उन पर निर्भर न थे;

सब साधारण काम जन के स्वतन्त्र गृहस्थ स्वयं करते थे। कुछ शिल्प भी थे। बढ़ई या रथकार का काम बहुत ऊँचा माना जाता था क्योंकि युद्ध और खेती के लिए रथ, हल और गाड़ियाँ वही बनाता था। उसी तरह लोहार (कर्मार) की भी प्रतिष्ठा थी, पर कई विद्वानों का कहना है कि वह ताँबे से ही हथियार बनाता था, अर्थात् आर्य लोग तब लोहे को न जानते थे। चमड़ा रँगने और, ऊन, सन, क्षौम (अलसी के रेशे) आदि का कपड़ा बुनने के काम भी ऊँचे गिने जाते थे। स्त्रियाँ चटाइयाँ भी बुनतीं थीं। प्रत्येक ग्राम में कृषकों के साथ सूत, रथकार, कर्मार (लोहार) आदि भी होते थे, जिन की हैसियत साधारण लोगों से ऊँची—प्रायः ग्रामणी के बराबर—मानी जाती थी। थोड़ा व्यापार भी था। नदियों में तो नावें खूब चलती ही थीं, शायद वे ईरान की खाड़ी में भी किनारे के साथ साथ जाती थीं।

§ ८ **राज्य-संस्था**—राजनीतिक रूप में संगठित जन को "राष्ट्र" कहते थे। राजा राष्ट्र का मुखिया होता था। वह मनमानी न कर सकता था। विशः अर्थात् प्रजा राजा का "वरण" करती थीं। वरण का यह अर्थ था कि या तो वे उसे चुनती थीं, या यदि वह पिछले राजा का बेटा हो तो उस के राजा बनने की स्वीकृति देती थीं। वरण होने पर राज्याभिषेक होता था, जिस में राजा विशः के साथ 'प्रतिज्ञा' अर्थात् इकरार करता था, उसे राज्य की थाती सौंपी जाती और किरीट (मुकुट) पहनाया जाता था। वरण उस की आयु भर के लिए होता था, पर यदि वह 'प्रतिज्ञा' तोड़ दे, तो उसे निकाला जा सकता था। निर्वासित राजा का कभी-कभी फिर भी वरण हो जाता था।

राजा एक 'समिति' की सहायता से राज्य करता था। राज्य की असल बागडोर उसी समिति के हाथ में रहती थी। समिति सम्पूर्ण विशः की संस्था थी। उस में कौन-कौन जाते थे, यह कहना कठिन है। ग्रामणी, सूत, रथकार और कर्मार उस में अवश्य शामिल होते थे। राजा का वरण, निर्वासन, पुनर्वरण सब समिति करती थी। उस का एक 'पति' या 'ईशान' होता था। राजा भी समिति में जाता था। समिति के अतिरिक्त 'सभा' नाम की एक संस्था भी थी, जो शायद समिति से छोटी थी। सभा ही राष्ट्र का मुख्य न्यायालय थी। प्रत्येक

ग्राम में भी अपनी-अपनी सभा होती थी। उन सभाओं में जवान लोग भी भाग लेते थे। आवश्यक कार्यों के बाद सभा में विनोद की बातें भी होती थीं और तब वह गोष्ठी का काम देती थी। समिति के सदस्य 'राजकृतः' अर्थात् राजा के कर्ता-धर्ता होते थे। वे राजा भी कहलाते थे। कई राष्ट्र ऐसे भी थे जिन में एक राजा न होता था; समिति के सदस्य मिल कर ही राज्य करते थे।

§५. **धर्म-कर्म**—आर्यों का धर्म-कर्म आरम्भ में बहुत सरल था। पीछे पुरोहितों की चेष्टाओं से कुछ पेचीदा हो गया। देव-पूजा और पितृ-पूजा उस के मुख्य चिह्न थे। वह पूजा यज्ञ में आहुति देने से होती थी। यज्ञों के लिए प्रत्येक गृहस्थ के घर में सदा अग्नि उपस्थित रहता था। नित्य की पूजा में देवताओं की मूर्त्तियाँ तब नहीं थीं। इन्द्र मुख्य देवता था। प्रकृति की बड़ी बड़ी शक्तियों में आर्य लोग दैवी अभिव्यक्ति देखते थे, और उन्हों शक्तियों की उन्हों ने भिन्न-भिन्न देवताओं के रूप में कल्पना की थी। उदाहरण के लिए द्यौः अर्थात् आकाश एक देवता है; उसी तरह पृथिवी भी; और 'द्यावापृथिवी' का जोड़ा प्रायः इकट्ठा गिना जाता है। वरुण भी द्यौः का एक रूप है, उस की ज्योति का सूचक। वह धर्मपति है; लोगों के अन्तरात्मा की बात जानता है। उस के हाथ में पाश रहता है। वही नदियों और समुद्र का भी देवता है। द्यावापृथिवी और वरुण की अपेक्षा इन्द्र की महिमा बहुत बड़ी है। वैदिक देवताओं में वही मुख्य है। वह वृष्टि का अधिष्ठाता है, और उस के हाथ में बिजली का वज्र है जिस से वह वृत्र अर्थात् अनावृष्टि के दैत्य को मारता है।

सूर्य के भिन्न-भिन्न गुणों से कई देवताओं की कल्पना हुई है। प्रभात समय 'उषा' एक सुन्दरी के रूप में प्रकट होती है, उस का प्रेमी सूर्य उस के पीछे-पीछे आता है। उदय होता हुआ सूर्य ही 'मित्र' है, वह मैत्रीपूर्ण देवता मनुष्यों को नींद से उठाता और काम में जुटाता है। सूर्य पूरा उदय हो कर अपनी किरणों से जब जगत् को जीवन देता है, तब वही 'सविता' है। जैसे मित्र उस के तेज का सूचक है और सविता जीवन-शक्ति का, वैसे ही पूषन् उस की पोषक शक्ति का और विष्णु उस की क्षिप्र गति का, इत्यादि। अग्नि और सोम की महिमा केवल इन्द्र से कम है। अग्नि के तीन रूप हैं, सूर्य, विद्युत्

और अग्नि। 'सोम' वनस्पति भी है, और चन्द्रमा भी। प्रकृति में जो कुछ भयङ्कर और घातक है, उस सब की जड़ में 'रुद्र' है। किन्तु रुद्र भी शान्त होने पर शिव अर्थात् मंगल रूप धारण कर लेता है। आर्यों की देव कल्पना मधुर और सौम्य थी, घिनौने डरावने या अश्लील देवताओं को उस में जगह न थी। उस में कवि के स्निग्ध हृदय और अन्तर्दृष्टि की झलक है।

देवताओं की तृप्ति यज्ञ में आहुति या बलि देने से होती थी। दूध, घी, अनाज, मांस और सोमरस (एक लता का रस) इन सभी वस्तुओं की आहुति दी जाती थी। आहुतियों के साथ ऋचाएँ पढ़ी जाती थीं और साम गाये जाते थे। ऐसा आख्यान है कि राजा वसु के समय ऋषियों का एक सम्प्रदाय उठा, जिस का मत यह था कि यज्ञ में मांस के बजाय अन्न की ही आहुति दी जाय। वह सम्प्रदाय भक्ति पर भी जोर देता था।

बाद में यज्ञों का आडम्बर बहुत बढ़ गया, और धनी लोग बड़े-बड़े यज्ञ पुरोहितों से कराने लगे। किन्तु साधारण आर्य अग्नि में अपनी दैनिक आहुति स्वयं दे लेता था। देवों के अतिरिक्त वह पितरों का तर्पण भी स्वयं करता था।

§६ सामाजिक जीवन, खान पान, वेश-भूषा, विनोद आदि—आर्यों का सामाजिक जीवन भी उन के जीवन की अन्य बातों की तरह सरल था। समाज में ऊँचनीच कुछ जरूर थी, पर विशेष भेद न थे। रथी और महारथी की हैसियत साधारण योद्धा से कुछ ऊँची थी। तो भी रथियों के वे 'क्षत्रिय' परिवार साधारण विश के ही अंग थे। आर्य और दास का बड़ा भेद था, पर आर्यों और दासों में भी परस्पर सम्बन्ध हो ही जाते थे।

राजा भरत के समय दीर्घतमा नाम का एक ऋषि था। कहते हैं उस से पहले विवाह-संस्था प्रायः नहीं थी, उस ने उसे स्थापित किया। तब से विवाह एक पवित्र और स्थायी सम्बन्ध माना जाने लगा। युवक-युवती को अपना साथी चुनने की स्वतन्त्रता रहती थी। विनोद के कार्यों और स्थानों में उन्हें 'अभ्ययन' (परस्पर मिलने) और 'अभिमान' (मनाने, रिझाने) के यथेष्ट अवसर मिलते थे। राजपुत्रियों के स्वयंवर होते थे। विधवाएँ फिर विवाह कर

लेती थीं। स्त्रियाँ हर काम में पुरुषों का साथ देती थीं। वेद के ऋषियों में भी लोपामुद्रा आदि अनेक स्त्रियों की गिनती है।

खान-पान बहुत सादा था। दूध, दही, घी, अनाज, मांस मुख्य भोजन थे। वेश भी बहुत सादा था। ऊपर नीचे के लिए उत्तरीय और अधोवस्त्र होता था। उष्णीष अर्थात् पगड़ी का रिवाज था, जिसे स्त्रियाँ भी पहनती थीं। पुरुष स्त्री दोनों सोने के हार, कुंडल, केयूर आदि पहनते थे। पुरुष प्रायः केशों का जूड़ा बनाते या काकपक्ष (कानों पर लटकते केश) रखते थे। स्त्रियाँ वेणी बनाती थीं। मिलजुल कर विनोद और व्यायाम खूब होते थे। रथों और वाजि यानी घोड़े की दौड़ का विशेष प्रचार था। उस पर बाजी भी लगाते थे। जुआ खेलने का व्यसन काफी था। संगीत, वाद्य और नृत्य का शौक भी बहुत था। आर्य लोग सत्य का बहुत मान करते थे और झूठ से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। जब छोटा बड़े के सामने जाता तब अपना नाम ले कर प्रणाम करता था। बड़ों के नाम का जिक्र उन के गोत्र से किया जाता और बोलने में अदब-कायदे की बड़ी पाबन्दी रक्खी जाती थी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. ऋचा, सूक्त और संहिता का क्या अर्थ है? ऋक् संहिता में लगभग कितने सूक्त हैं?

२. मुनि कृष्ण द्वैपायन को 'वेदव्यास' क्यों कहते हैं?

३. वैदिक समाज की बनावट कैसी थी? संक्षेप से लिखिए।

४. वेदों के ऋषि मुख्यतः किस वंश के थे और वे किस प्रदेश में हुए? उन के समय का इक्ष्वाकु से पीढ़ी बता कर निर्देश कीजिए।

५. 'जन' 'विशः' 'ज्यैष्ठ्य' और 'जानराज्य' शब्दों से आप क्या समझते हैं?

६. 'घूमते-फिरते ग्रामों' और 'संग्राम' का क्या अभिप्राय है?

७. वैदिक राज्यसंस्था में राजा का क्या स्वरूप था? 'समिति' का महत्त्व क्या था? और 'राजकृतः' कौन होते थे?

८. आरंभिक आर्यों के समाज में स्त्रियों की क्या स्थिति थी?

३. महाजनपद पर्व

अध्याय १

जनपद और साम्राज्य

§१ **जनपदों का उदय**—महाभारत युद्ध के बाद हस्तिनापुर का भारत राजवंश [२ १ §§ ३, ५] वहाँ से उठ कर वत्स देश की राजधानी कौशाम्बी में चला गया। आर्य लोग अब गोदावरी के काँठे में विदर्भ (बराड) से और आगे बढ़ने लगे। वहाँ उन के दो नये राज्य मूळक और अश्मक स्थापित हुए। मूळक की राजधानी 'मूळक का प्रतिष्ठान' (आधुनिक पैठन) उपरले गोदावरी काँठे में थी, अश्मक और नीचे था। उस के पूरब कलिंग (उड़ीसा) था। विदर्भ, मूळक और अश्मक मिल कर बाद का महाराष्ट्र बना। मूळक और अश्मक के परे आन्ध्र, शबर और मूचिक (मूषिक) नाम की अनार्य जातियाँ रहती थीं, जिन से आर्यों का सम्पर्क था। आन्ध्र लोग तब आजकल के आन्ध्र देश (तेलगाना) के उत्तरी छोर पर तेल नदी पर रहते थे। बस्तर की शबरी और हैदराबाद की मूसी नदी शबरों और मूचिकों की याद दिलाती हैं (दे० नक्शा ७)।

इसी समय आर्य राज्यों के अन्दर ही अन्दर एक भारी परिवर्तन हुआ। पहले जो राज्य जनों के थे [२ २ § २], अब वे जनपदों के हो गये। जिन प्रदेशों पर जन बस गये थे, वही उन के जनपद कहलाये। जैसे कुरु जन जहाँ बसा वह कुरु जनपद और मद्र जन जहाँ बसा वह मद्र जनपद हुआ। अब 'जान राज्य' के बजाय 'जानपद राज्य' होने लगे। मद्र जनपद में अब जो कोई बस जाता वह मद्रक कहलाता और मद्र राज्य की प्रजा हो सकता था। यही बात और जनपदों में भी थी। उन जनपदों में अब शिल्प और व्यापार भी बढ़ने लगा, जिस से नगरियाँ स्थापित होने लगीं।

भारतवर्ष
महाजनपद युग में
मील
पुष्कलावती
तक्षशिला
शाकल
शिविपुर
रोरुक
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
मत्स्य
कौशाम्बी
उज्जयिनी
विदिशा
भरुकच्छ
माहिष्मती
सुप्पारक
प्रतिष्ठान
कुशिनार
वैशाली
पाटलिपुत्र
चम्पा
ताम्रलिप्ति
दन्तपुर
ताम्रपर्णी
राजपथ
जलपथ
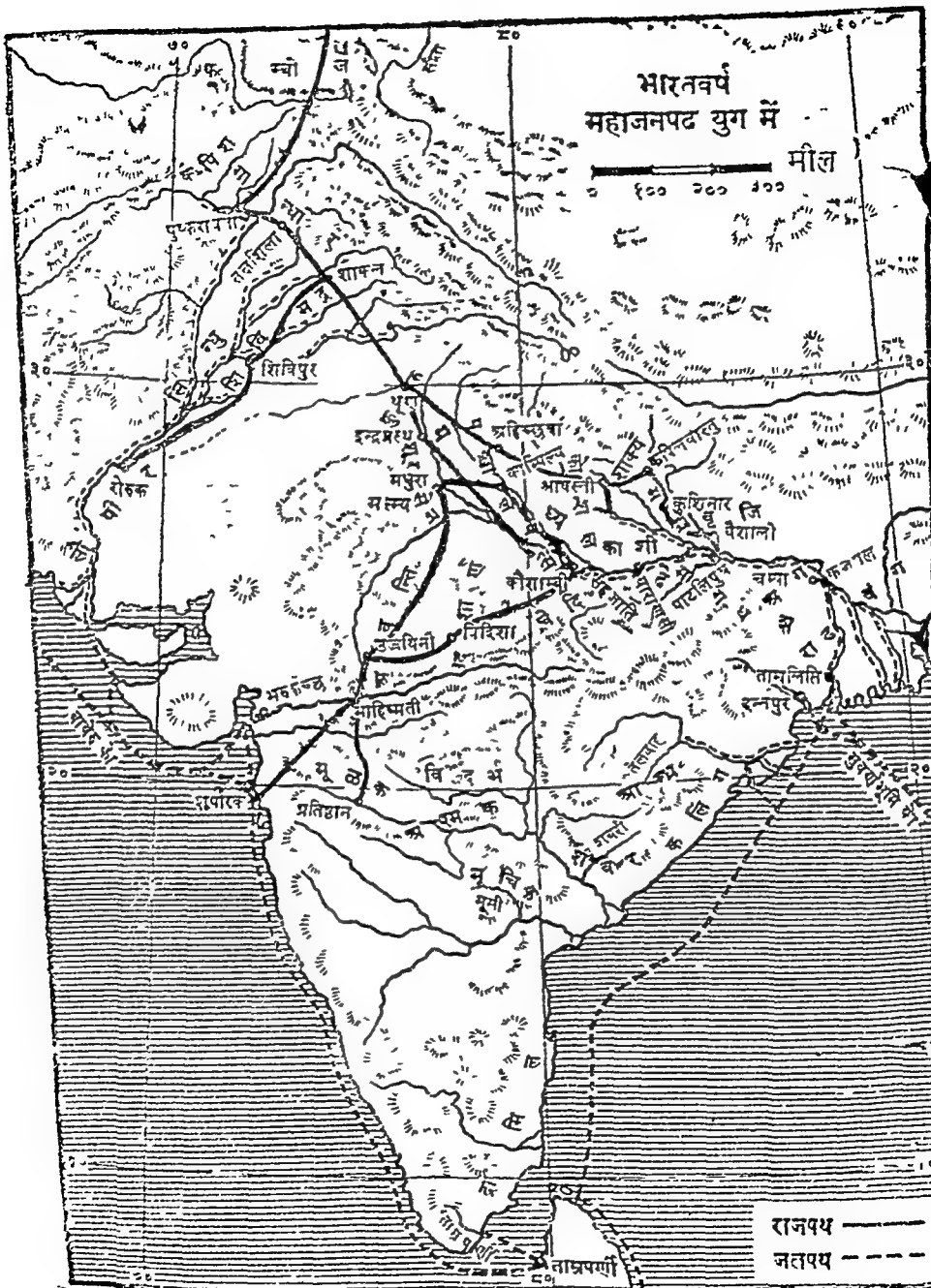
§२. सोलह महाजनपद—कुछ समय बाद कुछ जनपदों ने दूसरों का प्रदेश जीत कर और कुछ ने आपस में मिल कर अपनी भूमि बढ़ा ली। वे महाजनपद कहलाये। महाजनपदों का काल आठवीं-सातवीं शताब्दी ई० पू० से पाँचवीं शताब्दी ई० पू० तक है। इन का हाल हम विशेष कर बौद्ध और जैन ग्रंथों से जानते हैं। इन ग्रन्थों में सोलह महाजनपदों के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं, यहाँ तक कि "सोलह महाजनपद" उस युग में एक मुहावरा सा बन गया था। उन सोलह में ये आठ जोड़ियाँ था—(१) अंग मगध (२) काशी-कोशल (३) वृजि मल्ल (४) चेदि-वत्स (५) कुरु पंचाल (६) मत्स्य शूरसेन (७) अश्मक अवन्ति और (८) गन्धार कम्बोज।

यह गिनती पूरब से शुरू होती है। अंग की राजधानी चम्पा (दे० नक्शा ७) या मालिनी उस समय भारत की समृद्ध नगरियों में से थी। भागलपुर शहर का पच्छिमी हिस्सा चम्पानगर, जो चम्पा नाला या चम्पा नदी के किनारे बसा है, ठीक उसी जगह है। मगध की राजधानी राजगृह थी। वहाँ उस समय काशी से निकले शिशुनाग वंश के राजा राज्य करते थे।

सोलह महाजनपद का एक आहत सिक्का (दुर्गाप्रसाद संग्रह में)

काशी राष्ट्र की राजधानी वाराणसी भारतवर्ष भर में सब से समृद्ध और शिल्प व्यापार का सब से बड़ा-चढ़ा केन्द्र थी। कोशल का साकेत (अयोध्या) नगर भी प्रसिद्ध था, पर इस युग में कोशल की राजधानी अचिरवती (राप्ती) नदी के तट पर श्रावस्ती थी, जिस के खँडहर अब गोंडा-बहराइच जिलों की सीमा पर सहेठ-महेठ गाँवों में हैं।

मल्ल और वृजि राष्ट्र क्रमश कोशल के पूरब थे (दे० नक्शा ७)। ये दोनों संघ राष्ट्र अर्थात् पंचायती राज्य थे। मल्लों का संघ आधुनिक गोरखपुर देवरिया ज़िलों में था। पावा और कुशिनार या कुशिनगर उन के नगर थे। कुशिनगर के अवशेष अब कसिया में हैं (दे० नक्शा ७)।

देवताओं की सभा 'सुधर्मा'—भारहुत स्तूप (शुंग-युग का नृत्त दृश्य)
भारतीय संग्र०, कलकत्ता; भा० पु० वि०]

गन्धार की तरफ, चला जाता था। अश्मक की सीमा अवन्ति से लगती थी, क्योंकि बीच का मूळक राष्ट्र अब उसी में शामिल था।

गन्धार देश की राजधानी तक्षशिला इस युग में विद्या का सब से बड़ा केन्द्र थी। वहाँ बड़े-बड़े "दिशाप्रमुख" अर्थात् जगत्प्रसिद्ध आचार्य रहते थे, और "तीन वेद तथा अठारह विद्याएँ" पढ़ाई जाती थीं। आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य आत्रेयो का गुरुकुल तक्षशिला में ही था। काशी, कोशल, मगध आदि देशों के राजकुमार, सेठों के लड़के और गरीब किसानों के बेटे—सभी तक्षशिला पढ़ने पहुँचते थे। वहाँ के आचार्यों के चरणों में बैठे बिना उस समय भारतवर्ष में कोई मनुष्य पंडित न कहला पाता था। कश्मीर भी गन्धार के अधीन था। पामीर और बदख्शाँ का नाम कम्बोज था, वह भी तब भारत के अन्तर्गत था।

इन महाजनपदों के अलावा कुछ छोटे जनपद भी थे। कोशल के उत्तर शाक्यों का संघ था जिस की राजधानी कपिलवास्तु थी। पच्छिमदक्खिनी पंजाब में शिवि और सिन्धु राष्ट्र थे। आधुनिक सिन्ध का नाम तब सौवीर राष्ट्र था। उस की राजधानी रोरुक (आजकल की रोरी) उस युग की सुन्दर नगरियों में गिनी जाती थी।

दक्खिन की तरफ आन्ध्र राष्ट्र, द्रामिल (तमिळ) राष्ट्र और ताम्रपर्णी द्वीप (सिंहल) से अब आर्यों का सम्पर्क बढ़ा हुआ था। उन में आर्य मुनि और दूसरे आर्य लोग जा-जा कर अपने आश्रम और उपनिवेश बसाते और भरुकच्छ और वाराणसी के व्यापारी जहाज ले कर पहुँचते थे। दूर के नये देशों के विषय में कहानियाँ बन जाती हैं। ताम्रपर्णी के विषय में यह प्रसिद्ध था कि वहाँ यक्षिणियाँ रहती थीं, जो वहाँ भटक कर पहुँचने वाले व्यापारियों को लुभा ले जाती थीं। चम्पा के व्यापारी, पूरब तरफ, बरमा के तट से व्यापार करते थे और उसे वे सुवर्णभूमि कहते थे, क्योंकि उधर से सोना आता था और उस के व्यापार में बड़ा लाभ था। भरुकच्छ से बावेरु अर्थात् बाबुल को भी लोग व्यापार करने जाते थे। वहाँ मोर न होता था, और भारत के व्यापारियों ने पहले-पहल मोर ले जा कर एक-एक हजार कार्षापण में बेचा।

था। भारतवासियों की पहुँच की इस युग में प्रायः यही सीमाएँ थीं।

§३ **महाजनपदों की चढ़ाऊपरी**—इन जनपदों और महाजनपदों की चढ़ाऊपरी का वृत्तान्त भी मनोरञ्जक है। सब से पहले, सातवीं शताब्दी ई० पू० के शुरू में, काशी राष्ट्र ने अपना बड़ा साम्राज्य बना लिया। काशी के बाद कोशल के बढ़ने की बारी आई। दोनों में लम्बा युद्ध चलता रहा। अन्त में कोशल के एक राजा ने काशी को जीत लिया (अन्दाजन ६२५ ई० पू०)*। उस राजा को महाकोशल कह कर याद किया जाता है। उस का बेटा प्रसेनजित् बुद्ध का समकालीन था। उस ने तक्षशिला में शिक्षा पाई थी। प्रसेनजित् का बहनोई मगध का राजा बिम्बिसार था। मगध भी इस समय तक अंग को जीत चुका था। वत्स का राजा उदयन और अवन्ति का राजा प्रद्योत भी बुद्ध के समय में थे। प्रद्योत को उस के सब पड़ोसी "चंड" (डरावना) कहते थे। मगध, कोशल, वत्स और अवन्ति ये चार बड़े राज्य बुद्ध के समय 'मध्यदेश' अर्थात् आर्यावर्त्त के केन्द्र भाग में थे। पाँचवाँ बड़ा राज्य गन्धार का था।

मगध की गद्दी पर राजा बिम्बिसार के बाद उस के बेटे अजातशत्रु के बैठते ही (५५१ ई० पू०) मगध और कोशल में युद्ध ठन गया। तीन बार अजातशत्रु ने प्रसेनजित् को हराया, पर चौथी बार बूढ़े प्रसेनजित् ने उसे कैद कर लिया और उसे अपनी लड़की ब्याह में दे कर छोड़ दिया।

इधर चंड प्रद्योत भी आर्यावर्त्त का चक्रवर्ती होना चाहता था। उस का राज्य मथुरा तक फैला था। उस के और मगध के बीच वत्स का राज्य पड़ता था। वत्सराज उदयन को हाथी पकड़ने का शौक था। वह संगीत में अत्यन्त निपुण था और 'हस्ति-कान्त वीणा' बजा कर हाथियों को काबू कर लेता था। एक बार प्रद्योत ने सीमा पर के जंगल में चिथड़े लपट कर रँगा हुआ काठ का एक हाथी छोड़वा दिया। उदयन उसे पकड़ने पहुँचा। वीणा बजाने पर

* इस प्रसंग में जितनी तिथियाँ दी गई हैं सब बुद्ध के निर्वाण की प्रचलित तिथि ५४४ ई० पू० मान कर।

हाथी उलटी तरफ़ दौड़ा। उदयन ने घोड़े पर पीछा किया। उस के साथी पिछड़ गये। प्रद्योत के कुछ सैनिक हाथी के पेट में और कुछ जंगल में छिपे हुए

वासवदत्ता-हरण
कौशाम्बी से पाया गया शुंग-युग का पकाई मिट्टी का ठिकरा
[भारत-कलाभवन, बनारस]
हथिनी पर आगे वासवदत्ता और पीछे उदयन है। सब से पीछे उदयन का मित्र वसन्तक थैली खोल कर पीछा करने वालों से पीछा छुड़ा रहा है।

थे। उन्हो ने उदयन को पकड़ लिया। प्रद्योत ने अपने कैदी से अपनी लड़की वासवदत्ता को संगीत सिखाने का काम लिया। कुछ दिन बाद युवक और युवती षड्यन्त्र रच कर भाग निकले! पर कैदी उदयन की अपेक्षा दामाद उदयन प्रद्योत के लिए अधिक उपयोगी हुआ और इसी कारण मगध को अब

अवन्ति के लिए अधिक सतर्क होना पड़ा (५५० ई० पू०)। किन्तु पाँच बरस बाद प्रद्योत की मृत्यु हो जाने पर मगध को अवन्ति का डर जाता रहा (५४५ ई० पू०)।

कोशल में प्रसेनजित् के बाद उस का बेटा विरूढक राजा हुआ। जब वह युवराज था तब उस के रिश्तेदार और पड़ोसी शाक्यों ने उस का अपमान किया था, और विरूढक ने उन्हें जड़ से मिटा देने की ठान ली थी। शाक्य वे लोग थे जिन में बुद्ध ने जन्म लिया था। विरूढक तीन बार उन पर चढ़ाई करते करते बुद्ध के समझाने से रुक गया, पर अन्त में बुद्ध ने भी दखल देना व्यर्थ समझा। विरूढक ने कपिलवास्तु पर चढ़ाई कर उसे घेरा और शाक्यों का संहार किया।

उसी तरह अजातशत्रु भी अपना राज्य बढ़ाने के लिए वृजि संघ पर मन लगाये हुए था। जब बुद्ध अपने जीवन में अन्तिम बार राजगृह आये, तब उस ने अपने मन्त्री वर्षकार को उन के पास भेज कर जानना चाहा कि बुद्ध इस बारे में क्या कहते हैं। बुद्ध ने वृजियों की बाबत सात प्रश्न पूछे और तब अपनी सम्मति दी।

§४ सात अपरिहाणि-धर्म—बुद्ध के कहने का सार यह था कि (१) जब तक वृजि लोग अपनी परिषदों में नियम से इकट्ठे होते हैं, (२) जब तक वे एक साथ बैठते, एक साथ उद्यम करते, और एक साथ वृजि-कार्यों (राष्ट्रीय कार्यों) को निबाहते हैं, (३) जब तक वे बाकायदा कानून बनाये बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते और बने हुए नियम का उल्लंघन नहीं करते, (४) जब तक वे अपने 'वृजि धर्म' (राष्ट्रीय नियम और संस्थाओं) के अनुसार मिल कर आचरण करते हैं, (५) जब तक वे अपने वृद्धों (मुखियों) का आदर करते और उन की सुनने लायक बातें सुनते हैं, (६) जब तक वे अपनी कुल स्त्रियों और कुल कुमारियों पर किसी किस्म की जोर-जबरदस्ती नहीं करते, (७) जब तक वे अपने वृजि-चैत्यों (राष्ट्रीय मन्दिरों) का आदर करते और अपने अर्हतों (त्यागी विद्वानों) की रक्षा करते हैं, तब तक उन का अभ्युदय और बढ़ती ही होगी, उन की हानि नहीं हो सकती। बुद्ध ने ये जो सात सिद्धान्त

बताये, ये सात अपरिहाणि-धर्म अर्थात् अवनति न होने (अ-परि हानि) के सात सिद्धान्त कहलाते हैं। राष्ट्रों का अभ्युदय और पतन सदा इन सिद्धान्तों के अनुसार ही होता रहा है।

अजातशत्रु ने समझ लिया कि वह अपनी सैनिक शक्ति से वृजि-संघ को नहीं तोड़ सकता। तो भी उस ने निश्चय किया कि "मैं इन्हें अनीति-मार्ग में फँसा दूँगा"। उस ने अपने गुप्तचरों के षड्यन्त्रों और रिशवत द्वारा उन में फूट डालना शुरू किया और बुद्ध के निर्वाण के चार बरस पीछे वैशाली को जीत लिया (५४० ई० पू०)।

§ ५. पारसी साम्राज्य—भारतवर्ष के पच्छिम में भी आर्यों की कई शाखाएँ रहती थीं। जैसे हमारे पुरखा अपने देश को आर्यावर्त कहते थे, वैसे ही अफगानिस्तान के पच्छिम में जो आर्य रहते थे, वे अपने देश को ऐर्यान अर्थात् ऐर्यों या आर्यों का देश कहते थे। उसी से ईरान शब्द बना है। और आगे पच्छिमी एशिया और यूनान में भी आर्य लोग थे। किन्तु पच्छिमी एशिया, और उसके पड़ोस के देशों में तब तक बाबेरु, मिस्र आदि के सामी (सैमिटिक) और हामी (हैमिटिक) राज्यों का प्रभाव अधिक था। छठी शताब्दी ई० पू० में उन सभी देशों में एक आर्य साम्राज्य स्थापित हो गया। ईरानी आर्यों में पार्स नाम के लोग ईरान की खाड़ी पर रहते थे, उन के कारण उस देश का नाम पारस पड़ गया था।

हमारे यहाँ इस युग में जैसे बुद्ध भगवान् हुए, वैसे ही पूर्वी ईरान में जरथुस्त्र नाम के धर्मसुधारक हुए। पारस में हखामनि नामक पुरुष ने सातवीं शताब्दी ई० पू० में अपना राजवंश स्थापित किया था। उस वंश में दिग्विजयी सम्राट् कुरु (Cyrus)* हुआ (५५८—५२८ ई० पू०)। उस के अधीन समूचा ईरान था। बाबेरु और मिस्र आदि के सैमिटिक और हैमिटिक राज्यों को

* कुरु का नाम यूनानी लोग जैसे लिखते थे उसका अंग्रेज़ी रूप साइरस है उसका मूल उच्चारण कुरुष् है। "कुरुष्" का अन्तिम ष् प्रथमा एकवचन का सूचक जैसा संस्कृत में भी होता है।
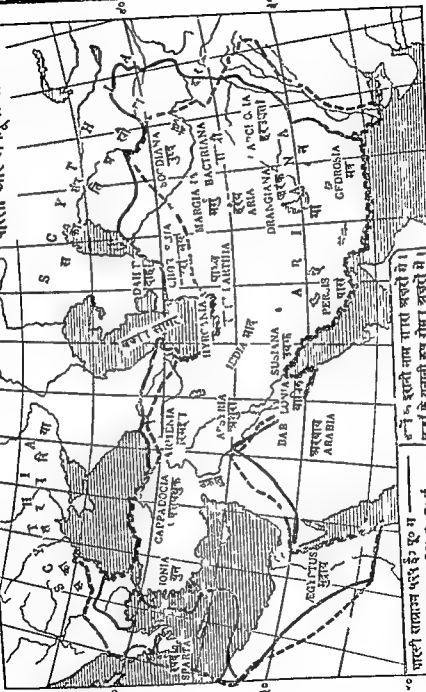
भी उस ने जीत लिया। अरब और समूचा पच्छिमी एशिया भी उस के साम्राज्य में आ गया। यूनान देश पर भी उस का आधिपत्य हुआ। पूरब की तरफ उस ने वंक्षु के काँठे में बलख के इलाके को तथा शकों और मकों के देश को जीत लिया। बलख को हमारे पुरखा वाह्लीक तथा ईरानी लोग बाख्त्री कहते थे। वह भारत और ईरान का साझे का प्रदेश था। शकों की तब तीन बस्तियाँ थीं—एक कास्पियन के तट पर, दूसरी सीर दरिया के काँठे में, और तीसरी शकस्थान मे, जिसे अब सीस्तान कहते हैं। मकों का देश मकरान था। शकस्थान और मकरान भारत और ईरान की सीमा के देश थे। इन्हें जीतने के बाद कुरु ने हिन्दूकुश के दक्खिन उतर कर भारत पर चढ़ाई की। आजकल जो इलाका काफिरिस्तान कहलाता है, उस की राजधानी तब कापिशी थी। कुरु ने कापिशी नगरी उजाड़ दी। उस ने पक्थों का देश भी जीत लिया। कापिशी और पक्थ-देश तब भारत के अन्दर गिने जाते थे। पक्थ लोग आजकल के पख्तो या पश्तो बोलने वाले पठानो के पुरखा थे और क्रोब नदी की दून उन का खास देश था। मकरान के रास्ते कुरु ने सौवीर (सिन्ध) पर भी चढ़ाई करनी चाही, पर उधर से हार कर वह केवल सात साथियो के साथ जान बचा कर भागा।

कुरु के बाद इस वंश मे विश्तास्प* का बेटा दारयवहु (Darius) प्रसिद्ध हुआ (५२१–४८५ ई० पू०)। उस ने भारत के कम्बोज, गन्धार और सिन्धु (यानी डेराजात और सिन्धसागर दोआब) प्रदेश भी जीत लिये। तक्षशिला की तब से अवनति हुई। दारयवहु ने अपना वृत्तान्त पत्थर की चट्टानों पर खुदवाया है। वह बड़े अभिमान से अपने को "ऐर्य ऐर्यपुत्र" (आर्य आर्यपुत्र) कहता है। उस के अधीन २१ प्रान्त थे, जिन मे से प्रत्येक का शासक क्षथ्रपावन् या क्षथ्रप् (क्षत्रप) कहलाता था। सिन्धु प्रान्त से उसे सब से अधिक आमदनी होती थी, जो उस के यहाँ सोने के रूप में पहुँचती थी।

---

* विश्त = विंशति, बीस; अस्प = अश्व, घोड़ा। पुराने ईरानी शब्द संस्कृत से कितने मिलते-जुलते हैं!

पारसी साम्राज्य के बराबर बड़ा कोई साम्राज्य इस से पहले संसार में स्थापित न हुआ था। भारत के जो इलाके उस के अधीन हुए, वे लगभग ४२५ ई० पू० तक स्वतन्त्र हो गये। पारसी साम्राज्य प्राय सौ बरस और बना रहा।

६ मगध का पहला साम्राज्य (५५०—३६६ ई० पू०)—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, उत्तर भारत के जिस भाग में आजकल पढ़ने लिखने

मगध का एक रथी योद्धा
सन् १९३४ में पटना की नाली का खुदाई में जिस गहराई पर काली मिट्टी का यह टिकरा पाया गया है, उस से सिद्ध होता है कि यह मगध के पहले साम्राज्य के समय का है। असल परिमाण। [पटना संग्र०]

की भाषा हिन्दी है, प्राय उसी को प्राचीन लोग 'मध्यदेश' कहते थे। छठी

शताब्दी ई० पू० के उत्तरार्ध में उस में मगध की तूती बोलने लगी। बिम्बिसार के समय तक मगध ने अंग देश को मिला लिया था। अजातशत्रु के समय वह कोशल को नीचा दिखा चुका और वृजि संघ का राज्य छीन चुका था। उस के मुकाबले में तब केवल अवन्ति बाकी था। अजातशत्रु का पोता राजा अज उदयी हुआ (अन्दाजन ४८६—४६७ ई० पू०)। मगध के राज्य में मिथिला भी शामिल हो जाने से उस की पुरानी राजधानी राजगृह एक कोने में पड़ गई थी। इसलिए, उदयी ने गंगा और सोन के संगम पर पाटलिपुत्र नगरी की स्थापना की, जो आगे चल कर संसार भर में प्रसिद्ध हुई। पाँडर (पाटलि) पेड़ वहाँ अधिक होने से उस का यह नाम पड़ा। वही आजकल का पटना है। उदयी ने अवन्ति का भी पराभव किया और उसे अपने अधीन कर लिया। मध्यदेश के और सब जनपद इस से पहले या पीछे मगध की छत्रछाया में आ गये। उदयी के बेटे नन्दिवर्धन (अन्दाजन ४५८—४१८ ई० पू०) और पोते महानन्दी (अन्दाजन ४०६—३७४ ई० पू०) के समय यह साम्राज्य और भी बढ़ गया। नन्दिवर्धन ने कलिंग (उड़ीसा) को भी जीत लिया। उस का प्रभाव भारत के उत्तर-पच्छिमी छोर तक फैला और गन्धार, कपिश, पक्थ और सिन्ध को पारसी साम्राज्य से स्वतन्त्र कराने में सहायक हुआ। पच्छिमी गंधार के पाणिनि नामक विद्वान् का पाटलिपुत्र में राजा नन्द की सभा में जाना प्रसिद्ध है। वह नन्द नन्दिवर्धन ही प्रतीत होता है।

§७. पांड्य, चोल, केरल और सिंहल राष्ट्रों की स्थापना— इधर एक और बड़ी प्रक्रिया इस समय जारी थी। दक्खिन में अश्मक के और आगे, भारत के अन्तिम छोर तक, आर्य बस्तियाँ और राज्य स्थापित हो गये। पांडु नाम के लोग पंजाब या मथुरा (मथुरा) में रहते थे। उन की एक शाखा ने भारत के अन्तिम दक्खिनी कोने में जा कर एक नयी मथुरा बसायी जो अब मदुरा कहलाती है। वह नया राज्य पांड्य कहलाया। पांड्य के पच्छिम, समुद्र-तट पर, चेर राज्य था, और पांड्य के उत्तर चोल। चेर का ही दूसरा रूप केरल है। चेर और चोल राज्य आर्य प्रवासियों ने स्थापित किये या द्राविडों ने सो नहीं कहा जा सकता।

लंका या ताम्रपर्णी द्वीप में भी उत्तर से आर्यों ने जा कर एक नया उपनिवेश बसाया। उस का वृत्तान्त एक मनोरञ्जक कहानी में गुँथ गया है। वह कहानी यों है। कलिंग देश की एक राजकुमारी वंग (पूरबी बंगाल) के राजा को ब्याही थी। उन के एक अत्यन्त रूपवती कन्या हुई जो बड़ी निडर भी थी। वह एक बार घर से अकेली भाग कर व्यापारियों के एक सार्थ (काफिले) के साथ वंग से मगध को चल दी। रास्ते में लाड देश (राढ अर्थात् पच्छिमी बंगाल) के जंगल में एक सिंह उसे उठा ले गया। उस युवती से उस सिंह के सिंहबाहु नाम का एक पुत्र और सिंहवल्ली नाम की कन्या हुई। सिंहबाहु ने बड़े हो कर सिंहपुर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। उस का बेटा विजय बड़ा क्रूर था। प्रजा के कहने से पिता ने उसे देसनिकाला दे कर सात सौ साथियों के साथ नाव पर बैठा कर छोड़ दिया। "दिशामूढ" हो कर उस की नाव कोंकण में शूर्पारक पट्टन (मुम्बई के उत्तर आजकल के सोपारा) पर जा लगी। वहाँ के लोगों ने उन का स्वागत किया, पर वे भी विजय के साथियों से ऊब गये। उसी नाव पर वह मंडली फिर रवाना की गई और लंका पहुँची। वहाँ तब यक्ष लोग राज्य करते थे। विजय ने यक्ष राजकुमारी कुवेणी से विवाह किया, पर पीछे उसे त्याग दिया। तब उसने मदुरा के पाण्ड्य राजा की कन्या को ब्याहा और ताम्रपर्णी नगरी बसा कर अड़तीस बरस धर्म से राज्य किया। उस के साथियों ने वहीं अनुराधपुर, उज्जयिनी आदि नगरियाँ बसाई। ये लोग सिंहपुर से आये थे, इस कारण इस द्वीप का नाम सिंहल पड़ा, जो अब तक चला आता है।

इस कहानी में चाहे जितना अंश सच न हो, परन्तु इस में सन्देह नहीं कि पाण्ड्य आदि बस्तियों की अपेक्षा सिंहल में आर्यों की बहुत बड़ी संख्या पहुँची, क्योंकि पुराने पाण्ड्य, चेर और चोल राष्ट्रों में जहाँ अब द्राविड भाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ सिंहल की भाषा आर्य है। इस प्रकार लगभग ४०० ई० पू० तक आर्य लोग भारतवर्ष के अन्तिम छोरों तक फैल गये और दूसरी जातियाँ पूरी तरह उन के प्रभाव में आ गईं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. जनों से महाजनपद किस प्रकार बने? सोलह महाजनपदों के नाम और उन की स्थिति बताइए।

२. ऐसे महाजनपदों का परिचय दीजिए जिन में सघराज्य रहा?

३. साम्राज्य-निर्माण के लिए महाजनपदों में कैसी होड़ चलती थी? उदाहरण दीजिए।

४ वृजि सङ्घ को लक्ष कर बुद्ध द्वारा कहे राष्ट्रों की उन्नति के सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।

५ अलक्सान्दर से पहले भारत भूमि के किस किस अंश पर किन किन विदेशी का आक्रमण हुआ और उस ने कहाँ तक सफलता पाई?

६ सिंहल में आर्य उपनिवेश बसने की कथा लिखिए।

अध्याय २

महाजनपद युग का भारतीय जीवन

§ १. **वर्णश्रम का उदय**—वेद-सहिताएँ बनने के बाद यज्ञों में उन के मन्त्रों का प्रयोग करने के लिए 'ब्राह्मण' नाम के गद्य-ग्रन्थ बने। उन के जमाने को उत्तर वैदिक काल अर्थात् पिछला वैदिक ज़माना कहते हैं। आर्यों का समाज और धर्म तब पहले से अधिक जटिल हो चला था। उस समाज में भिन्न-भिन्न दर्जों का भेद प्रकट होने लगा था। जो रथ में बैठने वाले क्षत्रिय सरदार थे, वे पहले ही साधारण लोगों से कुछ ऊँचे गिने जाते थे। उन्हीं के नमूने पर मन्त्र पढ़ने वाले ब्राह्मणों का भी अब एक अलग सा वर्ग दिखाई देने लगा। बाकी जो साधारण 'विशः' बचे, वे वैश्य अर्थात् जनसाधारण कहलाने लगे। बहुत से दास लोग भी आर्यों के समाज में मिल गये थे; वे शूद्र कहलाये। दासों के प्रति जो घृणा का भाव था वह शूद्रों के प्रति भी (परन्तु कुछ दर्जे कम) बना रहा। वे आर्यों से भिन्न वर्ण—यानी रंग—के थे।

वर्ण शब्द आर्यों के विभिन्न वर्गों के लिए भी बरता जाने लगा था।

किन्तु उस समय के वर्णों के बीच कोई बाँध न बँधा था। तीन वर्णों के आदमी आसानी से एक से दूसरे वर्ण में चले जाते थे। चार आश्रमों अर्थात् मनुष्य-जीवन के चार विभागों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास—का विचार पहले-पहल उत्तर वैदिक काल में ही परिपक्व हुआ। चौथा आश्रम केवल ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानों के लिए था।

§ ७ **उपनिषदों का तत्त्वचिन्तन**—यज्ञों के कर्मकाण्ड का आडम्बर इस युग में बहुत बढ़ गया था। किन्तु आरण्यकों अथवा वानप्रस्थों अर्थात् जंगल में रहने वाले मुनियों के आश्रमों में, जो दार्शनिक विचार के केन्द्र थे, उस कर्मकाण्ड के विरुद्ध एक लहर उठी। उन्हीं आश्रमों में अब उपनिषद्-ग्रन्थों की रचना हुई। उपनिषदों ने सीधे शब्दों में कहा कि "ये यज्ञ फूटी नाव की तरह हैं।" आदर्श के खोजने वाले लोग उन से ऊब कर विचार और दार्शनिक चिन्ता की तरफ झुकने लगे। किन्तु वे दार्शनिक विचार भी केवल विद्वानों की प्यास बुझा सकते थे। जनसाधारण के लिए या तो यज्ञों का कर्मकाण्ड था, या जड़-जन्तु पूजा। उन से लोगों का मन नहीं भरता था। लोग मानो किसी सरल मार्ग के लिए तरस रहे थे। समय की आवश्यकता से वैसा मार्ग दिखाने वाले कई महात्मा प्रकट हुए। महावीर और बुद्ध उन में से मुख्य थे।

§ ३ **बुद्ध का जीवन और उपदेश**—श्रावस्ती से ६० मील पर, रोहिणी नदी के पच्छिम, कपिलवास्तु नगरी शाक्यों के सगराष्ट्र की राजधानी थी। रोहिणी के पूरब कोलिय "राजाओं" का देवदह नगर था। शुद्धोदन शाक्य कुछ समय के लिए कपिलवास्तु के राजा अर्थात् राष्ट्रपति थे। उन्होंने देवदह की दो शाक्य कन्याओं, माया और प्रजावती, से ब्याह किया था।

बरसों की प्रतीक्षा के बाद महामाया को पुत्र होने की आशा हुई। दोनों बहनें मायके रवाना हुई। रास्ते में लुम्बिनी के वन में माया ने उस पुत्र को जन्म दिया जिस का नाम आज संसार के आधे के लगभग स्त्री पुरुष प्रतिदिन जपते हैं। सात दिन बाद उसे प्रजावती के हाथ सौंप वह परलोक सिधार गई। लुम्बिनी को आजकल रुम्मिनदेई कहते हैं, और वह बस्ती ज़िले की सीमा पर नेपाल की तराई में है।

बालक सिद्धार्थ गौतम की बचपन से ही चिन्ताशील प्रवृत्ति देख कर पिता ने १८ वर्ष की आयु में उस का विवाह कर दिया, पर तो भी उस की प्रवृत्ति न बदली। छोटी-छोटी घटनाएँ उस के दिल पर असर कर जातीं। एक दिन रथ मे सैर करते समय उस ने एक बूढ़े को कमर झुकाये देखा। इस की यह दशा क्यों है? बुढ़ापे के कारण। बुढ़ापा क्या चीज है? क्या वह इसी आदमी को सताता है या सब को? इत्यादि प्रश्न उस के जी में उठे। इसी तरह सिद्धार्थ ने एक रोगी और एक लाश को देखा। और अन्त मे एक शान्त प्रसन्नमुख संन्यासी को देख कर उसके विचार एक निश्चित संकल्प की ओर बढ़ने लगे।

वह तब अट्ठाइस बरस का था। नदी-तट पर बगीचे में बैठे उसे अपने पुत्र होने की खबर मिली। चारों तरफ उत्सव-गीत गाये जाने लगे। पर सिद्धार्थ के मन मे कुछ और ही समा चुका था। उसी धुन को ले कर वह उस रात अन्तिम बार अपनी स्त्री के पास गया। दीये के उजाले में उस ने उस युवती को सोते देखा। उस का एक हाथ बच्चे के सिर पर था। जी में आया एक बार बच्चे को गोदी ले लूँ; पर अन्दर की एक आवाज ने सावधान किया। हृदय को कड़ा करके वह उसी रात गृहस्थ के सब सुखों को त्याग संन्यास के लिए निकल पड़ा। इसे गौतम का 'महाभिनिष्क्रमण' कहते हैं।

गौतम डील के लम्बे थे। उन की आँखें नीली, रंग गोरा, कान लटकते हुए और हाथ लम्बे थे जिन की अँगुलियाँ घुटनो तक पहुँचती थी। केश घूँघर वाले और छाती चौड़ी थी।

मल्लो के देश को जल्द लाँघ सिद्धार्थ वैशाली पहुँचे और वहाँ से राजगृह। उन दोनों स्थानों में उन्हों ने दो बड़े दार्शनिको के पास उस समय की विद्याएँ पढ़ी। गृहस्थों के हिंसापूर्ण कर्मकांड से ऊब कर वे दर्शन की ओर झुके थे। पर उस सूखे दिमागी व्यायाम मे भी उन्हे वह शान्ति न मिली जिसे वे अपने और संसार के लिए खोज रहे थे। तब उन्हों ने एक और कठिन मार्ग पकडा। उसी आश्रम के पाँच विद्यार्थियों को साथी बना, वे गया के पहाड़ी जंगलों मे उस समय के नियम के अनुसार तपस्या करने गये। वहाँ निरंजना

नदी के किनारे छ बरस तक घोर तप करते-करते उन का केवल हाड़-चाम बाकी रह गया।

कहानी है कि एक बार कुछ नाचने वाली स्त्रियाँ गाती हुई उस जंगली राह से गुजरीं। उन के गीत की ध्वनि गौतम के कान में पड़ी। वे गाती थीं, 'अपनी वीणा के तार को ढीला न करो, नहीं तो वह बजेगा नहीं, और उसे इतना कसो भी नहीं कि वह टूट ही जाय।' पथिकों के उस गीत से गौतम को बड़ी शिक्षा मिली। उन्हों ने देखा, वे अपने जीवन के तार को बहुत कसे जा रहे हैं। तब से वे अपने देह की सुध लेने लगे। उन के साथी उन्हें तप से डरा समझ, साथ छोड़ कर बनारस चले गये। वे अकेले देहाती स्त्रियों से भिक्षा पा पा कर धीरे धीरे स्वास्थ्य प्राप्त करने लगे। सुजाता नाम की एक युवती ने वहाँ गौतम को बड़ी श्रद्धा से पायस खिलाया।

भगवान बुद्ध—गुप्त युग की एक मूर्त्ति
[भा० पु० वि०]

स्वस्थ होने के बाद एक दिन गौतम एक पीपल के नीचे बैठे विचार करते थे। पर ध्यान लगाते ही "मार" (यानी मनुष्य की अपनी वासनाओं) ने उन पर हमला किया। जल्द ही गौतम ने मार को जीत लिया, अर्थात् उन के चित्त

के सब विक्षेप शान्त हो गये। तब उन्हें वह "बोध" (ज्ञान) हुआ जिस के लिए वे भटकते फिरते थे। उसी दिन से गौतम "बुद्ध" हुए, और वह पीपल भी बोधि वृक्ष कहलाया। गौतम की बोधि या बूझ क्या थी? वह केवल यह थी कि सरल सच्चा जीवन ही धर्म का सार है; वह सब यज्ञों, शास्त्रार्थों और तपों से बढ़ कर है। संयम-सहित सच्चा आचरण ही असल धर्म है।

गौतम अपने बोध से स्वयं सन्तुष्ट हो कर बैठने वाले न थे। 'उत्थान' (उठना, उद्यम करना) और 'अप्रमाद' (कभी ढील न करना) उन के जीवन और उन की शिक्षा का मूल मन्त्र था। बनारस पहुँच कर (जहाँ आजकल सारनाथ है) वे अपने पुराने साथियों से मिले और उन्हें समझाया—"भिक्खुओ, संन्यासी को दो अन्तों (सीमाओं) का सेवन न करना चाहिए। वे दो अन्त कौन से हैं? एक तो काम और विषय सुख में फँसना जो अत्यन्त हीन ग्राम्य और अनार्य है, और दूसरा शरीर को व्यर्थ कष्ट देना जो अनार्य और अनर्थक है। इन दोनों अन्तों को त्याग कर तथागत (ठीक समझने वाले, बुद्ध) ने मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) को पकडा है, जो आँख खोलने वाली और ज्ञान देने वाली है।" यह मध्यम मार्ग ही बौद्ध धर्म का निचोड़ है।

बुद्ध का यह पहला उपदेश "धर्मचक्र-प्रवर्त्तन" कहलाता है। जिस प्रकार राजा लोग चक्रवर्त्ती बनने के लिए अपने रथ का चक्र चलाते थे, वैसे ही बुद्ध ने धर्म का चक्र चलाया। चौमासे मे संन्यासी यात्रा नहीं करते, इस लिए उस चौमासे में वे वहीं रहे। धीरे-धीरे उनके चेलों मे साठ भिक्खु और बहुत से उपासक (गृहस्थ अनुयायी) हो गये। बुद्ध ने उन भिक्खुओं को एक "संघ" अर्थात् प्रजातन्त्र के रूप में संघटित कर दिया। बौद्ध धर्म में किसी एक आदमी की हुकूमत न थी, संघ ही सब कुछ था। तब बुद्ध ने कहा—"भिक्खुओ, अब तुम जाओ, जनता के हित के लिए घूमो। कोई भी दो भिक्खु एक तरफ न जाओ।"

स्वयं बुद्ध भी भ्रमण को निकले। सब से पहले वे गया की तरफ गये। वहाँ तीन काश्यप भाई रहते थे जो बड़े विद्वान् कर्मकांडी थे और जिन के पास

सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ते थे। बुद्ध का उपदेश सुन कर उन्हों ने यज्ञों की सब सामग्री निरंजना में बहा दी, और उन के साथ चल दिये। इस बात का मगध की जनता और राजा बिम्बिसार पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे भी बुद्ध के उपासक हो गये। राजगृह के पास सारिपुत्त और मोग्गलान (मौद्गलायन) नाम के दो बड़े विद्वान् ब्राह्मण बुद्ध के चेले बने। बौद्ध संघ में वे उन के "अग्र श्रावक" अर्थात् प्रमुख शिष्य कहलाये।

बुद्ध का यश अब कपिलवास्तु तक पहुँच गया और उन्हें वहाँ का निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ा। वे भिक्खुओं के साथ भिक्षापात्र हाथ में लिये उन्हीं घरों के सामने भिक्षा के लिए मौन खड़े हुए, जिन के वे राजा हो सकते थे। शुद्धोदन शाक्य उन्हें भिक्खुओं सहित अपने महल में लिवा ले गये, जहाँ सब स्त्री पुरुषों ने उन का उपदेश सुना। किन्तु राहुल की माता (गौतम की पत्नी) उन श्रोताओं में न थी। बुद्धदेव सारिपुत्त और मोग्गलान के साथ स्वयं उस के मकान पर गये। वह उन्हें देख कर एकाएक गिर पड़ी और पैर पकड़ कर रोने लगी। जल्द ही उस ने अपने को सँभाला और बुद्ध का उपदेश सुना। सात दिन बाद जब फिर बुद्ध शुद्धोदन के घर आये तब उस ने राहुल को बतलाया, 'ये तुम्हारे पिता हैं, इन से अपना पितृ-दाय (बपौती) माँगो।' कुमार राहुल ने बुद्ध के पास जा कर कहा, 'भिक्खु, मुझे मेरा पितृ दाय दो।' बुद्ध ने सारिपुत्त से कहा, 'राहुल को प्रव्रज्या (संन्यास) दान करो।' तब से वह कुमार भिक्खु हो गया।

कपिलवस्तु का पंचायती राजा इस बार भद्दक शाक्य था। बुद्ध के वापिस चले जाने पर अनुरुद्ध शाक्य अपनी माँ के पास गया और भिक्खु बनने की आज्ञा माँगने लगा। माँ ने कहा, 'बेटा यदि राजा भद्दक घर छोड़ दे तो तू भी भिक्खु हो जा।' अनुरुद्ध के कहने से भद्दक भी तैयार हो गया। आनन्द आदि कई और शाक्य भी साथ हो गये और मल्ल राष्ट्र की तरफ, जहाँ बुद्ध ठहरे हुए थे, चले। कुछ दूर जा कर उन्हों ने अपने गहने और कीमती कपड़े उतार दिये और दुपट्टे में लपेट कर अपने नौकर उपालि नाई को देते हुए कहा, 'जाओ, तुम्हारी जीविका के लिए यह काफी होगा।' पर

उपालि के दिल में कुछ और था। वह भी उन के साथ साथ गया। बाद में ये लोग बड़े प्रसिद्ध हुए। आनन्द तो बुद्ध का दिन रात का साथी, उन का

जेतवन की खरीद और दान

सुदत्त जलपात्र लिये दान करने खड़े हैं; गाड़ी पर सिक्के हैं जो बगीचे मे बिछाये जा रहे हैं।

शुंग-युग के भारहुत स्तूप का मूर्त्त दृश्य [भारतीय संग्र०, कलकत्ता]

"उपस्थापक" (प्राइवेट सेक्रेटरी) बन गया। उपालि बुद्ध के पीछे संघ का प्रमुख चुना गया।

एक बरस के इस भ्रमण के बाद बुद्ध राजगृह लौट आये। वहाँ उन्हें

श्रावस्ती का करोड़पति सेठ सुदत्त अनाथपिंडक निमन्त्रण देने आया। सुदत्त ने बौद्ध संघ को दान करने के लिए श्रावस्ती के राजकुमार जेत से एक बगीचा खरीदना चाहा। जेत ने कहा, जितने सोने के सिक्के उस बाग में बिछ जायँ, वह उस की कीमत है।' सुदत्त ने कहा, 'मैंने बाग ले लिया।' जेत ने कहा, 'मैंने नहीं बेचा।' तब यह विवाद 'वोहारिक (व्यावहारिक)' (न्यायाधीश) के पास गया। वोहारिक ने सुदत्त के पक्ष में फैसला दिया, क्योंकि जेत ने अधिक से अधिक मूल्य कहा था और सुदत्त उतना भी देने को तैयार था। सुदत्त ने तब वह बाग जेतवन खरीद लिया और उस में बौद्ध संघ के लिए विहार यानी मठ बनवाया।

प्राय तीन बरस पीछे शुद्धोदन शाक्य का देहान्त हुआ। तब प्रजावती और राहुलमाता देवी ने भिक्खुनी बनने का संकल्प किया। अनेक शाक्य स्त्रियों के साथ वे बुद्ध के पास वैशाली पहुँची। कुछ अरसे तक बुद्ध हिचकिचाये, क्योंकि उस समय तक स्त्रियों के लिए सन्यास मार्ग खुला न था। अन्त में आनन्द के कहने से बुद्ध ने स्त्रियों के लिए वह मार्ग खोल दिया। भिक्खुनी संघ की अलग स्थापना हुई। उस संघ ने भी बड़ा काम किया। वृद्ध भिक्खु थेर (स्थविर) कहलाते थे। उसी प्रकार वृद्धा भिक्खुनियाँ थेरी कहलाती थीं। थेरों की वाणियाँ थेरगाथा नाम की पुस्तक में है। वैसे ही थेरियों की थेरीगाथा में।

४५ बरस तक ठेठ हिन्दुस्तान के सब जनपदों में बुद्ध बराबर घूमते रहे। उन के अन्तिम समय में उन के पुराने साथी प्राय उठ गये थे। अपने भ्रमण के ४५वें बरस उन्हें विरूढक की करतूत से कपिलवास्तु के खँडहर देखने पड़े, और वे राजगृह पहुँचे तो अजातशत्रु वैशाली को ढहा देने की बात में था।

वैशाली जा कर वे शहर के बाहर ठहरे। अम्बपाली गणिका को खबर मिली कि बुद्धदेव उस की आम की बगिया में पधारे हैं। उस ने उन के पास जा कर भिक्खु संघ को भोजन कराने की प्रार्थना की, जो बुद्ध ने चुप रह कर स्वीकार की। लिच्छवि लोग सुन्दर रथों पर सवार हो बुद्ध के दर्शन को चले तो उन्हों ने देखा कि अम्बपाली उन के पहियों से पहिया टकराते हुए अपना रथ हाँकती लौट रही है। लिच्छवियों ने पूछा, 'यह क्या बात है कि तू लिच्छवियों के बराबर

अपना रथ हाँक रही है?' अम्बपाली ने उत्तर दिया, 'आर्यपुत्रो, मैं ने भगवान् को भिक्खु संघ के साथ कल के भोजन के लिए न्यौता जो दिया है।' उन्हों ने कहा, 'अम्बपाली, हम से एक लाख मुद्रा ले कर यह भोजन हमें कराने दे।' उत्तर मिला, 'आर्यपुत्रो, आप मुझे वैशाली का समूचा राज्य दें तब भी यह जेवनार नहीं दूँगी।' निराश हो कर लिच्छवियों ने कहा, 'अम्बका ने हमें हरा दिया।' वे उस की वाटिका की ओर बढ़े। बुद्ध ने उन्हें आते देखा और भिक्खुओं से कहा, 'जिन भिक्खुओं ने तावतिंश देवताओं को नहीं देखा है, वे लिच्छवियों की इस परिषद् को देखें और इस से देवताओं की परिषद् का अनुमान करें!' उपदेश सुन चुकने पर लिच्छवियों ने बुद्ध से दूसरे दिन का भोजन करने की प्रार्थना की। "लिच्छवियो, मैंने कल के दिन अम्बपाली गणिका का न्योता मान लिया है।" तब उन्हो ने निराश हो कर अपने हाथ पटके और कहा—'हमें अम्बका ने हरा दिया!' दूसरे दिन उपदेश सुनने और भोजन कराने के बाद अम्बपाली ने कहा, 'भगवन्, मैं यह आराम (बगीचा) भिक्खुओं के संघ के लिए, जिस के मुखिया बुद्ध हैं, देती हूँ।' वह दान स्वीकार किया गया। अम्बपाली पीछे थेरी हो गई; उस के गीत भी थेरीगाथा में हैं।

वैशाली से बुद्ध एक गाँव गये। वहाँ उन के बड़ा दर्द उठा और मृत्यु निकट दिखाई दी। आनन्द ने कहा, 'भगवन्, जब तक आप भिक्खु-संघ को ठीक राह पर नहीं डाल देते, आशा है तब तक देह न त्यागेंगे।' उत्तर मिला, "आनन्द, भिक्खु-संघ मुझ से क्या आशा करता है? मैंने धर्म का साफ-साफ उपदेश कर दिया। तथागत (बुद्ध) के धर्म में कोई गाँठ या पहेली तो नहीं है। अब तुम अपनी ही ज्योति मे चलो, अपनी शरण जाओ...धर्म की ज्योति में, धर्म की शरण में चलो।"

मल्लों के अनेक गाँवों मे होते हुए बुद्ध पावा पहुँचे। वहाँ चुन्द लोहार ने उन्हें भोजन कराया और उस में सुअर का मांस भी परस दिया। गृहस्थों से यह कहने की कि मै अमुक चीज खाता हूँ अमुक नहीं खाता हूँ, बुद्ध की आदत न थी। उस भोजन से उन का दर्द बढ़ गया; रक्तातिसार हो गया। अन्तिम समय तक बड़ी पीड़ा रही। पावा से वे कुशिनगर को गये जो मल्लों की

राजधानी थी। देवरिया जिले में कसिया गाँव उस की याद कराता है। रास्ते में उन्हों ने आनन्द से कहा, "चुन्द के मन में कहीं कोई यह शका न डाले कि उस के भोजन से बुद्ध का निर्वाण हो गया। आयुष्मान् चुन्द से कहना, मेरे लिए उस का भोजन और सुजाता का भोजन एक समान है।"

नदी में स्नान कर बुद्ध एक शाल वन में आसन बिछवा कर लेट गये। शाल के पेड़ अपने फूल उन पर बरसाने लगे। तब भी बुद्ध भिक्खुओं की शकाएँ दूर करते रहे। इसी बीच सुभद्र नाम का पडित बाहर से उन से कुछ पूछने आया। आनन्द ने उसे रोक दिया, पर पता लगने पर बुद्ध ने पास बुला कर उसे उपदेश दिया। तब उन्हों ने कहा, "भिक्खुओ, म तुम्हें अन्तिम बार बुलाता हूँ। ससार की सब सत्ताओं की अपनी अपनी आयु है। अप्रमाद से काम करते जाओ। यही तथागत की अन्तिम वाणी है।" ऐसा कहते हुए, अस्सी बरस की आयु में उन्हों ने आँखें मूँद लीं (५४५ ई० पू०)। यही उन का "महापरिनिर्वाण" (बुझना) था।

कुशिनगर के मल्लों ने उन का दाह-कर्म कर के 'धातुओं' (फूलों, अस्थियों) को भालों धनुषों से घेर आठ दिन तक नाच गान किया। निर्वाण का समाचार सुन कर चारों तरफ के राष्ट्रों के दूत आ जुटे। उन फूलों के आठ भाग कर वे अपने अपने राष्ट्र में ले गये, जहाँ उन पर स्तूप बनवाये गये। स्तूप उस इमारत को कहते हैं जो किसी पवित्र अवशेष के ऊपर यादगार के रूप में बनाई जाय। उस के अन्दर नींव मे अवशेष रक्खा जाता था। यह वैदिक रीति थी।

§४ **वर्धमान महावीर**—भगवान् महावीर बुद्धदेव के समकालीन थे। वे वैशाली के पास कुडग्राम में वृजिगण के ज्ञातिक नाम के एक कुल में 'राजा' सिद्धार्थ के घर पैदा हुए थे। उन की माता का नाम त्रिशला था, और उन का अपना नाम वर्धमान। सिद्धार्थ और त्रिशला तीर्थंकर पार्श्व नाम के एक धर्म सुधारक के अनुयायी थे, जो प्राय दो शताब्दी पहले बनारस में हुए थे। वर्धमान भी उन्हीं की शिक्षा पर चले। बड़े होने पर यशोदा नाम की देवी से उन का विवाह हुआ, जिस से एक लड़की हुई। माता पिता के मरने पर

तीस बरस की आयु में बड़े भाई से आज्ञा ले उन्हों ने घर छोड़ा। बारह बरस के भ्रमण और तप के बाद उन्हों ने "कैवल्य" (ज्ञान) पाया। तब से वे अर्हत् (पूज्य), जिन (विजेता), निर्ग्रन्थ (बन्धनहीन) और महावीर कहलाने लगे। उन के अनुयायियों को अब हम जैन कहते हैं।

निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र अथवा महावीर अर्हत् होने के बाद निर्वाण-काल तक लगातार मिथिला, कोशल आदि में भ्रमण करते रहे। बुद्ध-निर्वाण के एक बरस पहले पावापुरी में उन का निर्वाण हुआ*। बुद्ध और उन की शिक्षा में मुख्य भेद यह है कि बुद्ध जहाँ मध्यम मार्ग का उपदेश देते थे, वहाँ महावीर तप और कृच्छ्र तप को जीवन-सुधार का एक मुख्य उपाय मानते थे। दोनों वेद और ईश्वर को न मानते थे। मगध आदि देशों मे महावीर की शिक्षा जल्द फैल गई, कलिंग उन के जीते जी उन का अनुयायी हो गया। राजस्थान में उन के निर्वाण के एक शताब्दी बाद ही उन के मत की जड़ जम गई।

§५. **बुद्ध-युग का आर्थिक जीवन**—वैदिक काल से अब तक भारत-वासियों के जीवन में बड़ा परिवर्तन हो गया था। उस काल में आर्यों की मुख्य जीविका पशुपालन और कृषि थी, अब शिल्प और व्यापार भी उन के बराबर बढ़ गये थे। कृषि में भी उन्नति हो चुकी थी। अब आराम और उद्यान (बगीचे) प्रायः हर बस्ती मे लग चुके थे। कपास के पौधे का ज्ञान भी आर्यों को इसी युग मे हुआ। उस से पहले संसार की अधिकांश जातियाँ कपास की खेती न जानती थीं†। उस की खेती दूसरे सब देशों ने पहले-पहल भारतवर्ष से ही सीखी। यूनान के लोग जब यहाँ पहले-पहल आये, तब वे कपास देख कर बड़े चकित हुए, और उसे ऊन का पौधा कहने लगे। शिल्प की उन्नति के साथ हर बस्ती मे शिल्प से जीविका चलाने वाले शिल्पियों के अलग-अलग संघटन बन गये। उन्हें श्रेणियाँ कहते थे। एक नगर के सब बढ़इयों की मिल कर एक "श्रेणी" होती

---

* १४वीं शताब्दी से आधुनिक जैन लोग इस पावापुरी को राजगृह के पास मानते आये हैं। एक पावापुरी मल्लों के देश (गोरखपुर) मे भी थी।

† मुअन जो दड़ो मे कपास का कपड़ा पाया गया है। किन्तु आर्यों के साहित्य मे उत्तर वैदिक काल से पहले कपास का कहीं पता नहीं मिलता।

थी। इसी तरह लोहारों, कुम्हारों, मालियों, मल्लाहों, सुनारों आदि की अलग-अलग श्रेणियाँ थीं। श्रेणी का एक मुखिया चुना जाता था जिसे प्रमुख या जेट्ठक (जेष्ठक) कहते थे। बनारस जैसी बड़ी नगरियों में एक एक शिल्प ने गली-मुहल्ले ही अलग हो गये थे, जैसे दन्तकारवीथी में खाली हाथी-दाँत का काम करने वाले ही रहते थे।

शिल्प के साथ साथ स्थल और जल का व्यापार भी खूब चलने लगा। व्यापारी लोग सार्थों यानी काफिलों में चलते थे। नगरों में व्यापारियों के भी संघटन बन गये थे जिन्हें निगम कहते थे। निगम का मुखिया भी चुना जाता था और सेट्ठी (श्रेष्ठी) कहलाता था। वाराणसी, चम्पा, भरुकच्छ, शूर्पारक आदि के व्यापारी अपने जहाज लेकर सुवर्णभूमि, ताम्रपर्णी और बावेरु (बाबुल) तक जाते थे। सात सात सौ आदमी जिन में लम्बी यात्रा कर सकें, इतने बड़े जहाज बनने लगे थे। जहाँ पहले गाँव ही गाँव थे, वहाँ अब शिल्प और व्यापार बढ़ने के कारण बहुत सी नगरियाँ स्थापित हो गई थीं।

§६ **राज-काज की संस्थाएँ**—ग्राम भी जहाँ पहले एक तरह के जत्थे थे, वहाँ अब वे कृषकों के सब हो गये। जनों के राज्य जनपदों के राज्य बन गये थे, सो कह चुके हैं। वैदिक काल में राष्ट्र के सामूहिक जीवन में सब से छोटी इकाइयाँ ग्राम थे। अब श्रेणी और निगम भी उसी नमूने की इकाइयाँ बन गये। श्रेणियाँ न केवल अपना आर्थिक प्रबन्ध स्वयं करती थीं, प्रत्युत अपने विधि कानून बनाना, अपने सदस्यों को उन पर चलाना और अपने विवादों का फैसला करना—सब उन्हीं के हाथ में था। यही बात निगमों के बारे में भी थी। नगरियों का प्रबन्ध भी मुख्यतया निगमों के ही हाथ में था। इसलिए नगर की सभा भी पहले पहल निगम ही कहलाने लगी।

राज सभा में भी श्रेणियों और निगमों का बड़ा प्रभाव था। रामायण महाभारत की ख्यातें तो पुरानी हैं, पर अब जो रामायण हमें मिलती है उस का अधिकांश और वैसे ही महाभारत का कुछ अंश भी लगभग ५०० ई० पू० का लिखा हुआ है। रामायण में जहाँ रामचन्द्र को युवराज बनाने के लिए राजा दशरथ की सभा का चित्र खींचा गया है, उस में श्रेणियों के मुखियों और निगमों

के श्रेष्ठियों का ऊँचा स्थान दिया है। इसी तरह महाभारत में गन्धर्वों से हारने पर दुर्योधन कहता है कि मैं श्रेणि-मुख्यों को कैसे मुँह दिखाऊँगा। वैदिक काल की समिति अब न रही थी, पर इस युग के छोटे-छोटे जनपदों की अपनी परिषदें थीं, जिनमें ग्रामों, श्रेणियों आदि के लोग जमा हो कर ठहराव करते और राजा को सलाह देते थे। कई संघ-राष्ट्रों में राजा न होता था और परिषदें ही सब कुछ करती थीं। परिषदों में प्रस्ताव रखने, भाषण देने, सम्मति लेने आदि के सुशृङ्खल नियम थे। शाक्यों की परिषद् जिस भवन में जुटती थी उसे सन्थागार कहते थे।

'भीटा' (ज़ि० इलाहाबाद) की खुदाई में पाई गई "सहजातिये निगमस" (सहजाति निगम की) मोहर*। [भा० पु० वि०]

इस प्रकार आर्थिक और राजनीतिक जीवन में उन्नति हो जाने के कारण कानूनों की भी जरूरत पड़ी और कानून पहले-पहल इसी युग में इकट्ठे किये गये। कानून के दो पहलू थे—धर्म और व्यवहार। धार्मिक सामाजिक जीवन का कानून 'धर्म' कहलाता था, और दीवानी और फौजदारी कानून 'व्यवहार'। मुकद्दमों का फैसला करने वाले न्यायाधीश 'वोहारिक' ('व्यावहारिक') कहलाते थे। श्रेणियों के परस्पर झगड़ों का फैसला करने को एक खास वोहारिक होता था।

§७. **सामाजिक जीवन**—वर्ण और आश्रम का विचार पहले-पहल

---

* जैसा कि ऊपर (पृ० २६ पर) कहा जा चुका है, 'भीटा' जातिवाचक संज्ञा है। इलाहाबाद के पास जो भीटा है उस का पुराना नाम सहजाति था। वह चेदि जनपद में था। इस मोहर के अक्षरों की लिखावट से और खुदाई में जिस सतह से यह पाई गई है उस से सिद्ध होता है कि यह मौर्ययुग से कुछ पहले की है।

जिस रूप में प्रकट हुआ था, यह बतलाया जा चुका है। पर वर्ण जाति न थे केवल स्तर थे। आर्यों के समाज की निचली सतह में अब कुछ अनार्य शूद्र जातियाँ भी शामिल हो गई थीं। वे जातियाँ—निषाद, चंडाल, पुक्कस आदि—नीची गिनी जाती थीं। महाजनपदों के ज़माने में क्षत्रिय लोग भी अपने को एक 'जाति' कहने लगे थे और सब से ऊँचा मानते थे। मगध के पहले साम्राज्य के अन्तिम समय में ब्राह्मण भी कहीं-कहीं अपने को 'जाति' कहने लगे थे। क्षत्रिय और ब्राह्मण कल्पित जातियाँ थीं, क्योंकि वास्तव में सब क्षत्रिय और ब्राह्मण एक ही आर्य जाति के थे। बाकी सब प्रजा में कई काम और कई शिल्प ऊँचे और कई नीचे गिने जाते थे। किन्तु जात पाँत का भेद तब तक न था। ऊँचे नीचे लोगों में मिल कर खाना पीना, ब्याह शादी सब कुछ चलता था। कुछ ब्राह्मण पिछले समय में अपने को जाति ज़रूर कहने लगे, पर वे साधारण प्रजा से अपने को अलग न कर पाये थे। क्षत्रियों में कुलीनता का विचार सब से अधिक था, पर आवश्यकता पड़ने पर वे भी सब धन्धे करते और सब से ब्याह शादी कर लेते थे। ये सब बातें पालि वाङ्मय से मालूम हुई हैं। तब दास प्रथा भी थी, पर दास थोड़े थे और उन के साथ अच्छा बर्ताव होता था। वे घरेलू सेवा करते थे, खेती आदि का काम उन से न लिया जाता था।

§ ८ बुद्ध-युग का वाङ्मय—बुद्ध के निर्वाण के बाद ५०० भिक्खु राजगृह में इकट्ठे हुए और उन्हों ने बुद्ध के वचनों को मिल कर गाया। वह बौद्धों की पहला "संगीति" थी। सौ बरस बाद दूसरी संगीति वैशाली में हुई, और फिर तीसरी राजा अशोक के समय पटने में। इन संगीतियों में बौद्धों का धार्मिक वाङ्मय तैयार हुआ। शुरू में उस के दो अंश थे—धम्म और विनय। धम्म में बुद्ध के उपदेश बातचीत रूप में थे, विनय में भिक्खुओं के आचरण के नियम थे। अशोक के समय तक "त्रिपिटक" अर्थात् तीन पटियाँ बन गईं। विनय का विनयपिटक बना, धम्म का संग्रह सुत्त-(सूक्त) पिटक में हो गया। सुत्त पिटक में बुद्ध की सूक्तियाँ हैं। और अभिधम्म पिटक नाम से एक तीसरा पिटक बन गया जिस में बौद्धों का पहला दार्शनिक चिन्तन है। सातवीं-छठी शताब्दी ई० पू० में भारत में बहुत सी मनोरंजक कहानियाँ प्रसिद्ध थीं। उन सब

को बुद्ध के पूर्व-जन्म की कहानियों की शकल दे कर और उन का नाम 'जातक' रख कर उन्हें सुत्तपिटक के एक अंश में शामिल किया गया है। ५५० के करीब वे कहानियाँ संसार भर में सब से पुरानी और अत्यन्त रुचिकर हैं।

जिस प्रकार आज कल हिन्दी की खडी बोली के सिवाय बोल चाल की कई बोलियाँ हैं, वैसे ही तब भारत के विभिन्न जनपदों में संस्कृत के सिवाय बोलचाल की कई बोलियाँ थीं जो प्राकृत कहलाती थीं। त्रिपिटक पहले-पहल पालि नाम की प्राकृत मे लिखा गया।

जैन धर्म का वाङ्मय भी काफी बड़ा है। वह कोशल की पुरानी प्राकृत अर्धमागधी में है।

बौद्ध वाङ्मय के साथ साथ वैदिक वाङ्मय का अंतिम अंश भी बन रहा था। उस में ब्राह्मणों-उपनिषदों के बाद वेदांग बने। वेदांग छः थे। उन मे से एक व्याकरण था। दूसरा निरुक्त, जिस मे यह देखा जाता था कि शब्दों का विकास और परिवर्तन कैसे हुआ। तीसरा शिक्षा, अर्थात् वर्णों या अक्षरों के उच्चारण की शिक्षा। चौथा छन्द। पाँचवाँ था ज्योतिष और छठा कल्प। ज्योतिष मे गणित सम्मिलित था। कल्प के तीन अंश हैं—एक श्रौत, जिस मे यज्ञों का ब्यौरा दिया गया है; दूसरा गृह्य, जिस में घरेलू संस्कारों का विवरण है; और तीसरा धर्म अर्थात् धार्मिक-सामाजिक विधि-कानून।

इस प्रकार आर्यों के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक रहन-सहन और संस्कारों के सब नियम कल्प में हैं। वेदांगों का समय ८वीं से ५वीं शताब्दी ई० पू० तक है। व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि विषय पहले तो वेद के अंग रूप मे पैदा हुए, पर पीछे ये स्वतन्त्र विज्ञान बन गये। वेदांग प्रायः सब 'सूत्रों' मे हैं। किसी बात को कहने के लिए जो छोटे से छोटा वाक्य बनाया जा सके, उसे सूत्र कहते हैं। ब्राह्मणों, उपनिषदों की तरह वेदांग भी आश्रमों मे तैयार हुए थे।

पीछे जब वेदों से स्वतन्त्र फुटकर विद्याएँ भी चल पडी, तब कई बडे मार्के के ग्रन्थ तैयार हुए। भारतवर्ष का "आदि विद्वान्" अर्थात् पहला दार्शनिक कपिल इसी युग मे हुआ। तक्षशिला के आत्रेय आयुर्वेद के पहले प्रसिद्ध

आचार्य थे। कपिल और आत्रेयों के ग्रन्थ अब मूल रूप में नहीं मिलते। शुल्बसूत्र नामक रेखा गणित के महत्त्वपूर्ण आरम्भिक ग्रन्थ भी इस युग में तैयार हुए। पच्छिमी गन्धार में पुष्करावती के पास सुवास्तु (स्वात) नदी के काँठे में शालातुर नामी गाँव में, जो आज कल के यूसुफजई इलाके में पड़ता है, ४०० ई० पू० के लगभग व्याकरण का एक बहुत बड़ा विद्वान् पाणिनि हुआ। पाणिनि के जोड़ का वैयाकरण शायद आज तक पैदा नहीं हुआ। पाणिनि ने संस्कृत का एक बड़ा पूर्ण व्याकरण सूत्रों में लिखा जिस का नाम अष्टाध्यायी है। पाटलिपुत्र के राजा ने पाणिनि को वहाँ बुला कर उस का बड़ा आदर किया।

पृथिवी माता?
लौरियानन्दनगढ़ की खुदाई में पाई गई सोने की पत्ती पर अंकित मूर्ति, भारतवर्ष में इस युग की कारीगरी का नमूना।
[भा० पु० वि०]

रामायण का मुख्य अंश और महाभारत का कुछ अंश भी इसी युग के हैं। भगवद्गीता बुद्ध के बाद लिखी गई। वह महाभारत में और पीछे मिलाई गई। उस का लेखक जो उपदेश देना चाहता था उस ने बड़े अच्छे ढंग से उसे कृष्ण के मुँह से युद्धक्षेत्र में कहलाया दिया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी से पता लगता है कि उस से पहले नाटक-कला शुरू हो चुकी थी और उस पर भी सूत्र लिखे गये थे। सूद जैसे शिल्प पर भी सूत्र बन गये थे। जिस प्रकार 'धर्म' का विचार धर्मसूत्रों में हुआ उसी प्रकार 'व्यवहारों' का विचार अर्थशास्त्रों में किया गया। जातकों की कहानियों से पहले कई अर्थशास्त्र भी तैयार हो चुके थे। उपनिषदों और कपिल के सम्प्रदाय में तथा बौद्धों के अभिधम्म में दार्शनिक विचार पहले पहल शुरू हुआ था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ महाजनपद युग तक आर्यों में जातिभेद किस क्रम से और किस रूप में विकसित हुआ?

२. सिद्धार्थ गौतम और महावीर कहाँ पैदा हुए थे? उनके पड़ोस में कौन से राज्य थे और उनकी राज्य-संस्था (शासन-प्रणाली) क्या थी?

३. श्रेणि और निगम किसे कहते हैं? महाजनपद युग के आर्थिक जीवन, सामाजिक जीवन तथा राज्यसंस्था में उनका क्या स्थान था?

४. उत्तर वैदिक आरम्भिक बौद्ध वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

५. धर्म और व्यवहार से उस युग में क्या अभिप्राय था?

६. कपास का ज्ञान भारतीय आर्यों को पहले पहल कब हुआ और यहाँ से अन्य देशवालों को किस प्रकार पहुँचा।

४. नन्द मौर्य साम्राज्य पर्व

(३६६–२११ ई० पू०)

अध्याय १

नन्द साम्राज्य और अलक्सान्दर की चढाई

(३६६–३२५ ई० पू०)

§१ नन्द वंश—शिशुनाक वंश के राजा महानन्दी के दो बेटों (३७४–३६६ ई० पू०) का अभिभावक महापद्म नन्द था। उन दोनों को मार कर वह स्वयं मगध की गद्दी पर बैठ गया। उस के वंश में केवल दो पीढ़ी राज्य रहा। महापद्म शक्त और चतुर शासक था। मगध के साम्राज्य की शक्ति उस ने पहले से अधिक बढ़ा दी। उस साम्राज्य के अधीन जितने छोटे-छोटे जनपदों के राजवंश शताब्दियों से चले आते थे, उन सब की सफाई करके उस ने सब जनपदों को सीधे अपने शासन में ले लिया। इसी कारण उसे 'सर्वक्षत्रान्तक' अर्थात् सब क्षत्रियों का अन्त करने वाला कहते थे। वह उग्रसेन भी कहलाता था। 'महापद्म' और 'उग्रसेन' दोनों असल में उस के बिरुद थे। महापद्म इस कारण कि उस के कोश में पद्मों धन था, और उग्रसेन इस कारण कि उस की भयंकर सेना थी। किन्तु वह प्रजापीडक था। उस के बेटों में धन नन्द मुख्य हुआ। उस के समय में मकदूनिया के राजा अलक्सान्दर ने पंजाब पर चढाई की।

§२. अलक्सान्दर का दिग्विजय-स्वप्न—पच्छिमी एशिया और यूनान में एक आर्य जाति ६ठी-८वीं शताब्दी ई० पू० से सभ्यता का विकास करने लगी। भारतीय उन्हें यवन कहते थे। उन के देश में बहुत से छोटे-छोटे राष्ट्र थे, जिन में से अधिकांश संघ-राष्ट्र थे। छठी शताब्दी ई० पू० से उन्हों ने बड़ी उन्नति की। उन के उत्तर तरफ मकदूनिया का पहाड़ी देश था।

उसे वे बर्बर अर्थात् जंगली कहते थे। किन्तु चौथी शताब्दी ई० पू० के मध्य में उसी मकदूनिया के राजा फिलिप ने सभ्य यूनान के सब छोटे-छोटे राष्ट्रों को, जो आपस में लड़ा करते थे, जीत कर कुचल दिया।

फिलिप का बेटा अलक्सान्दर बचपन से दुनिया जीतने के सपने देखा करता था। उस के सामने कौन सी दुनिया थी? यूनान के उत्तर और पच्छिम के आधुनिक युरोप के देश तो तब निरे जंगली थे। यूनानियों का उन से कम सम्पर्क था। उन जंगलियों को वे "उत्तरी हवा के लोग" कहा करते थे। किन्तु पूरब तरफ ईरान का विशाल साम्राज्य था। उस के पूरब हिन्द का नाम भी अलक्सान्दर ने सुन रक्खा था, पर उसे वह एक छोटा देश समझता था। उस के आगे चीन का पता उसे न था।
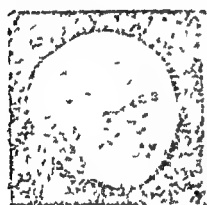
अलक्सान्दर
भारत में पाये जाने वाले सिक्कों पर का चित्र [दुर्गाप्रसाद-संग्रह से]।

§३. अलक्सान्दर का सुग्ध में पहुँचना—राज पाते ही अलक्सान्दर दिग्विजय को निकला। विशाल पारसी साम्राज्य अन्दर से थोदा हो चुका था। उसे उस ने तीन ठोकरों में गिरा दिया, और चार बरस (३३०-३२६ ई० पू०) में समूचा जीत लिया। ईरान का सम्राट् दारयवहु (२य) बाख्त्री की ओर भाग निकला। वक्षु और सीर नदी के बीच के दोआब को, जिस में अब बुखारा-समरकन्द की बस्तियाँ हैं, ईरानी लोग सुग्ध या सुग्द कहते थे। वहाँ ईरानियों का अन्तिम पराभव हुआ। उस युद्ध में उन की तरफ से हिन्दूकुश के उत्तर तरफ का एक भारतीय राजा शशिगुप्त भी लड़ा था। सम्भवतः वह कम्बोज जनपद (बदख्शाँ-पामीर) का राजा था जो तब तक पारसी साम्राज्य के अंतर्गत था। हारने के बाद शशिगुप्त उस समय की प्रथा के अनुसार अलक्सान्दर की सेवा में आ कर उस की तरफ से लड़ने लगा। अलक्सान्दर जब सुग्ध में ही था, तभी उस के पास तक्षशिला के राजा आम्भि के दूत भी अधीनता का सँदेसा ले कर गये थे।

§४. उत्तरपूरबी अफगानिस्तान में युद्ध—जिन यूनानी लेखकों

अलक्सान्दर की चढ़ाई के समय उत्तर पच्छिमी भारत

नक्शा—६
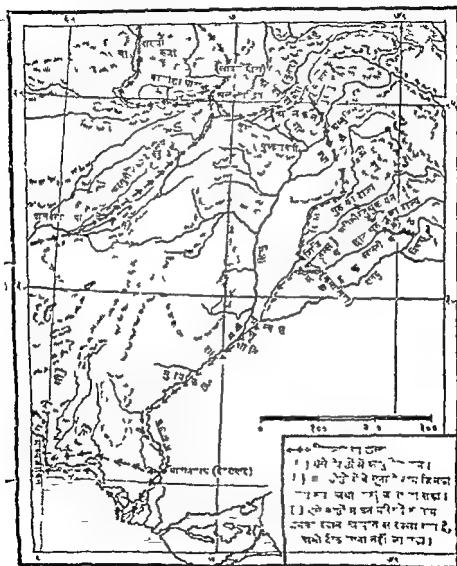
ने अलक्सान्द्र की विजय-यात्रा का हाल लिखा है, वे हिन्दूकश के ठीक दक्खिन से उस की भारत की चढ़ाई शुरू करते हैं। काबुल नदी में मिलने वाली अलिपंग, कूनड, पंजकोग और स्वात नदियों की दूनों में जो वीर जातियाँ तब रहती थीं, उन के नाम यूनानी उच्चारण के अनुसार अस्सम और अस्सकन थे। उन जातियों ने चप्पा-चप्पा जमीन छोड़ने से पहले सख्त मुकाबला किया। पंजकोरा को तब गौरी कहते थे। उस के पूरब 'मसग' नाम के एक गढ़ में ६ हजार पंजाबी सैनिक थे, जो अपनी स्त्रियों सहित एक-एक करके बड़ी वीरता से लड मरे। पच्छिमी गन्धार का राजा हस्ती अपनी राजधानी पुष्करावती में एक मास तक डट कर लड़ा। हिन्दूकश और सिन्ध नदी के बीच के समूचे पहाड़ी प्रदेश के दमन में अलक्सान्द्र को छः मास लग गये।

§५. पुरु से युद्ध—सिन्ध नदी पार करने में अलक्सान्दर को कुछ कठिनाई न हुई, क्योंकि आम्भि उस के पक्ष में था। पर गन्धार के पूरब केकय देश का वीर राजा पुरु सेना के साथ वितस्ता (जेहलम) पर उस की प्रतीक्षा कर रहा था। केकय के उत्तर लगा हुआ अभिसार देश* था। काबुल के उत्तरी पहाड़ों के अनेक योद्धा भाग कर वहाँ आ जुटे थे। अभिसार का राजा पुरु से मिलने की तैयारी कर रहा था। इस से पहले कि वे दोनों मिल पायें, सख्त गरमी की परवा न कर, अलक्सान्दर तुरन्त वितस्ता के किनारे पहुँच गया। पुरु सब घाट रोके हुए था। अलक्सान्दर ने पहले तो सेना में ऐसी चहल-पहल रक्खी कि पुरु को रोज मालूम हो कि आज हमला होगा; फिर ऐसी रसद जुटानी शुरू की कि मानो अब वह महीनों वहीं टिकेगा। इस तरह पुरु जब कुछ असावधान हुआ, तब एक रात वर्षा में चुपके-चुपके अलक्सान्दर ने अपनी सेना के बड़े अंश को २० मील हटा कर नदी पार कर ली। पता लगते ही पुरु भी जल्दी उधर बढ़ा।

जम कर लड़ने में अलक्सान्दर भी उस का मुकाबला न कर सकता, पर

---

*आजकल की राजौरी, भिम्भर और पुंच रियासतें, अर्थात् कश्मीर के दक्खिन हिमालय के निचले पहाड़ों का प्रदेश।

अलक्सान्दर की असल शक्ति उस के फुर्तीले सवारों में थी। पारसी सम्राट् की तरह पुरु भागा नहीं। जब तक उस की सेना में जरा भी व्यवस्था रही, वह ऊँचे हाथी पर चढ़ा लड़ता रहा। उस के नंगे कन्धे पर शत्रु का एक बर्छा लगा। अन्त में उसे पीछे हटना पड़ा तो आम्भि ने घोड़ा दुड़ाते हुए उस का पीछा किया, और पुकार कर उसे अलक्सान्दर का सँदेसा दिया। घायल

फिर दर पुरु युद्ध का स्मारक पदक—आम्भि ने घोड़ा दुड़ाते हुए उस का पीछा किया घायल हाथ से पुरु ने घृणित देशद्रोही पर बर्छा चलाया।
[ब्रिटिश वस्तुसंग्रह में]

हाथ से पुरु ने घृणित देशद्रोही पर बर्छा चलाया, पर आम्भि बच निकला। पुरु को फिर सवारों ने घेर लिया, उन में से एक उस का मित्र भी था। जब घायल और थका माँदा वह अलक्सान्दर के सामने लाया गया तब अलक्सान्दर ने आगे बढ़ कर उस का स्वागत किया, और दुभाषिये द्वारा पूछा कि उस के साथ कैसा बर्ताव किया जाय। "जैसा राजा राजाओं के साथ करते हैं"—पुरु ने अभिमान से उत्तर दिया। अलक्सान्दर ने उसे शशिगुप्त की तरह अपनी सेना में ऊँचा पद दिया।

§ ६. कठ राष्ट्र—आगे पूरब की ओर बढ़ते हुए अलक्सान्दर को कई छोटे-छोटे गणराष्ट्रों से लड़ना पड़ा। रावी और ब्यास के बीच कठ नाम का राष्ट्र था, जिस की राजधानी साकल थी। साकल के चौगिर्द रथों के तीन घेरे बना कर कठ लोग जी जान से लड़े। बड़ी परेशानी के बाद, पीछे से पुरु की कुमुक आने पर, अलक्सान्दर उन्हें जीत सका, पर वह इतना खीझ गया

था कि सांकल नगर को उस ने जीतने के बाद मिट्टी में मिलवा दिया। ब्यास के तट पर पहुँचने के बाद अभी पंजाब का एक बड़ा संघ-राष्ट्र सामने था, और उस के आगे नन्द सम्राट् भी अपनी सेना के साथ सतर्क था। अलक्सान्दर की सेना यह जान कर घबड़ा उठी कि अभी हिन्दुस्तान की असल शक्ति से तो मुकाबला बाकी ही है। उस ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। अलक्सान्दर ने उसे बड़े-बड़े बढ़ावे दिये, पर वे सब बहरे कानों पर पड़े। तब घोर निराशता मे वह तीन दिन अपने तम्बू में बन्द रहा, और उसे लाचार लौटने का निश्चय करना पड़ा।

वितस्ता तट उलटे पाँव वापिस आ कर दक्खिनी पंजाब और सिन्ध के रास्ते जाने के लिए भारी तैयारी की गई। दो हजार नावों का बेड़ा बनाया गया। यात्रा के शकुन देख कर, नदी के बीच खड़े हो, सुनहले बरतन से अलक्सान्दर ने भारत की नदियों और अन्य देवताओं को अर्घ्य दिया और तब जल और स्थल से उस की सेना ने कूच किया। रास्ते में फिर कई छोटे राष्ट्रों से मुकाबला करना पड़ा।

§७. मालव क्षुद्रक और सिन्ध—वितस्ता और चनाब के संगम के नीचे चनाब के पूरब रावी के दोनों तटों पर मालव-संघ का राज्य था। और उस के पूरब तरफ लगा हुआ क्षुद्रकों का संघ-राष्ट्र था। मालव और क्षुद्रक मिल कर लड़ने की तैयारी कर रहे थे। वे दोनों राष्ट्र समूचे पंजाब में अत्यन्त स्वतन्त्रता-प्रेमी और लड़ाकू प्रसिद्ध थे। अलक्सान्दर की सेना यह जान कर कि भारत के एक सब से वीर राष्ट्र से लड़ना अभी बाकी है, फिर बगावत करने लगी। बड़ी मुश्किल से अलक्सान्दर ने उन्हें सँभाला और इस से पहले कि क्षुद्रक लोग आ पाते या मालव कृषक सेना के रूप में जुट पाते, वह मालवों के गाँवों और नगरों पर टूट पड़ा। तो भी मुलतान के प्रायः ४० मील उत्तर-पूरब (अन्दाजन आजकल के कोट कमालिया की जगह पर) मालवों के एक नगर ने उस का सख्त मुकाबला किया। वहाँ अलक्सान्दर की छाती में एक बर्छा लगा जिस से वह बेहोश हो कर गिर पड़ा। उस समय तो वह बच गया, पर आगे चल कर वही घाव उस के जल्द मरने का कारण हुआ।

उत्तरी सिन्ध में भी मुचिकर्ण, ब्राह्मणक आदि छोटे राष्ट्रों का मुकाबला करते हुए, अन्त में मकदूनी सेना पातन या पातानप्रस्थ नामक नगर में पहुँची, जो आजकल के हैदराबाद की जगह पर था। वहाँ से अलक्सान्दर की कुछ सेना जलमार्ग से और बाकी स्थलमार्ग से पच्छिम मुड़ी। उस के मुँह फेरते ही भारत में बलवे होने लगे। उधर घर पहुँचने से पहले ही बाबुल में अलक्सान्दर का देहान्त हो गया (३२३ ई० पू०)

§८ अलक्सान्दर का कार्य—विशाल ईरानी साम्राज्य को जहाँ उस ने चार साल में जीत लिया था, वहाँ भारत के केवल उत्तर पच्छिमी अंचल में उसे साढ़े तीन बरस लग गये, और वहाँ पग पग पर सख्त मुकाबला झेलना पड़ा। वह भारत के इस अंचल पर आँधी की तरह आया और बगूले की तरह चला गया। तो भी उस ने प्राचीन राष्ट्रों के बीच जो रास्ता खोल दिया वह फिर खुला ही रहा। उस के कारण प्राचीन सभ्य राष्ट्रों की कूपमण्डूकता बहुत कुछ दूर हुई। उस ने यूनानी, ईरानी और भारतीय आर्यों में बहुत से परस्पर विवाह करा के इन जातियों को मिलाने का यत्न भी किया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ अलक्सान्दर के समय भारत की उत्तरपच्छिमी सीमा कहाँ से आरम्भ होती थी ?

२ पुरु से युद्ध के बाद अलक्सान्दर का भारत के किन सब राष्ट्रों से सामना हुआ ? उन की स्थिति बताइए।

३ अलक्सान्दर के भारत आक्रमण का प्राचीन जगत् पर क्या प्रभाव पड़ा ?

अध्याय २

मौर्य साम्राज्य का दिग्विजय युग

(३२५–२६२ ई० पू०)

§ १. **चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य**—अलक्सान्दर जब तक्षशिला में था, उस के पास एक भारतीय युवक आया था, जो नन्दों के विशाल साम्राज्य को जीत लेना चाहता था। उस की अलक्सान्दर से कुछ खरी-खरी बातें हुई, और उसे वहाँ से भागना पड़ा था। उस युवक का नाम चन्द्रगुप्त मौर्य था।

बुद्ध के समय मोरिय नामक एक छोटा संघ-राज्य हिमालय की तराई में था। उसी 'मोरिय' का संस्कृत रूप मौर्य है; और इस 'मौर्य' नाम पर से यह कहानी पीछे बना ली गई कि चन्द्रगुप्त मुरा नाम की एक दासी का बेटा था। कोई घटना ऐसी हुई जिस से मोरिय संघ के उस युवक ने प्रजापीड़क नन्दों के वंश को उखाड़ फेंकने का संकल्प कर लिया। नन्द राजा ने उसे मार डालने की आज्ञा निकाल रक्खी थी, और फाँसी का परवाना सिर पर लिये वह मारा-मारा फिरता था। उसी समय तक्षशिला में उसे एक अपने जैसा धुन का पक्का ब्राह्मण मिल गया। उस ब्राह्मण का नाम विष्णुगुप्त चाणक्य या कौटल्य था।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों असाधारण कर्तृत्ववान्, दृढव्रती और प्रतिभाशाली थे। वे दोनो एक साथ एक ही धन्धे में लग गये। अलक्सान्दर के मरने के बाद एक बरस के अन्दर ही चन्द्रगुप्त ने पंजाब और सिन्ध के राष्ट्रों को यूनानियों के विरुद्ध उभाड़ दिया और अलक्सान्दर जो सेना वहाँ छोड़ गया था उसे मार भगाया। तब उस ने उन्हीं पंजाबी राष्ट्रों से एक बड़ी सेना खड़ी करके नन्द साम्राज्य पर चढ़ाई की* और पाटलिपुत्र को जा घेरा। नन्द सम्राट को मार कर उस ने मगध का शासन अपने हाथ में कर लिया (३२२ ई०पू०)।

---

* स्व० आचार्य काशीप्रसाद जायसवाल तथा अन्य अनेक विद्वानों का मत था कि उस ने पहले मगध जीता, बाद पंजाब लिया।

चाणक्य उस का प्रधान अमात्य बना। नन्द राजा का एक मन्त्री राक्षस नाम का था, उस ने इस के बाद भी चन्द्रगुप्त के विरुद्ध विद्रोह कराने के कई यत्न किये, किन्तु चाणक्य की चतुराई से वे सब निष्फल हुए।

उसी समय एक और बड़ा शत्रु चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई करने आ रहा था। अलक्सान्दर के पीछे यूनानी साम्राज्य के कई टुकड़े हो गये। उन में से समूचा पच्छिमी और मध्य एशिया सेलेउकस† नामक सेनापति के हिस्से में पड़ा। उस ने भारतीय प्रान्तों को वापिस लेने के ख्याल से चढ़ाई की। पर उसे लेने के देने पड़ गये। चन्द्रगुप्त ने उसे हरा दिया और सेलेउक को उलटा चार प्रान्त देने पड़े। वे चार प्रान्त ये थे—(१) हिन्दूकुश और काबुल का प्रदेश, (२) हरात, (३) हरहती या अरखुती (कन्दहार)* और (४) गदरोसिया (कलात, लासबेला, मकरान)। हिन्दूकुश के उत्तर तरफ कम्बोज देश अर्थात् बदख्शाँ और पामीर भी मौर्य साम्राज्य के अधीन हो गया। सेलेउक ने चन्द्रगुप्त को अपनी लड़की भी ब्याह दी और अपने दूत मेगास्थेने को उस के दरबार में रक्खा। चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने मिल कर अपने साम्राज्य की सेना और शासन का प्रबन्ध भी बहुत अच्छा और मजबूत किया।

§७ **बिन्दुसार**—चन्द्रगुप्त के बाद उस का बेटा बिन्दुसार अमित्रघात राजा हुआ (२९८ या ३०२ इ० पू०)। उस ने प्राय २५ बरस तक अपने पिता की तरह योग्यता से शासन किया। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार चाणक्य उस के समय में भी प्रधान अमात्य रहा और उस ने १६ राजधानियाँ जीत कर पूरब से पच्छिम समुद्र तक की भूमि बिन्दुसार के अधीन कर दी। वे १६

† सेलेउकस् (Seleucus) में अन्तिम स् प्रथमा एकवचन का प्रत्यय है।

* कन्दहार नगर जिस नदी के किनारे बसा है उस का नाम अब भी अरगन्दाब है। वह हेलमन्द (सेतुमन्त) की एक शाखा है। अरगन्द नदी का पुराना नाम अरखुती था। "अरखुती" शब्द "हरख्वती" या "हरक्वती" का रूपान्तर था और वह "सरस्वती" का। जिस प्रकार "सिन्धु" से "हिन्दु" हो गया, उसी प्रकार 'सरस्वती' से 'हरह्वती' हुआ। अवस्ता में उस नदी और उस की दून का नाम तब हरह्वती या हरउवती था, जिसे यूनानी अरखुती (Archotia) बोलते थे।

राजधानियाँ दक्खिनी राष्ट्रों की थीं। उन में से आन्ध्र राष्ट्र बहुत प्रबल माना
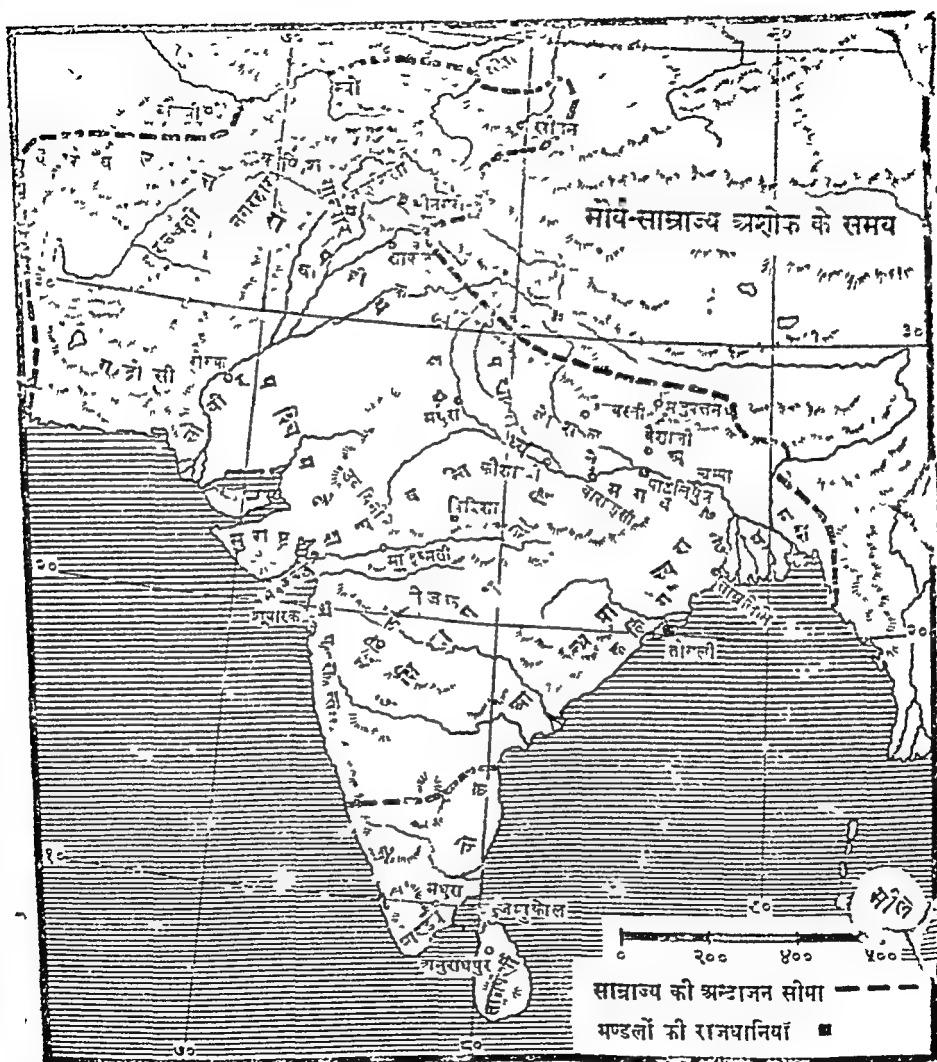
नक्शा —१०

जाता था। मौर्य साम्राज्य की सीमा तब आधुनिक कर्णाटक के दक्खिनी छोर

तक पहुँच गई थी। केवल चोल, पाण्ड्य, चेर और ताम्रपर्णी अर्थात् तमिळनाड, केरल और सिंहल, दक्खिन तरफ उस के बाहर बचे रहे।

§ ३. अशोक—बिन्दुसार के बाद उस का बेटा अशोक गद्दी पर बैठा। वह बचपन ही से प्रखर स्वभाव का था। पिता के अधीन वह उज्जैन और
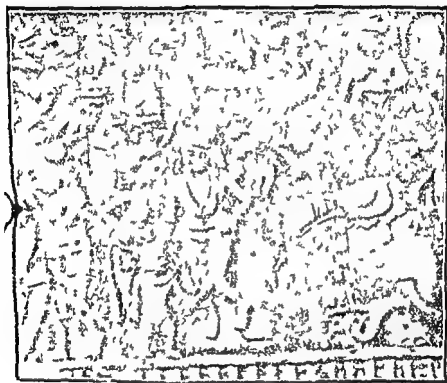
राजा अशोक जुलूस में

अशोक हाथी से उतर कर खड़ा है, उस के आगे एक कुब्जक (बौना) और दोनों तरफ चँवरधारिणियाँ हैं। उस के बायें तरफ चँवरधारिणी के पीछे रानी [illegible] है।
[साँची स्तूप के पूरबी तोरण की सब से निचली बँडेरी, बाहर की तरफ के मूर्त-रूप से।]

तक्षशिला का शासक रह चुका था। कम्बोज से कर्णाटक तक समूचा भारत अब मौर्य साम्राज्य में समा चुका था, तो भी बंगाल, मगध और आन्ध्र के बीच तीन तरफ से घिरा कलिंग (उड़ीसा) राष्ट्र स्वतन्त्र ही था। यह बड़ा

शक्ति-शाली था। उस की हाथियों की सेना खूब सधी हुई थी।

अपने राज्य के बारहवें बरस अशोक ने उस पर चढ़ाई की। कलिंग लोग बड़ी वीरता से लड़े। एक लाख मारे गये, डेढ़ लाख कैद हुए और कई गुने पीछे बीमारी आदि से मरे। कलिंग देश मौर्यों के अधीन हो गया, पर युद्ध की घटनाओं ने अशोक के हृदय को बदल दिया। अशोक ने तब दिग्विजय के बजाय धर्म-विजय की राह पकड़ी। उस का वर्णन आगे किया जायगा।

§४. **खोतन उपनिवेश**—मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत कम्बोज देश (बदख्शाँ-पामीर) था। उस का पूरबी छोर उत्तर-दक्खिन फैले दो समान्तर पर्वतों से बना है जिन्हें अब हम सरीकोल और कन्दर या काशगर कहते हैं। इस पर्वत-पंक्ति के पूरबी ढाल से एक लम्बा पठार चीन की सीमा तक चला गया है, जिस का दक्खिनी बाँध क्युनलुन और अल्तिनताग पर्वतों तथा उत्तरी थियानशान पर्वत से बना है। पामीर और इन पर्वतों का धोवन तारीम नदी के रूप में इस पठार के बीच से जा कर तकला मकान मरुभूमि और लोप नोर* की दलदल में लुप्त हो जाता है। इस विशाल देश को अब हम पूरबी तुर्किस्तान कहते हैं और पामीर से अराल-कास्पियन तक के देश को पच्छिमी तुर्किस्तान। प्राचीन काल में यह तुर्किस्तान न था; तुर्क लोग तब इर्तिश नदी के पूरब सिबिरिया ('साइबीरिया') में रहते थे। मध्य एशिया के इन देशों मे तब शक और उन के सजातीय तुखार, ऋषिक आदि लोग रहते थे। वे सब आर्य परिवार के थे, और उस समय खानाबदोश पशुपालक दशा में थे।

अशोक के समय तक भारत के लोग पामीर से लोपनोर तक के गैर-आबाद देश में जाने आने लगे थे। अशोक ने तक्षशिला से कुछ अपराधियों को निर्वासित कर खोतन में उन का उपनिवेश बसाया। खोतन के पूरब मरुभूमि के दक्खिन लोपनोर तक और कई उपनिवेश बस गये, जिन में से सब से पूरब वाला लोपनोर के काँठे में नाभक था।

---

*नोर याने झील, सरोवर।

§५ **मौर्य साम्राज्य का अनुशासन**—शासन के दिन-ब दिन चलाने को मौर्य युग में अनुशासन कहते थे। मौर्य साम्राज्य का अनुशासन बहुत ही व्यवस्थित था। उस का हाल हमें मेगास्थेने के लिखे हुए वर्णन से, कौटिल्य के लिखे अर्थशास्त्र नाम के ग्रन्थ से और अशोक के खुदवाये हुए लेखों से मिलता है।

मौर्य सम्राट् अपने को केवल 'राजा' कहते थे और अपने साम्राज्य को 'विजित'। राजा 'विजित' का अनुशासन मन्त्रियों और परिषद् की सहायता से करता था। समूचा विजित इन पाँच मंडलों में बँटा था जो शायद 'चक्र' कहलाते थे—(१) मध्यदेश या मध्य मडल (२) प्राची (३) दक्षिणापथ (४) अपर जनपद या पश्चिम देश और (५) उत्तरापथ। जैसा कि भारत के भाषाक्षेत्रों के प्रसग मे कहा जा चुका है, आजकल हिन्दी भाषा का जो क्षेत्र है, प्राय उसी को प्राचीन लोग मध्यदेश या मध्यमडल कहते थे। पर आज का राजस्थान तब पश्चिम मडल में गिना जाता था। मध्यदेश के पूरब कलिग, बगाल आदि प्राची अर्थात् पूरबी देश कहलाते थे। नर्मदा के दक्खिन दक्षिणापथ था। राजस्थान, सिन्ध, गुजरात और कोंकण मिला कर अपरजनपद या पश्चिम देश कहलाता था। पजाब, कश्मीर, काबुल आदि उत्तरापथ मे गिने जाते थे।

मौर्य युग में मध्यदेश का शासन पाटलिपुत्र से होता था, उत्तरापथ का तक्षशिला से और पश्चिमी मडल का उज्जयिनी से। दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि थी। वह शायद कृष्णा तुगभद्रा दोआब में आजकल के रायचूर जिले के

---

† भारत के नये सविधान में इस अर्थ में—अर्थात् अंग्रेजी शब्द ऐडमिनिस्ट्रेशन के अनुवाद रूप में—प्रशासन शब्द रक्खा गया है। पर 'प्रशासन' का प्राचीन अर्थ बिलकुल दूसरा है। किसी राजा का राज पद पर होना प्रशासन कहलाता था, जैसे 'कुमार-गुप्त पृथिवीं प्रशासति'। गुप्त युग के लेखों में प्रशासन शब्द का प्रयोग बहुत हुआ है। 'ऐडमिनिस्ट्रेशन' के अर्थ में पुराना शब्द अनुशासन ही है। पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी अखबारों ने नियमानुवर्त्तन (डिसिप्लिन) के अर्थ में अनुशासन लिखना आरम्भ कर दिया है, पर वह प्रयोग ठीक नहीं है।

मस्की नामक स्थान पर थी। कलिंग ही पूरब प्रान्त था; उस की राजधानी तोसली थी, जिस की जगह पर अब पुरी जिले का धौली कस्बा है। इन राजधानियों में राजा की तरफ से कुमार (राजकुमार), महामात्य (सचिव) या 'राजुक' अनुशासन का निरीक्षण करते थे।
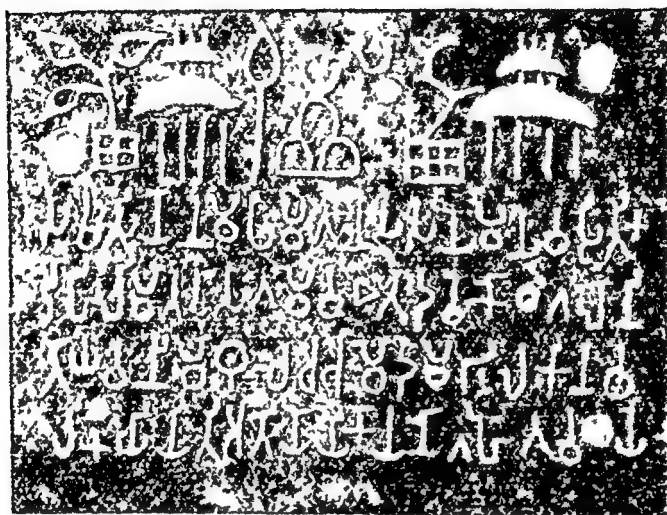
चन्द्रगुप्त मौर्य की जनपद अनुशासन-शैली का नमूना—सहगौरा (जि० गोरखपुर) से पाये गये इस ताम्रपत्र पर यह लेख है, "श्रावस्ती के महामात्यों की मानवसीति शिविर से आज्ञा—अमुक गावों के ये अनाज के कोठार केवल मुसीबत पड़ने पर किसानों को बाँटने के लिए हैं, अकाल के समय ये रोके न जायँ।" इस ताम्रपत्र के ऊपर वही चिह्न हैं, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के सिक्कों पर पाये गये हैं। [भा० पु० वि०]

प्रत्येक मंडल के निरीक्षण में कई-कई जनपद थे। जनपद वही थे जो पुराने चले आते थे। उन जनपदों की अपनी-अपनी राजधानियाँ थीं, जिन में राजकीय महामात्य प्रजा की परिषद् की सहायता से अनुशासन करते थे। उदाहरण के लिए पाटलिपुत्र-मंडल के निरीक्षण में कौशाम्बी एक जनपद की राजधानी थी। कई जनपदों का सीधा शासन राजा के अधीन था, अर्थात्

उन के निरीक्षण के लिए राजकीय महामात्य नियुक्त थे, कई अपने अन्दर के अनुशासन में सर्वथा स्वतन्त्र थे। आन्ध्र, विदर्भ और कम्बोज आदि साम्राज्यान्तर्गत स्वतन्त्र जनपद थे।

प्रत्येक जनपद का अपना अपना धर्म और 'व्यवहार' अर्थात् विधि-कानून था। ग्रामों, श्रेणियों, नगरों के निगमों तथा जनपदों की परिषदें जो नया कानून बनातीं, वह 'चरित्र' कहलाता था। विशेष दशा में राजा अपने 'शासन' अर्थात् आदेश से उन धर्मों, व्यवहारों और चरित्रों में रद्दोबदल कर सकता था। जनपदों के अपने-अपने "शील, वेश, भाषा और आचार" थे, तथा प्रत्येक जनपद का अपना देवता, अपने उत्सव और अपने "समाज" (खेलों की प्रतियोगिताएँ या टूर्नामेंट) होते थे। प्रजा में अपने अपने जनपद के लिए भक्ति और अभिमान का भाव उत्कट रूप से था।

जनपदों के अन्दर फिर दो तरह के प्रदेश थे। एक तो वे जिन का ठीक ठीक बन्दोबस्त हो चुका था। वे आहारों यानी जिलों में बँटे थे। दूसरे जंगली प्रदेश थे, जो कोट्ट विषय अर्थात् गढ़ों के क्षेत्र कहलाते थे। एक एक कोट्ट या गढ़ के चौगिर्द जो जंगली प्रदेश था उस का अनुशासन उसी गढ़ से चलता था।

ग्रामों और श्रेणियों के राजनीतिक अधिकारों को मौर्य साम्राज्य ने कुछ दबाने का जतन किया। पुराने बन्दोबस्त हुए जनपदों के गाँवों तक में कर की वसूली, रक्षा, न्याय आदि का काम राजकीय 'पुरुष' यानी अधिकारी करते थे। गाँवों के शासक 'गोप' कहलाते थे। कस्बों और शहरों में दो किस्म के सरकारी न्यायालय थे। एक कण्टक शोधन यानी फौजदारी, दूसरे धर्मस्थ यानी दीवानी। प्रत्येक जनपद के अनुशासन में और बहुत से अधिकरण (महकमे) भी थे। वसूली, न्याय आदि के सिवाय सिंचाई, जंगल, खानों आदि के अधिकरण प्रजा की भलाई और राज्य की आमदनी बढ़ाने को थे। कुछ सामाजिक अधिकरण भी थे, जैसे शराबखानों की देख रेख का। प्रत्येक जनपद में राजा की ओर से एक प्रतिवेदक रहता था जिस का काम होता था महत्त्व की घटनाओं का वृत्तान्त नियमित रूप से लिख कर भेजना। अनेक जनपदों में एक नाचयन भी

रहता था जो घाटों, बन्दरगाहों, जहाजों आदि की देख-रेख करता था।

सुराष्ट्र (काठियावाड़) में गिरनार के पास पहाड़ी नदियों को बाँधों से रोक कर चन्द्रगुप्त ने सिंचाई के लिए एक बडा ताल बनवाया था। पटना और भिन्न-भिन्न जनपदों के बीच सड़कों का एक जाल सा बिछा दिया गया था। मनुष्यों और पशुओं के लिए सरकारी चिकित्सालय थे। मनुष्य-गणना होती थी और वर्षा का माप रक्खा जाता था। हत्या आदि के मामलों में 'आशु-मृतक परीक्षा' यानी शव-परीक्षा करने की रीति जारी थी। ये बातें उस ज़माने में संसार का और कोई राज्य न जानता था। मौर्यों का गुप्तचर और सेना विभाग बहुत मजबूत था। सेना के छः महकमे—पैदल, सवार, हाथी, रथ, जलसेना और रसद के—थे। वे एक-एक छोटे वर्ग के अधीन होते थे।

पाटलिपुत्र नगर के प्रबन्ध के लिए प्रजा स्वयम् ३० आदमियों की एक सभा नियुक्त करती थी। उस सभा के पाँच-पाँच आदमी बँट कर छः छोटे वर्ग बन जाते थे, जो एक-एक महकमे की देख-रेख करते थे। उन में एक महकमा विदेशियों की और एक शिल्प की देखरेख के लिए भी था। पाटलिपुत्र उस समय संसार में सब से बडा नगर था। उस में बहुत से विदेशी आ कर रहते थे। विजित की दूसरी नगरियों का प्रबन्ध भी उसी तरह चलता होगा।

दंड-विधान कठोर था, पर मौर्यों ने अपने से पहले दंड-विधान को बहुत कुछ नरम करने का जतन किया था। कारीगर का हाथ या आँख बेकार कर देने वाले को फाँसी मिलती थी। सिंचाई के तालाब का बाँध तोडने वाले को वहीं डुबा दिया जाता था। मेगास्थेने लिखता है, "भारतवर्ष के लोग कभी झूट नहीं बोलते, मकानों में ताले नहीं लगाते और न्यायालयों में बहुत कम जाते हैं।"

यूनान आदि में दास-प्रथा इतनी अधिक थी कि खेती-बारी और मेहनत-मजदूरी सब दासों से कराई जाती थी। एक-एक स्वतन्त्र गृहस्थ के पाँच-पाँच सौ तक दास होते थे, जिन के साथ पशुओं का सा बर्ताव होता था। पर भारत में यह बात न थी। इसी कारण मेगास्थेने लिखता है कि भारत में दासता न थी। कौटल्य भी लिखता है, "म्लेच्छों को अपनी सन्तान बेचने या धरोहर रखने से

मौर्ययुगीन पाटलिपुत्र की लकड़ी की इमारतों के खण्डहर [फोटो, पटना संग्र०]

दोष नहीं लगता, पर आर्य कभी दास नहीं हो सकता।" घरेलू सेवा के लिए जो थोड़ी बहुत दासता थी, उसे भी कौटल्य ने बिलकुल उठाने की चेष्टा की। उस ने

"आर्य-प्राण" शूद्रों की—अर्थात् उन शूद्रों की जिन में आर्यरक्त मिला हुआ था—बिक्री आदि पर सख्त बन्धन लगा दिये, और ऐसे नियम बनाये कि दास लोग बहुत आसानी से "आर्य" यानी स्वतन्त्र भारतीय बन सकें। प्रत्येक भारतीय को स्वतन्त्र बनाने के कौटल्य के ये जतन ऐसे थे जिन के लिए आज भी हम आदर के साथ उस का नाम लेते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सेलेउक ने चन्द्रगुप्त से हारने के बाद उसे कौन से प्रान्त दिये थे?

२. मौर्य अपने 'विजित' या साम्राज्य को किन भागों मे बाँटते थे? उन की व्याख्या करो।

३. मौर्य युग मे—(अ) जनपदों का शासन कैसे होता था?
(इ) पाटलिपुत्र का प्रबध कैसे होता था?

४. विदेशियों और भारतीयों की दासता के सम्बन्ध मे कौटल्य ने क्या लिखा है? इस सम्बन्ध मे उस ने क्या किया?

५. अशोक के समय मौर्य साम्राज्य मे कौन कौन से प्रदेश मिलाये गये।

६. सीता-काँठे के भारतीय उपनिवेश का परिचय दीजिए।

अध्याय ३

अशोक का धर्म-विजय और पिछले मौर्य सम्राट

(२६५—२११ ई० पू०)

§ १. **अशोक के सुधार**—कलिंग-विजय के बाद अशोक के मन में भारी 'अनुशोचन' हुआ। उस ने अनुभव किया कि "जहाँ लोगो का इस प्रकार वध, मरण और देशनिकाला हो, वहाँ जीतना न जीतने के बराबर है।" उस ने निश्चय किया कि अब वह ऐसा विजय न करेगा। अपने बेटों-पोतो के लिए भी उस ने यह शिक्षा दर्ज की कि वे "नया विजय न करें और जो विजय बाण खींच कर ही हो सके, उस में भी क्षमा और लघुदंडता से काम लें। धर्म के द्वारा जो विजय हो उसी को असल विजय मानें।" दक्खिनी सीमा के

राज्यों के विषय में उस ने अपने अधिकारियों को लिखा, "शायद आप लोग जानना चाहें कि सीमा पर के जो राज्य अभी तक जीते नहीं गये हैं, उन के विषय में राजा क्या चाहता है। मेरी यही इच्छा है कि वे मुझ से डरें नहीं, मुझ पर भरोसा रक्खें वे यह मानें कि जहाँ तक क्षमा का बर्ताव हो सकेगा, राजा हम से क्षमा का बर्ताव करेगा।"

अपने राज्य के अन्दर भी उस ने बहुत सुधार किये। प्राचीन भारत में जानवर लड़ा कर तमाशा देखने का व्यसन बहुत प्रचलित था। उसे 'समाज' यानी दंगा हाँकना कहते थे। अशोक ने अपने यहाँ वह नष्ट कर दिया और प्रजा को भी वैसा करने का उपदेश दिया। जो पशु पक्षी केवल विनोद के लिए मारे जाते थे, उन की हत्या भी उस ने रोक दी। राजा लोग विहार यात्राएँ करते थे जिन में शिकार आदि दिल-बहलाव की बातें होती थीं। अशोक ने उस के बजाय धर्म यात्रा शुरू की, जिस में वह प्रजा की भलाइ के उपाय करता था। अपने राजपुरुषों पर उस ने कड़ी निगरानी की कि वे प्रजा को पीड़ित न कर पायें। उस ने उन से ताकीद की कि एक भी निरपराध आदमी को उन की बेपरवाही से कष्ट न हो। जगह जगह मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सालय बनवाये और कुएँ खुदवाये। सड़कों पर पेड़ लगवाये। सब पन्था के लोग आपस म सहिष्णुता आर प्रेम से रहें, ऐसी शिक्षा देने के लिए उस ने "धर्म महामात्य" नियुक्त किये। उस ने लिखा, "प्रियदर्शी राजा (अशोक) चाहता है कि सब पन्थ वाले सब जगह आबाद हों। वे सभी सयम और भाव शुद्ध चाहते हैं। सब पन्थों की सार-वृद्धि हो इसका मूल वचोगुप्ति (वाणी का सयम) है जिस में अपने पन्थ वालों का अति आदर और दूसरों की निंदा न की जाय।"

§ २ अशोक का धर्म-विजय—किन्तु अशोक ने विजय करना नहीं छोड़ दिया था। दिग्विजय के बजाय उस ने अब "धर्म विजय" शुरू किया। वह एक नई नीति थी। उस ने न केवल अपने विजित में, प्रत्युत चोल, चेर, पाण्ड्य और सिंहल में, तथा दूसरी तरफ पड़ोस और दूर के सब यूनानी राज्यों में भी, चिकित्सालय बनवाये और रास्तों पर पेड़ लगवाये। इन यूनानी राज्यों के

नाम अशोक ने अपने लेखा मे दिये हैं। इन से प्रतीत होता है कि समूचे मध्य और पच्छिमी एशिया, मिस्र, आज कल के बेनगाजी तक उत्तरी अफरीका और .... तक अशोक के ये धर्म विजय के कार्य फैले हुए थे।

नक्शा—११

इस के अलावा अशोक ने बौद्धों की तीसरी 'संगीति' बुलवाई। उस की तरफ से उस ने इन सब देशों म भिक्षु प्रचारक भिजवाये। उन प्रचारकों

अशोक का एक स्तम्भ—लौड़िया नन्दनगढ़ (जि० चम्पारन) मे [भा० पु० वि०]

के कार्य-क्षेत्रों को चार हिस्सों में बाँटा जा सकता है—

(१) सब से पहले दक्खिन भारत और सिंहल। सिंहल में अशोक का बेटा महेन्द्र और उस की बहन संघमित्रा, जो भिक्षु और भिक्षुणी हो गये थे, गये। वहाँ उन्हों ने विजय के वंशज राजा तिष्य को उस के साथियों सहित बौद्ध बनाया। उन लोगों ने बोधि-वृक्ष की एक शाखा सिंहल के लिए मँगवाई। अशोक ने उसे स्वयं काट कर बंगाल के ताम्रलिप्ति (तामलूक) पट्टन से जहाज से भेजा और अनुराधपुर में वह शाखा लगाई गई। महेन्द्र और संघमित्रा ने सिंहल मे जो बौद्ध धर्म का पौधा लगाया, वह भी बोधि-वृक्ष की उस शाखा की तरह धीरे-धीरे एक विशाल वृक्ष बन गया।

(२) उत्तरापथ के गन्धार, कश्मीर, कम्बोज आदि देशो मे भिक्षु भेजे गये।

(३) इसी प्रकार पूरबी हिमालय के किरात लोगो में और सुवर्णभूमि के असभ्य आग्नेय लोगों में भी धर्म-प्रचार के लिए भिक्षु गये।

(४) भिक्षुओं का एक दल पच्छिम के यवन राज्यों में गया। उन्हों ने पच्छिम एशिया में बुद्ध का सन्देश पहुँचाया। अशोक के अढ़ाई सौ बरस पीछे उसी पच्छिम एशिया के फिलिस्तीन देश में महात्मा ईसा प्रकट हुए, जिन की शिक्षाएँ भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं से बहुत मिलती-जुलती हैं। ईसा की मातृभूमि में बुद्ध की शिक्षाएँ अशोक ने ही पहुँचाई थीं।

रामपुरवा (जि० चम्पारन) के अशोक स्तम्भ पर का वृष मूर्ति [३ श० पू० वि०]

यह समझ लेना चाहिए कि अशोक ने अपने जमाने के सारे सभ्य संसार का 'धर्म विजय' करने की चेष्टा की थी। उस समय संसार में यूनानी, भारतीय और चीनी, इन तीन ही सभ्य जातियों के राज्य थे। यूनान के पच्छिम रोम के लोग अभी सभ्यता सीखने ही लगे थे। अशोक ने चीन में अपने भिक्षु न भेजे, इस का कारण यह था कि भारतवर्ष और पच्छिम के लोग उस समय तक चीन को स्पष्ट रूप से न जानते थे। चीन और भारत के बीच सुवर्णभूमि (हिन्द-चीन प्रायद्वीप), तिब्बत और तारीम-काँठे के विशाल देश हैं। वे तीनों उस समय
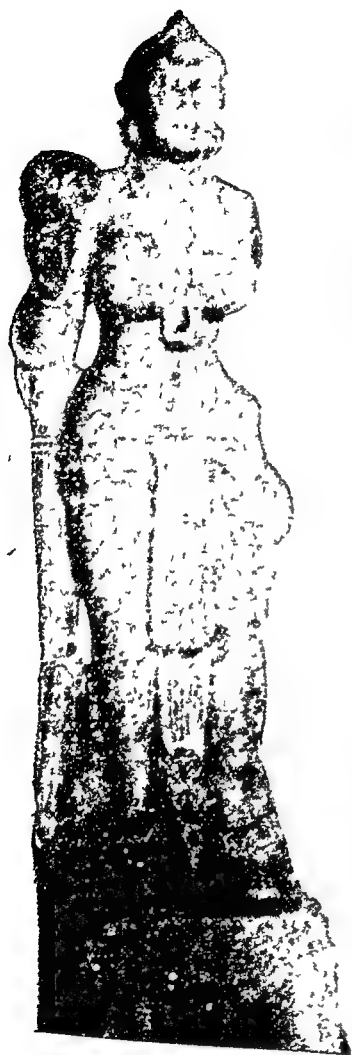
चँवर-धारिणी
पिछले मौर्य युग की कारीगरी का नमूना—दीदारगंज (जि० पटना) से पाई गई मूर्त्ति।
[पटना संग्र०]

अशोक ने बौद्ध धर्म के लिए किया था।

§५. मौर्य भारत की सभ्यता—मौर्यों के समय में भारतवर्ष की समृद्धि और सभ्यता में पहले मगध-साम्राज्य के समय से काफी प्रगति हुई। शिल्प की उन्नति के कारण देश का धन खूब बढ़ा। पाटलिपुत्र उस समय संसार में सब से बड़ा नगर था। उसी समय क्या, सारे प्राचीन काल में उतना बड़ा कोई और नगर नहीं हुआ। उस का घेरा २१½ मील का था। चारों तरफ लकड़ी का परकोटा था, जिस में ६४ दरवाजे और ५७० गोपुर थे। दूर दूर के देशों के लोग वहाँ आते थे।

मौर्य-युग का वाङ्मय प्रायः पिछले महाजनपद युग की तरह था। सूत्र शैली में ग्रन्थ लिखना जारी था।

बौद्ध धर्म के प्रचार की कहानी कही जा चुकी है। मेगास्थेने के लेख से जान पड़ता है कि शूरसेन (मथुरा) के लोग अब कृष्ण वासुदेव को देवता की तरह पूजने लगे थे।

मौर्य-युग का समाज भी पिछले हिन्दू समाज की अपेक्षा वैदिक समाज से अधिक मिलता-जुलता था। स्त्रियों को पूरी स्वतन्त्रता थी। उन्हें दायभाग भी मिलता था। आवश्यकता होने पर धर्मस्थ की अनुज्ञा से विवाह का 'मोक्ष' (तलाक) करवाया जा सकता था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ अशोक ने कलिंग विजय के बाद सीमा पर के राज्यों के विषय में अपनी क्या नीति बनाई ?

२ विभिन्न पंथों के लोग आपस में कैसा बर्ताव करें, इस संबंध में अशोक का क्या कहना था ?

३ अशोक ने किन किन देशों का 'धर्मविजय' करने का यत्न किया अथवा उस युग में भारतीयों का ज्ञात जगत् कौन सा था ?

४ क्या आपने अशोक का कोई स्तंभ देखा है ? उस की विशेषता बताइए। अशोक स्तंभों पर उत्कीर्ण शिक्षाएँ किस भाषा और लिपि में हैं ?

५ मौर्यकालीन कला के विषय में आप क्या जानते हैं ?

६ आधुनिक हिन्दू स्त्री और मौर्यकालीन स्त्री की सामाजिक स्थिति में क्या अन्तर है ?

५. सातवाहन पर्व

(लग० २१० ई० पू० से लग० २०० ई०)

अध्याय १

सातवाहन, चेदि, यवन, शुंग

(लग० २१०—१०० ई० पू०)

§१. **महाराष्ट्र और कलिंग में सातवाहन और चेदिवंश**—सम्प्रति के बाद के मौर्य राजा निकम्मे और कर्त्तव्यविमुख निकले। उन्हों ने अपनी कमजोरी को अशोक वाली क्षमानीति का ढोंग करके छिपाना चाहा। २१० ई० पू० से उन का साम्राज्य टूटने लगा और भारतवर्ष के पाँच में से चार मंडलों—मध्यदेश, पूरब, दक्खिन और उत्तरापथ—में नये राज्य उठ खड़े हुए।

सब से पहले दक्खिन और पूरब के मंडल स्वतन्त्र हुए। दक्खिन में सिमुक नाम के एक ब्राह्मण ने अपना राज्य स्थापित किया। उस के वंश का नाम सातवाहन* था। सातवाहनों का राज्य शुरू में महाराष्ट्र में था, पीछे आन्ध्र तक फैल गया। तब वह आन्ध्र वंश भी कहलाने लगा। इस वंश का राज्य अनेक उतार-चढ़ावों के बीच प्रायः ४५० बरस तक बना रहा, और इस अवधि में प्रायः वह भारतवर्ष का प्रमुख राज्य रहा। इसी कारण हम इस युग को सातवाहन युग कहते हैं।

कलिंग में भी चेदि वंश के एक क्षत्रिय ने, लगभग २१० ई० पू० में, स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया।

---

* 'सातवाहन' का एक प्राकृत रूप 'सालवाहन' है, जिस का संस्कृत रूपान्तर फिर 'शालिवाहन' किया गया है।

§२. पार्थव और बाख्त्री राज्य—उधर उत्तरापथ में एक नई शक्ति खड़ी हुई। सेलेउक वंश का जो साम्राज्य पच्छिम एशिया से मध्य एशिया तक फैला हुआ था, वह अशोक के समय में ही टूटने लगा था। २४८ ई० पू० में ईरान उस से स्वतन्त्र हो गया। ईरान के उत्तरपूर्वी पहाड़ी हिस्से को आजकल खुरासान कहते हैं। वहाँ पार्थव नाम की एक इरानी जाति रहती थी, जिस से उस प्रदेश का नाम भी तब पार्थव था। पार्थव जाति के मुखिया अरसक ने ईरान को स्वतन्त्र कर अपने वंश का राज्य स्थापित किया। सातवाहनों की तरह उस के वंशजों ने भी प्रायः ४५० बरस राज्य किया। पार्थवों की प्रधानता होने के कारण इस युग में सारे ईरान का नाम पार्थव (Parthia) ही रहा।

पार्थव देश के उत्तरपूरब बाख्त्री (बाह्लीक या बलख) और सुग्द (वंक्षु-सीर-दोआब) प्रदेश थे। हखामनी साम्राज्य के समय और उस के पहले से सुग्द में शक लोग रहते थे (दे० नक्शा ८)। उन की एक शाखा अपगानिस्तान के दक्खिन पच्छिम जा बसी थी, जिस से उस प्रदेश का नाम शकस्थान हुआ (दे० नक्शा १०), जो अब भी सीस्तान कहलाता है। अलक्सान्दर ने बाख्त्री और सुग्द दोनों को जीता था [४ §१२]। २५० ई० पू० के लगभग वहाँ का यूनानी शासक सेलेउकी साम्राज्य से स्वतन्त्र हो बैठा। प्रायः सौ बरस तक बाख्त्री में इन यूनानियों का स्वतन्त्र राज्य रहा। इन का भारतवर्ष से भी घनिष्ठ सम्बन्ध था। सेलेउकी साम्राज्य अब केवल पच्छिमी एशिया में, सीरिया के चौगिर्द, रह गया।

§३ डिमित्र, शातकर्णि (१म) और खारवेल—२०५ ई० पू० तक काबुल दून में राजा सुभागसेन राज करता था। वह सम्भवतः मौर्यों का नियुक्त किया हुआ वहाँ का शासक था। उस के मरने पर बाख्त्री के यूनानियों ने काबुल, हरउवती और गदरोसिया को जीत लिया। फिर उन्हों ने पंजाब सिन्ध पर भी चढ़ाई की। १९०-१८५ ई० पू० के बीच कभी बाख्त्री के राजा देमेत्रिय (Demetrius) ने मगध साम्राज्य पर चढ़ाई कर मथुरा और साकेत (अयोध्या) तक ले लिया और पाटलिपुत्र को भी जा घेरा।

उस समय महाराष्ट्र में सिमुक का भतीजा शातकर्णि (१म) राज्य पर

रहा था, और कलिंग में चेदि राजा खारवेल। खारवेल शातकर्णि को दो बार हरा कर उस से वेणगंगा-वर्धा का प्रदेश छीन कर विदर्भ पर अपनी प्रभुता जमा चुका था। देमेत्रिय या दिमित के हमले की खबर पा कर खारवेल मगध की तरफ बढ़ा; परन्तु दिमित उस के आने की खबर सुन कर उलटे पाँव भाग गया। खारवेल ने उस के बाद उत्तरापथ पर भी चढ़ाई की। वह मगध के रास्ते लौटा। उधर सुदूर दक्खिन पर भी खारवेल ने चढ़ाई की। पांड्य
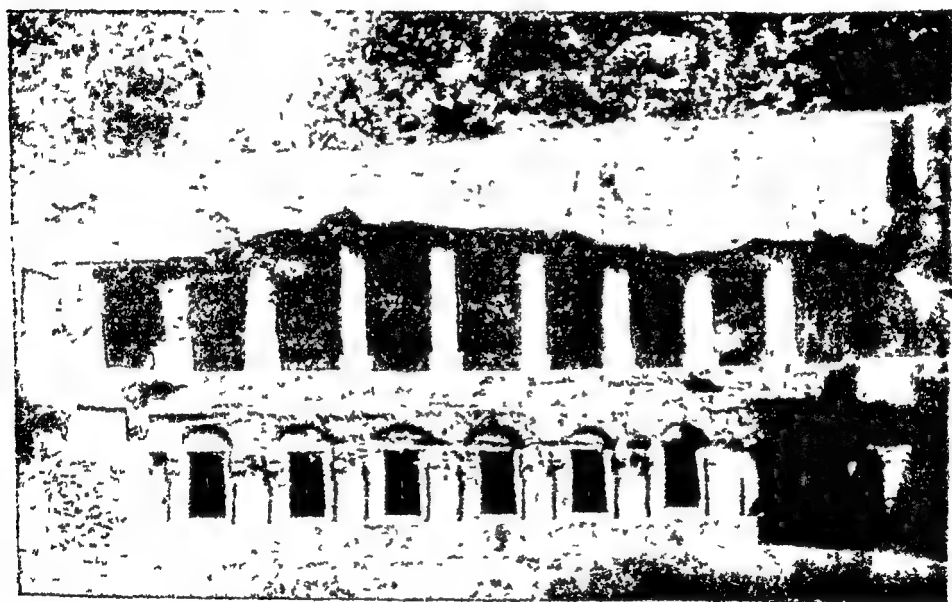
रानीगुम्फा

खंडगिरि (जि० पुरी) की चट्टान में खारवेल की रानी का कटवाया हुआ गुहा-विहार

[भा० पु० वि०]

देश के समुद्र में मोती निकाले जाते थे। उस व्यापार के कारण पांड्य बहुत धनी थे। अब मोतियों के जहाज कलिंग के राजा के पास भेंट में आने लगे। खारवेल जैन धर्म का अनुयायी था। उस के कारनामों का वृत्तान्त पुरी ज़िले में भुवनेश्वर के पास हातीगुम्फा नाम की एक गुफा की चट्टान पर खुदा है।

§४. **पुष्यमित्र**—मौर्य राज्य की निष्क्रियता से ऊब कर प्रजा और
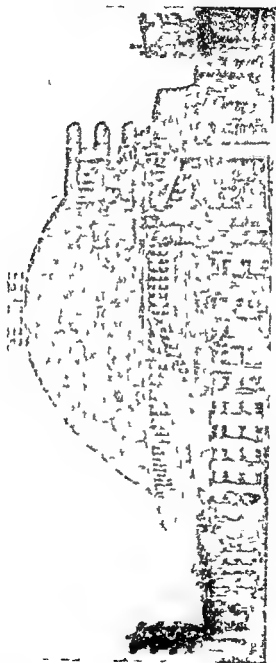
साँची स्तूप, दक्षिण पश्चिम ओर का दृश्य

सेना बिगड़ उठी। सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने समूची सेना के सामने राजा को मार कर शासन अपने हाथ में कर लिया। पुष्यमित्र ने समूचे मध्यदेश पर अधिकार करके यूनानियों से भी लड़ाइयाँ लड़ीं। मद्र देश की राजधानी शाकल (स्यालकोट) तक उस ने विजय किया। उस ने बौद्धों का बहुत दमन किया। उस का बेटा अग्निमित्र और पोता वसुमित्र था। वसुमित्र के हाथ एक घोड़ा छोड़ बाद में उस ने अश्वमेध भी किया। महाकवि कालिदास ने वही वृत्तान्त मालविकाग्निमित्र नाटक में लिखा है।

पुष्यमित्र के पीछे शुंग वंश का आधिपत्य मथुरा तक निश्चय से बना रहा। शुंगों के सामन्त मथुरा में, उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा में, कौशाम्बी में तथा भारहुत (बघेलखंड में सतना के पास) में राज्य करते थे। शुंग राजा पाटलिपुत्र के बजाय अयोध्या में और कभी कभी आकर-देश (पूरबी मालवा) की राजधानी विदिशा (भेलसा) में भी रहते थे। पुष्यमित्र असल में विदिशा का ही रहने वाला था। उसी विदिशा के पास साँची का प्रसिद्ध स्तूप है जिस के चारों तरफ पत्थर की सुन्दर वेदिका (जँगला) शुंगों के समय की या उन के कुछ पहले की बनी हुई है।

§ ५. **यवन राज्य**—उत्तर की तरफ भी अनेक उतार-चढ़ावों के बाद अफगानिस्तान और पच्छिमी पंजाब में चार छोटे-छोटे यूनानी राज्य स्थापित हो गये। एक कापिशी में, दूसरा

'कविसिए नगरदेवता' (कापिशी की नगरदेवी) चित, राजा एवुक्रतिद (Eucratides) का चेहरा; पट,—कापिशी की नगरदेवी।
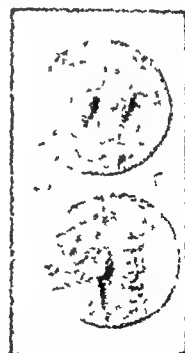
'पखलावदि देवदा' (पुष्करावती देवी) चित, नन्दी की मूर्ति, लेख—उषभे (वृषभः); पट, पुष्करावती देवी।

पुष्करावती में, तीसरा तक्षशिला में और चौथा शाकल में था। इन सब राज्यों के बहुत से सिक्के अब तक मिलते हैं। उन सिक्कों के एक तरफ प्राय यूनानी और दूसरी तरफ प्राकृत लेख होता है। कापिशी के कई सिक्कों पर "कापिशी की नगर देवता" की मूर्ति रहती है और पुष्करावती के सिक्कों पर नन्दी और "पुष्करावती देवी" की। तक्षशिला और शाकल के सिक्कों पर यूनानी और भारतीय देवताओं की मूर्त्तियाँ तथा बुद्ध के धर्मचक्र आदि के निशान होते हैं।

शाकल में मेनन्द्र (Menander) नाम का यूनानी राजा बड़ा विजेता

मेनन्द्र का सिक्का
चित, यूनानी लेख, पट, प्राकृत लेख
[श्रीनाथ साह संग्रह]

हुआ। वह बौद्ध हो गया और उस ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भी यत्न किया।

तक्षशिला के एक यूनानी राजा अन्तलिखित का दूत शुंग राजा के पास विदिशा में गया था। वह यूनानी दूत हेलिउदोर वासुदेव (विष्णु) का उपासक था। वासुदेव की पूजा के लिए उसने वहाँ एक गरुड-ध्वज बनवाया, जो गरुड़ की मूर्ति के बिना अब तक खड़ा है।

बेलन्म में हेलिउदोर का गरुडध्वज, जो खाम बाबा नाम से प्रसिद्ध है।
[फोटो, रा० साङ्कृत्यायन]

§६ गण-राज्यों का पुनरुत्थान—यूनानी राज्यों और शुंग साम्राज्य के बीच पूरबी पंजाब, राजस्थान और सुराष्ट्र में बहुत से संघ राष्ट्र फिर उठ खड़े

हुए। उन के सिक्के अब तक पाये जाते हैं। अब संघ के बजाय गण शब्द
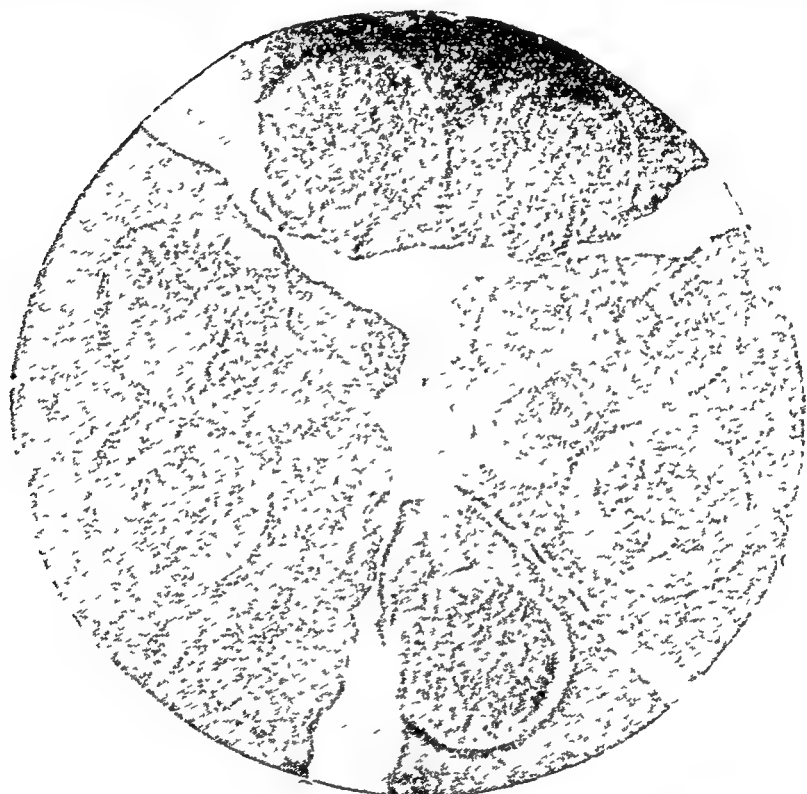
यौधेय गण के सिक्के ढालने के मिट्टी के साँचे जो उनकी रोहतक टकसाल के खँडहरों से पाये गये हैं।
[डा० बीरबल साहनी द्वारा पुनरुद्धार, श्रीमती सावित्री साहनी के सौजन्य से]

चल पड़ा था, क्योंकि तब से अब बौद्ध संघ समझा जाने लगा था। सतलज के काँठे पर और रोहतक प्रदेश में यौधेय नाम का शक्तिशाली गणराज्य था। यौधेयों के वंशज आज भी उसी इलाके में रहते और जोहिये कहलाते हैं। कुणिन्द नाम का गण राज्य हिमालय की तराई में व्यास से जमना तक था। प्रसिद्ध मालव गण यूनानियों के दबाव के कारण पंजाब छोड़ कर चम्बल के काँठे में आ बसा। सुराष्ट्र में वृष्णिगण था। दक्खिन में सातवाहन वंश का राज्य बना रहा।
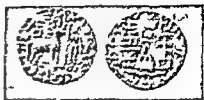
कुणिन्द गण का सिक्का
[पटना संग्र०]

वृष्णिगण का सिक्का

§ ७ उज्जयिनी के लिए संघर्ष—मौर्यों के बाद भारतवर्ष के चार मंडलों में चार राजशक्तियाँ उठ खड़ी हुईं, पर पच्छिमी मंडल में ऐसी कोई शक्ति न उठी। इसी कारण उस की राजधानी उज्जयिनी के लिए चारों तरफ की शक्तियाँ आपस में छीनझपट करती रहीं। प्रत्येक विजेता की उसी पर दृष्टि थी। आगे कई शताब्दियों तक भारतवर्ष के इतिहास की मुख्य रंगस्थली उज्जयिनी बनी रही। १०० ई० पू० में यहाँ एक नई शक्ति प्रकट हुई जिसका वृत्तान्त आगे दिया जायगा है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ [illegible] युग को सातवाहन-युग कहने का क्या कारण है?

२ [illegible] और [illegible] कहाँ रहते थे? [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible] के विषय में आप क्या जानते हैं?

५ [illegible], कुणिन्द और [illegible] का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

६ [illegible]

७. अलक्सान्दर के समय मालव-गण कहाँ था? उसके वर्त्तमान मालवा तक प्रवास का वृत्तान्त दीजिए।

८. यौधेयों और कुणिन्दों के गणराज्य कहाँ अवस्थित थे?

९. यवनों ने भारत में बसने पर इस देश की संस्कृति को अपना लिया था, इसके कुछ उदाहरण दीजिए।

अध्याय २

शक, सातवाहन, पह्लव

(लग० १०० ई० पू०—७८ ई०)

§ १. **कम्बोज वाह्लीक में ऋषिक तुखारों का आना**—हमारे देश मे जिस समय अशोक राज कर रहा था, लगभग उसी समय चीन में एक बडा राजा हुआ, जिस ने वहाँ के नौ राज्यों को जीत कर सारे चीन* को एक कर दिया। उस राजा का नाम शीः हुआङती अर्थात् पहला सम्राट् प्रसिद्ध हुआ। चीन के उत्तर इर्तिश और आमूर नदियों के बीच हूण लोग रहते थे। वे प्रायः सभ्य चीनी राज्यो पर हमले करके उन्हें सताया करते थे। शीः हुआङती ने अपने देश की समूची उत्तरी सीमा पर एक मजबूत दीवार बनवा दी जिस से हूण लोग चीन के अन्दर न घुस पायें। तब हूणों ने पच्छिम तरफ रुख किया।

तिब्बत और मंगोलिया के बीच चीन का जो भाग गरदन की तरह निकला हुआ है वह कानसू प्रान्त है। उसके पच्छिम लोपनोर और तारीम का देश है, जिसे अब हम चीनी तुर्किस्तान कहते हैं। तुर्क और हूण एक ही जाति के दो नाम हैं। हम कह चुके हैं कि उस समय तक उन का घर इर्तिश के पूरब था और मध्य एशिया में वे न पहुँच पाये थे। कानसू से लेकर यूनान की सीमा

*अर्थात् ठेठ चीन को, न कि आजकल के चीन-साम्राज्य को जिसमे मञ्चूरिया, मंगोलिया, चीनी तुर्किस्तान और तिब्बत भी शामिल हैं।

कि वह हमारे देश में शकद्वीप* कहलाने लगा, और पच्छिमी लोग उसे हिन्दी शकस्थान (Indo-Skythia) कहने लगे। भारत में वह शकों का केन्द्र था, और वहीं से वे दूसरे प्रान्तों की तरफ बढ़े।

§३. उज्जयिनी मथुरा और पंजाब में शक—शकों का सब से पहला धावा सुराष्ट्र (काठियावाड़) और उज्जयिनी पर हुआ। उस घटना के विषय में बहुत से आख्यान प्रसिद्ध हैं। इन के अनुसार शकों ने १०० ई० पू० में उज्जयिनी जीती, और ५८ ई० पू० तक वहाँ राज्य किया; तब प्रतिष्ठान से राजा विक्रमादित्य ने आ कर उन्हें निकाल दिया। इसी समय के नहपान नामक शक सरदार के सिक्के और उस के दामाद उषवदात के लेख इस प्रदेश में मिलते हैं। उषवदात ने पुष्कर के पास मालव गण को हराया। दक्खिन की तरफ नहपान का अधिकार उत्तरी महाराष्ट्र और कोंकण तक था। उस की राजधानी भरुकच्छ (भरुच) थी। वह सिक्कों पर अपने को "महाक्षत्रप" कहता है, क्योंकि वह सिन्ध के महाराजा का क्षत्रप अर्थात् सूबेदार था। उषवदात जैन था। नासिक और जुन्नर में उस ने बौद्ध भिक्षुओं के लिए पहाड़ कटवा कर कई विहार बनवाये। वैदिक ब्राह्मणों के यज्ञों के लिए भी उस ने बहुत दान किये।

उज्जयिनी से पुष्कर होता हुआ शक राज्य मथुरा तक पहुँच गया। मथुरा से तब शुंग राज्य मिट गया और इस से शुंग राज्य को ऐसा धक्का लगा कि कुछ समय बाद वह मगध से भी उठ गया। अन्तिम शुंग राजा से काण्व वंश के एक ब्राह्मण अमात्य ने राज्य छीन लिया (७३ ई० पू०)। काण्व वंश ने मगध में चार पीढ़ी राज्य किया। उधर सिन्ध से शक विजेता सीधे गन्धार की तरफ बढ़ते हुए स्वात की दून तक पहुँच गये (लग० ६५ ई० पू०)। उन की इस बाढ़ में पंजाब के यवन राज्य बह गये। तो भी काबुल में एक छोटा सा यूनानी राज्य तुखारों और शकों के बीच घिरा हुआ कुछ समय के लिए बचा रहा।

---

* द्वीप शब्द का अर्थ सदा टापू ही न होता था। प्रायः वह दोआब के अर्थ में और कभी कभी देश के अर्थ में भी आता था।

§४ **गौतमीपुत्र शातकर्णि**—पुष्करावती से पूना तक शकों का वह साम्राज्य बहुत थोड़े ही अरसे तक टिका। प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने

नहपान वंश से राज्य छीनने के बाद गौतमीपुत्र ने उस के सिक्कों को अपनी छाप लगा कर चलाया। इन सिक्कों पर चेहरा नहपान का है, उस के ऊपर के चिह्न गौतमीपुत्र के हैं। (दुर्गाप्रसादसंग्रह)

गौतमीपुत्र के सिक्के
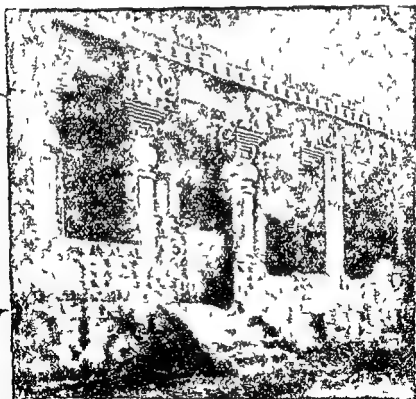
नासिक में राजा गौतमीपुत्र का बनवाया हुआ गुहा विहार [भा० पु० वि०]

प्रतिष्ठान से आ कर ५८ ई० पू० में उज्जयिनी जीती और शकों का संहार कर विक्रम-संवत् चलाया। विक्रमादित्य उस राजा का विरुद था। उस का असल नाम गौतमीपुत्र शातकर्णि था। उसकी माता गौतमी बालश्री के लेख अब तक मौजूद हैं। उन के अनुसार गौतमीपुत्र ने नहपान के वंश को "जड़ से उखाड़" कर सारे सातवाहन राज्य पर फिर अधिकार किया, और बहुत से नये प्रदेश भी जीते थे। उज्जयिनी के साथ-साथ मथुरा से भी शकों की सफाई हो गई।

शुंग-सातवाहन-युग में युद्ध का दृश्य, साँची स्तूप, पच्छिमी तोरण, पिछली तरफ, निचली बँडेरे पर से

§ ५. मालव या विक्रम संवत्—राजा विक्रमादित्य ने संवत् चलाया यह बात पूरी तरह ठीक नहीं है। पुराने लेखों में उस संवत् को मालव गण का संवत् अथवा "मालव गण की स्थिति (ठहराव, मन्तव्य) से" चला हुआ

संवत् कहते हैं। उसका नाम विक्रम-संवत् बहुत पीछे पड़ा। ऐसा जान पड़ता है कि मालव गण और राजा गौतमीपुत्र शतकर्णि ने इकट्ठे मिलकर उज्जयिनी में शकों को हराया और तब से वह संवत् चला।

§६ **कन्दहार के पह्लव**—उधर मिथ्रदात (२य) के बाद पार्थव साम्राज्य के कमजोर हो जाने पर पूरबी इरान या शकस्थान में एक छोटा पार्थव राज्य अलग हो गया। पार्थव जाति को पुरानी फारसी और संस्कृत में पह्लव या पह्नव कहते थे। इन पह्नवों ने अपना राज्य शकस्थान से हरउवती की तरफ बढ़ाया, वहाँ से बढ़ कर काबुल के यूनानी राज्य को जीता और गन्धार तथा सिन्ध को भी शकों से छीन लिया (लग० ४५ ई० पू०)। तब शकों का राज्य कहीं भी न रह गया। हरउवती के पह्लवों ने लगभग ईसवी सन् के शुरू तक अफगानिस्तान, पंजाब और सिन्ध पर राज्य किया।

इन पह्नव राजाओं में वॉनोनिस, उसके बेटे अय या अज और अज के

अय या अज का सिक्का—घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति। [श्रीनाथ साह संग्रह]

गुदफर का सिक्का, चित, राजा का चेहरा, पट, देवी के चौगिर्द प्राकृत लेख—'महाराज गुदफरनस त्रातारस'।

बेटे गुदफर का विस्तृत राज्य रहा। वॉनोनिस ने काबुल जीता। अज और गुदफर समूचे उत्तर पच्छिमी भारत के राजा थे।

पह्नव राजा प्रायः बौद्ध थे। हिन्दूकुश के दक्खिन के यूनानी सिक्कों की तरह शकस्थान के इन राजाओं के हरउवती में चलने वाले सिक्कों पर भी

प्राकृत अवश्य लिखी रहती थी। इसका यह अर्थ है कि काबुल और कन्दहार के प्रदेश तब स्पष्ट रूप से भारत में गिने जाते थे।

§ ७. **सातवाहनों की चरम उन्नति**—दूसरी शताब्दी ई० पू० में भारत मे चार बडी शक्तियाँ थीं। शक लोग पाँचवी शक्ति के रूप में पहलेपहल पच्छिमी-मंडल मे प्रकट हुए। कलिंग का राज्य शकों से पहले ही समाप्त हो गया था। मध्यदेश के शुंग राज्य और उत्तरापथ के यूनानी राज्यों को शकों ने मिटा दिया। तब केवल दो शक्तियाँ बची, एक शक, दूसरे सातवाहन। पहले सातवाहनो को कुछ दबना पड़ा, पर पीछे उन्हो ने शकों को "जड़ से उखाड़ दिया।" उस के बाद ५७ ई० पू० से सातवाहनों की शक्ति बढ़ती ही गई। गौतमीपुत्र का बेटा वासिष्ठीपुत्र पुलुमावी भी बडा योग्य राजा हुआ। उस ने अन्दाजन ४४ से ८ ई० पू० तक राज किया। २८ ई० पू० मे सातवाहनो ने काण्व राजा से मगध भी जीत लिया। प्रायः तभी रोम मे गणराज्य के स्थान मे साम्राज्य स्थापित हुआ। पुलुमावी ने रोम-सम्राट् के पास दूत भेजे।

प्रायः सौ बरस तक सातवाहन भारत के सम्राट् रहे। उन की दक्खिनी सीमा तमिळ राष्ट्रो तक थी, और वे राष्ट्र भी उन के प्रभाव मे रहते थे। सातवाहनो का दरबार विद्या का केन्द्र बन गया। सातवाहन युग की समृद्धि अद्वितीय थी। भारतवर्ष के सुदूर कोनो मे जो छोटे-मोटे राष्ट्र उन के साम्राज्य के बाहर बचे हुए थे, वे भी प्रत्येक बात में सातवाहन साम्राज्य का अनुकरण करते थे। इस युग के सातवाहनों मे से राजा हाल का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ हूण ऋषिक और तुखारों के मूल स्थान कहाँ थे ?

२. कम्बोज देश तुखार देश कब और क्यों बना ?

३. आधुनिक सिन्ध प्रान्त का नाम शकद्वीप कब और कैसे पड़ा ?

४. सुग्द किस देश का नाम था ? शकों के वहाँ से भारत तक प्रवास का मार्ग क्या था ?

५ विक्रम संवत् किस घटना से आरंभ हुआ और उसका प्रवर्त्तक कौन था ?

६ गुदफर किस वंश का था और किस प्रदेश पर शासन करता था ?

७ निम्नलिखित का संक्षिप्त परिचय लिखिए—
ऋषिक, नहपान, हरउवती, उषवदात और गोतमी बालश्री।

अध्याय ३

ऋषिक और सातवाहन

(लग० ३० ई०—२२५ ई०)

§१ तारीम काँठे में चीन और हिन्द का मिलना—हम ऋषिक तुखारा को पामीर, वदख्शाँ और बलख में छोड़ आये हैं। हूणों ने चीन का ठीक पच्छिमी दरवाजा घेर लिया, यह बात चीन के सम्राटों को गवारा न हुई। उन्होंने अपने पुराने पड़ोसी ऋषिकों से हूणों के विरुद्ध सहायता लेनी चाही, और इस विचार से चाङ किएन नामक एक दूत को ऋषिकों के पास भेजा (१३८ ई० पू०)। रास्ते में दस बरस हूणों की कैद काटने के बाद १२७ ई० पू० में वह वक्षु (आमू दरिया) के किनारे ऋषिक डेरे में पहुँचा। बलख के बाजार में उसने चीन का रेशम और बाँस की बनी चीजें बिकती देखीं, और पूछा कि वे कहाँ से आई हैं। तब उसे मालूम हुआ कि हिन्दूकुश के दक्खिन तरफ 'शिन्तु' (सिन्धु, हिन्द) नाम का विशाल और सभ्य देश है, जिस के आरपार हो कर वह माल आता है। किरात लोग आसाम के रास्ते चीन और भारत की चीजों का विनिमय करते थे, पर दोनों देशों के शिक्षित लोग तब तक न जानते थे कि वे ठीक कहाँ से वह माल लाते हैं। इधर उत्तर की तरफ चीन के कानसू और भारत के कम्बोज देश के बीच केवल तारीम नदी का लम्बा काँठा था, जो ऋषिकों और तुखारों का मूल निवासस्थान था, और जिस के पूरबी छोर तक भारतीय बस्तियाँ पहुँच गई थीं। चाङ किएन उस के इस पार निकल आया था, जहाँ से आगे 'शिन्तु' और पार्थव देशों को रास्ते जाते थे। इस प्रकार सभ्य जगत् के पूरबी और पच्छिमी भाग, जो अढाई हजार बरस से एक दूसरे के लिए अन्धेरे में पड़े थे, प्रकाश में आ गये।

चाङ-किएन के वापिस पहुँचने पर चीन के सम्राट् ने अपने इस पच्छिमी रास्ते को खुला और सुरक्षित रखने का पक्का निश्चय कर लिया। १२७ से ११६ ई० पू० तक चीनी सेनाओ ने हूणों को मंगोलिया के उत्तर तक मार भगाया। ऋषिक-तुखारो को अपना पुराना देश भी वापिस मिला। १०२ ई० पू० में एक चीनी सेना सीर की उपरली दून मे फरगाना (खोकन्द) तक समूचे मध्य एशिया को जीतती चली आई।

कानसू और कम्बोज के बीच के इस देश को चीन वालों ने यों दूसरी शताब्दी ई० पू० के अन्त मे पार किया, भारतीय बस्तियाँ वहाँ उस के डेढ़ शताब्दी पहले—अशोक के समय से ही बस रही थी। अशोक के एक अभिलेख मे उत्तरापथ के नाभक और नाभपंक्ति देशों का उल्लेख है। नाभक का पिछला चीनी रूप नफोत्रो है और वह उपनिवेश लोपनोर के काँठे में
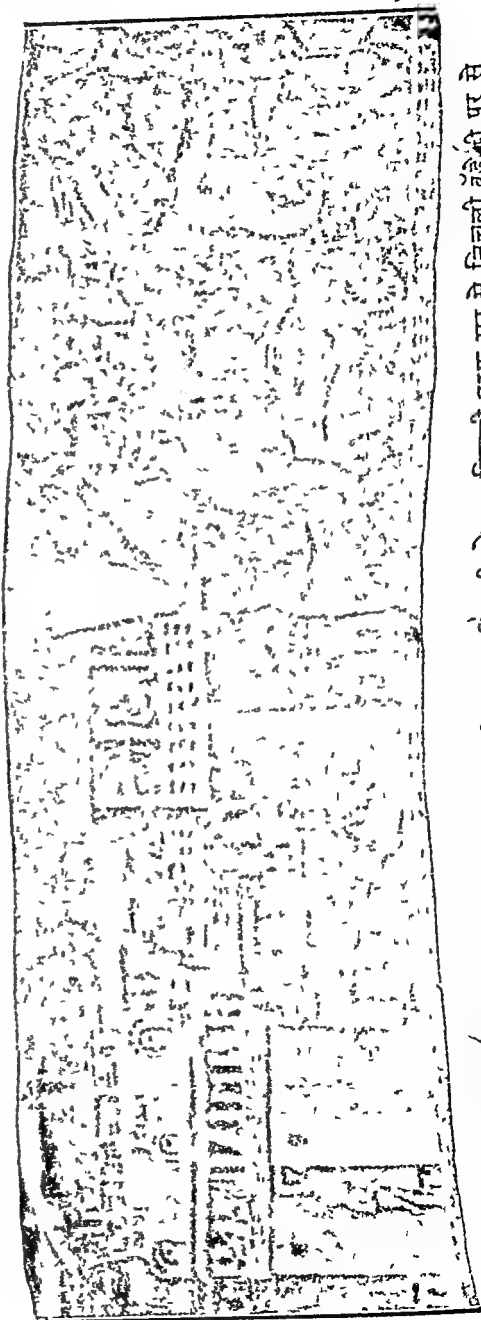
शुंग-सातवाहन-युग में गढ़ पर चढ़ाई का दृश्य; साँची स्तूप, दक्खिनी तोरण, पिछली तरफ सब से निचली बँडेरी पर से

था। इस से प्रतीत होता है कि खोतन से लोपनोर तक तो भारतीय उपनिवेशक अशोक युग में ही पहुँच चुके थे। उस के बाद उन्हों ने तारीम के उत्तर तरफ भी उपनिवेश बसाये। चीनियों के आने से पहले समूचे तारीम काँठे में वे बस चुके थे यह इस से सूचित होता है कि चीनियों ने वहाँ के स्थानों के नाम भारतीयों से ही लिये। सीता (यारकन्द) नदी के भारतीय नाम को अपना कर चीनी लोग उसे अब तक सीनो कहते हैं। खोतन का पुराना आख्यान है कि वहाँ राजा विजयसम्भव हुआ, जिस के समय में वहाँ के पशुपालकों को आर्य वैरोचन ने पहले पहल लिखना सिखाया। यह बात आधुनिक विद्वानों के मत से दूसरी शताब्दी ई० पू० में हुई। इस के बाद से तारीम के काँठे में भारतवर्ष की जनता और सभ्यता इस प्रकार जम गई कि आधुनिक विद्वान् उसे प्राचीन इतिहास में 'चीन हिन्द' (Ser-india) कहते हैं। 'चीन हिन्द' या ऋषिक तुखारों के देश में ऋषिकों के हूणों से भगाये जाने के बाद एक शताब्दी के अन्दर (१६० ६० ई० पू०) दो बड़ी बातें हो गईं। एक तो यह कि ऋषिक तुखार लोग इस अरसे में बहुत कुछ सभ्य हो गये, और दूसरे उन के द्वारा चीन और भारत का परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो गया।

§२ कुषाण कफस—अब धीरे धीरे ऋषिक लोग हिन्दूकुश के इस पार भी उतरने लगे। खास कर कम्बोज देश से पूरबी हिन्दूकुश के घाटों को पार कर स्वात और सिन्ध की दूनों में हो कर वे सीधे गन्धार में आ निकले। हिन्दूकुश के दक्खिन उन की पाँच छोटी छोटी रियासतें बन गईं। कुछ समय बाद कुषाण* कफस नाम का एक शक्तिशाली व्यक्ति उन में से एक का सरदार हुआ। उस ने बाकी चारों रियासतों को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। यह घटना उस समय की है जब हरउवती के पह्लव राजा काबुल को जीत रहे थे।

*यह माना जाता रहा है कि कुषाण ऋषिकों की एक शाख थी, अतः वह कफस (कस) के वंश का नाम है। स्व० जायसवाल जी का कहना था कि कुषाण उस राजा का व्यक्तिगत नाम था। उस के वंशजों और उत्तराधिकारियों को भी साधारणतः कुषाण कह दिया जाता है।

कुषाण कफ्स उस समय तो चुप रहा, किन्तु पह्लव राज्य के कमजोर होने पर उस ने समूचे अफगानिस्तान, कपिश और पच्छिमी-पूरबी गन्धार (पुष्करावती, तक्षशिला) को जीत लिया। बलख और कम्बोज तथा चीन-हिन्द के कुछ हिस्से पर तो उस का अधिकार पहले ही से था। उस के राज्य की पच्छिमी सीमा अब पार्थव राज्य से लगने लगी। यह राज्य स्थापित हो जाने पर उस ने अपने दूत चीन भेजे, और उन के हाथ बौद्ध धर्म की एक पोथी पहले पहल चीन पहुँची (२ ई० पू०)। दीर्घ शासन के बाद अस्सी बरस की आयु मे उस की मृत्यु हुई (लग० ३० ई०)।

§ ३. **ऋषिक-सातवाहन-युद्ध**—कुषाण कफ्स का बेटा विम कफ्स था[1]। उस का राज्यकाल अन्दाजन ३०–७७ ई० है। कुषाण बौद्ध था, पर विम शैव। उस ने समूचा पंजाब, सिन्ध और मथुरा प्रान्त जीत लिये। उस के साम्राज्य की सीमाएँ दो तरफ पार्थव और चीन साम्राज्य से लगती थी, अब तीसरी तरफ सातवाहन साम्राज्य से लगने लगी। उस की राजधानी बदख्शाँ में ही रही।
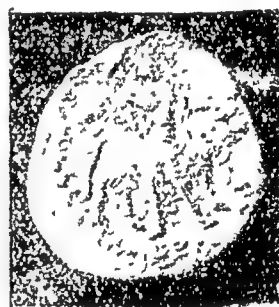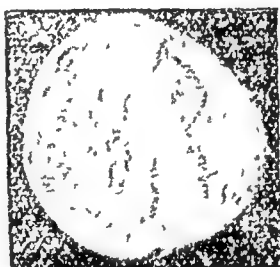
विम कफ्स का सिक्का

चित, राजा विम अग्नि में आहुति देते हुए, पट, नन्दी के सहारे खड़े शिव। [श्री० सा० स०]

पंजाब मे 'सिरकप' और शालिवाहन की लड़ाई की कहानी लोग अब तक

---

[1] पंजाब की ख्यातों में उस का नाम 'सिरकप' प्रसिद्ध है। 'सिरकप' का अर्थ अब कहानी सुनाने वाले करते हैं—सिर काटने वाला; पर असल में वह 'सिरि कप' अर्थात् 'श्री कफ्स' है। उसे रिसालू भी कहते हैं, जो कि 'ऋषिक' का तुच्छतासूचक रूप है।

सुनाते हैं। प्रसिद्ध है कि विक्रमादित्य के १३५ वर्ष पीछे शक और शालिवाहन राजाओं की मुलतान के पास करोड़ नामक जगह पर लड़ाई हुई, जिस में शक राजा मारा गया। भारतवर्ष में ऋषिक लोग शक ही कहलाते थे, क्योंकि वे शक परिवार के थे। और जब उन्हों ने गन्धार से आगे बढ़ना शुरू किया तब मानो सौ बरस पुराना शकों और सातवाहनों का युद्ध फिर से छिड़ा माना गया। सातवाहनों के साथ कुछ गणराज्य भी थे। करोड़ यौधेयों के राज्य में पड़ता था। करोड़ की लड़ाई के बाद भी वह लम्बी कशमकश बन्द न हुई।

§४ मध्य एशिया में खोतन और चीन का साम्राज्य—चीन हिन्द में अनेक छोटे-छोटे भारतीय राज्य थे। ६० ई० से उन में से खोतन राज्य शक्तिशाली हो उठा और नीया से काशगर तक के १३ राज्य उस के आधिपत्य में आ गये। तभी चीन की ओर से पानछाओ नामक सेनापति चीनहिन्द में आया। उस ने खोतन से मैत्री कर ली और उस के सहयोग से वहाँ के सब राज्यों को अधीन कर तारीम के उत्तर तरफ कुचि को अपना शासन केन्द्र बनाया (७३-१०२ ई०)। पानछाओ ने पच्छिमी मध्य एशिया को भी जीत कर कास्पियन सागर के तट पर चीन का झंडा जा गाड़ा, जिससे रोम और चीन साम्राज्यों की सीमाएँ एक दूसरे के बहुत निकट आ गईं। पर १०२ ई० के बाद मध्य एशिया से चीनी शक्ति की बाढ़ एकाएक उतर गई।

§५ देवपुत्र कनिष्क—इसी समय ऋषिकों की एक छोटी शाखा में राजा कनिष्क हुआ। उस ने खोतन के राजा विजयकीर्त्ति के साथ मिल कर फिर भारत के मध्यदेश पर चढ़ाई की। विजयकीर्त्ति विजयसम्भव के वंश का था। उस ने और कनिष्क ने साकेत (अयोध्या) को घेर लिया, और उस के बाद पाटलिपुत्र को भी जीता। वहाँ से कनिष्क बौद्ध विद्वान् अश्वघोष को अपने साथ ले गया। मध्यदेश और मगध पूरी तरह कनिष्क के हाथ में आ गये और वहाँ उस के क्षत्रप राज करने लगे।

मध्यदेश में कनिष्क का आधिपत्य, जान पड़ता है, नेपाल पर भी पहुँच गया। नेपाल में मूलतः किरात लोग रहते थे। वह अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत था, और अशोक की बेटी और दामाद वहाँ जा बसे थे, तो भी किरातों

किया। पेशावर और अन्य स्थानों में उस ने अनेक स्तूप विहार आदि बनवाये। अपनी राजधानी को उस ने सातवाहनों की तरह विद्या का केन्द्र बनाया महाकवि और दार्शनिक अश्वघोष के अतिरिक्त आयुर्वेद का प्रसिद्ध आचार्य चरक भी उस की सभा में था। कनिष्क की प्रेरणा से बौद्धों की चौथी संगीति कश्मीर में श्रीनगर के पास हुई। अशोक की तरह कनिष्क ने भी दूर दूर तक बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया। उस का नाम आज भी तिब्बत, खोतन और मंगोलिया तक याद किया जाता है। उस के सिक्कों पर उसका नाम 'कनिष्क शाहानुशाह' अर्थात् 'शाहों का शाह' लिखा होता है। शकों के सरदार शाहि कहलाते थे। 'शाह' उसी 'शाहि' का रूपान्तर है। चीनी सम्राटों की नकल पर कनिष्क अपने को 'देवपुत्र' भी कहता था।

§६. उज्जयिनी में नये शक वंश की स्थापना—मध्यदेश और मगध ऋषिक राजा के हाथ आ जाने के बाद जब सातवाहन साम्राज्य दक्खिन तक ही सीमित रह गया तब फिर शकों सातवाहनों का संघर्ष उज्जयिनी के क्षेत्र में जा पहुँचा, जिस के लिए पेशावर और पैठन के साम्राज्यों में छीन झपट शुरू हो गई। लग० ११० ई० में ऋषिक सम्राट् की तरफ से चष्टन नाम का शक महाक्षत्रप उज्जयिनी में स्थापित हो गया। किन्तु पीछे उस का प्राय सारा राज्य सातवाहन राजा ने छीन लिया।

§७ कनिष्क के वंशज, शक रुद्रदामा और यज्ञश्री शातकर्णि—कनिष्क के बाद उस के वंश में सम्राट् हुविष्क (कनिष्काब्द ३३ ६०) और

पर कनिष्क का सामान्य रूप काल का मामला तब था जो ७३ १०२ ई० के बाद होना सम्भव न था। इसके अतिरिक्त लिपि के आधार पर विम और कनिष्क के बीच ~ ३० वर्ष का अन्तर मानना आवश्यक है। पर सब विद्वानों ने अभी तक इस विस्तृत विषय के सब पहलुओं पर पूरा ध्यान नहीं दिया, या उनका इन युक्तियों से समाधान नहीं हुआ, जिससे कनिष्क के वंशजों और पूर्वजों, हखामनी के पहलवों, नहपान आदि पहले क्षत्रपों, उनके समकालीन सातवाहनों एवं [illegible] आदि के समय के विषय में भी यह भिन्न मत प्रचलित है। इन तिथियों में प्राय २० से ५० वर्ष का फेरफार रहता है।

वासुदेव (कनि० ७४-९८) प्रसिद्ध हुए। सब मिला कर कनिष्क वंश ने भारत के मध्यदेश में एक शताब्दी राज किया।

हुविष्क का सिक्का
[[illegible]]

उज्जयिनी में चष्टन के बेटे ने राज्य नहीं किया। उस के पोते रुद्रदामा को अपनी बेटी सातवाहन राजकुमार को ब्याह में देनी पड़ी। परन्तु पीछे रुद्रदामा ने अपने समधी को दो बार हराया, और १५० ई० तक उस ने सारे सिन्ध, मारवाड़, कच्छ, सुराष्ट्र, गुजरात, मालवा और उत्तरी महाराष्ट्र पर अधिकार कर लिया। सिन्ध मारवाड़ की उत्तरी सीमा पर यौधेय गण था। रुद्रदामा गर्व से लिखता है कि "सब क्षत्रियों में वीर प्रसिद्ध हो जाने से जिन का दिमाग फिर गया था,

चष्टन
सिक्के पर से बढ़ाया हुआ चित्र

रुद्रदामा
सिक्के पर से बढ़ाया हुआ चित्र

और जो किसी के अधीन न होते थे, उन यौधेयों को" उसने "जबरदस्ती उखाड़ डाला।" यूनानियों, शकों और पह्लवों की चढ़ाइयों के बीच अब तक यौधेयों ने अपनी स्वतन्त्रता बराबर बनाये रक्खी थी।

रुद्रदामा के पीछे शक क्षत्रपों से सातवाहनों ने फिर कई प्रदेश ले

लिये। दूसरी शताब्दी ई० के पिछले भाग में यज्ञश्री शातकर्णि नामक सातवाहन राजा बड़ा शक्तिशाली हुआ।

यज्ञश्री शातकर्णि
सिक्के पर से बढ़ाया
हुआ चित्र

§८ **तमिळ और सिंहल राष्ट्र**—जब उत्तरी और पच्छिमी भारत में पेशावर और पैठन साम्राज्यों की यह कशमकश जारी थी, तब सातवाहन साम्राज्य के दक्खिन छोर पर तमिळ और सिंहल राष्ट्रों में भी एक दूसरे से बढ़ने के लिए स्पर्धा चल रही थी। दूसरी शताब्दी के आरम्भ में चोल राजा करिकाल हुआ, जिस ने सब तमिळ राष्ट्रों और सिंहल पर भी अपनी प्रभुता जमाई। उस की राजधानी कावेरी नदी पर उरगपुर या उरैपुर (आधुनिक तिरुच्चिरप्पली = 'त्रिचनापली') थी। कावेरी के बाँध बनाने के लिए उस ने सिंहल कैदियों से काम लिया और कावेरी के मुहाने पर कावेरीपट्टनम् बन्दरगाह बसाया। उस पट्टन में एक मन्दिर सातवाहन का भी था, जिस में सातवाहन की पूजा होती थी! इस से प्रतीत होता है कि सातवाहन राजाओं का भारतवर्ष के सुदूर कोनों तक भी कितना प्रभाव था।

करिकाल के बाद कुछ समय तक चेर राज्य सब तमिळ राष्ट्रों में प्रमुख रहा। फिर पाण्ड्यों की प्रधानता रही। सिंहल राजा गजबाहु (११३–१३५ ई०) ने चोल देश पर चढ़ाई कर न केवल सिंहल कैदी छुड़ाये, प्रत्युत तमिळ कैदियों को ले जाकर अपने देश में सिंचाई के बाँध बनवाये।

चोल देश का उत्तरी आधा भाग जिस की राजधानी काञ्ची (काञ्जीवरम्) थी, सातवाहनों के अधीन रहा। यज्ञश्री के काञ्ची वाले सिक्कों पर दो मस्तूलों का जहाज बना रहता है, जो उस की समुद्री शक्ति को सूचित करता है। इन सब तमिळ और सातवाहन राजाओं ने समुद्री डाकुओं का दमन कर विदेशी व्यापार को खूब बढ़ाया। नदी के मुहाने में आणीकट-बाँध बनवा कर सिंचाई के लिए पानी फाटने का तरीका भी इन्हीं राजाओं ने चलाया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. भारत और चीन का सम्बन्ध पहले पहल कब और किस प्रकार हुआ?

२. चीन में बौद्धधर्म के ग्रन्थ पहले पहल किस राजा ने भेजे? उस राजा के जी
और कार्यों के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

३. शालिवाहन शक संवत् की स्थापना कब और कैसे हुई?

४. कनिष्क की तिथि और कनिष्क संवत् के विषय में आप क्या जानते हैं, इतिहास
प्रवेश में अपनाये गये तिथि क्रम के आधारों का उल्लेख संक्षेप में कीजिये।

५. कनिष्क के राज्यकाल की घटनाओं का वर्णन कीजिए।

६. इनका संक्षिप्त परिचय दीजिए—

वैरोचन, अश्वघोष, विजयकीर्ति, चष्टन, रुद्रदामा और वासिष्ठी शातकर्णि

७. करिकाल और गजबाहु कहाँ के राजा थे। दोनों के पारस्परिक संघर्ष का
वर्णन कीजिए।

अध्याय ९

बृहत्तर भारत

§ १. मध्य एशिया में भारतीय उपनिवेश और प्रभाव—सीत
के काँठे अर्थात् पूरबी मध्य एशिया में आर्यावर्ती उपनिवेशों की नींव अशो
ने डाली थी। तब से उन उपनिवेशों तथा उन के द्वारा सभ्य बनाये गये वह
के मूल निवासियों ने इतिहास में जो भाग लिया उसका उल्लेख पीछे जहाँ तह
आया है। यहाँ उन उपनिवेशों का इकट्ठा विवरण देना अभीष्ट है।

गन्धार, उरशा (=आधुनिक हजारा=सिन्ध और जेहलम नदियों
बीच का हिमालय का प्रदेश), कश्मीर, दरद देश और कपिश के उत्तर तर
हिन्दूकश के उस पार कम्बोज देश (बदख्शाँ-पामीर) था, जिसकी पूरबी सीम
सरीकोल और कन्दर पर्वतों से बनी है। इन पर्वतों के पूरब तरफ वह लम्बा पठा
फैला है जिसमें सीता और तारीम नदियाँ फैली हैं।

सरीकोल और कन्दर के बीच की दून अब तागदुम्बाश पामीर कहला
है। चीनी यात्रियों ने उसका जो नाम लिखा है वह कबन्ध जैसे किसी संस्कृ

शब्द का रूपान्तर है। उस के पूरब सीता की उपरली धारा पर चोक्कुक देश था जो अब यारकन्द कहलाता है। चोक्कुक के उत्तर शैल या खश देश था जो अब काशगर है। दोनों के बीच का प्रदेश उष का ओष था जिस अब यगे हिसार सूचित करता है। चोक्कुक के पूरब पहाड़ों की तलहटी में खोतन राज्य था, जिसके उत्तर रलक और पूरब तरफ भीम और निआग (आधु० नीया) प्रदेश थे। नीया से भारतीय सभ्यता के बहुत अवशेष मिले हैं। तुखारों का अभिजन (मूल निवास स्थान) नीया के पूरब था। उसके आगे पूरब तरफ चलमद प्रदेश था और फिर लोप सरोवर के कांठे में नावक, जिसे चीनी नफोबो कहते थे। खोतन से नावक तक सब प्रदेशों के उत्तर तक्लामकान मरुभूमि फैली है और नावक से चीन की पच्छिमी सीमा की तुनह्वाङ बस्ती तक पहुँचने को भी मरुभूमि लाँघनी पड़ती है। भारतीय पोथियाँ, चित्र आदि तुन ह्वाङ से भी बड़ी संख्या म मिले हैं।

तक्ला मकान मरुभूमि के उत्तर तारीम नदी है, जिस के और थियानशान पर्वत के बीच उत्तरी उपनिवेशों की परम्परा थी। इन में काशगर के पूरब भरुक देश था (आधु० उच तुरफान) फिर कुचि (आधु० कूचा), और अग्नि (आधु० यगे शहर)। अग्नि के उत्तर श्वेत पर्वत था। अग्नि के पूरब, आधुनिक तुरफान के स्थान पर, एक और भारतीय उपनिवेश था, जिसका मूल नाम नहीं मिला है, पर जिसे मध्यकाल में चीनी लोग कौशाङ कहते थे। नावक और कौशाङ आर्यावर्त्ती उपनिवेशन की पूरबी सीमा पर थे।

दक्खिन तरफ खोतन और उत्तर तरफ कुचि सब से समृद्ध और शक्तिशाली राज्य थे। इन के सहयोग से ही चीन सम्राटों ने हूणों को इस देश से निकाला और फिर सेनापति पानछाओ ने कास्पियन पर चीन का झंडा जा फहराया। खोतन की सहायता से ही कनिष्क ने उत्तर भारत को जीता और अपना साम्राज्य स्थापित किया। कनिष्क और उसके वंशजों के समय में चीन हिन्द की राजकाज की भाषा गन्धार की प्राकृत रही, जिसके बहुत लेख पाये गये हैं।

इन उपनिवेशों म कितना अंश भारतीय प्रवासियों का था और कितना

उन से प्रभावित स्थानीय ऋषिक-तुखारों का, सो आज नहीं कहा जा सकता। चीन हिन्द में आर्यावर्ती सभ्यता की दीक्षा लेकर ऋषिक-तुखार लोग पच्छिमी मध्य एशिया मे भी गये, तथा सीर और वंक्षु के मुहानों तक, आधुनिक खीवा तक, उन्हों ने अपने राज्य स्थापित किये, जिस से पच्छिमी मध्य एशिया में भी भारतीय शिक्षा-दीक्षा फैल गई।

§२. **"गंगा पार का हिन्द"**—पूरबी मध्य एशिया का नाम आधुनिक विद्वानो ने चीन-हिन्द रक्खा है, पर भारत के पूरब और पूरब-दक्खिन जो विशाल प्रायद्वीप और द्वीपावली है, उसे पच्छिमी लोग सातवाहन युग में ही 'गंगा पार का हिन्द' (आधुनिक अंग्रेजी रूप—ट्रांसगैंजेटिक इंडिया) कहने लगे थे और अब भी परला हिन्द (फर्दर इंडिया) कहते हैं। बहुत पुराने समय से वहाँ आग्नेय वंश के लोग रहते थे, जो अशोक के समय तक पत्थर के हथियार काम मे लाते थे। महाजनपद-युग से भारत के सामुद्रिक व्यापारी उधर जाने लगे, और उन्हें वहाँ सोने की खानें मिलीं, इसलिए उन्हो ने उस देश का नाम सुवर्णभूमि तथा उन द्वीपो का नाम सुवर्णद्वीप रक्खा। धीरे-धीरे वहाँ भारतीय बस्तियाँ बसीं जिनके सम्पर्क से आग्नेय लोगों ने भी सभ्यता सीखी। सातवाहनो के चरम उत्कर्ष के युग में वहाँ भारतीय बस्तियाँ खूब बढ़ी, और कई भारतीय राज्य स्थापित हो गये (५८ ई० पू०–७८ ई०)। ईसवी सन् के शुरू में आजकल के व्येतनम मे कौठार और पांडुरंग नाम के दो छोटे-छोटे भारतीय राज्य स्थापित हो चुके थे। मेकाङ नदी के तट पर एक तीसरे बड़े राज्य की राजधानी थी, जिसे चीन वाले फूनान कहते थे। उस का असली नाम अभी तक नही जाना जा सका। उस राज्य की सीमा बरमा तक थी। उस की स्थापना एक कौण्डिन्य ब्राह्मण ने की थी। कौण्डिन्य ने वहाँ जा कर सोमा नाम की "नागी" (अर्थात् नागो को पूजने वाली किसी आग्नेय जाति की लड़की) से ब्याह किया था, जिस से उस के वंशज सोमवंश के कहलाये।

मलक्का प्रायद्वीप में तक्कोल, सिंहपुर (आधु० सिंगापुर) आदि बस्तियाँ थीं। सुवर्णद्वीप कहने से प्रायः सुमात्रा ही समझा जाता था। उसके आगे

यवद्वीप था। 'जावा' उसी 'यव' का उच्चारण भेद है। यवद्वीप में शिशिर पर्वत था, और उस के पूरबी हिस्से में सरयू नदी अब तक है। उसके उत्तर और पूरब मधुरा और बालि द्वीप हैं। उनके उत्तर बोर्नियो में भी भारतीय उपनिवेश स्थापित हुए। इन बस्तियों और राज्यों के संस्थापक प्रायः शैव थे। सन् ईसवी की पहली शताब्दी में मदगस्कर द्वीप में भी भारतीय बस्तियाँ स्थापित हुईं।

सुवर्णभूमि के साथ सब से अधिक और पुराना सम्बन्ध चम्पा (भागलपुर) के लोगों का था। १९२ ई० में उन्हों ने सुवर्णभूमि के पूरबी छोर पर एक चम्पा राज्य स्थापित किया, जिसने कौठार और पाण्डुरंग तथा और पड़ोसी प्रदेशों को जीत लिया। चम्पा की राजधानी इन्द्रपुर थी। १२०० बरस तक चम्पा की शक्ति और समृद्धि बनी रही। उस के बाद भी गिरते पड़ते उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक चम्पा राज्य किसी न किसी प्रकार बना रहा।

चम्पा और बोर्नियो से आधुनिक हैनान और फिलिपीन में तथा बोर्नियो के पूरब के द्वीपों में भी, जहाँ की मूल जनता आग्नेय थी, भारतीय उपनिवेश फैलते गये।

§३ **चीन और रोम से सम्बन्ध**—सीमा के काठे और सुवर्णभूमि में सभ्य राज्य स्थापित हो जाने से चीन के साथ भारत का सम्बन्ध स्थल और जल दोनों रास्तों से हो गया। दोनों देशों में वस्तुओं और विचारों का आदान प्रदान होने लगा। ६८ ई० में गन्धार, पवय कम्बोज या खोतन से धर्मरत्न और कश्यपमातङ्ग नाम के दो भिक्षु पहले-पहल चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करने पहुँचे। उस के बाद वह परम्परा जारी रही। चीन वालों का पच्छिमी रास्ता खुल जाने से चीन का रेशम उन सब देशों में जाने लगा।

पच्छिमी एशिया और मिस्र में जब तक यूनानी राज्य रहे उन के साथ भारत का अच्छा व्यापार रहा। दूसरी शताब्दी ई० पू० में जब बलख के यूनानी राज्य को तुखारों ने मिटाया, प्रायः उसी समय रोम वालों ने पच्छिम के सारे यूनानी राज्यों को जीत लिया। रोम का साम्राज्य "भूमध्य-सागर" के चौगिर्द था। वह सागर असल में रोम की भूमि के ही मध्य में था।

भारतीय नाविक व्यापारी रोम-साम्राज्य के सब देशों में पहुँचते थे। प्राचीन काल में लाल सागर को नील नदी से मिलाने वाली एक नहर थी, जिस के द्वारा पूरबी देशों के जहाज अलक्सान्द्रिया हो कर रोम सागर (भूमध्य सागर) तक जा निकलते थे। लगभग १०० ई० पू० में एक बार कुछ भारतीय अपने जहाज के साथ दिशामूढ हो कर जर्मनी के तट पर जा भटके और वहाँ से रोम पहुँचाये गये थे।

भारत-लक्ष्मी

भारत के रोम से व्यापार का स्मारक एक तश्तरी पर का चित्र जो रोम-साम्राज्य मे लिखा गया था। [इस्तान्बूल सग्र०]

भारतीय माल रोम-साम्राज्य मे खूब पहुँचता और बदले में सोना आता था। यहाँ से हाथीदाँत का सामान, सुगन्धि-द्रव्य, मसाले, मोती और कपड़े आदि जाते थे। ७७ ई० में एक रोमी लेखक ने शिकायत की थी कि भारतवर्ष रोम से हर साल साढ़े पाँच करोड का सोना खींच लेता है, और

"यह कीमत हमें अपनी ऐयाशी और अपनी स्त्रियों की खातिर देनी पड़ती है।" एक दूसरे रोमी लेखक ने रोमी स्त्रियों की शिकायत करते हुए लिखा है कि वे भारतवर्ष से आने वाले "बुनी हुई हवा के जाले" (मलमल) पहन कर अपना सौन्दर्य दिखाती थीं। एक तरफ रोम और पार्थव तथा दूसरी तरफ चीन और सुवर्णभूमि के ठीक बीच होने से भारतवर्ष इस समय सारे सभ्य जगत् का केन्द्रस्थ था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ सीता और तारीम काठों में स्थित प्राचीन भारतीय उपनिवेश कौन-कौन से थे? उन के आधुनिक स्थान नामों का उल्लेख कीजिये। मध्य एशिया और विश्व इतिहास पर इन उपनिवेशों का राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक प्रभाव क्या पड़ा?

२ शुंग सातवाहन युग में मध्य एशिया पर सीधे भारतीय राजनीतिक प्रभाव को सूचित करनेवाली विशेष बात क्या मिलती है?

३ शुंग सातवाहन युग में पश्चिमी लोग 'गंगा पार का हिन्द' से क्या अभिप्राय लेते थे?

४ सुवर्णभूमि, सुवर्णद्वीप, यवद्वीप नाम किन प्रदेशों को सूचित करते थे? वहाँ के मुख्य भारतीय उपनिवेशों के नाम लिखिए, और बताइये कि वहाँ के मुख्य भारतीय निवासी किस नृवंश के थे और सभ्यता की किस सीढ़ी पर थे। भारतीय उपनिवेशकों द्वारा वहाँ सभ्यताप्रसार और औपनिवेशिक विधान की प्रक्रिया क्या थी, सोमा नगरी और कौण्डिन्य की कथा लिख कर इसे स्पष्ट कीजिये।

५ सुवर्ण भूमि आदि में जाने वाले आरम्भिक भारतीय उपनिवेशकों की मूलप्रेरणा क्या थी? वे मुख्यतः किस धर्म के उपासक थे।

६ चम्पा, कौठार, पाण्डुरंग के विषय में आप क्या जानते हैं।

७ चीन और भारत का पारस्परिक परिचय और व्यापारिक सम्बन्ध पहले पहल कब और किस राजनीतिक घटना द्वारा हुआ।

८ 'बुनी हुई हवा के जालों' के विषय में आप क्या जानते हैं? रोमवालों को उन के व्यवहार से क्या शिकायत थी? भारत रोम के व्यापारिक सम्बन्धों पर उनसे क्या प्रकाश पड़ता है?

अध्याय ५

सातवाहन युग की सभ्यता और संस्कृति

§ १. **पौराणिक धर्म और महायान**—भगवान् बुद्ध ने निरर्थक कर्मकांड का स्थान आचारप्रधान धर्म को दे कर आर्यावर्त्त में नया जीवन फूँक दिया था। साढ़े तीन सौ बरस बाद उस नवजीवन की लहर में मन्दता आने लगी। अन्तिम मौर्यों ने जब उस धर्म की आड में अपनी कायरता को छिपाना चाहा, तब उस के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और पुराने वैदिक धर्म को फिर से जगाने की पुकार उठी। सिमुक और पुष्यमित्र दोनों ब्राह्मण थे, जिन्होंने निर्बल मौर्यों के विरुद्ध विद्रोह किया। बौद्धों ने यज्ञों की हिंसा का विरोध किया था, पर पुष्यमित्र ने और सिमुक् के भतीजे शातकर्णि ने पुराना अश्वमेध यज्ञ, जिसका रिवाज सदियों से उठ चुका था, दो-दो बार किया।

किन्तु वैदिक धर्म वैदिक समाज के साथ था और इस युग का समाज अब बहुत आगे बढ़ चुका था। न वैदिक समाज वापिस आ सकता था, और न वैदिक धर्म अपने पुराने रूप में लौट सकता था। बौद्ध धर्म ने जनता के विचारों में जो परिवर्तन कर दिया था, उसे मिटाया न जा सकता था। वैदिक कर्मकांड, दार्शनिक विवाद और कृच्छ्र तप का पुराना धर्म जब केवल ऊँचे लोगों की चीज बन गया था, उस समय बुद्ध ने जनसाधारण को जगाया और उठाया था। जनता की उस जागृति की उपेक्षा न की जा सकती थी। इसलिए वैदिक धर्म को फिर से जगाने की जो लहर उठी, वह बौद्ध सुधार की सब मुख्य प्रवृत्तियों को अपनाये हुए थी। बौद्ध धर्म यदि जनता के लिए था, तो वैदिक धर्म का यह नया रूप उस से बढ़ कर जनता को जगाने वाला था।

बौद्ध धर्म आचार-प्रधान था; ईश्वर और देवताओं की पूजा के लिए उस में जगह न थी। जनसाधारण ने बुद्ध की शिक्षा को सुना, पर देवताओं की पूजा के बिना उन का काम न चला। आर्यों के निचले दर्जों और अनार्य जातियों

मे अनेक प्रकार की जड़ पूजाएँ प्रचलित था। बहुत से स्थानीय देवताओं की गद्दियाँ जहाँ तहाँ स्थापित थीं। कई स्थानों में जनता के ऊँचे दर्जों में भी अपने पुरखों के सम्मान ने ही पूजा का रूप धारण कर लिया था। कह चुके हैं कि शूरसेन देश मे वासुदेव कृष्ण की पूजा होती थी और उस के सम्बन्ध में उत्सव होते थे। राजा वसु के समय मे जो अहिंसा और भक्ति प्रधान धर्म की लहर उठी थी, कृष्ण ने उसे अपनाया और पुष्ट किया था। शूरसेन लोगों ने कृष्ण को पहले उस धर्म के प्रवक्ता और अपने महान् पूर्वज के रूप म आदरपूर्वक याद करना शुरू किया, धीरे धीरे वह एक पूजा बन गई थी। वैदिक धर्म को फिर से जगाने की लहर ने प्रत्येक प्रचलित जड़ देवता और मनुष्य देवता में किसी न किसी वैदिक देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। भारत म जितने देवता पूजे जाते थे, उन्हें उस ने शिव, विष्णु, सूर्य, स्कन्द आदि की भिन्न भिन्न शक्तियों के सूचक भिन्न भिन्न रूप मान लिया। जहाँ किसी पुराने पुरखा की पूजा होती थी, उसे भी उस ने किसी अवतार रूप म भगवान् की पूजा बना दिया।

यह लहर चली तो वैदिक धर्म को जगाने का नाम ले कर, पर इस से एक नया धर्म पैदा हो गया, जिसे हम पौराणिक धर्म कहते हैं। देवता वैदिक धर्म म भी थे, और इस म भी रहे। पर पहले उन की पूजा यज्ञों द्वारा होती थी और अब उन के मन्दिर और मूर्तियाँ बनने लगीं। वे मन्दिर और मूर्तियाँ और उन की पूजा अभी तक बहुत सादी थीं। मूर्तियाँ देवताओं की शक्तियों का केवल "प्रतीक" अर्थात् संकेत थीं। दिव्य शक्तियों के आवाहन से जड़ पूजाओं म जान पड़ गई, और उन सरल पूजाओं के धर्म ने जनता म एक नया जीवन फूँक दिया।

वैदिक देवताओं मे इन्द्र मुख्य था, अब विष्णु और शिव की प्रधानता हो गई। ऐतिहासिक पूर्वज कृष्ण की पूजा में अब वैदिक प्रकृति देवता विष्णु की पूजा मिल गई। कृष्ण विष्णु का अवतार माने गये। यही सातवाहन युग का भागवत धर्म था। किन्तु आजकल के पौराणिक धर्म की बहुत सी बातें उस शुरू के पौराणिक धर्म म न थीं। भागवत धर्म मे उस समय तक कृष्ण की गोपी-लीलाओं की कहानियाँ न मिलीं थीं। विष्णु के अतिरिक्त शिव और स्कन्द की

पूजा उस समय के पौराणिक धर्म में बहुत प्रचलित थी। स्कन्द युद्ध का देवता था। शिवलिंग की पूजा आर्यों में पहले पहल सातवाहन युग के अन्तिम अंश में आ कर सुनी जाती है। हम देख चुके हैं कि भागवत और शैव धर्म को अनेक विदेशी भी अपना लेते थे। पौराणिक धर्म तब सब के लिए खुला था। पुराने यूनानी भी वैदिक देवताओं से मिलते-जुलते प्रकृति देवताओं को पूजते थे। उस पुरानी पूजा के आडम्बरमय और निर्जीव हो जाने पर भारतवर्ष के इस नये भक्तिप्रधान धर्म ने उन्हें आकर्षित किया। अन्दाजन कनिष्क के समय में ईरान के मग ("शाकद्वीपी") ब्राह्मणों ने भारत में आ कर सूर्य की एक विशेष पूजा चलाई। सूर्य की पूजा यहाँ वैदिक काल से थी, पर उस की मूर्त्ति और मन्दिर बनाने की चाल ईरानी मगों ने चलाई। पंजाब, सिन्ध, राजस्थान, सुराष्ट्र, मगध आदि में उन्हों ने बहुत से मन्दिर स्थापित किये, जिन में से मूलस्थानपुर (मुलतान) का मन्दिर सब से पुराना और प्रसिद्ध था। वह ईरानी सूर्य पूजा भी पौराणिक धर्म में मिल गई।

पौराणिक धर्म का प्रभाव फिर बौद्ध और जैन धर्मों पर पड़ा। उन में बुद्ध और महावीर अब ऐतिहासिक महापुरुष के बजाय प्रमुख देवता बन गये। बौद्धों का कहना है कि बुद्ध पिछले कई जन्मों से साधना कर रहे थे, और तब वे बोधिसत्त्व थे। इसी प्रकार जैन लोग मानते हैं कि महावीर से पहले कई तीर्थ-कर हुए थे। इन सब ने गौण देवताओं और अवतारों का स्थान ले लिया। बौद्ध धर्म का यह एक नया रूप महायान अर्थात् बड़ा पन्थ कहलाने लगा। इस के मुकाबले में पुराना बौद्ध धर्म (थेरवाद) हीन-यान (छोटा पन्थ) कहलाने लगा। नागार्जुन (लग० १७५ ई०) महायान का प्रमुख आचार्य था। थेरवाद की पुस्तकें पालि में हैं और महायान की संस्कृत में। थेरवाद अब सिंहल, स्याम और बरमा में है; महायान चीन, जापान और कोरिया में।

§ १. **नवीन संस्कृत, प्राकृत, तमिळ वाङ्मय**—पौराणिक धर्म की तरह नये संस्कृत वाङ्मय का विकास भी शुङ्ग-सातवाहन-युग में हुआ। वह पुराने वैदिक वाङ्मय से भिन्न और स्वतन्त्र है। पुष्यमित्र शुङ्ग के समय पतं-जलि मुनि था, जिसने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लिखा। शुंगों के ही समय

(लग० १५० ई० पू०) में मनुस्मृति लिखी गई। इसी कारण उस में बौद्ध विरोधी भाव बहुत हैं। उसका लेखक एक भृगुवंशी ब्राह्मण था, पर उस ने मनु के नाम से अपनी शिक्षाओं को चलाया। उस के प्रायः अढ़ाई तीन शताब्दी पीछे याज्ञवल्क्य स्मृति लिखी गई। महाभारत के कोई कोई अंश ५०० ई० पू० तक के हैं। किन्तु उस का अधिकांश २०० ई० पू० से २०० ई० के बीच लिखा गया। भास कवि, जिस के नाटकों के नमूने पर बाद में कालिदास ने नाटक लिखे, शायद इसी युग का है। अश्वघोष न केवल दार्शनिक, प्रत्युत काव्य और नाटककार भी था। नागार्जुन अश्वघोष का प्रशिष्य था। वह दर्शन के साथ-साथ विज्ञान का भी बड़ा पंडित था। उस ने एक 'लोहशास्त्र' लिखा और पारे के योग बनाने की विधि निकाल कर रसायन के ज्ञान को बढ़ाया। उस ने सुश्रुत के ग्रन्थ का सम्पादन भी किया।

भारतवर्ष के प्रसिद्ध वैद्य चरक और सुश्रुत दोनों इसी युग में हुए। मीमांसा-दर्शन का प्रवर्त्तक जैमिनि, वैशेषिक दर्शनकार कणाद, न्याय दर्शन का संस्थापक अक्षपाद गौतम तथा वेदान्त का प्रवर्त्तक बादरायण भी इसी युग में हुए। प्रसिद्ध अमरकोश भी इसी युग में लिखा गया। उस का लेखक अमरसिंह बौद्ध था। पिछले शुंगों के समय से बौद्धों के सब ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखे जाने लगे थे। महायान के उदय का जो कारण था, वही बौद्ध ग्रन्थों के संस्कृत में लिखे जाने का भी कारण हुआ। दूर-दूर के जनपदों में जब उस धर्म का प्रचार किया गया, तब जैसे उसे अपना आन्तरिक रूप बदलना पड़ा, वैसे ही अपनी भाषा भी बदलनी पड़ी, क्योंकि अब प्रान्तीय प्राकृत पालि से उस का काम न चल सकता था।

संस्कृत के साथ-साथ कई प्राकृतों में भी उत्तम रचनाएँ हुई। राजा हाल स्वयं प्राकृत का कवि था। एक सातवाहन राजा के दरबार में गुणाढ्य नाम का कश्मीरी लेखक था। कश्मीर के उत्तर-पच्छिम, कृष्णगंगा की दून से पामीर की बड़ी बड़ी देश है, वहां की प्राकृत में गुणाढ्य ने बृहत्कथा नाम का कहानियों का एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ लिखा। वह ग्रन्थ अब नहीं मिलता, पर उसके तीन अनुवाद संस्कृत में हैं और एक तमिळ में। तमिळ भाषा में भी

पहले-पहल पहली दूसरी शताब्दी ई० से ही वाङ्मय के पुष्प प्रकट होने लगे। ऐसी अनुश्रुति है कि पहले पहल अगस्त्य मुनि ने तमिळ को लिपि-बद्ध किया और उस का व्याकरण बनाया। तमिळ व्याकरणकार अगस्त्य आर्यावर्त्त से दक्खिन भारत में पहले पहल जाकर बसने वाले अगस्त्य का वंशज होगा। तमिळ राज्यों में इस युग में "संघम्" नाम की एक साहित्य परिषद् थी।

§ ३. सातवाहन कला—वाङ्मय की तरह कला भी सातवाहन-युग में खूब फूली-फली। इस युग की तीन प्रकार की कला कृतियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। पहले, पहाड़ों में काटे हुए गुहा-मन्दिर जो महाराष्ट्र और उड़ीसा में पाये जाते हैं। वे खारवेल और शातकर्णि (१म) के समय शुरू हुए, और फिर शकों और पिछले सातवाहनों के समय तक बनते रहे। महाराष्ट्र में उन्हें 'लेण' कहते हैं और उड़ीसा में 'गुम्फा'। महाराष्ट्र की लेणें सब बौद्ध

कार्ले लेण का सिंहद्वार, एक किनारे का दृश्य [फोटो पटना सं०]

चैत्य हैं, और उड़ीसा की गुम्फाएँ जैन मन्दिर। एक एक मन्दिर केवल एक एक चट्टान को काट कर बना है। उनकी कारीगरी अद्भुत है।
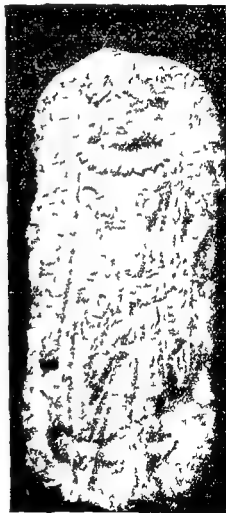
भद्र महिला—शुंग युग की वेशभूषा भद्र पुरुष—पिछले सातवाहन युग की वेशभूषा

कौशाम्बी में पाये गये मिट्टी के खिलौने [प्रयाग संग्र०]

दूसरे, भारहुत और साँची के स्तूपों के चारों तरफ की पत्थर की वेदिकाएँ (जँगले) और तोरण। स्तूप तो पुराने हैं, पर पत्थर का काम सब इस युग

गान्धारी शैली की बुद्ध-मूर्त्ति—हड्ड, अफगानिस्तान से [काबुल सग्र०]

का है। वेदिकाओं और तोरणों के प्रत्येक खम्भे में और खम्भों के बीच की

प्रत्येक वेँडेरी में सुन्दर मूर्तियाँ तराशी गई हैं, या कहानियों और घटनाओं के पूरे दृश्य काटे गये हैं। इन दोनों प्रकार की कलाकृतियों, अर्थात् गुहामन्दिरों और वेदिकाओं तोरणों की एक विशेषता यह है कि ये हैं तो पत्थर की किन्तु ठीक काठ के नमूने पर बनाई गई हैं। काठ की रचनाओं की बारीक नक्काशी और छुटाई पत्थर में की गई है।

गान्धारी शैली की खण्डित स्त्री मूर्ति, शहर ए बहलोल (जि० पेशावर) की खुदाई में प्राप्त [भा० पु० वि०]

प्राय कनिष्क के समय से गन्धार देश की वास्तु और मूर्ति कला में एक और शैली का विकास हुआ, जिसे अब हम गान्धारी शैली कहते हैं। वह शैली यूनानी और भारतीय शैली के समागम से पैदा हुई और यह इस युग की कला में तीसरी स्मरणीय वस्तु है। अब तक बुद्ध की सबसे पुराना मूर्तियाँ इसी शैली की पाया गई हैं।

§ ८ आर्थिक जीवन—वाङ्मय, सिक्कों और पत्थर में खुदे हुए लेखों आदि से इस युग के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक जीवन का भी पता मिलता है। इस युग में शिल्प और व्यापार की बड़ी उन्नति हुई। कारीगरों की श्रेणियाँ

अब ऐसे काम भी करने लगीं जो आजकल के बडे-बडे बैंक करते हैं। सेनापति उषवदात ने नासिक के बौद्ध भिक्षुओं के संघ के लिए कई हजार का दान किया; उस रकम को उसने कोरियों (जुलाहों) की दो श्रेणियों के पास "अक्षयनीवी" (कभी न लौटने वाली धरोहर) के रूप में रख दिया कि उस के सूद से उन भिक्षुओं को हर साल चीवर (कपडे) मिलते रहें। एक राजा अपना दान जुलाहों की श्रेणि के पास हमेशा के लिए जमा करा दे, इससे उस श्रेणि की प्रतिष्ठा का अन्दाज होता है। इस तरह के और अनेक उदाहरण हैं। जहाजों के किराये और विदेशी व्यापार तथा व्यापारी दस्तावेजों के नियम भी इस युग की स्मृतियों में विस्तार से दिये गये हैं।
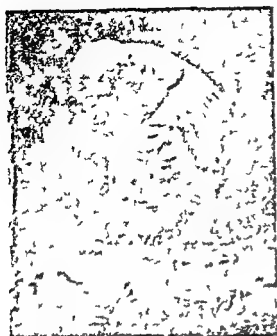
पिछले सातवाहन-युग की नारी-शिरोभूषा। कौशाम्बी से प्राप्त मिट्टी का खिलौना [प्रयाग सन०]

§५. **राज्य-संस्था**—राज-काज में ग्रामों, श्रेणियों और नगर-संस्थाओं की बड़ी प्रतिष्ठा थी। नगर-संस्था को अब 'पूग' या 'पौर' भी कहते थे। सेनापति उषवदात ने अपने उक्त दान के बारे में लिखा है कि यह " 'निगमसभा' में सुनाया गया, और 'फलकवार' (रिकार्ड आफिस, लेखा दफ्तर) में 'चरित्र' के अनुसार 'निबद्ध' (रजिस्टरी) किया गया।"* इससे प्रकट है कि इस युग में राजा भी अपने दस्तावेजों को नगर-परिषदों के दफ्तरों में उन परिषदों के कानून के अनुसार रजिस्टरी कराते थे।

जनपदों की परिषदें तो देश की मुख्य शासक शक्ति थीं। जब कोई जनपद एक राजा के हाथ से दूसरे राजा के हाथ में जाता, तब इस बात का बड़ा आग्रह रहता कि नये जीते हुए जनपद में राजा वहीं के "धर्म, व्यवहार

---

* निगम-सभा का अर्थ नगर की परिषद् और चरित्र का अर्थ परिषदों का बनाया हुआ कानून होता था सो पीछे कह चुके हैं। फलक माने अलमारी, और फलकवार का अर्थ हुआ अलमारियों वाली जगह यानी लेखा रखने का दफ्तर।

और चरित्र" के अनुसार चले। राजा परिषद् की सहायता से राज्य करते थे।

एक सेट्ठी अर्थात् निगम सभा का प्रमुख—शुंग युग की वेशभूषा, भारहुत स्तूप की वेदिका से [भारतीय संग्र० कलकत्ता]

"धर्म" और "व्यवहार" परिषदों के पुराने ठहरावों के समुच्चय थे, "चरित्र" नये ठहराव थे जो आये दिन आवश्यकतानुसार बनते थे। यों विधि या कानून चल था अचल नहीं। यह समझ लेना चाहिए कि जो स्मृतियाँ इस युग में लिखी गईं, वे भारत में या उसके अन्तर्गत किसी भी जनपद या राज्य में कानून संहिता रूप से नहीं चलती थीं। वे स्मृतिकारों द्वारा उपस्थित कानून की व्याख्या करने की और उसे अपनी अभीष्ट दिशा में ले जाने की

चेष्टाएँ मात्र थीं। ये स्मृतियाँ स्वयं यह कहती हैं कि ग्राम, श्रेणि, निगम, पूग, जनपद आदि अपना-अपना कानून स्वयं बनावें।

उद्यान-क्रीडा—साँची स्तूप की वेदिका पर खुदा एक दृश्य [श्री हरिहरलाल मेढ कृत प्रतिलिपि, डा० मोतीचन्द्र के सौजन्य से]

§ ६. सामाजिक जीवन—सामाजिक जीवन में भी यह युग वैदिक युग से दूर हट रहा था। स्मृतिकारों का यह यत्न रहा कि समाज चार वर्णों या 'जातियों' में बँटा रहे, जिन में से प्रत्येक अपना खास धन्धा करे और अपने अन्दर ही विवाह करे; पर बर्ताव में यह बात न चली। ऐसे बहुत से समूह थे, जिन्हें वे किसी 'जाति' में न गिन पाते थे। उन्हें उन्होंने "संकर जाति" मान लिया। भिन्न-भिन्न जातियों का खानपान अलग करने की बात तो स्मृतिकार भी नहीं कहते। विवाह-बन्धन की शिथिलता को हटाने तथा मोक्ष (तलाक) और पुनर्विवाह की रोकथाम करने की मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति ने चेष्टा की। तो भी उन के समय तक वे बातें जारी थीं। बौद्धों के विरोधी होते हुए भी मनुस्मृति-कार ने "व्यर्थ हत्या" की निन्दा की। जुआ और 'समाह्वय' (जानवरों के मुकाबले पर बाजी लगाना) इस युग में भी जारी रहे, पर "उद्यान-क्रीडाएँ", गोष्ठियाँ और नाटक आदि विनोद उनसे अधिक चल पड़े।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ मौर्यों द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार के बाद शुग सातवाहन युग में वैदिक धर्म को पुन, जगाने की चेष्टा किन राजनीतिक घटनाओं की प्रतिक्रिया थी ?

२ पौराणिक धर्म का उदय कब और कैसे हुआ ? जैन बौद्ध आचारप्रधान धर्मों पर उस आन्दोलन की प्रतिक्रिया क्या हुई ?

३ मनुस्मृति का कर्त्ता कौन था और कब हुआ ?

४ महाभारत का रचनाकाल क्या है ?

५ भास, अश्वघोष, नागार्जुन और चरक के विषय में आप क्या जानते हैं ?

६ जैमिनि कणाद बादरायण कौन थे, कब हुए और उनकी रचनाएँ कौन सी हैं ?

७ गुणाढ्य और राजा हाल ने किस भाषा में रचनाएँ कीं ?

८ तमिळ 'संघम्' के विषय में आप क्या जानते हैं ?

९ शिल्पी श्रेणियों और नगर ग्राम तथा जनपद सभाओं की स्थिति शुग सातवाहन युग के आर्थिक राजनीतिक जीवन में क्या था ?

१० अभय नीति, चरित्र और पतिव्रता की व्याख्या कीजिए।

११ वर्ण व्यवस्था का विकास शुग सातवाहन युग में किस स्तर तक पहुँचा था। इस युग में बने स्मृति ग्रन्थों में पाये जाने वाले नियमों का वास्तविक स्वरूप क्या है ? क्या वे उस युग में प्रचलित सामाजिक कानून या उस युग के सामाजिक ढाँचे की वस्तुस्थिति का निदर्शन माना जा सकता है ?

६. वाकाटक-गुप्त पर्व

(लग० २००—५४५ ई०)

अध्याय १

यौधेय, नाग, वाकाटक

(लग० १८०—३४० ई०)

§१. आभीर, चुटु, इक्ष्वाकु—दूसरी शताब्दी के अन्त में सातवाहन-साम्राज्य टूटने लगा। उसके उत्तराधिकारियों में तीन राज्य प्रमुख हुए। दक्खिनी गुजरात और उत्तरी महाराष्ट्र में आभीरों का गणराज्य स्थापित हुआ, जिसने चष्टन वंशी राजाओं से उनके दक्खिनी प्रदेश छीन लिये। १८८-१९० ई० में ईश्वरसेन आभीर ने समूचे शक राज्य को दखल कर लिया, किन्तु उसके पीछे सुराष्ट्र और उत्तरी गुजरात में वह राज्य फिर उठ खड़ा हुआ। दक्खिनी महाराष्ट्र और कर्णाटक में सातवाहन वंश की एक शाखा चुटु-सातवाहनों का राजवंश स्थापित हुआ। उनकी राजधानी वैजयन्ती (उत्तर कनाडा जिले में आधुनिक वनवासी) थी। आन्ध्र देश में उसी समय इक्ष्वाकु क्षत्रियों का एक वंश राज करने लगा। उनकी राजधानी श्रीपर्वत (कृष्णा के दक्खिन नालमलै पर्वत, गुंटूर जिले में) थी।

इक्ष्वाकुओं के पड़ोस में तथा शायद उनके अधीन दो और छोटे राज्य तीसरी शताब्दी में अपने सामुद्रिक वाणिज्य और पूरबी उपनिवेशों के साथ सम्बन्ध के कारण प्रसिद्धि में आये। इनमें से एक था आधुनिक मसुलीपटम प्रदेश में बृहत्फलायन वंश का, और दूसरा उसके उत्तर शालंकायन वंश का जिसकी राजधानी आधुनिक एल्लोर के पास वेंगिपुर थी।

§२. दक्षिण कोशल का मघ वंश—दूसरी शताब्दी में दक्षिण

कोशल (छत्तीसगढ़ बघेलखंड) में सातवाहनों के भूतपूर्व सामन्तों का एक स्वतन्त्र राज्य था जिसकी राजधानी आधुनिक बान्धोगढ़ के स्थान पर थी। वहाँ के युवराज भद्रमघ ने सम्राट् वासुदेव के समय कोशाम्बी पर एकाएक हमला कर उसे ले लिया। यह "कुषाण" साम्राज्य पर पहली बड़ी चोट थी जिससे उसका दक्खिन पूरबी अंश अलग हो गया। मघ राजाओं ने इसके बाद उत्तर कोशल की ओर बढ़ते हुए कम से कम गंगा तक अपना राज्य निश्चय से फैला लिया।

§ ३. यौधेय, कुणिन्द, मालव—सम्राट् वासुदेव के बाद यौधेय गण ने अपने पड़ोसी कुणिन्द आदि गणों को साथ ले कर विद्रोह किया और कुषाण साम्राज्य से स्वतन्त्र हो गये। कुणिन्दों के नेता महात्मा छत्रेश्वर ने इस संघर्ष में प्रसिद्धि पाई। मालव गण भी तभी उज्जयिनी के क्षत्रपों से स्वतन्त्र हो उठ खड़ा हुआ (लग० २२५ ई०)। इन सब गणराज्यों ने फिर स्थापित हो अपने स्वतन्त्रता

एक शक द्वारपाल
इक्ष्वाकु राजाओं के समय की नागार्जुनीकोंडा स्तूप की वेदिका में से [भा० पु० वि०]
(इक्ष्वाकु राजा वीरपुरुषदत्त का विवाह अवन्ति की शक राजकन्या रुद्रधरभट्टारिका से हुआ था। उसके साथ कुछ शक योद्धा भी आये गये होंगे)

युद्धों के स्मारक सिक्के चलाये । यौधेयों ने अपने सिक्कों पर युद्ध के देवता कार्त्तिकेय की मूर्त्ति बनाई। उन की नई राजधानी सतलज के किनारे सुनेत्र थी, जिस के खँडहर अब सुनेत नाम से लुधियाना शहर के साथ लगे हैं । पीछे कुणिन्द गण भी यौधेय गण में मिल गया लगता है और यौधेयों के लेख बहावलपुर से होशियारपुर तक और सहारनपुर से भरतपुर तक पाये गये हैं । मालव गण का राज्य तब अजमेर-टोंक-मेवाड़ प्रदेश में था। कर्कोटनगर उसकी राजधानी थी जिसके खँडहर अब जयपुर राज्य के उणियारा ठिकाने में नगरकर्कोट कहलाते हैं।

महाजाति के भीटे से पाई गई गौतमीपुत्र शिवमघ की मुहर
[भा० पु० वि०]

"यौधेयगणस्य जयः" (यौधेय गण का जय) लेख वाला सुनेत्र टकसाल का सिक्का

"मालवाना जयः" (मालवों का जय) लेख वाला सिक्का

§४. भारशिव और नाग—पंजाब-राजस्थान में इस गणराज्य-मेखला के स्वतन्त्र हो उठने से गंगा-कांठे में ऋषिक साम्राज्य स्वतः उठ गया। जो स्थानीय राज्य वहाँ खड़े हुए उनमें से अहिच्छत्रा, मथुरा और पद्मावती उल्लेखनीय हैं । पद्मावती नगरी (=आधु० पदमपवाँया) उत्तर-पच्छिमी बुन्देलखंड में सिन्धु और परा के संगम पर थी । मथुरा में भी उसी राजवंश की शाखा थी। इन राजाओं के नामों के अन्त में प्रायः नाग शब्द लगता

था और इसके वंश का नाम भारशिव भी था। इन्होंने गंगा काँठे तक अपना राज फैला लिया और दस बार अश्वमेध किया।

§५ **नेपाल के लिच्छवि**—तीसरी शताब्दी ई० के आरम्भ में वैशाली के लिच्छवियों ने नेपाल को जीत लिया और वहाँ लिच्छवि राजवंश स्थापित हुआ। उस वंश के तीसरे राजा पशुप्रेक्षदेव ने पशुपतिनाथ के मन्दिर की स्थापना की।

§६ **वाकाटक**—पूरबी बुंदेलखंड में आजकल के पन्ना शहर के पास किलकिला नामक छोटी सी नदी है, जो आगे केन में जा मिलती है। उसके नाम से पन्ना का समूचा पठार तीसरी शताब्दी में किलकिला कहलाता था। वहाँ इस समय वाकाटक नामक राजवंश उठा, जिसका संस्थापक "विन्ध्यशक्ति" नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने विदिशा और विदर्भ तक अपना राज्य बढ़ा कर 'पच्छिमी' (उज्जयिनी के) क्षत्रपों से अवन्ति भी जीत ली (लग० २५० ई०)। क्षत्रपों का राज्य तब सुराष्ट्र, उत्तरी गुजरात, कच्छ और सिन्ध में बचा।

§७ **अफगानिस्तान-सिन्ध पर सासानी आधिपत्य**—ईरान का पार्थव राज्य भारत के सातवाहन राजवंश के साथ उठा था, प्रायः साथ ही समाप्त हुआ। उसका स्थान सासानी राजवंश ने लिया (२२४ ई०)। सासानियों की यह चेष्टा रही कि ईरान के गौरव को फिर वैसा ही स्थापित कर दें जैसा वह हखामनी वंश के समय था। २८८ ई० में सासानी राजा ने बलख, मर्व, समरकन्द के ऋषिक कुषाण राज्य पर आधिपत्य जमा लिया। वहाँ वे ऋषिकों के नमूने पर शिव नन्दी छाप वाले अपने सिक्के चलाते रहे। सासानी युवराज बलख में रहने लगा। उसका पद

सासानी राजा का शैव सिक्का
चित, राजा आहुति देते हुए; पट, शिव और नंदी। विम कफस के सिक्के (पृ० १२८) से तुलना कीजिये।

होता—कुशान-शाहान-शाह या कुशान-शाह।

अफगानिस्तान शकस्थान मे इस बीच स्वतन्त्र ऋषिक राज्य बाकी रहा, पर गन्धार और मध्य पंजाब में भी स्थानीय राज्य खड़े हो गये, जिन में मद्रों का गणराज्य भी था। २८४ ई० में अफगानिस्तान, शकस्थान और सिन्ध भी सासानी आधिपत्य मे चले गये। तब से शकस्थान (सीस्तान) मे एक सासानी राजकुमार शकान-शाह पद धारण किये रहने लगा।

आगे चल कर (लग० ३०० ई० से) शकस्थान का सासानी अधिपति शकस्तान, सिन्ध और तुखारिस्तान (तुखार देश) का शाह कहलाने लगा। यह स्थिति ३६० ई० तक जारी रही। शाह के अधीन पुराने स्थानीय शासक बने रहे। चौथी शताब्दी के आरम्भ मे सासानी सम्राट् होर्मुज्द २य का विवाह काबुल के कुषाण राजा की कन्या से हुआ। भारत का सौवीर देश शायद सासानियों के शासन मे ही सिन्ध कहलाने लगा।

§८. **सम्राट् प्रवरसेन**—विन्ध्यशक्ति के बेटे प्रवरसेन ने अपने ६० बरस (लग० २८०-३४० ई०) के राज मे वाकाटक राज्य को साम्राज्य बना दिया। समूचा महाराष्ट्र और आन्ध्र उसने जीत लिये; चुटु-सातवाहन और इक्ष्वाकु राजवंशों का अन्त हुआ। सुराष्ट्र-गुजरात के क्षत्रप भी उसके आधिपत्य मे आ गये। पहले वे अपने को महाक्षत्रप कहते थे, अब (लग० २९५ ई० से) उनका पद केवल क्षत्रप रह गया। पद्मावती के भारशिव राजा भवनाग ने अपनी बेटी का विवाह प्रवरसेन के बेटे गौतमीपुत्र से किया; यों दोनो वंशों में घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। नागपुर के उत्तर रामटेक के पास नन्दिवर्धन नामक स्थान मे वाकाटकों की मुख्य राजधानी रही।

§९. **काञ्ची के पल्लव**—प्रवरसेन के समय में ही काञ्ची में पल्लव राजवंश स्थापित हुआ, जिस ने कृष्णा के दक्खिन पच्छिमी से पूरबी समुद्र तक समूचा देश अपने आधिपत्य में कर लिया। उस वंश के प्रथम पुरुष वीरकूर्च्च उर्फ कुमारविष्णु ने "नाग राजा की लड़की के साथ ही सब राजचिह्न पाये" थे—अर्थात् उसे नाग राजा का दामाद होने से राज्य पाने का प्रोत्साहन मिला था।

§१०. **गुप्त वंश का उदय**—गंगा काँठे में भी तभी एक नई शक्ति

उठी । साकेत प्रयाग प्रदेश में गुप्त नामक एक राजा था । गुप्त का बेटा घटोत्कच हुआ, और उसके बेटे चन्द्र ने अपने को चन्द्रगुप्त कहा । चन्द्रगुप्त ने लिच्छवियों की कन्या कुमारदेवी से विवाह किया । गुप्त और लिच्छवि राज्य उस विवाह से मिल गये और दोनों के साझे सिक्के निकाले गये । चन्द्रगुप्त-कुमारदेवी का बेटा समुद्रगुप्त महान् विजेता हुआ । ३२० ई० में उसके अभिषेक से एक नये सवत् का आरम्भ किया गया ।*

चन्द्रगुप्त १म और कुमारदेवी का सोने का सिक्का
चित, राजा रानी, [illegible] ।
पट, सिंह पर [illegible] बैठी देवी,
लेख—लिच्छवयः ।
[[illegible]]

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ [illegible] ?

२ नाग साम्राज्य का उदय कब और कैसे हुआ, उसका राज्य कहाँ था ?

३ [illegible] कब और कैसे उठा, [illegible] ?

४ [illegible] ?

५ [illegible] कब और कैसे हुआ ?

६ गुप्त वंश का आरम्भ कब और कैसे हुआ ।

७ [illegible] टिप्पणियाँ लिखिए—

[illegible]

---

* ३२० ई० में गुप्त संवत् [illegible] चन्द्रगुप्त १म [illegible] ।

अध्याय २

गुप्त साम्राज्य का उदय और उत्कर्ष

(लगभग ३२०–४५५ ई०)

§१. **दिग्विजयी समुद्रगुप्त**—(लग० ३२०–३७५ ई०)—समुद्रगुप्त ने राज पाने के बाद एक ही युद्ध मे गंगा-जमना कांठे और मगध के राज्यों को जीत लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने मगध पर चढ़ाई की तो गंगा-जमना कांठे के अनेक राजाओ ने उससे युद्ध छेड़ा। उसने स्वयं उत्तर भारत के उन सम्मिलित राजाओं को हराया और तभी उस की सेना ने पाटलिपुत्र ले लिया। इसके बाद प्रवरसेन की मृत्यु तक वह अवसर की ताक में रहा।

§२. **गन्धार में किदार**—"छोटे ऋषिको" के एक सरदार किदार ने लग० ३४० ई० मे पेशावर में अपना राज स्थापित कर कश्मीर और मध्य पजाब भी ले लिये। पहले वह सासानी सम्राट् शापुर २य की अधीनता मानता रहा, पर लग० ३५५ ई० मे स्वतन्त्र हो बैठा। शापुर तब उसे अधीन करने के लिए सेना के साथ काबुल आया। किदार ने अधीनता मानी और शापुर की मेसोपोटामिया की चढाई मे सहायता भी भेजी। किन्तु ३६७-६८ में किदार ने फिर विद्रोह कर एक सासानी सेना का संहार किया, और दूसरी को जो स्वयं शापुर के नेतृत्व मे थी, खदेड दिया। तब वह पूरी तरह स्वतन्त्र हो गया।

§३. **कर्णाटक में कादम्ब**—किदार जब गन्धार में पैर जमा रहा था तभी पल्लव राज्य के उत्तरी छोर पर श्रीपर्वत मे कादम्ब वंश का मयूरशर्मा काञ्ची के पल्लव महाराजा के विरुद्ध विद्रोह किये हुए था। लग० ३४५ ई० में पल्लव महाराजा ने उससे समझौता कर उसे कुन्तल अर्थात् उत्तरी कर्णाटक और दक्खिनी महाराष्ट्र की राजधानी वैजयन्ती के राजा रूप में अभिषिक्त किया। यों कादम्ब राज्य चुटु-सातवाहनो के उत्तराधिकारी रूप मे स्थापित हुआ।
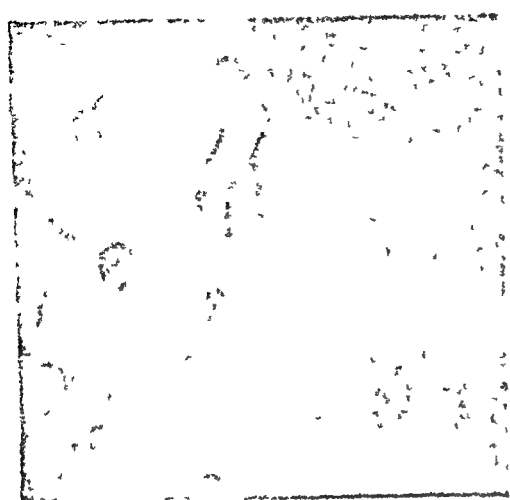
की शर्त पर उसने शत्रु से छुटकारा पाने की सन्धि की। नौजवान चन्द्रगुप्त से यह अपमान न सहा गया। उसने अपने भाई के मानने तक ठहरना सही। स्वयं ध्रुवस्वामिनी का और अपने बहुत से नौजवान साथियों से उसकी सहेलियों का भेस बनवा वह शत्रु की छावनी में घुसा, और ज्यों ही उसने किदार-वंशी राजा का तथा उसके सरदारों का काम तमाम कर शंख बजाया, त्यों ही गढ़ के भीतर वाली सेना ने शत्रु की सेना पर टूट कर उसे तहस-नहस कर दिया। चन्द्रगुप्त ने इसके बाद "सिन्धु की सातों धाराएँ (पंजाब और काबुल की नदियाँ) युद्ध में पार कर" बलख पर चढ़ाई की और उसे जीता।

उदयगिरि की चन्द्रगुप्तगुहा के बाहर वराहमूर्ति, वराह की दन्तकोटि पर लटकी हुई मानुषी पृथिवी या ध्रुवस्वामिनी। [फो० पुरा०]

कायर रामगुप्त का शीघ्र अन्त हुआ और भारतवर्ष का साम्राज्य चन्द्रगुप्त को मिला। देवी ध्रुवस्वामिनी ने अपने उस उद्धारक को अपना पति वरण किया। भिलसा के पास उदयगिरि में चन्द्रगुप्त के बनवाये हुए गुहा-मन्दिरों के बाहर, पृथिवी का उद्धार करते हुए वराह की एक विशाल मूर्ति बनी है, जिसमें ध्रुवस्वामिनी के उद्धारक चन्द्रगुप्त के तेज और

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का सोने का सिक्का चित, राजा शेर का शिकार करते हुए, लेख—नरेन्द्र ··· पट, सिंहवाहिनी देवी, लेख—सिंहविक्रमः। [ब्रि० सा० सं०]
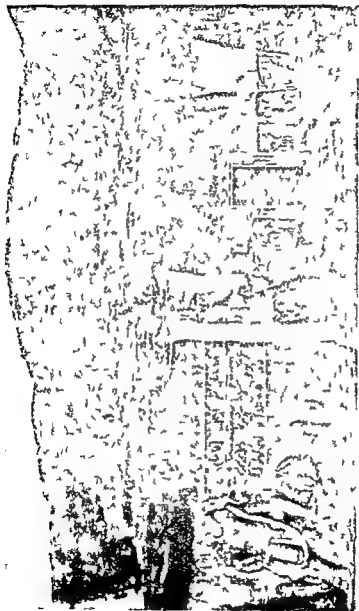
वराह गुहा का एक और दृश्य। उपर उदयगिरि है जिसमें और भी अनेक गुहाएँ कटी हुई हैं। [ग्वालियर पु० वि०]
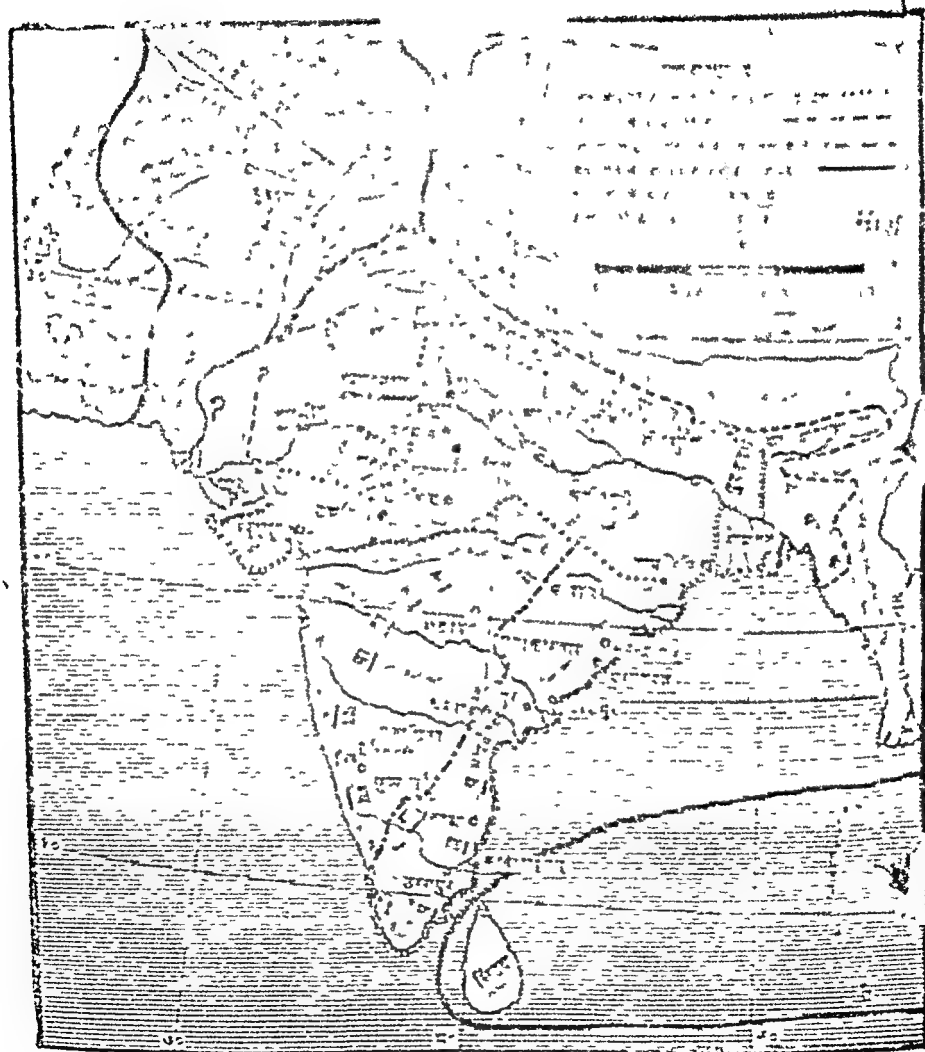
बलख की लड़ाई से पहले कुमार चन्द्रगुप्त बंगाल में कई सम्मिलित शत्रुओं के एक दल को हरा चुका था। रामगुप्त के समय की कमजोरी से लाभ उठा कर पच्छिमी क्षत्रपों ने फिर स्वतन्त्र महाक्षत्रप पद धारण कर लिया (३८० ई०)। उत्तरापथ से लौट कर चन्द्रगुप्त ने उनके राजवंश को सदा के लिए मिटा दिया (३९० ई०)। विष्णुपद पहाड़ पर उसकी इन विजयों की याद में एक लोहे का खम्भा खड़ा किया गया जिसे ११वीं शताब्दी में राजा अनंगपाल तोमर दिल्ली उठा ले गया। वहाँ महरौली में यह "लोहे की कीली" अब तक खड़ी है। इन विजयों के बाद चन्द्रगुप्त ने विक्रमादित्य पद धारण किया। उसने अपने साम्राज्य में मृत्युदण्ड उठा दिया।
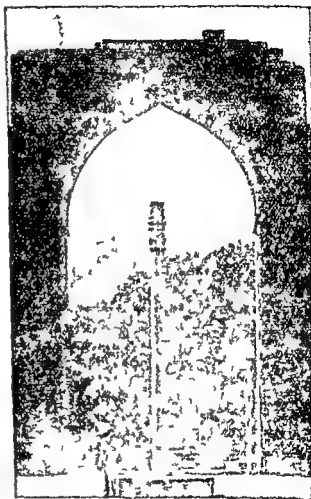
महरौली में राजा चन्द्र का लोहे का कीला, जिस पर उसके बंगाल, बलख और पच्छिम के विजयों का वृत्तान्त खुदा है। पड़ोस की टूटी मसजिद अनंगपाल के मन्दिर [illegible] है। [भा० पु० वि०]

§७. **प्रभावती गुप्ता**—सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपनी बेटी प्रभावती का राजा पृथ्वीषेण के बेटे रुद्रसेन २य से विवाह किया। रुद्रसेन की मृत्यु के बाद अपने बेटों के नाम पर प्रभावती स्वयं शासन करती रही (लग० ३९०-४१० ई०)। इस प्रकार जब उत्तर भारत में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राज्य था तभी महाराष्ट्र में रानी प्रभावती राज करती थी। वह भारतवर्ष का अत्यन्त गौरव और समृद्धि का युग था।

§८. **कुमारगुप्त (१म)**—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बाद उसके बेटे कुमारगुप्त ने ४० वर्ष (४१५–४५५ ई०) शान्ति-पूर्वक राज्य किया। वाकाटक राज्य में यही समय प्रभावती के बेटे प्रवरसेन और उसके बेटे नरेन्द्रसेन के शासन में बीता। राजगृह और पाटलिपुत्र के बीच नालन्दा में कुमारगुप्त ने एक महाविहार की स्थापना की। आगे चल कर वह एक महान् विद्यापीठ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। कुमारगुप्त के शासन काल में भारतवर्ष में शान्ति और समृद्धि बनी रही। किन्तु तभी उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर एक आँधी आने की सूचना मिल रही थी।
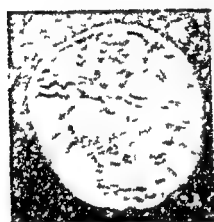
कुमारगुप्त (१म) का सोने का सिक्का
चित. राजा घोड़े पर सवार, लेख—गुप्तकुल-व्योमशशी जयत्यजेयो जितमहेन्द्रः।
पट. देवी मोर को खिलाते हुए।
[श्री० सा० सं०]

§९. **मध्य एशिया में हूण**—प्रायः पाँच सौ बरस चुप रहने के बाद चौथी शताब्दी ई० के अन्त में हूण लोग फिर अपने घरों से निकले, और टिड्डी दल की तरह संसार के अनेक सभ्य देशों पर छा गये। जहाँ कहीं वे पहुँचते, गाँव और बस्तियाँ जलाते और मारकाट मचाते जाते। उस समय के सभ्य जगत् की दृष्टि से उनकी जंगली आदतों के अतिरिक्त उनकी चिपटी नाकें, गडी हुई छोटी आँखें और कर्कश आवाज उन्हें और भी भयंकर बना देती थीं। उनकी एक बाढ़ वोल्गा नदी को लाँघ कर युरोप चली गई और रोम-साम्राज्य

पर मँडराने लगी। जैसे प्राचीन ईरान और आर्यावर्त के उत्तरी सीमान्त पर शक आर्य लोग रहते थे, वैसे ही रोम साम्राज्य के उत्तर-पूरब राइन और दान्यूब नदियों के उस तरफ गत (Goth),* स्लाव, त्यूतन आदि अर्ध सभ्य आर्य जातियाँ रहती थीं। हूणों ने उनके देश में खलबली मचा दी, जिससे वे रोम-साम्राज्य पर जा टूटीं और उसे तहस नहस करने लगीं। स्वयं हूण मध्य युरोप तक जा पहुँचे, जहाँ उनके नाम से एक देश हुनगारी कहलाने लगा, तथा उनके भाई बल्गों के नाम से एक देश बुलगारिया। अतिला नामक हूण सरदार ने रोम का पूरा पराभव कर उसे लूट लिया।

हूणों की दूसरी बाढ़ थियानशान और पामीर के पच्छिम के मध्य एशिया के भारतीय और ऋषिक-तुखार राज्यों पर टूटी (लग० ४२५ ई०)। मध्य एशिया की शान्ति, समृद्धि और सभ्यता को हूणों के आक्रमणों से गहरा धक्का लगा। तुख दोआब को जीत कर उन्होंने ईरान के सासानी राज्य पर हमले करना शुरू किया। सासानियों से उनकी लड़ाइयाँ प्रायः सवा सौ बरस तक जारी रहीं।

वंक्षु के काँठे (पच्छिमी मध्य एशिया) में हूणों के टिक जाने से सीता के काँठे (पूरबी मध्य एशिया) के भारतीय राज्य उत्तर और पच्छिम से घिर गये। उनका पच्छिमी देशों से सम्बन्ध टूट गया और भारत से सम्बन्ध के मार्ग भी खतरे में पड़ गये। हूण लोग उन राज्यों पर भी जब तब धावे मारने लगे, जिससे उन पर आतंक बना रहने लगा।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ समुद्रगुप्त ने भारत का दिग्विजय किस क्रम से किया? उस दिग्विजय का मुख्य परिणाम बताइए।

२ कौन कौन से गणराज्य समुद्रगुप्त की अधीनता मानते थे और वे कहाँ कहाँ थे?

३ समुद्रगुप्त का शासन माननेवाले प्रत्यन्त राज्य कौन कौन से थे?

४ भारत के किस मुख्य भाग को समुद्रगुप्त ने विजय नहीं किया?

५ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की दिग्विजय कहाँ कहाँ किस रूप में [illegible] अंकित [illegible]?

---

* [illegible] गौथ के लिए गत शब्द आया है। [illegible]

उनके विजयों का संक्षेप से उल्लेख करते हुए बताइए कि उनमें भारत के स्वाभाविक सीमान्त क्या प्रकट होते हैं।

६. रानी प्रभावती गुप्ता कौन थी और क्या राज करती थी ?

७. चौथी शताब्दी के अन्त के हूण आक्रमणों से सभ्य संसार में क्या नया संकट उपस्थित हुआ ?

८. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

किदार, कादम्ब मयूरशर्मा, समुद्रगुप्त के सिक्के, पृथ्वीषेण, रामगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, नालन्दा की स्थापना।

९. आधुनिक यूरोप के हुंगारी और बुल्गारिया प्रदेशों के ये नाम कब और कैसे पड़े ?

अध्याय ३

गुप्त साम्राज्य, हूण और यशोधर्मा

(लग० ४५५—५४३ ई०)

§१. **स्कन्दगुप्त**—४५४ ई० में सासानी राजा यज्दगुर्द २य को हरा कर हूणों का एक दल अफगानिस्तान लाँघता हुआ पंजाब तक बढ़ आया। कुमारगुप्त की मृत्यु कैसे हुई, सो स्पष्ट नहीं है। तो भी इतना निश्चित है कि उसकी मृत्यु के समय "गुप्तों की राज्यलक्ष्मी डगमगा गई थी", और उसका नौजवान बेटा स्कन्द बहादुरी से शत्रुओं का सामना कर रहा था। वे शत्रु एक तो हूण थे, दूसरा पुष्यमित्र नामक गण था, जिसने अब विद्रोह किया था। तीन महीने के अन्दर सब शत्रुओं को परास्त कर विजय का समाचार लिये स्कन्द अपनी माँ के पास उसी तरह पहुँचा, जैसे "कृष्ण देवकी के पास गये थे।" माँ ने डबडबाई आँखों से उसका स्वागत किया। हूणों को उसने ऐसी हार दी कि अगले तीस बरस तक उन्होंने भारतवर्ष की ओर मुँह न फेरा, और प्रायः ५५ बरस तक गुप्त साम्राज्य को फिर न छेड़ा। उस विजय का स्मारक एक स्तम्भ गाजीपुर जिले के सैदपुर-भितरी गाँव में अब भी खड़ा है। स्कन्दगुप्त के बारह बरस (४५५-४६७) के प्रशासन में गुप्त साम्राज्य का गौरव बना रहा।

§२. पिछले गुप्त सम्राट्—स्कन्दगुप्त के बाद दस बरस में शायद दो
क सम्राटों ने राज किया, और फिर बीस बरस तक (४७७ ६६) बुधगुप्त ने।
सके बाद चौथाइ शताब्दी दो या अधिक सम्राटों के प्रशासन में बीती, जिनमें
एक भानुगुप्त था। इन सम्राटों का वंशवृक्ष और राज्यकाल, जो अभी तक
ाना जा सका है, इस प्रकार है—
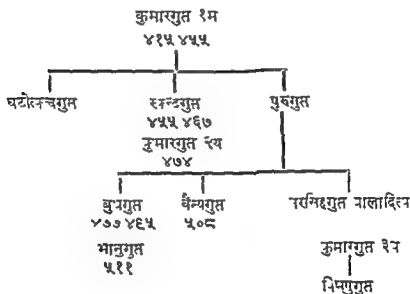
§३ गन्धार में हूण, तोरमाण और मिहिरकुल—उधर ईरान
के सासानी शाहों और काबुल के कूषिक तुखारों का मध्य एशिया में हूणों
के साथ घोर मुकाबला जारी रहा। ४८४ ई० में ईरान का शाह पीरोज उनसे
लड़ता हुआ मारा गया। तब उन्होंने बलख को अपनी राजधानी बना अफगा
निस्तान को भी पैरों तले रौंद डाला, और उसकी अनेक सुन्दर सभ्य बस्तियों को
मटियामेट कर डाला। गन्धार पहुँच कर उन्होंने किदार के वंशजों को वहाँ से
भगा दिया, किदारों ने उरशा (हजारा) और कश्मीर में शरण ली।

५०० ई० के बाद गन्धार का हूण राजा तोरमाण "शाही जउब्ल'
था। उसने गुप्त साम्राज्य को कमजोर पा कर पंजाब से मालवे तक अधिकार

बालादित्य ने उसे सूली पर चढ़ाना तय किया, किन्तु उसकी माता ने मिहिरकुल की जान बख्श दी। मिहिरकुल पंजाब लौटा, पर उसके भाइ ने पीछे उसकी गद्दी सँभाल ली थी। तब मिहिरकुल ने भाग कर कश्मीर के राजा के यहाँ शरण ली और कुछ समय बाद अपने आश्रयदाता का राज्य छीन लिया। उसने फिर गन्धार पर चढ़ाई की, और वहाँ बड़े अत्याचार किये। हूणों के दो तीन आक्रमणों से तक्षशिला सदा के लिए मटियामेट हो गई।

§४ **वाकाटक हरिषेण**—स्कन्दगुप्त के समय हूणों का पहला आक्रमण होने पर वाकाटक राजा नरेन्द्रसेन ने अवन्ति को अपनी रक्षा में ले लिया था। स्कन्दगुप्त का साम्राज्य सुराष्ट्र तक फैला हुआ था, जिसका यह अर्थ है कि स्कन्दगुप्त ने अवन्ति पर भी फिर से आधिपत्य स्थापित कर लिया था। परन्तु पाँचवीं शताब्दी के अन्त में हरिषेण वाकाटक ने अपना राज्य फिर अवन्ति से कुन्तल (दक्खिनी महाराष्ट्र उत्तरी कर्णाटक) और दक्षिण कोशल तक फैला लिया। उसके दक्खिन कर्णाटक का कादम्ब और काञ्ची का पल्लव राज्य भी अच्छी दशा में थे।

§५ **जनेन्द्र यशोधर्मा**—पंजाब, कुरुक्षेत्र, राजस्थान को गुप्त सम्राट् हूणों से न बचा सके तो वहाँ की जनता स्वयं अपनी रक्षा को उठ खड़ी हुई। उसका अगुआ "जनेन्द्र" (जनता का नेता) यशोधर्मा था जिसने भारत से हूणों को उखाड़ डाला और देश का शासन अपने हाथ में ले लिया। जिस मिहिरकुल से बालादित्य डरता फिरता था, उसे यशोधर्मा ने "हिमालय के गढ़ में खदेड़ा, और अपने चरणों पर झुकने को बाधित किया।" कमजोर गुप्तों के साम्राज्य पर भी उसने अधिकार कर लिया। "लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के काँठे से महेन्द्र पर्वत (उड़ीसा) तक और हिमालय से पच्छिमी समुद्र तक" समूचा देश अपने उस उद्धारक का शासन मानने लगा। "जिनपर गुप्तों का अधिकार कभी न हुआ था, और जिनमें हूणों की आज्ञा कभी न पहुँची थी" ऐसे कई देश भी उसके अधीन हो गये। वाकाटकों का राज्य भी सम्भवतः उसी के साम्राज्य में मिल गया। दासोर (मन्दसोर) में यशोधर्मा के विजय स्तम्भ, जिनमें से एक पर ५८९ मालव संवत् (=५३२ ई०) का लेख है, अब तक पड़े हैं। यशोधर्मा

के पचीस-तीस बरस पीछे (५५७–५६७ ई०) ईरान के शाह अनुशीरवाँ ने मध्य एशिया में भी हूणों की शक्ति तोड़ दी।
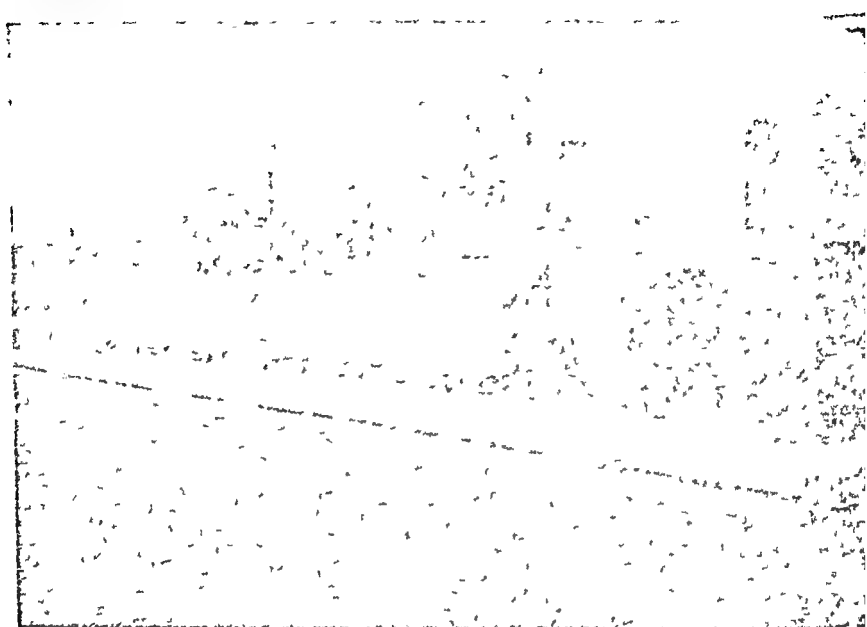
दासोर में पड़े हुए यशोधर्मा के विजय-स्तम्भ [ग्वालियर पु० वि०]

यशोधर्मा के साथ हमारे इतिहास का प्राचीन काल समाप्त होता है इसके बाद के प्रायः एक हजार बरस को हम मध्य काल कहते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सम्राट् स्कन्दगुप्त किस बात के लिए प्रसिद्ध है ?
२. भारत के किस किस प्रदेश में हूण शासन कब स्थापित हुआ ? क्रमिक वृत्तान्त लिखिए।
३. भारत में हूणों का अंतिम पराभव करनेवाले महापुरुष का परिचय दीजिए।
४. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
 पिछले गुप्त सम्राट्, मिहिरकुल, हरिषेण, यशोधर्मा की साम्राज्य-सीमा, अनुशीरवाँ।
५. तक्षशिला का ध्वंस कब किसने किया ?
६. स्कन्दगुप्त के समय वाकाटक तथा दक्खिन के राज्यों की स्थिति का वर्णन कीजिए।

अध्याय ४

वाकाटक-गुप्त युग का बृहत्तर भारत

§१ **भारत का विस्तार**—वाकाटक और गुप्त युगों में भारतवर्ष कहने से उपनिवेशों सहित भारतवर्ष ही समझा जाता था। पुराणों में भारतवर्ष के 'नौ भेद' कहे हैं, जिनमें से प्रत्येक स्थल मार्ग से "परस्पर अगम्य और समुद्र से अन्तरित" है। आज जिसे हम भारत कहते हैं वह उन नौ में से केवल एक है, ताम्रपर्णी या सिंहल दूसरा है, शेष सब परले हिन्द में हैं।

फन ये नामक चीनी लेखक ने पाँचवीं शताब्दी के शुरू में लिखा कि फानुन से आरम्भ कर दक्खिन-पच्छिम समुद्र-तट तक और वहाँ से पूरब तरफ आनाम (वियेतनम) तक सब देश शिन्-तु (सिन्धु=हिन्द) के अन्तर्गत हैं। शिन्-तु को चीनी लोग थियेन्-चु (देवताओं का देश) भी कहते थे।

§२ **ब्राह्मी का विस्तार, तुखारी और खोतनदेशी वाङ्मय**—भारतीय प्रभाव के विस्तार का एक प्रकट परिणाम और चिह्न ब्राह्मी लिपि का विस्तार होता था। वाकाटक और पल्लव राज्यों का परले हिन्द के सामुद्रिक उपनिवेशों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह सम्बन्ध ठेठ भारत तथा उन उपनिवेशों की लिपियों तक का मिलान करने से देखा जा सकता है। वाकाटक युग में तत्कालीन चम्पा निवासी च्यू नामक विगत जाति की भाषा भी भारतीय अक्षरों में लिखी जाने लगी।

चीन हिन्द में तुखार और ऋषिक लोग जो बोलियाँ बोलते थे, वे भी गुप्त युग में लिखी जाने लगीं और सभ्य भाषाएँ बन गईं। उनमें वाङ्मय पैदा हो गया, और अच्छे अच्छे ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे। पर वे लिखी गईं हमारे देश की ही लिपि में जो यहाँ गुप्त-युग में चलती थी। उनका वाङ्मय भी प्रायः संस्कृत से अनूदित था, या उसके नमूने पर बना था। उन भाषाओं को तुखारी और खोतनदेशी कहते हैं। तुखारी तारीम नदी के उत्तर कुचि, अग्नि, पौग्राग आदि बस्तियों की भाषा थी, खोतनदेशी उसके दक्खिन खोतन प्रदेश की।

अश्वघोष-कृत वज्रच्छेदिका के खोतनदेशी अनुवाद की भोजपत्र पर लिखी पोथी का एक पृष्ठ। यह पोथी चीन-हिन्द (चीनी तुर्किस्तान) से मिली है।

§ ३. परले हिन्द के भारतीय राज्य—परले हिन्द में बोर्नियो द्वीप के पूरबी छोर तक के भारतीय राज्यों के इस युग के अवशेष पाये गये हैं। पूरबी बोर्नियो में चौथी शताब्दी में राजा मूलवर्मा का राज्य था, जिसके बनवाये हुए यज्ञों के यूप (खम्भे) और संस्कृत के लेख अब भी विद्यमान हैं। जावा में उसी समय का राजा पूर्णवर्मा का लेख पाया गया है।
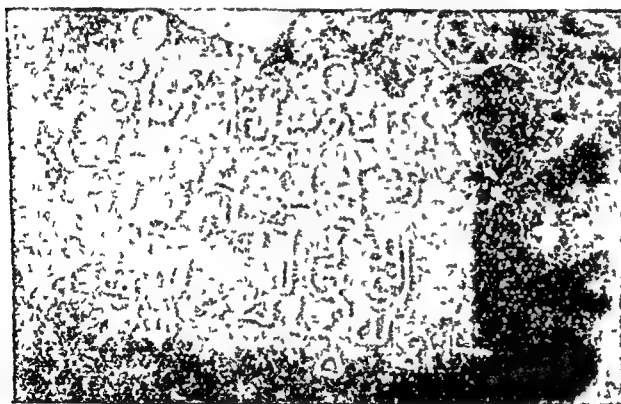
जावा के राजा पूर्णवर्मा का लेख

(प० १) विक्रान्तस्यावनिपतेः (प०२) श्रीमनः पूर्णवर्म्मणः
(प० ३) तारूमनगरेन्द्रस्य (प० ४) विष्णोरिव पदद्वयम्।

चम्पा राज्य के चीन के साथ सीमा के प्रश्न को ले कर ३४० ई० से प्रायः एक शताब्दी तक अनेक युद्ध हुए। लग० ४०० ई० में वहाँ राजा भद्रवर्मा था, जिसके लेख अब भी विद्यमान हैं और जिसका बनवाया भद्रेश्वरस्वामी
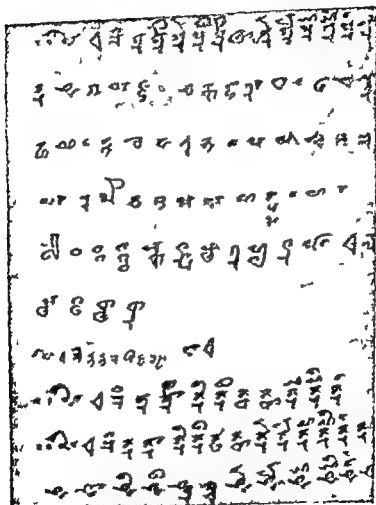
कहलाया, और उनका वंश भी तब से गंगराज-वंश कहलाने लगा।

'फूनान' के साम्राज्य में चौथी शताब्दी के अन्त में दक्खिन भारत से एक दूसरा कौण्डिन्य [५, ४ § २] गया, जिसने वहाँ भारत के नमूने पर राज्य और समाज-विषयक अनेक सुधार किये। इस कौण्डिन्य के वंश में पाँचवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में राजा जयवर्मा हुआ। सुमात्रा-जावा में पाँचवीं शताब्दी में एक नया राज्य स्थापित हुआ, जो शीघ्र एक साम्राज्य बन गया। उसकी राजधानी श्रीविजय (सुमात्रा में आजकल का पालेम्बांग) थी।

§४. फा-हियेन, कुमारजीव, गुणवर्मा—भारतवर्ष और बृहत्तर भारत की दशा उस समय कैसी थी और उनका आपस में विदेशों से सम्बन्ध कैसा था, इसपर उस समय के तीन प्रसिद्ध विद्वान् यात्रियों के वृत्तान्तों से प्रकाश पड़ता है। इनमें से एक फा-हियेन था। वह बौद्ध धर्म की ऊँची शिक्षा पाने और बुद्ध की जन्मभूमि देखने के लिए ३९९ ई० में चीन से भारत के लिए रवाना हुआ और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्य में ४०५ से ४११ ई० तक रहा। चीन के कानसू प्रान्त से चीन हिन्द (सीता-कोंटा) पहुँच कर वहाँ के भारतीय राज्यों में घूमता हुआ गन्धार हो कर वह मध्यदेश पहुँचा। वह लिखता है कि भारतवर्ष संसार भर में सब से सभ्य देश है; यहाँ के लोग सभ्य, सम्पन्न और सदाचारी हैं। लोग नशा नहीं करते, अपराध बहुत कम होते हैं, अपराधों के दंड बहुत हलके हैं और मृत्यु-दंड किसी को नहीं दिया जाता। अपनी लम्बी यात्रा में फा-हियेन को कहीं चोर-डाकुओं से वास्ता नहीं पड़ा। एक बात और ध्यान देने की यह है कि फा-हियेन के समय तक हिमालय की तराई की बस्तियाँ—कपिलवास्तु, कुशिनगर आदि—जिनमें बुद्ध के समय बड़ी चहल-पहल थी, सब जंगल हो चुकी थीं। वैसे बौद्ध धर्म और पौराणिक धर्म दोनों देश में बराबर-बराबर चल रहे थे। फा-हियेन मगध से चम्पा (भागलपुर) हो कर ताम्रलिप्ति (तामलूक) पहुँचा। वहाँ से जहाज में बैठ १४ दिन में सिंहल पहुँचा, फिर वहाँ से ९० दिन में यवद्वीप। यवद्वीप में तब तक बौद्ध धर्म का प्रचार न था। वहाँ से वह एक जहाज में, जिस में २०० भारतीय व्यापारी भी थे, चीन वापिस गया।
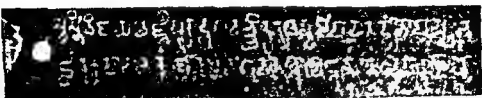
को भी इस काम के लिए बुलाया और अश्वघोष, नागार्जुन आदि के अनेक ग्रन्थो का चीनी अनुवाद कर महायान का प्रचार किया। कुमारजीव के ग्रन्थ आज तक चीन मे उसी तरह पढ़े जाते हैं जैसे यहाँ कालिदास के। उसकी मृत्यु चीन मे ही ४१२ ई० में हुई।

उसके कुछ समय बाद गुणवर्मा नामक विद्वान् चीन पहुँचा। वह कश्मीर या कपिश का युवराज था, पर भिक्षु बन गया था। पहले वह सिंहल गया, और वहाँ से ४२३ ई० में यवद्वीप पहुँचा। फा-हियेन के जाने के १० बरस पीछे वहाँ उसने पहले-पहल बौद्ध धर्म का प्रचार किया। यवद्वीप से वह नन्दी नामक एक भारतीय के जहाज में चीन गया।

होरिउजी मठ की भीत पर एक बोधिसत्त्व-चित्र
[राहुल जी के सौजन्य से]

§५. कोरिया और जापान का धर्मविजय— समुद्र-गुप्त के समय कोरिया में बौद्ध धर्म स्थापित हो गया (३५२ ई०)। उस देश की भाषा भी तब भारत की ब्राह्मी लिपि में लिखी गई। यशोधर्मा के समय निपोङ (जापान) देश भी बौद्ध हो गया (५३८ ई०)। तब वहाँ होरिउजी और नारा के बौद्ध विहार स्थापित हुए, जिनमें तत्कालीन संस्कृत ग्रन्थ आज तक रक्खे हैं, और जिनकी भीतों पर लिखे चित्रों में स्पष्ट भारतीय प्रभाव झलकता है।

§६. सीता-काँठे पर मरुभूमि की बाढ़—सीता का काँठा मौर्य युग में गंगा-काँठे सा हरा-भरा था, पर प्राचीन काल के अन्त के पहले से उसमें मरुभूमि बढ़ने लगी। भूगर्भशास्त्री बतलाते हैं कि आज से प्रायः

म लाख बरस पहले तक हिमालय और तिब्बत समुद्र के अन्तर्गत थे, और
न वे कइ सहस्राब्दियों के भूकम्पों द्वारा ऊपर उठे । हिमालय की वह ऊपर
उठते जाने की प्रक्रिया अब भी चल रही है । इसकी दीवार ज्यों ज्यों ऊँची
उठती जाती है त्यों त्यों हिन्द महासागर से उठे भाप के बादलों का मध्य
एशिया तक पहुँचना घटता जाता है । जो पानी हिमालय को लाँघ कर
तिब्बत पहुँचता भी है उसका बडा अंश सिन्ध, सतलज, कर्णाली (घाघरा)
और ब्रह्मपुत्र की नालियों के रास्ते भारत लौट आता है । भूगर्भशास्त्री यह
भी बताते हैं कि आज से दस हजार बरस पहले तक ससार में हिम युग था ।
उत्तरी ध्रुव से हिमालय तक भूमि का मुख्य भाग तब बरफ से ढका था ।
हिम युग से चले आते अनेक गल* क्युनलुन और कराकोरम पर्वतों में, जो
तारीम काठे का दक्खिनी दामना हैं, अब तक पडे हैं । पर ज्यों-ज्यों दक्खिन
की भाप का उन पर्वतों तक पहुँचना घटता जाता है, त्यों त्यों उनके हिम-
भण्डार छीजते जाते हैं । उन गलों से बहने वाली सीता जैसी अनेक धाराएँ
पहले चीन हिन्द में थीं । उन्हीं के तटों पर भारतीय उपनिवेश बसे थे । अब
वे धाराएँ क्युनलुन से उतर कर मरुभूमि में लुप्त हो जाती हैं, और अनेक
प्राचीन उपनिवेशों के खँडहर अब उनके उत्तर की मरुभूमि में हैं । तकला
मकान मरुभूमि की यह दक्खिन तरफ बाढ ईसवी सन् के आरम्भ से धीरे
धीरे होने लगी । प्राचीन काल के अन्त के बाद उसका प्रभाव दिखाइ देने
लगा ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ वाकाटक गुप्त युग में भारतवर्ष का विस्तार कहाँ से कहाँ तक माना जाता था ? आज के भारत से उसका क्या अन्तर है ?

२ फा हियेन के यात्रामार्ग का उल्लेख कर लिखिये कि उसके यात्रा विवरण से भारत की तात्कालिक स्थिति पर क्या प्रकाश पडता है ?

---

* बरफ का नदी को कुमाऊँ-गढ़वाल में गल और कश्मीर में गुरुम कहते हैं, जैसे पिण्डारी गल, कोलाहाइ गुरुम । अंग्रेजी ग्लेशियर शब्द का यही अर्थ है ।

३. कुमारजीव और गुणवर्मा का जीवन-वृत्तान्त लिख कर बताइए कि चीन और भारत के सांस्कृतिक आदान-प्रदान में उनकी क्या देन रही ?

४. सीना-काठे की मरुभूमि कब और कैसे फैलने लगी ? उसका भारतीय उपनिवेशों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

५. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—

मूलवर्मा, 'नागराज', शिन्-तु, तुखारी भाषा, श्रीविजय ।

अध्याय ५

वाकाटक-गुप्त युग का भारतीय समाज

§ १. **गुप्त शासन**—गुप्त सम्राटों के प्रशासन में भारतवर्ष ने अद्वितीय शान्ति और समृद्धि देखी। समूचा गुप्त साम्राज्य बहुत से 'देशों' और 'भुक्तियों'

नालन्दा और सहजाति की खुदाई में पाई गई गुप्तों की सरकारी मुहरें—असल परिमाण

"नगरभुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य" ("नगर के शासन में छोटे अमात्य के दफ्तर की")

"सामाहर्स-विषयाधिकरणस्य" ('सामाहर्स ज़िले के दफ्तर की')

[भा० पु० वि०]

"दण्डनायकश्रीरग्रदत्तस्य"
('पुलिस नायक आर्यग्रदत्त का')

"कुमारामात्याधिकरणस्य" ("छोटे अमात्य के दफ्तर का)
[भा० पु० वि०]

में बँटा हुआ था, जैसे अन्तर्वेदी (ठेठ हिन्दुस्तान), श्रावस्ती भुक्ति (अवध), तीर भुक्ति (तिरहुत), 'यमुना नर्मदा का मध्य' (बुन्देलखण्ड) इत्यादि। प्रत्येक देश या भुक्ति पर एक 'गोप्ता' या 'उपरिक महाराज' शासन करता था जो या तो सम्राट् का नियुक्त किया हुआ या उसका सामन्त राजा होता था। देश या भुक्ति फिर कई छोटे "विषयों" अर्थात् जिलों में बँटी होती थी। प्रत्येक देश या भुक्ति के शासन के लिए कई महकमे (अधिकरण) होते थे। तीरभुक्ति की राजधानी वैशाली के खँडहरों में से वहाँ के बहुत से अधिकरणों की मोहरें पाई गई हैं। गुप्त सम्राटों की सफलता का सब से बड़ा कारण

उनका सुशासन और सुव्यवस्था थी। उनकी शासनपद्धति की नकल भारत के दूसरे सब राजाओं ने भी की, और उनके बाद के जमाने में भी लगातार उसी की नकल होती रही।

§ २. ग्रामों और जनपदों के संघ, शिल्पियों की श्रेणियाँ व्यापारियों के निगम—वैशाली और नालन्दा के खँडहरों मे पाई गई गुप्त-युग की मुहरों मे ग्रामो की मुहरे भी है, जिनसे प्रतीत होता है कि राजकीय शासन के नीचे ग्रामो, नगरों आदि की पचायतें पहले की तरह अपना प्रबन्ध स्वतन्त्रता मे करती आती थी। नालन्दा के खँडहरों में से सरकारी अधिकरणों (दफ्तरों) और ग्रामों की मुहरों के अतिरिक्त कई 'जानपदो'—अर्थात् जनपद या देश के संघों—की भी मुहरे मिली हैं। उनसे सिद्ध होता है कि जनपदो की राष्ट्र-सभाएँ इस युग में भी विद्यमान थीं।
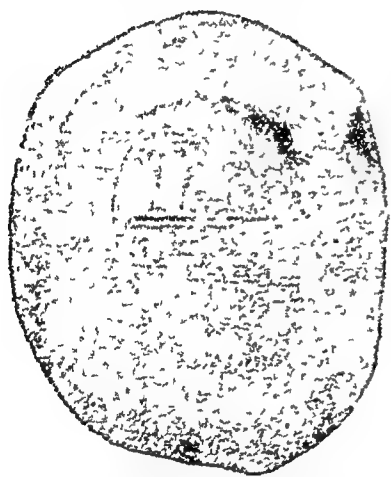
"पादयाग्-ग्रामस्य"
नालन्दा में पाई गई एक ग्राम की मुहर—गुप्त युग की लिपि में [भा० पु० वि०]

वैशाली में व्यापारियों के निगमों और कारीगरों की श्रेणियों की मुहरे भी पाई गई हैं। श्रेणियो के लेख और भी कई जगहो से मिले हैं। उनसे यह जाना गया है कि व्यापारियों और शिल्पियों के सघटन भी पहले से अधिक समृद्ध दशा में थे।

वाकाटको और गुप्तो के समय में देश की समृद्धि और व्यवस्था सातवाहन युग से भी कहीं अधिक बढ़े हुए थे। विदेशी व्यापार खूब होता था। ऋषिको के प्रशासन मे कश्मीर में तीसरी शताब्दी तक वहाँ के जगत् प्रसिद्ध शालो का व्यवसाय स्थापित हो चुका था। २७४ ई० में सासानी राजा ने रोम के सम्राट् को एक कश्मीरी शाल भेंट किया, जिसकी नफासत देख कर रोम के लोग दंग रह गये थे। सासानी राजा होर्मिज्द २य (३०१–३०९

के साथ काबुल की जिस राजकुमारी का विवाह हुआ, उसका सब दहेज भी कश्मीरी जुलाहों ने तैयार किया था। भारतीय अपने ही जहाजों में विदेशों में माल ले जाते थे। इस युग में नारद स्मृति बनी। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति की अपेक्षा उसमें व्यावहारिक कानून कहीं अधिक हैं।
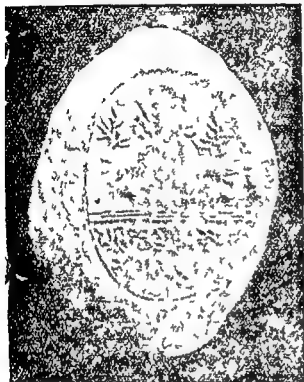
"पुरिकाग्राम जानपदस्य"
नालन्दा में पाई गई एक जानपद सभा की मुहर,
गुप्त युग की लिपि में [भा० पु० वि०]

§ ३ वाकाटक-गुप्त युग का धर्म, कला, वाङ्मय, ज्ञान और संस्कृति—चौथी शताब्दी ई० के अन्त में पेशावर में असंग और वसुबन्धु नाम के दो भाई प्रसिद्ध हुए। वे दोनों महायान के आचार्य थे। पाँचवीं शताब्दी ई० के शुरू में मगध में बुद्धघोष उत्पन्न हुआ, जिसने सिंहल जा कर पालि में त्रिपिटक की 'अट्ठकथाएँ' (अर्थकथाएँ = भाष्य) लिखीं। कहते हैं वहाँ से वह परले हिन्द गया और वहाँ उसका देहान्त हुआ। ४५३ ई० में सुराष्ट्र की वलभी नगरी में जैन विद्वानों का एक संघ बैठा। उसमें जैनों के सब धर्म ग्रन्थों का सम्पादन हुआ। उसी रूप में आज वे ग्रन्थ हमें मिलते हैं।

बौद्ध और जैन धर्म के साथ साथ पौराणिक धर्म भी पूरे यौवन पर था।

वह अब पूर्ण हो चुका था। विष्णु, स्कन्द, शिव, सूर्य और देवी की पूजा चल चुकी थी। विदेश-यात्रा का, अस्पृश्यता-विचार का और मांस-भोजन का परित्याग अब तक न हुआ था। आजकल के हिन्दू धर्म की बाकी बहुत सी बातें चल पड़ी थीं।

"माँ"—मथुरा से पाई गई एक मूर्त्ति, लग० तीसरी शताब्दी पूर्वार्ध की [मथुरा संग्र०, भा० पु० वि०]

सातवाहन युग में पहली शताब्दी ई० पू० के बाद का कोई पौराणिक मन्दिर नहीं पाया गया। पर इस युग में मन्दिर खूब बनने लगे। ऊँचे नुकीले शिखर वाले वैष्णव मन्दिर बनाने की शैली इसी युग में चली। भारशिव-वाकाटक युग मे वैसे मन्दिर बहुत बनने लगे। उन मन्दिरों के शिखरों पर कमल का संकेत उदय होते सूर्य को अर्थात् नई ज्योति और नये जीवन को सूचित करता है। वह नया जीवन वाकाटक-गुप्त युग के भारत मे चारों तरफ दिखाई देता था। आन्ध्र देश मे इक्ष्वाकु राजाओं के समय अमरावती स्तूप को और भूषित किया गया तथा नागार्जुनीकोंडा स्तूप की मूर्त्त चित्रों से अलंकृत वेदिका (जँगला) बनी। महाराष्ट्र की रमणीक अजिंठा पहाड़ी मे, जिसमें पिछले

मौर्यों और सातवाहनों के समय के दो एक गुहामन्दिर थे, वाकाटक राजाओं के समय वैसे अनेक नये और विशाल मन्दिर काटे गये। तभी काबुल ने कुषाण-षण्डी राज्य में बामियाँ के पहाड़ में बौद्ध गुफाएँ बना।

अमरावती स्तूप पर चुनी गई एक चोप पर का मूर्त दृश्य—सम्भवतः समूचा स्तूप इसमें चित्रित है। [मद्रास सम्र०, भा० पु० वि०]

अजिंठा गुहाओं की दीवारों पर गुप्त युग में और बाद में चित्र भी लिखे गये, जिनमें से कुछ अब तक विद्यमान हैं। ये चित्र प्राचीन जगत् की चित्र

कला के सर्वोत्तम उदाहरणों में से हैं। इस युग की मूर्त्तिकला में शृंगारहीन सीधापन है, और उसके साथ कमाल की सजीवता है। उदयगिरि की वराह-मूर्त्ति और भिलसा से पाई गई गंगा-मूर्त्ति को देखते ही बनता है। उनके अंग-अंग से मानो बल, तेज और सौन्दर्य टपकता है।
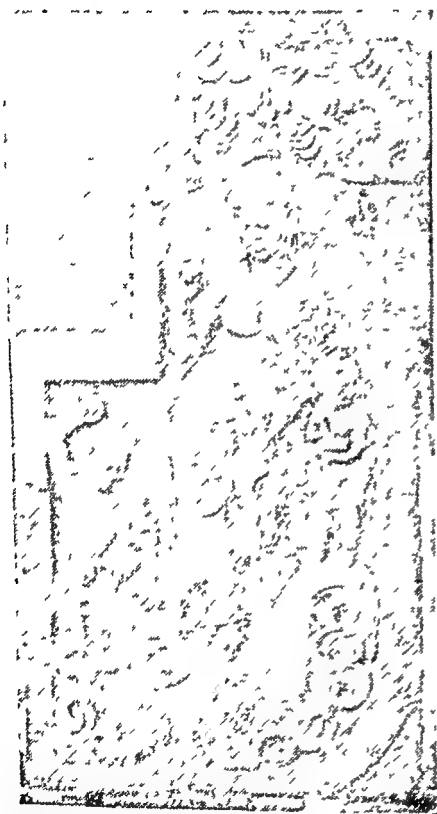
बेसनगर (भिलसा) की खुदाई मे निकली गंगा-मूर्त्ति। यह मूर्त्ति अब अमरीका के बोस्टन म्यु० मे है।

ज्ञान और वाङ्मय में इस युग में भारतवर्ष अपनी उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गया।

दशगुणोत्तर गिनती पहले-पहल तीसरी शताब्दी ई० में भारतीयों ने ही निकाली, फिर यहाँ से उसे दुनिया के सब देशों ने सीखा। गिनती पहले भी थी, पर शून्य का चिह्न न था। जिस प्रकार नौ इकाइयों के चिह्न हैं, उसी तरह दस, बीस, तीस आदि नौ दहाइयों के अलग-अलग चिह्न होते थे, फिर सैकड़े, हजार आदि के अलग। सौ के चिह्न के साथ दो का चिह्न टाँक कर दो सौ बनाया जाता था, इत्यादि। इकाई के आगे शून्य लगा कर दहाई बना ली जाय, यह आविष्कार पहले-पहल तीसरी शताब्दी में हुआ। युरोप वालों ने यह तरीका १३वीं १४वीं शताब्दी में जा कर सीखा।

ज्योतिषी आर्यभट ४७६ ई० मे पैदा हुआ। उसे यह मालूम था कि पृथिवी गोल है। गुरुताकर्षण और सूर्य के चौगिर्द पृथिवी के घूमने के सिद्धान्त

उसने स्थापित किये। और अनेक बातों में भी भारतवर्ष का गणित और ज्योतिष गुप्त युग में जिस सीमा तक पहुँच गया था, उस सीमा को आजकल के विद्वान् पिछली शताब्दी में ही लाँघ सके हैं।

ज्ञान और सचाई को कहीं से भी ले लेने में उस युग के भारतवासी उत्सुक रहते थे। ज्योतिषी वराहमिहिर ने, जो छठी शताब्दी में हुआ, लिखा है,

बामियाँ (अफगानिस्तान) की एक गुहा में ५८ गज ऊँची खड़ी बुद्ध मूर्ति
[फादर हेरस के सौजन्य से]

"यवन (यूनानी) लोग म्लेच्छ हैं, पर उनमें इस शास्त्र का ज्ञान है। इस कारण वे ऋषियों की तरह पूजे जाते हैं।" गुप्त युग में भारतीय ज्योतिष में

रोम और अलक्सान्द्रिया के सिद्धान्त भी सम्मिलित कर लिये गये थे।

गुप्त युग की मूर्त्तिकला का नमूना—देवगढ़ (जि० झांसी) के विष्णु-मन्दिर में नर-नारायण की मूर्त्तियां। [भा० पु० वि०]

दार्शनिक वसुबन्धु का उल्लेख हो चुका है। बाद के प्रसिद्ध दार्शनि

शंकर की विचार पद्धति वसुबन्धु के दर्शन पर ही निर्भर है। पातंजल योगसूत्र का भाष्यकार व्यास और सांख्यकारिका का लेखक ईश्वरकृष्ण चौथी पाँचवीं शताब्दी में हुए। बौद्ध तार्किक दिङ्नाग गुप्त युग के अन्त में हुआ। सम्राट कुमारगुप्त ने राजगृह के पास नालन्दा महाविहार की नींव डाली। वह एक भारी विद्यापीठ बन गया, जहाँ बाद में देश विदेश के अनेक विद्वान् शिक्षा पाने आते रहे।

दिव्य गायक—किन्नर मिथुरी
१७वीं अजिंठा लेण का चित्र,—इस लेण के चित्र लगभग ५०० ई० के हैं। [भा० पु वि०]

इस युग के काव्य साहित्य में विष्णुशर्मा का पंचतन्त्र एक अमर रत्न है, जिसका संसार की बीसियों भाषाओं में अनुवाद हुआ है। भारतीय कवियों का शिरोमणि कालिदास भी गुप्त युग का है। कालिदास के काव्यों नाटकों में भारत

का आत्मा जिस तरह प्रकट हुआ है, वैसा आज तक और किसी रचना में शायद नहीं हुआ। रघु के दिग्विजय की कहानी द्वारा उसने बतलाया कि कम्बोज से कन्याकुमारी तक और वक्षु से लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक सारा भारत एक है; वह एक ही राज-छत्र के नीचे रहना चाहिए। दुष्यन्त और शकुन्तला के प्राकृतिक प्रेम की कहानी लिख कर उसकी लेखनी ने प्राचीन आर्यों के सरल साहसी और रसमय जीवन के आदर्श को अमर कर दिया, और भारतीयों को अपने उस पुराने भरत की याद दिलाई जो बचपन के खेलों में शेर के दाँत गिना करता था! उषा के आगमन की सूचना जैसे चिड़ियों के चहचहाने से मिलती है, वैसे ही गुप्त युग की ज्योति की सूचना कालिदास के छन्दों से मिलती है। भारत की संस्कृति का पूरा निचोड़ हम उसकी रचनाओं में पाते हैं।

कालिदास के समय भारत में ज्ञान और जीवन की जो ज्योति प्रकट हुई, वह प्रायः एक हजार बरस तक संसार को प्रकाश देती रही। भारत की इस जागृति का प्रभाव एक तरफ चीन पर हुआ, और वहाँ से कोरिया और जापान तक पहुँचा; दूसरी तरफ वह अरब के रास्ते पच्छिमी युरोप तक गया। उत्तर तरफ वह तिब्बत और मध्य एशिया द्वारा मंगोलिया तक जा निकला, और दक्खिन तरफ परले हिन्द के द्वीपों की अन्तिम सीमा तक। प्रायः एक हजार बरस तक न तो स्वयं भारतीयों ने (सिवा वैद्यक और गणित के) अपने ज्ञान में आगे कुछ उन्नति की, और न बाकी दुनिया का ज्ञान—दो चार बातों को छोड़ कर—उससे कुछ आगे बढ़ा। इस लम्बे अरसे में वही संसार का ज्ञान रहा और जिस देश में वह पहुँचा वहीं नव जागृति की लहर उठ खड़ी हुई।

वाकाटक-गुप्त युग के भारतीयों का साधारण जीवन भी पहले से परिष्कृत हो गया। गोहत्या को इसी युग से पाप माना जाने लगा। उस युग के संसार में चार ही सभ्य साम्राज्य और राष्ट्र थे—चीनी, भारतीय, ईरानी और रोमक। उपनिवेश सहित गुप्त युग का भारतवर्ष बाकी तीनों राष्ट्रों के क्षेत्रों से बहुत अधिक विस्तृत और समृद्ध था, और उस युग में भारतीय वस्तुतः सभ्य संसार के नेता थे। अपने इस गौरव को तब वे अवश्य अनुभव करते होंगे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ गुप्त साम्राज्य शासन के लिए किन भागों में बँटा हुआ था?

२ गुप्त युग में ग्रामों, जनपदों, नगरों और व्यापारियों के संगठन किस प्रकार के थे?

३ आर्थिक समृद्धि तथा ज्ञान और कला की श्रेष्ठता की दृष्टि से गुप्त युग भारत का स्वर्णयुग था, इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

४ 'गुप्त युग में भारत में ज्ञान की जो ज्योति प्रकट हुई वह प्रायः एक हजार बरस तक संसार को प्रकाश देता रहा'—इसमें कथित ज्ञान का मुख्य स्रोतें कौनसी थी?

५ दशगुणोत्तर गणना का आरम्भ कैसे हुआ? उससे पहले कैसी गणना थी?

६ इन पर टिप्पणी लिखिए—भुक्ति, अधिकरण, दंडनायक, वसुबन्धु, असंग, ईश्वरकृष्ण, वराहमिहिर, पञ्चतंत्र, कालिदास, कश्मीरी शाल व्यवसाय का उदय।

७ गुप्त युग की किन्हीं पाँच प्रसिद्ध कला कृतियों का नामोल्लेख कर उस कला की विशेषताओं पर अपना मत प्रकट कीजिए।

८ गणित और ज्योतिष के क्षेत्र में आर्यभट की क्या देन थी?

७. कन्नौज-कर्णाटक-साम्राज्य पर्व

(लग० ५४४–११९४ ई०)

अध्याय १

पिछले गुप्त, मौखरि, वैस और चालुक्य

(लग० ५४४-६९६ ई०)

§१. **पिछले गुप्त**—यशोधर्मा ने अपना कोई राजवंश स्थापित न किया था। उसके बाद गुप्त साम्राज्य फिर उठ खड़ा हुआ। सन् ५४४ में ही पुण्ड्रवर्धनभुक्ति (उत्तरी बंगाल) के एक लेख में 'महाराजाधिराज……गुप्त' का उल्लेख है। महाराजाधिराज का नाम उस लेख से मिट गया है। सम्भवतः अब से प्रायः आधी शताब्दी तक वह उत्तर भारत का सम्राट् रहा। लेकिन वह नाम का सम्राट् था क्योंकि अब विभिन्न प्रान्तों में अनेक नई शक्तियाँ उठ खड़ी हुईं।

छठी शताब्दी के शुरू में गुप्त सम्राटों के वंश से एक शाखा निकली, जिसके राजाओं ने अगली दो शताब्दियों के इतिहास में विशेष भाग लिया। महाराजाधिराज के रहते हुए वास्तविक शासक इसी शाखा-वंश के राजा थे। ये 'पिछले गुप्त' कहलाते हैं। इनका दावा समूचे गुप्त साम्राज्य पर था, किन्तु इनका वास्तविक अधिकार केवल मगध-बंगाल पर या कभी मालव देश पर रहा।

इन पिछले गुप्तों के पहले राजा कृष्णगुप्त का गुप्त सम्राटों के वंश से क्या सम्बन्ध था सो इनके लेखों में नहीं कहा गया; शायद वह सम्बन्ध कहने योग्य नहीं था। ये राजा किसी गुप्त सम्राट् के रखैल से उत्पन्न वंशज रहे होंगे। इसी नमूने का एक वंश "अहीर गुप्त" या "गोवाला गुप्त" इस समय नेपाल में स्थापित हुआ। उस वंश के राजा जयगुप्त ने छठी शताब्दी के आरम्भ में नेपाल पर अधिकार कर लिया। उसके वंश ने लिच्छवियों को अपना सामन्त बना कर प्रायः एक शताब्दी तक नेपाल पर आधिपत्य बनाये रक्खा।

§ २ कुरु-पञ्चाल के नये राज्य—गुप्त युग में गंगा जमना कांठे का नाम 'अन्तर्वेदी' चल पड़ा था । उसकी परिभाषा की गई है "विनशन (सरस्वती नदी के मरुभूमि में लुप्त होने के स्थान=सिरसा के पास) से प्रयाग तक का प्रदेश अन्तर्वेदी है।" उस अन्तर्वेदी अथवा ठेठ हिन्दुस्तान के ठीक बीच दक्खिन पञ्चाल की राजधानी कन्नौज में पिछले गुप्तों के मुकाबले में मौखरि नाम का एक नया राजवंश उठ खड़ा हुआ। मौखरि लोग पहले पहल हूणों के युद्धों में प्रसिद्ध हुए । सम्भवतः वे यशोधर्मा की सेना की हरावल में रहे थे । पञ्चाल की तरह कुरु देश का वैस वंश भी हूणों के युद्धों में प्रसिद्ध हुआ, और अब राजवंश बन गया । इसकी राजधानी थानेसर थी।

§ ३ गुर्जर और मैत्रक—छठी शताब्दी में उत्तर भारत में गुर्जर लोग एकाएक प्रबल हो उठे । पंजाब में गुजरात और गुजराँवाला जिले उनके राज्य की याद दिलाते हैं । दक्खिनी मारवाड़ में उनकी एक बड़ी राजधानी भिनमाल थी। उनका एक और छोटा सा राज्य भरुच में भी था । उनके नाम से इस देश का नाम भी गुर्जरत्रा (गुजरात) पड़ गया । गुर्जरत्रा में तब मारवाड़ की भी गिनती थी । सुभीते के लिए हम पिछले इतिहास में भी गुजरात नाम का प्रयोग करते रहे हैं । असल में वह नाम इसी युग में शुरू हुआ।

सुराष्ट्र में छठी शताब्दी के आरम्भ में मैत्रक वंश का भटार्क नामक एक सेनापति था। उसके बेटे द्रोणसिंह का 'समूची पृथ्वी के एकस्वामी' अर्थात् गुप्त सम्राट् ने स्वयं राज्याभिषेक किया । मैत्रकों का राजवंश तब से वलभी नगरी (भावनगर के पास) में स्थापित हो गया।

पूरबी सीमा पर कामरूप का राज्य समुद्रगुप्त के समय से गुप्त साम्राज्य के अधीन था । उससे भी हमें इस युग के इतिहास में वास्ता पड़ेगा । इन राज्यों के वंश वृक्ष सामने रखने से इनका इतिहास समझना सुगम होगा।

§ ४ मौखरि साम्राज्य—ईश्वरवर्मा और उसके बेटे ईशानवर्मा के समय भारत का साम्राज्य मौखरि वंश के हाथ चला गया । मौखरियों ने सुराष्ट्र, आन्ध्र और गौड (पच्छिमी बंगाल) तक विजय किये । पिछले
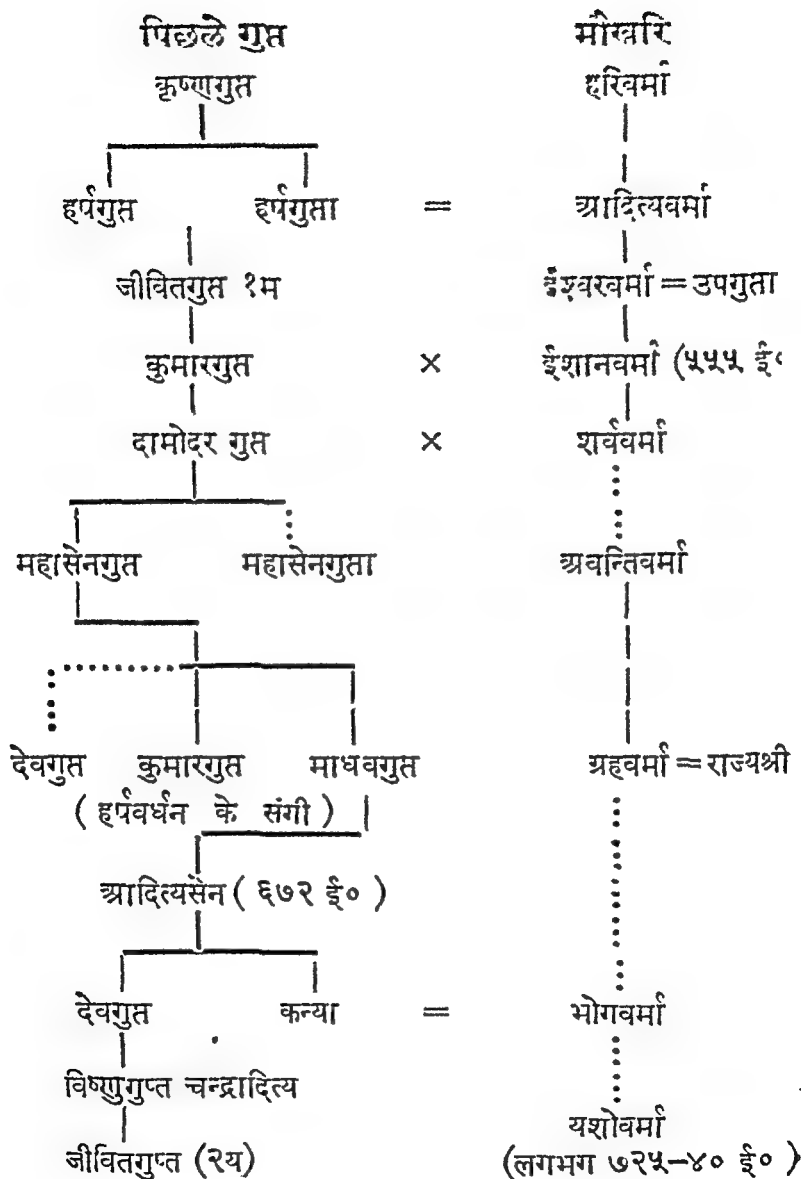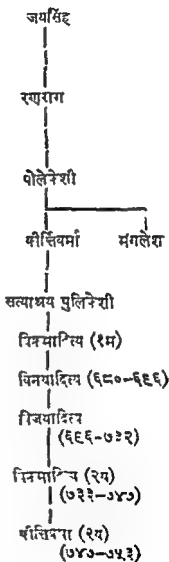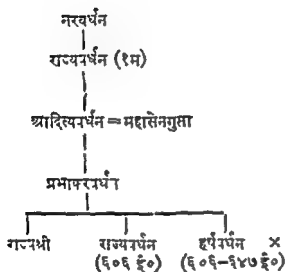
पिछले गुप्त
कृष्णगुप्त
हर्षगुप्त
हर्षगुप्ता
जीवितगुप्त १म
कुमारगुप्त
दामोदर गुप्त
महासेनगुप्त
महासेनगुप्ता
देवगुप्त
कुमारगुप्त
माधवगुप्त
(हर्षवर्धन के संगी)
आदित्यसेन (६७२ ई०)
देवगुप्त
कन्या
विष्णुगुप्त चन्द्रादित्य
जीवितगुप्त (२य)
मौखरि
हरिवर्मा
आदित्यवर्मा
ईश्वरवर्मा = उपगुप्ता
ईशानवर्मा (५५५ ई०
शर्ववर्मा
अवन्तिवर्मा
ग्रहवर्मा = राज्यश्री
भोगवर्मा
यशोवर्मा
(लगभग ७२५–४० ई०)

वैस चालुक्य

जयसिंह
रणराग
पोलेकेशी
कीर्तिवर्मा
मंगलेश
सत्याश्रय पुलिकेशी
नरवर्धन
राज्यवर्धन (१म)
आदित्यवर्धन = महासेनगुप्ता
प्रभाकरवर्धन
राज्यश्री
राज्यवर्धन (६०६ ई०)
हर्षवर्धन (६०६–६४७ ई०)
×
विक्रमादित्य (१म)
विनयादित्य (६८०–६९६)
विजयादित्य (६९६–७३२)
विक्रमादित्य (२य)
(७३३–७४७)
कीर्तिवर्मा (२य)
(७४७–७५३)
= समान चिह्न का अर्थ है दोनों में
विवाह हुआ। × गुणा चिह्न का अर्थ है
दोनों में युद्ध हुआ।

गुप्त राजा कुमारगुप्त के साथ ईशान का युद्ध हुआ, जिसका परिणाम अनिश्चित रहा। ईशान के बेटे शर्व के समय (लग० ५५६-७० ई०) में मौख-

शर्ववर्मा मौखरि की नालन्दा से पाई गई मुहर; ठीक इस तरह की मुहर पहले असीरगढ़ (खानदेश) से भी पाई गई थी। [भा० पु० वि०]
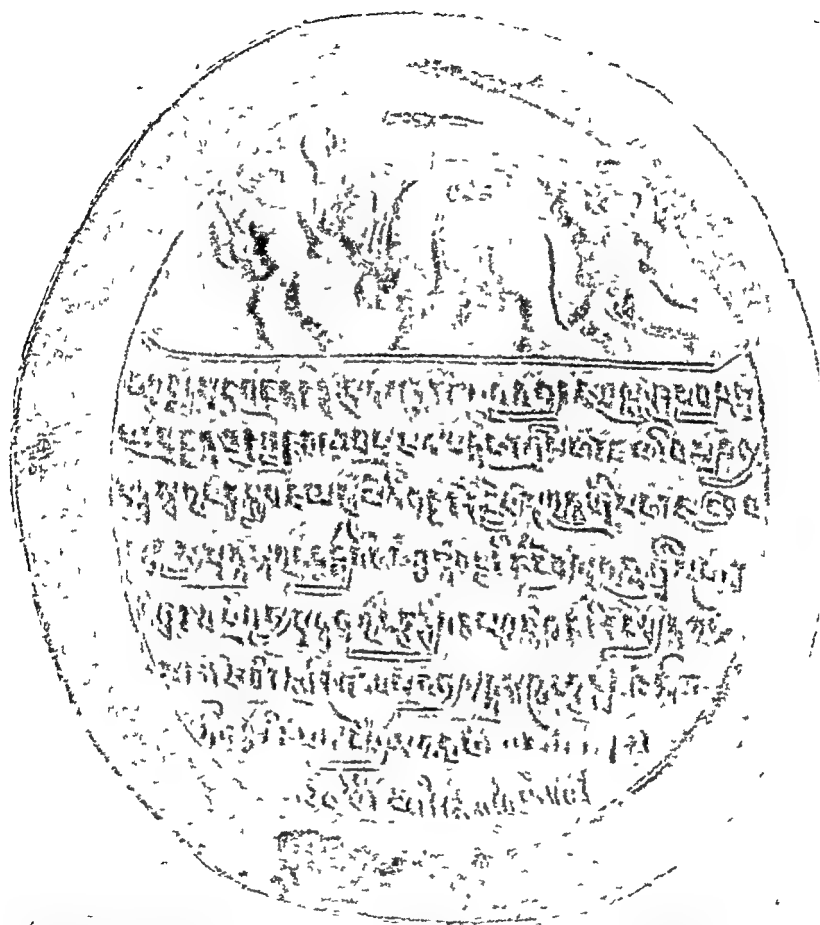
रियों का प्रताप और भी बढ़ा। शर्व से लड़ता हुआ कुमारगुप्त का बेटा दामोदरगुप्त मारा गया। मौखरियों के प्रताप से अब कन्नौज की वही प्रतिष्ठा हो गई जो पहले पाटलिपुत्र की थी। अगले छः सौ बरस तक वह उत्तर भारत

का केन्द्र माना जाता और हिन्दुस्तान कहने से कन्नौज का ही साम्राज्य समझा जाता था।

मगध में भी मौखरि वंश की एक शाखा स्थापित हो गई। गुप्त "महाराजाधिराज" का अधिकार तब केवल बंगाल में ही रह गया। उसके पड़ोसी कामरूप के राजा सुस्थितवर्मा ने भी 'महाराजाधिराज' पद धारण कर स्वतन्त्र होना चाहा। तब दामोदरगुप्त के बेटे महासेनगुप्त ने लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक चढ़ाई कर उसे हराया। शर्ववर्मा के उत्तराधिकारी अवन्तिवर्मा के समय में मौखरि साम्राज्य शायद किसी तरह कमजोर हो गया, और ऐसा जान पड़ता है कि उससे लाभ उठा कर गुप्त महाराजाधिराज ने महासेनगुप्त को मालव देश का राज्य सौंप दिया (लग० ५८५ ई०)।

§५ **चालुक्य और पल्लव**—यशोधर्मा के बाद दक्खिन का नक्शा भी पलट गया। वाकाटक एकाएक लुप्त हो गये। सोलंकी या चालुक्य नाम का एक नया वंश महाराष्ट्र कर्णाटक में प्रकट हुआ। इस वंश के पहले मुख्य राजा पोलेकेशी या पुलिकेशी ने कादम्बों से वातापी नगरी (बीजापुर जिले में बदामी) छीन कर अश्वमेध किया (लग० ५५० ई०)। पुलिकेशी के बेटे कीर्त्तिवर्मा ने कादम्बों को पूरी तरह उखाड़ डाला। कीर्त्तिवर्मा का उत्तराधिकारी उसका भाई मंगलेश हुआ। उसके समय में चालुक्य राज्य पूरबी से पच्छिमी समुद्र तक स्थापित हो गया, और समुद्री बेड़े से कई द्वीप भी अधीन किये गये।

दक्खिनी छोर पर कांची के पल्लवों का राज्य ज्यों का त्यों बना रहा, प्रत्युत पहले से भी अधिक चमक उठा। पल्लव राजा सिंहविष्णु ने सिंहल को भी जीता (लग० ५६० ई०)।

§६ **प्रभाकरवर्धन**—थानेसर का प्रभाकरवर्धन प्रकटतः महासेनगुप्त का भानजा था। उसने उत्तरापथ की तरफ अपनी शक्ति बढ़ाई। पहले उसने कश्मीर से या तुखार देश से हूणों को खदेड़ा, फिर सिंधु, गुर्जर (पंजाब, मारवाड़) और गन्धार के राजाओं को वश में किया। तब वह दक्खिन की ओर झुका और लाट देश (दक्खिनी गुजरात=भरुच-सूरत) पर चढ़ाई की

और मालव राज्य को भी जीता। मालव राजा (महासेनगुप्त ?) ने अपने दो बेटे कुमारगुप्त और माधवगुप्त उसे ओल रूप में सौंप दिये।

प्रभाकरवर्धन की तीन सन्तानें हुई—राज्यवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री। कुमारगुप्त और माधवगुप्त बचपन से राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचर रहे। जवान होने पर राज्यश्री मौखरि राजा अवन्तिवर्मा के बेटे ग्रहवर्मा को ब्याही गई। प्रभाकरवर्धन ने राज्यवर्धन को "हूणों को मारने के लिए उत्तरापथ भेजा।" हर्ष भी उसके पीछे-पीछे जंगल में शिकार के लिए गया। वहाँ कश्मीर के पहाड़ों की तराई में उसे पिता की बीमारी की खबर मिली। उसके लौट आने पर प्रभाकर ने प्राण छोड़ दिये (६०५ ई०)। राज्यवर्धन भी खबर पा कर वापिस आया।

§ ७. **राज्यश्री**—इधर प्रभाकर को मरा सुन मालव राजा (महासेन के बेटे देवगुप्त ?) ने कन्नौज पर चढ़ाई की, और ग्रहवर्मा को मार कर राज्यश्री को कन्नौज के कारागार में डाल दिया। पूरबी भारत में इस समय शशांक नाम का एक नया राजा था। वह शायद महासेनगुप्त के मालव देश चले आने और गुप्त महाराजाधिराज की मृत्यु के बाद बंगाल-बिहार-उड़ीसा का राजा बन खड़ा हुआ था। मालव राजा उसे साथ ले थानेसर पर चढ़ाई की तैयारी करने लगा। खबर पाते ही दस हजार सवारों के साथ राज्यवर्धन उसके मुकाबले को बढ़ा और 'मालव सेना को खेल ही खेल में जीत कर' शशांक की तरफ मुड़ा। गौड के राजा ने उससे मैत्री प्रकट की और उसे छल से मार डाला। शशांक अपने एक और कारनामे के लिए भी प्रसिद्ध है। उसने बौद्धों का दमन किया और बोधिवृक्ष को उखड़वा कर जलवा दिया।

नौजवान हर्ष अपने इस शत्रु के मुकाबले को तेजी से बढ़ा। एक ही पड़ाव आगे पहुँचने पर प्राग्ज्योतिष (असम) के राजा भास्करवर्मा के दूत उसे मैत्री का सन्देश लिये मिले। कन्नौज के निकट पहुँचने पर हर्ष को मालव कैदियों को लिये हुए सेनापति भण्डि मिला। वहीं उसने यह सुना कि पिछली गड़बड़ में राज्यश्री कैद से छुट कर निराश दशा में विन्ध्य के जंगल में कहीं चली गई है। भण्डि को गौड की तरफ रवाना कर, हर्ष बहन की खोज में

निकला। विन्ध्याचल के जंगलों में शबर जवानों की सहायता से खोजते हुए उसने उसे ठीक उस समय पाया जब वह सती होने की तैयारी कर रही थी। भाई के मिलने पर उसने वह इरादा छोड़ दिया, पर फिर भी भिक्षुणी होना चाहा। अन्त में उसने स्वीकार किया कि जब तक हर्ष अपने शत्रुओं से बदला न चुका ले, तब तक वे दोनों अपनी राजकीय जिम्मेदारी निबाहेंगे।

§८ हर्षवर्धन—राज्यश्री ने वापिस आ कर कन्नौज का राज्य सँभाला, और हर्ष अपनी बहन का प्रतिनिधि हो कर राजा शीलादित्य नाम से उसकी भी देखरेख करने लगा। इस प्रकार अब कुरु और पंचाल दोनों राज्यों की शक्ति हर्ष के हाथ में आ गई। उन दोनों की सेनाएँ तैयार कर वह भारत दिग्विजय को निकला। छः बरस तक वह पूरब से पच्छिम तक सब प्रदेशों को जीतता रहा। उसके हाथियों के हौदे और सिपाहियों की वर्दियाँ बराबर कसी रहीं। उसके बाद भी वह अनेक सुदूर प्रदेशों को जीतता रहा। प्राग्ज्योतिष (असम) के "भास्करवर्मा का उसने स्वयं अभिषेक कराया, सिन्धुराज को कुचल कर उसका राज्य छीन लिया और तुषार पहाड़ों के दुर्गों से कर वसूल किया।" शशांक ने शायद उसके आगे झुक कर अपने को बचा लिया। वलभी का राजा ध्रुवसेन हर्ष से हार कर भरुच के गुर्जर राजा के पास भाग गया। पीछे हर्ष ने उसे अपना सामन्त बना कर अपनी इकलौती बेटी ब्याह दी।

§९ सत्याश्रय पुलिकेशी†—दक्खिन के सम्राट् मंगलेश ने अपने बड़े भाई कीर्त्तिवर्मा के बेटे सत्याश्रय पुलिकेशी की उपेक्षा कर अपने बेटे को उत्तराधिकारी बनाना चाहा। इसपर पुलिकेशी ने अपने चचा को एकाएक मार कर राज्य अपने हाथ में ले लिया (लग० ६०८ ई०)। महाराष्ट्र और कर्णाटक में कई सामन्तों ने नये सम्राट् के विरुद्ध सिर उठाने का यत्न किया, पर पुलिकेशी ने उन्हें दृढ़ता से कुचल दिया। उत्तर भारत के सम्राट् हर्षवर्धन ने उसपर चढ़ाई की, पर पुलिकेशी नर्मदा के घाटों पर अपनी सेना को इस प्रकार से सजग और तैनात रक्खे हुए था कि अपने साम्राज्य की सारी शक्ति लगा कर भी हर्ष उसे

† सत्याश्रय पुलिकेशी को पुलिकेशी २य भी कहा जाता है।

लाँघ न सका। गंगा और गोदावरी के कांठों के वे सम्राट् एक दूसरे के ठीक मुकाबले के थे और दोनों ने नर्मदा नदी को तब से अपनी सीमा मान लिया।

सत्याश्रय पुलिकेशी "तीनों महाराष्ट्रों का अधिपति" कहलाया। दक्खिन कोशल (छत्तीसगढ़) और कलिंग (उड़ीसा) भी उसका आधिपत्य मानने लगे

गणेश रथ, मामल्लपुरम् [भा० पु० वि०]

आन्ध्र-देश का राज्य उसने अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धन को दिया, जिसके वंशज पीछे पूरबी चालुक्य कहलाये। गोदावरी और कृष्णा के मुहानों के बीच वेंगी

राजधानी में उन्होंने लगातार ४½ शताब्दियों तक राज्य किया।

पुलिकेशी ने तमिळ देश पर भी चढ़ाई की और पल्लव राजा सिंहविष्णु के बेटे महेन्द्रवर्मा को उसकी राजधानी काञ्चीपुरी में घेर कर कावेरी तक जा पहुँचा। चालुक्य साम्राज्य की समुद्री सेना की शक्ति भी पुलिकेशी के समय बनी रही। इरान के राजा खुसरो (२य) ने ६२५-२६ ई० में पुलिकेशी के दरबार में अपने दूत भेजे। बदले में महाराष्ट्र राजा के दूत भी ईरान गये।

पुलिकेशी के अन्तिम समय महेन्द्रवर्मा के बेटे नरसिंहवर्मा पल्लव ने वातापी पर चढ़ाई की, और उसे हरा कर अपने बाप की हार का बदला चुकाया। (लग० ६४२ ई०)। पुलिकेशी की यह कमज़ोरी देख कर हर्षवर्धन ने तभी गंजाम प्रदेश जीत लिया।

§१० हर्ष-युगीन भारत—हर्षकालीन भारत का वृत्तान्त हमें बिहारी कवि बाण भट्ट के, जो हर्ष की सभा में था, हर्षचरित नामक ग्रन्थ से, अनेक समकालीन अभिलेखों (पत्थर, ताँबे आदि पर खुदे लेखों) से तथा चीनी यात्री य्वान च्वाङ् के भारत विवरण से मिलता है।

हर्ष जैसा विजेता था वैसा ही योग्य और न्यायी शासक भी। बरसात के सिवाय वह सदा अपने राज्य में दौरे करता, और फूस के डेरों में ही पड़ाव किया करता था। राज्यकार्य के

'स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य'—हर्षवर्धन के हस्ताक्षर बाँसखेड़ा ताम्रपत्र पर से (लखनऊ संग्र०)

पीछे वह अपनी भूख और नींद को भूल जाता था। उसका नाम शीलादित्य भी सार्थक था, क्योंकि वह शील और सच्चरित्र की मूर्त्ति था। उसने एक-पत्नीव्रत धारण किया और आजन्म उसे निबाहा। प्रजा उसके राज्य में सुखी थी। तो भी अब गुप्तों के समय की सी पूरी शान्ति न थी और दंड भी तब से कुछ अधिक कठोर थे। ६०६ ई० में हर्ष ने अपने अभिषेक का संवत् चलाया था। ६४७ ई० मे उसकी मृत्यु हुई।

हर्ष के राज्यकाल मे भिन्नमाल और पंजाब के गुर्जर राज्यों का अन्त हुआ। भिन्नमाल में इसके बाद चापोत्कट या चावड़ा नामक राजवंश स्थापित हुआ। उसी प्रकार मध्य पंजाब में टक्क (टांक) लोगों का राज्य स्थापित हुआ, जिसके कारण सातवीं शताब्दी मे पंजाब टक्कदेश कहलाने लगा। शाकल उसकी राजधानी थी। उसके दक्खिन-पच्छिम सिन्धु राज्य था, जिसका मकरान तक अधिकार था। भरुच का छोटा गुर्जर राज्य आठवी शताब्दी के शुरू तक बना रहा।
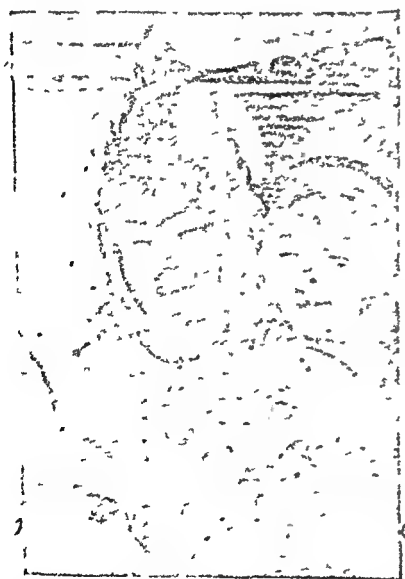
महेन्द्रवर्मा और उसकी रानी, सित्तनवासल गुफा में समकालिक चित्र, ईरानी चित्रकार कागेदुरियां कृत प्रतिलिपि।

§११. पल्लव नरसिंहवर्मा और विक्रमादित्य चालुक्य १म—महेन्द्रवर्मा १म (६१८ ई०) और नरसिंहवर्मा (६४६ ई०) दोनों शक्तिशाली राजा थे। पुद्दुकोटै के पास सित्तनवासल ('सिद्धों का वास') नामक स्थान की गुफाएं जिनकी दीवारों पर अजिंठा की गुफाओं की तरह सुन्दर चित्र अंकित हैं, इन्हीं राजाओं की कटवाई हुई हैं। कांची के सामने समुद्र-तट पर मामल्लपुरम् के एक-एक चट्टान में से काटे हुए विशाल मन्दिर भी, जिन्हें 'रथ' कहते हैं, और जो संसार की अद्भुत चीजों में गिने जाते हैं, इन्हीं

राजाओं के बनवाये हुए हैं। सत्याश्रय पुलिकेशी के बेटे विक्रमादित्य १म ने नरसिंहवर्मा के पोते के समय कांची को फिर जीत कर बदला चुकाया। चालुक्यों और पल्लवों की यह उठापटक अगले सौ बरस तक इसी तरह चलती रही।

नरसिंहवर्मा की समकालीन मूर्ति—धर्मराज रथ, मामल्लपुरम्
[फादर हेरस के सौजन्य से]

§१२ आदित्यसेन और विनयादित्य— हर्षवर्धन के कोई पुत्र न था। उसके पीछे माधवगुप्त के बेटे आदित्यसेन ने मगध में स्थापित हो फिर अपने को समूचे उत्तर भारत का सम्राट् बना लिया। उसने दक्खिन पर भी चढ़ाई की, और पूरबी तट के साथ साथ चोल देश तक पहुँच गया। किन्तु यह पुनर्जीवित गुप्त साम्राज्य चिरस्थायी न हुआ। विक्रमादित्य चालुक्य १म के बेटे विनयादित्य (६८०—६९६ ई०) ने एक तरफ सिंहल तक जीता और दूसरी तरफ "समूचे उत्तर भारत के स्वामी" को हरा कर उससे उसका साम्राज्य चिह्न—गंगा यमुना के चित्रों से अंकित झंडा—छीन लिया। यह 'समूचे उत्तर भारत का स्वामी'

प्रकटतः आदित्यसेन का बेटा देवगुप्त था।
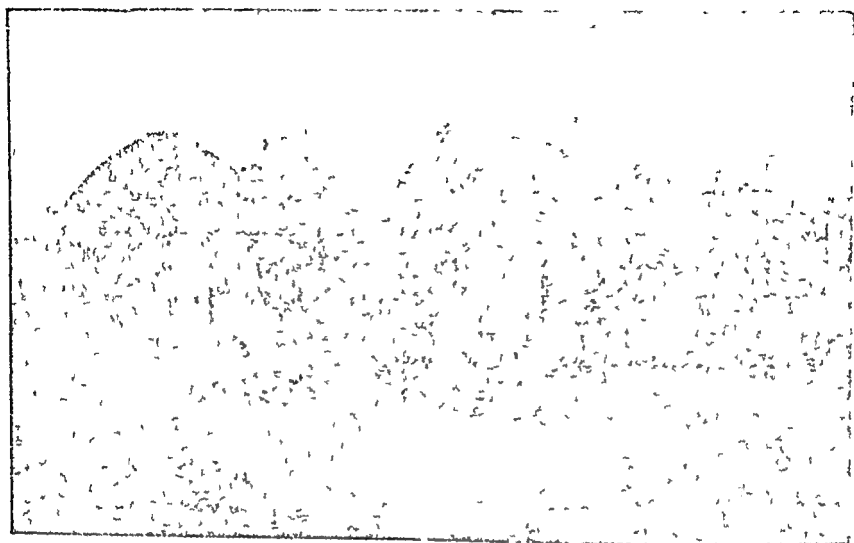
पञ्च-पाण्डव रथ, मामल्लपुरम् [भा० पु० वि०]

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. मौखरि कौन थे? वे कब और कैसे प्रमुखता में आये?

२. गुप्त सम्राटों के बाद उत्तर भारत मे और वाकाटकों के बाद दक्खिन मे कौन नये राज्य कहाँ कहाँ उठ खड़े हुए और कौन से पुराने राज्य बने रहे?

३. गुर्जरत्रा या गुजरात नाम कैसे चला?

४. कन्नौज उत्तर भारत का साम्राज्य-केन्द्र कब और कैसे बना?

५. हर्षवर्धन का कन्नौज के राज्य से क्या संबंध था?

६. प्रभाकरवर्धन ने किस किस देश को विजय किया था?

७. हर्ष की राज्य सीमा क्या थी? उसे किस राजा से हारना पड़ा?

८. पल्लव और चालुक्य राज्यों के पारस्परिक संबंधो का वृत्तान्त सक्षेप से लिख कर परिणाम स्पष्ट कीजिये।

९. पूरबी चालुक्य वंश की स्थापना किस प्रकार हुई?

१०. अग्रलिखित व्यक्ति कौन थे—विनयादित्य चालुक्य, भटार्क, राज्यश्री, सम्राट् आदित्यसेन, विक्रमादित्य चालुक्य १म।

११. इनपर टिप्पणी लिखिए—सित्तनवासल, 'रथ', चावडा वंश, टक्क देश, वातापी।

अध्याय २

छठी-सातवीं शताब्दी में भारत के सीमान्त और बृहत्तर भारत

§१ हूण और तुर्क—मध्य एशिया में हूणों की शक्ति ५६५ ई० में ईरान के शाह अनुशीरवाँ ने तोड़ दी थी, सो कह चुके हैं [६, ३ § ५]। किन्तु अनुशीरवाँ ने यह काम अकेले न किया, उसमें 'पच्छिमी तुर्क' उसके सहायक थे। तुर्क असल में हूणों की एक शाखा ही थे, जिनका असल नाम असेना था। असेना लोग पाँचवीं शताब्दी में चीन हिन्द के उत्तरपूर्वी छोर पर शामी के उत्तर आरकुन प्रदेश में स्वर्णगिरि के पास (दे० नक्शा १५) रहते थे। उस पहाड़ की शक्ल खोद (फौजी टोपी) की सी थी, जिसे हूण भाषा में 'तुर्क' कहते हैं। इसी से वे लोग तुर्क या तुर्क कहलाने लगे। ५४५ ई० से वे प्रबल हुए। अनुशीरवाँ ने उनकी सहायता से हूणों को हराया—अर्थात् हूणों के एक फिरके की मदद से दूसरे को हराया।

मध्य एशिया पर अनुशीरवाँ का प्रभाव नाममात्र को रहा। ५६५ से ६३१ ई० तक वहाँ तुर्कों का जोर रहा। उसके बाद चीन के नये साम्राज्य के प्रताप से उनकी शक्ति क्षीण हो गई। तुरफान से मर्व तक मध्य एशिया में जो तुर्क थे वे पच्छिमी तुर्क और जो अभी अपने मूल घरों में थे वे उत्तरी तुर्क कहलाते थे। यह पच्छिम उत्तर का हिसाब चीन की दृष्टि से था। मध्य एशिया में यों तुर्कों के सजातीय हूण वंश के सब लोग जहाँ अब तुर्क कहलाने लगे, वहाँ भारत में एक अरसे तक उनका पुराना नाम हूण ही चलता रहा।

§२. चीन का ताङ सम्राट् वंश—भारत के सम्राट् अशोक का समकालीन चीन का पहला सम्राट् शीहुआङती था। फिर भारत के सातवाहन वंश का समकालीन चीन के हान सम्राटों का वंश था, जिसके समय में चीन का प्रभाव मध्य एशिया को पार कर कास्पियन समुद्र तक जा पहुँचा था [५, ३ §§ १, ४]। २२१ ई० में चीन साम्राज्य उत्तरी 'तातारों' के हमलों से टूट गया, जिन्होंने समूचे उत्तरी चीन को लेकर चीन के प्रमुख सरदारों को दक्खिन तरफ धकेल दिया। तब से ५८८ ई० तक चीन में छोटे-

छोटे देशी विदेशी राजवंश राज्य करते रहे। ५८९ ई० में वहाँ सुइ वंश का साम्राज्य स्थापित हुआ, पर उसके समय मे भी देश का गौरव स्थापित नहीं हो सका। ६१८ ई० में सुइ सम्राट् के एक युवक राजकर्मचारी ने सम्राट् को हटा कर अपने पिता को गद्दी दी और ६२६ मे पिता के निवृत्त होने पर स्वयं गद्दी पर बैठा। इस प्रकार ताङ वंश की स्थापना हुई, जिसका संस्थापक इतिहास में ताइचुङ नाम से प्रसिद्ध हुआ। ताङ सम्राट् ताइचुङ ने चार वर्ष में देश मे पूर्ण शान्ति स्थापित कर दी, सीमा पर के शत्रुओ को सामन्त बनाया, पुराने भ्रष्ट राजकर्मचारियो को हटा कर अनेक योग्यतम व्यक्तियों को सेवा मे लिया, दण्डविधान सुधार कर उसकी कडाई कम की, विद्या और शिक्षा की खूब उन्नति की, तथा अपने सादे जीवन का नमूना देश के सामने रक्खा। ६३० ई० में उसने उत्तरी तुर्कों का देश जीत कर उत्तर तरफ से चीन को सुरक्षित कर लिया।

ताङ ताइचुङ ने ६४९ ई० तक राज किया। वह स्वभाव का मधुर था, राजनीति-वेत्ताओ से खूब मिलता और उनसे अपने कार्यों की आलोचना भी सुनता था। उसके समय में चीन विश्व की प्रमुख शक्ति बन गया। उसके वंशजो ने भी वह परम्परा जारी रक्खी।

इसी सम्राट् ताइचुङ के समय में यात्री य्वान च्वाङ भारत आया। वह ६२९ ई० में चीन से चल कर चीन-हिन्द आया। वहाँ कुछ दूर तक तारीम नदी की उत्तरी बस्तियो मे होते हुए, फिर थियानशान पर्वत को लाँघ कर ताशकन्द समरकन्द अफगानिस्तान के रास्ते कश्मीर पहुँचा, और भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमने तथा कई स्थानो मे वर्षों पढ़ने के बाद फिर अफगानिस्तान, पामीर और दक्खिनी चीन-हिन्द के रास्ते ६४४ ई० में चीन वापिस पहुँचा।

य्वान-च्वाङ ने अपने यात्रा-विवरण में कई मनोरञ्जक बातें दर्ज की हैं जिनसे उस युग में चीन और भारत के सम्बन्ध पर विशेष प्रकाश पड़ता है। कामरूप-प्राग्ज्योतिप के राजा भास्करवर्मा ने य्वान को अपने पास बुलाया था। भास्करवर्मा ने उससे पूछा—इधर कुछ समय से भारत के अनेक प्रान्तो

में एक गीत सुना गया है जिसे लोग चिनवाङ के विजयों का गीत कहते हैं। यह आपके देश का ही है न? ह्वान ने कहा—हाँ, वह मेरे राजा की स्तुति है। तब सम्राट् शीलादित्य हर्षवर्धन गंजाम प्रदेश जीत कर कनौज लौट रहा था और कजंगल नगर (संथाल परगने में आधुनिक काकजोल) में था। उसने भास्करवर्मा को चीनी यात्री के साथ वहाँ बुलाया, और दोनों के साथ कनौज की यात्रा की। हर्षवर्धन ने भी ह्वान च्वाङ से कहा—मैंने चीन के देवपुत्र चिनवाङ के बारे में सुना है जिसने उस देश को अराजकता और बरबादी की दशा से व्यवस्था और समृद्धि में पहुँचाया और दूर देशों तक आधिपत्य स्थापित कर अपना सुप्रभाव फैलाया है, उसकी सन्तुष्ट प्रजा चिनवाङ के विजयों का गीत गाती है जो यहाँ भी एक अरसे से परिचित है। चिनवाङ सम्राट ताइत्सुङ का कुमार जीवन का पद था। उस समय उसने एक भयंकर विद्रोह को दबाया था जिसकी याद में उसके सैनिकों ने नाच के साथ गाने का एक गीत रचा था। इसे १२८ आदमी चाँदी के कवच पहने हाथों में भाले लिये नाचते गाते थे। कुछ ही वर्षों में यह नृत्य-गीत उत्तर-पूर्वी और उत्तरपच्छिमी द्वार से भारत भी आ पहुँचा था। भारत और चीन के बीच वस्तुओं और विचारों का कैसा खुला आदान प्रदान चलता था तथा ताइत्सुङ के विजयों का एशिया में तब कैसा प्रभाव हुआ था यह इससे सूचित है।

उस समय तक चीन के लोग ईख के रस से खाँड और मिस्री बनाना न जानते थे। मिस्री को वे मधुशिला (शहद-पत्थर) कहते थे। ताइत्सुङ ने भारत में अपने आदमी मिस्री बनाना सीखने को भेजे। चीन के लोग भारत के रंगबिरंगे मलमल व कपड़ों से भी चकित होते थे। उन्हें वे उषा की भाप कहते थे। इसी तरह भारत के लोग भी चीनांशुक अर्थात् चीन के रेशमी कपड़े को बहुत चाहते थे। दोनों देशों में विद्या का आदान प्रदान कैसे होता था सो तो ह्वान च्वाङ जैसे यात्रियों की चर्चा से ही प्रकट है। किन्तु बौद्ध और अन्य सम्प्रदायों में दार्शनिक चिन्तन के साथ अन्धविश्वास भी तब खूब घुलमिल चुका था।

§ ३. चीन-हिन्द—सीता के काँठे अथवा चीन-हिन्द के भारतीय उपनिवेश तीन तरफ तिब्बत और पामीर के पहाड़ों तथा थियानशान पर्वत से तथा चौथी तरफ उनके और चीन के बीच की मरुभूमि से घिरे थे। तो भी थियानशान को लाँघ कर हूणों तुर्कों के अनेक आक्रमण उनपर हुए थे। थियानशान के पूर्वी छोर पर उरुमची और हामी (दे० नक्शा १५) के बीच से उत्तर से चीन-हिन्द में घुसने को खुला रास्ता है। वहाँ आधुनिक तुरफान के स्थान पर सातवाहन युग में एक भारतीय (अथवा भारत से प्रभावित स्थानीय लोगों का) उपनिवेश था। वह उपनिवेश हूण बाढ़ में बह गया और उसके स्थान पर एक तुर्क राज्य स्थापित हो गया था जिसे चीनी कौशाङ कहते थे। वहाँ बसे हुए तुर्कों में धीरे-धीरे बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ और तुर्की भाषा में संस्कृत से कई ग्रन्थों के अनुवाद किये गये। इस तुर्क राज्य को सम्राट् ताइचुङ ने ६३६ ई० में "बुझा दिया", और इसके पच्छिम के भारतीय राज्य अग्नि [५,४ § १] के साथ चीन की सीमा लगा दी। अग्नि राज्य तक इस समय भारतीय लिपि चलती थी।

य्वान च्वाङ के समय अग्नि, कुचि, भरुक, खोतन आदि शेष सब भारतीय राज्य ज्यों के त्यों बने थे। पर वे परिपक्व और कुछ क्षीण दशा में थे, उनपर कई तुर्क चढ़ाइयाँ होने की स्मृतियाँ ताजी थीं। तो भी चीन-हिन्द के भीतर और कोई तुर्क बस्ती न थी। ६४८ ई० में अग्नि और कुचि पर पच्छिमी तुर्कों की चढ़ाई हुई, जिसके बाद वे निकाले गये। खोतन के राज्य को ४४५ ई० से हूण और तुर्क सता रहे थे। ६३० ई० में वहाँ के राजा विजयसंग्राम ने तुर्कों के देश पर चढ़ाई कर उनका संहार किया। उससे कुछ बरस पहले या पीछे ही तो राज्यवर्धन और हर्षवर्धन ने भी तुखार पहाड़ों पर चढ़ाइयाँ की थीं। यों पंजाब और खोतन के भारतीय राज्य दो तरफ से ही शत्रु को ठेल रहे थे।

§ ४. शूलिक और तुखार—पच्छिमी तुर्कों के खाकान अथवा सम्राट् की राजधानी थियानशान पर्वत के उत्तर तरफ ईसिककुल झील के उत्तर पच्छिम सुयमाइर (=आधुनिक चू) नदी के तट पर आधुनिक तोक्मक

शहर के स्थान पर थी। यहीं य्वान च्वाङ उससे मिला था और उसने य्वान को भारत के कपिश देश तक के लिए राहदारी दी थी, जिसका यह अर्थ है कि कपिश की सीमा तक तुर्क खाकान की आज्ञा मानी जाती थी। उस खाकान का युवराज वंक्षु नदी के दक्खिन बदख्शाँ [१,१ § ५, ३,१ § २, ५,२ § १] के पच्छिमी अंश में कुन्दूज नगर में रहता था। किन्तु य्वान च्वाङ के विवरण से हम इसका स्पष्ट चित्र मिलता है कि इस प्रदेश की जनता अभी तक पुराने ऋषिकों और उनके सजातीय लोगों की ही वंशज थी, जिसके बहुत से सरदार अभी तक तुर्कों का आधिपत्य मानते हुए उनके सामन्त रूप में राज्य करते थे।

सुयाबाद नदी से समरकन्द के दक्खिन के पहाड़ों तक तथा चीना प्रदेश तक बसी हुई जनता इस युग में सुलि या शूलिक कहलाती थी। ये शूलिक पुराने ऋषिकों के ही वंशज थे। समरकन्द राज्य इनका था जो मध्य एशिया का केन्द्र तथा वहाँ की सभ्यता का आदर्श माना जाता था।

शूलिकों के दक्खिन तुखार देश था। समरकन्द के पास की जरफ्शाँ नदी और वंक्षु के बीच का पनढाल जिस पर्वत में बना है उसमें लोहे की चट्टानों से घिरा प्राय ३ मील लम्बा और ५ से ३६ हाथ तक चौड़ा एक तंग दर्रा है, जिसे पठानी यात्री अब बुज्गोलाखाना या दरबन्दाना कहते हैं। उस युग में यह लोहद्वार (दे० नक्शा १७) कहलाता था। यह तुखार देश की उत्तरी सीमा थी। उसकी दक्खिनी सीमा अफगानिस्तान पठार की मेंड थी। उसकी पच्छिमी सीमा पारस से लगती थी तथा पूरबी सीमा पुराने काम्बोज या पामीर के पठार की मेंड तक थी। अर्थात् बलख, बदख्शाँ और वंक्षु के उत्तर तरफ हिसार स्तालिनाबाद का प्रदेश तुखार में सम्मिलित था। तुखार देश में २७ राज्य थे जो सब तुर्कों का आधिपत्य मानते थे। पुराने तुखार में पामीर भी सम्मिलित था, पर इस समय वहाँ के छोटे-छोटे राज्य तुर्क आधिपत्य में न थे और उनका सम्बन्ध भारत और चीन दोनों से अधिक था। शूलिक लिपि भारतीय से भिन्न थी, पर तुखार लिपि भारतीय ही थी।

६२१ ई० में हा? समरकन्द के शासक राजा ने अपने को तुर्क आधिपत्य

से निकाल कर चीन के आधिपत्य में जाने का प्रस्ताव किया, पर चीन सम्राट् ने तब इसे उचित न समझा। परन्तु ६५७-५६ ई० में सम्राट् माता वू के प्रशासन (६५५–७०५) में चीनी सेनाओं ने पच्छिमी तुर्कों का समूचा देश जीत लिया, अर्थात् शूलिक और तुखार देश तब चीन के आधिपत्य में चले गये। हारे हुए तुर्क सरदार कुछ अपने भाई-बन्दों के पास हुनगारी (युरोप में) भाग गये, कुछ ने भारत में शरण ली। कपिश और कश्मीर जैसे भारतीय सीमा के राज्य भी तब से चीन का दबदबा मानने लगे।

§५. **जागुड, बामियाँ, कपिश**—जागुड, बामियाँ और कपिश उस समय अफगानिस्तान पठार के मुख्य राज्य थे। बामियाँ मध्य अफगानिस्तान में था और कपिश हिन्दूकश से सिन्ध नदी तक। लम्पाक, नगरहार, पच्छिमी गन्धार और वर्णु (बन्नू) कपिश राज्य के अधीन थे। नगरहार प्रदेश अब भी निंग्रहार कहलाता है; पेशावर से काबुल के रास्ते पर का जलालाबाद शहर अब उसका केन्द्र है [४, ३ § ३]। उसके उत्तर पच्छिम पहाड़ों की उस तराई का नाम जिसमें अलिशांग नदी काबुल में मिलती है, लम्पाक था। अब वह लमगान कहलाती है [४, १ § ४]। पच्छिमी गन्धार का मुख्य नगर अब पुरुषपुर था [५, ३ § ५], पर पुष्करावती [२, १ § ४; ४, १ § ४] भी अभी तक आबाद नगरी थी। पच्छिमी गन्धार का उत्तरी अंश उड्डीयान अर्थात् स्वात नदी की दून [१, १ § ६; ४, १ § ४] भी कपिश के अधीन था।

कपिश और बामियाँ दोनों के राजा अपने को क्षत्रिय कहते तथा बामियाँ वाले अपने को शाक्यवंशी मानते थे।

§६. **कश्मीर, टक्क, सिन्धु**—कश्मीर में य्वान च्वाङ के समय से कुछ ही पहले दुर्लभवर्धन ने कर्कोट राजवंश की स्थापना की थी। कश्मीर दून के दक्खिन के अभिसार देश (पुंच, राजौरी) [४, १ § ५], तक्षशिला और सिंहपुर (नमक-पहाड़ियों में आधु० कटास) तथा कश्मीर दून के पच्छिम का सिन्ध नदी तक का पहाड़ी प्रदेश उरशा (आधु० हज़ारा) भी उसके अधीन थे।

पंजाब को य्वान च्वाङ के समय टक्क देश कहने लगे थे। शायद वह नाम टांक लोगों के कारण था। शाकल (स्यालकोट) उसकी राजधानी थी। सतलज के पूरबी तट पर आधुनिक लुधियाना के स्थान पर सुनेत नाम की यौधेयों की पुरानी राजधानी थी [६, १ § ३]। य्वान च्वाङ के समय उसके चोगिर्द का प्रदेश पोलाध (पोफातो) कहलाने लगा था और वह भी टक्क के अन्तर्गत था। उस प्रदेश का यह नाम आज तक चला आता है।

तक्षशिला और नमक के दक्खिन सिन्धु राज्य था जिसकी राजधानी आधुनिक डेरागाजीखाँ जिले में थी। आजकल का समूचा सिन्ध और कलात प्रदेश उसके अधीन थे। कहा जा चुका है कि हर्षवर्धन ने सिन्धु राज्य ले लिया था, लगभग ६३६ ई० में उसने कश्मीर को भी अधीन किया था।

§ ७ मध्य हिमालय और पच्छिमी तिब्बत—य्वान च्वाङ हिमालय के कुलूत (कुल्लू) प्रदेश में भी गया था। उसके उत्तर तरफ लाहुल और मरपो (लदाख)[१] प्रदेशों से भी वहां के लोग परिचित थे। हरद्वार बिजनौर के उत्तर तरफ आधुनिक गढ़वाल कुमाऊँ में भी य्वान गया था। उस जनपद का नाम तब ब्रह्मपुर या कुछ था। उसके उत्तर तरफ सुवर्णगोत्र देश था, जिसकी पूरबी सीमा तिब्बत से, उत्तरी सीमा खोतन से तथा पच्छिमी सीमा लदाख से लगती थी। यह पच्छिमी तिब्बत का वर्णन है और इस वर्णन से प्रकट होता है कि उस युग के भारतीय उससे अच्छी तरह परिचित थे और उसके आरपार सोने का रास्ता है यह भी जानते थे। पच्छिमी तिब्बत में अनेक सुवर्णक्षेत्र हैं, जहां की मिट्टी में सोना मिला रहता है। वैसे क्षेत्रों को वहां 'थाक' कहते हैं।

§ ८ नेपाल, कामरूप—नेपाल दून के लिच्छवियों ने लगभग ६२५ ई० में गोपाल गुप्तों को हटा दिया, पर उसके शीघ्र बाद लिच्छवि राजा के 'महासामन्त' ठकुरी वंश के अंशुवर्मा ने राज्य हथिया लिया। अंशुवर्मा ने अपना संवत् भी चलाया। उसके बाद एक शताब्दी तक वहां लिच्छवि

---

१ मरपो या मरयुल तिब्बती नाम है, जिसका शब्दार्थ है मक्खन का देश।

और ठक्कुरी सरदारों का सम्मिलित द्विराज जारी रहा।

कामरूप या प्राग्ज्योतिष में पिछले गुप्तों के समय जो राजवंश था वही हर्षवर्धन के समय भी चलता रहा। वह हर्ष का आधिपत्य मानता था।

§९. **तिब्बत का उत्थान**—चीन और कश्मीर तथा खोतन और नेपाल के बीच एक नया राज्य तिब्बत या भोट† इसी युग में उठ खड़ा हुआ। इससे पहले तिब्बती लोग खानाबदोश पशुपालक थे और छोटे-छोटे गिरोहों में रहते थे। तीन तरफ के भारतीय देशों से और चौथी तरफ चीन से उनमें धीरे-धीरे सभ्यता का प्रकाश पहुँचा, और वे खेती, लिखना, मकान बनाना आदि सीख गये। खोतन और कुचि में जो भारतीय लिपि प्रचलित थी, वही सातवीं
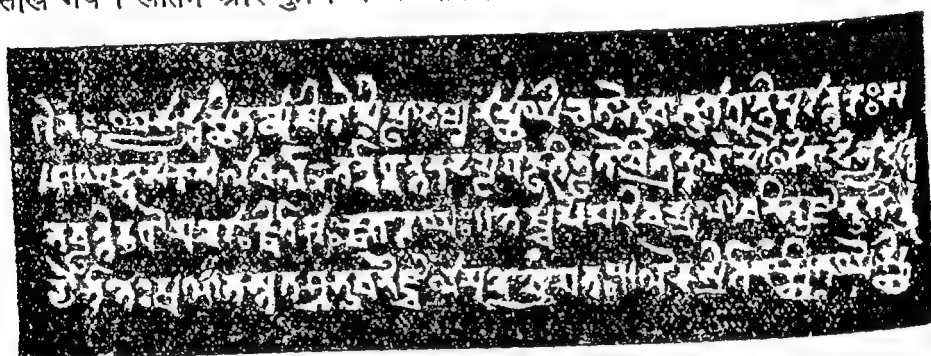
छठी शताब्दी की भारतीय लिपि, जिसमे तिब्बती भाषा पहले-पहल लिखी गई—हड़हा (जि० रायबरेली) से प्राप्त ईशानवर्मा मौखरि के सं० ६११ वि० के लेख में से [लखनऊ संग्र०]

शताब्दी के शुरू में तिब्बत में भी पहुँच गई। तिब्बती भाषा तब से आज तक हमारी ही वर्णमाला में लिखी जाती है। ६३० ई० में पहलेपहल एक सम्राट् सारे तिब्बत को अपने शासन में ले आया; उसने ६५० ई० तक राज्य किया। उसका नाम स्रोङ्चन-गम्पो था। ल्हासा की स्थापना उसी ने की। उसने नेपाल के अंशुवर्मा की बेटी भृकुटि से और चीन-सम्राट् की एक कन्या से

† तिब्बती लोग अपने देश को पोद कहते हैं जिसका भारतीय रूप भोट है। तिब्बत शायद संस्कृत त्रिविष्टप से बना है।

विवाह किया। वे दोनों देवियाँ बौद्ध थीं। उन्होंने तिब्बतियों के रहन सहन में अनेक सुधार कराये। ६४१ ई० में हर्षवर्धन ने अपने दूत चीन भेजे। दो बरस बाद चीन के दूत तिब्बत के रास्ते कन्नौज आये। इस प्रकार अब पहले पहल चीन और भारत के बीच तिब्बत के रास्ते आनाजाही शुरू हुई। बाद
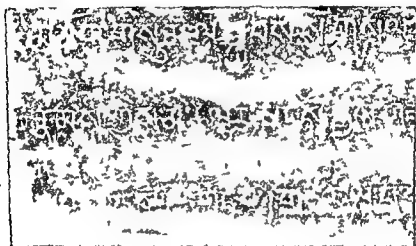
आरम्भिक तिब्बती लिपि—ल्हासा के पास ग्यलराङ विहार के एक शिलालेख में से। छठा चित्र की लिपि से इसकी तुलना कीजिये।
[राहुलजी के सौजन्य से]

के तिब्बती राजाओं ने भी नेपाल, मगध और कन्नौज से लगातार सम्पर्क बनाये रक्खा।

§१० श्रीक्षेत्र, द्वारवती, ईशानपुर, महाचम्पा—य्वान च्वाङ ने समतट अर्थात् बंगाल के समुद्रतट के प्रदेश में रहते हुए वहाँ के परे के छः देशों के विषय में सुना था। इनमें से पाँच भारत और चीन के बीच के प्रायद्वीप में थे, छठा यवद्वीप या जावा था। पाँच में पहला श्रीक्षेत्र था जो आजकल का बरमी लोगों का परेखेत्र या प्रोम है। दूसरे देश का नाम कामलङ्का या रुद्र था, और वह बरमा के तट पर आधुनिक पेगू या तनासरीन के स्थान पर था। तीसरा था द्वारवती जिसके स्थान को आधुनिक स्याम की

अयुध्या नगरी लगभग सूचित करती है। चौथे देश का नाम ध्यान च्वाङ ने ईशानपुर दिया है। वास्तव मे वह कम्बुज राष्ट्र की राजधानी का नाम था। कम्बुज राष्ट्र अब उसी देश का नाम पडा जिसका पुराना नाम 'फ़ुनान' था [५, ४ § २; ६, ४ § ३]। 'फ़ुनान' राज्य को उसके एक सामन्त चित्रसेन ने समाप्त कर उसके स्थान में कम्बुज-राष्ट्र की नींव डाली थी। परले हिन्द के उस भाग का नाम अब तक वही चला आता है। उसका वह नाम भारतीय प्रवासियों ने रक्खा था। वहाँ के असल निवासी ख्मेर लोग हैं, जो हमारे संथाल लोगों से मिलते-जुलते और 'आग्नेय' नृवंश के हैं। आर्यों के कम्बुज उपनिवेश मे होने के कारण वे कम्बुज कहलाने लगे ; पर उनका कहना है कि वे महर्षि कम्बु और मेरा अप्सरा की सन्तान हैं! चित्रसेन भी कम्बु और मेरा की उसी सन्तान में से था। कम्बुज के राजा अपने को सूर्यवंशी मानते थे। चित्रसेन के भाई भववर्मा के नाम से भवपुर राजधानी स्थापित हुई। भववर्मा के बेटे ईशानवर्मा ने ईशानपुर की स्थापना कर उसे राजधानी बनाया। उसने ६१६-१७ ई० मे चीन को अपने दूत भेजे।

तोङकिङ की खाडी पर आधुनिक व्येतनम की जगह चम्पा परले हिन्द का सबसे प्रसिद्ध राज्य था [५,४ § २; ६,४ § ३]। इस युग में अपनी प्रबलता के कारण वह महाचम्पा कहलाने लगा। वहाँ के गंग-राजवंश [६, ४ § ३] में ५६० से ६३० ई० तक शम्भुवर्मा नामक योग्य राजा हुआ।

§ ११. **शैलेन्द्रों का राज्य**—गुप्त युग मे सुमात्रा मे श्रीविजय राज्य की स्थापना का उल्लेख किया जा चुका है [६,४ § ३]। सातवीं शताब्दी मे वहाँ शैलेन्द्र राजवंश स्थापित हुआ। मध्य और दक्खिनी सुमात्रा तथा उसके पडोस के छोटे द्वीप उस शताब्दी मे उस राज्य के अन्तर्गत थे। श्रीविजय के जहाज पूरब तरफ चीन तक और पच्छिम तरफ मदगास्कर और अलक्सान्द्रिया (मिस्र के बन्दरगाह) तक जाते थे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. अनुशीर्वाँ ने हूणों को कब और किसकी सहायता से हराया ?
२. तुर्क लोग किस नृ-वंश के थे, उनका पहला नाम क्या था और तुर्क नाम कैसे

[illegible] ? पच्छिमी तुर्क और उत्तरी तुर्क का क्या अर्थ है ?

३ य्वान च्वाङ किस मार्ग से भारत आया और किस से चीन लौटा ?

४ य्वान च्वाङ के समय पच्छिमी तुर्कों की राजधानी कहाँ थी ?

५ उस युग में चीन और भारत ने एक दूसरे से क्या कुछ सीखा और दोनों देशों में किन वस्तुओं का आदान प्रदान होता रहा ?

६ चिनवाङ या जियगीत क्या वस्तु थी ? वह नृत्य-गीत भारत में कब प्रचलित था ? उसका यहाँ प्रचलित होना क्या सूचित करता है ?

७ ताङ ताइचुङ का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखिए। इतिहास में उसका क्या स्थान है और भारत के इतिहास पर उसका क्या प्रभाव पड़ा ?

८ चीन हिन्द के भारतीय राज्यों का परिचय देते हुए बताइए कि पच्छिमी तुर्कों और चीनियों से सातवीं शताब्दी में उनका क्या सम्बन्ध रहा ?

९ हूलिङ लोग कौन थे और कहाँ रहते थे ? य्वान च्वाङ के समय उनपर किसका आधिपत्य था ?

१० तुखार देश कहाँ था ? उसकी सीमाएँ स्पष्ट कीजिए।

११ कपिश राज्य की सीमाएँ य्वान च्वाङ के समय क्या थीं ? उसके अधीन कौन से प्रदेश थे ?

१२ कर्कोट राजवंश की स्थापना किसने की ? उस राज्य का अधिकार कहाँ तक था ?

१३ य्वान-च्वाङ के समय भारतीय लिपि के विस्तार की उत्तरी और पच्छिमी सीमा कहाँ तक थी ?

१४ तिब्बत में सभ्यता और भारतीय लिपि कब और किस प्रकार पहुँची ? स्रोङ-चन गम्पो का तिब्बत के उत्थान में क्या भाग रहा ?

१५ शैलेन्द्रों का राज्य ८वीं शताब्दी में कहाँ से कहाँ तक था और उनके जहाज किन देशों तक पहुँचते थे ?

१६ इनपर टिप्पणी लिखिए—लोहपाट, स्वर्ण का देश, पशुज, नरक्षचषा, [illegible]पुर, अंशुवर्मा, [illegible]।

पहलेपहल भारत के पच्छिमी तट पर अरबों ने समुद्री धावे मारे । एक धावा उन्होंने कोंकण के टाना जिले पर मारा, जिसमें पुलिकेशी के हाथों अरबों की बुरी तरह हार हुई। दूसरे सामुद्रिक हमले भी उसी प्रकार विफल हुए।

६४३ ई० में ईरान के पूरबी प्रान्त किरमान और सिजिस्तान (प्राचीन शकस्थान) जीत लिये गये । सिजिस्तान लेने से अरब लोग हेलमन्द नदी पर पहुँच गये, जो उस समय भी भारत की सीमा मानी जाती थी । उनका काँटा सिन्ध और अफगानिस्तान के बीच एक पच्चर की तरह घुसा हुआ है । ६४४ ई० में सिन्ध के राजा "सिहर्सराय" (श्रीहर्षराज) से अरबों ने मकरान छीन लिया। श्रीहर्षराज लड़ाई में मारा गया । उसके बेटे साहसी ने युद्ध जारी रक्खा, पर दो बरस पीछे वह भी खेत रहा । तब सिन्ध का राज्य ब्राह्मण मन्त्री चच के हाथ आया । उधर ६५० ई० में हरात भी अरबों के कब्जे में चला गया, जिससे अफगानिस्तान का पच्छिमी छोर भी उन्होंने घेर लिया । पच्छिम की तरफ सीरिया, फिलिस्तीन और मिस्र भी प्रायः उसी समय तक अरब साम्राज्य में शामिल हो चुके थे।

§ ४. **मध्य एशिया में अरब बाढ़**—६६३ ई० में अरबों ने कपिश की नई राजधानी काबुल पर पहली चढ़ाई की । काबुल साल भर घिरा रहा और लोग बस्तियाँ छोड़ भाग गये । पर ज्यों ही अरब सेनाओं ने मुँह फेरा कि काबुली फिर स्वतन्त्र हो गये। ६९७ और ७०० ई० में काबुल पर फिर वैसी ही विफल चढ़ाइयाँ हुईं।

अरब विजेता हरात से मध्य एशिया की तरफ भी बढ़े । काबुल की पहली चढ़ाई से चार ही बरस पहले तो चीन ने मध्य एशिया को अपने साम्राज्य में लिया और अफगानिस्तान पर प्रभाव जमाया था । अब अरबों और चीनियो की लग गई । किन्तु चीनियों को जहाँ सामने से अरबों का मुकाबला था, वहाँ उनके बायीं तरफ ६७० ई० के बाद से तिब्बत उनका शत्रु बन खड़ा हो गया । तिब्बती लोग उत्तर तरफ बढ़ कर चीनी सेनाओं का रास्ता काट देते और कई बार अरबों के साथ सन्धि कर लेते । चीनियों की कोशिश रहती कि वे एक दूसरे से न मिल पावें । इस कोशिश में वे प्रायः सफल रहे,

तो भी ६७४ ई० में तिब्बतियों ने खोतन के राजा विजयकीर्त्ति को हरा दिया, और १६ बरस तक वहाँ अधिकार जमाये रहे। कश्मीर के उत्तर दरद देश की पूर्वी सीमा का बोलौर प्रदेश भी उन्होंने दखल कर लिया।

§७. **सिन्ध-विजय**—मकरान लेने के बाद खलीफाओं की दृष्टि सिन्ध पर पड़ी और उसपर चढ़ाई के लिए कारण भी उपस्थित हो गया। सिंहल के राजा ने खलीफा के पास कई भेंट के जहाज भेजे। सिन्ध नदी के पच्छिमी तट के देवल बन्दर पर वे लुट गये। तब चच का बेटा दाहिर सिन्ध का राजा था। मुलतान भी सिन्ध राज्य के अन्तर्गत था। दाहिर ने जब खलीफा के कहने पर भी जहाज लुटने का कोई प्रतिकार न किया, तब मकरान के तट तथा समुद्र से देवल पर चढ़ाई की गई (७१०-११ ई०)। उस चढ़ाई का नेता एक नौजवान मुहम्मद इब्न कासिम अर्थात् कासिम का बेटा मुहम्मद था। देवल पर अरब सेना का विशेष मुकाबला न करके दाहिर सिन्ध नदी के पच्छिम के सारे इलाके को छोड़ पूरब हट गया। मुहम्मद ने पच्छिमी भाग पर कब्जा कर लिया। उसके उत्तरी छोर पर सिविस्तान अर्थात् आधुनिक सिवी प्रदेश में दाहिर के एक भाई ने सख्त मुकाबला किया, परन्तु जनता का एक बड़ा अंश बौद्ध श्रमण थे, जो तमाशबीन बने रहे। अन्त में मुहम्मद इब्न-कासिम की जीत हुई।

तब वह नीचे आ कर सिन्ध नदी लाँघने का उपाय करने लगा। सामने दाहिर की सेना थी और उसका बेटा जयसिंह नदी का घाट रोके हुए था। किन्तु नदी के बीच में एक टापू था। उस टापू का "मुखी"* मुहम्मद इब्न-कासिम के साथ मिल गया और जैसे सिकन्दर को आम्भि ने सिन्ध नदी के पार उतार दिया था, वैसे ही उसने मुहम्मद इब्न-कासिम को उतार दिया। उस पार दाहिर बड़ी वीरता से लड़ा जैसे पुरु सिकन्दर से लड़ा था। किन्तु

* मुहम्मद इब्न कासिम को सिन्ध नदी के पार उतारने वाले व्यक्ति का नाम अरब लेखकों ने 'मोका बसाया' लिखा है। 'बसाया' सिन्धी उच्चारण में 'वासुदेव' के उच्चारणा-नुसार रूप में सुरक्षित नाम है। 'मोका' स्पष्ट ही सिन्धी शब्द 'मुखी' (हिन्दी—मुखिया) का रूपान्तर है।

सिन्ध के इन अन्तिम हिन्दू राजाओं ने अपनी जाट और मेड़ प्रजा का बड़ा दमन किया था, इसलिए बहुत से जाटों ने अरबों का साथ दिया। दाहिर युद्ध में मारा गया। उसकी रानी पडोस के एक गढ़ मे कुछ सेना ले कर, जब तक बना, लडी। अन्त में उसने बची हुई स्त्रियों के साथ "जौहर" कर लिया। उत्तर की तरफ बढ़ कर मुहम्मद-इब्न-कासिम ने छः महीने के घेरे के बाद सिन्ध का मुख्य नगर ब्रहमनाबाद जीत लिया। तब उसने सिन्ध की राजधानी अलोर (रोरी के पास) पर और उसके बाद मुलतान पर भी कब्जा कर लिया। यह बात उल्लेखनीय है कि मुलतान पहुँचने से ठीक पहले मुहम्मद-इब्न-कासिम को ब्यासा नदी पार करनी पडी थी, अर्थात् ब्यासा उन दिनों आजकल की तरह हरि-के-पत्तन पर सतलज से न मिल कर आगे दूर तक पच्छिमदक्खिन बह कर मुलतान के नीचे चनाब में मिलती थी।

§६. **सिन्ध का अरब राज्य**—जाटों और मेडों से काम निकल जाने के बाद मुहम्मद-इब्न-कासिम ने भी उनपर पहले सी सख्ती की। परन्तु व्यापारी और कृषक प्रजा को विशेष नहीं सताया; उनसे "जजिया" ले कर उन्हें अपना धर्म बनाये रखने और अपने मन्दिरों में पूजा-पाठ करने दिया। राज्य का शासन, वसूली आदि का काम ब्राह्मणों और पुराने सरदारों के हाथ सौंपा। मुलतान के प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर को तोड़ने के बजाय उसके चढ़ावे की आमदनी मे से हिस्सा लेना अरब विजेताओं को अच्छा जँचा।

कुछ समय बाद मुहम्मद-इब्न-कासिम को खलीफा ने वापिस बुलाया और यातनाएँ दिला कर मरवा डाला। इस सम्बन्ध मे यह कहानी है कि खलीफा के आदेश से मुहम्मद-इब्न-कासिम ने दाहिर की दो लडकियाँ खलीफा के पास भेजी। उन लडकियों से खलीफा ने वासना-तृप्ति करनी चाही तो उन्होंने कहा कि मुहम्मद उन्हे पहले ही खराब कर चुका है। इसपर खलीफा ने मुहम्मद-इब्न-कासिम को आदेश भेजा कि अपने को बैल की खाल में मढ़वा कर खलीफा के सामने पेश करे। आज्ञाकारी मुहम्मद ने वैसा ही किया और उसकी मृत्यु हुई। पीछे दाहिर की लड़कियों ने बतलाया कि उन्होंने अपने पिता की मृत्यु का बदला चुकाने को उसपर मिथ्या आरोप लगाया था, और खलीफा

में चीन-सम्राट् ने कास्पियन सागर के दक्खिन तक के शासकों को अपने प्रभाव मे ले लिया।

§९. मुक्तापीड ललितादित्य (लग० ७३३–७६८ ई०)—कश्मीर मे दुर्लभवर्धन के बाद उसके बेटे दुर्लभक प्रतापादित्य ने ५० बरस राज किया, फिर प्रतापादित्य के तीन बेटों चन्द्रापीड, तारापीड और मुक्तापीड ने क्रमशः। मुक्तापीड ललितादित्य ने अपने प्रशासन (लग० ७३०–७६५ ई०) में कश्मीर को उत्तर भारत की प्रमुख शक्ति बना दिया। उसने मुलतान की सीमा तक पजाब पर अधिकार कर लिया, तथा काबुल के राज्य को, जिसमे कपिश और पच्छिमी गन्धार (पेशावर) सम्मिलित थे, अपना सामन्त बनाया। कन्नौज-साम्राज्य का पंजाब पर जो भी आधिपत्य रहा हो उससे उसे मुक्त करने के बाद उसने सम्राट् यशोवर्मा पर चढ़ाई कर उसे हराया। सन्धि होने पर यशोवर्मा ने जमना से काली नदी तक के सब पहाड़ी प्रदेश अर्थात् गढ़वाल और कुमाऊँ ललितादित्य को दिये। इस प्रकार काली नदी जो अब नेपाल राज्य को कुमाऊँ से अलग करती है, उनके बीच सीमा बनी*।

मटन तीर्थ (कश्मीर) मे ललितादित्य के बनवाये मार्त्तण्ड मन्दिर के खँडहर

उत्तर और उत्तर-पच्छिम तरफ ललितादित्य ने दरद और तुखार देशों को अधीन किया, तुखार देश के बचे खुचे तुर्क सरदारों को पूरी तरह वश में किया तथा पूरब तरफ तिब्बतियो की रोकथाम की। तिब्बतियों ने लदाख से उत्तर-पच्छिम बढ़ कर सिन्ध और श्योक नदियो के संगम पर दरद देश का बोलौर

* देखिए परिशिष्ट २।

या गल्गी प्रदेश ले लिया था। तिब्बतियों का पच्छिम बढ़ना कश्मीर तथा चीन साम्राज्य दोनों के लिए खतरनाक था। इसलिए चीनियों ने तिब्बतियों को वहाँ से निकालने के लिए चढ़ाई की। ललितादित्य ने चीन से सहयोग किया और चीन सम्राट् को सन्देश भेजा कि उसने मध्यदेश के सम्राट् यशोवर्मा के साथ मिल कर तिब्बतियों के सब दक्खिनी रास्ते रोक दिये हैं, तथा वह दो लाख चीनी सेना के लिए कश्मीर के महापद्म सर (वुलुर झील) पर रिहाइश और रसद का प्रबन्ध कर देगा। किन्तु चीनी सेना गोलौर से कश्मीर के भीतर नहीं उतरी। ललितादित्य ने भी तिब्बतियों पर चढ़ाई कर सिन्ध नदी के तट पर उन्हें हराया।

§१० सिन्ध से आगे बढ़ने की अरबों की चेष्टाएँ—अरबों ने सिन्ध से आगे बढ़ने के भी अनेक जतन किये, पर उनका कोई स्थायी फल न हुआ। भिनमाल राज्य के साथ तो उनकी प्रायः लगातार मुठभेड़ चलती रही। ७३६ में सिन्ध से एक अरब सेना कच्छ, भिनमाल, चित्तौड़, उज्जैन को रौंदती हुई गुर्जर जिले की राजधानी नगरी तक पहुँच गई, पर वहाँ चालुक्यों ने उसे तहस नहस कर दिया। ७६६ ई० में फिर अरबों ने सुराष्ट्र पर चढ़ाई कर वलभी नगरी को लूटा। तब मैत्रक वंश का राज मिट गया। ललितादित्य के पीछे मुलतान की तरफ से पंजाब के कश्मीर अधीन इलाकों पर भी अरब छापामारी करते रहे। प्रतीहारों की शक्ति शिथिल होने पर सिन्ध में कुछ अरब सरदार बने रहे, कुछ स्थानीय सरदार उठ खड़े हुए।

§११ विक्रमादित्य चालुक्य २य—सत्याश्रय पुलिकेशी के बेटे विक्रमादित्य १म और उसके बेटे विनयादित्य का उल्लेख कर चुके हैं। उस विनयादित्य के पोते विक्रमादित्य २य ने ७३३ से ७४७ ई० तक राज किया। उसी के समय अरब सेना नवसारी पर चढ़ आई थी जहाँ उसके लाट देश के सेनापति पुलिकेशी अवनिजनाश्रय ने, जो स्वयं सत्याश्रय पुलिकेशी का पोता था, उस सेना का संहार किया। विक्रमादित्य २य ने दक्खिन तरफ पल्लवों के राजा नन्दिवर्मा को भी हराया और काञ्ची नगरी में प्रवेश कर अनेक दान किये।

§१२ मध्य एशिया में अरबों की अन्तिम सफलता—आठवीं

शताब्दी के मध्य तक चीनियों ने मध्य एशिया में तिब्बत और अरब की प्रगति को रोके रक्खा। किन्तु ७५१ ई० में अरबों ने तुर्कों के साथ मिल कर समरकन्द में चीनियों को बुरी तरह हराया। उसी युद्ध के चीनी कैदियों से पहलेपहल अरबों ने कागज बनाना सीखा, और फिर उनसे समूचे जगत् ने। ७८० ई० में तिब्बतियों ने खोतन के विजय-वंश के राज्य को सदा के लिए मिटा दिया। ७८६ ई० में खलीफा हारूँनुल-रशीद के समय काबुल पर अरबों ने फिर चढ़ाई की और नगर के बाहर एक बहुत बड़े विहार को लूटा। वहाँ तो उनके पैर न जमे, पर गजनी कुछ समय बाद अरब शासन में चला गया।

§ १३. भारतीय संस्कृति का अरबों पर प्रभाव—अरब लोग शुरू में क्रूर और संहारकारी थे, पर ईरान और भारत की सभ्यता ने उन्हें शीघ्र प्रभावित किया। आठवीं शताब्दी में सिन्ध और बलख के अरब-साम्राज्य में सम्मिलित होने पर भारतवर्ष का प्रभाव खिलाफत के देशों पर विशेष रूप से पड़ने लगा। खलीफा हारूँनुल-रशीद के समय (७८६—८०६ ई०) तो भारतीय संस्कृति के प्रवाह से बगदाद का दरबार मानो आप्लावित हो उठा। बरमक नामक वजीर खानदान की वहाँ बड़ी शक्ति थी; वे लोग बलख के थे। उनके पुरखा बलख के नव-विहार में पदाधिकारी रह चुके थे। वे नाम को मुसलमान हुए थे। पुराने रिश्ते-नातों के कारण वे भारत से विद्वानों को बगदाद बुलाते और उन्हें वहाँ वैद्य आदि के पदों पर रखते। अरब विद्यार्थियों को वे पढ़ने को भारत भेजते। संस्कृत के दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष, इतिहास, काव्य आदि के अनेक ग्रन्थों के उन्होंने अरबी अनुवाद करवाये। भारतवर्ष से गणित आदि का ज्ञान अरब लोग ही युरोप ले गये। पंचतंत्र आदि की कहानियाँ भी उन्हीं के द्वारा विदेशों में पहुँचीं।

§ १४. अरब साम्राज्य का टूटना—वैभव ने अरबों को विलासी बना दिया। नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अरब साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। खिलाफत एक छोटी-सी रियासत के रूप में रह गई, और जो राज्य उसके स्थान में उठ खड़े हुए, उनमें अधिकांश मुसलमान बने हुए ईरानियों के थे। उनमें से एक बुखारा और खुरासान (उत्तरी ईरान) के अमीरों का था, जिससे हमें

आगे वास्ता पड़ेगा। बुखारा सुग्द दोआब में है। वहाँ के अमीर ईरानी मुसलमान थे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ हजरत मुहम्मद की शिक्षा में मुख्य बातें क्या थीं?

२ खलीफा कौन थे? उनका साम्राज्य कब कब कहाँ कहाँ तक फैला?

३ भारत की सीमाओं के किन किन प्रदेशों पर खलीफाओं की सेना ने कब कब आक्रमण किया? उसमें कब कब सफलता विफलता हुई?

४ अरबों ने सिंध राज्य कब कैसे जीता?

५ सिन्ध के आगे किन किन प्रान्तों पर अरबों के आक्रमण कब कब हुए? उनका परिणाम क्या हुआ?

६ मध्य एशिया में अरब किस मार्ग से कब घुसे? उन्हें वहाँ कब किस से मुकाबला पड़ा?

७ ललितादित्य कौन था? उसका राज्य कहाँ कहाँ तक था?

८ इनपर टिप्पणी लिखिए—हारूँ-उल रशीद, अरबों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव, सातवीं आठवीं शताब्दी में एशिया के राजनीतिक संघर्ष में चीन का भाग।

परिशिष्ट २

ललितादित्य और यशोवर्मा की साम्राज्य-सीमा

ललितादित्य से हार कर यशोवर्मा ने उसे जमना से काली तक का प्रदेश दिया था, यह बात कश्मीरी कवि कल्हण द्वारा १२वीं शताब्दी में लिखे गये कश्मीर के इतिहास 'राजतरंगिणी' से विदित है। गंगा जमना दोआब के बीचोंबीच मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ, एटा जिलों में से होते हुए तथा एटा मैनपुरी फर्रुखाबाद जिलों के बीच कुछ दूर तक सीमा बनाते हुए एक काली नदी कनौज के पास गंगा में मिलती है। अनेक विद्वानों ने इसी को यह काली नदी मान रक्खा है। पर यह नाला दो साम्राज्यों की सीमा कभी न बन सकता था, और जिस साम्राज्य की पच्छिमी सीमा यह होती उसकी

राजधानी कन्नौज में न रह सकती थी । ललितादित्य पहाड़ी राजा था और उसका पहाडी प्रदेशों को जीतना स्वाभाविक था । उसके पोते की नेपाल के राजा से काली गंडक पर लडाई हुई यह भी हम देखेंगे । आठवीं शताब्दी मे कश्मीर का साम्राज्य पहाड़ों में पूरब तरफ उसी प्रकार फैला प्रतीत होता है जैसे १८ वीं में नेपाल का पच्छिम तरफ। यशोवर्मा ने भी तिब्बतियो के कुछ दक्खिनी रास्ते रोक रक्खे थे इसका यह अर्थ है कि हिमालय प्रदेशो का बहुत सा अंश उसके अधीन भी था ।

अध्याय ४

पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट

(लगभग ७४०–१००६ ई०)

§ १. **पूर्वी भारत में पाल राजवंश का उदय**—ललितादित्य के हाथों यशोवर्मा की हार होने पर पूरब मे गुप्त राजवंश ने फिर उठने की चेष्टा की, पर बेकार। मगध, मिथिला और बगाल में कुछ बरसों तक अराजकता छाई रही । इस बीच कभी ललितादित्य ने अपने पोते जयापीड को पुण्ड्रवर्धन (पुर्णिया और उत्तरी बंगाल) पर चढाई को भेज कर सेना के बल से वहाँ एक राज्य खडा करना चाहा, पर प्रजा के सहयोग विना वह सफल न हुआ । अन्त मे उन प्रान्तो के लोग अराजकता से ऊब गये, और उस "मछलियो की सी दशा* को हटाने के लिए प्रजा ने श्रीगोपाल के हाथ राज्य-लक्ष्मी सौंप दी"—अर्थात् उसे अपना राजा चुन लिया (लग० ७४३ ई०) । गोपाल योग्य राजा था, उसने समूचे मगध, मिथिला और बंगाल को शीघ्र एक सुसंघटित राज्य बना दिया ।

---

* अराजकता को संस्कृत मे "मछलियों की दशा" (मत्स्य न्याय) कहते हैं। बड़ी मछली छोटी को खा जाती है, और उसे भी अपने से बडी का डर रहता है। अराजकता में भी यही होता है।

§२. कन्नौज का दूसरा सम्राट् वंश—यशोवर्मा प्रकटत मौखरि वश का था। उसके बाद कन्नौज मे नया राजवश स्थापित हुआ। इस नये वश का स्थापक एक अभिलेख में दिये हुए सकेत के अनुसार "भण्डि कुल" का था। हर्षवर्धन के मामा के लडके और सेनापति का नाम भण्डि था [७, १§७]। जान पडता है यशोवर्मा के बाद कन्नौज का साम्राज्य उस सेनापति के वश के हाथ में चला गया।

§३ कलिंग मे गग राजवश की स्थापना—पूरबी कर्णाटक मे कोलाहलपुर (कोल्हार) म कादम्बों के सामन्त रूप में गग राजा राज्य करते थे। उस प्रदेश का नाम इसी कारण गगवाडी पडा। वहाँ से इस युग मे उन्होंने कलिंग (उडीसा) आ कर अपना राज्य स्थापित किया।

§ ४ दक्खिन में राष्ट्रकूट वश का उदय—७५२ ई० मे महाराष्ट्र कर्णाटक के चालुक्य राजा से उसके सामन्त दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूट ने उसका राज्य छीन लिया। 'राष्ट्रकूट' का असल अर्थ "प्रान्त का शासक" था। वही शब्द इस वश का नाम हो गया। पीछे उसी का रूप 'राठोड' हुआ। दन्तिदुर्ग के उत्तराधिकारी, उसके चाचा, कृष्ण (लग० ७६०-७७५ ई०) के समय राष्ट्रकूट राज्य समूचे महाराष्ट्र और कर्णाटक मे स्थापित हो गया। कृष्ण ने वेरूल* मे एक चट्टान में से कटवा कर कैलाश नाम का मन्दिर बनवाया। वह भारतवर्ष की लेणियों या गुहामन्दिरों मे सब से अनोखी रचना है।

§५. गुर्जर देश का प्रतिहार राजवश—महाराष्ट्र म जब राष्ट्रकूट राज्य स्थापित हुआ तभी गुर्जरदेश के राजा नागभट ने सिन्ध के मुसलमान शासकों को हरा कर ख्याति पाई। नागभट की राजधानी भिनमाल थी और मारवाड से भरुच तक उसका राज्य था। उसके पुरखा किसी राजा के प्रतिहार अर्थात् द्वारपाल थे। वही प्रतिहार शब्द उनके वशजों का उपनाम हो गया†।

---

* 'वेरूल' का बिगाडा हुआ अंग्रेजी रूप 'एलोरा' है।

† प्रतिहार राजपूत जाति की कल्पना के विषय में देखिए परिशिष्ट ३।

ध्रुव के दो बेटों—स्तम्भ और गोविन्द (३य)—में घरेलू युद्ध हुआ। उस अवसर से लाभ उठा कर वत्सराज के बेटे नागभट (२य) ने, जो राजस्थान की ख्यातों में नाहडदेव नाम से प्रसिद्ध है, चक्रायुध और धर्मपाल दोनों को हरा कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया (लग० ७९२-९४ ई०)। किन्तु गोविन्द (७९४-८१४ ई०) ने अपने राज्य में स्थापित होने के बाद उत्तर भारत पर चढ़ाई की और नागभट को हराया; धर्मपाल और चक्रायुध को भी उसके सामने झुकना पड़ा। इस चढ़ाई में उसने मालव, कोशल, कलिंग, ओड्र (उड़ीसा का पहाड़ी भाग) और डहाला (जबलपुर प्रदेश) पर अधिकार कर लिया। उधर उसने कांची और रामेश्वरम् तक जीता था। इस प्रकार वह अपने समय का भारत का सम्राट् था। समूचा दक्खिन भारत और मध्य-मेखला का पहाड़ी अंश जिसमें उत्तर भारत के मैदान पर उतरने के रास्ते हैं, उसने अधीन कर लिया था।

§१०. **अमोघवर्ष और अकालवर्ष**—(८१५-९११ ई०)—गोविन्द के बेटे शर्व अमोघवर्ष (८१५-७७ ई०) और उसके बेटे कृष्ण अकालवर्ष (८७७-९११ ई०) के एक शताब्दी के शासन में दक्खिन भारत ने अद्वितीय शान्ति और समृद्धि प्राप्त की। अमोघवर्ष ने मान्यखेट (हैदराबाद राज्य की मालखेड) नगरी को अपनी राजधानी बनाया। गोविन्द, शर्व और कृष्ण का प्रशासन कुल मिला कर ११८ वर्ष का रहा। इतनी लंबी अवधि तक लगातार सुशासन चलने से देश ने टिकाऊ शान्ति और समृद्धि का अनुभव किया।

§११. **देवपाल**—पूर्वी भारत में धर्मपाल का उत्तराधिकारी उसका बेटा देवपाल भी उसी की तरह योग्य हुआ (लग० ८१०-८५१ ई०)। देवपाल ने अपने राज्य को पूरबी भारत का साम्राज्य बना दिया। उसके सेनापति ने उत्कल (उड़ीसा) और प्राग्ज्योतिष (असम) को जीत लिया। शायद ललितादित्य और जयापीड के पूरबी विजयों के सिलसिले में पूरबी हिमालय और पुण्ड्रवर्धन में कश्मीरियों-कम्बोजों की एक बस्ती बस गई थी। हिमालय देवपाल ने उन्हें हराया। दूसरी तरफ उसने विन्ध्य में अमोघवर्ष से टक्कर

ली है। नागभट की मृत्यु के बाद उसके बेटे रामभद्र के मुकाबले में भी देवपाल का पलड़ा भारी रहा।

§ १२. मिहिर भोज और महेन्द्रपाल—किन्तु लग० ८३६ ई० में रामभद्र के बेटे भोज या मिहिर भोज के अधिकार पाने पर अवस्था पलट गई। भोज ने राज पाते ही कन्नौज को जीता और भिनमाल के बदले उसे अपनी राजधानी बना लिया। कश्मीर की सीमा तक हिमालय के प्रदेशों पर उसने फिर से कन्नौज का आधिपत्य स्थापित किया। उसने प्रतिहार साम्राज्य की पच्छिमी सीमा उन पहाड़ों से मुलतान सिन्ध की सीमा तक और सुराष्ट्र के समुद्र तक पहुँचा दी। पूरब तरफ उसने देवपाल के बेटे नारायणपाल (लग० ८५४-९०८ ई०) से न केवल मगध मिथिला प्रत्युत पुण्ड्रवर्धन (पुर्णिया—उत्तरी बंगाल) भी छीन लिया (लग० ८७१ ई०)। पालों का राज्य तब केवल राढ देश (पच्छिमी बंगाल) और समतट में रह गया। पूरबी बंगाल में भी एक स्थानीय चन्द्र-वंश खड़ा हो गया, जिसकी राजधानी विक्रमपुर (ढाका के पास) थी।

शाहाबाद (आरा) जिले में भोजपुर नामक प्रसिद्ध गाँव है, जिसके नाम पर गंगा के उत्तर और दक्खिन समूचे पच्छिमी बिहार की बोली आज भोजपुरी कहलाती है। यह भोजपुर सम्राट् मिहिर भोज का ही स्मारक है।

मिहिर भोज के कन्नौज को अपनी राजधानी बना लेने और मगध मिथिला पुण्ड्रवर्धन छीन लेने से वह तिकोनी कशमकश समाप्त हुई जो पूरब पच्छिम और दक्खिन के अधिपतियों के बीच मध्य देश (कन्नौज) के साम्राज्य को अपनी कठपुतली बनाने के लिए ८वीं शताब्दी के मध्य में शुरू हुई थी। उस कशमकश के कारण जो समतुलन बना हुआ था वह लग० ७५०-८७१ ई० के भारतीय इतिहास का विशेष चिह्न था।

भोज के पचपन बरस (लग० ८३६-८९० ई०) और उसके बेटे महेन्द्रपाल के सत्रह बरस (८९१-९०७ ई०) के शासन में कन्नौज फिर भारत के सब से प्रतापी सम्राटों की राजधानी बना रहा। उनके डर से दक्खिन के राष्ट्रकूटों और सिन्ध के शासकों ने परस्पर मैत्री कर ली। अरब व्यापारी

यात्री जो सिन्ध के सम्पर्क में थे, मान्यखेट के राजा को वल्हारा (वल्लभ-राजा) नाम से जानते और उसे भारत में सबसे बडा राजा मानते थे।

§ १३. **चोळ, कश्मीर, ओहिन्द के नये राज्य** (लग० ८५०-९५० ई०)—नौवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतवर्ष के सीमान्त राज्यों में रद्दोबदल हुआ। कांची, कश्मीर और काबुल के सीमान्त राज्य कर्णाटक, कन्नौज और बुखारा साम्राज्यों के हमलों से जीर्ण हो गये थे, इसलिए उनमें आन्तरिक परिवर्तन जरूरी हो गया।

नौवीं शताब्दी के मध्य मे तमिळ देश मे चोळ सरदार विजयालय खडा हुआ। उसका बेटा आदित्य लग० ८८० ई० में पल्लव राजा अपराजित को पराजित कर स्वतन्त्र हो गया। आदित्य ने लग० ९०७ ई० तक राज्य किया। आदित्य चोळ के बेटे परान्तक १म ने ९०७ से ९४९ ई० तक राज्य किया। उसने पाण्ड्यो की नगरी मदुरा छीन ली और सिंहल पर भी धावा मारा। उसका शासन खूब सुव्यवस्थित था।

कश्मीर मे भी नौवी शताब्दी के मध्य में कर्कोट वंश का राज्य समाप्त हो कर उत्पल वश का शुरू हुआ। पहला उत्पल राजा अवन्तिवर्मा (८५५-८८३ ई०) अत्यन्त न्यायी और सुशासक था। उसके सुय्य नाम के एक मन्त्री ने कश्मीर की नदियो और झीलो के बॉध बँधवाये, नहरें खुदवाई। नदियो के मार्ग और संगम बदल दिये तथा दलदलो को सुखा कर सैकडो नये गॉव बसा दिये। कश्मीर मे जहाँ पहले दुर्भिक्ष के समय धान की एक खारी १०५ दीनार की आती थी और अत्यन्त सुभिक्ष हो तो २०० दीनार की, वहाँ अब एकाएक ३६ दीनार की आने लगी। सुय्य को लोगो ने अन्नपति की पदवी दी।

८७० ई० में बुखारा के एक सेनापति याकूब-ए-लैस ने काबुल का किला ले लिया। काबुल शहर और प्रदेश हिन्दू राजाओ के पास रहा, किन्तु वे अपनी राजधानी सिन्ध नदी के पुराने घाट उदभांडपुर ले गये। उदभांडपुर अटक के १६ मील उत्तर है और अब उन्द या ओहिन्द* कहलाता है। वह

---

*मुस्लिम इतिहासलेखकों ने अरबी लिपि में ओहिन्द को वहिन्द लिखा। कु

८८३ ई० में अन्तिम राजा से उसके ब्राह्मण मन्त्री लल्लिय ने राज्य छीन लिया। लल्लिय के वंशज ब्राह्मण शाहि कहलाये।

कश्मीर के अवन्तिवर्मा का बेटा शंकरवर्मा (८८३-९०२ ई०) भी बड़ा विजेता था। उसने पूरब और सम्भवतः कांगड़ा प्रदेश में मिहिर भोज का सामना किया और पच्छिम तरफ उरशा (हजारा) और ओहिन्द राज्य जीते। उसने लल्लिय को अपना सामन्त बनाया। इसके बाद एक अरसे तक शाहियों का राज्य कश्मीरियों की अधीनता में बना रहा।

§१४ **महीपाल और इन्द्र नित्यवर्ष**—जब महेन्द्रपाल का बेटा महीपाल कनौज की गद्दी पर बैठा, तब भी उसका शासन कलिंग से सुराष्ट्र और सुराष्ट्र से कुल्लू तक माना जाता था। उधर कर्णाटक में कृष्ण अकालवर्ष का उत्तराधिकारी उसका पोता इन्द्र नित्यवर्ष हुआ। ९१६ ई० में मध्यदेश और महाराष्ट्र के सम्राटों में फिर भिड़न्त हुई। इस बार इन्द्रराज ने कनौज नगरी को ले कर उजाड़ा और उसके एक सामन्त ने प्रयाग तक महीपाल का पीछा किया। तब से कनौज साम्राज्य की घटती कला शुरू हुई। बंगाल के पालवंशी राजाओं ने ९५० ई० तक मगध फिर शामिल ले लिया। तो भी उत्तरी बंगाल को वे न ले सके और वहाँ एक कम्बोज वंश स्थापित हो गया।

§१५. **दसवीं शताब्दी के नये राज्य** (*लग० ९२५-९९५ ई०*)—अन्तर्वेदी का साम्राज्य कमजोर होने से मध्यमेखला के सामन्त राज्य स्वतन्त्र हो गये। जमना के दक्खिन से विदर्भ और कलिंग की सीमा तक पुराना चेदि देश था। इस युग में चेदि नाम उसके दक्खिनी अंश का रहा, उत्तरी अंश जेजाकभुक्ति या जझौती कहलाने लगा। चेदि के कलचुरि-वंश की राजधानी त्रिपुरी (जबलपुर के पास आधुनिक तेवर) थी। महाकोसल अर्थात् छत्तीसगढ़ भी उनके अधीन रहा। उसकी पच्छिमी सीमा वर्धा नदी तक थी।

जझौती में चन्देल राजवंश था। उनकी राजधानी पहले महोबा और

आधुनिक इतिहासलेखकों ने इसे कठिन पढ़ कर शाहियों की राजधानी [illegible] के पूरब [illegible]

फिर खजुराहो में रही। कालजर का गढ़ ले लेने से वे कालंजर के राजा भी कहलाये। यशोवर्मा चन्देल (लग० ६२०–५० ई०) ने डहाला से मगध, मिथिला और गौड तक चढ़ाई की, और पूरबी हिमालय तक जा कर वहाँ की
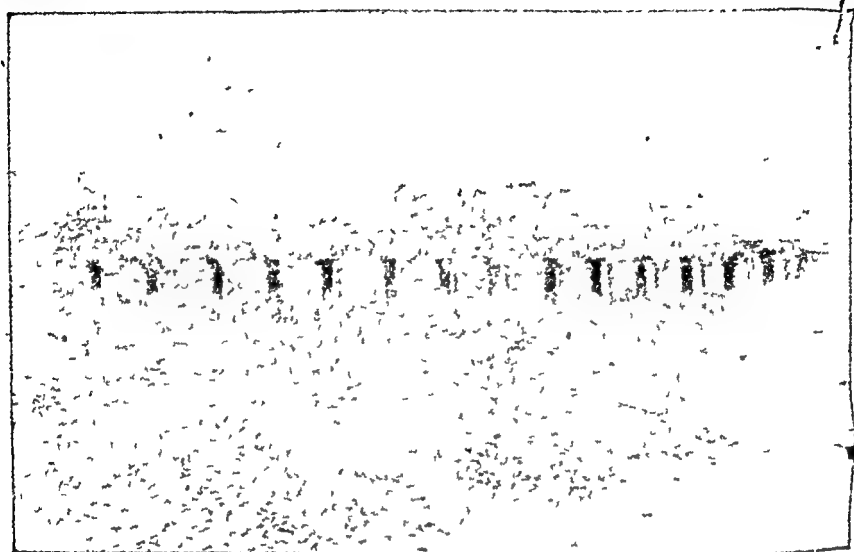
भद्रावती (भाण्डक, जि० चाँदा) में मध्यकाल के एक पुल के खँडहर। भद्रावती य्वान-च्वाङ के समय महाकोशल की राजधानी थी। [भा० पु० वि०]

कम्बोज बस्ती को हराया। उसके बेटे धंग ने (लग० ६५०–६५ ई०) अंग (मुंगेर-भागलपुर) [२, १§६; ३, १§२] और राढ देश [३, १ § ७] पर चन्देलों का आधिपत्य जारी रक्खा।

दसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में पालवंशी राजा महीपाल (लग० ६७५–१०२६ ई०) ने फिर धीरे-धीरे अपने पुरखों के राज्य का पुनरुद्धार किया। पहले उसने कम्बोज वंश का अन्त कर उत्तरी बंगाल लिया (लग० ६८४ ई०) और फिर मगध। अपने राज्यकाल के प्रायः अन्त में उसने मिथिला को भी ले लिया (लग० १०२३ ई०)।

चेदि और जझौती के पच्छिम अवन्ति या मालवे में परमार वंश का एक राज्य स्थापित हुआ, जिसकी राजधानी धारा थी। उसके पच्छिम गुजरात

उधर ओहिन्द के शाहियों ने अपना राज्य पंजाब तक फैला लिया। इन राज्यों के बीच कन्नौज का प्रतिहार राज्य भी बना रहा।
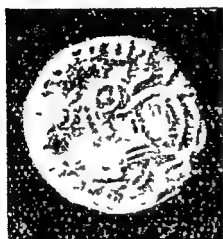
काबुल-ओहिन्द के शाहि सामन्तदेव का सिक्का [श्री० सा० सं०] चित, राजा घोड़े पर; पट नन्दी, ऊपर लेख—श्री सामन्तदे (व)।

इन्द्रराज राठोड ने ९१६ ई० में कन्नौज पर धावा मारा था, ९७२ ई० में मालवे के पहले स्वतन्त्र राजा सीयक (श्रीहर्ष) ने राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट पर धावा मारा। तब राष्ट्रकूटों का राज्य समाप्त हुआ और तैलप चालुक्य ने महाराष्ट्र-कर्णाटक में फिर से चालुक्य राज्य स्थापित किया (९७३ ई०)। इन पिछले चालुक्यों की राजधानी कल्याणी (बिदर के पास) थी, इस कारण वे कल्याणी के चालुक्य कहलाये।

§१६. **परमार-सोलंकी-द्वन्द्व**—सीयक का बेटा राजा मुंज छः बार तैलप को हराने के बाद सातवीं लड़ाई में कैद हो कर मारा गया (लग० ९९४ ई०)।

मुंज ने अपने छोटे भाई सिन्धुराज के होनहार बेटे भोज को अपना उत्तराधिकारी नियत किया था*, किन्तु मुंज की मृत्यु के समय भोज निरा बालक था, इसलिए सिन्धुराज गद्दी पर बैठा। उसका भी अपने पड़ोसी गुजरात के मूलराज सोलंकी के पुत्र चामुण्डराज से युद्ध चला, जिसके अन्त में वह मारा गया (लग० १००९ ई०)। यों मुंज महाराष्ट्र के चालुक्य राजा के हाथ मारा गया था और उसका भाई गुजरात के चालुक्य राजा के हाथ। परमारों चालुक्यों का यह द्वन्द्व आगे अस्थिवैर बन कर चलता रहा।

---

* बल्लाल पंडित के भोजप्रबन्ध के आधार पर यह कहानी प्रचलित है कि सिन्धुल (सिन्धुराज) अपने बालक पुत्र भोज को अपने छोटे भाई मुंज को सौंप गया और मुंज ने राज्य-लोभ से उसे मार डालना चाहा, इत्यादि। परमार वंश के अभिलेखों तथा समकालीन ग्रन्थों से यह कहानी गलत सिद्ध हुई है।

परिशिष्ट ३

राजपूत जातियों का उद्भव

पहले मध्य काल में हमें चालुक्य या सोलंकी, राष्ट्रकूट, प्रतिहार, चन्देल, परमार आदि कई वंशनाम सुनाई देते हैं जो कि आगे चल कर राजपूत जातों के नाम बने हुए मिलते हैं। इससे अनेक विद्वानो ने यह मान लिया है कि इसी काल से राजपूतो का आरम्भ हुआ। पृथ्वीराजरासो नामक राजस्थानी काव्य में राजपूतों के ३६ कुल लिखे हैं। पृथ्वीराजरासो १२वी शताब्दी की रचना मानी जाती है। उसमे कुछ राजपूत कुलो के अग्निकुण्ड से निकलने की कहानी है, जिससे यह कल्पना की गई है कि इनका उद्भव विदेशी था और इन्हे यज्ञ द्वारा शुद्ध किया गया। कन्नौज के प्रतिहारों के नाम के साथ गुर्जर शब्द लगा है, वे गुर्जर-प्रतिहार थे। गुर्जर नाम पहलेपहल छठी शताब्दी में हमारे इतिहास मे आता है। गुर्जरो के भी हूणो के साथ की कोई विदेशी जाति होने की कल्पना की गई है।

किन्तु हम देखेंगे कि पृथ्वीराजरासो १६वी शताब्दी से पहले की कृति नही है। यदि राजपूतो के कुल १२वी शताब्दी में गिने गये होते तो उनमे कन्नौज के गाहड्वालो (गहरवारों) का प्रमुख स्थान होता, क्योकि वे उस शताब्दी मे उत्तर भारत के सम्राट् थे। छत्तीस कुलो में उनका नाम नहीं है, न बंगाल के पालो और सेनो तथा दक्खिन भारत के चोळो, गंगों आदि का नाम है। इससे यह सूचित है कि छत्तीस कुलो का परिगणन ऐसे समय हुआ जब कि इन वंशो की याद भी मिट चुकी थी।

गुर्जर प्रतिहारों की तरह ब्राह्मण प्रतिहारो आदि का भी उल्लेख मिलता है। गुर्जर प्रतिहार का अर्थ है गुर्जर देश के प्रतिहार अथवा गुजराती प्रतिहार; और कुछ नहीं।

जिन गुर्जर लोगों के कारण छठी शताब्दी मे देश का नाम गुर्जरत्रा शुरू हुआ, उनका भी विदेशी होना प्रमाणित नहीं होता। गूजर लोग आज

राजस्थान और पच्छिमी अन्तर्वेदी से ले कर कश्मीर, स्वात तक पाये जाते हैं। यह कल्पना की गई है कि वे उत्तरपच्छिम से आये, और उनमें से कुछ स्वात, कश्मीर, पंजाब में रह गये, बाकी राजस्थान और गंगा कांठे तक पहुँच गये। किन्तु स्वात और कश्मीर में जो गूजर हैं वे आज तक भी स्थानीय शब्दों से मिश्रित राजस्थानी बोलते हैं। इससे उनका राजस्थान से बाहर गया होना सिद्ध है। इसके अतिरिक्त पच्छिमी पंजाब की भाषा में जहाँ गाय भैंस पालने वाले गुज्जर कहलाते हैं, वहाँ भेड़-बकरी पालने वाले अजिड या आजड़ी कहलाते हैं। इससे प्रकट है कि ये दोनों शब्द संस्कृत गो और अजा (बकरी) से निकले हैं, और दोनों आरम्भ में पेशों या धन्धों के नाम थे न कि जातियों के।

सोलंकी या चालुक्यों का सम्बन्ध कुछ विद्वानों ने मध्य एशिया के शुलिकों से जोड़ा है। वह स्थापना यथेष्ट रूप से प्रमाणित प्रतीत होती है।

हमारे साहित्य या इतिहास में जात के अर्थ में राजपूत शब्द महाराणा कुम्भा के समय अर्थात् पन्द्रहवीं शताब्दी से पहले कहीं नहीं मिलता। उससे पहले के किन्हीं वंशों को राजपूत कहना गलत है।

अध्याय ५

गजनी और ताजोर के साम्राज्य

(६८५-१०४५ ई०)

§१. तुर्कों का फिर उठना—मध्य एशिया में हूण और तुर्क किस प्रकार आये और उनपर पहले चीनियों तथा पीछे अरबों ने कैसे अपना आधिपत्य जमाया, सो कह चुके हैं। ६५६ ई० में पच्छिमी मध्य एशिया चीन के शासन में चला गया था, और ७५१ ई० में वहाँ चीन का स्थान अरब साम्राज्य ने लिया था। खिलाफत साम्राज्य टूटने पर कई अरब और इरानी राजवंश सारे पच्छिम और मध्य एशिया पर शासन करने लगे थे। पर मध्य एशिया से चीनियों के पैर उखड़ने के बाद से वहाँ जो दो भीतरी परिवर्तन

होने लगे थे, वे खिलाफत टूटने के बाद भी जारी रहे। एक तो तुर्कों की संख्या बढ़ती गई और पुराने शक, तुखार, आर्यावर्त्ती और ईरानी प्रायः सब उनमे मिलते और उनकी भाषा अपनाते गये। दूसरे, बौद्ध धर्म के स्थान में क्रमशः इस्लाम फैलता गया। मध्य एशिया के पच्छिमी अंश में इस्लाम पहले फैला। यारकन्द और काशगर के लोग दसवीं शताब्दी के अन्त से मुसलमान होने लगे।

राजनीतिक दृष्टि से तुर्क लोग प्रायः ३०० बरस तक गौण रहे। पर लग० ६५० ई० से अरबों और ईरानियों के अधीन जो तुर्क सरदार थे वे सिर उठाने लगे। कुछ ही समय में तुर्क-प्रभुता उन सब देशों पर छा गई जो पहले खिलाफत के अधीन थे। इसी समय अलप्-तगीन नामक तुर्क ने, जो पहले बुखारा के अमीर के यहाँ हाजीब अर्थात् प्रतिहार (द्वारपाल) था, गजनी मे एक छोटी सी तुर्क जागीर की नींव डाली। गजनी को बुखारा के अमीरो ने कुछ ही समय पहले छीना था और अब भी उसके पड़ोस में सब तरफ हिन्दू ही थे।

§ २. **सुबुक्-तगीन** (६७७-६७ ई०)—अलप्-तगीन के पीछे उसका दामाद सुबुक्-तगीन जो उसी की तरह पहले बुखारा में प्रतिहार रहा था, गजनी का मालिक बना (६७७ ई०)। तुर्की शब्द तगीन का अर्थ सरदार है, और संस्कृत-हिन्दी का ठक्कुर या ठाकुर शब्द उसी का रूपान्तर है। जिस अन्तिम ईरानी राजा यज्दगुर्द से अरबों ने राज्य छीना था, उसकी एक लड़की एक तुर्क सरदार को व्याही थी। कहते हैं सुबुक्-तगीन उसी का वंशज था। यह बात सच हो या झूठ, इसमें सन्देह नही कि तुर्क लोग अब पुराने हूण न रहे थे। मध्य एशिया में आ कर शकों-तुखारो ईरानियों और आर्यावर्त्तियो का आर्य खून उनमें पूरी तरह मिल चुका था।

सुबुक्-तगीन ने अपना राज्य बढ़ाना शुरू किया, और पूरब और उत्तर तरफ कई किले छीने, जो कि ओहिन्द के शाहि जयपाल के थे (लग० ६८६ ई०)। जयपाल ने तब उसके इलाके पर चढ़ाई की। कई दिन की घोर लड़ाई के बाद, हिन्दू सेना जिस चश्मे का पानी पीती थी उसे शराब

पीठ पीछे छपे नक्शे का क्षेत्र—आधुनिक राजनीतिक विभाग

४४ ६८
७४
८०
८६
९२
९८ ४४
रूसी तुर्किस्तान
शि ङ् कि या ङ्
या
मंगोलिया
कानसू
३८
चीनी तुर्किस्तान
३८
अफगानिस्तान
भा र त
त
ति
ब्ब
३२
६८
७४ ३२
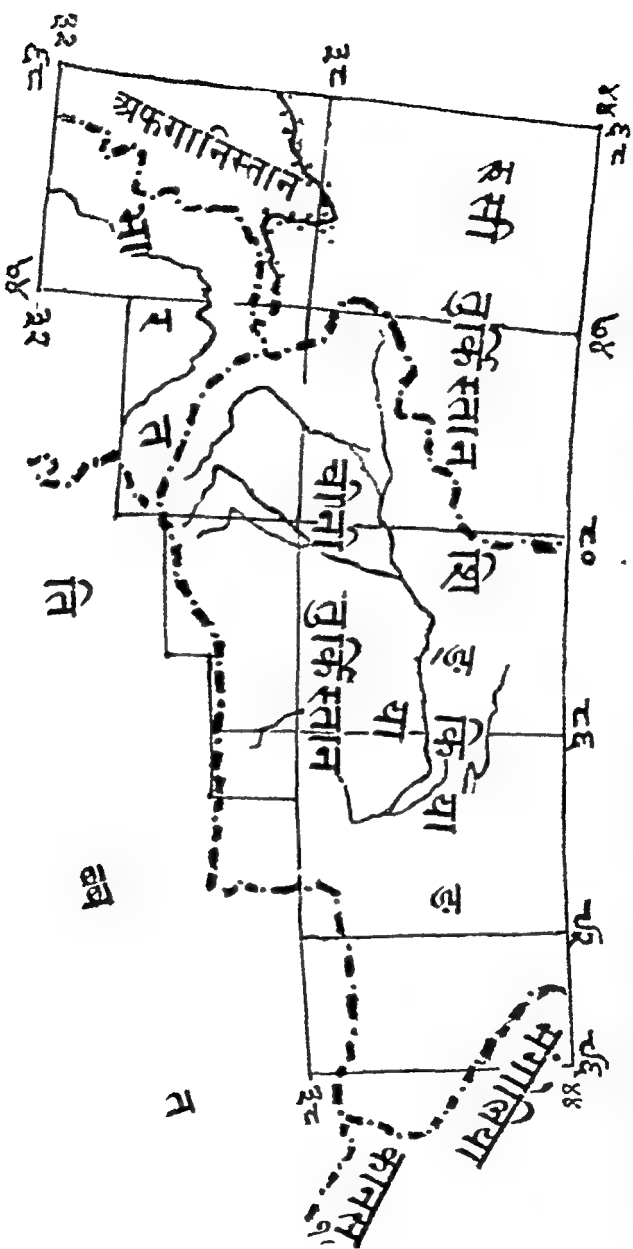
से गन्दा कर तुर्कों ने उन्हें सन्धि करने पर विवश किया। जयपाल ने कुछ किले देना स्वीकार कर लिया, पर लौट कर वे न दिये। तब सुबुक्तगीन उसके इलाकों को लूटने और उजाड़ने लगा। विशेष कर उसने जयपाल के लम्पाक या लमगान प्रदेश [७,२६५] को अपना लक्ष्य बनाया। जयपाल कनौज के राजा राज्यपाल और जझोती के राजा धंग की सहायता मँगा कर बड़ी सेना के साथ फिर गजनी की तरफ बढ़ा। कुर्रम नदी की दून में लड़ाई हुई। सुबुक्तगीन ने सामने लड़ने के बजाय ५-५ सौ सवारों की टुकड़ियों से शत्रु सेना पर झपट्टे मारने की नीति पकड़ी, जिसमें वह सफल हुआ। लमगान उसके अधीन हो गया।

§ ३. **महमूद गजनवी, उसका पंजाब जीतना**—सुबुक्तगीन की जागीर उसके पीछे ९९७ ई० में उसके बेटे महमूद को मिली। कुछ ही समय बाद बुखारा खुरासान का राज्य तुर्क सरदारों के उपद्रवों से तथा पामीर पार के काशगर के लोगों के, जो तब तक बौद्ध थे, धावों के कारण टूट गया। वंक्षु सीर दोआब काशगर के राज्य में चला गया, और खुरासान का बाकी सब राज्य, जिसमें इरान के अतिरिक्त वंक्षु और कास्पियन के बीच का प्रदेश—ख्वारिज़म—था, महमूद को मिला। महमूद ने सुलतान बन कर नये राज्य पर अपना अधिकार दृढ़ किया। वह सीस्तान को काबू करने में लगा था जब उसे खबर मिली कि जयपाल फिर लड़ाई की तैयारी कर रहा है। इससे पहले कि जयपाल को समय मिले उसने एकदम पेशावर पर हमला कर दिया (१००१ ई०)। जयपाल अपने बेटे आनन्दपाल और अनेक सरदारों सहित कैद हुआ। पेशावर और ओहिन्द अर्थात् अटक नदी तक का कुल इलाका विजेता के हाथ में चला गया। आनन्दपाल को ओल रख उसने जयपाल को जाने दिया, पर जयपाल को अपनी हारों से इतनी ग्लानि हुई कि वह आग में जल मरा। तब महमूद ने आनन्दपाल को छोड़ दिया। आनन्दपाल ने नमक की पहाड़ियों में भेरा को अपनी राजधानी बनाया और वहीं रहने लगा। यह महमूद की पहली चढ़ाई थी। कहते हैं उसने भारतवर्ष पर कुल १७ चढ़ाइयाँ कीं।

ओहिन्द के बाद "भाटिया" और मुलतान ये दो और राज्य महमूद

के पड़ोसी थे। "भाटिया" दक्खिन पंजाब में भाटी राजपूतों की बस्ती थी। चनाब से संगम होने के बाद सतलज की धारा जिसमें पंजाब की पाँचों नदियों का पानी आ चुकता है, सिन्ध में मिलने से पहले तक पंजनद कहलाती है। उस पंजनद के उत्तर-पूरबी छोर पर उच्च नाम की नगरी "भाटिया" की राजधानी थी*। महमूद ने पहले "भाटिया" पर चढ़ाई की। गढ़ के बाहर तीन दिन के घोर युद्ध के बाद राजा विजयराय भाग गया। विशेष लूट विजेता के हाथ नहीं लगी। लौटते समय उसकी सेना बुरी तरह सताई गई और स्वयं सुलतान की "कीमती जान" बड़ी मुश्किल से बची।

मुलतान के शासक मुसलमान थे। महमूद ने उन पर चढ़ाई करने के लिए आनन्दपाल से उसके राज्य में से लाँघने की इजाजत माँगी। आनन्दपाल ने इजाजत न दी। तब महमूद ने उसके प्रदेश में घुस कर उसे उजाड़ना शुरू किया, और कई मुठभेड़ों में आनन्दपाल को हरा कर कश्मीर की ओर भगा दिया। मुलतान का शासक यह समाचार पा कर भाग गया। महमूद ने मुलतान पर अधिकार कर प्रजा से भारी जुरमाना वसूल किया।

आनन्दपाल ने फिर एक बार कन्नौज, जझौती आदि के राजाओं से

---

* "मुस्लिम युग" के आधुनिक इतिहासलेखक "भाटिया" का स्थान निश्चित नहीं कर सके और उन्होंने यह मनमानी कल्पना कर ली कि "भाटिया" "भेरा" का अपपाठ है। प० शहाबुद्दीन गोरी ने उच्च की भाटिया रानी से षड्यन्त्र करके उस राज्य को जीता था यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उस उच्च को न पहचानने के कारण ही आधुनिक लेखकों ने भाटिया के बारे में गलती की। उच्च या उच्चापुरी उस युग में प्रसिद्ध और समृद्ध नगरी थी। जब ब्यासा मुलतान के नीचे चनाब में मिलती थी और उत्तरी राजस्थान की घग्घर या हाकड़ा नदी भी पूरी तरह सूखी न थी, तब उच्च नगरी एक अत्यन्त सम्पन्न इलाके के बीचोंबीच अवस्थित थी जिससे उसका समृद्ध होना स्वाभाविक था। दिल्ली के पास पालम की मस्जिद में दिल्ली के एक पुरपति (नगर-सभा-प्रधान ?) का गुलाम सुलतान बलबन के समय का सुन्दर संस्कृत शिलालेख है। उस पुरपति का पिता उच्चापुरी का था। इस प्रसंग में उस लेख में पंजाब का और उच्च का सुन्दर वर्णन दिया गया है। इसके अतिरिक्त जैसलमेर के भाटी अपने को गजनी से आया हुआ मानते हैं, किसी समय उनका गज़नी और जैसलमेर के अधबीच पंजनद प्रदेश में बसा होना सर्वथा संगत है।

सहायता मँगा कर अटक के पूरब एक बड़े युद्ध की तैयारी की (१००६ ई०) । इस प्रदेश के वीर गक्खड़ भी उसकी सेना में थे । महमूद भी एक बड़ी फौज के साथ आया । ४० दिन तक दोनों सेनाएँ अटक के पास छछ के मैदान में एक दूसरे की ताक में पड़ी रहीं । अन्त में गक्खड़ों ने तुर्कों पर हमले शुरू किये । लड़ाई में तुर्कों के पैर उखड़ गये और महमूद पीछे हटने की सोचने लगा । उसी समय आनन्दपाल का हाथी बिगड़ कर भागा और उसकी सेना उसे राजा के हारने का संकेत समझ भाग खड़ी हुई । इस हार ने हिन्दू राज्यों की हिम्मत तोड़ दी, उनपर महमूद का आतंक छा गया । शाहियों के राज्य के पूरब लगा हुआ कीर देश (कांगड़ा) का राज्य था । छछ के विजय के बाद महमूद सीधा उसपर आ टूटा, और वहाँ के नगरकोट के मन्दिर को लूटा ।

इतनी चोटों के बावजूद भी पंजाब का शाहि राज्य टूटा न था । महमूद की एक और चढ़ाई में आनन्दपाल मारा गया । उसके बेटे त्रिलोचनपाल ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया, और अपने दो हजार सैनिक सुलतान की सेवा में रख दिये । महमूद का राज्य पच्छिम तरफ भी कास्पियन तक फैला हुआ था । उधर उसने कास्पियन के पच्छिम गर्जिस्तान (ज्यौर्जिया) तक के प्रदेश जीते । वत्तु पार के बौद्ध तुर्कों से उसका अनेक बार मुकाबला होता था । गज़नी के पड़ोस के अफगानों को वश में रखने के लिए भी उसे सदा सजग रहना पड़ता था । वे अफगान तब तक हिन्दू थे ।

चार बरस तक महमूद और त्रिलोचनपाल के बीच शान्ति रही, किन्तु १०१४ ई० में महमूद ने फिर चढ़ाई की । अटक और जेहलम के बीच पहाड़ी इलाके में तौसी नदी के किनारे लड़ाई हुई । कश्मीर के राजा संग्रामराज ने अपने सेनापति तुंग को त्रिलोचन शाहि की मदद को भेजा । महमूद ने कुछ सेना ताधी पार भेजी, जिसे तुंग ने मार भगाया । शाहियों को अब तक तुर्कों के "छल युद्ध" का तजरबा हो चुका था । त्रिलोचनपाल ने तुंग को समझाया कि एकाएक आगे न बढ़े, किन्तु तुंग अपनी उस जीत के मद में नदी पार कर गया और अन्त में महमूद की बड़ी सेना से हार गया । त्रिलोचन कश्मीर भाग गया और पंजाब महमूद ने दखल कर लिया । कश्मीरी इतिहासलेखकों ने तुंग

की उस मूर्खता को ही पंजाब के पतन का कारण माना है।

§ ४. **महमूद की ठेठ हिन्दुस्तान, कश्मीर और सुराष्ट्र पर चढ़ाइयाँ**—मुलतान और पंजाब दखल कर लेने के बाद महमूद ने और आगे बढ़ना शुरू किया। उसने थानेसर पर धावा बोला। फिर १०१८ ई० में एक लाख सेना के साथ उसने अन्तर्वेदी (ठेठ हिन्दुस्तान) पर चढ़ाई कर मथुरा और कनौज को लूटा। राजा राज्यपाल गंगा पार भाग गया। महमूद की एक और चढ़ाई के बाद उसने कर देना स्वीकार किया। कालंजर के युवराज विद्याधर और उसके ग्वालियर के सामन्त ने इस कायरता के कारण राज्यपाल को मार डाला। तब महमूद ने एक चढाई ग्वालियर और कालंजर पर भी की।

महमूद के पड़ोसी उत्तर भारत के राज्यों में से अब एकमात्र कश्मीर ऐसा बचा था जिसने उससे नीचा न देखा था। १०२१ ई० में महमूद ने कश्मीर पर भी चढाई की, किन्तु लोहर नाम के पहाड़ी गढ़ से उसे हार कर लौटना पडा।

महमूद की अन्तिम चढ़ाई १०२३ ई० में सुराष्ट्र पर हुई। मुलतान से तीस हज़ार ऊँटों पर रसद पानी ले कर रास्ते में जालोर को लूटते हुए वह अणहिलवाड़ा की तरफ बढ़ा। राजा भीम सोलंकी भाग कर कच्छ चला गया। समुद्र के किनारे सोमनाथ पर पहुँच कर महमूद ने नगर और मन्दिर को लूटा और उसका शिव-लिंग* तोड डाला। वह मन्दिर काठ का था और धारा के राजा मुञ्ज परमार के भतीजे राजा भोज ने उसे कुछ ही पहले बनवाया था। महमूद लौटने को था तो उसे खबर मिली कि मालवे का परमारदेव अर्थात् राजा भोज लौटते हुए उसका रास्ता काट कर हमला करेगा। इसलिए महमूद राजस्थान के बजाय कच्छ और सिन्ध के रास्ते लौटा। सिन्ध नदी के नजदीक जाटों ने उसकी सेना को बहुत सताया और बहुत सी लूट रास्ते में छीन ली। उन्हें दंड देने के लिए महमूद ने एक और चढ़ाई की। १०२६ ई० में उसका देहान्त हुआ।

---

* वह लिंग ठोस था; उसके खोखले पेट में रत्न भरे होने की बात पीछे की गप्प है।

§५ महमूद का चरित—महमूद अपने ज़माने का अद्वितीय सेनापति था। मुस्लिम इतिहासलेखकों की एक अरसे तक यह धारणा रही कि काफ़िरों को लूटने में गौरव है। इस कारण उन्होंने महमूद का हाल इस ढंग से लिखा कि उसकी भारतीय चढ़ाइयों का एकमात्र प्रयोजन लूट ही प्रतीत होता है। पर उन चढ़ाइयों के क्रम पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट प्रकट होता है कि उनका मुख्य उद्देश अपने राज्य को क्रमशः बढ़ाना ही था।

जिन आधुनिक इतिहासलेखकों ने केवल मुस्लिम इतिहासों के आधार पर लिखा है और उन इतिहासों से मिलने वाली जानकारी का भारतीय सामग्री से प्राप्य जानकारी के साथ समन्वय नहीं किया, वे भी यह बात देख नहीं सके। 'वहिन्द' को भटिंडा मान लेने से उन्होंने काबुल और पंजाब के शाहि राज्य की स्थिति को बिलकुल गलत समझा। 'भाटिया' को वे पहचान नहीं सके। कीर या कांगड़ा प्रदेश में एक राज्य महमूद से कम से कम दो शताब्दी पहले से चला आता था यह बात धर्मपाल के चक्रायुध विषयक अभिलेख से प्रकट है [७, ४ § [illegible]]। इससे परिचित न होने के कारण उन्हें यह नहीं दिखाई दिया कि छछ के मैदान में शाहि राज्य की कमर तोड़ देने के बाद महमूद के एकाएक कांगड़े पर जा चढ़ने का उद्देश उस अगले पड़ोसी को आतंकित करना था, और इसलिए उनका ध्यान केवल नगरकोट के मन्दिर की लूट की ओर गया। सोमनाथ के रास्ते में वे महमूद द्वारा अजमेर का लूटा जाना भी लिखते हैं, यद्यपि जैसा कि हम आगे [७, ६ §७] देखेंगे अजमेर की स्थापना महमूद के प्रायः पौन शताब्दी बाद हुई। भारतवर्ष के इतिहास को साम्प्रदायिक विभागों में बाँटने तथा किसी युग की समूची इतिहास सामग्री का समन्वय न करके केवल 'मुस्लिम' या 'हिन्दू' सामग्री के आधार पर उस युग का इतिहास लिखने की चेष्टा से इसी प्रकार के गलत चित्र सामने आते हैं।

महमूद की अधिकांश चढ़ाइयाँ पंजाब पर हुईं—पंजाब ने उसका अन्त तक मुकाबला किया। उन चढ़ाइयों का उद्देश धीरे धीरे और स्वाभाविक क्रम से अपने राज्य को बढ़ाना और संघटित करना ही था।

शत्रु को तंग करने और डराने के लिए महमूद लूटमार और क्रूरता

अवश्य करता था। किन्तु वह सफल सेनापति था, इसका यह अर्थ है कि उसकी सेना में पूरा नियमपालन होता था। यह भी समझना चाहिए कि उस युग के भारत के मन्दिरों में उचित से इतनी अधिक सम्पत्ति लगाई जाने लगी थी कि किसी न किसी राजपरिवर्तन में वे लुटे बिना न रह सकते थे। जैसा कि हम देखेंगे [७, ८ § ४] उस समय के कुछ हिन्दू नेताओं का ध्यान भी इस बुराई की ओर गया था। महमूद के अपने

कलमे के संस्कृत अनुवाद सहित महमूद का टंका
[लाहौर संग्र०]

राज्य में प्रजा सुरक्षित थी तथा शासन व्यवस्थित था। अर्थात् लूटमार कमजोर और क्षीण पड़ोसी राज्यों के लिए ही थी।

महमूद बड़ा महत्त्वाकांक्षी था इसमें तो कोई संदेह ही नहीं। उस महत्त्वाकांक्षा को जगाने और तृप्त करने में उसका इस्लाम धर्म सहायक हुआ। इसलिए उसके मन में अपने धर्म के लिए अभिमान होना स्वाभाविक था, तो भी वह कोरा धर्मान्ध नहीं था। उसके दरबार में फ़ारसी का महाकवि फ़िरदौसी था, जिससे उसने ईरान के पुराने अग्निपूजक राजाओं की कीर्ति शाहनामा नामक ग्रन्थ में लिखवा कर अपने को उनका वंशज बताया। अल्बरूनी नाम का एक और विद्वान् उसके यहाँ था, जिसने पेशावर और मुलतान के पंडितों से संस्कृत पढ़ी और भारतवर्ष के विषय में एक बड़ा ग्रन्थ लिखा। महमूद ने अफगानिस्तान के हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान जरूर बनाया, परन्तु वैसा किये बिना उसका राज्य दृढ़ न हो सकता था। क्योंकि वह हिन्दू अफगानों के देश में बिलकुल विदेशी था, और अपनी प्रजा से किसी बात में एकता पैदा करना उसके लिए आवश्यक था। उसकी सेना में बहुत से हिन्दू सैनिक और सरदार भी थे, जो पच्छिम की लड़ाइयों में बड़ी वीरता दिखाते रहे।

मथुरा के मन्दिरों की कारीगरी देख कर महमूद चकित हो गया, और

बस्त प बुस्त, अफगानिस्तान में महमूद के समय की मेहराब [फादर हेरास के सौजन्य से]

भारत से कारीगर ले जा कर उसने गजनी में अनेक शानदार मसजिदें और महल बनवाये। इसीलिए के हृदि म प्रायः तालों के नमूने पर उसने अफगानिस्तान में ताल बनवाये। उसके चांदी के सिक्कों पर यह संस्कृत लेख पाया जाता है—

गज़नी मे महमूद के बनवाये एक ताल की पाल;—बाँये तरफ की नई पाल अमीर हबीबुर्रहमान की बनवाई हुई है।
[फादर हेरस के सौजन्य से]

अव्यक्तमेकं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद अयं टंको महमूदपुरे घटे हतो जिनायन-संवत् ।

अर्थात्—"एक अव्यक्त (ला इलाह इल्लिलाह), मुहम्मद अवतार (मुहम्मद रसूल इल्लाह), राजा महमूद । यह टंका महमूदपुर (लाहौर) की टकसाल में पीटा गया, जिन (हजरत) के अयन (भागने) का संवत् ।"

§६. राजराज चोळ—उत्तर और पच्छिम भारत को जब गज़नी के तुर्क सुलतानों ने झकझोरा तभी दक्खिन और पूरब को ताजोर के तमिळ राजाओं ने। परान्तक चोळ [७, ४ §१३] के वंश में राजराज चोळ ९८५ ई० में ताजोर की गद्दी पर बैठा। पाण्ड्य और केरल को उसने वश में किया तथा उस प्रसंग में केरल के समुद्री बेड़े को पूरी तरह हराया। वेंगी के चालुक्यों,
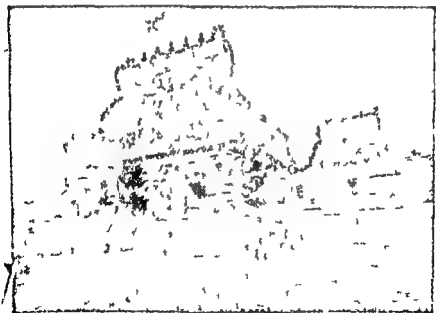
राजराज का बनवाया हुआ ...श्वर मन्दिर, ताजोर—भीतरी गोपुर का दृश्य [...० पु० वि०]

कलिंग और कोडुगु ('कुर्ग') पर उसने आधिपत्य स्थापित किया। कर्णाटक पर चढ़ाई कर तैलप चालुक्य के बेटे सत्याश्रय को चार वर्ष के युद्ध के बाद

बुरी तरह हराया। स्थल और जल-सेना से उसने सिंहल को भी जीता, और लकदिव और मालदिव को अपने राज्य में मिला लिया। तांजोर में उसका बनवाया विशाल मन्दिर अब तक मौजूद है। उसके राज्य का शासन बहुत ही व्यवस्थित था। प्रत्येक ग्राम की अपनी पचायत थी, और उन पंचायतों के प्रतिनिधि तांजोर के मन्दिर में इकट्ठे होते थे।

§७. **राजेन्द्र चोळ**—राजराज का उत्तराधिकारी उसका बेटा राजेन्द्र हुआ (१०१२ ई०)। युवराज रूप में उसने अपने पिता के अनेक युद्धों और कार्यों मे योग दिया था। अपने प्रशासन मे उसने चोळ साम्राज्य की सीमाओं को दूर तक बढ़ाया। चालुक्य राज्य को उसके पिता के समय ही हराया जा चुका था, उसने और आगे बंगाल तक चढ़ाई की। आन्ध्र के तट से बढ़ते हुए उड्रविषय अर्थात् उडीसा को ले कर कोशल (छत्तीसगढ़) को जीता। वहाँ से फिर दण्डभुक्ति (मेदिनीपुर या मिदनापुर) होते हुए दक्खिन राढ देश अर्थात् आजकल के हावडा हुगली जिलों को लिया। फिर गगा का मुहाना पार कर वंग अर्थात् पूर्वी बंगाल तक जीता, और वहाँ से वापिस आ कर पूर्वी भारत के राजा महीपाल [७, ४ §१५] को लडाई मे भगा कर उत्तरी राढ—अर्थात् आजकल के बर्दवान, बीरभूम, मुर्शिदाबाद प्रदेश— को जीता। महीपाल के पक्ष के लेखो मे लिखा है कि उसने कर्णाटों को हराया। जान पडता है राजेन्द्र महीपाल को पूरी तरह हरा नही सका। यह निश्चित है कि राजेन्द्र चोळ ने गौड राजधानी को लूटा नही। महमूद की तुर्क फौज जब गजनी से सोमनाथ चढ़ रही थी, तभी राजेन्द्र चोळ की तमिळ-कर्णाट सेना तांजोर से बंगाल पर टूट रही थी। गंगा तक विजय करने के कारण वह गंगैकोंड कहलाया, और अपनी उस विजय-यात्रा की याद मे उसने गंगैकोंडचोळपुरम् की स्थापना की।

इसके बाद राजेन्द्र ने अपने जंगी बेड़े से "श्रीविजय के राजा और कटाह (का स्थलग्रीवा और मलाया प्रायद्वीप) के शासक" शैलेन्द्र राजा [७, २ §११] संग्रामविजयोत्तुंगवर्मा पर चढ़ाई कर उसके समूचे राज्य को जीत लिया।

महमूद के प्रायः पन्द्रह बरस पीछे राजेन्द्र का देहान्त हुआ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजेन्द्र की सेना को महीपाल के लेखों

में कर्णाट कहा है। जान पड़ता है उसकी सेना मुख्यतः कर्णाट सिपाहियों की थी जिनकी तब भारत भर में ख्याति थी। अल्बरूनी ने भी पेशावर-पंजाब में रहते हुए उनके विषय में सुना था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ महमूद गजनवी के समकालीन भारत के किस किस प्रदेश में कौन कौन से मुख्य राजा थे?

२ महमूद ने पेशावर पंजाब के राज्य को किस क्रम से गिराया?

३ महमूद जब सोमनाथ पर चढ़ाई कर रहा था, उस समय भारत के किस और प्रान्त पर कौन सा राजा चढ़ाई कर रहा था?

४ लग० ९८५ से १०४० ई० तक चोल साम्राज्य का विस्तार किस प्रकार हुआ?

५ भारत में महमूद द्वारा चलाये सिक्कों की क्या विशेष बात आप जानते हैं?

६ भारत की किस चढ़ाई में महमूद विफल लौटा?

७ इनपर टिप्पणी लिखिए—अल्बरूनी, भाटी राज्य, तुर्कों का छल युद्ध।

अध्याय ६

पहले मध्य काल के अन्तिम राज्य

(लग० १००६–११९४ ई०)

§ १ **महमूद के वंशज**—महमूद के समय में ही गुज्ज नाम की नई तुर्क जातियाँ वक्षु के इस पार आईं। उनके एक राजवंश का नाम सेल्जुक था। सेल्जुकों ने महमूद के पीछे सारे ईरान और पच्छिमी एशिया पर अधिकार कर लिया। अफगानिस्तान, पंजाब और सिन्ध में महमूद के वंशजों का अधिकार बचा रहा। महमूद के बेटे मसऊद (१०३०–४० ई०) के समय तिलक नाम का हिंदू अफगान पंजाब का शासक रहा। पंजाब से तुर्कों के कई धावे कनौज साम्राज्य और राजस्थान पर होते रहे। कनौज के राजा अपनी प्रजा से तुरुष्कदण्ड नाम का कर उगाह कर गजनवी तुर्कों के पास भेजते रहे।

§ २. भोज, गांगेय और कर्ण—(१०१०-१०७३ ई०)—भारतवर्ष के ठीक मध्य के केवल दो राज्य ऐसे थे जो तुर्कों और तमिळों की चोटों से बच गये थे—एक मालवा, दूसरा चेदि। महमूद और राजेन्द्र के बाद ये दोनों भारत मे मुख्य हो गये। मालवे के राजा भोज ने लग० १००६ से १०५४ ई० तक राज्य किया। उसके सुशासन के कारण उसका नाम आज भी भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। राज पाने के कुछ ही बरस बाद भोज ने अपने ताऊ मुंज की मृत्यु का बदला लेते हुए महाराष्ट्र के चालुक्य राज्य से कोंकण आदि प्रदेश जीत लिये। राजस्थान का बडा अंश उसने अधीन किया और गुजरात पर भी प्रभाव जमाया।

भोज का समकालीन चेदि का राजा गांगेयदेव (लग० १०१५-४१ ई०) और उसका बेटा कर्ण (लग० १०४१-७३ ई०) हुआ। कन्नौज और जझौती के निःशक्त हो जाने के कारण गांगेय ने प्रयाग और काशी पर उस समय अधिकार कर लिया था जब वे राज्य महमूद के साथ जीने-मरने की कशमकश में फँसे थे। फिर कर्ण ने राज पाते ही मगध पर चढ़ाई की। राजा महीपाल के बेटे नयपाल (१०२६-४१ ई०) और कर्ण के बीच पड़ कर दीपंकर श्रीज्ञान नाम के बौद्ध आचार्य ने शान्ति करा दी।

कर्ण अपने समय के भारत मे सब से प्रतापी राजा था। हिमालय में कीर (नगरकोट) राज्य तक, जो तब महमूद के वंशजो के अधीन था, उसने चढाइयाँ कीं और विजय किये। भोज ने और उसने तुर्कों से उत्तर हिन्दुस्तान को बहुत कुछ उबारा। थानेसर, हाँसी और नगरकोट के प्रदेश १०४४ ई० तक स्वतन्त्र हो गये। इसी समय अनंगपाल तोमर ने प्रकटतः इन दोनो राजाओ मे से किसी से प्रोत्साहना पा कर जमना के पच्छिम हरियाना या कुरुक्षेत्र प्रदेश मे अपना राज्य स्थापित किया, और राजस्थान की पहाडियो की परम्परा जहाँ जमना के पास आ कर टूटती है उस महत्त्वपूर्ण नाके पर पंजाब से पूरब और दक्खिन के रास्तो पर चौकसी रखने के लिए दिल्ली नगरी की स्थापना की।

त्रिपुरी के अतिरिक्त काशी को भी कर्ण ने अपनी राजधानी बनाया। लग० १०५४ ई० में उसने गुजरात के राजा भीम सोलंकी से मिल कर धारा

नगरी पर चढाई की। तभी भोज की मृत्यु हुई।

§३ कीर्तिवर्मा चन्देल और चन्द्र गाहड्वाल—कुछ बरस बाद जझौती के कीर्तिवर्मा चन्देल (लग० १०५४–१०६६ ई०) ने चेदि के इस सर्व विजयी कर्ण को परास्त किया। तब भोज के वंशज उदयादित्य ने भी मालवा राज्य का पुनरुद्धार किया (लग० १०७५ ई०)। १०८० ई० में चन्द्रदेव गाहड्वाल (गहरवार) ने कन्नौज में एक नया मजबूत राज्य स्थापित कर अन्तर्वेदी को तुर्क धावों से सुरक्षित किया। उसने कर्ण कलचुरि के उत्तराधिकारी से प्रयाग और बनारस भी वापिस ले लिये। चन्द्रदेव और उसके उत्तराधिकारी एक अरसे तक अपनी प्रजा से तुरुष्कदण्ड नाम का चला आता कर उगाहते रहे, पर वे अब कोई कर तुर्कों को देते हों ऐसा प्रतीत नहा होता।

§४ कुलोत्तुंग चोळ और अनन्तवर्मा चोळगंग—उधर राजेन्द्र चोळ का बेटा राजाधिराज चोळ तुंगभद्रा के किनारे कोप्पम् की लड़ाई में सोमेश्वर (१म) चालुक्य के हाथ मारा गया (१०५२ ई०)। उसी रणभूमि में उसके भाइ राजेन्द्र परकेसरी ने मुकुट पहना और सोमेश्वर को हरा दिया। यों इस युद्ध में दोनों पक्षों के समान रहने से तुंगभद्रा नदी चोळ और चालुक्य राज्यों की सीमा मानी गई। १०६८ ई० से चोळ राजाओं ने वेंगी पर आधिपत्य छोड़ दिया। १०७४ ई० में चोळ वंश में कोई पुरुष न रहा, तब राजेन्द्र गंगैकोंड का एक दोहता, जो वेंगी का राजकुमार था, तांजोर की गद्दी पर कुलोत्तुंग चोळ नाम से बैठा, जिससे वेंगी का चालुक्य और तांजोर का चोळ राज्य मिल कर एक हो गये। कुलोत्तुंग योग्य और शान्त राजा था। उसने १०८६ ई० में अपने समूचे शासित देश में मालगुजारी के लिए जमीन की पैमाइश कराई।

कुलोत्तुंग के समय उड़ीसा में भी राजेन्द्र गंगैकोंड का एक दोहता अनन्तवर्मा राज करता था। वह गंग वंश का था, पर चोळ माता का बेटा होने से चोळगंग कहलाने लगा। उसने ७१ वर्ष (१०७६–११४७ ई०) राज किया। पुरी का जगन्नाथ मन्दिर उसी के समय बना।

§५. **विक्रमांक चालुक्य, विजयसेन और नान्यदेव**—पूर्वी भारत में नयपाल के बाद तीन कमजोर राजाओं ने पन्द्रह बरस राज किया, फिर लग० १०५७ से लग० ११०२ ई० तक रामपाल ने। रामपाल के प्रशासन में मगध-गौड के उस राज्य में फिर कुछ जान पड़ी और उसने असम और नेपाल को भी जीता।

उधर कर्णाटक के नये राज्य में चोळ राजाओं से पिटने के बावजूद भी काफी जान थी। ११वीं शताब्दी के मध्य से वह फिर चमक उठा। सोमेश्वर का बेटा विक्रमांक* चालुक्य अपने पिता से भी अधिक प्रतापी निकला (१०७६–११२५ ई०)।

इन राजाओं के समय कर्णाटक की तूती फिर सारे भारत में बोलने लगी। १०वीं शताब्दी से ही कर्णाट सिपाही भारत भर में प्रसिद्ध थे। जैसा कि पीछे कह चुके हैं, अल्बरूनी ने पंजाब में ही उनकी ख्याति सुनी थी। मगध-बंगाल के पाल राजाओं के लेखों से प्रकट हुआ है कि उनकी सेना में भी कर्णाट सैनिकों की काफी संख्या रहती थी। लग० १०८० ई० में विजयसेन और नान्यदेव नामक दो कर्णाट सैनिकों ने राजा रामपाल से बंगाल और तिरहुत के अंश छीन कर दो नये राज्य स्थापित किये। विजयसेन ने पाल राजा से मगध भी लेना चाहा, और तिरहुत पर भी आधिपत्य जमाना चाहा, पर उन दोनों राज्यों ने चन्द्र गाहडवाल से रक्षा पाई।

कर्णाटक का तब इतना प्रभाव था कि सुदूर कश्मीर में विक्रमांक चालुक्य के समकालीन राजा हर्ष (१०८९–११०१ ई०) ने अपने राज्य में कर्णाटक का टंका (सिक्का) चलाया और दरबार में कर्णाटक की चाल-ढाल की नकल की।

§६. **सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल**—११ वीं शताब्दी

---

*विक्रमांक चालुक्य को विक्रमादित्य चालुक्य भी कहते हैं। वादामी के चालुक्य वंश में दो विक्रमादित्य हुए थे [७,१§११; ७,३§११] कल्याणी में उस वंश के फिर से स्थापित होने से पहले दो और विक्रमादित्य हुए। उस हिसाब से यह विक्रमादित्य छठा है। पर इसे विक्रमांक ही कहा जाय तो अधिक सुविधा रहेगी।

के अन्त में अणहिलवाड़ा का चालुक्य राज्य भी फिर सँभल गया। वहाँ सिद्धराज जयसिंह (१०९३–११४२ ई०) और कुमारपाल (११४२–७३ ई०) नाम के दो प्रतापी और योग्य राजा हुए। बारह बरस लड़ कर सिद्धराज ने मालवे का राज्य जीत लिया। सोमनाथ के मन्दिर को इन राजाओं ने अब पत्थर का बनवा दिया।

§ ७ अजमेर के चौहान—सिद्धराज और कुमारपाल के पड़ोसी और समकालीन चौहान राजा अजयराज और आना थे। अजयराज ने अजमेर बसा कर साँभर के बजाय उसे राजधानी बनाया। उसके बेटे आना को पहले तो सिद्धराज ने हराया, पर पीछे अपनी लड़की कांचनदेवी ब्याह दी। आना की पहली रानी से विग्रहराज उर्फ बीसलदेव पैदा हुआ, और कांचनदेवी से सोमेश्वर। बीसलदेव ने लग० ११५० ई० में हांसी और दिल्ली को जीत कर अजमेर राज्य में मिला लिया और पंजाब के तुर्कों को पीछे ढकेला। राजस्थान का बड़ा भाग उसके अधीन था। ११६३ ई० में दिल्ली की अशोक वाली लाट पर, जो तब अम्बाला के उत्तर थी, उसने एक लेख खुदवा कर अपने वंशजों को यह सन्देश दिया कि "विन्ध्याचल से हिमालय तक राजा बीसल ने विजय किया, म्लेच्छों (विदेशियों) को उखाड़ कर आर्यावर्त्त को फिर से यथार्थ आर्यावर्त्त बनाया। चौहान राजा विग्रहराज अब अपनी सन्तान से कहता है कि इतना तो हमने किया, बाकी पूरा करने का उद्योग तुम मत छोड़ना।"

बीसलदेव के पीछे सोमेश्वर अजमेर की गद्दी पर बैठा। उसका विवाह चेदि की राजकुमारी कर्पूरदेवी से हुआ था। उनका पुत्र पृथ्वीराज चौहान हुआ (११७९–९२ ई०)। पृथ्वीराज वीर राजा था, पर उसने अपने ताऊ बीसलदेव की सी राजनीतिक दूरदर्शिता न दिखाई। बजाय इसके कि वह बीसलदेव की वसीयत पर ध्यान दे कर पंजाब की तरफ अपनी वीरता आजमाता, उसने पूरब की तरफ उसे बरबाद किया। महमूद के समय जझौती का राज्य कन्नौज से भी अधिक मजबूत था। जमना के दक्खिन ग्वालियर तक के प्रदेश उसके अधीन थे। फिर जझौती के राजा कीर्तिवर्मा ने ही भारत विजयी कर्ण को हराया था। पृथ्वीराज ने उसके वंशज परमर्दी चन्देल पर चढ़ाई कर धसान

नदी तक के प्रदेश उससे छीन लिये (११८२ ई०)। उसी समय पृथ्वीराज का एक प्रबल शत्रु पंजाब में पैर जमा रहा था।

§ ८. **चौथा कन्नौज साम्राज्य**—कन्नौज में चन्द्र गाहड्वाल का पोता गोविन्दचन्द्र (१११४—५४ ई०), उसका पुत्र विजयचन्द्र, और विजयचन्द्र का पुत्र जयच्चन्द्र भी प्रबल और योग्य राजा हुए। कन्नौज के गौरव को उन्होंने फिर से स्थापित किया। वे बनारस में रहते और इस कारण काशी के राजा भी कहलाते थे। गोविन्दचन्द्र के समय चेदि के राजा ने बंगाल के राजा विजयसेन के पोते लक्ष्मणसेन (१११६-११७० ई०) से मिल कर बनारस वापिस लेने की कोशिश की। पर गोविन्दचन्द्र ने उन दोनों को परास्त किया और लक्ष्मणसेन को हरा कर मगध भी ले लिया। पीछे, जब बीसलदेव चौहान दिल्ली और हाँसी को जीत रहा था, लगभग तभी गोविन्दचन्द्र ने मुंगेर तक अपना अधिकार कर लिया (११४५ ई०)। उसके बाद १२ वीं शताब्दी के अन्त तक मगध और अंग गाहड्वालों के अधीन रहे। यों कन्नौज के चौथे सम्राट् वंश के अधीन मेरठ से भागलपुर तक का इलाका रहा। जयचन्द्र के समय प्रजा से तुरुष्कदण्ड नाम का कर लेना बन्द कर दिया गया।

§ ९. **धोरसमुद्र और ओरंगल राज्य**—(११११ ई० से)—कल्याणी का विक्रमाक चालुक्य यद्यपि प्रबल राजा प्रसिद्ध था, तो भी उसके पिछले समय में उसकी सीमाओं के दो सामन्त सिर उठाने लगे। ११११ ई० में दक्खिनी कर्णाटक में यादवों का एक वंश प्रबल हो उठा। उस वंश का छेड़ का नाम होयशल था, और उसकी राजधानी धोरसमुद्र। १११७ ई० में चालुक्य राज्य की पूरबी सीमा पर उत्तरी तेलंगाना में काकतीय वंश के सामन्तों ने सिर उठाया। उनकी राजधानी ओरंगल थी। चालुक्य राज्य को ओरंगल ने उड़ीसा से और धोरसमुद्र ने चोळ राज्य से अलग कर दिया।

§ १०. **देवगिरि के यादव** (११८६ ई० से)—फिर ११५६ ई० के बाद कल्याणी का राज्य बिलकुल ढीला पड़ने लगा। उसके किनारों के प्रदेश धोरसमुद्र के यादवों और ओरंगल के काकतीयों ने दबा लिये थे। बाकी ठेठ महाराष्ट्र बचा, उसे भी ११८६ ई० में उत्तरी महाराष्ट्र के भिल्लम नामक

एक यादव सरदार ने छीन लिया, और देवगिरि में अपनी राजधानी स्थापित की।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ राजा भोज और सम्राट् मिहिरभोज ने कब कब कहाँ कहाँ राज किया? इतिहास में दोनों का विशेष कार्य क्या है?

२ भोज के समकालीन चेदि के राजा कौन थे और उन्होंने क्या विशेष कार्य किया?

३ १०२५ से १०८० ई० तक भारत के राजनीतिक इतिहास की मुख्य घटनाएँ क्या हुईं?

४ दिल्ली की स्थापना कब किन अवस्थाओं में हुई?

५ बंगाल बिहार में सेन और कर्णाट राज्य कब कैसे स्थापित हुए?

६ निम्नलिखित का परिचय दीजिए—

कुलोत्तुंग चोळ, अनन्तवर्मा चोळगंग, कुमारपाल चालुक्य, गोविन्दचन्द्र गाहड्वाल।

७ विक्रमाङ्क चालुक्य कब कहाँ का राजा था? उसके समकालीन भारत के अन्य प्रान्तों में बड़े बड़े राजा कौन थे?

८ वीसलदेव चौहान ने कब कहाँ राज्य किया? उसका विशेष कार्य क्या है? पृथ्वीराज चौहान का उससे क्या सम्बन्ध था?

९ पृथ्वीराज चौहान के माता पिता का नाम लिखिए। पृथ्वीराज और वीसलदेव के कार्य की तुलना कीजिए।

अध्याय ७

पहले मध्य काल में बृहत्तर भारत

§१ **चीनहिन्द का ह्रास और अन्त**—हमने देखा है [५,४§१, ७,२§३] कि चीनहिन्द के उत्तर पूरबी छोर का भारतीय राज्य जो आधुनिक तुरफान के स्थान पर था, गुप्त युग के अन्त में अथवा मध्य काल के आरम्भ में हूणों या तुर्कों की चोटों से टूट गया था। वहाँ के बाकी सब भारतीय राज्य हूणों-तुर्कों से संघर्ष करते हुए बने रहे। ६३१ से ६५६ ई० तक चीन द्वारा मध्य एशिया से तुर्कों के उखाड़ दिये जाने पर वे चीन साम्राज्य की छत्रच्छाया में फूलते फलते रहे। किन्तु उत्तरपूरब की तुर्क बाढ रोकी ही गई थी कि दक्खिन-

पच्छिम से अरब बाढ़ मध्य एशिया पर टकराने लगी । एक शताब्दी तक चीन और भारत की शक्ति उसके लिए बाँध का काम करती रही । अन्त में ७५१ ई० में वह बाँध टूट गया और अरबों के साथ तुर्क भी मध्य एशिया में फिर घुस आये । ७८० ई० में हजार बरस पुराना खोतन राज्य गिर पड़ा । चीन-हिंद के बाकी भारतीय उपनिवेश भी प्रायः दो शताब्दियों तक और संघर्ष करने के बाद मिट गये । १००० ई० के बाद उनमें इस्लाम फैलता गया । वहाँ की आर्य जनता का खून तुर्कों में मिलता गया और उसकी सभ्यता और संस्कृति को तुर्कों ने बहुत कुछ अपना लिया ।

§ २. **चम्पा की अवनति**—गुप्त युग में परले हिन्द के चम्पा राज्य की राजधानी उसके अमरावती प्रान्त में इन्द्रपुर थी, जहाँ तब गंगराज वंश राज करता था । ७५० ई० में, अर्थात् प्रायः उसी समय जब कि भारत में पाल, गंग, प्रतिहार और राष्ट्रकूट वंशों का उदय हुआ, चम्पा में भी राजशक्ति एक दूसरे वंश के हाथ में चली गई जिसने दक्खिनी प्रान्त पाण्डुरंग में वीरपुर को राजधानी बनाया । इस वंश ने ८६० ई० तक राज किया जिसके बाद अराजकता छा गई । ८७५ ई० में वहाँ की प्रजा ने लक्ष्मीन्द्र उर्फ इन्द्रवर्मा नामक व्यक्ति को अपना राजा चुना, जिससे एक नये राजवंश का आरम्भ हुआ । इसकी राजधानी फिर इन्द्रपुर रही ।

चम्पा की उत्तरी सीमा पर तोङकिङ प्रदेश में आनामी लोग रहते थे जो कई शताब्दी पहले मध्य चीन तट के चेकियाङ प्रान्त से वहाँ आये थे । ९८० ई० में वे चीन से स्वतन्त्र हुए और तभी से चम्पा पर धावे मारने लगे । १००० ई० में चम्पा के राजा सिंहवर्मा को आनामियों के धावों के कारण अपनी राजधानी अमरावती के दक्खिन के विजय प्रान्त में लानी पड़ी । १०६९ में राजा रुद्रवर्मा ३य ने उत्तरी प्रान्त आनामियों को दे दिये ।

आनामियों द्वारा चम्पा के दबाये जाने की तुलना गज़नवी तुर्कों द्वारा काबुल-पंजाब के भारतीय राज्य के दबाये जाने से की जा सकती है । उस राज्य से भी ९८६ ई० में सुबुक्‌तगीन ने पहलेपहल कुछ किले छीने थे, और १००१ ई० में उसे अपनी राजधानी ओहिन्द से डेरा हटानी पड़ी थी। यों भारतीय राज्य-

सीमा पच्छिमी और पूरबी दोनों किनारों से एक साथ पीछे ठेली जा रही थी।

§ ३ **कम्बुज का उत्कर्ष-युग**—कम्बुज राष्ट्र के उदय तथा उसकी राजधानी ईशानपुर का उल्लेख पीछे हो चुका है [७, २§१०]। आठवीं शताब्दी के आरम्भ में उस राज्य के दो टुकड़े हो गये, समुद्रतट का प्रदेश दक्खिनी राज्य में रहा और भीतरी स्थल प्रदेश उत्तरी राज्य में। समुद्रतट का
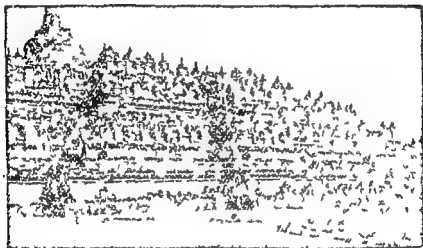
बोरोबुदुर मंदिर, जावा—८वीं शताब्दी ई०

कम्बुज लग० ७७५ ई० में श्रीविजय [६,४§३, ७,२§११] के आधिपत्य में चला गया। फिर ८०२ ई० में श्रीविजय के अधीन यवद्वीप (जावा) से जयवर्मा ने आकर कम्बुज के दोनों खंडों को मिलाकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। नौवीं शताब्दी के अन्त में राजा यशोवर्मा (८८६–६०६ ई०) ने नई राजधानी यशोधरपुर की स्थापना की जो अब अंकोर थोम कहलाती है। उसके उत्तराधिकारियों ने भी विशाल भवनों और मन्दिरों की रचना जारी रक्खी। बारहवीं शताब्दी में आजकल का स्याम देश समूचा कम्बुज के अन्तर्गत था। उसके दक्खिनी प्रान्त की राजधानी लवपुरी (= आधुनिक लोपबुरी) थी, तथा उत्तरी प्रान्त सुखोदय कहलाता था। उस शताब्दी के अन्त में कम्बुज के राजा जयवर्मा ७म (११८१–१२०१ ई०) ने समूचे देश में "आरोग्यशालाएँ" स्थापित
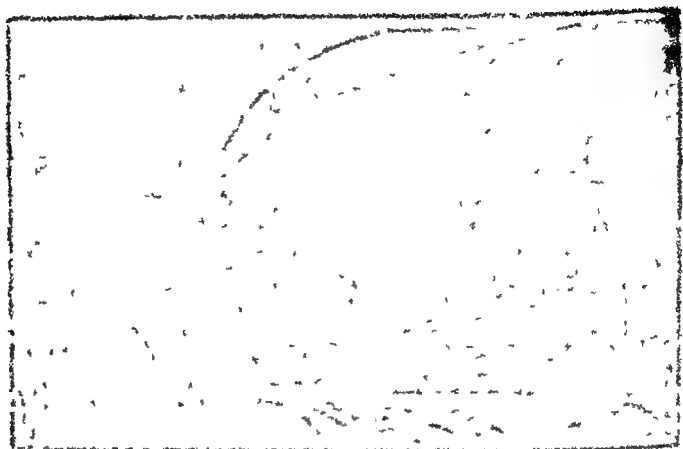
१४. श्रीविजय का साम्राज्य — [illegible]
में हुआ था। इस युग में [illegible] सातवीं शताब्दी
में मलाया प्रायद्वीप और [illegible] ७७५ ई० तक
उसका दक्षिणी [illegible] हो गया। नौवीं शताब्दी के मध्य में
पूर्वी जावा अलग हो गया, पर दसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में [illegible]
अर्थात् मलाया प्रायद्वीप श्रीविजय साम्राज्य में सम्मिलित था। ११वीं शताब्दी
के आरम्भ में जैसा कि हम देख चुके हैं, यहाँ के राजा संग्रामविजयोत्तुंगवर्मा
ने राजेन्द्र चोळ ने उसका राज्य छीन लिया। १०६८ ई० में चोलों ने श्रीविजय
पर आधिपत्य छोड़ दिया। उसके बाद की डेढ़ शताब्दी में श्रीविजय का साम्राज्य
अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया (दे० नकशा १६)। १२२५ ई० में
श्रीविजय के अधीन १५ राज्य थे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ चीन हिन्द में तुर्कों और अरबों का प्रवेश कब और कैसे हुआ ?
२ चीन हिन्द के भारतीय उपनिवेशों में इस्लाम कब से फैलने लगा ?
३ चम्पा राज्य पर आनामियों ने कब धावे किये और उनका क्या परिणाम हुआ ?
न प्रश्नों में चम्पा की तुलना काबुल पंजाब के शाहि राज्य से कैसे होती है ?
४ ८वीं से १२वीं शताब्दी तक कम्बुज राज्य के उत्कर्ष का इतिहास लिखिए।
५ १३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्रीविजय साम्राज्य कहाँ तक फैला था ?
६ इनपर टिप्पणी लिखिए—
लोपबुरी, सुखोदय, अङ्कोरथोम, कगा॰, जयवर्मा ७ म।

अध्याय ८

पहले मध्य काल का भारतीय जीवन

§१ **राजनीतिक और आर्थिक जीवन**—गुप्त युग में भारतीय राज्यों के विस्तार की सीमाएँ जहाँ तक पहुँची थीं, इस युग में उन्हें वहाँ से किस प्रकार क्रमशः पीछे हटना पड़ा सो हमने देखा है। इसके साथ ही इस युग के भारतीय अपने राजनीतिक कर्त्तव्यों और अधिकारों के लिए वैसे सजग नहीं रहे, जैसे उनके पुरखा होते थे। राजकीय मामलों की तरफ प्रजा कुछ उपेक्षा करने लगी। मध्य काल में किसी गण-राष्ट्र का नाम भी नहीं सुना जाता।

यह शिथिलता जनता के केवल राजनीतिक जीवन में नहीं, प्रत्युत सामाजिक सांस्कृतिक सभी प्रकार के जीवन और विचार में प्रकट होने लगी। इस युग में प्रगति बन्द सी हो गई, तो भी पतन बहुत नहीं हुआ। राज्यों का शासन नियमित और उदार रहा, और बहुत कुछ गुप्त शासन के ढाँचे पर चलता रहा। गाँवों की पञ्चायतें ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी तक खूब सुसङ्गठित रहीं। चोळ राजाओं के अधीन प्रत्येक गाँव में एक बड़ी सभा होती, जिसके अलग अलग महकमों के लिए पाँच पाँच आदमियों के वर्ग होते थे। उन सभाओं और वर्गों के चुनाव के नियम बारीकी से निश्चित किये गये थे। गाँव

की खेती, सिंचाई, मन्दिरों की देखरेख, कर की वसूली, अपराधियों को पकड़ना
सब पंचायत का काम था । मन्दिर उन पंचायतों के सभा-भवन का काम देते
थे । साथ ही वे शिक्षा और पूजा के तथा कला की अनुभूति द्वारा मनो[illegible]
के भी केन्द्र थे । चोळ राज्य की शासन-पद्धति इन ग्राम-पंचायतों पर निर्भ[र]
थी । दूसरे राज्यों मे भी पचायतों का बहुत प्रभाव था ।

इस युग तक भी राजा देश की भूमि का मालिक न होता था । कश्मी[र]
के इतिहास की एक मनोरंजक घटना इस प्रश्न पर प्रकाश डालती है । राज[ा]
चन्द्रापीड ने अपने प्रशासन में एक मन्दिर बनवाने की आज्ञा दी । कुछ सम[य]
बाद राज्याधिकारियों ने उसे सूचना दी कि मन्दिर की नींव पड़ चुकी है, प[र]
एक चमार की कुटिया बीच में पड़ती है और वह उस जमीन को नहीं देता
राजा उन अधिकारियों से नाराज हुआ कि उन्होंने चमार से पूछे बिना नीं[व]
क्यों डाली और कहा कि अब दूसरी जगह इमारत शुरू करो । मन्त्रि-परि[षद्]
ने यत्न करके चमार को राजा के सामने बुलवाया । तब राजा ने उससे पू[छा]
"क्यों हमारे पुण्यकार्य में विघ्न डालते हो ? अपनी कुटिया के बदले में उस[से]
कीमती जमीन या घर क्यों नहीं ले लेते ?" चमार ने कहा, "राजन्, आप[के]
लिए जैसे आपका महल है, वैसे मेरे लिए वह कुटिया है जिसकी दीवार में फू[टे]
घड़ों के मुँह लगा कर झरोखे बनाये गये हैं । वह मेरी माँ के समान जन[्म]
से मेरे सुख-दुःख की साक्षी है; उसका तोड़ा जाना मैं देख नहीं सकता । हाँ
यदि मेरे घर आ कर आप मुझसे उसे माँगें तो मैं सदाचार के अनुरोध से उ[से]
दे दूँगा।" राजा चन्द्रापीड ने तब उस चमार के झोंपड़े पर जा कर भिक्षा माँगी
और उस चमार ने दान का पुण्य पाया !

§२. बौद्ध सम्प्रदाय की अवनति, वज्रयान—हर्षवर्धन के [समय]
बौद्ध सम्प्रदाय उन्नति पर था, तो भी उसमें अवनति का बीज पड़ चुका था
कम से कम सिन्धु प्रान्त अर्थात् सिन्ध नदी के बिचले काँठे—मुलतान के पच्छिम
के प्रदेश—मे वह अवनति तभी स्पष्ट दिखाई देने लगी थी । य्वान्च्वाङ का
कहना है कि वहाँ के भिक्खु-भिक्खुनी निठल्ले, कर्तव्य-विमुख और पतित थे ।
सिन्ध पर जब अरब आक्रमण हुआ तब वहाँ भी श्रमणों का निकम्मापन स्प[ष्ट]

प्रकट हुआ। दूसरे प्रान्तों की हालत अच्छी थी, पर वहाँ भी यह बुरी प्रवृत्ति शुरू हो चुकी थी। महायान में से एक नया पन्थ वज्रयान निकल आया। वह बौद्ध वाममार्ग छठी शताब्दी ई० में आन्ध्र देश के श्रीपर्वत में पहलेपहल प्रकट हुआ। महायान बुद्ध को जनता के उद्धारक रूप में देखता था। वज्रयान ने उसे "वज्रगुरु" बना दिया। वज्रगुरु वे उस आदर्श पुरुष को कहते थे, जिसे अलौकिक "सिद्धियाँ" प्राप्त हों। उन सिद्धियों को पाने के लिए अनेक गुह्य साधनाएँ करनी पड़ती। मन्त्रों अर्थात् गोप्य वाक्यों के बार बार दोहराने से भी वे सिद्धियाँ होनी मानी जातीं, और वह मार्ग मन्त्रयान कहलाता। आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक वज्रयान के ८४ सिद्ध हुए। गोरखनाथ उन्हीं ८४ में से एक था। ७४७ ई० में नालन्दा महाविहार का आचार्य शान्तरक्षित निमन्त्रण पाकर तिब्बत गया। उसने वहाँ उड्डीयान प्रदेश (स्वात नदी की दून) [७,२६५] से पद्मसम्भव नामक सिद्ध को भी बुलवाया। पद्मसम्भव को तिब्बती अब भी अपना गुरु मानते हैं। फिर १०४०-४२ ई० में विक्रमशिला विहार से जो आचार्य दीपकर श्रीज्ञान उर्फ अतिशा तिब्बत गया, वह तो स्वयं वज्रयानी था।

§३ शंकराचार्य—बौद्ध सम्प्रदाय की अवनति का मुख्य कारण उसके अंदर की ये नई प्रवृत्तियाँ थीं। वैदिक और पौराणिक सम्प्रदायों का मुकाबला भी उसके साथ जारी था। सातवीं शताब्दी में कुमारिल नामक विद्वान् ने फिर से वैदिक यज्ञों को चलाना चाहा। फिर आठवीं शताब्दी के अन्त में केरल देश में शंकर नामक आचार्य प्रकट हुआ (जन्म ७८८ ई०)। कहा जाता है कि शंकर ने बौद्ध मत को भारत से उखाड़ दिया। सच बात यह है कि शंकर के विचारों पर बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु की पूरी छाप है। इसी कारण शंकर को प्रच्छन्न (छिपा) बौद्ध कहते हैं। और चूँकि शंकर ने अपने दर्शन में बौद्धों की मुख्य बातें अपना लीं, इसलिए बौद्ध दर्शन अनावश्यक सा हो गया। शंकर ने घूम घूम कर सारे भारत में अपने मत का प्रचार किया। कहते हैं एक बार मण्डन मिश्र नाम के विद्वान् से शंकर का शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें मण्डन की विदुषी स्त्री भारती मध्यस्थ बनाई गई, और उसने अपने पति के विरुद्ध फैसला दिया। शंकर ने भारत के चार कोनों में अपने चार मठ स्थापित

किये—एक केरल में शृंगेरी मठ, दूसरा गढ़वाल में बदरिकाश्रम, तीसरा पुरी में और चौथा द्वारिका में। भारतवर्ष के समूचे विचार पर शंकर का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

दो-तीन शताब्दियों तक तो उसके विचारों के आगे दूसरी कोई विचार-पद्धति टिकने न पाई। किन्तु वह प्रच्छन्न बौद्ध था। आस्तिक लोग धीरे-धीरे अनुभव करने लगे कि उसकी पद्धति में भक्ति को कोई स्थान नहीं है। इसी कारण पीछे ग्यारहवीं शताब्दी से आस्तिक विद्वान् उसके विरोध में आवाज उठाने लगे। उस विरोध का पहला नेता रामानुज था जिसका जन्म तमिळ देश में १०१६ ई० में हुआ। रामानुज वैष्णव भक्त था और उसने तिरुच्चिरापल्ली ('त्रिचनापल्ली') के पास कावेरी के एक टापू में स्थित श्रीरंगम् मन्दिर को अपना मुख्य स्थान बनाया था। उस समय उस प्रदेश के चोळ राजा शिव के उपासक थे, और राजा कुलोत्तुंग १म के पीडन से रामानुज को श्रीरंगम् छोड़ना पड़ा था।

§४. पौराणिक मत की अवनति, मूर्त्तिपूजा और भक्ति मार्ग—शंकर और रामानुज जैसे आचार्यों के ऊँचे-ऊँचे वाद साधारण जनता के लिए नहीं थे। वह अपने देवताओं को ही पूजती रही। परन्तु जनता की वह सरल भक्तिमयी पौराणिक पूजा भी, जिसने सातवाहन और गुप्त युगों में नया जीवन जगाया था, अब आडम्बर से घिर गई। देवताओं के सुनहले मन्दिर बनने लगे; उनका साज-शृंगार होने लगा और उनकी पूजा एक भारी प्रपंच हो गई। जीवित देवता मानो जड हो गये। महायान से जैसे मन्त्रयान और वज्रयान पैदा हुए, वैसे ही शैव मत में पाशुपत और कापालिक, वैष्णव मत में गोपी-लीला, शाक्त सम्प्रदाय में आनन्दभैरवी की पूजा और गाणपत्य सम्प्रदाय अर्थात् गणेश के उपासकों में हरिद्रागणपति और उच्छिष्ट गणपति की पूजा आदि घोर और अश्लील पन्थ चल पड़े। "सिद्धि" पाना अब सभी पन्थों में जीवन का मुख्य ध्येय बन गया। ये "अतिमार्ग" या "वाममार्ग" पहले मध्य काल के पिछले अंश में विशेष रूप से बढ़े।

शंकर और रामानुज जैसे आचार्यों के अतिरिक्त अनेक भक्त और

सुधारक भी इस युग में पैदा हुए । तमिळ देश में तो वैष्णव और शैव भक्तों की एक परम्परा ही जारी रही । वैष्णव भक्त वहाँ आळ्वार और शैव भक्त नायनार कहलाते थे । उनकी तमिळ रचनाओं का वेद और उपनिषद् की तरह आदर किया जाता है । अवन्तिवर्मा के समय (८५४ ई०) कश्मीर में शैव सम्प्रदाय में सुधार की एक लहर चली । ११वीं शताब्दी के अन्त में कर्णाटक में लिंगायत या वीरशैव नाम का एक और सुधार पन्थ चला । अपने अच्छे अंश के कारण ही पौराणिक सम्प्रदाय में अब तक इतनी शक्ति बची रही कि वह सातवीं से बारहवीं शताब्दी तक इस्लाम का प्रायः सफलता से सामना करता रहा ।

बिन्दु सरोवर के किनारे लिंगराज और अन्य मन्दिर, भुवनेश्वर, जि० पुरी [भा० पु० वि०]

परन्तु उसमें अन्ध विश्वास भी बहुत बढ़ता गया । कन्नौज के प्रतिहार सम्राटों के लिए अनेक ऐसे अवसर आये जब वे मुलतान को आसानी से जीत सकते थे । किन्तु जब वैसा अवसर आता तभी मुलतान के मुस्लिम शासक सूर्य-मन्दिर को तोड़ने की धमकी देते, और कन्नौज की सेना लौट जाती । दो एक दृष्टान्त इससे उलटे भी मिलते हैं । कश्मीर के राजा शंकरवर्मा (८८३–९०२

ई०) ने अपनी आय बढ़ाने के लिए जो उपाय किये, उनमें मन्दिरों की जायदाद जब्त करना भी एक था। और ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में—
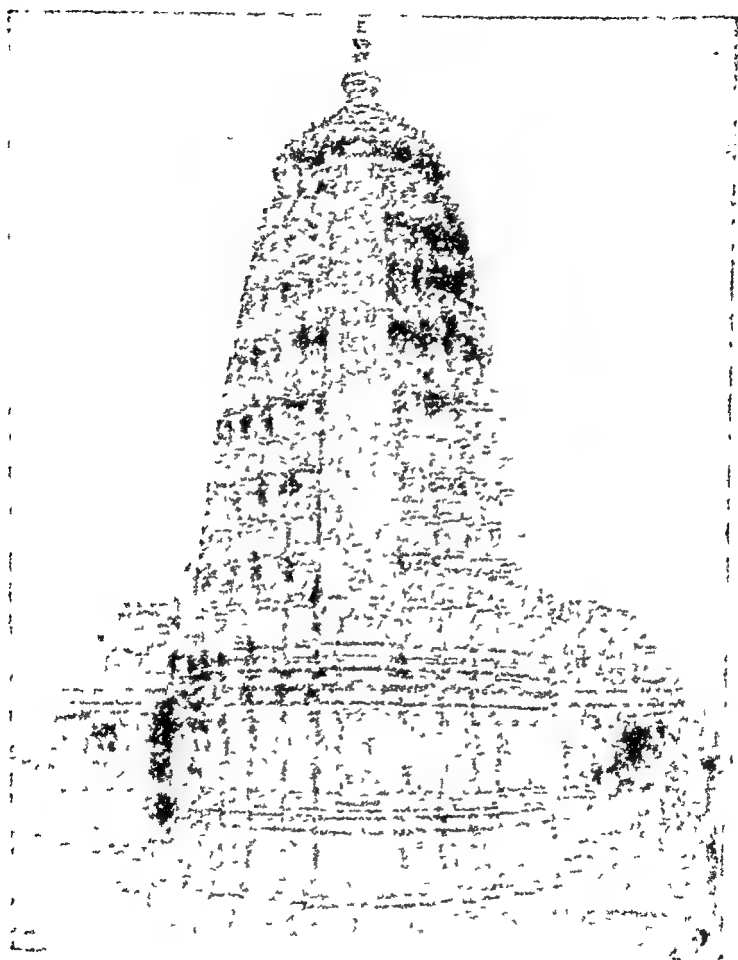
उदयपुर (ग्वालियर राज्य) में उदयादित्य का उदयेश्वर मन्दिर [ग्वालियर पु० वि०]

कीर्तिवर्मा चन्देल, विक्रमाङ्क चालुक्य, चन्द्र गाहड़वाल और सिद्धराज जयसिंह के ज़माने में—कश्मीर के राजा हर्ष (१०८९–११०१ ई०) ने एक "देवोत्पाटन नायक" अर्थात् मन्दिर उखाड़ने वाला अधिकारी रक्खा, जिसका काम

वडनगर (गुजरात) के एक मन्दिर का तोरण—सोलंकी राज्यकाल का।
[राय कृष्णदास के सौजन्य से]
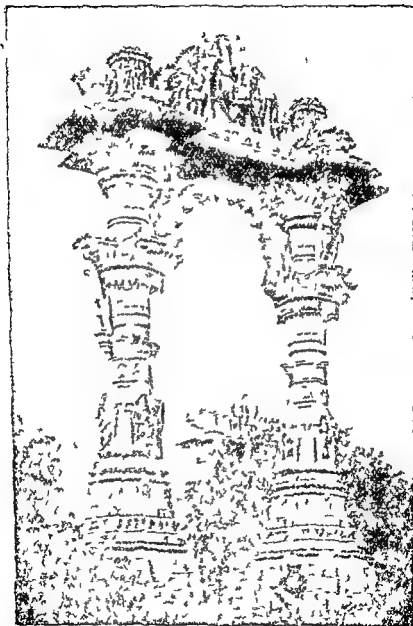
था देवमन्दिरो को चुपके-चुपके बिगडवा देना, और जब लोग उन्हे पूजना छोड
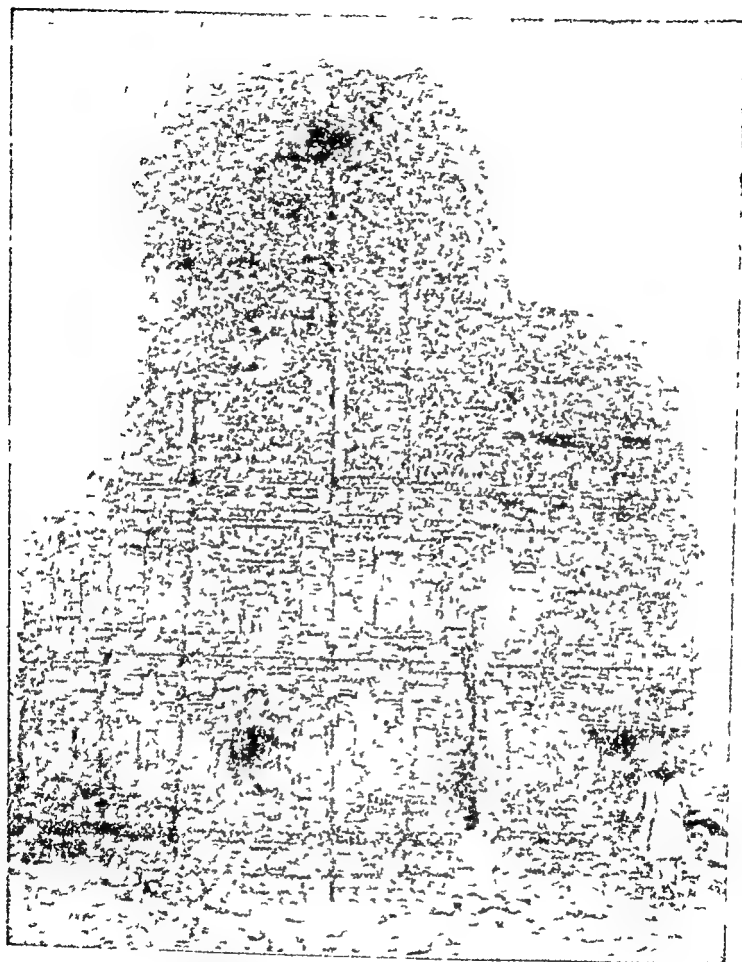
काफिरकोट का मन्दिर [भा० पु० वि०]

दें तब जब्त कर लेना। अन्ध विश्वास मे मुसलमान भी हिन्दुओ से बहुत पीछे न थे। महमूद के बेटे मसऊद के राज्य पर सेलजुको का हमला होने पर उसने शुरू में उनका मुकाबिला इसलिए नहीं किया कि पच्छिमी तारा उसके प्रतिकूल था!

§ ५. **ललित कला**—धार्मिक श्रद्धा से कहीं अधिक ललित कला की

रुचि थी जो बड़े बड़े मंदिर बनाने की प्रेरणा देती थी। पिछले कई युगों से देश में पूँजी जमा हो रही थी। वह फालतू पूँजी अब सुन्दर और विशाल मन्दिर बनाने और अन्य कारीगरी के कामों में खर्च हुई। यह भी एक कारण था कि महमूद के अनेक मन्दिर ढहाने और लूटने से भी हिंदुओं की वह प्रवृत्ति दबने न पाई। गुजरात के चालुक्य राज्य के दक्खिनी छोर पर महमूद जब सोमनाथ को ढहा रहा था, उसी समय उसी राज्य के उत्तरी छोर पर आबू के पास देलवाड़ा का वह विशाल मन्दिर खड़ा हो रहा था, जो संगमरमर की बारीक

विमलवसही (विमलशाह का बनवाया मंदिर, १०३१ ई०), दलवाड़ा, आबू की छत का दृश्य [भा० पु० वि०]
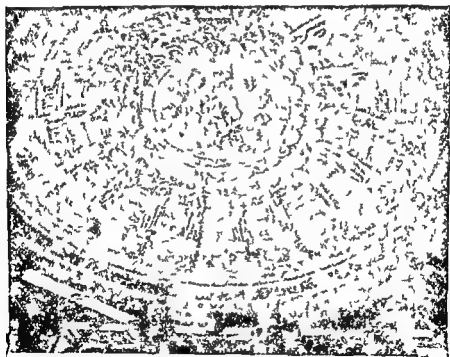
नक्काशी के काम में भारत भर में अनूठी रचना है! और स्वयं महमूद ने क्या अपनी लूट के बड़े अंश को गजनी के भव्य महलों और मसजिदों पर खर्च न

स्थापना तभी की थी। १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वहाँ एक वैष्णव मन्दिर बना, जिसकी कारीगरी देख कर आज भी सभ्य जगत् के लोग चकित होते हैं। वह मन्दिर अब अंकोर-वाट अर्थात् नगर का मन्दिर कहलाता है। उसमें भी प्राम्बनन के मन्दिरों की तरह रामायण की समूची कहानी मूर्त्त दृश्यों में अंकित है।

कुर्किहार, जि० गया, से पाई गई एक कांस्य बोधिसत्त्व-मूर्त्ति—पाल युग में मगध की मूर्त्तिकला का नमूना [पटना संग्र०]

भारत और बृहत्तर भारत के किसी भी प्रान्त से इस युग की पत्थर या धातु की जो मूर्त्तियाँ मिलती हैं, उनमें एक अनोखा सौन्दर्य दिखाई देता है। दक्खिन भारत में नटराज की प्रसिद्ध कांस्य-मूर्त्तियाँ इसी युग के अन्त में बनने लगीं।

§६ **अपभ्रंश शैली**—कला की ओर इतना रुझान होते हुए भी सातवीं शताब्दी से ही भारतीय कला में ह्रास की प्रवृत्ति भी प्रकट होने लगी थी। दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी से वह "ह्रास सर्वतोमुख सड़ान और अधःपतन को पहुँच" गया। चित्रकला में वह बहुत स्पष्ट दिखाई दिया। हस्तलिखित पुस्तकों में इस युग के हजारों चित्र पाये जाते हैं, जिनमें अंकित प्राणियों के अंग प्रत्यंग जकड़े से लगते हैं, जिनकी शैली अतिरंजित, रूढ़िग्रस्त और निर्जान है। इस शैली का आरम्भ शायद गुजरात से हुआ, पर वहाँ से यह भारत के मुख्य भाग में और बृहत्तर भारत में—श्रीक्षेत्र, सुलोदय और कम्बुज अर्थात् आधुनिक बरमा और स्याम में—भी फैल गई। इस शैली को कई नाम दिये गये हैं, पर अपभ्रंश शैली इनमें सब में ठीक नाम है।

पाल राजाओं के राज्य में अर्थात् बंगाल बिहार नेपाल में इसी की समकालीन एक और शैली चलती रही जिसके चित्र प्रायः वहाँ की ताडपत्रों पर लिखी पोथियों पर पाये जाते हैं। रूढ़ि का प्रभाव इसमें भी है, तो भी इसके चित्र उतने निर्जीव नहीं लगते। यह पाल शैली नेपाल से तिब्बत को पहुँची और वहाँ से चीन भी। इसी से मिलती हुई कश्मीर की भी एक अपनी शैली बनी रही।

§७ **विद्या और वाङ्मय**—विद्या और वाङ्मय की उन्नति की परम्परा गुप्त युग के तीन शताब्दी बाद तक भी जारी रही। छठी शताब्दी में ज्योतिषी वराहमिहिर हुआ, और सातवीं में ब्रह्मगुप्त। भवभूति कवि, जिसे यशोवर्मा की सभा से ललितादित्य कश्मीर ले गया था, अपनी रचनाओं में कालिदास से टक्कर लेता है। दर्शन में धर्मकीर्ति (सातवीं शताब्दी) शान्तरक्षित और शंकर (नौवीं शताब्दी आरंभ) के ग्रन्थ भारतीय विचार की ऊँची उड़ानों को सूचित करते हैं।

इसके बाद भी अनेक कवि, दार्शनिक, लेखक और विचारक होते रहे, किन्तु उनकी रचनाओं में मौलिकता और ताजगी क्रमशः घटती गई। कविता में सहज सुन्दरता का स्थान अलंकारों की भूषा ने ले लिया, दर्शन में नये विचार के बजाय बाल की खाल उधेड़ना शुरू हो गया, विज्ञान की प्रगति रुक गई, और कानून के लेखक अपना काम केवल पुराने शास्त्रों की व्याख्या करना समझने

लगे । भारतीय विचार आगे बढ़ना छोड़ कर [illegible] युग था इसी में ही चक्कर काटने लगा । लग० ८०० ई० का [illegible] दार्शनिक [illegible] भट्ट [illegible] शब्दों में कहा है कि "हमारे बड़े [illegible] नहीं है!"
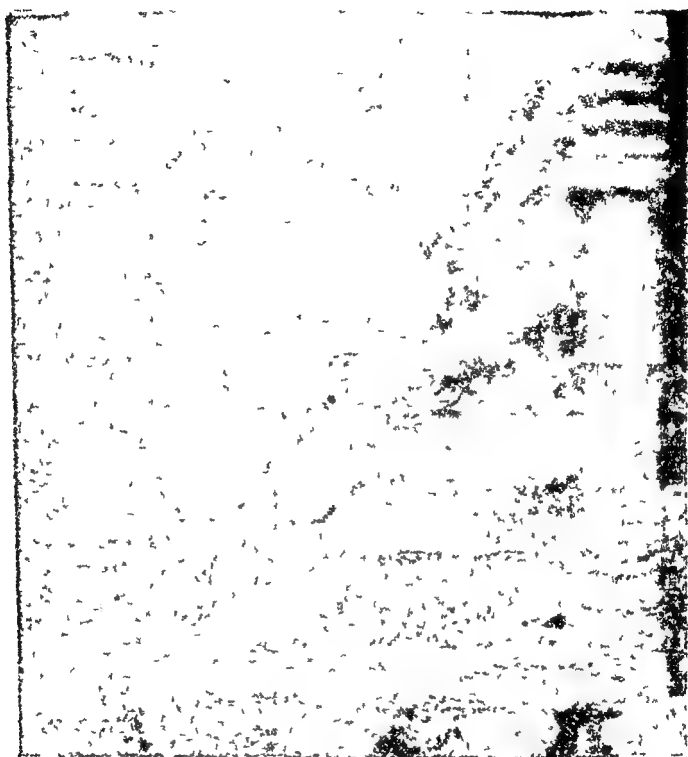
मुरानिया (ग्वालियर राज्य) से पाई गई सरस्वती-मूर्त्ति—आरम्भिक मध्य युग की ।
[ग्वालियर पु० वि०]

परन्तु विचार की प्रगति बन्द हो जाने पर भी इस युग में विद्या और शिक्षा का प्रचार बहुत अधिक रहा । मगध के विहार बौद्ध शिक्षा के बड़े केन्द्र थे; उनमें सुदूर देशों से विद्यार्थी आते थे । सन् ६७५ से ६८५ ई० तक इ-चिङ नामक चीनी विद्वान् नालन्दा में रह कर पढ़ा; उस समय वहाँ पर ३५०० से ५००० छात्र पढ़ते थे । इ-चिङ ने वहाँ बैठ कर एक संस्कृत-चीनी कोश तैयार

सम्मे विहार [राहुल जी के सौजन्य से]

किया, जो अब भी प्राप्य है और एशिया के वाङ्मय का एक अमूल्य रत्न है। राजा देवपाल (८१०–८५१ ई०) ने श्रीविजय के राजा बलपुत्र देववर्मा की प्रेरणा से नालन्दा में एक और विहार बनवाया, और नगरहार (= निग्रहार, अफगानिस्तान) [४, ३§°, ७,२§५] के अफगान विद्वान वीरदेव को उसका मुख्य आचार्य नियत किया।

वीरदेव ने नगरहार में ही वेद पढ़े थे, फिर पेशावर के कनिष्क महाविहार में आ कर त्रिपिटक और बौद्ध दर्शन का अध्ययन किया था। उसकी विद्वत्ता की कीर्ति दूर देशों तक फैल गई। वह "वज्रासन" (बुद्ध के ध्यानावस्थित होने के स्थान) की वन्दना करने "महाबोधि" (बुद्ध गया) आया,

और वहाँ से अपने सहदेशी—अफगानिस्तान के—विहार में रहने वाले भिक्षुओं
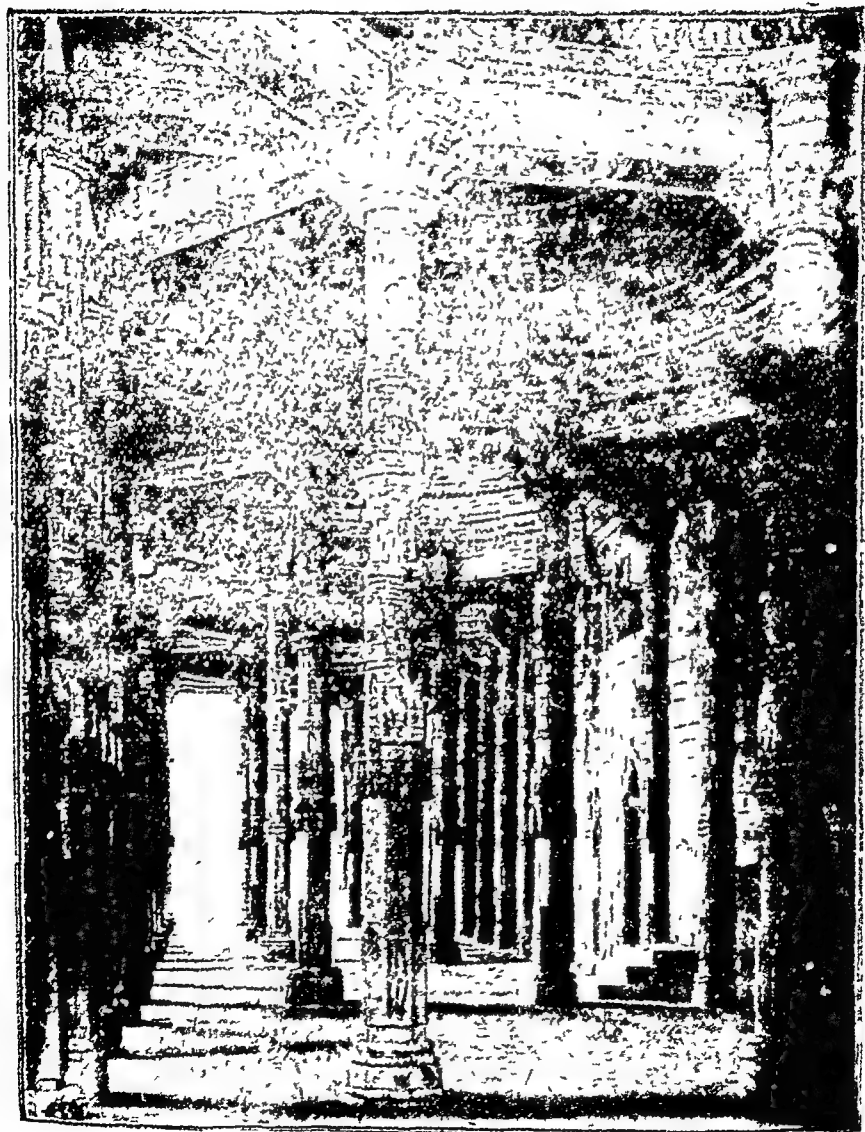
'अढाई दिन का झोंपड़ा', अजमेर [भा० पु० वि०]

और छात्रों से मिलने गया, जब कि राजा देवपाल ने वहाँ उपस्थित हो कर उससे "नालन्दा के परिपालन" की प्रार्थना की, जो उसने मान ली। यह ध्यान देने की बात है कि नौवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भी जब कि सिन्ध में इस्लाम स्थापित हो चुका था, अफगानिस्तान में वेदों और त्रिपिटक का गहरा अध्ययन जारी था, और वहाँ के विद्वानों और छात्रों का भारत के केन्द्र से सम्पर्क बना हुआ था, जिसका दूसरी ओर सुमात्रा जावा और चीन तक से भी घनिष्ठ सम्पर्क था।
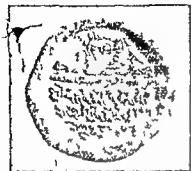
"नालन्दामहाविहारीयार्यभिक्षुसंघस्य" नालन्दा की खुदाई में पाई गई नालन्दा विद्यापीठ की मुहर, असल परिमाण। [भा० पु० वि०]

तिब्बत को सभ्यता सिखाने वाले आचार्य शान्तरक्षित नालन्दा के और अतिशा विक्रमशिला विहार के थे। शान्तरक्षित ने नालन्दा विहार के ही नमूने पर तिब्बत में सम्ये विहार स्थापित कराया। नालन्दा के ही नमूने पर जापान में नारा विहार बना। जापानी लोग इसी युग में बौद्ध शिक्षा पा कर सभ्यता के पथ पर आगे बढ़े। श्रीविजय उन दिनों संस्कृत विद्या का बड़ा केन्द्र था। स्वयं अतिशा तिब्बत जाने से पहले श्रीविजय के आचार्य धर्मकीर्ति के पास गया था।

मगध और श्रीविजय जैसे बौद्ध शिक्षा के केन्द्र थे, वैसे ही कन्नौज वैदिक और पौराणिक का। कन्नौज के ब्राह्मणों ने इस युग में दूसरे प्रान्तों में भी जा-जाकर वैदिक और पौराणिक रीतियों को स्थापित किया। प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल (८९१-९०७ ई०) का गुरु प्रसिद्ध कवि राजशेखर था जिसकी रचनाओं में काफी ताज़गी पाई जाती है। किन्तु कन्नौज के राजा जयचन्द्र के दरबारी कवि श्रीहर्ष की रचना में हम निकम्मी अलंकारों में लदी कविता का ठीक नमूना मिलता है।

कवियों और विद्वानों की खान के रूप में कश्मीर ने इस युग में बड़ी प्रसिद्धि पाई। वहीं के कल्हण पंडित ने ११४९ ई० में राजतरंगिणी नामक

कश्मीर का इतिहास लिखा, जो भारतीय साहित्य का एक रत्न है।

मालवे के राजा भोज का नाम विद्या-प्रचार के लिए आज तक प्रसिद्ध है। भोज ने सब प्राचीन विद्याओं का फिर से सम्पादन और संकलन करने की एक भारी योजना चलाई। उसने धारा में एक बड़ा विद्यालय बनवाया जिसकी इमारत अब नहीं बची। दिल्ली के विजेता बीसलदेव चौहान ने भी अजमेर में वैसा ही एक विद्यालय बनवाया; उसकी इमारत अब अढाई दिन का झोंपड़ा कहलाती है। विक्रमांक चालुक्य की सभा में विज्ञानेश्वर नामक पंडित था, जिसने याज्ञवल्क्य-स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका लिखी। उस तरह की कानूनी टीकाएँ इस युग में और भी लिखी गईं, पर मिताक्षरा ने बड़ा नाम पाया, और आज तक भारत के बड़े अंश में हिन्दुओं का सामाजिक और पारिवारिक कानून उसी के अनुसार चलता है।

§८. अपभ्रंश और देशी भाषाएँ—संस्कृत और प्राकृतों में तो पढ़ना-लिखना चलता ही था, पर इस काल में प्राकृतों के 'अपभ्रंश' बने और फिर उनसे हमारी वे 'देशी भाषाएँ' निकली जो आज तक बोली जा रही हैं। हेमचन्द्र नामक जैन आचार्य सिद्धराज जयसिंह के गुरु के समान था; उसने प्राकृतों का वैसा ही व्याकरण लिखा जैसा पाणिनि ने संस्कृत का लिखा था। ८४ सिद्धों के गीत और दोहे 'देशी भाषा' की कविता के सब से पहले नमूनों में से हैं। उन सिद्धों की वाणियों के तिब्बती अनुवाद भी हैं।

तमिळ वाङ्मय सातवाहन युग से शुरू हुआ था। अब उसमें वैष्णव और शैव भक्तों ने अनेक रचनाएँ कीं। तेलुगु वाङ्मय भी पूरबी चालुक्यों के प्रोत्साहन से दसवीं शताब्दी में शुरू हुआ। गुप्त युग में जैसे तुखारी और खोतनदेशी भाषाओं में वाङ्मय प्रकट हुआ था, वैसे ही आठवीं शताब्दी से जावा की देशी भाषा में संस्कृत के प्रभाव से ग्रन्थ लिखे जाने लगे। उस भाषा को 'कवि' कहते हैं।

§८. सामाजिक जीवन, जात-पाँत—विचारों की प्रगति और प्रवाह बन्द होने का प्रभाव भारतवासियों के सामाजिक जीवन पर भी पड़ा और उससे जात-पाँत की सृष्टि हुई। जात-पाँत का आरम्भ वस्तुतः इसी काल में

हुआ। धर्म का तत्त्व जब पूजापाठ और खानपान-स्नान के नियमों में रह गया तब मजदूर वर्ग का, जिसे उतने पूजापाठ के लिए फुरसत न थी, कुलीन वर्गों से अन्तर बढ़ता गया। अपने बराबर वालों में ही ब्याह शादी की जाय, ऐसा रुझान लोगों में सदा से रहा है। पर ११ वीं शताब्दी से भारत में एक नई बात होने लगी। जीवन में सकीर्णता आ जाने के कारण लोगों को दूर के और अपरिचित लोगों से शका और डर प्रतीत होने लगा कि कहीं उनसे मिल कर हमारा कुल बिगड़ न जाय। सामाजिक ऊँच-नीच के जितने दरजे थे वे पक्का कर जात पांत बनने लगे। नदी का प्रवाह बन्द हो जाने से जैसे छोटे छोटे जोहड़ बन जाते हैं, वैसे ही भारतीय समाज में ये जातें बन गईं। तो भी हम देखेंगे कि कम से कम १३वीं शताब्दी तक इन जातों में भी बाहर के लोगों के आ मिलने की गुजाइश बनी रही।

जात पांत का प्रभाव फिर देश के समूचे जीवन पर हुआ। आठवीं शताब्दी में भारतीय समुद्र में अरब नाविक और व्यापारी अधिक आने लगे। जब भारत के शिक्षित वर्ग स्वयं दूर जाने से कतराने और अपने श्रमी वर्ग को हेय मानने लगे, जब उनके धर्म के आडम्बर को निबाहना श्रमी वर्ग के लिए असम्भव हो गया, तब दूरगामी भारतीय मल्लाहों में इस्लाम आसानी से फैला। खानपान और जात पांत के नियमों को इस युग के भारतीयों ने इतना महत्त्व दे दिया कि उन पर वे अपनी भूमि, स्वतन्त्रता और देश भाइयों को भी न्यौछावर करने लगे। सुबुक्तगीन से जयपाल की पहली हार इसका उदाहरण है। जैसा कि अलबरूनी ने लिखा, "मैंने कई बार सुना है कि जब (युद्ध में कैद हुए हुए) हिन्दू दास भाग कर अपने देश और धर्म में वापिस जाते हैं तब हिन्दू उन्हें प्रायश्चित्त रूप में उपवास करने का आदेश देते हैं। फिर वे उन्हें गौओं के गोबर मूत्र और दूध में नियत दिनों तक दबाये रखते हैं ... फिर उन्हें वही मल खिलाते हैं। मैंने ब्राह्मणों से पूछा कि क्या यह सत्य है। परन्तु वे इससे इनकार करते और कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के लिए कोई भी प्रायश्चित्त सम्भव नहीं, और उसे जीवन की उस स्थिति में लौट आने की कभी इजाजत नहीं दी जाती जिसमें वह बन्दी रूप में ले जाये जाने से पहले रहा हो।"

८. सल्तनत पर्व

(११९४–१५०९ ई०)

अध्याय १

दिल्ली और लखनौती में तुर्क राज्य की स्थापना

(११७५–१२०६ ई०)

§१. **शहाबुद्दीन गोरी के पहले प्रयत्न**—महमूद के बाद गजनी की सल्तनत धीरे-धीरे क्षीण हो गई। गजनी से हरात के रास्ते पर फरारूद† के दून मे गोर प्रदेश है। वहाँ के सरदार अलाउद्दीन ने महमूद के वंशज बहराम (१११८–५१ ई०) को हरा कर गजनी से भगा दिया; फिर उसके बेटे खुसरो (११५२–६० ई०) के समय में गजनी को सात दिन तक लूटा और जला कर खाक कर दिया! अलाउद्दीन का उत्तराधिकारी उसका भतीजा शहाबुद्दीन-बिन साम या मुहम्मद-बिन-साम (साम का बेटा मुहम्मद) हुआ, जो इतिहास में शहाबुद्दीन गोरी नाम से प्रसिद्ध है।

शहाबुद्दीन ने हिन्दुस्तान जीतने का संकल्प किया। वह महमूद की तरह असाधारण आदमी नही था, तो भी हिम्मतवाला और दृढव्रती था। गजनी लेने के बाद उसने उच्च के राजा की रानी को अपनी तरफ मिला कर वह राज्य हथिया लिया, और तब मुलतान और सिन्ध को भी जीत लिया। ११७८ ई० में उसने गुजरात पर चढ़ाई की। वहाँ का राजा मूलराज २य सोलंकी अभी बालक था। उसकी माँ ने आबू के नीचे कायद्रां गाँव पर शत्रु का मुकाबला किया। गोरी बुरी तरह हार कर भाग गया, उसकी फौज का बडा अंश कैद हुआ। कैदियों को हिन्दू बना कर गुजरातियो ने अपनी जातो मे मिला लिया*

---

† रूद माने नदी।

* इसका स्पष्ट विवरण तारीख-ए-सोरठ मे है।

§२ **अजमेर और दिल्ली का पतन**—गुजरात की तरफ दाल न गलती देख शहाबुद्दीन ने ठेठ हिन्दुस्तान की ओर मुँह फेरा। गजनी छिन जाने पर खुसरो लाहौर भाग आया था। गोरी ने अब उसके बेटे से पंजाब भी छीन लिया (११८५-८६ ई०)। फिर अजमेर राज्य की सीमा का सरहिन्द का किला ले लिया। सरहिन्द और उसका प्रदेश तीस चालीस बरस से अजमेर के राजाओं के अधीन था। राजा पृथ्वीराज, जो अब तक जभौती में अपनी शक्ति नष्ट कर रहा था, अब शहाबुद्दीन के मुकाबले को बढ़ा। पानीपत के पास तरावड़ी की लड़ाई में शहाबुद्दीन घायल होकर भाग गया (११९१ ई०)। पृथ्वीराज ने सरहिन्द भी ले लिया, किन्तु शहाबुद्दीन ने हिम्मत न हारी। दूसरे बरस वह फिर फौज ले कर चढ़ आया और तरावड़ी पर ही फिर लड़ाई हुई, जिसमें पृथ्वीराज कैद हो कर मारा गया। जीत के बाद गोरी सीधा अजमेर पर टूटा और वहाँ पृथ्वीराज के बेटे गोविन्दराज को अपना सामन्त बनाया। दिल्ली का इलाका दखल करने के लिए अपने तुर्क दास कुतुबुद्दीन ऐबक को छोड़ वह गजनी लौट गया। कुतुबुद्दीन ने दिल्ली पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। इस तरह गुजरात और कन्नौज के राज्य तुर्कों के पड़ोसी हो गये।

गोरी का नन्दी छाप टंका

चित, घुड़सवार पुरानी नागरी में लेख—श्री हमार‡। पट बैठे हुए नन्दी की भद्दी* मूरत चारों तरफ नागरी लेख—श्री महमद साम [श्रीनाथ सं०]

दिल्ली की सीमा से भागलपुर तक कन्नौज का साम्राज्य था। ११९४ ई० में शहाबुद्दीन उस पर चढ़ाई करने को बड़ी फौज लेकर आया। राजा जयचन्द्र इटावा के पास चन्दावर की लड़ाई में खेत रहा। उसके बेटे हरिश्चन्द्र ने कन्नौज का गढ़

‡ हमीर का अर्थ है अमीर।

* पहले मध्य काल के अन्त तक चला के हाथ में फलम-रूप जैसी भद्दी मूरतें सिक्कों पर बनने लगीं थीं, वैसी ही गोरी के सिक्कों पर भी जारी रहीं।

अपने हाथ से न जाने दिया और अपने राज्य के पूरबी छोर अवध में हट कर युद्ध जारी रक्खा।

पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने चम्बल के किनारे रणथम्भोर में चौहानों की नई राजधानी स्थापित की (११९५ ई०)। अजमेर के साथ उत्तरी मारवाड—नागोर—का इलाका भी तुर्कों के हाथ चला गया, किन्तु दक्खिनी मारवाड—जालोर—में चौहानों की एक शाखा का राज्य बना रहा।

§३. बिहार-बंगाल में तुर्क सल्तनत—अजमेर और कन्नौज राज्यों के जिन अंशों को तुर्क विजेता काबू कर सके, वे तुर्क अमीरों में बाँट दिये गये। कन्नौज के गढ़ को छोड कर गंगा-जमना के समूचे दोआब में, गंगा पार सम्भल और बदाऊँ के इलाके में और दक्खिनी अवध में जगह-जगह उनके केन्द्र स्थापित हो गये। ११९७ ई० के बाद तुर्कों ने दक्खिनी पंचाल में कम्पिला और पटियाली का इलाका कन्नौज के सामन्तों से ले लिया, और वह मुहम्मद-बिन-बख्तयार खिलजी नामक तुर्क सरदार को सौंपा गया। वहाँ से मुहम्मद ने मगध के इलाकों पर धावे मारना शुरू किया। मगध में पिछली शताब्दी मे पाल राजा की हैसियत एक मामूली सरदार की सी रह गई थी। उद्दंडपुर आदि नगर उसके अधिकार मे थे। ११९९ ई० मे मुहम्मद ने २०० सवारों के साथ उद्दंडपुर पर हमला किया और पहाडी पर बौद्ध भिक्खुओं के विहार को गढ़ समझ कर घेर लिया। कोई चारा न देख भिक्खुओ ने भी शस्त्र उठाये; किन्तु उनमें से एक भी जिन्दा न बचा। विजेताओं को जब यह मालूम हुआ कि वह स्थान गढ़ नहीं विहार था, और उस विहार की पुस्तकों को पढ कर सुना सकने वाला भी कोई आदमी जीवित नहीं बचा, तब उन्होंने शताब्दियों से जमा हुए पुस्तकों के उस संग्रह को आग की भेंट कर दिया। उस विहार के नाम से उस शहर को भी वे विहार

गोरी की लक्ष्मी-छाप टंका

चित, लक्ष्मी की भद्दी मूरत। पट, नागरी लेख—श्रीमद् मीर महम्मद साम। [दिल्ली संग्र०; भा०पु०वि०]

कहने लगे, और इस प्रकार समूचे मगध प्रान्त का भी वही नाम पड गया* ।

बिहार जीत लेने के बाद मुहम्मद बिन-बख्तियार ने सेन राजाओं के गौड देश पर चढाई की और उनकी राजधानी लखनौती ले कर वहीं अपनी राजधानी स्थापित की (१२०० ई०)† । बंगाल में उसका राज्य तब लखनौती के चौगिर्द प्राय ४० ४० कोस तक था । लक्ष्मणसेन के बेटे केशवसेन और विश्वरूपसेन उससे बराबर लड़ते रहे । वे अपनी राजधानी ढाका के पास सुवर्णग्राम (सोनार गाव) में ले गये और दक्खिनी और पूरबी बंगाल अगले सवा सौ बरस तक सेन राजाओं के अधिकार में बना रहा ।

§ ४ विन्ध्य और हिमालय की तरफ बढने की विफल चेष्टाएँ— गंगा जमना का दोआब कुतुबुद्दीन के हाथ आ जाने से जझौती का चन्देल राज्य उसका पड़ोसी बन गया । १२०२ ई० में उसने उस पर चढाई कर राजा परमर्दी चन्देल से कालंजर का गढ छीन लिया, परन्तु उसके मुँह फेरते ही चन्देलों ने कालंजर वापिस ले लिया, तो भी जझौती का उत्तरी मैदान—अर्थात् कालपी का प्रदेश—तुर्कों के हाथ रहा ।

इधर मुहम्मद बिन बख्तियार ने एक और साहस का काम किया । गौड़ और हिमालय के बीच मेच, कोच और थारू लोग रहते थे । मुहम्मद ने एक मेच सरदार को पकड़ कर मुसलमान बना लिया और उसी अली मेच की पथ प्रदर्शकता में ११ १२ हजार सवारों के साथ हिमालय तराई के एक हिन्दू राज्य पर धावा मारा । कामरूप के पच्छिम हिमालय की तराई के उस राजा ने तुर्कों को अपने राज्य में बढ जाने दिया, पर पीछे से उन्हें घेर कर लौटते समय करतोया नदी में समूची सेना को नष्ट कर दिया । मुहम्मद बिन-बख्तियार इनेगिने साथियों के साथ बच कर देवकोट पहुँचा और वहाँ अपने सिपाहियों की विधवाओं के अभिशापों के डर से उसे घर से बाहर निकलना दूभर हो गया । उसी

* १८वीं शताब्दी तक बिहार से केवल मगध ही समझा जाता था, अर्थात् वह प्रदेश जो सोन नदी के पूरब, गंगा के दक्खिन, गया की पहाड़ियों के उत्तर और राजमहल की पहाड़ियों के पच्छिम में है ।

† दे० परिशिष्ट ४ ।

दशा में उसकी मृत्यु हुई (१२०५-६ ई०)।

§ ५. **खोकरों का स्वतन्त्र होना**—उधर उसी समय जेहलम नदी पर रहने वाले खोकर लोगों ने अपने राजा राय साल के नेतृत्व में, जो एक बार मुसलमान बन कर फिर हिन्दू हो गया था, विद्रोह करके लाहौर ले लिया। गजनी से शहाबुद्दीन और दिल्ली से कुतुबुद्दीन खोकरों के खिलाफ बढ़े। उनका दमन कर शहाबुद्दीन गजनी लौट रहा था कि एक खोकर ने सिन्ध के किनारे उसे मार डाला (१२०६ ई०)। इसके बाद पन्द्रहवी शताब्दी के अन्त तक दिल्ली के सुलतान खोकरों को अधीन न रख सके। गजनी से दिल्ली आने वाला रास्ता तब दूर तक सिन्ध के दाहिने किनारे जा कर उच के सामने उसे लाँघता और उच से मुलतान और भटिंडा हो कर दिल्ली पहुँचता था।

परिशिष्ट ४

कुछ प्रचलित भ्रम

इस युग के इतिहास के विषय मे अनेक भ्रमपूर्ण धारणाएँ फैली हुई हैं जिनमें से मुख्य हिन्दी काव्य पृथ्वीराजरासो के कारण हैं। स्व० महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा नई खोज का प्रकाश डाल कर इन भ्रमों को दूर करने का लगातार यत्न करते रहे, फिर भी हमारे देश के बहुतेरे शिक्षित लोगो ने इन्हे अपने दिलों से चिपटा रक्खा है और वे इन्हें छोड़ना नहीं चाहते। उनका यह बर्त्ताव अत्यन्त दयनीय है। ऐसी गप्पों से छुटकारा पाना ही होगा।

१. रासो का कर्त्ता चन्द बरदाई अपने को पृथ्वीराज चौहान का समकालीन बताता है। परन्तु चौहान वंश और अन्य वंशो के पचासों समकालीन अभिलेखों और उस युग के मुस्लिम और हिन्दू अन्य सब ऐतिहासिक ग्रन्थों मे घटनाओं का वृत्तान्त जिस प्रकार प्राप्त होता है, रासो का वृत्तान्त उससे सर्वथा भिन्न और स्पष्टतः ऊल-जलूल है।

कश्मीरी कवि जयानक का संस्कृत में लिखा पृथ्वीराजविजय महाकाव्य मिला है, जिसपर दूसरी राजतरंगिणी (कल्हणकृत राजतरंगिणी का परिशिष्ट) के लेखक जोनराज की टीका भी है। जोनराज का समय लग० १४३० ई० है। पृथ्वीराजविजय में चौहान वंश का इतिहास जिस रूप में दिया है, वह अभिलेखों से प्राप्य वृत्तान्त से पूरी तरह मेल खाता है। जयानक अपने को पृथ्वीराज का राजकवि बतलाता है, और उसका यह कथन ठीक सिद्ध होता है। पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ का नयचन्द्र सूरि का लिखा संस्कृत "हम्मीर महाकाव्य" उपलब्ध है। रणथंभोर का अन्तिम चौहान राजा हम्मीर उसका नायक है और उसमें भी चौहानों का इतिहास है। नयचन्द्र सूरि का दूसरा ग्रंथ 'रम्भामंजरी' नाटक है, जिसका नायक कनौज का राजा जयचन्द्र है। उसी शताब्दी के मेरुतुंग कृत ऐतिहासिक निबन्धों का संग्रह प्रबन्धकोश, प्रबन्ध चिन्तामणि आदि ग्रन्थ उपलब्ध हैं। सोलहवीं शताब्दी के अन्त में बूँदी के चौहान राव सुर्जन के समय का लिखा सुर्जनचरित काव्य है। इन सभी ग्रन्थों में इतिहास के जो अंश मिलते हैं, वे पूर्वोक्त अभिलेखों तथा फारसी इतिहास ग्रन्थों के वृत्तान्तों से मेल खाते हैं, पर रासो के विपरीत जाते हैं। रासो का वृत्तान्त कैसा बेसिर पैर का है, सो नीचे लिखे कुछ उदाहरणों से प्रकट होगा।

(क) रासो के अनुसार पृथ्वीराज और जयचन्द दोनों दिल्ली के अनंगपाल तोमर की दो लड़कियों—सुन्दरी और कमला—के बेटे थे, अनंगपाल ने अपना दिल्ली का राज्य अपने दोहते पृथ्वीराज को दे दिया था, जिसमें से आधा अंश पाने के लिए जयचन्द ने उस पर और उसके सहायक मेवाड़ के रावल समरसिंह पर विफल आक्रमण किया। वास्तविक बात यह है कि अनंगपाल पृथ्वीराज और जयचन्द्र से सवा सौ बरस पहले हो चुका था, तथा पृथ्वीराज की माँ त्रिपुरी (चेदि) के राजा अचलराज उर्फ तेजल की पुत्री कर्पूरदेवी थी। दिल्ली को पृथ्वीराज के ताऊ वीसलदेव ने जीता था और उसके बाद भी चौहानों की राजधानी अजमेर ही रही, दिल्ली उनके राज्य का एक प्रान्त मात्र था।

(ख) मेवाड़ के रावल समरसिंह का विवाह रासो के अनुसार पृथ्वीराज की बहन पृथा से हुआ था और समरसिंह तराइन की लड़ाई में काम आया

था। पर समरसिंह के आठ शिलालेख वि० सं० १३३० से १३५८ तक के मिले हैं, उसके पिता और दादा के भी लेख हैं, जिनसे यह सिद्ध है कि समरसिंह पृथ्वीराज के एक शताब्दी बाद हुआ था।

(ग) पृथ्वीराज के ११ बरस की आयु से ३६ बरस की आयु तक कुल १४ विवाह चन्द बरदाई ने कराये हैं। पहला ब्याह वह मंडोवर के प्रतिहार नाहरराय की लड़की से करवाता है। पर मंडोवर का प्रतिहार नाहरराय ८९४ वि० से पहले हो चुका था यह उस वंश के अभिलेख से सिद्ध है, और १२वीं शताब्दी से बहुत पहले मंडोवर से प्रतिहार वंश का अधिकार उठ चुका था। दूसरा ब्याह १२ बरस की आयु में वह आबू के परमार राजा सलख की पुत्री और जैत की बहन इछनी से हुआ बताता है। आबू के परमारों की वंशावली उनके समकालीन अभिलेखों में उपलब्ध है। उस वंश में सलख या जैत नाम के कोई राजा नहीं हुए। इसी कल्पित सलख द्वारा शहाबुद्दीन के कैद किये जाने की बात भी रासो में लिखी है। बाकी सब ब्याहों की कहानियाँ भी इसी नमूने की हैं। पृथ्वीराज ३० बरस से कम आयु में ही मारा गया था, इसलिए उसके ब्याह ३६ बरस की आयु तक होते न जा सकते थे।

(घ) रासो के अनुसार पृथ्वीराज का तीसरा ब्याह १३ बरस की आयु में हुआ जिससे उसका पुत्र रैणसी हुआ। पर पृथ्वीराज के पुत्र का नाम गोविन्द-राज था, रैणसी नहीं, यह फारसी तवारीखों और हम्मीर महाकाव्य से ज्ञात होता है।

(ङ) चन्द बरदाई के अनुसार कन्नौज के राजा राठोड थे। जयचन्द के पिता विजयपाल ने सेतुबन्ध रामेश्वर तक सारे भारत का दिग्विजय किया पर पृथ्वीराज को न जीत सका। जयचन्द ने भी राजसूय यज्ञ किया जिसमें अपनी पुत्री संयोगिता का स्वयवर-मण्डप रचा, संयोगिता ने पृथ्वीराज को अपना पति वरा, और पृथ्वीराज उसे हर ले गया, बाद में जयचन्द ने वैर-वश शहाबुद्दीन को बुलाया, इत्यादि। इस समूची कहानी में सिवाय इस बात के कि पृथ्वीराज और जयचन्द्र समकालीन थे और जयचन्द्र के पिता का नाम विजयचन्द्र था, बाकी सब निरी कल्पना है। कन्नौज के राजा राठोड नहीं गाहड्वाल थे। जयचन्द्र बड़ा दानी राजा था, उसके अनेक दान-लेख उपलब्ध हैं। यदि उसके पिता ने
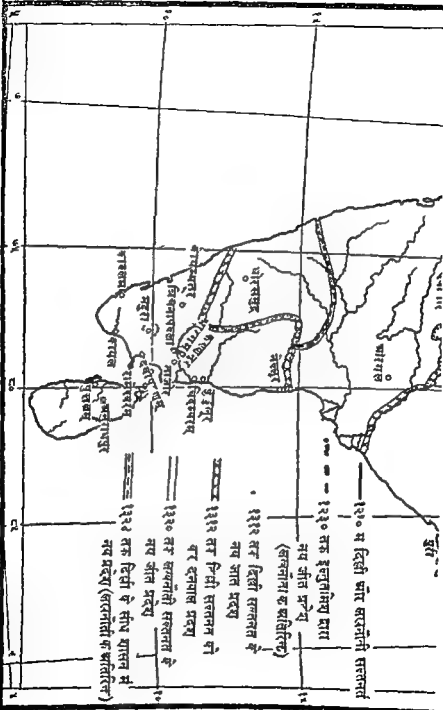
दिल्ली और लखनौती की सल्तनतें
पैमाना
अँगरेज़ी मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
गोर
गज़नी
काबुल
भेरा
कन्दहार
गोमल घाटा
कांगड़ा
लाहौर
दीपालपुर
सरहिन्द
कुहराम
मुलतान
भटिंडा
सुनम
समाना
तरायर्ड़
पानीपत
उच्च
दिल्ली
सम्भल
सक्खर
बरन (बुलन्दशहर)
बदाऊं
साकप
चक्कर
नागौर
कन्नौज
अजमेर
ग्वालियर
कामतापुर
रणथम्भोर
कालपी
बनारस
सिवाना
जालोर
नरवर
कड़ा
चुना
सिलहट
नागदा
चित्तौड़
चन्देरी
कालञ्जर
लखन ती
लखनौर
नदिया
अणहिलवाड़ा
भेलसा
उज्जैन
त्रिपुरी
मन्दारण
धार
खम्भात
रत्नपुर
जूनागढ़
इलिचपुर
जाजपुर
वाराणसी-कटक
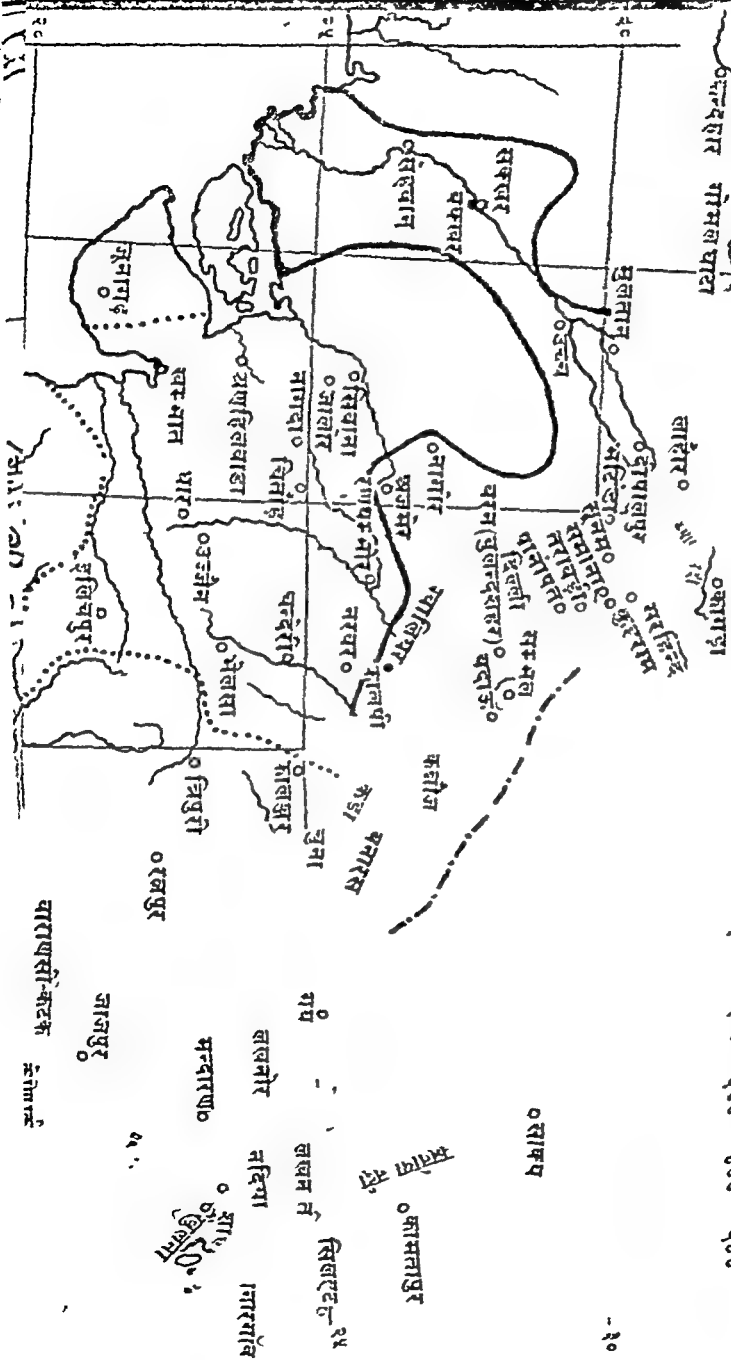
सेतुबन्ध तक दिग्विजय किया होता या उसने स्वयं राजसूय किया होता तो अपने लेखों में वह इसका उल्लेख करने से न चूकता। संयोगिता भी शुद्ध कल्पना की उपज है, और उसी प्रकार उसके स्वयंवर की, पृथ्वीराज और जयचन्द के वैर की तथा जयचन्द के गोरी को बुलाने की बात भी। पृथ्वीराजविजय, प्रबन्धकोश, हम्मीर महाकाव्य, रम्भामंजरी आदि में इन बातों का कहीं पता नहीं।

(च) चौहानों की जो वंशावली रासो में दी गई है वह भी अन्य ग्रंथों और अभिलेखों से प्राप्त वंशावली से मिलान करने पर सर्वथा कल्पित सिद्ध होती है।

(छ) रासो में दिये हुए घटनाओं के संवत्, जैसे पृथ्वीराज के जन्म, गद्दीनशीनी, मृत्यु आदि के संवत् भी सभी गलत हैं। उन्हें ठीक बनाने के लिए एक अनन्द विक्रम संवत् की कल्पना की गई, पर उससे भी वे ठीक नहीं बन सके।

(ज) रासो के अनुसार पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर गुजरात के राजा भीम के हाथ मारा गया और पृथ्वीराज ने गुजरात पर चढ़ाई कर भीम को मार डाला। पर अभिलेखों और अन्य सामग्री से जाना गया है कि भीम जब गद्दी पर बैठा, तब वह बच्चा ही था और सोमेश्वर की मृत्यु उससे अगले वर्ष ही हो गई जो भीम के हाथों नहीं हो सकती थी। और भीम पृथ्वीराज के पचास बरस पीछे तक जीवित रहा।

(झ) उक्त प्रकार की कितनी ही और बे सिर पैर की बातें रासो में हैं, पर सब से अधिक मजे की निम्नलिखित दो हैं। एक यह कि रावल समरसिंह का बड़ा बेटा कुम्भा पिता से रूठ कर दक्खिन में बिदर के सुलतान के पास जा कर रह गया था। दूसरी यह कि सोमेश्वर और पृथ्वीराज ने मेवात के मुगल राजा पर चढ़ाई की, जिसमें मुगल कैद हुआ और उसका बेटा बाजिदखाँ मारा गया। पृथ्वीराज के समय दक्खिन में कोई मुस्लिम सल्तनत होने की बात तथा भारत में कहीं भी मुगल राजा होने की बात जो व्यक्ति कह सकता था और तिस पर भी अपने को पृथ्वीराज का समकालीन बता सकता था, उसकी बातों का मूल्य चण्डूखाने की गप्पों से अधिक नहीं लगाना चाहिए। बिदर की सल्तनत १४३० ई० में स्थापित हुई थी और भारत में मुगल सोलहवीं शताब्दी में आये

थे। इससे प्रकट है कि पृथ्वीराजरासो सोलहवीं शताब्दी से पहले की रचना नहीं है और उसका ऐतिहासिक मूल्य कुछ भी नहीं है।

२. पृथ्वीराजरासो में राजपूतो के ३६ कुल लिखे हैं, तथा प्रतिहार, चालुक्य, परमार और चौहान कुलो के पूर्वजो का अग्निकुंड से पैदा होना बताया है। इससे तथा रासो को बारहवी शताब्दी का मान कर राजपूत जाति के उद्भव के विषय में अनेक स्थापनाएँ की गई हैं। परन्तु पन्द्रहवी शताब्दी तक के लेखो से प्रकट होता है कि उक्त चार कुलों मे से प्रतिहार अपने को रघुवंशी, चौहान अपने को सूर्यवंशी तथा चालुक्य अपने को सोमवंशी कहते थे; केवल परमार अपनी उत्पत्ति अग्निकुंड से बताते थे। उन कहानियो या रासो की कहानी से कोई भी परिणाम नही निकाला जा सकता। राजपूत जाति की कल्पना हमारे साहित्य और इतिहास मे पहले-पहल महाराणा कुम्भा के समय से अर्थात् पन्द्रहवी शताब्दी मे प्रकट होती है।

३. हिन्दी साहित्य के तथाकथित इतिहासो मे भी अनेक स्थापनाएँ पृथ्वीराजरासो को १२वी शताब्दी का मान कर की गई हैं। वे सब बेबुनियाद हैं। रासो की भाषा मे दस प्रतिशत फारसी शब्द हैं। १२वीं से १५वी शताब्दी तक के भाषा के जो अन्य नमूने मिले हैं उनसे तुलना करने से भाषा के विकास की दृष्टि से पृथ्वीराजरासो की भाषा भी सोलहवीं शताब्दी की सिद्ध होती है।

४. बंगाल के इतिहास के बारे मे मुस्लिम लेखको की चलाई हुई यह कहानी प्रसिद्ध है कि सिर्फ १८ सवारो के साथ, जिन्हे लोग घोडे बेचने वाले समझते रहे, बख्तियार के बेटे ने नदिया के राजमहल के रक्षको पर एकाएक हमला कर दिया, और राजा लक्ष्मणसेन महल के दूसरी तरफ से भाग निकला। परन्तु नदिया कभी सेनो की राजधानी न थी और राजा लक्ष्मणसेन ११७० ई० से पहले ही मर चुका था। तीसरे, लखनौती जीतने के ५५ बरस पीछे १२५५ ई० में नदिया पहले-पहल तुर्कों के कब्जे में आया था। इन बातो की पूरी विवेचना स्व० राखालदास बनर्जी ने अपने "बांग्लार इतिहास" मे की है। कन्नौज राज्य के तुर्कों द्वारा जीते जाने के क्रम की ठीक विवेचना भी उन्होने उसी ग्रन्थ में पहले-पहल की थी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ अजमेर दिल्ली के राज्य पर चढ़ाई करने से पहले शहाबुद्दीन गोरी ने किन राज्यों को किस क्रम से जीता अथवा जीतने का यत्न किया?

२ पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के बाद उसके राज्य का कौन सा अंश गोरी के अधीन हुआ और कौन सा अंश स्वतंत्र बचा? कैसे?

३ लखनौती की तुर्क सल्तनत कैसे स्थापित हुई? उसका विस्तार कहाँ से कहाँ तक था?

४ सम्राट् जयचन्द्र के युद्ध में मारे जाने पर उसके साम्राज्य का कौन सा अंश तुर्कों के अधीन चला गया तथा बाकी कैसी स्थिति में रहा?

५ चन्द बरदाई के पृथ्वीराजरासो की कहानी को क्यों निर्मूल मानना पड़ता है? वह कहानी कब की बनी है?

६ अठारह तुर्क सवारों द्वारा लक्ष्मणसेन की राजधानी नदिया पर चढ़ाई और वहाँ से राजा लक्ष्मणसेन के भागने की कहानी किस प्रकार गलत सिद्ध होती है?

अध्याय २

गुलाम, गंग, पाण्ड्य

(१२०६–१२९० ई०)

§१. कुतुबुद्दीन ऐबक—शहाबुद्दीन के मरने पर उसके उत्तराधिकारी ने दिल्ली का राज्य दास कुतुबुद्दीन को सौंप दिया। उसके बाद भी दिल्ली की गद्दी पर कई गुलाम बादशाह बैठे, इससे वह गुलाम वंश कहलाता है। ये सब गुलाम वास्तव में तुर्क थे। इस प्रकार दिल्ली की यह सल्तनत तुर्कों की थी। चार बरस के दृढ़ न्यायपूर्ण शासन के बाद कुतुबुद्दीन लाहौर में मर गया (१२१० ई०)। दिल्ली की कुतुबमीनार उसकी स्मारक मानी जाती है।

§२. इल्तमश—कुतुबुद्दीन का गुलाम और दामाद इल्तुतमिश (जिसके नाम का बिगड़ा हुआ रूप इल्तमश है) कुतुबुद्दीन के बेटे आरामशाह को हटा कर खुद सुल्तान बन बैठा। उस समय तक भारत में तुर्कों के जीते हुए प्रदेश कई शासकों में बँट गए थे। लखनौती का राज्य शुरू से ही

दिल्ली से अलग था। गोरी की मृत्यु के बाद से गज़नी भी अलग सल्तनत थी, जो ताजुद्दीन एलदोज नामक तुर्क सरदार को सौंपी गई थी। सिन्ध नासिरुद्दीन कुबाचा को मिला था। अल्तमश के गद्दी पर बैठते ही एलदोज ने लाहौर ले लिया। कुबाचा के दाँत भी लाहौर पर गड़े थे। अल्तमश ने एलदोज को कैद कर लाहौर वापिस ले लिया। पीछे उसने कुबाचा का भी उसी तरह दमन किया।
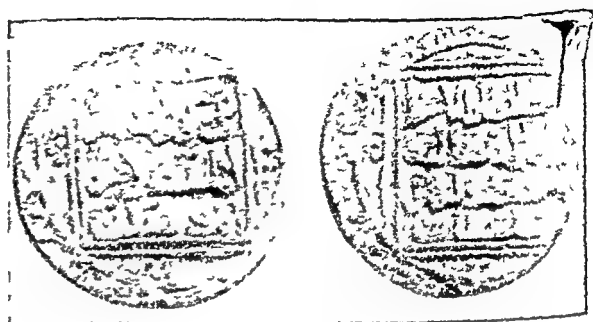
अल्तमश के कन्नौज-विजय का स्मारक टंका
[दिल्ली संग्र०, भा० पु० वि०]

दूसरी तरफ उसका कन्नौज के सामन्तों से अवध की सीमा पर लगातार युद्ध जारी था, जहाँ 'वर्त्तु' नामक हिन्दू सरदार से लड़ते हुए एक लाख बीस हजार तुर्क सैनिक मारे जा चुके थे। कन्नौज का गढ़ तब तक जीता न गया था। अल्तमश के समय में 'वर्त्तु' मारा गया और कन्नौज का गढ़ भी लिया गया। इसकी खुशी में उसने नये सिक्के चलाये†।

§३. मध्य एशिया में मंगोल—इसी समय उत्तरपूरबी एशिया से एक भारी लहर उठी जिसने समूची दुनिया का नक्शा पलट दिया। जैसे पाँचवीं-छठी शताब्दी में हूण-तुर्क और सातवीं में अरब दुनिया को जीतने निकले थे, वैसे ही अब मंगोलों ने अपनी विजय-यात्रा शुरू की। उनका नेता चिङ-हिर खान (चंगेज खान*) था। मंगोलों ने तुर्किस्तान के तमाम मुस्लिम राज्यों को उखाड़

† उस सिक्के का चित्र यहाँ दिया जा रहा है। इस पर के लेख की ठीक व्याख्या स्व० राखालदास बनर्जी ने 'बाङ्गलार इतिहास' में की थी।

* खान या खान मंगोलों में सम्मानसूचक शब्द था। दूसरी जातियों ने उसे उन्हीं से लिया।

फँका (१२१६ ई०), महल और मस्जिदें फूँक दीं। अफगानिस्तान को भी चगेज ने तुर्कों से छीन लिया। इसके बाद पौने दो शताब्दियों तक अफगानिस्तान मंगोलों के अधिकार में बना रहा और वे दिल्ली के तुर्कों के लिए सदा आतंक का कारण रहे।

१२२१ ई० में ख्वारिज्म (खीवा प्रदेश) के तुर्क शाह जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ चगेज सिन्ध नदी के किनारे आ पहुँचा। जलालुद्दीन सिन्ध में भाग आया था। पजाब और सिन्ध में इससे खलबली मच गई। चगेज भारत की गर्मी के कारण सिन्ध नदी से लौट गया। उसके लौट जाने पर ही अल्तमश उन प्रान्तों को पूरी तरह काबू कर सका।

§४ अल्तमश का गौड जीतना और मालवे पर चढ़ाई— मुहम्मद बिन बख्तियार की मृत्यु हो जाने पर लखनौती में ५.६ बरस की मारकाट के बाद खिलजी अमीरों ने गयासुद्दीन इवज को गद्दी पर बैठाया था। उसके समय में (१२११–२६ ई०) गौड सल्तनत की सीमा गगा के पूरब तरफ देवकोट तक और दक्खिन पच्छिम तरफ लखनोर तक पहुँच गई। पजाब और सिन्ध के नियन्त्रण के बाद अल्तमश ने बिहार और गौड की तुर्क सल्तनत को भी जीत लिया। तब से १२८८ ई० तक गौड प्राय दिल्ली के अधीन रहा।

इस प्रकार गाहड्वालों को परास्त करने और उत्तर भारत के सब तुर्क प्रान्तों को एक शासन में लाने के बाद अल्तमश ने पड़ोसी हिन्दू राजाओं की तरफ ध्यान दिया। उसने रणथम्भोर और ग्वालियर पर अधिकार किया और परमर्दी चन्देल के बेटे त्रैलोक्यवर्मा पर चढ़ाई कर जझौती को लूटा (१२३३ ३४ ई०)। तब मालवे पर चढ़ाई कर उज्जैन और भेलसा लूटे (१२३४ ई०)।

अल्तमश की बंगाल विजय का स्मारक टका
[बर्निन मग्र०, नेल्सन राइट के ग्रन्थ से]

§५. **मेवाड़ के गुहिलोत**—मालवे से अल्तमश गुजरात की तरफ बढ़ा। रास्ते में उसने मेवाड की राजधानी नागदा को, जो आधुनिक एकलिंग की जगह पर थी, उजाड डाला। पर राजा जैत्रसिंह से हार कर उसे लौटना पडा। मेवाड का नाम इसके बाद इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हुआ। सुराष्ट्र के मैत्रक वंश मे भटार्क का पोता राजा गुहसेन या गुहिल हुआ था। मेवाड़ के राजा उसी के वंशज थे। वे पहले गुजरात के चालुक्यों के सामन्त थे। १२वीं शताब्दी के अन्त में गुजरात के कमजोर होने पर वे स्वतन्त्र हो गये और इस स्वतन्त्र हैसियत में उन्होने अनेक बार दिल्ली के तुर्कों का मुकाबला किया। अल्तमश के नागदा को उजाडने के बाद चित्तौड मेवाड़ की राजधानी बनी।

§६. **रज़िया और नरसिंहदेव**—मालवा-मेवाड की चढ़ाइयो से लौट कर अल्तमश मर गया (१२३६ ई०)। वह कह गया था कि उसकी बेटी रजिया उसकी उत्तराधिकारिणी हो। लेकिन तुर्क सरदारो ने उसके एक बेटे को गद्दी दी। छः मास बाद वह उनके हाथ मारा गया। तब कुमारी रजिया गद्दी पर बैठी। वह कुशल और वीर स्त्री थी। मर्दाने कपडे पहन कर वह खुले मुँह दरबार मे बैठती और युद्ध में सेना का सञ्चालन भी करती। किन्तु एक स्त्री के शासन मे उस समय के तुर्क कहाँ रह सकते थे? उन्होने फिर बगावत की, जिसे दबाते हुए रजिया मारी गई (१२४० ई०)। उसके बाद उसका एक भाई सुल्तान बना। डेढ़ बरस बाद वह भी मारा गया और उसके एक भतीजे को राज मिला। चार बरस बाद उसकी भी वही गति हुई।

इस बीच दिल्ली सल्तनत की बडी दुर्दशा रही। चौहान राजा वाग्भट ने रणथम्भोर वापिस ले लिया। बगाल तथा मुलतान-सिन्ध के प्रान्त अलग हो गये थे। बिहार के हिन्दू सरदार स्वतन्त्र हो गये थे। पंजाब के बडे भाग पर खोकरो ने अधिकार कर लिया था। गगा-जमना दोआब मे भी अनेक हिन्दू सरदारों ने दिल्ली के विरुद्ध सिर उठाया। दिल्ली से बिलकुल लगे हुए अलवर के इलाके (प्राचीन मत्स्य देश) मे मेव लोग रहते हैं जिससे वह मेवात कहलाता है। मेवों या मेवातियो ने दिल्ली पर धावे मारना ही अपना धन्धा बना लिया था। उत्तर-पच्छिम से अफगानिस्तान के मंगोल गजनी से मुलतान के

रास्ते दक्खिनी पजाब और सिन्ध पर झपट्टे मारते थे। १२४१ इ० मे उन्होंने लाहोर पर चढाइ कर वहाँ तुर्कों की बडी मार काट की।

उधर पूरबी सीमान्त पर भी वैसी ही विपत्ति उपस्थित थी। उडीसा के गंगवंशी राजा नरसिंहदेव १म ने गौड पर चढाई की। केवल ५० उडिया सवारों और २०० पैदल सैनिकों के एकाएक हमला करने पर तुर्क सेना सीमान्त का एक गढ छोड कर भाग गई। नरसिंहदेव के सेनापति सामन्तराज ने तुर्कों
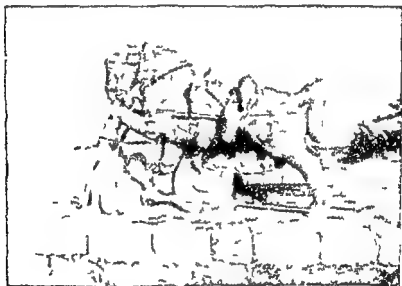
कोणार्क के सूर्य मन्दिर में एक घोटे की मूर्ति
नरसिंहदेव के विजयों का सुन्दर स्मारक। [भा० पु० वि०]

से लखनोर का गढ छीन लिया। गंगा के उत्तर भी तुर्कों की जहाँ तहाँ हार हुई और सामन्तराज ने लखनौती पर घेरा डाल दिया। अन्त म अवध से तुर्क सेना आने पर उसे लौटना पड़ा (१२४४ इ०)। मेदिनीपुर, हावडा और हुगली जिले नरसिंहदेव के अधीन रहे। यह नरसिंह (१२३८–६४ इ०) अनन्तवर्मा चोळगग [७,६६४] के पोते का पोता था। अपने विजयों की याद म इसने उड़ीसा के समुद्र तट पर कोणार्क का सूर्य मन्दिर बनवाया।

§७. **बलबन**—१२४५ ई० में फिर मंगोलों के एक दल ने उच्च के किले को घेर लिया । तब अल्तमश का दामाद गयासुद्दीन बलबन सेना ले कर उनके विरुद्ध बढ़ा और उन्हे मार भगाया । दिल्ली की गद्दी पर सरदारो ने अब रजिया के छोटे भाई नासिरुद्दीन महमूद को बैठाया । उसने बलबन को अपना मन्त्री नियुक्त कर राजकाज उसके हाथ सौंप दिया । तब से दिल्ली के शासन में फिर जान पड़ी ।

बलबन ने मुलतान के साथ खोकरो पर चढ़ाई की (१२४७ ई०) । नासिरुद्दीन को चनाब पर छोड़ कर वह खोकरो के देश में घुसा, और सिन्ध के किनारे उसने उनके राजा जस्पाल सेहरा को हराया । किन्तु खोकरो ने सिन्ध और जेहलम के बीच तमाम बस्ती और खेती उजाड़ दी थी, इससे बलबन को शीघ्र लौटना पड़ा । वहाँ से लौट कर उसने दोआब और मेवात पर चढ़ाइयाँ की, और रणथम्भोर को वापिस लेने की विफल चेष्टा की ।

नासिरुद्दीन ने मालवा और जझौती की सीमा पर के नरवर, चन्देरी, तथा कालंजर प्रदेशो पर भी विफल चढ़ाइयाँ की । वह इनपर अधिकार न कर सका, तो भी काफी लूट उसके हाथ लगी ।

१२५७ ई० मे मंगोलों का एक दल मुलतान ले कर सतलज तक आ पहुँचा और बड़ी मुश्किल से वापिस किया गया ।

इसी समय लखनौती के हाकिम उजबक ने गंगा के दक्खिन नदिया तक और उत्तर-पूरबी वर्धनकोट (जि० बगुड़ा) तक तुर्क राज्य की सीमा पहुँचा दी (१२५५ ई०) । उसने कामरूप पर भी चढ़ाई की, पर वहाँ उसकी वैसी ही गत बनी जैसी मुहम्मद-बिन-बख्तयार की बनी थी और वह कामरूप के राजा की कैद मे मरा ।

दोआब, मेवात और कटहर (आधुनिक रुहेलखंड) के हिन्दुओ के साथ संघर्ष अभी जारी था । इसलिए १२५९–६० मे बलबन ने उनपर फिर चढ़ाइयाँ कीं, और १२०००० मेवो को मार डाला । १२६४ में उसने कटहर पर चढ़ाई की ।

१२६६ ई० में नासिरुद्दीन की मृत्यु होने पर बलबन स्वयं सुलतान बना ।

मेवात, दोआब और कटहर की स्थिति में कोई सुधार न हुआ था। मेव तो अब हिमालय की तराई तक और दिल्ली शहर के भीतर तक धावे मारने लगे थे। उनके कारण दिल्ली की पनिहारिनों का कुओं पर जाना दूभर हो गया था और शहर के पच्छिमी दरवाजे सन्ध्या से पहले ही बन्द कर देने पड़ते थे। बलबन ने दिल्ली के पड़ोस के वे सब जंगल साफ कर दिये जिनमें मेव शरण पाते थे। उसने दोआब और कटहर पर भी फिर चढ़ाइयाँ कीं। अल्तमश की तरह उसने भी मालवे की तरफ से गुजरात पर चढ़ाई करने का जतन किया, पर रास्ते में चित्तौड़ के राना समरसिंह (१२७३–१३०२ ई०) से हार कर लौट आया।

अपने बेटे मुहम्मद को उसने मंगोलों पर निगाह रखने को मुलतान का हाकिम बनाया। यह ध्यान देने की बात है कि इस युग में अफगानिस्तान और दिल्ली के बीच का रास्ता मुलतान होकर जाता था। उत्तर-पच्छिम पंजाब के गक्खड़, खोक्खर आदि लोग कभी दिल्ली के अधीन नहीं हुए। इसी कारण दिल्ली सल्तनत का मुलतान उच वाला इलाका एक तरफ को बढ़ा हुआ था और मंगोलों को अधिक आकर्षित करता था। ब्यास नदी तब सतलज में मिलने के बजाय मुलतान के नीचे चनाब में मिलती थी*, जिससे रावी और सतलज के बीच आज जो 'बार' (बाँगर, सूखी ऊँची बियाबान भूमि) है, वह हराभरा प्रदेश था। इन कारणों से सीमान्त का रास्ता तब गजनी से उच मुलतान इलाके से दीपालपुर होकर दिल्ली पहुँचता था। दीपालपुर तब ब्यास के किनारे दिल्ली सल्तनत का बड़ा सीमान्त नाका था। सीमान्त का रास्ता उधर से होने के कारण नागौर और अजमेर भी तब सरहद के नज़दीक पड़ते थे।

लखनौती में भी बलबन ने अपने एक विश्वासपात्र को नियुक्त किया। उसने कामरूप और उड़ीसा पर चढ़ाइयाँ कीं, जिनमें उसे बड़ी लूट मिली।

---

* वैदिक काल में ब्यास आजकल की तरह सतलज में मिलता था, किन्तु आठवीं शताब्दी के शुरू से पहले [७, ३ § ७] वह अपना मार्ग बदल कर चनाब में मिलने लगा था। यह परिवर्तन ठीक कब शुरू हुआ इसका पता नहीं। अठारहवीं शताब्दी के मध्य से वह फिर सतलज में मिलने लगा। उसके पुराने मार्ग के चिह्न अब भी मौजूद हैं। उन्हीं के अनुसार इस प्रकरण के नक्शों में ब्यास अंकित की गई है।

इससे उसका दिमाग फिर गया और बलबन को पच्छिमी सीमान्त पर व्यस्त देख कर वह मुगीसुद्दीन तोगरल नाम से स्वतन्त्र बन बैठा। उसके खिलाफ दो बार सेना भेजने के बाद बलबन ने स्वयं उसपर चढ़ाई की। तोगरल तब लखनौती से भाग निकला। बलबन ने सोनारगाँव की तरफ बढ़ कर राजा दनुजराय से, जो पूरबी और दक्खिनी बंगाल का स्वामी था, वचन लिया कि वह उधर के किसी जल-मार्ग से तोगरल को भागने न देगा। फिर उसने तोगरल का पीछा कर उडीसा की सीमा पर उसे जा पकडा, और लखनौती के बाजार में खुली फाँसियाँ टाँग कर विद्रोहियों को लटकवा दिया (१२८२ ई०)। अपने बेटे नासिरुद्दीन महमूद उर्फ बुगरा को गौड का हाकिम बना कर वह दिल्ली लौट आया।

१२८५ ई० में मंगोलों ने पंजाब पर फिर चढ़ाई की। युवराज मुहम्मद उनसे लडता हुआ मारा गया। फारसी और हिन्दी का प्रसिद्ध कवि मलिक खुसरो, जो मुहम्मद का साथी था, उसी लडाई में कैद हुआ। दूसरे बरस बलबन भी चल बसा। मरने से पहले उसने बुगराखाँ को दिल्ली की सल्तनत सौंपनी चाही, पर बुगरा ने उस काँटों के ताज से गौड की सूबेदारी अधिक आराम की समझी। बुगरा का बेटा कैकोबाद चार बरस ही उस गद्दी को कलंकित कर पाया था कि जलालुद्दीन खिलजी नामक सरदार ने उसका काम तमाम कर उसकी लाश जमना में फेंकवा दी। इस तरह दिल्ली में गुलाम वंश का अन्त हुआ (१२९० ई०)।

§८. चोळ राज्य का टूटना, पाण्ड्य राजवंश का उदय—हम देख चुके हैं कि बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में समूचा दक्खिन भारत चालुक्य और चोळ राज्यों में बँटा था; पर उस शताब्दी के अन्त तक चालुक्य राज्य टूट कर महाराष्ट्र (देवगिरि), आन्ध्र (ओरंगल) और कर्णाटक (धोरसमुद्र) के अलग-अलग राज्य हो गये थे। चोळ राज्य में, तब तमिळ और केरल प्रान्त बचे थे। १३वीं शताब्दी की मुख्य घटना है चोळ राज्य टूट कर उसके स्थान पर पांड्य राज्य का स्थापित होना।

राजराज ३य के शासन-काल (१२१६–४५ ई०) में १२२५ ई० से पहले उसके मदुरा के सामन्त मारवर्मा सुन्दर पांड्य ने ठेठ चोळ देश अर्थात्

कावेरी कांठे पर चढाई कर उरैपुर (त्रिचनापल्ली) और तंजोर को ले लिया, कोंगुदेश (कोयम्बतूर) पर अपना प्रभाव स्थापित किया और चिदम्बरम् तक चढ़ाई की। तब चोळ राजा को उत्तर तरफ भागना पड़ा जहाँ कुड्डलूर के उसके पल्लव सामन्त ने उसे कैद कर लिया। राजराज चोळ ने तब अपने सम्बन्धी होयसल राजा वीर नरसिंह २य (१२१८–३५ ई०) की सहायता से मुक्ति पाई। १२४४ ई० में राजराज और उसके भाई राजेन्द्र ३य में युद्ध छिड़ा। तब फिर राजराज ने वीर नरसिंह के बेटे वीर सोमेश्वर से मदद ली। राजराज मारा गया और राजेन्द्र ने गद्दी पाई। किन्तु वीर सोमेश्वर ने अब श्रीरंगम् के ५ मील उत्तर कण्णनपुर (कण्णनूर) में छावनी डाल दी और कर्णाटक पठार के साथ लगा हुआ कावेरी तक का तमिळ प्रदेश दखल कर लिया। तभी ओरंगल के काकतीय राजा गणपति (१२००–१२६० ई०) ने नेल्लूर से कांची तक का उत्तरी तमिळ प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया।

§ ९. **जटावर्मा पाड्य**—राजेन्द्र ने गणपति से अपना इलाका वापिस लिया, और सोमेश्वर की भी कुछ रोकथाम करके २१ बरस राज किया (१२४६–६७ ई०)। परन्तु इस बीच मारवर्मा का दूसरा उत्तराधिकारी जटावर्मा सुन्दर पाण्ड्य (१२५१–७४ ई०) अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। उसने पहले केरल को अधीन किया, फिर कावेरी कांठे पर चढ़ाई कर राजेन्द्र चोळ को करद बनाया। उसने सोमेश्वर को कण्णनूर से भगा दिया और कोंगुदेश को जीत लिया। उधर उसके भाई वीर पाण्ड्य ने इस समय तक सिंहल को जीत लिया था। उत्तर तरफ बढ़ कर जटावर्मा ने कांची जीत ली और नेल्लूर तक समूचे तमिळ प्रदेश पर दखल किया। उत्तरी पेण्णार को पार कर उसने तेलंग गणपति को उसी के देश में दबाया और कृष्णा पार भगा दिया। इसी समय गणपति की मृत्यु हुई और उसकी बेटी रुद्रम्मा आन्ध्र देश की गद्दी पर बैठी। जटावर्मा ने उससे लड़ाई नहीं की।

लौटते हुए उसकी सोमेश्वर से फिर लड़ाई हुई, जिसमें सोमेश्वर खेत रहा (१२६२ ई०)। तब जटावर्मा ने श्रीरंगम् के मन्दिर में प्रवेश कर उसे १८ लाख सुवर्ण मुद्रा का दान किया। श्रीरंगम् त्रिचनापल्ली का उपनगर

है, जो कावेरी के बीच एक टापू पर बसा है। समूचा नगर अब रंगनाथ के विशाल मन्दिर के सात परकोटों के बीच आबाद है और उस मन्दिर का एक अंश जान पड़ता है। जटावर्मा और उसकी रानी चेरकुलवल्ली की सादी मूर्त्तियाँ उस मन्दिर में अब भी मौजूद हैं।

§१०. **रुद्रम्मा**—रानी रुद्रम्मा ने आन्ध्रदेश पर ३१ बरस राज किया (१२६०–९१ ई०)। उसके बाद अपने पोते प्रतापरुद्र को राज दे स्वयं निवृत्त हो गयी। मार्को पोलो नामक इतालवी यात्री १३वीं शताब्दी के अन्त में स्थल के रास्ते इतालिया से चीन तक गया था। कुबलै खान मंगोल के दूत-मंडल में वह भारत भी आया। रुद्रम्मा के बारे में वह लिखता है कि वह बड़ी विवेकशील और न्यायपरायण स्त्री थी, "और उसकी प्रजा उसे ऐसा चाहती थी जैसा पहले किसी राजा या रानी को नहीं।...और इस राज्य में बढ़िया नफीस कपड़े बनते हैं, जो सचमुच मकड़ी के जाले से लगते हैं। दुनिया का कोई राजा या रानी ऐसा नहीं है जो उन्हे पहन कर खुश न हो।" रुद्रम्मा के राज्य में हीरे की खानें थीं। उन हीरों के विषय में मार्को पोलो ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं।

§११. **कुलशेखर पांड्य**—जटावर्मा के उत्तराधिकारी मारवर्मा कुलशेखर ने १३११ ई० तक राज्य किया। वह तमिळ देश का अत्यन्त समृद्धि का युग था। अरब लोग, जो उस समय युरोप और चीन के बीच मुख्य व्यापारी थे, तमिळनाड को संसार का सबसे समृद्ध देश मानते थे। खम्भात से कनारा तक का भारत का पच्छिमी तट उन्हें पसन्द न था, क्योंकि वहाँ समुद्री डाकुओं के अनेक अड्डे थे, और उसके अलावा वहाँ यह कायदा था कि यदि कोई जहाज विप्रणष्ट होकर किसी बन्दर पर आ लगे तो वह वहाँ के राजा का हो जाता था। इसके विपरीत केरल, तमिळ और आन्ध्र तटों पर विदेशी व्यापारियों को अनेक सुविधाएँ थीं। राजा गणपति के वे शासनपत्र अभी तक मौजूद हैं जिनमें उसने विदेशी व्यापारियों को आश्वासन दिलाया है कि उसके राज्य में उनसे 'कूपशुल्क' (देश की सीमा पर ली जाने वाली चुंगी) के सिवाय और कोई चुंगी न ली जायगी। वैसी ही सुविधा तमिळदेश मे भी थी। इसी से "कूलम (कोल्लम) से निलावर (नेल्लूर) तक" के प्रदेश को अर्थात् केरल और

तमिळनाड को अरब लोग "मअबर" यानी रास्ता कहते थे—वह उनके लिए चीन जाने का खुला रास्ता था। इस मअबर में तीन बड़े बन्दरगाह तब प्रसिद्ध थे—रामेश्वरम् का पट्टण, पेरीपट्टणम् तथा ताम्रपर्णी के मुहाने में कायल-पट्टणम्। "चीन और महाचीन की अद्भुत कला की वस्तुएँ और हिन्द और सिन्ध की सब उपज लादे हुए जंक कहलाने वाले जहाज, जो पानी पर हवा के पंख फैलाये हुए पहाड़ से लगते थे", सदा इन पट्टणों को घेरे रहते थे। और मुज, इरान और अरब से वहाँ बड़ी संख्या में घोड़े आते थे। राजा कुलशेखर हर साल १० हजार घोड़े इरान और अरब से खरीदता था, जिसके लिए इरान की खाड़ी में कैस टापू के सरदार मलिक जमालुद्दीन को ठेका दिया गया था। जो घोड़े राह में मर जाते उनके दाम भी कुलशेखर चुका देता था। जमालुद्दीन की एक कोठी कायलपट्टणम् में थी, जहाँ उसका भाई रहता था। उसे इन पट्टणों के कूपशुल्क का ठेका भी दिया गया था। अरब लोगों की दृष्टि में "इराक की खाड़ी के द्वीपों और इराक से रूम और युरोप तक सब देशों की समृद्धि मअबर पर निर्भर थी।" राजा "कलेस देवर" (कुलशेखर देव) के न्याय्य शासन की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की है।

§१२. बघेल-सोलंकियों का उदय—आन्ध्र और महाराष्ट्र के उत्तर तरफ उड़ीसा के गंगों और गुजरात के चालुक्यों का सम्बन्ध उत्तर और दक्खिन दोनों से था। जब अल्तमश गुजरात पर चढ़ाई करना चाहता था उसी समय देवगिरि का राजा सिंघण भी उसपर घात लगाये था। भोला भीम के मन्त्री वीरधवल ने दोनों से गुजरात को बचाया, परन्तु उसके उत्तराधिकारी से १२४३ ई० में वीरधवल के बेटे ने राज्य छीन लिया। वीरधवल भी गुजरात के सोलंकियों की एक दूसरी शाखा में से था। उस शाखा के पास व्याघ्रपल्ली या बघेल गाँव की जागीर थी। इस कारण ये बघेल सोलंकी कहलाते हैं।

§१३. चेदि राज्य का टूटना—महाराष्ट्र और उड़ीसा के बीच त्रिपुरी का चेदि राज्य था, जिसकी स्वाभाविक सीमा रेवा नदी से मगध के दक्खिन पच्छिम तक थी। उस राज्य पर कोई बड़ा आक्रमण नहीं हुआ, तो भी १२वीं सदी के अन्त में यह आप से आप छिन्न भिन्न हो गया, और उसके इलाकों

में जहाँ-तहाँ छोटे मोटे सरदार खड़े हो गये। उत्तरपूरबी चेदि में गुजरात के बघेल सोलंकियों की एक शाखा जा बसी, जिससे वह प्रदेश बघेलखंड कहलाने लगा। इन बघेलों ने जझौती के चन्देलों से कालंजर ले लिया। महाकोशल अर्थात् छत्तीसगढ़ में चेदि राजवंश की एक छोटी शाखा राज्य करती थी। उनकी राजधानी रत्नपुर थी।

§१४. **मालवे के परमार और जझौती के चन्देल**—बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गुजरात के कुमारपाल चालुक्य ने मालवे को जीत लिया था [७,६ § ६] पर तेरहवीं शताब्दी में वहाँ के परमार राजा ने फिर स्थानीय सरदार रूप में सिर उठाया। दिल्ली सल्तनत और मालवे के बीच रणथम्भोर का चौहान राज्य बना रहने से इनकी स्थानीय स्वाधीनता बनी रही।

जझौती के चन्देल राज्य से पृथ्वीराज ने जब धसान नदी तक का प्रदेश ले लिया था तभी से उसका सम्बन्ध उत्तर के मैदान से टूट गया था। फिर उससे कालपी का मैदान और कालंजर भी छिन गया, तो भी बाकी इलाके में चन्देलों की शक्ति बनी रही। दिल्ली के गुलाम वंश के समकालीन जझौती में केवल दो राजाओं त्रैलोक्यवर्मा (१२१२-६१ ई०) और वीरवर्मा (१२६१-८६ ई०) ने राज्य किया।

§१५. **गंग, सेन, कर्णाट राज्य**—उडीसा के गंग राजा इस शताब्दी मे बड़े प्रबल रहे। आन्ध्र और छत्तीसगढ़ की सीमा से हुगली जिले के मन्दारण गढ़ तक उनका राज्य था। उनकी राजधानी जाजपुर थी, जिसके नाम से फारसी लेखक उन्हें जाजनगर के राजा कहते थे। सुवर्णग्राम के सेन राजा इस शताब्दी भर दुर्बल रहे। गौड के तुर्कों के अलावा अराकान के मग भी उनके राज्य पर धावे मारते रहे। १२३८ ई० में कामरूप राज्य से, जैसा हम अभी देखेंगे, पूरबी असम छिन गया और बंगाल में भी वह राज्य अन्तिम साँस ले रहा था। तिरहुत मे नान्यदेव के वंशज कर्णाट राजाओ ने दिल्ली और लखनौती के बीच खुले मैदान मे अपनी स्वतन्त्रता बनाये रक्खी।

§१६. **कश्मीर और अन्य पहाड़ी राज्य**—कश्मीर राज्य का इस युग का पूरा इतिहास उपलब्ध है। उससे प्रतीत होता है कि वहां के राजा और

राज्यनेता क्षुद्र बातों में उलझे रहे। कश्मीर की सेना में भाड़ैत तुर्क सैनिकों की काफी संख्या थी। राजा लक्ष्मण के दुर्बल प्रशासन (१२७३-१२८६ ई०) के अन्तिम अंश में "कज्जल" नामक 'तुरुष्क' (तुर्क) सरदार ने उपद्रव किया। जिससे राज्य के शासनयन्त्र को लकवा मार गया। वह उपद्रव अगले राजा के समय में भी जारी रहा।

कश्मीर के पूरब नेपाल तक पहाड़ में छोटे-छोटे हिन्दू राज्य बने रहे, पर उन सभी का जीवन अपने संकीर्ण दायरों में ही बन्द रहा।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ अल्तमश के कौन विजय स्मारक सिक्कों से क्या सिद्ध होता है? वे सिक्के किस घटनावली के परिणामस्वरूप निकाले गये?

२ चंगेज खान कौन हुआ? उसने मध्य एशिया में क्या परिवर्तन किया? भारत के किस अंश तक वह आया? उसके आने का प्रभाव भारत पर क्या पड़ा?

३ मेवाड़ के गुहिलोत कौन थे? वे पहले पहल कब कैसे प्रसिद्धि में आये?

४ कोणार्क मन्दिर किस राजा ने बनवाया? उस राजा के विषय में आप और क्या जानते हैं?

५ १३वीं शताब्दी की किन्हीं दो ऐसी रानियों का वृत्तान्त लिखिए जिन्होंने भारत के किसी बड़े प्रदेश पर राज किया हो।

६ दिल्ली के गुलाम सुल्तानों के युग में पंजाब की स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

७ दीपालपुर दिल्ली सल्तनत का सीमान्त नाका कैसे था? वह किस नदी के तट पर था? अब उसके तट पर क्यों नहीं है?

८ अरब लोग 'मअबर' किस प्रदेश को कहते थे? वहां के राजा का संक्षिप्त हाल लिखकर बताइए कि इराक, रोम और योरप तक सब देशों की समृद्धि 'मअबर' पर क्यों निर्भर था?

९ चेदि राज्य कब और क्यों टूटा? उत्तर पूर्वी चेदि का नाम बघेलखंड किस कारण पड़ा।

१० निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) लोहर (२) मेर (३) बलबन की लखनौती चढ़ाई (४) बघेल सोलंकी (५) जाजनगर (६) कज्जल तुरुष्क (७) मार्को पोलो।

११ तेरहवीं शताब्दी में निम्नलिखित के इतिहास का संक्षिप्त ब्यौरा दीजिए—
(क) द्राविड़ भाषी भारत (ख) चेदि और अन्तर्वेद (ग) उड़ीसा, बंगाल, बिहार।

अध्याय ३

मंगोलों का विश्व-साम्राज्य और परला हिन्द

§१. मंगोल साम्राज्य का विस्तार—चंगेज खान सन् १२०६ में मंगोलो का खान बना, और १२१६ ई० तक उसने उत्तरी और मध्य एशिया से पच्छिमी एशिया तक सब तुर्क राज्यों को उखाड़ फेंका। १२२७ ई० में उसकी मृत्यु के समय मंगोल साम्राज्य प्रशान्त महासागर से रूस, बुलगारिया और हुनगारी के अन्दर तक पहुँच चुका था। अफगानिस्तान लेने के बाद चंगेजखाँ ने भारत हो कर कामरूप के रास्ते वापिस जाने का इरादा किया, पर हमारे देश की गर्मी वह न सह सका और लौट गया। अफगानिस्तान में अब जो हजारा नाम के लोग हैं, वे चंगेज के मंगोलों के ही वंशज हैं।

चंगेज़ के वंशज उसी की तरह प्रतापी हुए। चंगेज़ के बाद उसके बेटे ओगोतइ ने राज्य किया (१२२७-४१ ई०), फिर ओगोतइ के भतीजे मानकू खान ने (१२४१-५६ ई०), और उसके पीछे मानकू के भाई कुबलैखान ने (१२५६-६४ ई०)। इनके समय मे मंगोल साम्राज्य प्रशान्त महासागर से बाल्तिक सागर और दक्खिनी चीन सागर तक फैल गया। साम्राज्य की राजधानी मंगोलिया में ही रही।

सीता तारीम का कांटा, वंक्षु-सीर का दोआब, बलख और गजनी प्रान्त चंगेज के बेटे चगतइ को दिये गये, जिससे उस सारे देश का नाम ही बाद में चगताइ पड़ गया, और वहाँ के तुर्क भी चगतइ-तुर्क कहलाने लगे। ओगोतई और मानकू के समय सारा चीन भी जीत लिया गया। मानकू के भाई हलाकू खान की राजधानी तबरेज (ईरान) मे थी। उसने १२५८ ई० में बगदाद खलीफा मोतसिमबिल्ला का वध कर खिलाफत की जड़ उखाड़ डाली। कु का दूत-सम्बन्ध १२८६ ई० तक दक्खिन भारत के राज्यो से भी स्थापित हो गया। १२८६ ई० में "मअबर" के राजा मारवर्मा कुलशेखर ने कुबलै के पास अपने दूत भेजे। कुबलै ने अपना बेड़ा सुमात्रा-जावा को जीतने भी भेजा (१२६३ ई०)। वे द्वीप उसके साम्राज्य में शामिल तो न हुए, पर उसकी

चढाई से वहाँ के पुराने राज्य समाप्त हो गये ।

§२ परले हिन्द और असम में चीन-किरात जातियों का आना—मंगोलों की इस प्रगति से चीन और तिब्बत की अनेक जातियों में भी खलबली मच गई, और वे दक्खिन की ओर बढ़ीं । बरमा स्याम-क्वेतनम प्रायद्वीप में चीन-किरात जातियों की प्रधानता तभी से हुई । उससे पहले वहाँ आग्नेय लोग थे, जिनमें भारतीय प्रवासी खूब घुल मिल चुके थे । चीन से अब आनेवाली जातियों में दै (तइ)* और शान उल्लेखनीय हैं । कम्बुज राष्ट्र का पच्छिमी अंश अब उनके कारण दइ देश या स्याम कहलाने लगा । कम्बुज राष्ट्र का उत्तरी प्रान्त सुखोदय था [७,७§३]। तेरहवीं शताब्दी के मध्य में एक दै सरदार ने उसे जीत लिया । उस सरदार ने अपना विरुद (राजकीय उपनाम) इन्द्रादित्य रक्खा । उसके बेटे राम खामहेंग (लग० १२८३–१२९९ ई०) ने मेकोङ नदी और मलाया प्रायद्वीप तक के प्रदेश जीते ।

हिन्द चीन प्रायद्वीप के इन नये विजेताओं ने पुराने हिन्दू राज्य दबा या मिटा दिये, पर स्वयं उनके धर्म, सभ्यता और लिपि की दीक्षा ले ली । उसी शान जाति की एक शाखा अहोम ने कामरूप का पूरबी भाग प्राग्ज्योतिष जीत लिया; जिससे वह प्रान्त असम कहलाने लगा । अगली शताब्दी में कामरूप का पच्छिमी अंश भी जीता गया, पर अहोम लोग स्वयं धीरे धीरे हिन्दुओं में घुल मिल गये । असम में अब भी फूकन बरुआ आदि जो उपनाम हैं, वे अहोमों के ही हैं ।

§३ मंगोलिया में बौद्ध मत का प्रचार—मध्य युग के संसार की अन्य जातियाँ जब अपने अपने तंग दायरे में कूपमण्डूकों की तरह सीमित और सन्तुष्ट थीं, तब मंगोलों ने एक विश्व साम्राज्य खड़ा किया । भूमण्डल की किसी भी रुकावट की उन्होंने परवा न की । अनेक प्रकार की सभ्यताओं, विचारों और

---

* स्यामी लिपि भारतीय वर्णमाला में ही लिखी जाती है [१,२९५]। स्यामी अपने राष्ट्र का नाम ठीक दै लिखते हैं, उसका उच्चारण तै या तइ करते हैं, अंग्रेजी में नकल करने में वही थाइ बन जाता है। अपने देश को वे प्रदेस दै अर्थात् दै प्रदेश कहते हैं, जिसका अंग्रेजी रूपान्तर थाइलैंड बन गया है।

धर्मों के सम्पर्क में आने के कारण उनकी दृष्टि भी बड़ी उदार हो गई थी।

मुहम्मद-बिन-बख्तियार ने जब बिहार जीता तब विक्रमशिला महाविहार का आचार्य श्रीभद्र नामक कश्मीरी था। वह भाग कर नेपाल पहुँचा, और वहाँ से तिब्बत के साक्य विहार में बुलाया गया। उसका तिब्बती शिष्य कुङ्गर्ग्येंछन पीछे साक्य विहार का महन्त बना। चगेज ने जब अफगानिस्तान जीता तभी कुङ्गर्ग्येंछन मंगोलिया का धर्म विजय करने लगा (१२२२ ई०)। सम्राट् ओगोतइ उसका चेला बन गया। सम्राट् मानकू खान ने अपनी राजधानी में
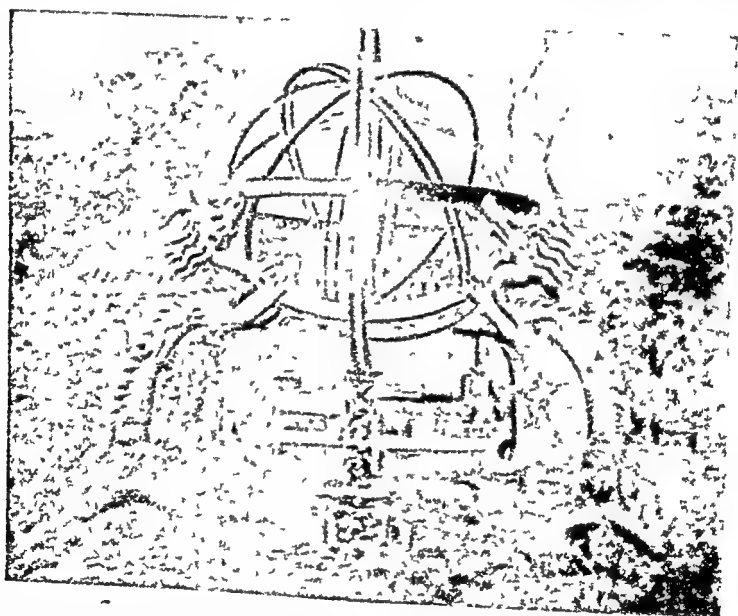
चीन की राजधानी पेकिङ में कुबले खान की बनवाई वेधशाला के खँडहरों में काँसे का गोल यन्त्र (अन्तरिक्ष में राशियों की आपेक्षिक स्थिति देखने का यन्त्र)—मंगोलों के विज्ञान-प्रेम का प्रमाण।

एक सभा बुला कर यह तय करना चाहा कि संसार का कौन सा मत सब से अच्छा है। पहले तो उस सभा में ईसाई और इस्लाम मतों की जीत होती दिखाई दी, पर अन्त में कुङ्गर्ग्येंछन के भतीजे फग्स्पा का भाषण सुन कर मानकू ने कहा, "हाथ की हथेली से जैसे पाँचों अँगुलियाँ निकली हैं, वैसे ही बौद्ध मत से

सन मन निकले हैं।" कुबलै ने फग्पा को अपना राजगुरु बनाया। तिब्बत से बौद्ध ग्रन्थों के मगोल भाषा में अनुवाद कराये गये, और फग्पा ने भारतीय लिपि मे मगोल भाषा लिखने की रीति भी निकाली। मगोल सम्राटों ने अपने इन गुरुओं को तिब्बत मे जागीरें दीं, जिससे वहाँ लामा शासन की नींव पड़ी।

मगोलों द्वारा चीन से बारूद का ज्ञान युरोप पहुँचा, जिससे अगले युग में ससार की काया पलट गई। मध्य युग के पूरबी और पच्छिमी संसार की सभ्यताएँ जब निश्चेष्ट और मन्द हो चुकी थीं तब मगोलों ने उन्हें मानो मथ कर उनमें गति और जीवन पैदा किया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ तेरहवीं शताब्दी के मगोल साम्राज्य का विस्तार कहां से कहाँ तक था?
२ चगताई देश कौन सा था? उसका वह नाम कैसे पड़ा?
३ अहोम लोग भारत के किस प्रदेश में कब कैसे कहाँ से आये?
४ चीन में मगोल साम्राज्य स्थापित होने से पहले हिन्द में क्या परिवर्त्तन हुए?
५ मंगोलिया में बौद्ध मत का प्रचार कैसे हुआ?

अध्याय ४

सल्तनत का चरम उत्कर्ष

(१२६०-१३२५ ई०)

§१ **जलालुद्दीन खिलजी, मालवे का विजय**—जलालुद्दीन दिल्ली की गद्दी पर बैठा तो वह ७० बरस का था। वह स्वभाव का नरम और क्षमाशील था। सन् १२९१ मे उसने रणथम्भोर पर चढ़ाई की। वहाँ सफलता की आशा न देख वह उज्जैन की तरफ चला गया और उसे लूटने में सफल हुआ। दो बरस बाद उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने मालवे पर फिर चढ़ाई करके भेलसा अर्थात् पूरबी मालवा पर अधिकार कर लिया। उसी समय से मालवा दिल्ली का सूबा बना। इधर १२९२ ई० में मगोल सतलज पार कर

सुनाम (पटियाला के पास) तक बढ़ आये, किन्तु वहाँ उनकी हार हुई, और उनमें से तीन हजार ने मुसलमान बन कर सुल्तान की सेवा स्वीकार की।

§२. **अलाउद्दीन की महाराष्ट्र चढ़ाई**—मालवे का मुख्य अंश जीता जाने से गुजरात और दक्खिन का सीधा रास्ता तुर्कों के हाथ आ गया। आजकल के इलाहाबाद जिले का मुख्य स्थान तब कडा-माणिकपुर था। वह दिल्ली सल्तनत का सब से पूरबी प्रदेश था, क्योंकि बलबन की मृत्यु पर उसका

देवगिरि का गढ़

बेटा लखनौती में स्वतन्त्र हो गया था और बिहार लखनौती के साथ था। अलाउद्दीन कडा का हाकिम था। वह महत्त्वाकांक्षी था। पहले उसने बंगाल जीतने का इरादा किया, पर पीछे उसे दक्खिन जीतना उपयुक्त मालूम हुआ, क्योंकि भारत के हिन्दू राज्य भीतर से सब थोदे हो चुके थे और उनमे खूब धन सञ्चित था। मालवे की पूरबी सीमा पर चेदि राज्य का चन्देरी प्रदेश (=आज-कल के सागर दमोह जिले) था। आठ हजार सेना के साथ चन्देरी पर चढ़ाई करने के बहाने अलाउद्दीन दक्खिन की ओर बढ़ा और चन्देरी से इलिचपुर होते

हुए एकाएक देवगिरि को जा घेरा (१२९४ ई०)। वहाँ के राजा रामदेव ने ख्याल भी न किया था कि उस पर यों एकाएक आक्रमण हो जायगा। देवगिरि का पहाड़ी गढ अत्यन्त दुर्भेद्य बना था, पर उसमें रसद ठीक से जुटा कर न रक्खी गई थी। रामदेव ने हार कर इलिचपुर का इलाका (उत्तरी बराड़) और बहुत सा धन अलाउद्दीन को दिया। अपनी उस लूट को लिये वह कड़ा वापिस आया। वहाँ उसने सुलतान को वह लूट भेंट करने के बहाने बुलाया। बूढा चचा जब उसे छाती से लगा रहा था तब उसे कत्ल करा दिया और खुद दिल्ली का सुलतान बन बैठा (१२९५ ई०)।

§३ गुजरात-राजस्थान-विजय—राज सँभालते ही अलाउद्दीन को मगोलों का सामना करना पड़ा। १२९६ इ० में एक लाख मगोल मुलतान, पजाब और सिन्ध जीतने को चढ आये। सेनापति जफरखाँ ने जलन्धर के पास उन्हें हरा दिया और वे लौट गये। मगोलो के आक्रमण अलाउद्दीन को अपने काम से न टाल सके।

१२९७ ई० मे उसने अपने भाइ उलूगखाँ और सेनापति नसरतखाँ को गुजरात पर चढाइ करने भेजा। मालवे से उन्होंने मेवाड़ के रास्ते बढना चाहा, किन्तु राजा समरसिंह ने उन्हे मार भगाया। तब मेवाड़ के दक्खिन घूम कर वे आसावल (आशापल्ली) जा पहुँचे। यह वह स्थान है जहाँ अब अहमदाबाद बसा है। वहाँ से उन्होंने अणहिलपाटन पर चढाई कर उसे ले लिया। राजा कर्ण, जिसे गुजरात में करण घेलो (पगला कर्ण) कहते हैं, भाग कर देवगिरि चला गया। तुर्कों ने खम्भात का प्रदेश खूब लूटा और उजाड़ा।

गुजरात की चढाई स लौटते हुए नौमुस्लिम मगोलों ने विद्राह किया। वे बडी सख्या मे मारे गये और बहुत से जहाँ-तहाँ भाग गये। अलाउद्दीन ने दिल्ली म उनकी स्त्रियों और बच्चों से बदला चुकाया। १२९९ इ० मे फिर दो लाख मगोल सेना कुतलग नामक सरदार के नेतृत्व म दिल्ली तक आ पहुँची। इस बार उन्होंने रास्ते में कहीं लूटमार न की क्योंकि दिल्ली को जीत लेना ही उनका उद्देश था। घोर युद्ध के बाद उनकी हार हुई। इस युद्ध मे सेनापति ज़फरखाँ काम आया।

मालवा और गुजरात के दिल्ली साम्राज्य में शामिल हो जाने से राजस्थान के राज्य तीन तरफ से घिर गये। अलाउद्दीन ने एक तरफ इन राज्यों को जीतना तथा दूसरी तरफ ताप्ती के आगे दक्खिन की ओर बढ़ना अपना उद्देश्य बना लिया। राजस्थान में रणथम्भोर का चौहान राज्य उसका सबसे पहला पड़ोसी था। वहाँ के राजा हम्मीर ने इसी समय एक भागे हुए मंगोल सरदार को शरण दी, और अलाउद्दीन के माँगने पर उसे लौटाने से इनकार किया। अलाउद्दीन ने तब उस पर चढ़ाई की। एक बरस के कड़े युद्ध के बाद हम्मीर के मारे जाने पर गढ़ सुलतान के हाथ लगा। सेनापति नसरतखाँ भी इस युद्ध में काम आया (१३०१ ई०)। रणथम्भोर की जीत से दिल्ली सल्तनत की सीमा मेवाड़ से जा लगी। समरसिंह के बेटे रत्नसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर बैठे अभी कुछ महीने ही बीते थे कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ को घेर लिया (१३०२ ई०)। ६ महीने घिरे रहने के बाद रसद और पानी चुक गये तो गढ़ अलाउद्दीन के हाथ आया। रत्नसिंह मारा गया और उसकी रानी पद्मिनी ने बहुत सी स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का राज्य अपने बेटे खिजरखाँ को दे कर उसका नाम खिजराबाद रक्खा।

§ ८. **मंगोलों के आक्रमण**—अलाउद्दीन चित्तौड़ को मुश्किल से ले पाया था कि दिल्ली से मंगोलों की नई चढ़ाई की खबर आई। तरगी नामक मंगोल सरदार ने बड़ी सेना के साथ जमना किनारे डेरा आ डाला और दिल्ली को घेर लिया। अलाउद्दीन के आने पर वह हट गया। मंगोलों को किलों को सर करने का अभ्यास न था, इसी से वे दिल्ली के घेरे से ऊब गये थे। १३०४ ई० में फिर एक मंगोल चढ़ाई हुई। तब अलाउद्दीन ने गाजी तुगलक नामक सेनापति को मंगोलों को रोकने के लिए दीपालपुर के सरहद्दी थाने पर नियुक्त किया। उसके बाद भी दो बार मंगोल फिर सिन्ध पार कर आये, पर गाजी तुगलक ने उनका दृढ़ता से मुकाबला किया, और फिर तो उसने कई बार काबुल और लमगान तक उनका पीछा किया।

सन् १३०५ से १३११ ई० तक अलाउद्दीन ने मारवाड़ पर सेनाएँ भेज कर सिवाना, जालोर, भिन्नमाल, सांचोर आदि छोटे-छोटे राज्य जीत लिये,

तथा जयसलमेर को भी लूटा।

§५ **मलिक काफ़ूर की दक्खिन चढ़ाइयाँ**—गुजरात की चढ़ाई में अलाउद्दीन की सेना ने जो दास पकड़े थे उनमें से दो अछूत थे जो मुसलमान बनने पर मलिक काफ़ूर और नासिरुद्दीन ख़ुसरो कहलाये। काफ़ूर वेड जात का था जो गुजरात में बर्त्तन माँजने का काम करते हैं। उसमें सेनानेतृत्व की स्वाभाविक योग्यता थी। वह हिन्दू रहता तो बर्त्तन ही माँजता रहता, मुसलमान बनने पर उसकी महत्त्वाकांक्षा जाग उठी और उसे अपनी योग्यता दिखाने का अवसर मिला। राजा रामदेव ने इलिचपुर का कर भेजना बन्द कर दिया था, इसलिए १३०६ ई० में अलाउद्दीन ने एक बड़ी सेना मलिक काफ़ूर के नेतृत्व में उधर रवाना की। नासिक के उत्तर और ताप्ती के दक्खिन का पहाड़ी प्रदेश जो महाराष्ट्र का उत्तरपच्छिमी छोर है, बागुल्ल देश या बागलान कहलाता था। गुजरात से भाग कर कर्ण सोलंकी रामदेव के राज्य में बागलान के साल्हेरगढ में रहता था। मलिक काफ़ूर ने मालवा और गुजरात होते हुए वहाँ कर्ण को जा घेरा और हराया। देवगिरि का यादव राजा रामदेव और उसका बेटा शंकर भी कैद हो कर दिल्ली पहुँचे, और अधीनता मानने पर अपने देश वापिस भेजे गये। इलिचपुर प्रान्त काफ़ूर ने दखल कर लिया।

दूसरे बरस काफ़ूर को वारंगल की चढ़ाई पर भेजा गया (१३०८ ई०)। एक बरस गढ में घिरे रहने के बाद राजा प्रतापरुद्र ने बहुत सा खजाना और वार्षिक कर का वचन दे कर छुटकारा पाया। एक हजार ऊँटों पर उस लूट को लादे हुए काफ़ूर दिल्ली वापिस पहुँचा। १३१० ई० के अन्त में वह फिर रवाना हुआ और धोरसमुद्र के राजा वीर बल्लाल को हरा कर उससे भारी रकम वसूल की और अधीनता का वचन लिया।

तमिळ देश के राजा कुलशेखर ने अपने छोटे बेटे वीर पाण्ड्य को अधिक योग्य जान कर उत्तराधिकारी बनाया था। इस पर बड़े बेटे सुन्दर पाण्ड्य ने पिता को मार डाला (१३११ ई०), और जब वीर पाण्ड्य ने उसपर चढ़ाई की तो वह मलिक काफ़ूर की मदद लेने पहुँचा। इस दशा में काफ़ूर ने 'मअबर' पर चढ़ाई की। घाट पार कर वह कावेरी-काठे में उतरा और कण्णनूर पर छावनी डाली।

वहाँ से श्रीरंगम्, चिदम्बरम् आदि की बस्तियों और मन्दिरों को लूटते हुए उसने तिरुचिरापल्ली से मदुरा पर चढ़ाई की, और मदुरा से पट्टणम् अर्थात् रामेश्वर-पट्टण के सामने तक जा पहुँचा, जहाँ उसने एक मस्जिद बनवाई। वीर पांड्य इस बीच जंगलों में भाग गया था। मदुरा में कुछ सेना छोड़ कर बहुत बड़ी लूट के साथ १३११ ई० के अन्त में काफ़ूर दिल्ली पहुँचा।

§ ६. रविवर्मा कुलशेखर—मलिक काफ़ूर के तमिळनाड से लौटते ही केरल के कूपक-वंशी राजा रविवर्मा कुलशेखर ने समूचे तमिळ देश पर अधिकार कर लिया। मदुरा में दिल्ली की जो सेना थी, वह उस शहर में घिर गई। वीर पांड्य कोंकण भाग गया। रविवर्मा की राजधानी कोल्लम्* थी।

देवगिरि के राजा शंकर ने खिराज देना बन्द कर दिया और पिछली चढ़ाई में मदद भी न की थी। इस कारण १३१३ ई० में काफ़ूर ने चौथी बार दक्खिन पर चढ़ाई कर उसे हराया और समूचे महाराष्ट्र को लूटा।

§ ७. अलाउद्दीन का शासन—अलाउद्दीन कठोर शासक था। तुर्क सरदारों की उच्छृङ्खलता दबाने के लिए उसने उनके पारस्परिक प्रीतिभोजों तक को बन्द कर दिया। उसने स्वयं शराब पीना छोड़ा और राज्य में उसकी कड़ी मनाही कर दी। उसने सब मुफ्तखोरों की वक्फ, जागीरें आदि ज़ब्त कर लीं। पिछले सुल्तान शरीअत अर्थात् इस्लामी कानून के अनुसार शासन करते थे; उसने अपने राजकीय अधिकार को उससे भी ऊँचा मान कर स्वतन्त्रता से नियम बनाये। वह अपने जासूसों द्वारा अपने हाकिमों के कार्यों का पूरा पूरा पता रखता था। उसकी सेना तो सुसंघटित थी ही।

दोआब के हिन्दू जमींदारों को भी उसने दबाया, और उनपर वसूली का ५० फीसदी तक कर लगा दिया। कहते हैं उनकी यह हालत हो गई कि वे न घोड़े पर चढ़ सकते और न अच्छे कपड़े पहन सकते थे। व्यापार और बाज़ारों का उसने पूरा नियन्त्रण किया, यहाँ तक कि चीजों के भाव तक तय कर दिये। वैसा करने का प्रयोजन शायद यह था कि जमींदार और बिचवानिये गरीब प्रजा

---

* कोल्लम् का बिगाड़ा हुआ अंग्रेज़ी रूप क्विलोन (Quilon) है।

को न लूट पावें। कहते हैं इन उपायों से राज्य में सुभिक्ष रहा।

§८ लखनौती सल्तनत का विस्तार—बलबन के मरने पर जब कैकोबाद दिल्ली की गद्दी पर बैठा था तब उसका बाप नासिरुद्दीन महमूद लखनौती में स्वतन्त्र हो गया था। दिल्ली राज्य के विस्तार के साथ साथ लखनौती राज्य का भी विस्तार हुआ। बिहार भी लखनौती के सुलतानों के अधीन रहा। लखनौती के इन सुलतानों के राज्यकाल यों हैं—

नासिरुद्दीन महमूद
(१२८७-९१ ई०)

कैकौस (लग० १३०० ई० तक) — शम्सुद्दीन फीरोज़ (१३२२ ई० तक)

१२९८ ई० में दक्खिनी बंगाल का मुख्य नगर सातगाँव जीता गया। फिर शम्सुद्दीन फीरोज के प्रशासन में उसके नामी बेटे गयासुद्दीन बहादुर ने सोनारगाँव छीन कर सेन राजवंश को मिटा दिया। इस प्रकार बंगाल का मुख्य भाग लखनौती के अधीन हुआ। पूरब में सिलहट और त्रिपुरा, और दक्खिनी समुद्रतट पर यशोहर खुलना आदि इलाकों में छोटे-छोटे हिन्दू राज्य बने रहे। उत्तर बंगाल में कामरूप राज्य तो अहोमों के हाथों ख़तम हो गया, पर कामतापुर में एक हिन्दू राज्य बना रहा।

§ ९. तिरहुत का कर्णाट राज्य—यों जब बंगाल का बड़ा अंश लखनौती सल्तनत में चला गया और बिहार अर्थात् मगध (आजकल का केवल दक्खिनी बिहार) भी उसके अधीन था, तथा दिल्ली सल्तनत में मेवाड़ मारवाड़ जैसे दुर्गम प्रदेश भी सम्मिलित हो चुके और उसका प्रभाव आन्ध्र और कर्णाटक तक पहुँच गया, तब भी तिरहुत के खुले मैदान में जो दिल्ली और लखनौती के बीच सीधे रास्ते पर था, नान्यदेव के वंशज कर्णाट राजाओं ने अपनी स्वाधीनता बनाये रक्खी। तिरहुत की पच्छिमी और पूरबी सीमाओं पर कोई पहाड़ या मरुभूमि नहीं है, उसकी दक्खिनी सीमा केवल गंगा से बनती है।

हो चुका था। मालवा-सहित राजस्थान तथा कच्छ-काठियावाड़ के बिना गुजरात भी उसमें सम्मिलित थे। मालवे के पूरब लगा हुआ चन्देरी का सूबा (=सागर-दमोह जिले) भी, जो पुराने चेदि राज्य में था, गयासुद्दीन के अधीन था। दक्खिन में महाराष्ट्र और तेलगण दिल्ली साम्राज्य के अन्तर्गत थे और कर्णाटक (धोरसमुद्र) का राजा उसे कर देता था। 'मअबर' अर्थात् तमिळनाड का भी पराभव हो चुका था और उसपर दिल्ली साम्राज्य का दावा था। भारतवर्ष का मुख्य भाग जो दिल्ली के अधीन न हुआ था, वह था एक तो बंगाल, ओरंगल, चन्देरी और कड़ा-माणिकपुर के बीच का जिसमें जझोती, चेदि, छत्तीस-गढ़ (महाकोशल), झाड़खंड (छोटा नागपुर) और उड़ीसा सम्मिलित थे, तथा दूसरा कश्मीर से असम तक का उत्तरी पहाड़ी अंचल और कश्मीर के साथ लगा हुआ खोकरों का रावलपिंडी प्रदेश (पूरबी गन्धार)। सिन्ध भी इस समय वस्तुतः स्वतन्त्र था।

§१३. कश्मीर में डुल्च और रिंचन—कश्मीर में राजा लक्ष्मण के समय "कज्जल तुरुष्क" का जो उपद्रव शुरू हुआ वह उसके उत्तराधिकारी सिंहदेव के समय (१२८६-१३०१ ई०) भी लगातार जारी रहा जिससे सिंहदेव का अधिकार कश्मीर के पूरबी छोर की केवल लेदरी* दून में बचा। उसकी प्रजा उससे विरक्त हो गई, वह भी निर्लज्जता के काम करने लगा, जिससे अन्त में उसी के एक राज्याधिकारी ने उसका काम तमाम कर दिया।

सिंहदेव के बाद उसका भाई सूहदेव राजा हुआ। "वह राजा नाम का राक्षस देश की रक्षा करने के बहाने इसे उन्नीस बरस चार महीने और पाँच दिन (१३०१-१३२० ई०) खाता रहा!" लेकिन उसका राक्षसपन केवल अपनी निरीह प्रजा के लिए था। कज्जल के लम्बे उपद्रव से पड़ोस के विदेशी लुटेरों ने देख लिया कि कश्मीर में उन्हें रोकने वाला कोई नहीं है। १३१३ ई० में—जब मलिक काफूर महाराष्ट्र को लूट रहा था तभी—कश्मीर के उत्तर से "कर्म-

* अमरनाथ गुफा के नीचे की लिदर नदी जिसके तट पर पहलगाम नामक प्रसिद्ध स्वास्थ्यकर स्थान है।

सेन चक्रवर्ती का सेनापति" डुलुच या डुल्च ६० हजार सवारों के साथ कश्मीर आया। "कर्मसेन" प्रकटतः मध्य एशिया के किसी मगोल शासक के नाम का संस्कृत रूपान्तर है। उसी समय कश्मीर के पूरब भोट्ट देश (लदाख या बटस्कर) के राजकुल में मारकाट मची, जिससे बच कर रिंचन नामक भोट राजकुमार अपने बान्धवों और सैनिकों के साथ कश्मीर के पूरबी छोर पर आ रहा। डुल्च ने खुली लूटमार शुरू की, जिससे देश में पूरी अराजकता मच गई। उसके सैनिकों की देखादेखी देश के भीतर के दरद, खश, भोट्ट और तुर्क आदि सैनिक भी लूटमार में जुट गये। हजारों की संख्या में लोग मारे सताये और बन्दी बनाये गये। उन बन्दियों को बेच बेच कर पीछे लूटने वालों ने घोड़े खरीदे। उत्तरी और पूरबी घाटें डुल्च और रिंचन के सैनिकों द्वारा रुके होने के कारण हजारों लोग पच्छिम और दक्खिन रास्तों से कश्मीर छोड़ कर भागे। सवा सौ बरस बाद कश्मीरी ऐतिहासिक लिखता है कि लोग जिन गुफाओं में जा कर छिपे उनमें भी लुटेरों ने आग लगा दी, और उसके समय तक उन गुफाओं में हड्डियों के ढेर तथा धुएँ के दाग दिखाई देते थे। डुल्च केवल लूट के लिए कश्मीर आया था। उत्तरी बाटों के बरफ से बन्द होने से पहले वह चला गया।

तब रिंचन ने आगे बढ़ कर कश्मीर पर अपनी प्रभुता जमा ली। राजा सुहदेव की रानी या उसके नाम के सेनापति की स्त्री कोटा को रिंचन ने छीन लिया। सुहदेव तब डर कर राजधानी से भाग गया, रिंचन ने कोटा के साथ शासन अपने हाथ में कर लिया। उसने सहज जंगलीपन को खुली छूट मिल गई। उसने एक कश्मीरी शैव आचार्य से शैव मत की दीक्षा लेनी चाही, पर रिंचन के विदेशी होने के कारण उस आचार्य ने "उसपर अनुग्रह नहीं किया"। बाद में रिंचन का लड़का मुसलमान हो गया।

सुहदेव की मृत्यु के बाद रिंचन स्वयं गद्दी पर बैठा (१३२१ ई०)।

कश्मीर के इन बुरे दिनों में वहाँ ताहराज का बेटा शाहमेर या शाह मीर नामक व्यक्ति था। उसका पूर्वज लकार (अलकार) चक्क प्रायः एक शताब्दी पहले दरद देश से कश्मीर दून आ कर बसा था। अलकार चक्क के

ने कण्णनूर को भी घेर लिया; तब मदुरा के सुल्तान ने उसपर हमला किया। अस्सी बरस का बूढ़ा बल्लाल उस युद्ध में काम आया (१३४२ ई०)। उसके बेटे विरूपाक्ष बल्लाल ने युद्ध जारी रक्खा। तीन बरस बाद वह भी खेत रहा। बुक्क के बेटे कुमार कम्पन ने तब अपने राजा की मृत्यु का बदला चुकाया, और समूचे तमिळ तट पर अधिकार कर लिया। केवल मदुरा शहर में सल्तनत बची रह गई।

होयसल राजवंश के समाप्त हो जाने से वोडियार हरिहर और बुक्क क्रम से कर्णाटक-तमिळनाड के राजा हुए। पाँचों वोडियार भाई अपने देश को स्वतन्त्र रखने का व्रत लिये हुए थे। विद्यारण्य और सायण नामक दो विद्वान भाई उनके परामर्शदाता थे।

इनकी देखादेखी प्रतापरुद्र के बेटे कृष्णप्पा नायक ने भी १३४५ ई० में ओरंगल राज्य की पुनःस्थापना की।

§ ४. **बंगाल सल्तनत का उदय**—१३३९ ई० में बंगाल भी स्वतन्त्र हो गया। सोनारगाँव-सातगाँव (पूर्वी और दक्खिनी बंगाल) में फखरुद्दीन नामक एक व्यक्ति सुल्तान बन बैठा। लखनौती की गद्दी सन् १३४६ ई० में शम्सुद्दीन इलियास ने छीन ली। उसने तिरहुत पर भी अधिकार कर लिया, और नेपाल की राजधानी काठमांडू पर चढ़ाई कर उसे लूटा (दिसम्बर १३४६ ई०)। उसके बाद उसने बिहार-बनारस तक कब्जा करना चाहा।

§ ५. **बहमनी सल्तनत का उदय**—गुजरात और महाराष्ट्र में बहुत से मुस्लिम सरदारों ने विद्रोह किया। मुहम्मद उन्हें दबाने के लिए १३४५ ई० में दिल्ली से निकला और छः बरस बाद उसी कोशिश में मरा। गुजरात का विद्रोह दबा कर वह देवगिरि पहुँचा। तब देवगिरि के विद्रोही कुलबर्गा भाग गये। तब गुजरात में फिर विद्रोह हुआ और मुहम्मद के उधर जाने पर दक्खिनी विद्रोहियों के नेता हसन गंगू या कांगू ने महाराष्ट्र में एक नये राज्य की नींव डाली। कांगू अपने को ईरान के सासानी सम्राट् बहमन का वंशज मानता था, इस कारण इस वंश का नाम बहमनी पड़ा। बहमनी राज्य की राजधानी पहले कुलबर्गा (कलबर्गा) और फिर बिदर (बदरकोट) में रही।

§६ सुराष्ट्र के चूडासमा—गुजरात का दूसरा विद्रोह दबा कर मुहम्मद ने सुराष्ट्र या सोरठ (काठियावाड) को जीतने की चेष्टाएँ कीं, पर चूडासमा वंश के राजा मंडलीक ने उसका बहादुरी से मुकाबला किया। गुजरात का विद्रोही सरदार सिंध भाग गया था। मुहम्मद ने तब सिंध पर चढाई की और वहां विद्रोही सुमरों से लडते हुए उसका देहान्त हुआ (१३५१ ई०)।

§७ कश्मीर की स्वतन्त्र सल्तनत का उदय—कश्मीर के उदयनदेव भोटिये [८, ४ § १३] के राज्यकाल के पन्द्रहवें बरस (१३३८ ई०) में फिर पच्छिम या उत्तर से "अचल" नामक सेनापति सेना के साथ आ घुसा। इस बार शाह मीर ने अपनी कुशलता से उसी से उसकी सेना को वापिस फिरवा दिया। अचल के आने पर उदयनदेव भोट भाग गया था, उसके अकेला रह जाने पर वह लौटा। पर अब उसे राज्य नहीं मिला। उसके पीछे कोटा शाह मीर की सहायता से स्वयं राज करने लगी थी। पाँच मास बाद वह शाह मीर को राज सौंप उसकी रानी बन गई (१३३९ ई०)।

दिल्ली में फीरोजशाह का कोटला
हिमालय की तराई से अशोक की एक लाट को फीरोज उठवा लाया था जो इसके ऊपर खड़ी है। इसी लाट पर बीसलदेव का लेख भी है।

शाह मीर और उसके वंशजों के राज में कश्मीर को फिर से सुख शान्ति मिली। शाह मीर के पोते शहाबुद्दीन ने अपने १८ बरस (१३५५–१३७३ ई०) के प्रशासन में ललितादित्य की तरह कश्मीर को फिर एक शक्ति बना दिया।

पूरब तरफ उसने सिन्ध नदी के तट के भोट देश (लदाख) पर चढ़ाई की। उत्तर तरफ दरद देश को अधीन करते हुए वह "हिन्दुबोर" (हिन्दूकश) तक पहुँचा। पच्छिम तरफ उदभाण्डपुर (ओहिन्द) के राजा गोविन्दखान को अधीन किया, फिर गन्धार देश में अष्टनगर अर्थात् प्राचीन पुष्करावती* [२, ११ ॥ ७, २९५] को जीत कर कहते हैं कि उसने सिन्धु देश और गज़नी तक पर चढ़ाई की। दक्खिनपूरब तरफ वह सतलज तक पहुँचा और वहाँ दिल्ली से लौटते हुए किसी मगोल सरदार की लूट छीनी। राजराज में शहाबुद्दीन के मुख्य सलाहकार उदयश्री और चन्द्र डामर नामक दो मन्त्री थे।

§८. फ़ीरोज़ तुगलक़—मुहम्मद तुगलक के पीछे उसका चचेरा भाई फीरोज १३५१ से १३८८ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर रहा। वह मुहम्मद की तरह पागल नहीं था। उसने दूर के प्रान्तों में दखल देने के बजाय अपने उपस्थित राज्य को संघटित करने में ही लाभ देखा। दिल्ली साम्राज्य में तब बिहार, मालवा और गुजरात ही दूर के प्रान्त बचे थे; उनमें फीरोज ने योग्य शासक नियुक्त किये। थानेसर के एक टाक (टक्क-) वंश के सरदार को जफरखाँ नाम से मुसलमान बना कर उसके हाथ गुजरात का शासन सौंपा। आगे चल कर इन्हीं हाकिमों के वंशजों ने उन प्रान्तों में स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये।

फीरोज तुगलक में सैनिक क्षमता न थी, पर वह सच्चरित्र और योग्य शासक था। उसने प्रजा की भलाई के लिए बहुत से काम किये। दिल्ली के आस-पास सैकड़ों बगीचे लगवाये, और सतलज और जमना से पाँच नहरें निकलवाईं, जिनमें से एक-आध अब तक बची है। उसके सुशासन का बहुत कुछ श्रेय उसके मन्त्री खाने-जहान मकबूल को है। खाने-जहान जन्म से तेलंगण का हिन्दू था। फीरोज ने हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए पहले के सब सुल्तानों से अधिक जतन किये। अलाउद्दीन और मुहम्मद तुगलक न्याय और शासन में मुल्लों और मौलवियों की कुछ न सुनते थे, पर फीरोज़ पूरी तरह उनके हाथ में रहा।

---

* पुष्करावती के खँडहर अब भी हश्तनगर कहलाते हैं और उनमें पड़ाग, चारसद्दा आदि आठ बस्तियाँ और ढेरियाँ (भीटे) हैं।

§९ सिन्ध के जाम—सिन्ध के विद्रोही सम्रों का दमन करते हुए मुहम्मद तुगलक की मृत्यु हुई थी। फीरोज ने उन्हें शान्त किया। लेकिन उसी समय सम्मा सरदारों ने विद्रोह कर दक्खिनी और उत्तरी सिन्ध की राजधानियाँ—सेहवान और भक्खर—ले लीं (१३५१ ई०)। सिन्ध के सम्मा और सोरठ के चूडासमा एक ही वंश के थे। सिन्ध में वे मुसलमान हो गये। उनके मुखिया 'जाम' कहलाते थे।

१३६२ ई० में फीरोज ने सिन्ध पर चढ़ाई की। उसकी सेना के साथ सिन्ध नदी में एक बेड़ा भी था। जाम माली और उसका भतीजा बाबनिया वीरता से लड़े। उन्होंने फीरोज का बेड़ा छीन और उसे हरा कर ठट्ठा से रन के रास्ते गुजरात भगा दिया। एक बरस बाद फीरोज ने गुजरात से फिर ठट्ठा पर चढ़ाई की। इस बार उसकी जीत हुई। जाम माली और बाबनिया को वह दिल्ली ले गया, और अधीनता मानने पर छोड़ा। किन्तु १३७२ ई० में सम्मा ने सिन्ध से फीरोज की सब सेना को भगा दिया और वहाँ जामों का स्वतन्त्र वंश राज्य करने लगा।

§१० इलियासशाह और गणेश्वर—इलियासशाह बंगाली के काठमाडू पर धावे का उल्लेख हो चुका है। १३५२ ई० में उड़ीसा के राजा नरसिंह देव की मृत्यु हुई, और उसका बेटा भानुदेव देव राजा बना। इलियासशाह ने तब एकाएक उड़ीसा पर धावा मार उसे लूटा। उसके बाद उसने बिहार और तिरहुत भी ले लिये तो फीरोज तुगलक को उससे लड़ना पड़ा। फीरोज के आने पर इलियास तिरहुत से हट गया, पर बंगाल में फीरोज उसे न दबा सका। १३५४ ई० में फीरोज बंगाल से लौटा तो इलियास ने सोनारगाँव सातगाँव भी जीत लिये और बंगाल के तीनों हिस्सों का सुल्तान हुआ। १३५७ ई० में उसकी मृत्यु हुई और उसका बेटा सिकन्दर गद्दी पर बैठा। फीरोज तुगलक ने तब फिर बंगाल पर चढ़ाई की, पर विफल। इलियास तथा उसके वंशजों के शासन में बंगाल में सुख-समृद्धि बनी रही। १३६० ई० से १५३८ ई० तक दिल्ली के किसी सुल्तान ने बंगाल पर चढ़ाई नहीं की।

बंगाल की इन चढ़ाइयों में फीरोज गोरखपुर और तिरहुत हो कर गया

था। गोरखपुर तब दिल्ली का सीमान्त गिना जाता था। इस इलाके मे फीरोज ने जौनपुर बसाया, और पहले-पहल तिरहुत में दिल्ली के कर्मचारी कर वसूलने को रक्खे। दूसरी चढ़ाई से जौनपुर लौट कर १३६० ई० में उसने कड़ा से गढ़कटका (या गढा) के रास्ते उड़ीसा पर धावा मारा। गढ़कटंका पुराने चेदि राज्य की राजधानी त्रिपुरी के पास है। फीरोज के आने पर उड़ीसा का राजा भानुदेव तेलंगण भाग गया। फीरोज ने वाराणसी-कटक (=कटक*) को लूटा और पुरी से जगन्नाथ की मूर्त्ति उठा लाया।

उसके दिल्ली वापिस पहुँचने पर तिरहुत उसके हाथ से निकल गया। वह प्रान्त कुल ३०-३५ बरस ही दिल्ली के अधीन रहा था। कर्णाट राज्य के पतन के समय कामेश्वर नामक ब्राह्मण ने मिथिला में एक नया राज्य दिल्ली की अधीनता में खड़ा कर लिया था। कामेश्वर का बेटा भोगीश्वर फीरोज का मित्र था। उसने या उसके पुत्र गणेश्वर ने मिथिला मे फिर से स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। १३७० ई० में गणेश्वर दिल्ली या बंगाल की सेना से लड़ता हुआ काम आया, पर उसके पुत्र कीर्तिसिंह ने "पिता के वैरियों से अपनी राजलक्ष्मी की रक्षा की"। मैथिल कवि विद्यापति ने कीर्त्तिलता नामक काव्य मे उसकी कीर्त्ति गाई। तिरहुत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी बिहार (मगध) फीरोज और उसके वंशजों के अधिकार मे बना रहा।

§ ११. बहमनी-विजयनगर का पहला संघर्ष—१३५८ ई० में हसन बहमनशाह की मृत्यु हुई और उसका बेटा मुहम्मद १म उत्तराधिकारी हुआ। उसने अपनी रियासत का सोने का सिक्का चलाना चाहा, पर दक्खिन के सुनार उस सिक्के को पाते ही गला देते और विजयनगर और ओरंगल राज्यों के सिक्के को ही चलाते। मुहम्मद ने राज्य भर के सुनारों को मरवा दिया और उत्तर भारत के खत्रियो को उनकी जगह स्थापित किया। कृष्णप्पा नायक और

---

* कटक संस्कृत में छावनी को कहते है। उड़ीसा के जिस शहर को अब कटक कहते हैं, उसका असल नाम वाराणसी था। वहाँ गंग राजाओं की छावनी होने से वह वाराणसी-कटक कहलाता था। मुगल युग तक वह बनारसी-कटक ही कहलाता रहा।

बुक्कराय को भी उसने धमकी दी। फलस्वरूप कृष्णय्या से उसका दो साल तक युद्ध हुआ, जिसके अन्त में गोलकुंडा का प्रदेश उसके हाथ आया। १३६५-६७ ई० में उसने कृष्णा पार कर विजयनगर पर चढ़ाई की। बुक्कराय की हार हुई, और लाखों की संख्या में जनता मारी गई। अन्त में सन्धि हुई और यह तय हुआ कि आगे से युद्धों में असैनिक जनता को न मारा जाय।

१३७७ ई० में मुहम्मद १म की मृत्यु हुई, उसके उत्तराधिकारी मुजाहिद ने पटप्रभा तुंगभद्रा दोआब बुक्कराय से तलब किया और विजयनगर पर चढ़ाई की। उसे निष्फल लौटना पड़ा और लौटते समय उसकी बुरी दशा हुई।

मदुरा की सल्तनत ने १३५६ ई० के बाद फिर सिर उठाना चाहा, लेकिन १३७७ तक बुक्कराय ने उसे बिलकुल मिटा दिया। अगले वर्ष बुक्क की मृत्यु हुई और हरिहर २य उसका उत्तराधिकारी हुआ। मुजाहिद भी तभी मारा गया। १३७८ से १३९७ ई० तक मुहम्मद २य ने शान्तिपूर्वक राज किया। उस बीच खानदेश बहमनी सल्तनत से निकल गया और वहाँ एक स्वतन्त्र रियासत स्थापित हुई (१३८२ ई०)।

§१० तैमूर की चढ़ाई—फीरोज के वंशज बिलकुल ही निकम्मे निकले। उनके समय राज्य की यह दशा हो गई कि पुरानी दिल्ली और फीरोज की बनाई नई दिल्ली में दो अलग-अलग सुल्तान थे। वे शतरंज के बादशाह जब दिल्ली के तख्त के लिए झगड़ते थे, तभी मध्य एशिया में एक महान् विजेता प्रकट हो चुका था। वह था तैमूर, चगताई प्रदेश का तुर्क। मध्य एशिया में चंगेजखाँ के वंशजों के दो राज्य चले आते थे जिनकी उसने सफाई कर दी (१३७० ई०)। पच्छिम तरफ उसने रूस की वोल्गा नदी तक के तथा ईरान पार करते हुए कारेशम पर्वत और पच्छिमी एशिया तक के देश जीत लिये। उसके विशाल साम्राज्य की राजधानी समरकन्द थी। इधर दिल्ली राज्य की दुर्दशा सुन कर उसने भारत पर चढ़ाई की (१३९८ ई०)। उसका पोता पीर मुहम्मद एक साल पहले आ कर उच और मुलतान ले चुका था। अफगानिस्तान पहुँच कर तैमूर ने अलक्सान्दर की तरह पहले काबुल नदी के उत्तर का

काफिरिस्तान* प्रदेश जीता। फिर सिन्ध और चनाव पार कर मुलतान के

तैमूर

अकबर के समय लिखी गई सचित्र तारीखे-खानदाने-तैमूरिया की हस्तलिखित प्रति में से पहले पहल इति० प्रवेश में प्रकाशित। खुदाबख्श पुस्तकालय पटना के ट्रस्टियों के सौजन्य से।
[प्रतिलिपिस्वत्व, खु० पु०]

---

*कापिशी नगरी के प्रदेश को अरबों ने काफिसिस्तान कहा। लिखने की गलती से वह काफिरिस्तान बन गया।

नजदीक तुलम्बा की बस्ती पर आ टूटा। उसे लूट कर पाकपट्टन और भटनेर के रास्ते वह दिल्ली की तरफ बढ़ा। जहाँ जहाँ से उसकी फौज गुजरी, लूटना, मारना, फूँकना, उजाड़ना उसके साथ-साथ चलता गया। अन्त में दिल्ली से मेरठ होते हुए वह हरद्वार के पास आ निकला, और शिवालक के साथ-साथ काँगड़ा होते हुए जम्मू पहुँचा। वहीं कश्मीर के सुल्तान सिकन्दर का दूत मैत्री का सन्देश लाया। यह सिकन्दर शहाबुद्दीन का पोता था। लाहौर पर इस समय शिखी या शेखा खोकर का अधिकार था। तैमूर ने उसे पकड़ मँगवाया और मरवा डाला। उसके बेटे जसरथ (दशरथ) ने तैमूर का सामान लूटना चाहा, तब तैमूर उसे कैद कर अपने साथ ले गया। सिन्ध पार कर बन्नू होते हुए वह समरकन्द लौट गया।

दिल्ली साम्राज्य की शक्ति तैमूर के आने से पहले ही प्रान्तीय शासकों के हाथों में जा चुकी थी। जो प्रान्तीय शासक अब तक नाम को दिल्ली के अधीन थे, वे भी अब स्पष्ट रूप में स्वतन्त्र हो गये। दिल्ली साम्राज्य यों मटियामेट हो गया।

§१३. प्रादेशिक राज्यों का उदय—अलाउद्दीन खिलजी और गयासुद्दीन तुगलक के समय दिल्ली की सल्तनत ने जिन दूर के प्रान्तों को पहले पहल जीता उनमें उसका शासन २५-३० बरस भी न टिक पाया। तो भी उनके विजयों से एक राजनीतिक युगपरिवर्तन हो गया। उन्होंने राजस्थान, गुजरात, दक्खिन और पूरब के पुराने जीर्ण राज्यों को तोड़ फोड़ कर नये राज्यों के उदय के लिए मैदान साफ कर दिया। यदि उनके उत्तराधिकारी अधिक योग्य होते तो भी उनका खड़ा किया हुआ साम्राज्य अधिक टिकाऊ न हो पाता। कारण यह कि चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी की अवस्थाएँ एक विशाल साम्राज्य के बजाय प्रादेशिक राज्यों के अधिक अनुकूल थीं। हिन्दुओं में तब यदि इतना जीवट न था कि वे भारत में अपना साम्राज्य खड़ा कर सकते तो वे इतने मुर्दा भी न थे कि दूर के प्रान्तों में भी अपनी स्वतन्त्रता बनाये न रख सकते। दूसरी तरफ तुर्क सरदारों में भी अब दिल्ली का शासन मानने की प्रवृत्ति अधिक न थी। उन्होंने जब पहले पहल भारत को जीता तब वे एक नये विशाल देश में एक छोटे से

दल की तरह थे। उनकी अपनी रक्षा के लिए ही तब यह आवश्यक था कि वे आपस में मिल कर और एक शासन में संघटित हो कर रहें। किन्तु डेढ़ शताब्दी में वे भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से परिचित हो चुके और भारत के बन चुके थे। प्रत्येक प्रान्त में कुछ लोग मुसलमान बन चुके और बाहर से आये हुए तुर्क उनमें घुल-मिल चुके थे। अब जब अपने-अपने प्रदेश में वे निःशंकता के के साथ राज्य खड़े कर सकते और चला सकते थे, तब उन्हें किसी सम्राट् की आज्ञा मानने की ज़रूरत न थी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. मुहम्मद तुगलक के मन में कौन से प्रदेश जीतने की योजनाएँ थीं? वे विफल क्यों हुईं?

२. तुगलक साम्राज्य से कौन-कौन से प्रदेश मुहम्मद तुगलक के समय स्वतन्त्र हुए? उनमें कौन-कौन से नये राज्य खड़े हुए?

३. कश्मीर की दरद सल्तनत की स्थापना किसने किन दशाओं में की?

४. शम्सुद्दीन इलियासशाह का ऐतिहासिक चरित संक्षेप से लिखिए।

५. तुगलक युग में तिरहुत की दशा पर प्रकाश डालिए।

६. फीरोज तुगलक का वृत्तान्त संक्षेप में दीजिए।

७. निम्नलिखित का परिचय दीजिए (१) मेवाड के सीसोदिया (२) सिन्ध के जाम (३) सुराष्ट्र के चूडासमा (४) मदुरा की सल्तनत (५) हसन गगू (६) कश्मीर का सुल्तान शहाबुद्दीन (७) गणेश्वर।

८. विजयनगर राज्य का उदय कैसे हुआ? उसका पहले पचास वर्षों का इतिहास संक्षेप में दीजिए।

९. तैमूर के उदय से मध्य एशिया में क्या विशेष परिवर्त्तन हुआ?

१०. चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में भारत प्रादेशिक राज्यों में क्यों बँटा रहा?

अध्याय ६

पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रादेशिक राज्य

(१३८२—१५०६ ई०)

§१ **राणा लाखा और मोकल**—मेवाड़ में राणा लक्षसिंह या लाखा का प्रशासन (१३८२–१४१६ ई०) अलाउद्दीन के समय की क्षतिपूर्ति और जीर्णोद्धार करने में बीता। उसी समय राज्य में एक चाँदी और सीसे की खान निकल आने से उसे बड़ी सहायता मिली। तभी मारवाड़ के केन्द्रभूत मंडोवर गढ़ को राव चूँडा राठोड़ नामक सरदार ने नागौर के तुर्क शासकों से छीन लिया। चूँडा ने राणा लाखा को अपनी लड़की हंसा ब्याह में दे कर उससे सहायता माँगी। लाखा और हंसा का बेटा राणा मोकल भी प्रतापी हुआ। उसने अपने राज्यकाल (१४१६–१४३३) में नागौर पर चढ़ाई कर मंडोवर में अपने मामा रणमल राठोड़ को अपना सामन्त नियत किया। दक्खिन पच्छिम मारवाड़ में जालोर पर भी उसने धावे मारे तथा उत्तर तरफ अजमेर और साम्भर को अपने राज्य में मिला लिया।

§२ **राजा गणेश और शिवसिंह**—बंगाल में इलियासशाह के पोते गयासुद्दीन आजमशाह (१३८९–९६ ई०) के समय गणेश नाम का ज़मींदार सल्तनत का कर्ता धर्ता बन गया। उसने अन्त में आजमशाह को मरवा डाला और फिर आजमशाह का बेटा और पोता उसके हाथ की कठपुतली बने रहे। १४०९ ई० में आजमशाह के पोते को मरवा कर गणेश स्वयं बंगाल का राजा बना। वह तिरहुत के कामेश्वर वंश के राजा शिवसिंह का समकालीन और पड़ोसी था। वह उदार शासक था और प्रजा उससे सन्तुष्ट थी, तो भी पीरों और फकीरों ने मुस्लिम सरदारों को हिन्दू राजा के विरुद्ध भड़काया। गणेश ने उनका दमन किया। उसके समय में बंगाल में संस्कृत पढ़ने लिखने की फिर से उन्नति हुई। गणेश ने सात बरस (१४०९–१५ ई०) राज किया। उसका बेटा यदु मुसलमान हो गया। गणेश ने उसे प्रायश्चित्त करा के हिंदू बनाया, पर पीछे वह फिर मुसलमान हो गया और उसका नाम जलालुद्दीन हुआ। वह एक

बरस ही राज्य कर पाया था कि दनुजमर्दन नाम के सरदार ने उससे राज्य छीन लिया (१४१७ ई०)। दनुजमर्दन ने अपने नाम के सिक्के भी चलाये, पर वह दूसरे ही बरस चल बसा। उसके बेटे महेन्द्र से जलालुद्दीन ने फिर राज्य छीन लिया। जलालुद्दीन तिरहुत के शिवसिंह से लड़ कर हारा। १४३० ई० से पहले उसने चटगाँव जीत लिया। उसका अत्याचारी बेटा १४४२ ई० में कत्ल किया गया, और बंगाल का राज्य फिर इलियासशाह के एक वंशज के अधिकार में आया।

§ ३. इब्राहीम शर्की—दिल्ली साम्राज्य के टूटने पर जो नई रियासतें उठ खड़ी हुईं उनमें से तीन—जौनपुर, मालवा और गुजरात—बहुत शक्तिशाली और प्रसिद्ध हुईं। पिछले तुगलकों के समय से जौनपुर में एक हाकिम रहता था, जो मलिक्-उस्-शर्क अर्थात् पूरब का स्वामी कहलाता था। कन्नौज के पूरब बंगाल की सीमा तक साम्राज्य का सब इलाका उसके अधीन था। तैमूर की चढ़ाई के बाद, उस हाकिम का बेटा मुबारकशाह नाम से स्वतन्त्र सुलतान बन बैठा। मुबारक का भाई इब्राहीमशाह शर्की (१४००–१४३६ ई०) उसका उत्तराधिकारी हुआ। बिहार और बनारस के इलाकों पर उसका शुरू ही से कब्जा था। उसने जौनपुर के ठीक पूरब तिरहुत की तरफ बढ़ना चाहा, पर राजा शिवसिंह से उसकी हार हुई। तब पच्छिम की ओर मुँह फेर कर उसने कालपी और कन्नौज जीत लिये और दिल्ली की तरफ बढ़ा। दोआब में बुलन्दशहर और गंगा के उत्तर सम्भल भी उसने ले लिया। यह तब उस प्रदेश की राजधानी थी जो आजकल रुहेलखंड कहलाता है। दिल्ली के परकोटे तक शर्की का अधिकार पहुँच गया, तब मालवे के नये सुल्तान ने कालपी छीन कर उसे पीछे हटने को बाधित किया। अपने जमाने में इब्राहीम शर्की उत्तर भारत का एकमात्र प्रबल सुल्तान था। उसका दरबार विद्या और संस्कृति का केन्द्र था। जौनपुर की प्रसिद्ध अटाला-देवी मस्जिद उसी के समय बनी।

§ ४. हुशंग गोरी और अहमदशाह गुजराती—मालवे का हाकिम दिलावरखाँ गोरी १४०१ ई० में स्वतन्त्र हो गया। उसका बेटा हुशंग गोरी था (१४०५–३४ ई०)। मालवे के साथ चेदि देश का पच्छिमी अंश अर्थात्

चन्देरी का प्रदेश (सागर और दमोह जिले) भी इन सुल्तानों के अधिकार में रहा। हुशंग ने उत्तर तरफ कालपी तक और ग्वालियर के करीब तक अपना राज्य पहुँचा दिया।
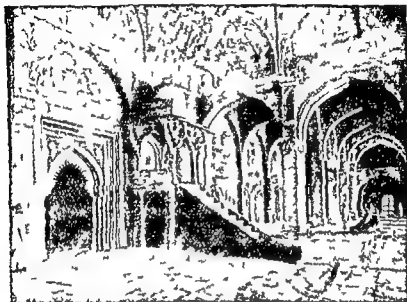
माण्डू में हुशंग गोरी की बनवाई जामा मसजिद [भा० पु० वि०]

ग्वालियर प्रदेश पर तैमूर के जाने के बाद हरसिंह तोमर ने अधिकार कर लिया था, १५१८ ई० तक वह राज्य उसके वंश में बना रहा।

गुजरात का हाकिम जफरखाँ गोरी के साथ साथ स्वतन्त्र हो कर मुजफ्फरशाह बन गया था। पच्छिम तरफ गिरनार, पूरब तरफ चाँपानेर, उत्तर पूरब ईडर और उत्तर जालोर और सिरोही के हिन्दू राज्यों तक गुजरात सल्तनत की सीमाएँ थीं। इसके अलावा इस तरफ दिल्ली सल्तनत के जितने इलाके थे उन पर गुजरात के सुल्तान अपना अधिकार मानते थे, इसीलिए मुजफ्फरशाह ने सुदूर नागौर में भी अपना सामन्त नियुक्त किया था। राव चूँडा ने उसी सामन्त से मण्डोवर गढ़ छीना था। इस प्रकार चूँडा का मध्य मारवाड़ में खड़ा होना और राणा मोकल का उस राज्य को अपना सामन्त बनाना तथा जालोर पर

चढ़ाई करना गुजरात के शाह को चुनौती थी।

मुजफ्फरशाह का पोता अहमदशाह योग्य और न्यायी शासक हुआ (१४११–१४४१) ई०। वह गुजरात की राजधानी अणहिलपाटन से उठा
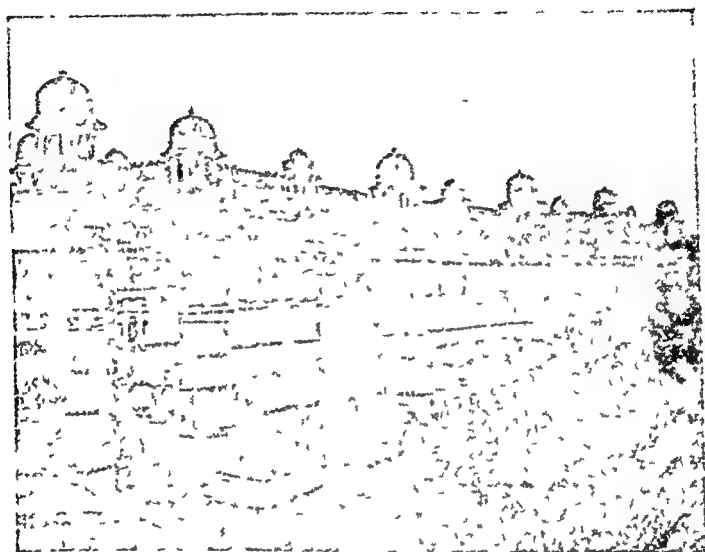
ग्वालियर में मानसिंह तोमर का महल
१५वीं शताब्दी के भारतीय शिल्प का नमूना [ग्वालियर पु० वि०]

कर आसावल (आशापल्ली) नामक प्राचीन बस्ती में ले आया, जिसका नाम उसने अहमदाबाद रक्खा। उसे उसने सुन्दर भव्य इमारतों से भूषित किया। हुशंग गोरी से उसकी बरसों खटपट चलती रही जिसमें हुशंग को दबना पड़ा। १४२१ ई० में अहमदशाह ने मालवे की राजधानी मांडू को जा घेरा।

§५. **जसरथ खोकर और जैनुलाबिदीन**—तैमूर की मृत्यु (१४०५ ई०) के बाद जसरथ खोकर समरकन्द से भाग आया और कश्मीर के सुल्तान सिकन्दर की मदद से उसने उत्तरी और मध्य पंजाब में फिर अपना राज्य स्थापित किया। कश्मीर के इसी सिकन्दर ने तैमूर के पास दूत भेजा था। इसके प्रशासन (१३८९–१४१३ ई०) में बाल्ती या बोलौर प्रान्त [७, ३ § ६]

जीता गया। यह सिकन्दर बुतशिकन अर्थात् मूर्त्तिभंजक कहलाता था। इसके समय में मीर सैद मुहम्मद नामक बड़ा फकीर कश्मीर में था, जिसके अनुयायियों ने इस्लाम को विशेष रूप से फैलाया। सिकन्दर का ब्राह्मण मन्त्री सूह भट्ट भी मूर्तिपूजा विरोधी था। यों सिकन्दर के समय कश्मीर के अधिकतर पुराने मन्दिर ढहा दिये गये और प्रजा को जबरदस्ती मुसलमान बनाने की कोशिशें की गईं। कश्मीर की पुरानी "सन्दिं" अर्थात् परम्परागत पुरानी प्रथाएँ भी सैद मुहम्मद के अनुयायियों ने इसी समय पहलेपहल तोड़ीं।

सिकन्दर के पीछे उसका बड़ा बेटा आलिशाह सात बरस राज करके अपने दूसरे भाई जैनुलाबिदीन को राज दे तीर्थयात्रा को चला, पर फिर दूसरों के बहकाने से लौट आया। जैनुलाबिदीन ने तब उसके लिए राज छोड़ दिया, पर फिर जसरथ खोक्खर की मदद से ले लिया।

जैनुलाबिदीन द्वारा श्रीनगर में बनवाया हुआ कश्मीर का एक शिवमंदिर

जैनुलाबिदीन सच्चरित्र, योग्य, उदार और न्यायी शासक था। उसने देश की सिंचाई के लिए नहरें निकलवाईं, रास्ते और पुल बनवाये, निर्वासित हिन्दुओं को वापिस आने दिया, जो दिल से मुसलमान न बने थे उन्हें फिर हिन्दू हो जाने दिया, उनके टूटे मन्दिरों का स्वयं जीर्णोद्धार करवाया और जजिया कर नाम को रहने दिया। उसने और भी बहुत से कर उठा दिये, और खानों की उपज से राज्य की आमदनी बढ़ाई। अधिकांश कैदियों को छोड़ कर उसने उन्हें खानों, सड़कों आदि पर काम में लगाया।

उसे फारसी, संस्कृत और तिब्बती का अच्छा ज्ञान था और संगीत और मां की तथा विद्वानों की संगति की भी खूब रुचि थी। उसने कश्मीर की देशी भाषा कश्मीरी में रचना को भी प्रोत्साहन दिया। वह अपनी हिन्दू प्रजा की तीर्थ-यात्राओं और त्योहारों में भाग लेता था। उसके ५१ वर्ष (१४२०—७० ई०) के रामराज्य की याद कश्मीर में आज भी बनी है।

तैमूर के पीछे काबुल का राज्य तैमूर-वंशजों के हाथ में बना रहा।

§६. सिन्ध के जाम और खिज़रखाँ सैयद—सिन्ध पर तैमूर की चढ़ाई का प्रभाव नहीं पड़ा था, वहाँ जामों का राज्य शान्तिपूर्वक चलता रहा।

मुलतान का प्रान्त तैमूर सैयद खिजरखाँ को दे गया था।

खास दिल्ली में फीरोज तुगलक का एक वंशज १४१३ ई० तक जैसे-तैसे राज करता रहा। खिजरखाँ सैयद ने उससे रोहतक नारनौल तक का प्रान्त छीन लिया। १४१४ ई० में उसकी मृत्यु होने पर खिजरखाँ ने दिल्ली भी ले ली। पर खिजरखाँ के वंशज मुलतान पर अधिकार न रख सके और १४४० ई० में वहाँ सिबी के एक पठान ने अपना राज्य स्थापित किया।

§७. बुन्देलखंड, बघेलखंड, छत्तीसगढ़, गोंडवाना—बंगाल, बिहार, जौनपुर, बहमनी रियासत और तेलगण के बीच उड़ीसा, चेदि और जझौती के विशाल प्रदेश थे। जझौती का उत्तरी और पच्छिमी किनारा—कालपी और चन्देरी—अब मालवे की सल्तनत में शामिल था। बाकी अंश पहले चन्देलों के अधीन था, पर पन्द्रहवीं शताब्दी के शुरू से चन्देलों का पता नहीं मिलता। अब वहाँ अनेक बुन्देले सरदार राज्य करने लगे, जिससे वह प्रदेश बुन्देलखंड कहलाने लगा। बुन्देले गाहडवालों के वंशज थे, जो विन्ध्य में रहने के कारण बुन्देले कहलाये। उसके पूरब का प्रदेश बघेलखंड बन चुका था [८,२§१३], जिसके दक्खिन महाकोशल या छत्तीसगढ़ का राज्य बना हुआ था। तीनों के बीच प्राचीन त्रिपुरी के पास गढ़कटका या गढ़ा (जबलपुर) में एक गोंड राज्य स्थापित होने से इस प्रदेश को इसके पड़ोसी गोंडवाना कहने लगे। इस राज्य की स्थापना एक गोंड ने की पर पीछे यह उसके क्षत्रिय दामाद के वंश में रहा। उड़ीसा का गंग राज्य १३२४ ई० से बराबर दुर्बल रहा।

नक्शा—१९
प्रादेशिक राज्य १४६८-६ ई० में
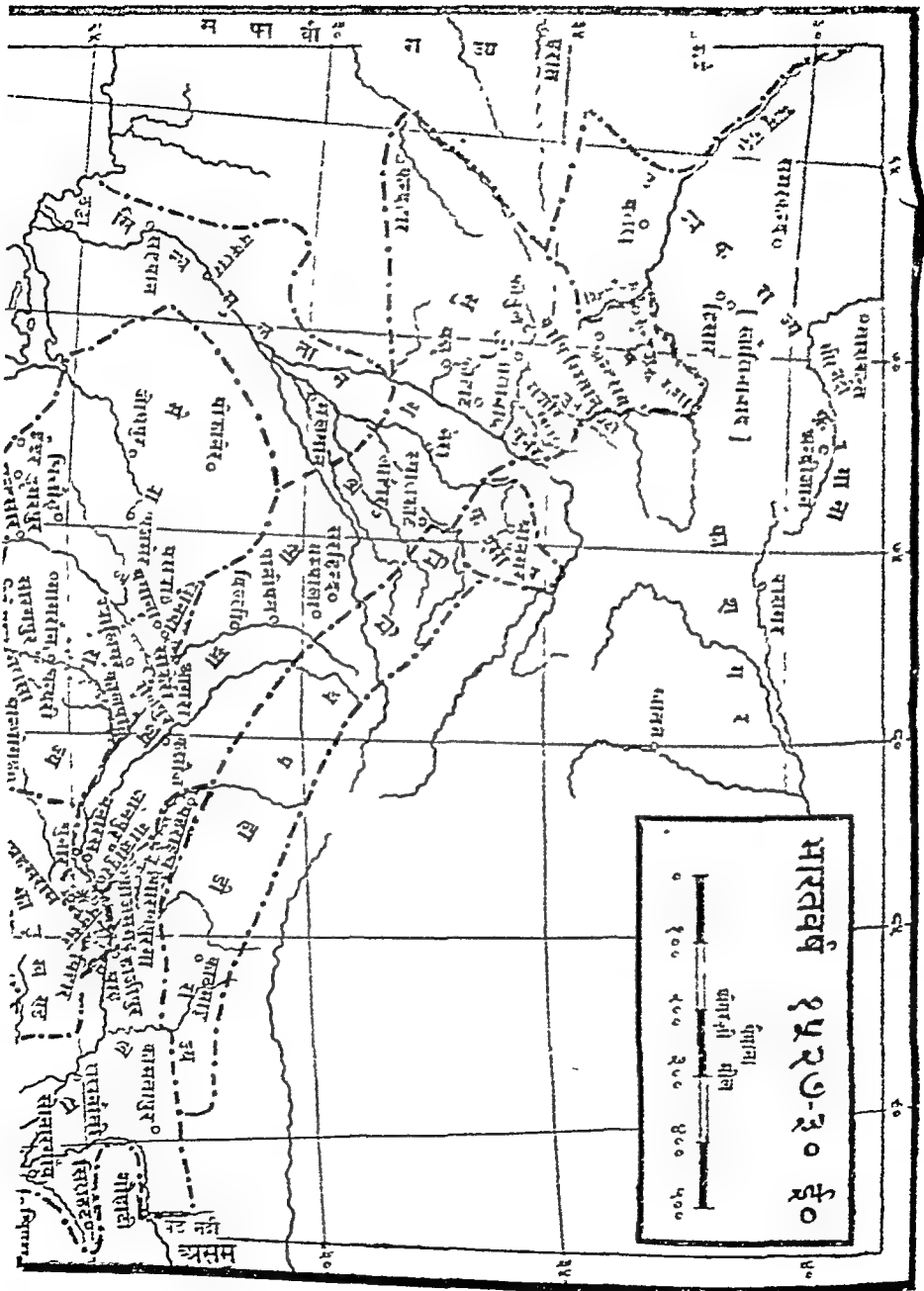
§८ फीरोज और अहमद बहमनी—बहमनी रियासत में १३९७ से १४२२ ई० तक सुल्तान फीरोज ने राज किया, और १४२२ से १४३५ ई० तक उसके भाई अहमद ने। फीरोज के समय विजयनगर से तीन युद्ध हुए। १३९८ ई० में ही हरिहर २य ने कृष्णा काठे पर चढ़ाई की, तथा कृष्णा के उत्तरी किनारे के कोलियों ने तथा बराड के एक हिन्दू सरदार ने विद्रोह किया। विजयनगर की सेना कृष्णा के दक्खिन तट पर विशृंखल पड़ी थी, उसकी बड़ी संख्या के कारण फीरोज कृष्णा पार करने से डरता था। उस समय एक काजी ने साहस का काम किया। वह गाने नाचने में निपुण था। भेस बदल कर एक नाच मंडली बना कर वह हरिहर की छावनी में घुसा, और धीरे धीरे प्रसिद्धि पा कर हरिहर के बेटे के पास पहुँच गया। तलवार का नाच दिखलाते हुए वह एकाएक युवराज पर टूट पड़ा और उसका काम तमाम कर दिया। हरिहर अपने बेटे की लाश ले कर विजयनगर लौटा। उसकी भागती हुई सेना को फीरोज ने पूरी तरह हरा दिया।

इसके बाद गुजरात, मालवा और खानदेश के सुल्तानों ने विजयनगर के राजा को बहमनी सुल्तान के खिलाफ मदद करने का वचन दिया। १४०६ ई० में हरिहर २य की मृत्यु हुई और उसका पुत्र देवराय १म राजा बना। उसी बरस उसकी सेना ने मुद्गल पर चढ़ाई की। उस सेना को हरा कर फीरोज ने विजयनगर पर चढ़ाई की जिसमें फीरोज घायल हुआ। देवराय ने आठ बार उसपर हमला किया, पर मालवा आदि से कोई मदद न मिली। फीरोज की फिर जीत हुई और तुङ्गभद्रा नदी दोनों राज्यों की सीमा मानी गई।

देवराय के बेटे वीरविजय (१४१३–१४२५ ई०) के समय १४१८ ई० में तेलङ्गण और विजयनगर के राजाओं ने मिल कर फिर फीरोज से युद्ध किया। इस बार फीरोज की पूरी हार हुई और विजेताओं ने पुरानी हत्याओं का पूरा बदला चुकाया। उस हार का बदला चुकाने को अहमदशाह बहमनी ने १४२३ ई० में चढ़ाई की। यह युद्ध पिछले पाँचों युद्धों से भयंकर हुआ। युद्ध के समय स्त्रियों और बच्चों को न मारने का वचन विजयनगर वालों ने तोड़ दिया था, इसलिए अहमदशाह ने इस बार दिल खोल कर कत्लेआम किये। वीरविजय कर देने को

बाधित हुआ। इस युद्ध के बन्दियों में दो ब्राह्मण थे, जिनके वंशजों ने बाद में अहमदनगर और बराड की रियासतें स्थापित कीं।

१४२४ ई० में अहमद बहमनी ने ओरंगल शहर दखल करके उस राज्य को मिटा दिया, और पूरबी समुद्र तक अपनी सीमा पहुँचा दी। ओरंगल के सब इलाकों पर वह कब्जा न कर सका, क्योंकि कृष्णा के दक्खिन कोंडवीडु गढ़ (गुंटूर के पास) और उसके इलाके पर देवराय २य (१४२५–४६ ई०) ने अधिकार कर लिया था। इसके बाद अहमद बहमनी के मालवे और गुजरात से युद्ध हुए। अहमदशाह गुजराती से उसकी हार हुई (१४३० ई०), जिससे मुम्बई का द्वीप गुजरात के अधिकार में रहा।

§९. **कुम्भा और महमूद खिलजी**—राणा मोकल के बेटे कुम्भा (१४३३–६८ ई०) ने पच्छिमी भारत की राजनीति में नया अध्याय शुरू किया। मालवे में हुशंग गोरी के बेटे को मार कर उसका वजीर महमूद खिलजी गद्दी पर बैठा। वह कुम्भा का समकालीन था (१४३६–६६ ई०)। १४३७ ई० से कुम्भा ने अपनी अग्रसर नीति शुरू की। उसी बरस उसने सिरोही के राजा से आबू छीन लिया, और मालवे में सारंगपुर तक पहुँच कर महमूद खिलजी को हरा कर कैद किया, पर छः मास बाद छोड दिया। आबू ले कर उसने गुजराती सुल्तान का पच्छिमी राजस्थान की तरफ रास्ता काट दिया। और महमूद का पराभव कर पूरबी राजस्थान में अपना रास्ता सुगम कर लिया। फिर दो बरस में उसने मारवाड में आबू से नागोर तक, मध्य राजस्थान में अजमेर तक, उत्तर-पूरब आम्बेर तक, और दक्खिन-पूरब मांडलगढ़ से गागरौन तक अर्थात् बनास से काली सिन्ध तक अपना अधिकार फैला लिया। कुम्भा को रोकने के लिए महमूद खिलजी ने सन् १४४३, ४६ तथा ५४ में तीन युद्ध किये। पहली बार वह चित्तौड तक जा पहुँचा, पर फिर कभी मांडलगढ़ से आगे न बढ़ सका। किन्तु दूसरे युद्ध में भरतपुर के पास बयाना के गढ़ पर अधिकार कर वह कुम्भा का दिल्ली आगरे की तरफ वाला रास्ता काट देने में सफल हुआ। इसी बीच कुम्भा ने रणथम्भोर, आम्बेर, टोडा और डीडवाणा तक अधिकार कर लिया।

नागोर पर कुम्भा ने आधिपत्य कर ही लिया था। १४५६ ई० में उसने गुजराती सुल्तान की विडम्बना करते हुए वह "गढ़ तोड़ दिया, खाइ भरवा दी और नागोर को जो तुर्की शक्ति की जड़ था, उजाड़ कर फूँक डाला, और उसका किस्सा खतम कर दिया।" तब गुजरात के सुल्तान कुतुबशाह (१४५१-५६ ई०) ने मेवाड़ पर चढ़ाइ की, पर वह आबू भी न ले सका। दूसरे बरस गुजरात और मालवे के सुल्तानों ने एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई की। पर न कुतुबशाह सिरोही से आगे बढ़ पाया, और न महमूद ही मेवाड़ के अन्दर घुस सका। कुम्भा ने दोनों को एक साथ परास्त कर दिया।

मंडोवर के सामन्त राव रणमल के पुत्र जोधा ने कुम्भा की सहमति से मंडोवर के पास जोधपुर की स्थापना की। जोधा के बेटे बीका ने बीकानेर स्थापित किया। बीका के वहाँ स्थापित होने से पहले उस प्रदेश में जयसलमेर और पूगल के भाटियों तथा जोहिये (यौधेय) सरदारों का प्रभुत्व था।

महाराणा कुम्भा पराक्रमी होने के साथ साथ जागरूक और विद्वान् भी था। राजस्थानी के अतिरिक्त उसने संस्कृत, मराठी और कनड का भी अच्छा अभ्यास किया था। विजयनगर राज्य के उदय के कारण उसे कनड का महत्त्व दिखाइ दिया होगा। विजयनगर के राजाओं और कश्मीर के जैनुलाबिदीन से भी उसने मैत्री संबंध रक्खा।

साहित्य, संगीत, नाट्यशास्त्र, वास्तुशास्त्र इत्यादि पर उसने अनेक ग्रन्थ लिखे और लिखवाये। वह अपनी वास्तु कृतियों (इमारतों) के लिए भी प्रसिद्ध है। चित्तौड़गढ़ के बुर्ज, दरवाजे, 'रथमार्ग' (चौड़ा रास्ता) और कीर्तिस्तम्भ तथा कुम्भलगढ़ और उसके पास कुम्भस्वामी का मन्दिर भी उसी के बनवाये हुए हैं।

बुढ़ापे में कुम्भा को उन्माद रोग हो गया, और उसके बेटे उदयसिंह ने उसे मार डाला। पितृघातक उदयसिंह को भगा कर सरदारों ने उसके भाई रायमल को गद्दी दी। रायमल ने मालवे के मुकाबले में मेवाड़ का गौरव बनाये रक्खा (१४७३-१५०६ ई०)।

§१० अलाउद्दीन बहमनी और देवराय २य—उड़ीसा का गंग

राजवंश जीर्ण हो चुका था। १४३५ ई० में गंग राजा को हटा कर उसके सूर्य-वंशी मन्त्री कपिलेन्द्र ने राज्य ले लिया। उसी साल बिदर में अहमदशाह बहमनी का बेटा अलाउद्दीन गद्दी पर बैठा। अलाउद्दीन ने पच्छिमी और पूर्वी घाटों के छोटे छोटे स्वतन्त्र हिन्दू सरदारों को वश में करने को फौजें भेजीं। कोंकण में तो उसे सफलता हुई (१४३७ ई०), पर तेलंगण में कपिलेन्द्र ने उसे रोक दिया।

विजयनगर के देवराय २ य (१४२५–४६ ई०) ने एक परिषद् इस बात पर विचार करने को बुलाई कि बहमनी बार-बार युद्ध में क्यों जीत जाते हैं। विचार का परिणाम यह निकला कि उनके पास अच्छे घोड़े हैं तथा उनकी सेना में ऐसे सवार हैं जो घोड़े पर चढ़े-चढ़े निशाना मार सकते हैं। उत्तर और पच्छिम के देशों में घोड़ों की अच्छी नस्लें पैदा होती हैं, और उनसे बहमनियों का सम्पर्क था। तब से घोड़ों के व्यापार को उत्साहित करना और जिस तरह बने अच्छे घोड़े प्राप्त करना विजयनगर राज्य की नीति हो गई। ईरान से बहमनी रियासत में घोड़े लाने वाली नावों को लूटने पर इनाम दिया जाने लगा। देवराय ने अपने राज्य में निशानची मुसलमानों को जागीरें दे कर बसाना भी शुरू किया। सवार तीरन्दाजों की नई सेना तैयार कर उसने बहमनी रियासत पर चढ़ाई की और कृष्णा नदी तक का प्रदेश दखल कर लिया (१४४३ ई०)।

§ ११. **कपिलेन्द्र और पुरुषोत्तम**—१४४६ ई० में देवराय की मृत्यु हुई और उसका बेटा मल्लिकार्जुन उत्तराधिकारी हुआ। १४५८ ई० में अलाउद्दीन मरा और उसका बेटा हुमायूँ गद्दी पर बैठा। कपिलेन्द्र इस समय तक गोदावरी-कृष्णा दोआब को जीत चुका था। अब उसने कृष्णा से कावेरी पार तिरुचिरापल्ली तक का समूचा लम्बा तट-प्रदेश जीत लिया। हुमायूँ ने देवरकोंडा के तेलुगु सरदार पर चढाई की; उस सरदार ने कपिलेन्द्र से सहायता माँगी। कपिलेन्द्र के तुरन्त पहुँच जाने से हुमायूँ को भागना पड़ा (१४५९ ई०)। यह हुमायूँ दक्खिन में अब तक हुमायूँ ज़ालिम के नाम से याद किया जाता है। १४६१ ई० में वह मारा गया। तब कपिलेन्द्र सेना के साथ बिदर पर आ पहुँचा और बड़ी रकम ले कर लौटा। आन्ध्रदेश के पहाड़ी जिले—खम्मामेट और नलगोंडा—भी उसने दखल कर लिये।

उत्तर की ओर कपिलेन्द्र ने दामोदर से गंगा तक का पहाड़ी प्रदेश ले कर भागलपुर के पास जौनपुर रियासत से अपनी सीमा मिला दी। इब्राहीम शर्की के तीसरे उत्तराधिकारी हुसेनशाह शर्की ने तब तीन लाख फौज के साथ उसपर चढ़ाई की (१४६५ ई०)। इस युद्धमें दोनों पक्ष अपनी जीत हुई बताते हैं, अर्थात् परिणाम अनिश्चित रहा।*

कपिलेन्द्र कुम्भा का समकालीन था। उसका प्रशासन कुम्भा के दो बरस पीछे शुरू हुआ और दो बरस पीछे ही समाप्त हुआ। १४७० ई० में उसकी मृत्यु हुई और उसका बेटा पुरुषोत्तम उत्तराधिकारी हुआ। हुमायूँ शाह के बेटे मुहम्मद ३य ने तब अपने सेनापति हसन बहरी को भेज कर राजमहेन्द्री ले ली। विजयनगर के राजा का एक सामन्त सालुव नरसिंह, जो चन्द्रगिरि का सरदार था, नेल्लूर और उदयगिरि को लेते हुए कृष्णा के तट तक आ पहुँचा। उसने बहमनी सेना को कृष्णा के दक्खिन न बढ़ने दिया। गोदावरी कृष्णा दोआब के लिए पुरुषोत्तम और बहमनी सुल्तान में छीना-झपटी जारी रही। बहमनी रियासत में दक्खिनी और विदेशी अमीरों में सदा से संघर्ष चला आता था। मुहम्मद ३य का मन्त्री महमूद गवाँ नामक चतुर विदेशी अमीर था। हसन बहरी ने उसके नाम से जाली चिट्ठियाँ बना कर मुहम्मदशाह के मन में यह बैठा दिया कि वह पुरुषोत्तम से मिल गया है। इसपर मुहम्मद ने उसे मरवा डाला (१४८१ ई०)। इधर मल्लिकार्जुन के बाद उसका भाई विरूपाक्ष विजयनगर का राजा हुआ था। उसके कुशासन से राज्य की बुरी दशा हो गई। इस दशा में पुरुषोत्तम ने राजमहेन्द्री से नेल्लूर तक का तट तथा खम्माभेट और नलगोंडा जिले फिर जीत लिये।

§१२. बहलोल लोदी (१४५१-८८ ई०)—१४५१ ई० में बहलोल लोदी नाम के पठान ने, जो सरहिन्द का शासक था, उत्तर तोमर की मैत्री और सहायता से दिल्ली ले कर वहाँ पहले पठान राजवंश की स्थापना की। बहलोल दिल्ली को एक साम्राज्य न बना सका, तो भी वह उसे एक मजबूत राज्य

---

* दे० परिशिष्ट ४।

बनाने में सफल हुआ। दिल्ली के इलाके सब में अधिक शर्की सुल्तानों ने दबा रक्खे थे। भागलपुर-मुंगेर से कन्नौज और अवध तक तो उनका राज्य निर्विवाद था। बहलोल ने हुसेनशाह शर्की को अनेक लड़ाइयों में हरा कर जौनपुर छीन लिया (१४७९ ई०)। हुसेनशाह तब बिहार भाग गया।

१४४० ई० में सिबी के एक पठान ने मुलतान राज्य लिया था, १४५१ में बहलोल लोदी ने दिल्ली ली। इसके बाद से पठानों का आगे बढ़ना और पूरब और दक्खिन भारत तक जा कर बसना जारी रहा। मुगलों ने दिल्ली का राज्य पठानों से जीता, इस कारण मुगलों से पहले के दिल्ली के सभी मुस्लिम प्रशासकों को गलती से पठान कह दिया जाता है। पर वास्तव में मुस्लिम बनने के बाद पठानों का बढ़ाव पन्द्रहवीं शताब्दी में ही शुरू हुआ।

§१३. बंगाल और बहमनी सल्तनत का टूटना, उड़ीसा की अवनति—जिस प्रकार बहमनी सल्तनत ने अपने किनारों पर के छोटे छोटे राज्य १४३५–३७ ई० में जीते थे, उसी प्रकार बंगाल की सल्तनत ने अपनी सीमाओं के राज्य १४५४–१४८२ ई० के बीच जीत लिये। दक्खिनी बंगाल के यशोहर खुलना आदि जिले इस अवधि में सल्तनत में मिलाये गये, और राजा गौड़गोविन्द से सिलहट छीन लिया गया। किन्तु कामतापुर (उत्तरी बंगाल) के राजा से इलियासी सेनापति की दीनाजपुर जिले में हार हुई।

इसके बाद १४८७ ई० में इलियास-वंश का राज्य समाप्त हुआ और बंगाल में अराजकता उमड़ पड़ी।

तभी से बहमनी रियासत की भी अवनति हुई। मुहम्मद रेय के बाद बहमनी सुल्तान सर्वथा निःशक्त हो गये। १४८७ ई० से बरीद नामक वंश के सरदार बिदर में सल्तनत के कर्ता-धर्ता होने लगे, और बहमनी सुल्तान उनके हाथ में कैदी की भाँति रह गये।

उसी बरस सालुव नरसिंह ने विरूपाक्ष को पदच्युत कर विजयनगर का राज्य ले लिया।

१४९० ई० में हसन बहरी के बेटे अहमद ने, जो अहमदनगर का संस्थापक तथा उत्तरी महाराष्ट्र का हाकिम था, बीजापुर और बराड के हाकिमों

को लिखा कि हम तीनों स्वतन्त्र सुल्तान बन जाँय। यों अब एक बहमनी रियासत के बजाय चार रियासतें हो गईं।

पुरुषोत्तम का बेटा प्रतापरुद्र उडीसा का राजा हुआ (१४६७ ई०) तो उसका राज्य हुगली से नेल्लूर तक था। पुरुषोत्तम बंगाली सन्त चैतन्य का शिष्य बन गया और उसकी देखादेखी उसके सरदार भी वैष्णव हो गये। राज काज के बजाय भजन कीर्तन इनका मुख्य काम बन गया। तब से उडीसा राज्य की शीघ्र अवनति हुई।

सालुव नरसिंह का सेनापति तुलुव वंश का नरस नायक था। १५०५ ई० में नरस की मृत्यु होने पर उसके बेटे वीर नरसिंह ने सालुव नरसिंह के बेटे को पदच्युत कर स्वयं राज्य ले लिया। यों विजयनगर में तीसरा राजवंश शुरू हुआ।

§१४ **महमूद बेगडा**—गुजरात का महमूद बेगड़ा (१४५६-१५११ ई०) १५वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत का प्रमुख सुलतान रहा। महमूद ने गुजरात के पच्छिम और पूरब के दो दुर्जेय गढ, जूनागढ और चाँपानेर, हिन्दू राजाओं से जीते। राणा कुम्भा के दामाद जूनागढ के राव मण्डलीक को हराने और उसे मुसलमान बनाने के बाद उसने द्वारिका और कच्छ अधीन किये। यों बेगडा के समय में समूचा गुजरात उसकी सल्तनत के अन्तर्गत हो गया। महमूद की मूँछें बड़ी-बड़ी थीं जिन्हें वह घुमा कर उठा देता था। जिस बैल के सींग बड़े बड़े और ऊपर को घूमे हुए हों उसे गुजराती में बेगड़ो कहते हैं। यों जनता ने महमूद का बेगडा उपनाम दे दिया।

§१५ **हुसेनशाह बंगाली और सिकन्दर लोदी**—बंगाल की अराजकता का अन्त अलाउद्दीन हुसेनशाह ने किया (१४९३ ई०)। गौड पर अधिकार पाते ही उसने अपनी सेना को लूटने से रोका। पर उच्छृङ्खल सेना जब न मानी, तब उसने कई हजार सैनिकों को फाँसी दे दी।

हुसेनशाह के मुख्य सलाहकार हिंदू थे। गोपीनाथ बसु उसका वजीर

† इन्हीं गोपीनाथ बसु पुरन्दर खाँ के सीधे वंशज हमारे जमाने में सुभाषचन्द्र बसु हुए।

था, जिसे उसने पुरन्दरखाँ का विरुद दिया था। सनातन गोस्वामी उसका दबीरे-ख्वास* (निजी मन्त्री) था। सनातन के दो भाई रूप और अनूप भी ऊँचे पदों पर थे।

बंगाल की गद्दी पाते ही हुसेन ने शर्की सुल्तान से भागलपुर और मुंगेर जीत लिये। दिल्ली की गद्दी पर बहलोल के बाद सिकन्दर लोदी बैठा (१४८८–१५१७ ई०)। उसने हुसेनशाह शर्की से बिहार भी छीन लिया (१४९४ ई०)। हुसेन शर्की तब हुसेन बंगाली की शरण में चला आया। तब सिकन्दर ने उसपर भी चढ़ाई की। सन्धि होने पर पटना के ३७ मील पूरब बाढ़ नाम के कस्बे पर बंगाल और दिल्ली सल्तनतों की सीमा मानी गई।

शर्की शक्ति का यों अन्त होने पर सिकन्दर जमना दक्खिन के दिल्ली के पुराने इलाकों को ग्वालियर राज्य से वापिस लेने में लगा। सिकन्दर लोदी धर्मान्ध मुसलमान था। उसके राज्य में हिन्दू धर्म को भरसक दबाया गया। दिल्ली के साथ-साथ आगरे को भी उसने अपनी राजधानी बनाया।

उधर हुसेनशाह ने अपने पड़ोस के राज्यों से लोहा लिया। कामतापुर के राज्य का अन्त करके उसने अपनी सीमा असम से मिला दी। तब से बंगाल-असम का जल-स्थल-युद्ध जारी हुआ, जो ३५ बरस तक चलता रहा। उधर मिथिला के राजा से उसने सारन जिले तक का इलाका छीन लिया; वह राज्य तब उत्तर की तराई भर में रह गया। हुसेन के एक सेनापति ने उड़ीसा पर चढ़ाई कर पुरी को लूटा (१५०९ ई०)। प्रतापरुद्र ने दक्खिन से लौट कर उसका पीछा किया और उसे गंगा पर हराया। तो भी मन्दारण गढ प्रताप के हाथ से निकल गया। त्रिपुरा के राजा धन्यमाणिक्य से तीन बार हारने के बाद चौथी बार हुसेन ने उसका कुछ इलाका जीत लिया।

---

* वैष्णवों के इतिहास मे इस बात का तोड-मरोड़ कर यह रूप बन गया कि दाबिरे-खास नामक मुसलमान को चैतन्य देव ने हिन्दू बना कर सनातन नाम दिया।

परिशिष्ट ५

शर्की-उडीसा-युद्ध

जौनपुर के सुल्तान महमूद शर्की (१४४०-५६ ई०) तथा हुसेनशाह शर्की का उडीसा के राजा से युद्ध होना मुस्लिम इतिहासों में दर्ज है। पर आधुनिक ऐतिहासिक इसे स्पष्ट नहीं कर सके और उन्होंने कल्पना की है कि जौनपुर से बंगाल हो कर शर्कियों ने उड़ीसा पर चढ़ाई की होगी। स्व० राखाल दास बनर्जी ने पहलेपहल उड़ीसा का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत किया (१९३०) जिसमें उडीसा के राज्य या साम्राज्य की भिन्न भिन्न युगों में सीमाएँ प्रकट हुई। कपिलेन्द्र की राज्यसीमा राजमहल के आसपास शर्की राज्य से मिलती थी यह प्रकट होने से दोनों राज्यों में सीधा युद्ध होने की बात सर्वथा ठीक सिद्ध हुई। कपिलेन्द्र के एक सामन्त का लेख, जिसमें वह दो तुर्क राजाओं को हराने की बात कहता है, राखालदास ने उद्धृत किया है (जि० १, पृ० २९८)। एक सुल्तान तो बहमनी था, दूसरा कौन रहा होगा यह वे भी नहीं बूझ सके। दूसरा शर्की था। यह लेख १४५४ ई० का है, अतः महमूद शर्की ही हो सकता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ निम्नलिखित का ऐतिहासिक चरित लिखिए—(१) राजा गणेश (२) इब्राहीम शर्की (३) अहमदशाह गुजराती (४) हुशंग गोरी (५) जसरथ खोकर (६) जैनुलाबिदीन (७) महाराणा कुम्भा (८) कपिलेन्द्र (९) महमूद बगड़ा (१०) हुसैनशाह बंगाली।

२ जोधपुर और बीकानेर राज्यों का उदय कब किन दशाओं में हुआ?

३ बहमनी राज्य और विजयनगर के संघर्ष का वृत्तान्त संक्षेप में दीजिए।

४ बुन्देलखंड नाम कब से चला? चंदेरी प्रदेश दिल्ली सल्तनत में कब किसने मिलाया? पन्द्रहवीं शताब्दी में वह किस राज्य के अन्तर्गत रहा?

५ पन्द्रहवीं शताब्दी में कौन से राज्य गंगा से कावेरी तक फैला हुआ था? उसके फैलने का वृत्तान्त संक्षेप में दीजिए।

६ राणा कुम्भा की मृत्यु पर भारत के राजनीतिक नक्शे का विवरण दीजिए।

७ आगे की घटनाओं का विवरण दीजिए—(१) पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम अंश में बंगाल की अराजकता (२) बहमनी सल्तनत का टूटना (३) पठानों का भारत में बसाव।

८ बहलोल और सिकन्दर लोदी का वृत्तान्त लिखिए।

अध्याय ७

उपनिवेशों और स्वतन्त्र विदेश-सम्बन्धों का अन्त

§१. चम्पा और कम्बुज राष्ट्र का अन्त—आठवीं से दसवीं शताब्दी तक मध्य एशिया के भारतीय राज्य कैसे समाप्त हुए, और ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी तक हिन्दचीन प्रायद्वीप मे चीनकिरात जातियों की प्रधानता कैसे हो गई, सो हमने देखा है [७,७§§१,२; ८,३§२]।

चम्पा राज्य को आनामी दसवीं शताब्दी अन्त से ही दबाने लगे थे। अन्त में १३०७ ई० में चम्पा के राजा जयसिंहवर्मा ३य को अमरावती प्रान्त का उत्तरी आधा उन्हें दे देना पडा। १४०२ में समूची अमरावती दी गई और आनाम राज्य की सीमा चम्पा के विजय प्रान्त से आ लगी। १४४६ से १४७१ तक विजय भी हारा गया और तब से चम्पा का राजवंश आनामियों की कठ-पुतली बन कर पांडुरंग (फनरन) प्रान्त में रह गया। उस रूप में १८२२ ई० तक टिमटिमाने के बाद वह बुझ गया।

कम्बुज राष्ट्र का मुख्य अंश दे राजा इन्द्रादित्य और राम खामहेंग ने १३वीं शताब्दी के अन्त तक जीत लिया था [८, ३ § २]। १५वीं शताब्दी में कम्बुज राजाओं को राजधानी यशोधरपुर भी छोडनी पडी और वह राज्य भी मिट गया।

§२. बिल्वतिक्त साम्राज्य—कुबलै खान ने अपना जंगी बेडा सुमात्रा जावा को जीतने भेजा था, पर उन द्वीपों को मंगोल साम्राज्य मे सम्मिलित न कर सका था। वहाँ से उसकी सेना चली जाने पर [८, ३ § १] कृत-रजस जयवर्धन ने जावा में एक नया राज्य खडा किया (१२९४ ई०) जिसकी राजधानी बिल्वतिक्त या मजपहित थी। जयवर्धन की लडकी त्रिभुवनोत्तुंगदेवी जयविष्णुवर्धनी भी बडी योग्य स्त्री थी। अपने निकम्मे भाई के बाद वह बिल्व-तिक्त की गद्दी पर बैठी। उसकी बहन राजदेवी और माँ गायत्री भी उसके साथ शासन चलाती थी। उसका पति राज्य का मुख्य न्यायाधीश था। उसके मन्त्री गजमद ने एक बार सभा मे प्रण किया कि वह पहांग, सिंहपुर (सिंगापुर) और श्रीविजय (सुमात्रा) से ले कर बकुलपुर (दक्खिनी बोर्नियो) तक सब

राज्यों को जीत कर छोड़ेगा। सब लोगों ने उसकी हँसी की, लेकिन रानी ने हँसी करने वालों को निकाल कर गजमद के हाथ में पूरी शक्ति दे दी। गजमद ने जो कहा था उससे अधिक कर दिखाया। मला की स्थलग्रीवा और श्रीविजय से इरियन (न्यूगिनी) तक के सब प्रदेश बिल्वतिक्त के शासन में आ गये। उनमें से बहुतों को जयविष्णुवर्धनी के 'जलधिमन्त्री' (जल सेनापति) नल ने जीता था। उनके उत्तर आनाम, चम्पा, कम्बुज, अयोध्या और राजपुरी† तथा मरुतम (मर्तबान, बरमा के तट पर) के राज्य बिल्वतिक्त का आधिपत्य मानने लगे।

यह साम्राज्य (दे० नक्शा १६) प्रायः सौ बरस तक पूरे उत्कर्ष पर रहा। १३८९ में जयविष्णुवर्धनी के बेटे राजसनगर की मृत्यु के बाद अवनति होने लगी। बौद्ध और शैव मतों के तान्त्रिक रूप, जिनमें गुह्य क्रियाकलाप मुख्य था, पूरे जोरों पर आ गये। जनता की राजनीतिक कर्त्तव्यों के प्रति उपेक्षा बढ़ती गई। पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजा कृतावजय हुआ, जिसने चम्पा की राजकुमारी से विवाह किया। वह इस्लाम की पक्षपातिनी थी। यों जावा में इस्लाम के पैर जम गये। १४४८ ई० में उसकी मृत्यु हुई और १४७८ ई० में यह अन्तिम भारतीय उपनिवेश साम्राज्य भी हिन्दुओं के अन्य राज्यों की तरह अपनी भीतरी जीर्णता से टुकड़े टुकड़े हो गया।

§३ हिन्द महासागर में पुर्त्तगालियों का आना—७वीं से १५वीं शताब्दी तक, बीच में १३वीं १४वीं छोड़ कर, संसार पर इस्लाम का आतंक छाया था। ८वीं शताब्दी में जब अरबों ने सिन्ध से स्पेन तक जीता, तब से दक्खिनी स्पेन में इस्लाम के पैर जम गये थे। अरबों का स्थान पीछे तुर्कों ने ले लिया और १३वीं शताब्दी में उन्हें मंगोलों से दबना पड़ा। पर १३६० ई० में तैमूर के उदय से तुर्कों का दम फिर प्रकट हुआ। १४५३ में तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया को और बलकान प्रायद्वीप में रोम साम्राज्य के बचे खुचे अंश को भी ले लिया। युरोप को तब अपने दोनों दक्खिनी पहलुओं पर इस्लाम का दबाव लगने लगा। रोम और भारत के बीच मुस्लिम राज्यों के उठ खड़े होने से भारत और युरोप

---

† अयोध्या और राजपुरी दोनों स्याम में। अयोध्या की स्थापना १३५० ई० में हुई।

का सीधा व्यापार-सम्बन्ध टूट गया था।

पच्छिमी युरोप के लोग अरबों को 'मूर' कहते थे। उनकी दृष्टि में मूर लोग युरोप और भारत के व्यापार में दोनों के बीच आ गये थे। अरबों के साथ आने जाने वाले दूसरे मुसलमान भी मूर कहलाते होंगे। हिन्दुओं में इस युग में सामाजिक संकीर्णता और दूर देश जाने में अरुचि पैदा हो जाने से भारतीय नाविकों में इस्लाम फैलना गया। पिछले मध्य युग मे भारत और हिन्द-द्वीपावली के ये मुस्लिम नाविक अरबों के साथ एशिया से मिस्र तक माल ले जाते लाते थे। मिस्र से युरोप तक का व्यापार इतालवियों के हाथ में था।

१५वीं शताब्दी में पच्छिमी युरोप के राष्ट्रों में गहरी जागृति हुई। प्राचीन यूनानी विद्याओं की तरफ लोगों की रुचि फिरी और उनके ज्ञानचक्षु खुलने लगे। लोगों में नये नये और साहसपूर्ण विचार जागने लगे। स्पेन का दक्खिनी छोर मूरों ने दबा रक्खा था, इसलिए स्पेन-पुर्तगाल वालों की मुसलमानों से विशेष शत्रुता थी। अफरीका के पच्छिमी तट पर स्पेन-पुर्तगाल के लोग तब कुछ दूर तक जाते थे। उन्हे तब यह मालूम न था कि अफरीका कितना बड़ा महाद्वीप है। उनमें एक यह विश्वास भी प्रचलित था कि अफरीका के पूरबी छोर पर हब्शदेश (अबीसीनिया) में प्रेस्तर जौन नाम का ईसाई राजा है। उनके दिलों मे यह उमंग उठी कि यदि वे अफरीका के दक्खिनी छोर से घूम सकें तो एक तो उनका मुस्लिम शत्रु दोनों तरफ से घिर जाय, जिससे वे उसे पीठ पीछे से चोट लगा सकें – इसमें शायद प्रेस्तर जौन की भी मदद मिल जाय—और दूसरे भारत के व्यापार मे उन्हे अपने शत्रुओं पर निर्भर न रहना पड़े।

यह उमंग उन्हे अफरीका के पच्छिमी तट पर आगे-आगे ढकेलने लगी। उस महाद्वीप के पहले पूरबी घुमाव पर पहुँचकर (१४४२ ई०) उन्होंने जाना कि अब रास्ता पा लिया। किन्तु जब आगे स्थल का किनारा दक्खिन बढ़ा निकला और वह आगे-आगे बढ़ता ही गया, तब वे निराश होने लगे। अन्त मे दियाज नामक नाविक उसकी नोक पर पहुँच गया (१४८७ ई०), तो फिर से उनकी आस बँधी। इसीलिए उस नोक का नाम उन्होंने आशा अन्तरीप रक्खा।

इसी समय कोलम्बस नामक नाविक को एक नई बात सूझी। प्राचीन

यूनानियों का विचार था कि जमीन गोल है। कोलम्बस ने सोचा यदि ऐसा है तो पच्छिम बढ़ते-बढ़ते भारत पहुँच जाना चाहिए। स्पेन की रानी इसाबेला ने उसे जहाज दिये, जिनसे उसने अतलान्तक पार किया, और पच्छिमी अमरीका के द्वीपों पर पहुँच कर समझा कि भारत मिल गया (१४६२ ई०)। छः बरस पीछे पुर्तगाली नाविक वास्को द गामा आशा अन्तरीप का चक्कर लगा कर पूरबी अफरीका में व्यापार करने आये हुए भारतीयों से भारत का रास्ता जान कर कोळिक्कोट (कालीकट) आ पहुँचा (१४६८ ई०)। तब यह समझा गया कि कोलम्बस भारत के एक छोर पर पहुँचा है और वास्को उसी के दूसरे छोर पर। रोम का पोप ईसाइयों का सबसे बड़ा महन्त था। पोप ने अतलान्तक के बीच एक रेखा निश्चित कर फतवा दे दिया कि उसके पच्छिम के सब नये खोज-इलाक़े देश स्पेन के और पूरब के पुर्तगाल के होंगे।

वास्को द गामा

§ ४ दीव की लड़ाई—केरल तट के सरदारों ने अपना व्यापार बढ़ाने के लिए इन आगन्तुकों को अपने यहाँ कोठियाँ बनाने दीं। पुर्तगालियों ने भारतीय समुद्र में पहुँचने पर "मूर" अर्थात् मुस्लिम सामुद्रिक उनका विरोध करने लगे। पुर्तगाली तट पर, जहाँ जैसे दाव लगा, क़िलाबन्दी करने लगे। सबसे पहले

१५०३ ई० में उन्होंने काचि (कोचीन) में अपनी कोठी की किलाबन्दी की। फिर अफरीका के तट पर कई किले बनाये। गुजरात प्रान्त भारत के पच्छिमी व्यापार मे प्रमुख रहा है। गुजराती सुल्तान महमूद बेगडा ने इन आक्रान्ताओं को भारतीय समुद्र से निकालना अपना कर्तव्य समझा। १५०७ ई० में मिस्र के सुल्तान ने इस कार्य में उसकी मदद के लिए मीर हाजेम की नायकता में १२ जंगी जहाजों में पन्द्रह हजार सैनिक भेजे। पहली लड़ाई मे पुर्तगाली बेड़ा डुबाया गया, किन्तु आलमीदा और आलबुकर्क नामक पुर्तगाली सेनापतियों ने फिर तैयारी करके दूसरी लड़ाई में दीव के सामने मिस्री-गुजराती बेड़े को जला कर लूट लिया (१५०६ ई०)। फिर उन्होंने हिन्द महासागर में जहाँ तहाँ "मूरों" के जहाजों का संहार कर हमारे समुद्र पर एकाधिकार कर लिया। १५१० ई० में आलबुकर्क ने बीजापुर से गोवा छीन कर उसे पुर्तगालियों के सामुद्रिक साम्राज्य की राजधानी बनाया, तथा १५११ और १५१५ ई० में मलक्का और ओमुंज ले कर हिन्द महासागर की दो मुख्य खाड़ियाँ काबू कर लीं।

§५. **पहली पृथ्वी-परिक्रमा**—मसाले पैदा करने वाले पूरबी द्वीपों के लिए स्पेन वाले भी तरसते थे। पोप की सीमान्त-रेखा से पच्छिम जाते हुए उन द्वीपों तक पहुँचने की उन्हें सूझी। मागेलान नामक नाविक इस दृष्टि से पृथ्वी की परिक्रमा करने निकला। इसाबेला के पोते चार्ल्स ने उसे पाँच जहाज दिये, जिनमें २०० नाविकों को ले कर वह चला (१५१६ ई०)। मागेलान ने कोलम्बस से कहीं अधिक हिम्मत और बहादुरी का काम किया। अमरीका के दक्खिनी छोर से वह पहले-पहल प्रशान्त महासागर में घुसा। दो बरस पीछे उसे एक द्वीपावली मिली, जिसका नाम उसने चार्ल्स के बेटे फिलिप के नाम पर फिलिपीन रक्खा। वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके १८ बचे हुए साथी एक जहाज ले दूसरे बरस स्पेन पहुँचे (१५२२ ई०)। तब लोगों ने जाना कि अमरीका और भारत अलग-अलग देश हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. परले हिन्द के चम्पा राज्य की अवनति और अन्त का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखिए।

२. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) विल्वतिक्त साम्राज्य का उदय और

अभ्यास (२) पुर्तगालियों का भारत आना (३) पहली पृथ्वी परिक्रमा।
३ पुर्तगालियों ने भारतीय समुद्र पर एकाधिकार किन दशाओं में कर लिया?
४ दीव की लड़ाई का इतिहास में क्या महत्त्व है?

अध्याय ८

पिछले मध्य काल का भारतीय जीवन

§१ हिन्दुओं का राजनीतिक पतन और उसके कारण— पिछला मध्य युग हिन्दू सभ्यता की सहान और अधोगति का युग था। हिन्दुओं की राजशक्ति इस युग में तितरबितर हो गई। हिन्दू इस युग में प्राय सदा हारते ही क्यों रहे? इस प्रश्न के बहुत से उत्तर प्रचलित हैं, जैसे कि ठंडे देशों के निवासी और मांसाहारी होने के कारण मुसलमान हिन्दुओं से अधिक बलिष्ठ होते थे, कि युद्ध में हिन्दू अपने भारी भरकम हाथियों पर भरोसा रखते थे, जो फुर्तीले घुड़सवारों के मुकाबले में निकम्मे निकलते थे, और कि हिन्दुओं में एकता न थी—हर्षवर्धन के बाद से भारत में कोई सम्राट् नहीं हुआ और अराजकता छाई रही, छोटे-छोटे राज्य सदा आपस में लड़ कर कमजोर होते रहे।

इनमें से कोई भी व्याख्या परख पर ठीक नहीं उतरती। भारतवर्ष के गरम मैदानों के लोग ठंडे देशों के लोगों से कभी कमज़ोर नहीं रहे। भारतीय योद्धा तुर्कों से शारीरिक बल में कम न थे। अब भी भारत के गरम प्रदेशों के निवासी राजपूत, जाट, सिक्ख, मराठे, भोजपुरी, कन्नड़, आदि संसार की बलिष्ठ सैनिक जातियों से टक्कर लेते हैं। यदि गरम और ठंडे देश में पैदा होने से ही यह भेद होता तो अफगान जब हिन्दू थे, तब महमूद से क्यों हारते रहे? और कश्मीर से नेपाल तक के ठंडे प्रदेशों के हिन्दू राज्य इस युग में क्यों मुर्दा पड़े रहे? मलिक काफूर किसी ठंडे देश में पैदा न हुआ था। हिन्दू रहते हुए उसी काफूर ने यह योग्यता क्यों न दिखलाई? मांसाहार की बात भी वैसी ही है। दाक्षिणात्य और गौड़ ब्राह्मणों, बनियों और जैनों को छोड़ कर आज भी प्राय सब हिन्दू मांसाहारी हैं। हाथियों वाली बात भी ठीक नहीं है। स्वयं महमूद गज़नी

ने अपने विरोधी तुर्कों के मुक़ाबले में भारतीय हाथियों का प्रयोग किया था। उसका वृत्तान्त मनोरंजक है। उसके हाथी शत्रु के सवारों को अपनी सूँडों से पकड़ कर काठियों में से खींच लेते और नीचे पटक कर पैरों तले रौंद देते थे।

तीसरी बात भी अज्ञानमूलक है। प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के साम्राज्य हर्ष और पुलकेशी के साम्राज्यों के प्रायः बराबर थे। ८वीं ९वीं-१०वीं शताब्दी में जितने बड़े राज्य भारतवर्ष में रहे उतने बड़े राज्यों का परस्पर लड़ना यदि अराजकता हो तो संसार के सब देशों में सदा ही अराजकता रही है। समय-समय पर उनके परस्पर लड़ने से तो उलटा उनका पौरुष बना रहा। भारत जैसे बड़े देश में यदि तीन सदियों तक कोई युद्ध न होता तो लोग शायद युद्ध करना ही भूल जाते। तुर्क लोग भी आपस की लड़ाइयों में हिन्दुओं से क्या कुछ कम थे? महमूद वंक्षु पार के तुर्कों से बराबर लड़ता रहा। यदि महमूद ने हिन्दू राज्यों की लड़ाइयों से लाभ उठाया तो क्यों नहीं किसी हिन्दू राजा ने तुर्कों की आपसी लड़ाइयों से लाभ उठाने की चेष्टा की? सच यह है कि यदि हिन्दुओं का राष्ट्रीय जीवन मन्द न हो गया होता तो अकेले-अकेले हिन्दू राज्य भी शत्रु का मुक़ाबला कर सकते और यदि महमूद जैसा कोई असाधारण सेनापति उन्हें पछाड़ भी देता, तो भी अवसर पाते ही वे फिर उठ खड़े होते।

इस प्रसंग में हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि इस युग में हिन्दुओं ने जितनी लड़ाइयाँ लड़ीं, वे प्रायः सब रक्षापरक ही थीं। उन्हें आगे बढ़ कर शत्रु पर चढ़ाई करने की न सूझती थी और सूझती भी तो बहुत दूर की नहीं। शहाबुद्दीन गोरी यदि कई चढ़ाइयों में हारा भी तो उन हारों से उसे अपने राज्य का कोई हिस्सा तो न देना पड़ा। और हिन्दू राजा यदि उसके मुकाबले में जीते भी तो अधिक से अधिक अपना घर ही बचा पाये। इस युग में उन्होंने जो वीरता दिखाई प्रायः वह अपना अन्त निकट देख कर निराश हो मरने मारने पर तुले हुए आदमियों की वीरता थी। उसमें महत्त्वाकांक्षा की वह प्रेरणा, विशाल दृष्टि का वह स्वप्न और वह ऊँची साध न थी जो मनुष्यों को नई भूमियाँ खोजने और जीतने के खतरे उठाने के लिए आगे बढ़ाती है। बेशक, कायर बन कर अधीनता मानने की अपेक्षा वैसी वीरता की मौत मरना

भी अच्छा था। किन्तु वह बहादुरी का मरना ही था, बहादुरी का जीना नहीं।

हिंदुओं की हार का एक यह कारण भी कहा जाता है कि उनमे अनेक देशद्रोही पैदा होते रहे। देशद्रोह के बहुत से उदाहरण तो कल्पित हैं, जैसे पृथ्वीराज के विरुद्ध जयचन्द्र का। अनेक सच भी हैं, जैसे मुहम्मद गोरी के समय उच्च की रानी का या अलाउद्दीन के गुजरात पर चढ़ाई करने के समय कर्ण के उस मन्त्री का जिसका कर्ण ने मूर्खतावश अपमान किया था। इन उदाहरणों के विषय मे यह सोचना चाहिए कि हिंदू राज्यों के नेता इतने जागरूक क्यों न रहते थे कि देशद्रोह के अंकुर को ही कुचल देते। प्रजा का कोई आदमी ज्योंही देशद्रोह करने लगता, राजा उसे पकड़ कर दंड क्यों नहीं देता था? और यदि राजा ही देश बेचने लगता तो प्रजा उसके विरुद्ध क्यों नहीं उठ खड़ी होती थी?

इस प्रकार देशद्रोह के इन दृष्टान्तों से वास्तव मे राजनीतिक जीवन की मन्दता ही सूचित होती है। हिन्दुओं की इस युग की अधोगति का असल कारण यह था कि उनकी प्रगति या आगे बढ़ने की प्रवृत्ति रुक गई थी, उनकी महत्त्वाकांक्षा क्षीण हो गई थी, और वे अपने राजनीतिक हिताहित की उपेक्षा करने लगे थे।

§ २. तुर्कों और हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन और शासन की तुलना—इस युग के तुर्क सरदार और सैनिक निःसन्देह बहुत उच्छृंखल और उपद्रवी थे। सन् ११९३ से १५२६ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर कुल ५ वंशों के ३५ बादशाह बैठे। उसी अवधि मे मेवाड़ मे १३ राजाओं ने राज्य किया। दिल्ली के उन बादशाहों में से १९ तथा मेवाड़ के राजाओं में से ३ स्वाभाविक मृत्यु* के बिना मारे गये। सन् ११९६ से १५३८ ई० तक गौड़ मे कुल ४३ शासकों ने शासन किया। उसी अरसे में उसके पड़ोसी उड़ीसा मे केवल १४ राजाओं का शासन रहा।

इन अंकों से तुर्क शासन की कमज़ोरी प्रकट होती है। किन्तु यदि कोई हिंदू राजा इस कमज़ोरी से लाभ उठा कर दिल्ली पर चढ़ाई करता तो क्या होता?

---

*आयु पूरी करके, रोग से या बाहरी शत्रु से युद्ध में लड़ते हुए मृत्यु स्वाभाविक गिनी जाती है, पर भीतरी विद्रोह या षड्यन्त्र बखेड़े में होने वाली मृत्यु अस्वाभाविक है।

तुर्को मे कोई न कोई गयास तुगलक उठ खडा होता, और सब तुर्क अपने उपद्रव छोड उसके झडे तले जमा हो जाते। यह समझना चाहिए कि तुर्क सल्तनत में वास्तविक शासन तुर्को के सैनिक दल के हाथ में था। उस दल के नेता कब खिलजी रहे, कब तुगलक, आदि, सो गौण बात है। वह दल एक जाति के लोगो का था, जिनका जीवन, रहन-सहन, भाषा और मजहब एक था। उस तरुण जाति मे नये-नये देश जीतने की उमंग सहज ही मौजूद थी। इस्लाम ने उनमे यह विश्वास पैदा कर दिया था कि उनकी वह उमंग और लूटमार की प्रवृत्ति भी ईश्वरीय प्रेरणा है। यो वह उमंग उनके लिए ऊँचा आदर्श बन गई जो आदर्श उन्हे सदा आगे बढ़ने को प्रेरित करता रहा।

उनके दल में छोटे-बड़े सब बराबर थे, योग्यता से कोई भी आगे बढ़ सकता था। वे लोग काफी उत्पाती और उच्छृंखल थे, तो भी इस्लाम की शरीअत ने उनके समाज मे कुछ नियम बाँध दिये थे, और चूँकि वे नियम उनकी दृष्टि मे ईश्वरी कानून थे, अतः उनके उल्लंघन करने की आन्तरिक रुकावट उनके लिए उपस्थित रहती। यदि उनका शासन उपद्रवमय था तो इसका समूचा दोष भी उन्हे नही दिया जा सकता। इसके लिए मुख्य दोषी शासित प्रजा थी जो निश्चेष्ट हो कर सब कुछ सहने को तैयार थी, और अपने राजनीतिक अधिकारो और कर्त्तव्यो के प्रति बिलकुल बेहोश हो गई थी। यदि हिन्दू सभ्यता मे पहले का सा जीवन होता तो वह शको की तरह तुर्को को भी पालतू बना लेती; इस्लाम ने तुर्को के दल में जो व्यवस्था पैदा की वह उससे अधिक अच्छी व्यवस्था पैदा कर देती।

खिलजियो के पतन-काल मे यदि कोई हिन्दू सरदार दिल्ली पर अधिकार कर भी लेता तो जहाँ उसे तुर्को के उस जीवित दल का सामना करना पडता, वहाँ उसके अपने पक्ष मे कौन सी शक्तियाँ आती? यदि वह 'नीच' जात का होता, जैसा कि खुसरो था ही, तो उसे कही से भी सहयोग न मिलता। और यदि वह कुलीन होता तो भी उसकी दशा प्रायः वही होती जो बंगाल में राजा गणेश की हुई। गणेश के बेटे के मुसलमान होने के विषय मे कई कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, पर असल बात यह प्रतीत होती है कि उसके अधीन हिन्दू सरदार

निश्चेष्ट थे जिनसे सहयोग पाने की उसे कोई आशा न थी, और सचेष्ट मुस्लिम सरदारों और पीरों फकीरों का अकेले मुकाबला करने लायक दृढ़ता, जो उसके बाप में थी, उसमें न थी।

चौदहवीं पन्द्रहवीं सदी में उत्तर भारतीय मैदान के मुख्य अंश, कश्मीर, मालवा, गुजरात और बहमनी रियासत के सिवाय समूचे भारत में अर्थात् लगभग आधे भारत में हिन्दू राज्य थे। यदि उनमें राजनीतिक सचेष्टता, जागरूकता और अपनी एकता का विचार होता तो वे एक बड़ी शक्ति संगठित कर सकते। किन्तु उनकी दृष्टि संकीर्ण और शून्य थी। पुरानी लकीर पर चलने के अतिरिक्त कोई दूर का या ऊँचा लक्ष्य उनके सामने आता ही न था।

जिन राज्यों के सञ्चालक अपने चारों तरफ की परिस्थिति को देखने और समझने में इतने बेसुध और जागरूकताहीन थे, उनके अन्दर का शासन भी कैसा रहा होगा? हमने दिल्ली और लखनौती के तुर्क शासन की एक अंश में मेवाड़ और उड़ीसा के मुकाबले में कमजोरी देखी है। हिन्दू शासन में एक दूसरी कमजोरी थी। जहाँ राज्य के नेता ऊँघने वाले और उपेक्षाशील होते हैं, वहाँ उसका संगठन बाहर के किसी हमले के बिना ही ढीला हो जाता है और चारों तरफ उपद्रव होने लगते हैं। चेदि देश का इतिहास इसका उदाहरण है। सल्तनत युग में उसका बड़ा अंश प्रायः स्वतन्त्र रहा, किन्तु बारहवीं सदी के अन्त में वह राज्य आप से आप ही टूट गया। इसके बाद उसके स्थान में कोई सुसंगठित राज्य पैदा न हुआ, जहाँ तहाँ छोटे मोटे सरदारों के ठिकाने खड़े हो गये, जिनकी सीमाओं पर हमेशा ही अशान्ति रहती होगी। यदि भारत में तुर्क न आते तो प्रायः समूचे भारत की वही दशा हो जाती। इस प्रकार यदि तुर्कों के राज्य में शासक दल की असंयत सचेष्टता के कारण उत्पात और उपद्रव होते रहते थे तो हिन्दुओं के राज्य में शासकों की निश्चेष्टता के कारण वैसे ही उपद्रव जारी थे। प्रजा में राजनीतिक चैतन्य न रहने के कारण उस युग में देश की वैसी दुर्दशा होना अवश्यम्भावी था।

§३ सामन्त शासनप्रणाली और जागीर-पद्धति—जनता की राजनीतिक निश्चेष्टता तथा तुर्कों के विजयों से इस युग में शासन की एक नई

पद्धति जिसकी बुनियाद पहले मध्य युग से पड़ रही थी, पूरी तरह जम गई। तुर्क और दूसरे विजेता विजय के बाद इलाके आपस में बाँट लेते। वे पहले किसानों को हटा कर उनके स्थान में खुद बसने के बजाय उन्हीं को खेती-बाड़ी करने देते और उनके ऊपर स्थानीय शासक बन बैठते थे। जो काम पहले शिल्पियों की श्रेणियाँ, ग्रामो और नगरो की सभायें या पंचायतें करती थीं, उसका बहुत सा अंश इन स्थानीय शासकों या जागीरदारो ने हथिया लिया। पंचायते भी बनी रहीं, पर जनता के अपने स्वत्वों के प्रति उदासीन हो जाने के कारण उनके और इन जागीरदारो के अधिकारो की सीमा का निश्चय करना कठिन है। इस पद्धति का विकास पहले मध्य युग या गुप्त युग से ही होने लगा था, बाहरी विजेताओ के आने से वह तेजी से बढ़ा। जहाँ नये विजेता न पहुँचे, वहाँ भी पुराने कर वसूल करने वाले और अन्य राज्याधिकारी उसी तरह जनता के बहुत से अधिकार लेते गये। राजा अपने बड़े सरदारों या सामन्तों को मानो देश का शासन ठेके पर देता—या जागीर देता—और वे अपने छोटे सरदारों और सैनिकों को उसी तरह ठेका देते। इस ठेके की परम्परा में प्रत्येक ठेके की यह शर्त होती कि सैनिक या सरदार अपने 'स्वामी' को बदले में सैनिक सेवा देंगे। इसी को हम सामन्त-शासनपद्धति या जागीर-पद्धति कहते हैं।

§४. सामाजिक जीवन—जातपाँत, परदा, बालविवाह—न केवल हिन्दुओ के राजनीतिक जीवन मे, प्रत्युत उनकी सभ्यता के सभी पहलुओ मे जीर्णता आ गई। उस सभ्यता मे प्रगति और प्रवाह बन्द हो गये थे। किन्तु जीर्ण होने पर भी हिन्दू सभ्यता ने अपने को बचाये रखने की अनुपम शक्ति दिखाई। पहले मध्य युग में जात-पाँत का विकास हो चुका था और ब्याह-शादी, खान-पान पर कड़े बन्धन लग चुके थे। वे बन्धन अब और भी कडे हो गये, जिससे हिन्दू समाज के अन्दर के जीवन पर बाहर से कोई प्रभाव पडना बहुत कठिन हो गया। हिन्दुओं ने अपने विजेताओ को अपने से ऊँचा मानने के बजाय उलटा नीचा बताया। चौदहवीं शताब्दी में राजस्थान के जो अनेक राजवंश पदच्युत हुए उनके वंशधर अपने को राजपूत कहने लगे और वह भी एक जात बन गई।

परन्तु इस युग तक भी हिन्दू अपनी जातों में बाहर के आदमियों को मिला लेते थे। इसका एक उदाहरण शहाबुद्दीन गोरी के हारे हुए कैदियों का गुजराती हिंदुओं में मिलाये जाने का है [८, १§१]। दूसरा बड़ा उदाहरण अहोम लोगों के हिंदुओं में मिलने का है। तेरहवीं सदी में वे असम में आये तो अपनी बोली बोलते और गोमांस खाते थे। धीरे धीरे उन्होंने एक आर्य भाषा अपना ली और पूरे हिंदू बन गये।

परदा और बालविवाह की प्रथाएँ भी इसी युग में परिपक्व हुईं।

§५ **धार्मिक जीवन—(अ) जड़पूजा, वाम मार्ग और अन्ध-विश्वास**—पहले मध्य काल के अन्त तक हिन्दू धर्म में जो प्रवृत्तियाँ प्रकट हो चुकी थीं वे तेरहवीं शताब्दी में तथा चौदहवीं के आरम्भ तक भी जारी रहीं। जनसाधारण में मूर्त्तिपूजा जड़ पूजा बन चुकी थी। इसके अलावा प्राय सभी पन्थों में कोई न कोई विपथी या घोर रूप चल चुके थे। तीसरे, अलौकिक और असाधारण सिद्धियाँ ऊँचे जीवन का मुख्य चिह्न मानी जाने लगी थीं। चौथे, धर्म में निरर्थक क्रियाकलाप बहुत बढ़ गया था, और उस रूप में उसे निभाना फुरसत वाले निठल्ले लोगों के लिए ही शक्य था। देवगिरि के अन्तिम यादव राजा के मन्त्री हेमाद्रि (हेमाड पन्त) ने हिंदू धर्म-कर्म का एक ग्रन्थ 'चतुर्वर्ग चिन्तामणि' लिखा जिसमें बरस भर में करने के लिए प्राय २००० व्रतों अनुष्ठानों का विधान है। उसी तरह के ग्रन्थ काशी और मिथिला में शूलपाणि उपाध्याय, कमलाकर भट्ट, नीलकण्ठ आदि ने लिखे, जिनमें हिंदू धर्म का वही जटिल रूप दिखाई देता है।

(इ) तौहीद और मूर्तिपूजा—इस्लाम भारत में हिंदू धर्म की उक्त हीन प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया रूप में उपस्थित हुआ था। उसकी चोट ने हिन्दू मस्तिष्क को जगाया और उसने अपने को स्वयं पैदा किये हुए जिस जाले में उलझा लिया था उसमें से निकल कर अपने पुराने दर्शन को फिर से पहचानने में मदद दी। वास्तव में इस्लाम के धार्मिक विचारों में शिक्षित हिंदुओं के लिए कोई नई बात न थी। एक ब्रह्म का विचार उपनिषदों के समय से स्पष्ट रूप में मौजूद था। हमने देखा है कि महमूद गज़नवी के टके पर 'लाइलाह इल्लिलाह'

का अनुवाद 'एक अव्यक्त' किया गया है [७, ५ § ५]। इससे प्रकट है कि इस्लाम की इस आधारशिला में शिक्षित हिन्दुओं ने अपने दर्शन का पुराना विचार ही देखा। उनकी दृष्टि में ब्रह्मा विष्णु शिव आदि केवल उस 'एक अव्यक्त' की विभिन्न शक्तियों के सूचक थे। उनकी मूर्तियाँ केवल संकेत थीं, जिनकी रचना में कला को अपना कौशल दिखाने का अवसर मिलता था। महाराणा कुम्भा के प्रसिद्ध कीर्तिस्तम्भ में हिन्दुओं के सब देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव से शुरू कर ऋतुओं और मासों तक को मूर्त्त किया गया है। स्पष्ट है कि वे सब मूर्त्तियाँ पूजा के लिए न थीं। वहाँ प्रतिमा का अर्थ केवल भाव का मूर्त्त रूप है। वह पत्थर में तराशी गई कविता है। धार्मिक विचारों में हिन्दू कितने उदार थे, इसका उदाहरण भी उसी कीर्ति-स्तम्भ में मौजूद है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की मूर्त्तियों के साथ-साथ अरबी अक्षरों में अल्लाह का नाम भी वहाँ लिखा है। वह निराकार ब्रह्म का अरबी नाम है। यों इस युग में इस्लाम के बुनियादी विचार को हिन्दुओं ने खुशी खुशी स्वीकार कर लिया था।

(उ) सन्त और सूफी सम्प्रदाय—इस परिवर्त्तन को लाने में इस युग के सन्तों की चलाई हुई सुधार की लहर मुख्य कारण हुई। वे सन्त सब वैष्णव भक्त थे। उन्होंने जनता का ध्यान मूर्त्तियों के जड रूप से हटा कर उनके भाव और आदर्श की तरफ खींचा, विपयाक्त पूजाओं की उपेक्षा कर शुद्ध पूजाओं को उज्ज्वल और आकर्षक रूप में उपस्थित किया, तथा पूजा की विधि और क्रियाकलाप के बजाय भाव और भक्ति पर ज़ोर दिया। मध्य एशिया में बौद्ध मार्ग के सम्पर्क से इस्लाम में भी रहस्यवाद चला। उसके प्रवक्ता सूफी कहलाये। उनकी धार्मिक दृष्टि बहुत उदार थी।

इस युग के पहले सुधारक प्रयाग के रामानन्द तथा पंढरपुर (महाराष्ट्र) के विसोबा खेचर थे, जो दोनों चौदहवीं शताब्दी में हुए। रामानन्द ने गोपियों से घिरे कृष्ण के बजाय राम को भगवान् माना, संस्कृत के बजाय देशी भाषा में उपदेश दिया तथा नीच कहलाने वाली जातियों के लोगों, स्त्रियों और मुसलमानों को भी शिष्य बनाया। भक्ति छोटे-बड़े सब को पवित्र बना सकती

है, अतः भक्त सन्तों ने 'नीच' जातों को भी सहज ही ऊँचा उठा दिया। विसोबा खेचर ने खुले शब्दों में मूर्ति पूजा को धिक्कारा—'पत्थर का देवता नहीं बोलता वह चोट से टूट जाता है। पत्थर के देवताओं के पुजारी मूर्खता वश सब खो बैठते हैं।"

१४वीं सदी में ही ईरान में हाफ़िज़ नामक सूफ़ी कवि हुआ। उसे बहमनी रियासत के मुहम्मदशाह २य (१३७८-९७) तथा बंगाल के गयास आज़मशाह (१३८९-९६) दोनों ने अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया था। इससे प्रकट है कि भारतीय मुसलमानों पर हाफ़िज़ का बड़ा प्रभाव पड़ा था।

विसोबा का शिष्य नामदेव तथा रामानन्द का शिष्य कबीर था यह माना जाता है। नामदेव ने तीर्थ, व्रत, उपवास आदि धर्म के सब बाह्य साधनों को व्यर्थ कह कर मन की शुद्धि और हरि के ध्यान को ही ठीक मार्ग बतलाया। कबीर सिकन्दर लोदी का समकालीन था। वह मुस्लिम जुलाहा था। हिन्दू और मुसलमान दोनों में उसके अनुयायी हैं, और दोनों को उसने खरी खरी सुनाईं। वह भी राम का उपासक था। हिन्दुओं से उसने कहा—

पाहन पूजे हरि मिलें,
तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली,
पीस खाय संसार।

और मुसलमानों से कहा—

काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चिनाय,
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, बहरा हुआ खुदाय?

कबीरदास—राजपूत कलम का चित्र।
[[illegible] संग्रहालय में रक्खे एक पुराने चित्र की प्रतिलिपि, भारत कलाभवन]

कबीर के बाद उल्लेखयोग्य नाम पंजाब के गुरु नानकदेव (१४६८-१५३८ ई०) का है जो सन्त होते हुए भी गृहस्थ था। संसार के कर्त्तव्यों को करते हुए भी सदाचरण और भक्ति से मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है, यह नानक की शिक्षा थी।

नानक और हुसेनशाह का समकालीन बंगाली सन्त चैतन्य था (१४८५-१५३३ ई०)। राजा गणेश के प्रधान मन्त्री का पोता अद्वैताचार्य चैतन्य का साथी था। इन दोनों ने बंगाल को वज्रयान और शाक्त वाम मार्ग से उबारा। इनके वैष्णव धर्म में जटिल दार्शनिकता न थी, भाव-प्रधान भक्ति ही उसका सार था। इन्होंने जाति-भेद को दूर किया और मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाया। बंगाल में बौद्ध भिक्खु-भिक्खुनियों का बड़ा समुदाय था, जो हिन्दू समाज से अलग हो गया था। वे नेड़ा-नेड़ी कहलाते थे। अद्वैताचार्य ने उन सब को वैष्णव दीक्षा दे हिन्दुओं में मिला लिया। बंगाली वैष्णव भक्तों ने अहोमों को भी हिन्दू बनाया। किन्तु इन भक्तों के द्वारा भजन-कीर्त्तन को ही जीवन का मुख्य धन्धा बना देने का प्रभाव अच्छा न हुआ।

मारवाड़ की मीराबाई, जो महाराणा कुम्भा के पोते महाराणा सांगा की पतोहू थी, चैतन्य से १३ बरस पीछे पैदा हो कर १३ बरस पीछे ही परलोक सिधारी (१४९८-१५४६ ई०)। उसने अपने दादा और पिता की परम्परा से वैष्णव भक्ति पाई थी।

(ऋ) **भारतीय इस्लाम**—चौदहवीं सदी से—प्रादेशिक मुस्लिम राज्यों की स्थापना के साथ-साथ—इस्लाम भी भारतवर्ष में विदेशी न रहा। तुर्क लोग तब तक भारतीय हो गये थे और बहुत से भारतीय भी मुसलमान बन चुके थे। लोदी और अन्य पठान भारतीय मुसलमान अर्थात् हिन्दू से बने हुए मुसलमान ही थे। भारतवर्ष में इस्लाम का वास्तविक प्रचार प्रादेशिक मुस्लिम राज्यों द्वारा ही हुआ। उन राज्यों के शासकों में से कई इस्लाम के उग्र प्रचारक थे और उन हिन्दी मुसलमानों ने तुर्कों से बढ़ कर इस्लाम को फैलाया। फीरोज तुगलक, सिकन्दर बुतशिकन, अहमदशाह गुजराती, महमूद बेगड़ा तथा सिकन्दर लोदी उस प्रकार के इस्लाम-प्रचारक थे। दूसरी तरफ जैनुलाबिदीन जैसे
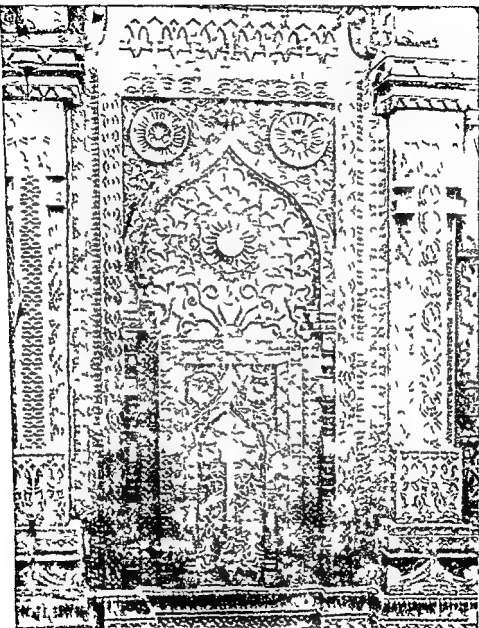
चंदेरी के एक मकबरे की मेहराब—मालवे की १५ वीं सदी की कारीगरी।
[ग्वालियर पु० वि०]

सुशासकों ने अपने चरित्र के उदाहरण से इस्लाम का गौरव बढ़ाया।

§ ६. **ललित कला**—१४वीं-१५वीं शताब्दी के सभी प्रादेशिक प्रशासकों ने भारतीय साहित्य और कला को अपनाया और पुष्ट किया। भारतीय कला पहले मध्य काल के अन्त में भावशून्य और अलंकारप्रधान होने लगी थी। तुर्कों ने जहाँ उसके बहुत से पुराने चिह्न मिटा दिये वहाँ उसमें नई जान भी फूँकी। भारतीय कारीगरों का कौशल मिट न गया था। वह कौशल अब नई मुस्लिम इमारतों में प्रकट हुआ। इनमें से बहुत सी तो पुरानी हिन्दू कृतियों का रूपान्तर मात्र था। बंगाल में इलियास के बेटे सिकन्दरशाह की बनवाई पाण्डुआ (जि० मालदा) की अदीना मसजिद, जो एक बौद्ध स्तूप की सामग्री से बनी तथा जिसके बराबर बड़ी मसजिद भारत में कभी कोई नहीं बन पाई, जौनपुर की अटाला देवी-मसजिद तथा मालवा गुजरात और दक्खिन की इस युग की इमारतें भारतीय वास्तु-कला के बढ़िया नमूनों में से हैं। उनमें से प्रत्येक पर अपने-अपने प्रान्त की पुरानी शैली की छाप है।
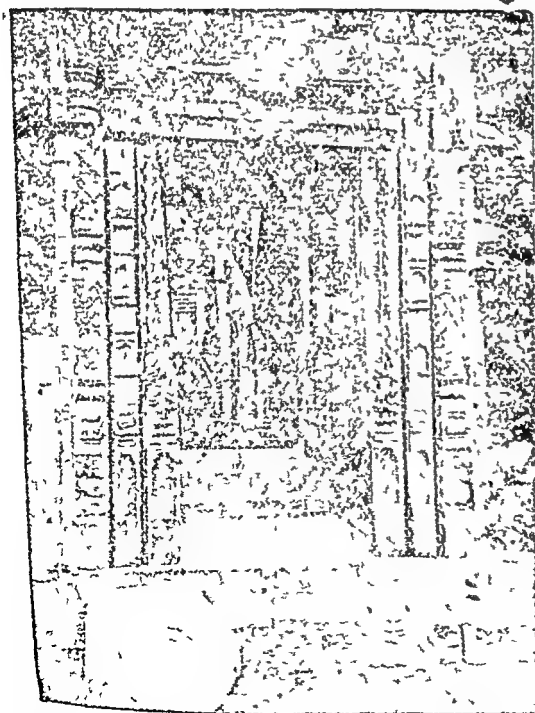
अदीना मसजिद का एक दरवाजा [भा० पु० वि०]

मूर्ति-कला के लिए मुस्लिम दरबारों में कोई स्थान न था, और हिन्दू राज्यों में भी वह अवनति पर थी। चित्तौड के कीर्ति-स्तम्भ की मूर्त्तियाँ भद्दी हैं। किन्तु दक्खिन की नटराज मूर्त्तियाँ सुन्दर और सजीव हैं। इस युग की मूर्त्ति-कला

का बढ़िया नमूना जावा से पाई गई राजा रङ्गसरा अमुर्वभूमि (१२२०-२७ ई०) के समय की प्रज्ञापारमिता की प्रतिमा है, जो उस राजा की सुन्दरी रानी देदेस की प्रतिकृति मानी जाती है। पारमिता का अर्थ है उत्कर्ष या परम उत्कर्ष। बौद्ध कला में भिन्न भिन्न पारमिताओं को भी मूर्त रूप दिया गया है।

सिक्कों पर आने वाली मूर्तें पहले मध्य काल के अन्त में ही भद्दी होने लगी थीं। चौहानों और गाहडवालों के सिक्कों पर नन्दी और लक्ष्मी की जैसी मूरतें आती थीं, मुहम्मद गोरी ने उन्हें वैसा ही जारी रक्खा। अल्तमश ने अपनी गाड विजय की याद में जो टका ढलवाया, उस पर घुड़सवार की सजीव मूर्त है [८, २§४] प्राणियों की मूर्ति बनाना इस्लाम के खिलाफ था। प्रकट है कि ये सुल्तान इस्लाम की प्रेरणा से ही न चलते थे।

§७ साहित्य—चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी में देशी भाषाओं के साहित्यों को एक तरफ तो प्रादेशिक राज्यों से प्रोत्साहन मिला, दूसरी तरफ उन्हें सन्त सुधारकों ने अपना कर पुष्ट किया। मलिक खुसरो (१२५३-१३२५ ई०) ने खड़ी बोली में सबसे पहले कविता की। खुसरो की उस कविता से यह भी प्रकट होता है कि तुर्क तेरहवीं शताब्दी तक ही किस प्रकार भारतीय बन चुके और भारतीय विचारों को अपना चुके थे। यदि हिन्दुओं की सामाजिक सकीर्णता बाधक न होती तो तुर्कों के कारण भारतीय समाज का विकास होने में कोई रुकावट न पड़ती।

नटराज (ताण्डव करते हुए शिव) १५वीं श॰ का दक्खिन भारतीय कांस्य। [पश्चिम सप्र॰]

बंगला साहित्य का उदय राजा गणेश के समय से हुआ। चण्डीदास के पद उसमें सब से पहली प्रसिद्ध रचना हैं। उसी प्रकार के पद विद्यापति ने मैथिली में लिखे। हुसैनशाह, उसके पुत्र और

प्रज्ञापारमिता (जावा, १३वीं सदी)

सरदारों ने बँगला में भागवत और महाभारत के अनुवाद करवाये। बंगाली कवियों ने भी उस 'श्रीयुत हसन जगतभूषण' के नाम को अपने गीतों में चिर-स्थायी किया। कश्मीर के जैनुलाबिदीन के विषय में दूसरी तीसरी राजतरंगिणी के लेखक ने इस बात को दर्ज किया है कि उसने देशी भाषा अर्थात् कश्मीरी में रचना को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया।

द्राविड़ भाषाओं में से तमिळ और कन्नड में पहले भी साहित्य था। तेलुगु में साहित्य का विकास राजा गणपति और उसके सामन्तों तथा मध्य काल के भक्तों के प्रोत्साहन और प्रयत्न से शुरू हुआ। १२वीं शताब्दी के तमिळ कवि कम्बन की रामायण तथा कवयित्री आण्डाल के गीत भारतीय साहित्य के उज्ज्वल रत्न हैं। कम्बरामायण के नमूने पर पीछे दूसरी भाषाओं में भी रामायणें लिखी गईं।

मुस्लिम राज्यों के इतिहास फारसी में लिखे जाते रहे। भारतीय तुर्कों की साहित्यिक भाषा फारसी थी। असम के अहोम राजाओं के वृत्तान्त अहोम भाषा में बराबर लिखे गये। वे बुरंजी कहलाते हैं। कश्मीर का इतिहास दूसरी तीसरी चौथी राजतरंगिणी के रूप में इस युग में बराबर संस्कृत पद्य में लिखा जाता रहा। संस्कृत में अन्य अनेक ऐतिहासिक प्रबन्ध और ग्रन्थ भी इस युग में लिखे जाते रहे। ये सभी महत्त्वपूर्ण हैं।

§८ पन्द्रहवीं शताब्दी का पुनरुत्थान—बारहवीं शताब्दी के अन्त में जब उत्तर भारत के हिन्दू राज्य एक एक ठोकर से गिरते गये तब से पिछले मध्य काल का आरम्भ हुआ। तेरहवीं शताब्दी के अन्त और चौदहवीं के आरम्भ में जब दक्खिन भारत और कश्मीर के राज्य गिरे तब वह पतन की प्रक्रिया अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। उसके बाद प्रतिक्रिया हुई। चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी में जो प्रादेशिक राज्य उठे वे उस प्रतिक्रिया की उपज थे। यह बात हिन्दू और मुस्लिम राज्यों के विषय में समान रूप से लागू होती है, क्योंकि इस युग में प्रादेशिक मुस्लिम राज्यों के प्रशासक अपने अपने प्रदेश में जनता की रक्षा करने और सुव्यवस्था रखने की भावना से पूरी तरह प्रेरित थे, वे अपने को पूरी तरह अपने प्रदेश का मानते, और उसकी संस्कृति से भी आग

से प्रेम करते और अपने को विदेशी किसी प्रकार भी न मानते थे। मलिक काफूर, डुल्च, रिचन और तैमूर के सामने विभिन्न प्रदेशों की जनता ने अपने को जैसा असहाय पाया था, वैसी असहायता फिर न आय यह आदर्श उन सभी राज्यों के सामने प्रायः रहा। चौदहवीं शताब्दी से जो धार्मिक संशोधन की लहर चली वह और यह राजनीतिक पुनर्जीवन एक ही लहर के दो पहलू थे।

प्रायः इन सभी राज्यों ने भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने का यत्न किया। जौनपुर के इब्राहीम शर्की (१४०१–१४३७ ई०) तथा उसके पोते हुसेनशाह शर्की (१४५७–७६) के प्रशासन में भारतीय संगीत की विशेष उन्नति हुई। उनके अधीन कडा-मानिकपुर के बहादुर मलिक नामक व्यक्ति ने दूर दूर के गायकों का एक सम्मेलन जुटा कर संगीत के पुराने संस्कृत ग्रन्थों का संग्रह करवाया, विवादास्पद बातों का निर्णय करवाया और संगीतशिरोमणि नामक नया ग्रन्थ तैयार करवाया (१४२८ ई०)। इसके कुछ ही समय बाद महाराणा कुम्भा और जैनुलाबिदीन ने भी संगीत की उन्नति के प्रयत्न किये। इस युग के प्रादेशिक राज्यों ने किस प्रकार भारतीय वास्तुकला को पुनर्जीवित और देशी भाषाओं को प्रोत्साहित किया, सो हम देख चुके हैं। चित्रकला में भी अपभ्रंश शैली की रूढ़ियों को कुछ तोड़ कर एक नई जानदार कलम (शैली) गुजरात और मेवाड़ में १५वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से चली जिसे राजपूत कलम† नाम दिया गया है। अपभ्रंश शैली में शबीहें न बनती थीं, इसमें बनने लगीं।

† आनन्द कुमार स्वामी ने राजपूत कलम के अन्तर्गत पहाडी कलम को भी माना था, जो हिमालय के राजपूत राज्यों मे पैदा हुई और पली। यों राजपूत कलम और मुगल कलम [९, ४ § ५] जो अगले युग मे जारी रही, उनमे से एक अपने नाम से भारतीय और दूसरी बाहरी प्रतीत होती है। राय कृष्णदास ने दिखाया है कि मुगल कलम भी पूरी तरह भारतीय है, कि पहाडी कलम जो १८वीं सदी मे पैदा हुई उसी का रूपान्तर है, और कि पहाडी और राजपूत कलमों के तत्त्वों मे इतना अन्तर है कि उन पर एक शीर्षक नहीं लगाना चाहिए। उन्होंने राजपूत के बजाय राजस्थानी नाम रक्खा है, पर साथ ही कहा है कि वह नाम भी "हम बहुत सार्थक नहीं समझते।" सो उनकी सब बातें मानते हुए भी राजपूत नाम चलने देना ही ठीक है, विशेषतः इस कारण कि राजपूत जाति की कल्पना भी १५वीं शताब्दी के उसी पुनरुत्थान मे पैदा हुई, जिसमे यह कलम।

§९ मध्य काल का ज्ञान और अर्वाचीन काल का आरम्भ— हम कह चुके हैं कि गुप्त युग में भारतवर्ष में ज्ञान की उन्नति जहाँ तक हो गइ थी, उसके आगे प्राय एक हजार बरस तक संसार ने विशेष उन्नति न की। इस बीच पहले अरबों और फिर मगोलों द्वारा भारत और चीन का ज्ञान युरोप तक पहुँचता रहा। दशगुणोत्तर गणना अरब लोगों ने भारत से सीखी, इसी कारण उन्होंने हमारे अकों को हिन्दसे कहा। युरोप वालो ने वह गणना अरबवालों से तेरहवीं शताब्दी में सीखी। लकड़ी के ठप्पो (ब्लाकों) से कागज पर छापने की विद्या चीन वालो से सीख कर अरबो ने युरोप पहुँचाइ। मगोलो ने युरोप मे बारूद पहुँचाया। इसी प्रकार और अनेक बातों का ज्ञान युरोप म पूरब से गया। रोम के पतन के समय से जब युरोप के राष्ट्रों ने इसाइ विचार को अपनाया, तब से वे अज्ञान की निद्रा म रहे। अब धीरे धीरे यह ज्ञान पा कर उनमें गहरी जागृति पैदा हुई। प्राचीन यूनान की विद्याओं के लिए वे तरसने लगे। १४५३ इ० में तुर्कों के कुस्तुन्तुनिया जीत लेने पर प्राचीन यूनानी विद्याओं के अनेक विद्वान् भाग कर युरोप के देशों म पहुँचे।

पूरब और यूनान के ज्ञान से युरोप मे नइ जागृति पैदा हो गइ। वहाँ के तरुण आर्य राष्ट्रों के विचार जहाँ एक बार उस ज्ञान से जग उठे कि उन्होंने स्वय नइ नइ खोजें करना शुरू कर दिया। नये देशों की खोज की बात पीछे कही जा चुकी है। गुटनबर्ग नामक जर्मन ने इसी समय सीसे के चल टाइप से छापने की कला निकाली (१४५४-५६ इ०), जिससे नइ पुस्तकें छापने मे बड़ी सुविधा हो गइ। यो दुनिया मे एक नया युग उपस्थित हुआ। उस नये युग को लाने में तीन वस्तुओं के ज्ञान का विशेष प्रभाव हुआ। एक नाविकों के दिग्दर्शक यन्त्र का, दूसरे बारूद का, और तीसरे पुस्तक छापने की कला का।

पन्द्रहवीं शताब्दी का सांस्कृतिक पुनरुत्थान इतना गहरा न था कि भारतीयों के आचार्यों को पूरी तरह खोज देता। युरोप के पुनर्जागरण के मुकाबले में वह बहुत उथला रहा। ज्ञान के क्षेत्र म भारतीय अब भी वैसे ही मग्न रहे जैसे गुप्त युग के बाद से सोये थे। किन्तु पच्छिमी लोगों के जाग जाने का प्रभाव हमारे देश पर भी हुए बिना न रह सकता था। नइ जागृति के योग

में स्पेन वालों ने अपने दक्खिनी और रूसियों ने अपने पूरबी प्रान्त से मूरों और मंगोलों को निकाल दिया। और जब १५०६ ई० में पुर्त्तगालियों ने हमारे समुद्र पर अधिकार कर लिया, तब से हमारे यहाँ भी नया युग आरम्भ हुआ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी तक हिन्दुओं के राजनीतिक पतन के कारण क्या कहे जाते हैं और वस्तुतः क्या थे?

२. पिछले मध्य काल में तुर्कों और हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।

३. सामन्त शासनप्रणाली का अर्थ क्या है? भारत में उसका उदय कैसे हुआ?

४. पिछले मध्य काल में हिन्दुओं की जातपाँत में बाहर के लोगों के मिलाये जाने के कौन से उदाहरण हैं? हिन्दुओं में जातपात का विकास क्यों हुआ?

५. तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के हिन्दू धर्म विषयक ग्रन्थों से उस धर्म का कैसा स्वरूप प्रकट होता है? हिन्दुओं के सामाजिक राजनीतिक जीवन पर उसका क्या प्रभाव पड़ा?

६. चित्तौड़ के कीर्त्तिस्तम्भ में ब्रह्मा विष्णु महेश की मूर्त्तियों के साथ अल्लाह का नाम लिखा होने से क्या सूचित होता है?

७. चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रमुख भारतीय सन्तों का परिचय दीजिए। उनका भारत के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा?

८. चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी की भारतीय ललित कला और साहित्य के विषय में आप क्या जानते हैं?

९. अर्वाचीन काल का आरंभ कैसे हुआ?

१०. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) चतुर्वर्गचिन्तामणि (२) बुरजी (३) कम्ब-रामायण (४) नेडा-नेडी (५) प्रज्ञापारमिता (६) नटराज की कांस्य मूर्त्ति (७) आण्डाल (८) 'श्रीयुत हसन जगतभूषण' (९) विद्यापति (१०) हिन्दसे (११) चण्डीदास।

६. मुगल पर्व

(१५०६—१७२० ई०)

अध्याय १

साम्राज्य के लिए पहला संघर्ष—सांगा और बाबर

(१५०१—१५३० ई०)

§१ **कृष्णदेव राय और दक्खिनी मंडल का संघर्ष**—जिस साल दीव का युद्ध हुआ उसी साल मेवाड में रायमल का बेटा संग्रामसिंह या सांगा और विजयनगर में वीर नरसिंह [८, ६ § १३] का भाई कृष्णदेवराय गद्दी पर बैठा । दोनों योग्य और शक्तिशाली राजा थे । नरस नायक [८, ६ § १३] अपने बेटों से कह गया था कि बीजापुर से रायचूर दोआब तथा उड़ीसा से उदयगिरि जरूर वापिस लेना । १५१५ ई० तक कृष्णराय ने ये दोनों काम पूरे कर के कृष्णा नदी तक अपनी सीमा पहुँचा दी । १५१७ ई० में उसने कृष्णा पार कर बेजवाड़ा और कोंडपल्ली ले लिये, और तब विशाखपट्टम (विजागपट्टम) तक चढ़ाई की । खम्मामेट और नलगोंडा जिलों सहित कृष्णा गोदावरी दोआब उसने प्रतापरुद्र से ले लिया । १५१२ ई० से गोलकुण्डा का प्रान्त

कृष्णदेवराय और उसकी रानियाँ
तिरुपति के मन्दिर की समकालीन धातु मूर्तियाँ [भा० पु० वि०]

तक 'इस्लाम के विद्रोही' (हिन्दू) थे। बाबर ने उनपर चढ़ाई की (१५१६ ई०)। बाजौरियो ने कभी बन्दूक न देखी थी। बाबर के पास बन्दूको के साथ तोपें भी थीं। परिणाम निश्चित था। बाजौर के बाद स्वात पार कर बाबर ने बुनेर जीता। फिर सिन्ध पार कर नमक की पहाड़ियाँ लाँघते हुए खोकरो-गक्खडों का मुख्य नगर भेरा, जो तब जेहलम के दाहिने तट पर था, ले लिया। इस रास्ते में उसकी खोकरों-गक्खड़ो से अनेक मुठभेड़ें हुई। पर तीर-कमान के मुकाबले में बन्दूको की जीत होनी ही थी। बाबर के मुँह फेरते ही गक्खडां-खोकरो ने विद्रोह किया। उनके दमन के लिए उसने पंजाब पर दो और चढ़ाइयाँ की। इन चढ़ाइयो में वह स्यालकोट तक पहुँच गया। सांगा का जमना तक पहुँचना और बाबर का रावी तक पहुँचना प्रायः साथ ही साथ हुआ।

उधर बाबर ने कन्दहार भी जीत लिया। तब कन्दहार के मंगोल शासको ने, जो अरगून कहलाते थे, सिन्ध आ कर सम्मो से वह प्रांत छीन लिया (१५२१ ई०)। सात बरस बाद उन्होंने पठानो से मुलतान भी ले लिया।

§६. **बाबर का ठेठ हिन्दुस्तान जीतना**—इस बीच दिल्ली के पठान राज्य की बड़ी दुर्दशा रही। दुरभिमानी इब्राहीम लोदी ने अपने अनेक सरदारो को बिगाड लिया। पूरब मे लोहानी अफगानो ने विद्रोह कर बिहार में एक स्वतन्त्र राज्य की नीव डाली (१५२१ ई०)। इसी सीमान्त राज्य मे फरीद उर्फ शेरखाँ सूर नाम के एक प्रतिभाशाली पठान को बहारखाँ लोहानी के मन्त्री की हैसियत से अपनी शासन-नीति परखने का अवसर मिला। उसी समय हुसैनशाह बगाली के बेटे नसरतशाह (१५१६–३२ ई०) की सेनाओं ने मिथिला के हिन्दू राज्य की अन्तिम सफाई कर हाजीपुर मे छावनी डाली।

दिल्ली सल्तनत मे पंजाब का जो अंश था, उसके सीमान्त थाने लाहौर और दीपालपुर थे। दिल्ली की तरफ से पंजाब के हाकिम दौलतखाँ लोदी ने भी विद्रोह किया और बाबर को बुला भेजा। तभी इब्राहीम लोदी का चचा अलाउद्दीन बाबर के पास पहुँचा और दिल्ली की गद्दी पाने के लिए उससे मदद माँगी। राणा सांगा के दूतों ने भी काबुल पहुँच कर यह प्रस्ताव किया कि दिल्ली राज्य पर बाबर और सांगा एक साथ हमला करें; बाबर दिल्ली तक ले ले और

सांगा आगरे तक। इस दशा में बाबर ने पंजाब पर फिर चढ़ाई कर लाहौर और दीपालपुर जीत लिये। दूसरे बरस वह जमना तक चढ़ आया। इब्राहीम ने पानीपत पर उसका सामना किया। बाबर के पास ७०० युरोपी तोपें थीं,

बाबर हिन्दुस्तान की गद्दी पर—सामने हुमायूँ
"तारीखे खानदाने तैमूरिया" की हस्तलिखित
प्रति से पहले पहल 'इतिहास प्रवेश' के लिए लिया गया फोटो।
[खुदाबख्श पु०]

जिनकी गाड़ियों की पाँतों को चमड़े के रस्सों से बाँध दिया गया था। प्रत्येक जोड़ी के बीच तूरे अर्थात् बड़ी ढालें थीं, जिनके पीछे बन्दूकची तैनात थे। उन

तोपों की पंक्तियाँ सेना के आगे-आगे बीच में थीं। तोपों को यों बाँधने का तरीका पहले-पहल युरोप में बोहीमिया (चेकोस्लोवाकिया) के लोगों ने जर्मन रिसालों का हमला तोड़ने को निकाला था। उनकी नकल कर १५१४ ई० में कुस्तुन्तुनिया के उस्मानली तुर्कों ने ईरानियों के विरुद्ध युद्ध में यही तरीका बरता था, और बाबर ने यह उन्हीं से सीखा था। बाबर के सेना-सञ्चालन और साधनों के सामने अफगानों की वीरता किसी काम न आई। चार-पाँच घंटों की लड़ाई में दिल्ली की फौज तहस-नहस हो गई (२१-४-१५२६)।

पानीपत की हार का समाचार पा बहारखाँ लोहानी ने अपना नाम सुल्तान मुहम्मदखाँ रक्खा, और उसकी नायकता में पूरबी अफगान, तुर्कों की बाढ रोकने के लिए कन्नौज तक चढ़ आये। पच्छिमी अफगानों का नेता हसनखाँ मेवाती था; उसने इब्राहीम के भाई महमूद लोदी को दिल्ली का सुल्तान बना कर खड़ा किया। गरमी के मौसम में तुर्कों को आगे बढ़ता न देख मुहम्मदखाँ बिहार लौट गया। उसके बाद पठानों में अपने घर की फूट प्रकट होने लगी। बाबर के दिल्ली-आगरा दखल कर लेने पर दोआब, अवध और जौनपुर के बहुत से अफगान सरदारों ने भी उसे अपनी-अपनी सेवाएँ सौंप दीं। उनकी मदद के भरोसे उसने अपने बेटे हुमायूँ को उसी चौमासे में पूरब की चढ़ाई पर भेजा। हुमायूँ ने पाँच महीने में अवध, जौनपुर और गाज़ीपुर तक जीत लिया।

§७. **राजस्थान के लिए युद्ध**—हसनखाँ मेवाती और महमूद लोदी राणा सांगा से जा मिले। बाबर ने जमना के दक्खिन कदम रक्खा कि सांगा से उसका युद्ध ठन गया। वह प्रदेश सांगा का वह उत्तरी सीमान्त था जिसे वह दिल्ली के सुल्तान से छीन चुका था। तो भी वहाँ के किलों के किलेदार सब पुराने ही थे। बाबर ने उनसे मिल कर बयाना, धौलपुर और ग्वालियर के गढ़ ले लिये और बदले में उन्हें दोआब में बड़ी-बड़ी जागीरें दे दीं। सांगा ने तेजी से बढ़ कर बाबर की फौज से बयाना छीन लिया। सांगा को इस प्रकार बढ़ता देख बाबर भी आगरे से बढ़ा और सीकरी गाँव पर डेरा डाल दिया (११-२-१५२७ ई०)। एक मुगल सेनापति सीकरी से खानवे की ओर बढ़ा,

और राजपूतों से बुरी तरह हारा। बयाने की लड़ाई और इस मुठभेड़ के तजरबे से मुगल सेना मे त्रास फैल गया। इस विपत्ति ने बाबर के अन्तरात्मा को जड़ तक हिला दिया। उसने शराब छोड़ने का प्रण किया और अपनी सेना के धर्म भावों को उत्तेजित किया। उधर उसने सांगा से सन्धि की बातचीत भी शुरू की। सांगा ने पहली जीत के बाद एकाएक हमला न कर सुलह की बातों में उसे महीना भर तैयारी का मौका दे दिया। बाबर ने इस बीच पानीपत की तरह खाइ खन्दकें खुदवा लीं और तोपों की गाडियों को रस्सों से बँधवा लिया।

१७ मार्च १५२७ ई० को खानवा के तंग मैदान मे लड़ाई हुई। बाबर ने एक अच्छी खासी रक्षित सेना अपने व्यूह के पीछे दोनों किनारों पर अलग रख ली थी। राजपूत सवारों के दल बाबर की आग उगलने वाली दीवार पर टूटते और कई बार उसके पासों को पीछे ठेल ले जाते। इसी समय सिर में तीर खा कर सांगा मूर्छित हो गया, और उसी बेहोशी म उसे पालकी पर पीछे ले जाया गया। उसका स्थान झाला अज्जा ने ले लिया, और लड़ाई वैसे ही जारी रही। जब सारी राजपूत सेना पूरी तरह लड़ाई मे जुट गई तब बाबर की रक्षित सेना ने तेजी मे घूम कर चन्दावल (पिछले हिस्से) को घेर कर पीछे से हमला किया। यह मगोलों की खास चाल थी, जिसे वे तुलुगमा कहते थे। बाबर ने जरफशा के पुल वाली लड़ाई मे शैबानी की इसी चाल मे हार कर समरकन्द का मुकुट खोया था। अब इसी की बदौलत उसका हिन्दुस्तान का मुकुट बचा।

सांगा की तरफ इस युद्ध म मालवा-सहित राजस्थान के प्रत्येक हिस्से के अतिरिक्त अन्तर्वेद तक के राजपूत लड़ने आये थे। उन सभी प्रदेशों म इस हार का धक्का पहुँचा। झाला अज्जा, हसनखाँ मेवाती, मीराबाई का पिता रत्नसिंह राठोड आदि इस युद्ध में खेत रहे। सांगा को जब बसवा गाव म (बाँदीकुई के पास) होश आया तब वह इसपर बहुत खीझा कि उसे लड़ाइ के मैदान से इतनी दूर क्यों लाया गया। उसने प्रण किया कि बाबर को जीते बिना चित्तौड़ न लौटूँगा, और रणथम्भोर मे डेरा डाल कर फिर युद्ध की तैयारी शुरू की।

जनवरी १५२८ ई० में बाबर राजस्थान की चढ़ाई के लिए निकला और सबसे पहले मेदिनीराय के चन्देरी गढ़ की तरफ चला। सांगा भी उसी

तरफ बढ़ा, पर कालपी के पास उसके साथियों ने, जो युद्ध से थक गये थे, उसे विष दे दिया। चन्देरी के राजपूत वीरता से लड़ कर काम आये।

§८. बाबर की पूरब चढ़ाई—चन्देरी के आगे बाबर का इरादा मालवे के दूसरे प्रमुख सरदार सलहदी के गढ़ों—रायसेन, भेलसा और सारंगपुर—को ले कर मेवाड़ पर चढ़ाई करने का था। किन्तु उसी समय उसे खबर मिली कि अवध और पूरब के अफगानों ने विद्रोह कर कन्नौज से मुगल सेना को निकाल दिया है। दूसरे, जब बाबर का ध्यान राजस्थान की ओर लगा था, तभी नसरतशाह बंगाली ने आजमगढ़ और बहराइच तक अधिकार कर लिया था। बाबर चन्देरी से कालपी के रास्ते सीधा कन्नौज की ओर बढ़ा। अफगान विद्रोही उसके आने पर भाग गये। उसी गरमी और चौमासे के शुरू में उसने जौनपुर और बक्सर तक के प्रदेशों को पूरी तरह काबू कर लिया।

राणा सांगा की मृत्यु के बाद महमूद लोदी पूरब की ओर चला आया। बाबर के पीठ फेरते ही वहाँ फिर विद्रोह की आग भड़की। लोदी ने लोहानियों से बिहार छीन कर उसी को अपनी राजधानी बनाया, तथा मुगलों से गाजीपुर, बनारस छीन कर चुनार और गोरखपुर को घेर लिया। १५२९ ई० के शुरू में बाबर को फिर पूरब लौटना पड़ा। उसके आते ही विद्रोही सेना तितर-बितर हो गई और मुहम्मदखाँ लोहानी के बेटे जलाल ने उसे एक करोड़ कर दे कर बिहार की गद्दी पर बैठने की स्वीकृति पाई।

मुगलों की इस तीसरी पूरबी चढ़ाई के समय बंगाली सेना गंडक के चौबीस घाटों को रोके खड़ी थी, और घाघरा-गंडक दोआब के लिए भी लड़ने को तैयार थी। बाबर जौनपुर से घाघरा की ओर बढ़ा। शत्रु चुस्त निशानेबाज थे, इसलिए उसने सावधानी से तैयारी की। घाघरा पार कर पानीपत और खानवा की तरह उसने बंगालियों को भी पीछे से घेर कर पूरी तरह हरा दिया। एक मास बाद बाबर और नसरतशाह ने सन्धि कर ली।

पानीपत, खानवा और घाघरा के विजयों से बाबर उत्तर भारत का सम्राट बन गया, और उसका साम्राज्य बदख्शाँ से बिहार तक फैल गया। १५३० ई० में उसका आगरे मे देहान्त हुआ और शरीर काबुल ले जा कर दफनाया गया।

§ ९ बहादुरशाह गुजराती और शेरखाँ का उदय—गुजरात के मुजफ्फरशाह २य का बेटा बहादुर अपने भाइयों के डर से भाग कर राणा सांगा की शरण में रहता था। सांगा की माँ उसे बहुत प्यार करती और 'बहादुर बेटा' कह कर पुकारती थी। १५२६ ई० में उसने गुजरात की गद्दी पाई थी।

काबुल में बाबर का मकबरा [फादर हास के सौजन्य से]
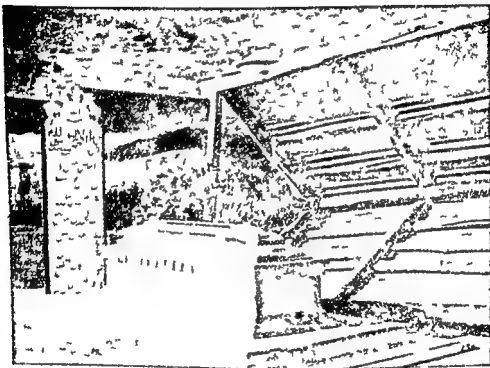
मेवाड़ में सांगा के पीछे उसका छोटा बेटा रत्नसिंह राणा हुआ। रत्नसिंह का बड़ा भाई भोजराज—मीराबाई का पति—सांगा से पहले मर चुका था। खानवा की हार से मेवाड़ के गौरव को भारी धक्का लगा, तो भी उसकी सीमा आगरे के पास से केवल बयाना गाँव (नांदीकुंड के पास) तक हटी थी। मालवे के महमूद खिलजी ने अब अपने छिने हुए इलाकों को वापिस लेना चाहा। रत्नसिंह ने मालवे पर चढ़ाई कर उसे उज्जैन से भगा दिया।

बहादुरशाह की रत्नसिंह से भी अच्छी मैत्री रही । रत्नसिंह जब उज्जैन से लौट रहा था, तभी बहादुरशाह ने भी महमूद पर चढ़ाई की । रत्नसिंह ने सलहदी आदि सरदारो के साथ अपनी बहुत सी सेना उसके साथ कर दी, जिससे बहादुरशाह ने महमूद को कैद कर दक्खिनी मालवा (उज्जैन और मांडू) भी उससे छीन लिया (१५३० ई०) ।

बाबर के मरने से पहले यों पच्छिम मे बहादुरशाह का सितारा चमक उठा । पूरब में तभी उससे भी योग्य एक व्यक्ति प्रकट हुआ । जलालखाँ लोहानी को बिहार की सल्तनत वापिस मिली तो उसने अपने बाप के भूतपूर्व मन्त्री और अपने शिक्षक शेरखाँ सूर को फिर अपना मन्त्री बनाया था । बाबर की अन्तिम बीमारी के समय शेरखाँ ने चुनार का गढ़ हथिया कर एक नई शक्ति के उदय की सूचना दी ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. कृष्णदेव राय कौन था ? उसका इतिहास संक्षेप से बताइए ।

२. सांगा ने अपना राज्य-विस्तार किस क्रम से किया ? उसकी राज्य-सीमाएँ कहाँ-कहाँ तक थीं ?

३. बाबर के बाल्यकाल मे मध्य एशिया की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए ।

४. दिल्ली की गद्दी पर बैठने से पहले बाबर कौन कौन सी गद्दी पर कैसे कैसे बैठा था ?

५. बाबर के काबुल की गद्दी पर बैठने पर अफगानिस्तान, सिन्ध और पंजाब की राजनीतिक स्थिति क्या थी ? बाबर काबुल से दिल्ली तक किस क्रम मे बढ़ा ?

६. बाबर की युद्ध-शैली में कौन सी विशेषताएँ थीं जो पानीपत, खानवा और घाघर की लड़ाइयों मे उसे जिताने मे सहायक हुईं ?

७. राणा सांगा का अन्त कैसे हुआ ?

८. बिहार, बंगाल, उड़ीसा के प्रदेशों का बाबर के समय का राजनीतिक नक्शा स्पष्ट कीजिए ।

९. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) ताजिक (२) उज़्बक (३) अरगून (४) मुहम्मदख़ाँ शैबानी (५) संग्रामशाह (६) तुलुगमा ।

अध्याय २

साम्राज्य के लिए दूसरा संघर्ष और सूर साम्राज्य

(१५३०—१५५४ ई०)

§ १ हुमायूँ—हुमायूँ को हिन्दुस्तान की गद्दी मिली तो उसे अपने भाई कामरान को बदख्शाँ, काबुल, कन्दहार और पंजाब सौंपना पड़ा। यों उसके राज्य में केवल ठेठ हिन्दुस्तान रहा। उसका पिता उसके लिए दो काम अधूरे छोड़ गया था—एक पच्छिम में राजस्थान जीतना, दूसरे पूरब में अफगानों का विद्रोह दबाना।

§ २ बहादुरशाह गुजराती की बढ़ती—१५३१ ई० में राणा रत्नसिंह को उसकी विमाता के भाई ने मार डाला और उसका सौतेला भाई विक्रमाजीत १४ बरस की उम्र में मेवाड़ का राणा बना। विक्रमाजीत के छिछोरे स्वभाव से उकता कर मेवाड़ और मालवे के अधिकांश सरदारों ने उसका साथ छोड़ दिया। उनमें से बहुतों ने अपनी सेवाएँ बहादुरशाह को सौंप दीं, जिससे रायसेन, भेलसा, रणथम्भोर आदि पूर्वी राजस्थान के प्रदेश बहादुर के हाथ चले गये। पच्छिमी राजस्थान में जोधपुर का मालदेव जो कि चित्तौड़ का सामन्त था, स्वतन्त्र हो गया। उसने मेवाड़ के पच्छिमोत्तर के इलाके—अजमेर, नागौर आदि—ले लिये। अन्त में बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर भी चढ़ाई की।

गुजरात का पुर्तगालियों से सीधा सम्पर्क होने के कारण बहादुरशाह को तोपें और तोपची पाने की मुगलों से भी अधिक सुविधा थी। उसके पड़ोसी राज्य अब सब पस्त पड़ चुके थे। उत्तरी मालवे के जिन प्रदेशों को खानवा की जीत के बाद में मुगल अपने मुँह का कौर समझे हुए थे, उन्हें हुमायूँ के देखते देखते बहादुरशाह ने ले लिया। यों दोनों में युद्ध ठन गया।

§ ३ हुमायूँ की गुजरात चढ़ाई—बहादुरशाह चित्तौड़ घेरे हुए था जब हुमायूँ कालपी, चन्देरी, रायसेन होता हुआ उज्जैन पहुँचा (फरवरी १५३५ ई०)। चित्तौड़ ले कर बहादुरशाह उसकी तरफ बढ़ा। मन्दसोर पर

दोनो का सामना हुआ। दो महीने अपनी मोर्चाबन्दी में घिरे रहने के बाद एक रात गुजराती सुल्तान अपनी सेना को किस्मत के हवाले छोड कुछ साथियों के साथ भाग निकला। इस तरह गुजरात और मालवा हुमायूँ के हाथ आये, किन्तु अपने भाई अस्करी के विद्रोह के कारण उसे जल्द उत्तर को लौटना पडा। उसका पीठ फेरना था कि बहादुरशाह और उसके साथियो ने गुजरात, मालवा और खानदेश फिर वापिस ले लिये (१५३६ ई०)।

§४. पुर्तगालियों का तट-राज्य—बहादुरशाह ने पुर्तगालियो की मदद के बदले उन्हें मुम्बई, साष्टीं[1] और बसई के द्वीप दिये। किन्तु उन्हे किलाबन्दी करते देख कर उसने उन्हें निकालना चाहा और अहमदनगर और बीजापुर के शाहो को भी वैसा करने को लिखा। वे चिट्ठियाँ पुर्तगालियो के हाथ पड गईं। उनका मुखिया नूनो-दा-कुन्हा एक बार दीव आ कर बीमार पड़ा था तो बहादुरशाह उसे देखने उसके जहाज पर गया। बहादुरशाह जब लौट रहा था तब पुर्तगालियो ने उसकी नाव पर हमला कर उसे मार डाला (१५३७ ई०)। महमूद बेगडा पुर्तगालियों की समुद्र पर प्रभुता न रोक पाया था, अब उसका पोता उन्हे तट-प्रदेश से भी निकालने में विफल हुआ। करंजा से बुलसाड तक कोंकण के उपजाऊ तट को काबू कर पुर्तगालियो ने उसे अपना 'उत्तरी प्रान्त'* बनाया और उसकी राजधानी बसई मे रक्खी। इसी समय स्पेनवालो ने मेक्सिको और दक्खिन अमरीका मे अपना साम्राज्य स्थापित किया था (१५१६-३६ ई०)।

§५. शेरखाँ का बिहार बंगाल का बेताज बादशाह बनना—बंगाल का नसरतशाह १५३१ ई० में चल बसा। उसकी मृत्यु पर उसका भाई महमूद उसके बेटे को मार कर बगाल की गद्दी पर बैठा। नसरतशाह का दामाद मखदूम-ए-आलम उसकी तरफ से हाजीपुर (तिरहुत) मे सर-ए-लश्कर (सेनापति) था, उसने महमूद को बादशाह न माना। मखदूम ने शेरखाँ को अपना मित्र

---

[1]साष्टी और बसई वो बिगाड़ कर अँगरेज़ी मे सालसेट और बसीन बन गया है। पुर्तगाली लोग अन्तिम स्वर को सानुनासिक कर देते हैं, जैसे कोच्चि को कोच्चीं, बसई को बसईं। अंग्रेजी में उसी से वोचीन, बसीन बन गया।

* दक्खिनी प्रान्त गोवा का था।

बना लिया था। महमूदशाह ने उन दोनों से युद्ध छेड़ा। मखदूम मारा गया।

शेरखाँ ने बिहार के जागीरदारों की जमीनें नाप कर उन्हें राज्य कर का ठीक हिस्सा देने को मजबूर किया, उनके कोटले ढहा दिये और उनके लिए प्रजा पर जुल्म करना असम्भव कर दिया था। इससे प्रजा तो शेरखाँ के शासन को राम राज्य मानने लगी, पर सरदार उसके जानी दुश्मन बन गये थे। उन्होंने उसके खिलाफ सुल्तान जलाल लोहानी के कान भरे। जलाल अपने मन्त्री के शिकंजे से बचने के लिए महमूदशाह बंगाली की शरण में भाग गया। यों बिहार में शेरखाँ की वही स्थिति हो गई जो मेदिनीराय की मालवे में हुई थी। बंगाली फौज के साथ जलाल लोहानी ने शेरखाँ पर चढ़ाई की। बंगाल बिहार के बीच के तंग पहाड़ी रास्ते के पच्छिमी मुँह पर किऊल नदी के किनारे सूरजगढ़ पर थोड़ी सी सवार सेना से शेरखाँ ने बंगाली फौज को हरा दिया (१५३४ ई०)। उस जीत से वह बिहार का बेताज बादशाह हो गया। बादशाह बनने के प्रलोभन से बच कर वह हुमायूँ का खुतबा* पढ़ता रहा। किसानों की खुशहाली के लिए सावधान रहने और सेना को नियम से वेतन देने के विषय में उसकी दूर दूर तक प्रसिद्धि हो गई। उसकी सेना शुरू में अफगान सवारों की थी। अब उसने बिहार में किसानों की एक पैदल सेना तैयार करके उसे बन्दूकों से सुसज्जित किया। शेरखाँ के ये बक्सरिये बन्दूकची १८वीं सदी के अन्त तक प्रसिद्ध रहे, और फिर उन्हीं की भरती से अंग्रेजों की वह सेना बनी जिसने उन्हें समूचा भारत जीत दिया। दक्खिनी बिहार के बक्सर नगर के नाम से वे बक्सरिये कहलाते थे।

हुमायूँ की गुजरात चढ़ाई के समय शेरखाँ ने अपना राज बढ़ाने का अच्छा अवसर देखा। मुंगेर और भागलपुर जिलों पर धीरे धीरे कब्जा कर उसने गौड़ पर चढ़ाई की। महमूदशाह ने १३ लाख अशर्फियाँ दे कर उसे विदा किया। इस रकम से वह नई सेना तैयार हुई जिससे दो बरस पीछे शेर ने महमूद को बंगाल से निकाल भगाया।

---

* जुमे के दिन की नमाज के बाद का उपदेश जिसमें प्रजा और राजा की मंगलकामना की जाती है।

हुमायूँ के गुजरात से लौट आने पर शेर चुप बैठ गया। पर इसी बीच महमूदशाह ने गोवा के पुर्तगाली गवर्नर से मदद माँगी। पुर्तगाली लोग पहले-पहल १५३३ ई० में चटगाँव में उतरे थे। शेरखाँ को अब यह जरूरी मालूम हुआ कि पुर्तगाली मदद आने से पहले वह अपने शत्रु से निपट ले। उसने गौड का गढ़ घेर कर अपनी सेना की टुकड़ियों से बंगाल का प्रत्येक जिला दखल कर लिया।

§ ९. **हुमायूँ की बंगाल चढ़ाई**—इस दशा में हुमायूँ शेरखाँ के खिलाफ चला। शेरखाँ गौड पर विश्वस्त सेनापतियों को छोड़ झट चुनार
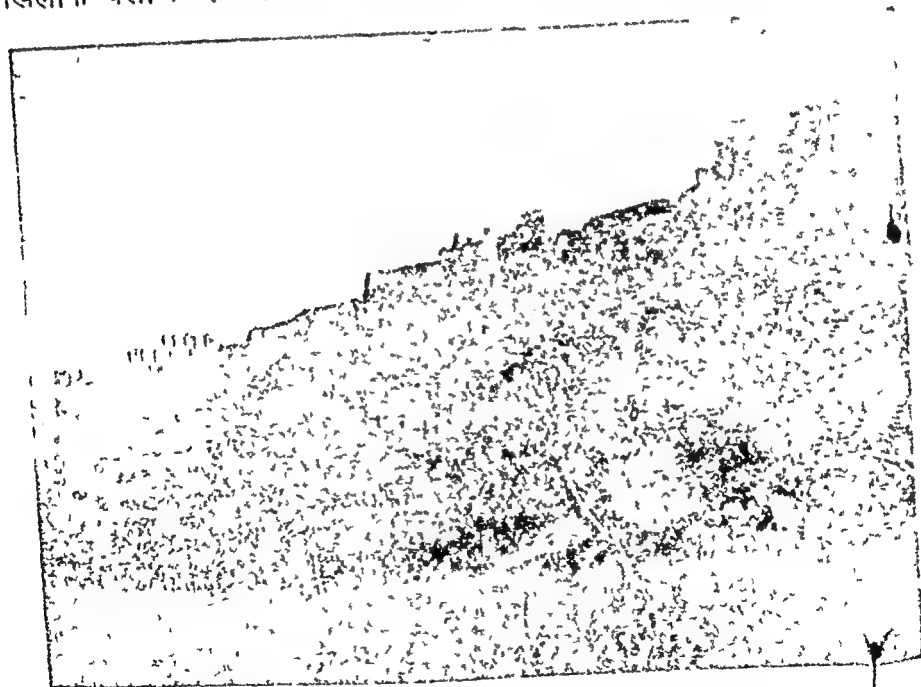
रोहतासगढ—कठूटिया दरवाजा और बुर्ज [भा० पु० वि०]

आया और उस गढ़ मे खूब रसद-बारूद जमा करके मुगलों को जब तक बने वहीं रोकने का उपाय किया। हुमायूँ उस फन्दे मे फँस चुनार को सर करने मे लग गया। उधर शेरखाँ अपने लिए एक नया आधार और नया रास्ता बनाने

रागा। सोन के किनारे सहसराम से ऊपर रोहतास का विकट पहाड़ी गढ़ था। शेरखाँ ने रोहतास के राजा से शरण माँगी, और शरण पाने पर धोखे से उस गढ़ को हथिया लिया। तब उसने भाड़खंड के राजा से लड़ कर बिहार के दक्खिन का पहाड़ी प्रदेश ले लिया। अप्रैल १५३८ में शेरखाँ के सेनापतियों ने गौड़ ले लिया और मई में चुनार हुमायूँ के हाथ आया। उधर हुमायूँ गौड़ को रवाना हुआ, इधर शेरखाँ गौड़ की अतुल सम्पत्ति ले भाड़खंड के रास्ते रोहतास को चल दिया। गौड़ के महलों को वह हुमायूँ के आराम के लिए सजा कर छोड़ता आया। बिहार बंगाल दोनों अब हुमायूँ के हाथ में थे, शेर भाड़खंड में जा छिपा था।

§७ शेरखाँ का बंगाल-जौनपुर का सुलतान बनना—उसी साल जाड़े में शेरखाँ ने भाड़खंड से निकल कर समूचे बिहार और जौनपुर पर कब्जा कर लिया। प्रजा और किसानों को लूटने के बजाय उसने मालगुजारी की ठीक ठीक समय पर उगाही की। दिल्ली आगरे का बंगाल से सम्बन्ध टूट गया। हुमायूँ गौड़ से रवाना हुआ तो शेरखाँ ने अपनी सेनाएँ रोहतास में समेट लीं और कर्मनाशा नदी पर चौसा गाँव के पास हुमायूँ का रास्ता घेरा। शेरखाँ का चरित्र उस समय की एक घटना से प्रकट होता है। एक दिन मुगल दूत उसकी छावनी में गया तो वह अपने साधारण सिपाहियों के साथ फावड़ा लिये खन्दक खोदने में लगा था। उसी हालत में जमीन पर बैठ कर उसने दूत से बातचीत की। सन्धि की बातचीत विफल हुई। तब शेरखाँ ने एक रात चुपके से कर्मनाशा पार कर तड़के सवेरे जब मुगल सेना सो रही थी उसपर हमला कर दिया। हजारों मुगल अफगानों के हाथ मारे गये और गंगा की धार में बह गये। हुमायूँ एक भिश्ती की मदद से मुश्किल से बच कर भागा। बंगाल, बिहार, जौनपुर, अवध पर शेरखाँ का पूरा अधिकार हो गया। वह शेरशाह नाम से गौड़ की गद्दी पर बैठा (१५३९ ई०)। हुमायूँ के पास सिर्फ दोआब, कम्पन (=आजकल का रुहेलखण्ड) तथा जमना का दाहिना काँठा बच गया।

§८. शेरशाह का उत्तर भारत का सम्राट् होना—ई० १५३९

ई० में बाबर के मौसेरे भाई मिर्ज़ा हैदर ने काशगर के सुलतान के साथ उत्तर की तरफ से कश्मीर पर चढ़ाई की। उन दोनों को हार कर भागना पड़ा था। मिर्ज़ा हैदर अब हुमायूँ के पास आ गया। हुमायूँ ने अपने भाई कामरान से बड़ी मिन्नत की कि वह भी उसे शेरशाह के खिलाफ मदद दे। लेकिन कामरान ने उसकी एक न सुनी। उन्हें आपस में झगड़ते देख शेरशाह ने तमाम मुगलों को भारतवर्ष से निकालने की ठानी। हुमायूँ उसके मुकाबले को भारी फौज ले कर आया। कनौज पर दोनों सेनाएँ आमने-सामने हुईं। हुमायूँ ने गंगा पार कर पानीपत और खानवा की तरह अपनी सेना का व्यूह बनाया। जंजीरों से बँधी तोपगाड़ियों की विकट पाँत मिर्ज़ा हैदर के नेतृत्व में सामने बीचों-बीच थी। शेरशाह ने तोपों के जमने से पहले ही मुगल सेना के दोनों पासों पर जोर का धावा बोल दिया। जैसे ही वे पासे टूटे कि उसके रिसाले ने उन्हें घेर कर मुगल चन्दावल के साथ उनके केन्द्र की तरफ ढकेला। यह भागती भीड़ तोपखाने की जंजीरों पर जा पड़ी और उनकी पंक्ति को तोड़ती-फोड़ती आगे निकल गई। मुगलों की डरावनी तोपों को एक भी गोला फेंकने का अवसर न मिला। अफगानों के हमले के पहले वे जमने भी न पाई थीं, और अब उनके सामने अपनी ही सेना के भगोड़े थे! हुमायूँ जान बचा कर आगरे की तरफ भागा (१७-५-१५४० ई०)।

शेरशाह ने पंजाब तक मुगलों का पीछा किया। ग्वालियर के मुगल सेनापति ने वह गढ़ न छोड़ा, इसलिए उसपर घेरा डाल दिया गया। पंजाब से कामरान ने काबुल की राह ली और हुमायूँ सिन्ध की तरफ भाग गया। मिर्ज़ा हैदर कश्मीर में घुसा, और इस बार वहाँ के एक दल के साथ मिल कर राज्य पर अधिकार कर लिया। कश्मीर और काबुल दोनों से पंजाब उतरने वाले रास्ते नमक-पहाड़ियों में मिलते हैं। इसलिए शेरशाह ने गक्खड़ों-खोकरों के इस देश को पूरी तरह काबू करने के विचार से उसके ठीक केन्द्र में रोहतास नाम का गढ़ बनवाना शुरू किया। वह काम उसने टोडरमल को सौंपा, जो लाहौर में उसकी सेवा में आया था।

§ ९. **राजस्थान में मालदेव का उठना**—बिहार के दक्खिन के

पहाड़ी झाड़खंड प्रदेश को शेरशाह ने जीत लिया था। उससे पहले कोई सुल्तान उसे न जीत पाया था। किन्तु झाड़खंड के पच्छिम बघेलखंड, बुन्देलखंड और राजस्थान की तरफ शेरशाह के विस्तृत साम्राज्य का दक्खिनी छोर बिलकुल अरक्षित था।

बहादुरशाह की मृत्यु के बाद से गुजरात मालवा में कई छोटे-छोटे सुल्तान और राजा उठ खड़े हुए थे। मेवाड़ की हालत और भी खराब थी। वहाँ कई घरेलू लड़ाइयों के बाद राणा सांगा के छोटे बेटे उदयसिंह को गद्दी मिली थी। मारी समूचे राजस्थान पर मालदेव ने आधिपत्य जमा लिया और वह अब पच्छिमी भारत की प्रमुख शक्ति के रूप में खड़ा हो रहा था। राज पाने के पाँच बरस के अन्दर उसने दक्खिन तरफ आबू तक, उत्तर तरफ आधुनिक बहावलपुर, बीकानेर और झज्झर तक तथा पूरब तरफ अजमेर को लेते हुए बनास नदी और ढूँढाड़ (आम्बेर राज्य = आधुनिक जयपुर) के अन्दर तक अपना राज्य फैला लिया था। हुमायूँ जब बिहार-बंगाल में उलझा था, तब मालदेव ने टोंक से चम्बल के काँठे की तरफ बढ़ना शुरू किया था। शेरशाह द्वारा हुमायूँ का भगा दिये जाने पर अब उसने हुमायूँ के पास सिन्ध में निमन्त्रण भेजा कि उससे मिल कर वह मालवे की तरफ से हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करे। ग्वालियर के गढ़ में तब तक कुछ मुगल फौज थी ही। हुमायूँ मालवा आ जाता तो वह फौज भी उससे मिल सकती थी। पर हुमायूँ के दिमाग में सिन्ध और गुजरात को जीत कर गुजरात से फिर हिन्दुस्तान जीतने की धुन समाई थी। फलत साल भर वह सिन्ध के गढ़ों पर टक्करें मारता रहा।

§ १० शेरशाह का राजस्थान और उत्तरी सिन्ध जीतना—इसी बीच ग्वालियर की मुगल सेना ने आत्म-समर्पण किया, और शेरशाह ने मालवे पर पूरा अधिकार कर लिया। उधर सिन्ध में विफल होने पर हुमायूँ को मालदेव के निमन्त्रण की याद आई और उत्तरी सिन्ध से वह फलोदी आ पहुँचा। खबर पाते ही शेरशाह सेना ले कर मालदेव के राज्य में डीडवाणे तक घुस आया, और सन्देश भेजा कि या तो हमारे शत्रु को स्वयं निकालो, नहीं तो हमें निकालने दो। मालदेव को अब हुमायूँ को खदेड़ना पड़ा और उसके उमरकोट

को रवाना हो जाने पर शेरशाह वापिस हुआ।

किन्तु मालदेव की शक्ति अभी टूटी न थी। पूरबी मालवे में रायसेन का सरदार अब सलहदी का बेटा पूरणमल चौहान था। मालदेव और पूरणमल कभी सांगा और मेदिनीराय की तरह आपस में मिल सकते थे। शेरशाह ने रायसेन पर चढ़ाई की और सात महीने के कड़े घेरे के बाद उसे ले लिया। उधर उसके सेनापतियों ने मुलतान और सक्खर भी जीत लिये। मालवा, मुलतान और सक्खर जीते जाने से मालदेव तीन तरफ से घिर गया। अब से शेरशाह का ध्येय यह रहा कि उसे जीत कर सिन्ध को मालवे से और फिर बुन्देलखंड जीत कर मालवे को रोहतास-झाडखड से मिला दिया जाय।

इसी उद्देश से उसने पहले मालदेव पर चढ़ाई की (१५४४ ई०)। दिल्ली से सीधे जोधपुर जाने के लिए उसने मरुभूमि की राह पकडी। मेडतां के नाके पर उसे रुकना पडा। मालदेव ने राणा सांगा की तरह शत्रु के तोपखाने पर अपने सवारों को झोंक नहीं दिया। वह इतना सावधान था कि शेरशाह कोई भी चाल न चल सका। लडाई मे जीतने का कोई रास्ता शेरशाह को न दिखाई दिया तो उसने मालदेव के सरदारों के नाम जाली चिट्ठियाँ लिख कर उसके वकील के खेमे मे डलवा दीं जिनसे उसे भ्रम हो कि उसके सरदार शत्रु से मिल रहे हैं। इस तुच्छ चाल से मालदेव बहक गया और अपनी परछाईं से डर कर भाग निकला! उसके सरदारो ने बहुत मनाया, पर बेकार। तब १२ हजार राजपूत केसरिया बाना पहन लड़ाई मे उतरे और अपने खून से उस कलंक को धो डाला। उनकी वीरता देख शेरशाह के मुँह से अनायास निकला—मैं मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान की बादशाहत खोने लगा था! अजमेर, आबू, जोधपुर, जहाजपुर (मध्य बनास कांठे मे, मेवाड का उत्तरी छोर) बिना युद्ध के शेरशाह के हाथ आये, और चित्तौड ने अधीनता मानी। राजपूताने में शेरशाह ने अपना बन्दोबस्त करने या स्थानीय सरदारों को उखाडने का जतन न किया; केवल अजमेर आदि नाकों को अपने हाथ में रख कर राजपूत राज्यों को एक दूसरे से अलग कर दिया।

राजस्थान से छुट्टी पा कर शेरशाह ने बुन्देलखंड-बघेलखंड जीतने के

लिए कालजर पर चढाई कर उस गढ को घेर लिया और अपने एक सेनापति को वहाँ से पूरब रीवाँ के इलाके काबू करने भेजा। ये प्रदेश ले लेने से मालवा और झाड़खंड के बीच का सारा पहाड़ी प्रान्त लिया जाता। कालजर के ७ महीने के घेरे के बाद एक दिन बारूद में आग लगने से शेरशाह की देह जल गई। उसी साँझ को गढ लिया जाने के बाद उसने प्राण त्याग दिये (१५४५ ई०)।

§११ **शेरशाह के समकालीन भारतीय राज्य**—शेरशाह की मृत्यु के समय उसका साम्राज्य कन्दहार, काबुल और कश्मीर की सीमाओं से कोचबिहार की सीमा तक पहुँच गया था। पूरबी मालवे के जीते जाने पर सूर साम्राज्य की सीमा गढ कटंगा राज्य से जा लगी थी। यदि पूरा उत्तरी बुन्देलखंड भी जीता जाता तो उस तरफ भी दोनों की सीमाएँ मिल जातीं। वहाँ संग्रामशाह के बाद उसका बेटा दलपतिशाह गद्दी पर बैठ चुका था (लग० १५४१ ई०)। उसी समय उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्रदेव की मृत्यु हुई और वहाँ सूर्य वंश का अन्त हो कर एक नया वंश शुरू हुआ। विजयनगर में कृष्ण देवराय के बाद उसके भाइ अच्युतदेव ने राज्य किया (१५३०-४२ ई०)। उसके प्रशासन में भी विजयनगर की शक्ति और समृद्धि ज्यों की त्यों बनी रही। दक्खिनी रियासतें यथापूर्व थीं, पर गुजरात में अराजकता छाई थी। यदि शेरशाह की एकाएक मृत्यु न हो जाती तो बुन्देलखंड के बाद वह स्वभावत गुजरात पर ध्यान देता।

§१२ **शेरशाह की शासन-व्यवस्था**—अनेक शताब्दियों बाद शेरशाह के प्रशासन में भारतवर्ष ने वह शान्ति देखी जो उसे राजा भोज के बाद से न मिली थी। शेरशाह की विजयिनी सेनाएँ जिस देश से लाँघ जातीं, वहाँ छ महीने के अन्दर भूमि का माप-बन्दोबस्त हो जाता, सड़कें निकल जातीं, टकसालें खुल जातीं, और अमन चैन स्थापित हो जाता। मध्य युग के हिन्दू शासन-ढाँचे की इकाइयाँ 'प्रतिजागरणक' या 'परिगणक' (परगने) थे। पहले तुर्क विजेताओं ने जैसे हिन्दू मन्दिरों के शिखर तोड़ कर कुछ ऊपरी फेरफार कर अपनी मस्जिदें और इमारतें खड़ी की थीं, वैसे ही उन्होंने हिन्दू शासन के जीर्ण

ढाँचे के ऊपर जागीरदारों के रूप में अपना आधिपत्य बैठा दिया था। वह ढाँचा उनके बोझ से दब कर बैठ रहा था। शेरशाह ने उसमें फिर जान फूँकी। उसने जागीरदारों को हटा कर परगनों को फिर से जगाया। अपने सारे साम्राज्य को परगनों में बाँट कर प्रत्येक परगने में एक शिकदार और एक आमिन नियुक्त किया। शिकदार का काम अपने प्रदेश की रक्षा और आमिन का काम कर उगाहना था। प्रत्येक परगने में अनेक गाँवों की पंचायतें थीं, जिनके अन्दर की स्वतन्त्रता में शेरशाह ने दखल नहीं दिया। उनपर भीतरी शासन की पूरी जिम्मेदारी थी। अनेक परगनों को मिला कर एक सरकार बनती थी जो आजकल के जिले की तरह होती थी। प्रत्येक सरकार में एक हजार से पाँच हजार तक सेना के साथ एक शिकदार-ए-शिकदारान और एक मुंसिफ़-ए-मुंसिफ़ान रहता था। वह मुख्य मुंसिफ़ दीवानी मामलों को देखता; मालगुजारी के मामले में परगने के आमिन का सीधा सम्बन्ध बादशाह से रहता। फौजदारी मामलों का निपटारा शिकदार-ए-शिकदारान करता। परगनों और सरकारों के हाकिमों की दूसरे बरस बदली हो जाती थी। बंगाल के सब सरकारों के ऊपर केवल निरीक्षक रूप से एक आमिन रक्खा गया था; किन्तु पंजाब, मालवा आदि सीमा पर के प्रान्तों में फौजी हाकिम रक्खे गये थे।
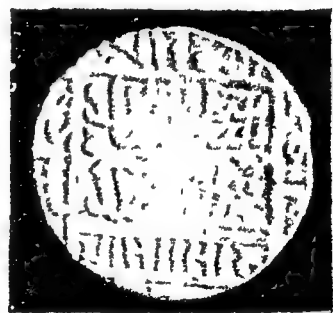
आगरा टकसाल का शेरशाह का रुपया। चित, कलमा और टकसाल का नाम; पट, फारसी में बादशाह का नाम, नीचे नागरी में स्री सीरसाह। [श्रीनाथ स०]

शेरशाह का सब से बड़ा सुधार मालगुजारी-विषयक था। पहले सुल्तान अपने सेनानायकों को जागीरें बाँट देते और उन जागीरों से कर वसूल कर अपने सैनिकों को पालने का जिम्मा उनपर छोड़ देते थे। कर प्रायः अनुमान

से लिया जाता था। शेरशाह ने सैनिकों को सीधा नकद वेतन देना शुरू किया। उसके अमले सब जगह जमीनों का नाप कर उनकी मालगुजारी निश्चित करते। वह नाप और बन्दोबस्त हर साल होता था। पैदावार का चौथाई भाग कर के रूप में लिया जाता था। किसानों को अधिकार था कि कर जिंस या रुपया किसी भी रूप में दें। किसानों के साथ सीधा बन्दोबस्त करने की यह पद्धति समूचे मुगल युग में 'टोडरमल के बन्दोबस्त' के नाम से जारी रही।

कर की वसूली नियमित करने के लिए देश की मुद्रा प्रणाली को सुधारना आवश्यक था। शेरशाह ने पेचीदा गणना के और मिश्रित धातुओं के अनेक सिक्कों को बन्द कर तथा सोने चांदी और तांबे के ठीक अनुपातों का निश्चय कर नई सरल मुद्रा प्रणाली शुरू की, और उसके प्रचार के लिए जगह जगह टकसालें स्थापित कीं। इस तरह सिन्ध से बंगाल तक एक सा सिक्का चलने लगा। हमारा आजकल का रुपया शेरशाह के रुपये का वंशज है। उसके सिक्कों पर नागरी और फारसी में उसका नाम खुदा रहता था। उसके कई सिक्के ॐ और स्वस्तिक के चिह्न वाले भी पाये गये हैं।

शेरशाह का स्वस्तिका छाप वाला रुपया
[दिल्ली संग्र०, भा पु० वि०]

सिक्कों के इस सुधार से व्यापार को बड़ी सुविधा हो गई। इसके अलावा देश के रास्तों और घाटों पर जगह जगह जो अनेक किस्म की चुंगियाँ देनी पड़ती थीं, उन सब को उठा कर शेरशाह ने केवल सीमान्त तथा बिक्री के स्थान पर चुंगी रखी। व्यापार की उन्नति को वैसा ही प्रोत्साहन शेरशाह की सड़कों और सरायों से मिला। उसकी बनवाई सड़कों में सब से मुख्य वह "सड़के आजम" थी जो सोनारगाँव से रोहतास हो कर अटक तक चली गई थी। दूसरी

आगरे से मांडू हो कर बुरहानपुर तक पहुँचती—अर्थात् ठेठ हिन्दुस्तान को दक्खिन से मिलाती थी। तीसरी आगरे को जोधपुर और चित्तौड़ से मिलाती तथा चौथी लाहौर से मुलतान को। सब सड़कों पर सरायें बनाई गई थीं। प्रत्येक सराय में राहियों के लिए भोजन और पानी का इन्तज़ाम रक्खा जाता था। वे सरायें डाक-चौकियों का भी काम देती थीं। सड़कों और डाक के इस प्रबन्ध से साम्राज्य के कोने-कोने की खबरें लगातार शेरशाह को मिलती रहती थीं, और सेनाओं के आने-जाने में बड़ी सुविधा होती थी।

शेरशाह का न्याय अटल था। एक साधारण स्त्री की फरियाद पर अपने बेटे को उसने कड़ा दंड दिया था। न्यायाधिकारियों की रहनुमाई के लिए उसने कई कानून भी बनाये। उसके बेटे इस्लामशाह के प्रशासन में राजकीय कानून और भी अधिक बने। इस प्रकार शेरशाह ने कानून को शरीयत के बन्धन से मुक्त कर दिया।

शेरशाह का सेना-संघटन भी अत्यन्त पूर्ण था। सेनानायकों को नकद वेतन नियमित रूप से मिलता था। साधारण सैनिकों की नियुक्ति भी बादशाह की तरफ से होती। सैनिकों को वेतन भी बादशाह के द्वारा ही मिलता। अकबर ने शेरशाह की शासन-व्यवस्था की प्रायः सब बातों में नकल की, पर वह सेना-नायकों (मनसबदारों) की नियुक्ति खुद करता था और सैनिकों की नियुक्ति उन पर छोड़ देता था। सैनिकों का वेतन भी अकबर के जमाने में मनसबदार की मारफत दिया जाता था। यह प्रथा अकबर के बाद समूचे मुगल युग में जारी रही। इसमें यह दोष था कि सैनिक सेनानायक को अपना सब कुछ समझते और यदि कभी वह बलवा करे तो उसके साथ वे भी बलवे में शामिल हो जाते थे। शेरशाह की पद्धति में यह दोष न था। सेनाएँ छावनियों में रहती थीं। छावनियों के फौजदारों का अपने इलाकों के शासन से कोई वास्ता न था; हाँ, कुछ सीमान्त प्रदेशों के फौजदारों को शिकदार का काम भी सौंपा गया था। शेरशाह की पैदल बन्दूकची सेना भोजपुरी (बक्सरिये) किसानों की थी। उसका एक तोपची दल भी था, और बहुत सी तोपें उसने स्वयं ढलवाई थीं।

शेरशाह का अपनी सेना पर कड़ा नियन्त्रण रहता था। झगड़ालू

पठाना को मुश्किल सैनिक बनाना उसी का काम था। सेना के प्रयाण के समय क्या मजाल कि प्रजा को जरा भी कष्ट पहुँचे। ऐसा कड़ाई होने पर भी शेरशाह के सैनिक उससे बड़ा स्नेह करते थे। इसका कारण यह था कि वह उनकी मेहनत और मुसीबत में उनका शरीक होता, उनसे भाई का सा बर्त्ताव करता और उनके गुणों को तुरन्त पहचान कर अनुरूप पुरस्कार देता था।
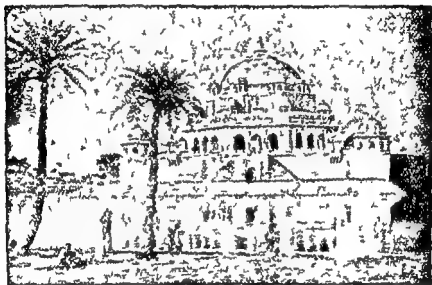
शेरशाह का मकबरा, सहसराम

§१३ शेरशाह युग की कला और साहित्य—शेरशाह के चरित्र की छाप उसकी इमारतों पर भी है। सहसराम में उसका मकबरा, जो उसके आदेशानुसार बना था, उसकी सुरुचि का सुन्दर नमूना है। शेरशाह ने कई प्राचीन नगर फिर से बसाये—पटने का पुनरुद्धार किया और शेरगढ़ नाम से पाण्डवों के इन्द्रपत गाँव में अपनी नई दिल्ली बसाई। हिन्दी साहित्य को उसके राज्य में विशेष प्रोत्साहन मिला। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना प्रसिद्ध काव्य पदुमावति 'सेरसाहि देहिली सुलतानू' के समय में लिखा। शेरशाह की गिनती भारतवर्ष के सच्चे राष्ट्र निर्माताओं में है।

§ १४. **इस्लामशाह सूर**—शेरशाह की मृत्यु पर उसका दूसरा बेटा इस्लामशाह या सलीमशाह नाम से गद्दी पर बैठा। उसके नौ बरस के प्रशासन (१५४५-५४ ई०) में शेरशाह की शासन-नीति जारी रही। शेरशाह के समय के पंजाब के फौजी हाकिम हैबतखाँ नियाजी ने स्वतन्त्र होने का यत्न किया; उसके दल के साथ इस्लामशाह को लम्बा युद्ध करना पड़ा। उस प्रसंग में पंजाब-शिवालक (हिमालय तराई) के प्रदेश जीते गये। अन्त में कश्मीर की उपत्यका में भिम्भर-राजौरी प्रदेश में इस्लामशाह ने नियाज़ियों को अन्तिम हार दी।

कश्मीर में मिर्ज़ा हैदर ने दस बरस राज किया। १५५१ ई० में प्रजा ने उसे और उसके मुगलों को निकाल भगाया, और फिर पुराने राजवंश को स्थापित किया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. बहादुरशाह गुजराती का ऐतिहासिक चरित लिखिए।

२. हुमायूँ के राज्य में आरम्भ में कौन से प्रदेश थे? फिर किस क्रम से उसके राज्य की बढ़ती-घटती हुई?

३. सांगा की मृत्यु के बाद से शेरशाह का आधिपत्य राजस्थान पर स्थापित होने तक राजस्थान का इतिहास संक्षेप से बताइए।

४. बिहार में शेरखाँ के पहले शासन में कौन सी विशेषताएँ थीं जिनकी बदौलत वह अपनी शक्ति बना सका?

५. शेरखाँ ने बिहार-बंगाल जौनपुर की सल्तनत किस प्रकार पाई? हुमायूँ से ये प्रान्त छीनने में उसने क्या योजना बरती?

६. पानीपत, खानवा, घाघरा में जिस युद्ध-शैली से मुगल जीते थे उसे शेरशाह ने कैसे विफल किया? कब और कहाँ?

७. जागीरदार पद्धति को उखाड़ कर शेरशाह ने उसके स्थान में कैसी शासन-पद्धति चलाई?

८. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) भारत में पुर्त्तगालियों का उत्तरी प्रान्त (२) विजयनगर का राजा अच्युतदेव (३) रोहतासगढ़ (४) कश्मीर में मिर्ज़ा हैदर (५) मलिक मुहम्मद जायसी (६) शेरशाह की सड़कें (७) शेरशाह का रुपया।

अध्याय ३

साम्राज्य के लिए तीसरा संघर्ष—अकबर

(१५५५–१५७६ ई०)

§१ हुमायूँ की वापिसी—हुमायूँ सिन्ध से कन्दहार की तरफ भागा था और वहाँ से भी उसे अपने भाई के डर से ईरान जाना पड़ा था। शेरशाह की मृत्यु के ४ महीने बाद ईरान के शाह की मदद से उसने कन्दहार जीत लिया, और कामरान से काबुल भी छीन लिया। १५५० ई० तक वह फिर दो बार काबुल खो कर पा चुका तथा बदख्शाँ पर भी अधिकार कर चुका था।

इस्लामशाह के बाद उसके नाबालिग बेटे को मार कर शेरशाह का भतीजा मुहम्मदशाह आदिल या अदालीशाह नाम से गद्दी पर बैठा। इससे सब साम्राज्य में खलबली मच गई तथा अदाली की अन्य कई गलतियों से अनेक पठान सरदारों ने विद्रोह किया। उसे दबाने अदाली चुनार गया तो दिल्ली आगरा उसके एक प्रतिद्वन्द्वी ने ले लिये। पंजाब तथा बंगाल के पठान शासक भी स्वतन्त्र हो गये। अदाली ने चुनार को ही राजधानी बनाया। यों उत्तर भारत में चार पठान सल्तनतें खड़ी हो गईं। उन्हें आपस में लड़ता देख हुमायूँ ने पंजाब जीत लिया। अदाली ने हेमू (हेमचन्द्र) नामक एक बनिये को, जो इस्लामशाह के समय राजदूत पद तक पहुँच चुका था, अपना मन्त्री और सेनापति बनाया। हेमू बिहार बंगाल में उलझा था कि हुमायूँ ने दिल्ली भी ले ली, और अपने १३ बरस के बेटे अकबर को सेनापति बैरमखाँ की संरक्षकता में पंजाब का हाकिम नियुक्त किया। फिर से दिल्ली में ६ महीने शासन करने के बाद हुमायूँ चल बसा।

§२. हेमू—हुमायूँ की वसीयत के अनुसार पंजाब और दिल्ली अकबर को मिले, और काबुल उसके छोटे भाई मुहम्मद हकीम को। हुमायूँ के मरने की खबर पा अदाली ने हेमू को दिल्ली जीतने भेजा। ग्वालियर, आगरा, दिल्ली से मुगलों को भगा हेमू पंजाब की तरफ बढ़ा। मुगल अब फिर भागने लगे, पर बैरमखाँ मुकाबले के लिए डट गया। फिर पानीपत पर लड़ाई हुई

(५–११–१५५६ ई०)। हेमू ने मुगल सेना के दोनों पासे तोड दिये, पर सिर में तीर लगने से घायल हो वह कैद हो गया। दिल्ली और आगरा इस जीत से अकबर के हाथ आये। उधर अदाली सूर बिहार बंगाल के अपने विद्रोही सरदारों से लड़ता हुआ मारा गया। ग्वालियर और जौनपुर तक तब मुगलों ने फिर दखल कर लिया।

§ ३. **अकबर के गद्दी बैठने पर भारतीय राज्य**—बिहार-बंगाल और मालवे में सूर साम्राज्य के खण्ड अब भी बाकी थे। मालवे में शेरशाह के हाकिम शुजातखाँ का बेटा बाजबहादुर स्वतन्त्र सुल्तान बन बैठा था (१५५५ ई०)। उसने रूपमती नाम की एक सुन्दरी से ब्याह किया। बाजबहादुर और रूपमती युद्ध और शिकार में साथ-साथ यात्रा करते थे। उनके पड़ोस में, गोंडवाने के राज्य में, जिसकी राजधानी अब मंडला थी, दलपतिशाह मर चुका (१५४८ ई०) और उसकी विधवा रानी दुर्गावती अपने बेटे के नाम पर शासन करती थी।

अकबर—समकालीन चित्र
"तारीखे खानदाने तैमूरिया" की हस्तलिखित प्रति से पहलेपहल इ० प्र० के लिए लिया गया फोटो [खुदा० पु०]

बाजबहादुर ने उस पर अनेक चढ़ाइयाँ कीं, और प्रत्येक लड़ाई में हारा।

राजस्थान में उदयसिंह ने रणथम्भोर और अजमेर वापिस ले लिये, आम्बेर और आबू से फिर मेवाड़ का आधिपत्य मनवाया, और उदयपुर की स्थापना की। गुजरात का राज्य छिन्न भिन्न ही रहा। बहमनी रियासतें भी दुबल रहीं। विजयनगर में अच्युतदेव के बाद उसका भतीजा सदाशिव राजा हुआ (१५४२ ई०)। उसने पहले अहमदनगर की मदद से बीजापुर को हरा कर उसका बहुत सा इलाका छीना, फिर १५५८ ई० में बीजापुर की सहायता से अहमदनगर पर चढ़ाई की। पिछली दो पुश्तों में जो विजयनगर का रोबदाब तमाम बहमनी राज्यों पर जम गया था, उससे सदाशिव का दिमाग फिर गया। अहमदनगर की चढ़ाई में पराजित शत्रुओं का अपमान करते समय उसने अपने मित्र-पक्ष की सेना के भावों का भी ख्याल न रक्खा।

§४ अकबर के पहले विजय और सुधार—अकबर की विचार शक्ति इस समय तक जाग चुकी थी। १५६० ई० में उसने बैरामखाँ को हटा कर स्वयं राज सँभाल लिया और उसी बरस साम्राज्य निर्माण की चेष्टा शुरू कर दी। सब से पहली चढ़ाई मालवे पर की गई। अकबर के सेनापतियों ने बाजबहादुर को हरा कर भगा दिया, उसने चित्तौड़ जा कर शरण ली। रानी रूपमती ने विष खा कर प्राण दे दिये। १५६२ ई० में अकबर ने आम्बेर या आमेर के राजा भारमल की बेटी से विवाह किया और भारमल के पोते मानसिंह को अपने दरबार में रक्खा। यों आमेर का राजा उदयसिंह के बजाय अकबर की अधीनता में आ गया। उसी बरस मेड़ताँ का गढ़ जीता गया, जिससे उत्तरी मारवाड़ भी अकबर के अधीन हो गया।

मालवे के बाद बुन्देलखण्ड गोंडवाने की बारी आई। कड़ा मानिकपुर के हाकिम आसफखाँ ने पन्ना के राजा को अधीन करने के बाद रानी दुर्गावती पर चढ़ाई की। वह बहादुरी से लड़ती हुई मारी गई (१५६४ ई०)। उसकी पड़ोसी छत्तीसगढ़ के राजा कल्याणसिंह ने भी डर कर दिल्ली के दरबार में उपस्थित हो अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

एक ओर शस्त्रों द्वारा ये विजय किये जा रहे थे तो दूसरी ओर नई उदार नीति द्वारा साम्राज्य की नींव पक्की की जा रही थी। १५६२ ई० में अकबर ने

ने युद्ध-बन्दियों को दास बनाने की प्रथा अपने फरमान द्वारा रोक दी। अगले बरस उसने हिन्दू तीर्थयात्रियों से लिया जाने वाला कर उठा दिया। कहते हैं यह कार्य उसने नानक के प्रशिष्य सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास के कहने से किया। १५६४ ई० में अकबर ने हिन्दुओं पर से जजिया कर भी उठा दिया।

विजयनगर के खँडहर—विहंगम दृश्य, हाम्पी, ज़ि० बेल्लारि [भा० पु० वि०]

§ ५. **विजयनगर का पतन**—इसी समय दक्खिन में भी एक भारी परिवर्तन हो गया। १५५८ ई० की लाञ्छना के बाद बीजापुर, बिदर, गोलकुंडा और अहमदनगर ने मिल कर विजयनगर का मुकाबला किया। कृष्णा के उत्तर तालीकोटा के पास लड़ाई हुई जिसमें सदाशिव अपनी एक लाख सेना के साथ मारा गया (१५६५ ई०)। इस हार का समाचार पा कर विजयनगर गढ़ के भीतर की मुस्लिम सेना ने भी विद्रोह किया और विजेताओं ने राजधानी पर कब्जा कर उसे उजाड़ दिया। सदाशिव के भाई वेङ्कटाद्रि ने तब विजयनगर से १२० मील दक्खिन हट कर पेनुकोंडा को अपनी राजधानी बनाया।

§ ६. **मेवाड़ और उड़ीसा का पतन**—बिहार के पठान शासक सुलेमान करांनी ने १५६४ ई० तक बंगाल पर अधिकार कर लिया। तभी कोच-

विना अपना देश देने को तैयार न हुए। उन्होंने राणा उदयसिंह को पहाड़ों में भेज दिया और उसकी भावज मीराबाई के चचेरे भाई जयमल राठोड को अपना मुखिया चुना। दूसरा नेता पत्ता सीसोदिया को चुना। अकबर ने चित्तौड़ घेर लिया। तोपों के तीन मोर्चे गढ़ के सामने लगाये गये, जिनमें एक स्वयं अकबर
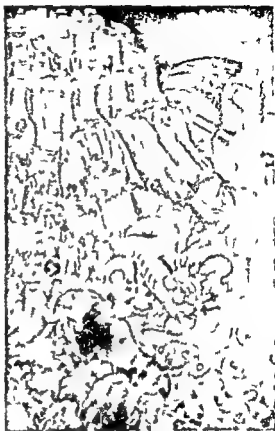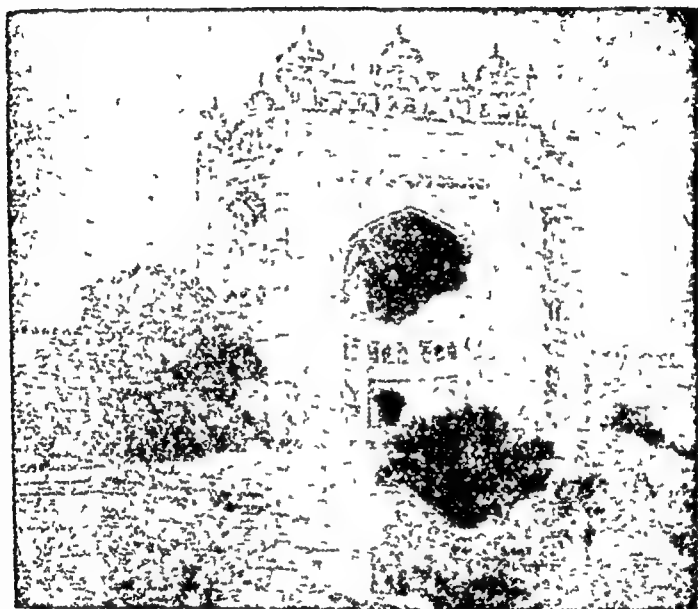
बुलन्द दरवाज़ा, फतहपुर सीकरी

की और एक टोडरमल की देखरेख में था। साबातें और सुरंगें लगाई जाने लगीं। साबात चमड़े के लम्बे छाजन होते थे जिनमें ढके हुए रास्तों से भाला लिये सवार मजे में गुजर सकते थे। उनकी रक्षा के बावजूद अकबर के कारीगरों की लाशें कई बार ईंटों की तरह चुनी गई। एक दिन गढ़ की दीवार पर जयमल को मरम्मत का आदेश देते देख अकबर ने उस पर गोली चलाई। अकबर ने जाना कि वह मर गया, पर असल में वह लँगड़ा हो गया। गढ़ की रसद चुक जाने पर जयमल ने जौहर की आज्ञा दी। लँगड़ा जयमल अपने एक कुटुम्बी के कन्धों पर चढ़ शत्रु दल को काटता हुआ बढ़ा। चित्तौड़गढ़ के सबसे नीचे के

दो दरवाजों के बीच जहाँ वह मारा गया, वहाँ ईंटों की एक सीधी-सादी समाधि आज तक खड़ी है। पत्ता सूरजपोल (सूर्यद्वार) पर जो चित्तौडगढ की पिछली तरफ है और जिस तक चढने के लिए सीधा चढाई का रास्ता है, लडता हुआ काम आया। मेवाड के किसानों ने भी अकबर को इस युद्ध में खूब सताया था। अकबर ने उन्हें कठिन दड दिया। मेवाड पर पूरा अधिकार हो जाने पर उसने अपने वीर शत्रु जयमल और पत्ता की हाथियों पर चढी मूर्तियाँ बनवा कर आगरे के किले के बाहर स्थापित कराईं। अकबर के लौट जाने पर उदयसिंह ने कुम्भलगढ को अपनी राजधानी बनाया।

अकबर के मेवाड में व्यस्त रहने पर सुलेमान करानी ने उड़ीसा के राजा मुकुन्द हरिचन्दनदेव को गगा से दामोदर तक हटा दिया। सुलेमान के सेनापति राजू कालापहाड ने दलभूम मयूरभज के पहाडी रास्ते से घूम कर पिछली तरफ से कटक पर चढाई की। हरिचन्दनदेव शीघ्र उधर लौटा, पर उसके एक सरदार ने विद्रोह कर उसे मार डाला। कालापहाड ने कटक और पुरी को उजाड दिया। पीछे से चीलराय का हमला होने से काला पहाड को लौटना पड़ा। उड़ीसा म इसके बाद अव्यवस्था मची रही। उत्तरी और दक्खिनी उड़ीसा में दो राज्य खड़े हुए, जिनकी राजधानियाँ खुर्दा और गजाम थीं। लेकिन वे दोनों कमजोर थे। उत्तरी उड़ीसा में २४ वर्ष तक पठान और स्थानीय सरदार मारकाट करते रहे। गंजाम का राज्य १६वीं सदी के अन्त तक गोलकुडा का मुकाबला करता रहा।

राणा प्रताप
(विक्टोरिया म्यू० में रक्खा एक पुराना चित्र)

उधर चित्तौड के बाद रणथम्भोर भी अकबर के हाथ आया, और तभी

बघेलखंड (रीवाँ) के राजा का कालंजरगढ़ भी जीता गया। उसी समय सीकरी में आम्बेर की राजकुमारी से अकबर का बेटा पैदा हुआ, जिसका नाम सलीम रक्खा गया। तब से फतहपुर सीकरी को अपनी राजधानी बना कर अकबर ने वहाँ अनेक महल तैयार कराये।

§७. **गुजरात-बंगाल-विजय**—गुजरात में बहादुरशाह की मृत्यु के बाद से फैली अराजकता ऐसी थी जिसे उत्तर या दक्खिन भारत में स्थापित हुए किसी साम्राज्य के नेता देर तक देखते न रह सकते थे। १५७२ ई० में अकबर ने गुजरात पर तेजी से चढ़ाई की। आगरे से २३ अगस्त को सवार सेना के साथ निकल कर उसने २ सितम्बर को अहमदाबाद में युद्ध छेड़ दिया। यन्त्र-वाहनों से पहले के विश्व के उल्लिखित इतिहास में यह सब से तेज चढ़ाई है। गुजरात के छोटे छोटे राज्य यह कल्पना भी न करते थे कि अकबर इस तरह उनपर आ टूटेगा। १५७३ ई० तक उसने उन सब को बारी बारी जीत लिया।

उसी समय मेवाड का राणा उदयसिंह और बिहार-बंगाल का प्रजाप्रिय शासक सुलेमान चल बसे। उदयसिंह का बेटा प्रताप उजड़े मेवाड़ का राणा हुआ और सुलेमान का बेटा दाऊद बिहार-बंगाल की गद्दी पर बैठा। १५७६ ई० तक कोचबिहार के राजा नरनारायण की मदद से अकबर ने बंगाल भी जीत लिया। गुजरात और बंगाल के विजय से वह उत्तर भारत का एकच्छत्र सम्राट् हो गया। दक्खिन में इसी समय अहमदनगर के राज्य ने बराड को जीत लिया।

१५७६ ई० मे अकबर के साम्राज्य के बराबर दुनियाँ मे और कोई भी राज्य न था; तो भी मेवाड़ के अकिञ्चन राणा प्रताप ने उससे लोहा लेने की ठानी। उसने कुम्भलगढ़ और गोघूँदा के पहाडी प्रदेश को अपना केन्द्र बना कर मालवा और गुजरात जाने-आने वाली मुगल सेनाओ, काफिलो, खजानो आदि पर आक्रमण शुरू किये। इस छापामारी से तंग आ कर अकबर ने मानसिंह को उसके खिलाफ भेजा। गोघूँदा के रास्ते में हल्दीघाटी पर दोनों का सामना हुआ (१५७६ ई०)। पठान सरदार हकीम सूर भी प्रताप के साथ था। लडाई का फल अनिश्चित रहा। प्रताप ने आगे बीस बरस तक स्वाधीनता का संघर्ष जारी रक्खा और मेवाड का बहुत सा हिस्सा वापिस ले लिया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ इस्लामशाह सूर की मृत्यु के बाद सूर साम्राज्य के टुकड़े किस प्रकार हुए? उन्हें हुमायूँ और अकबर ने कैसे क्रमशः जीता?

२ विजयनगर का अन्तिम राजा कौन था? उसके प्रशासन में विजयनगर राज्य का उत्कर्ष और पतन कैसे हुआ?

३ अकबर ने अपने हाथ में राज लेने के बाद १५६५ ई० तक कौन कौन से प्रदेश किस क्रम से अपने साम्राज्य में मिलाये? और १५७६ ई० तक?

४ उड़ीसा के हिन्दू राज्य का अन्त कब कैसे हुआ?

५ आगरा किले के बाहर अकबर ने अपने किन शत्रुओं की मूर्तियाँ लगवाई थीं? क्यों?

६ अकबर के पहले शासन सुधार क्या थे?

७ अकबर युग में कोचविहार राज्य में कौन कौन प्रदेश सम्मिलित थे?

८ निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) हेमू (२) बाजबहादुर (३) चन्दु-कोटा (४) चीनराय (५) राजू कालापहाड़ (६) रानी दुर्गावती (७) हल्दीघाटी (८) राजा भारमल (९) रूपमती।

अध्याय ४

मुगल साम्राज्य का वैभव

(१५७६—१६५७ ई०)

§१ **अकबर की शासन-व्यवस्था**—अकबर की शासन नीति उदार राष्ट्रीय राजा की थी। अपनी हिन्दू और मुस्लिम प्रजा को उसने एक ही दृष्टि से देखा। उससे पहले जैनुलाबिदीन, हुसेनशाह बङ्गाली और शेरशाह वैसी नीति के लिए रास्ता बना चुके थे।

अकबर ने सुशासन के लिए जो अनेक सुधार किये, उनमें उसने शेरशाह का अनुसरण किया। गुजरात जैसे प्रान्तों में भी, जो शेरशाह के अधीन न हुए थे, उसने माप बन्दोबस्त करवाया। टोडरमल इस कार्य में उसका मुख्य सहायक रहा। माप के लिए लम्बाई और क्षेत्रफल की इकाइयों—गज़ और

मुहम्मद हकीम फौज के साथ पञ्जाब पर चढ आया। रोहतास के किलेदार ने उसे वह किला न दिया, और लाहोर के शासक कुँवर मानसिंह ने शहर के दरवाजे न खोले। मुहम्मद हकीम की इस आशा पर कि सारी प्रजा उसका साथ देगी, पानी फिर गया और वह लस्टमपस्टम पीछे भागा। अकबर ने बडी तैयारी के साथ काबुल पर चढ़ाई की। टोडरमल को बङ्गाल में सफलता हुई और बलवा पूरी तरह कुचल दिया गया।"

इसके बाद मजहबी मामलों मे अकबर को पूरी स्वतन्त्रता मिल गई। अब इबादतखाने की जरूरत न रह गई थी। अकबर दूसरे मतों की तरफ झुकने लगा और उसने घोषणा कर दी कि उसके बेटे चाहे जो मत मानें। जरथुश्त्रियों की तरह वह अपने घर में पवित्र आग रखने और सूर्य को प्रणाम करने लगा और जैनो और हिन्दुओ के प्रभाव से उसने गो-हत्या की मुमानियत कर दी और विशेष अवसरों पर कैदियो को छोडना शुरू किया। ईसाइयों का एकपत्नीव्रत भी उसे भाया। इस प्रकार सब धर्मों का सामञ्जस्य कर अकबर ने एक सग्राहक धर्म बनाने की कोशिश की। उसने लिखा, "एक साम्राज्य में जिसका एक शासक हो, यह अच्छा नही है कि प्रजा एक दूसरे के विरोधी विभिन्न मतो में बॅटी रहे, इसलिए हमें उन सब को मिला कर एक करना चाहिए; किन्तु इस प्रकार कि वे एक भी हो जायॅ और अनेक भी बने रहें।"

अकबर ने अपने नये धर्म का नाम तौहीदे-इलाही रक्खा। उसका उद्देश्य अत्यन्त उदार और ऊँचा था, तो भी तौहीदे-ईलाही सौ पन्थो को एक करने के बजाय एक नया पन्थ बन गया और अकबर के साथ ही समाप्त हो गया। १५९३ ई० मे अकबर ने धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए कई आज्ञाएँ निकाली, जैसे (१) कोई जबरदस्ती मुसलमान बनाया गया हिन्दू फिर हिन्दू बनना चाहे तो उसे कोई न रोके (२) किसी को बाधित कर दूसरे मजहब मे न लाया जाय (३) हर किसी को अपना धर्म-मन्दिर बनाने की स्वतन्त्रता रहे (४) अनिच्छुक हिन्दू विधवा को सती न किया जाय; इत्यादि। अकबर की यह नीति अनेक मुल्लाओ को न रुची। उनके कट्टरपन से खीझ कर पिछले जीवन में अकबर को [illegible]म का बहुत कुछ दमन भी करना पडा; परन्तु इस्लाम की सबसे मुख्य बात

तौहीद अकबर के पन्थ में मौजूद थी।

§३ **अकबर के पिछले युद्ध और विजय**—१५७६ ई० के बाद भी अकबर के दिल में दो देश जीतने की अभिलाषा बनी रही, जो उसके वंशजों को भी विरासत में मिली, एक तो उत्तर पच्छिम तरफ बदख्शाँ और बलख के आगे तूरान अर्थात् वक्षु सीर काँठों की अपने पुरखों की भूमि, और दूसरे दक्खिन भारत। दक्खिन में "सीमान्त के शासकों की बेपरवाही से तट के अनेक शहर और बन्दरगाह फिरंगियों के हाथ में चले गये थे", उन्हें वापिस लेना भी अकबर का ध्येय था। गोवा में आने वाले जहाज कब कितने सैनिक और युद्धसामग्री उतारते हैं, इसका वह पता रखता था। गुजरात के तट से पुर्तगालियों को निकाल देने के अनेक जतन उसने किये, पर सब व्यर्थ। उस विफलता का कारण था समुद्र विषयक ज्ञान और शक्ति का न होना। उधर पुर्तगाल देश स्पेन सम्राट् के अधीन हो गया था (१५८० ई०), जिसका साम्राज्य तब पच्छिम जगत् में सब से बड़ा था। अमरीका से पाये हुए धन के जोर से युरोप के कई देशों को भी स्पेन ने अधीन कर लिया था। स्पेन और पुर्तगाल के एक हो जाने से संसार के सब समुद्रों पर उनका एकाधिकार हो गया। उनकी शक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि अपने परवाने बिना वे किसी मुस्लिम जहाज को मक्का भी न जाने देते थे। १५९७ ई० तक सिंहल द्वीप स्पेन साम्राज्य में मिला लिया गया। उसका समूचा तट पुर्तगालियों ने जीत लिया था और हिन्दू राज्य केवल अन्दर के पहाड़ों में रह गया था।

बीरबल
[भारत कलाभवन, काशी]

अकबर ने काबुल तो जीत लिया, पर तूरान के उजबक शासक अब्दुल्ला

खाँ ने जो अकबर के साथ-साथ गद्दी पर बैठा था, काबुल राज्य के बदख्शाँ प्रान्त को जीत लिया। अकबर को डर था कि कहीं वह भारत पर भी चढ़ाई न करे। इसलिए अकबर ने मानसिंह को काबुल भेजा और अब्दुल्ला उज्बक की मृत्यु तक स्वयं भी लाहौर रहा। सीमान्त के पठान तथा स्वात-बाजौर के लोग उसी समय विद्रोह कर उठे†। स्वातियों से लड़ता हुआ अकबर का मित्र बीरबल मारा गया। राजा टोडरमल ने उस हार का बदला चुकाते हुए स्वातियों को तो दबा दिया, परन्तु पठानों के ठेठ इलाकों ने अकबर के वंशजों के समय तक भी
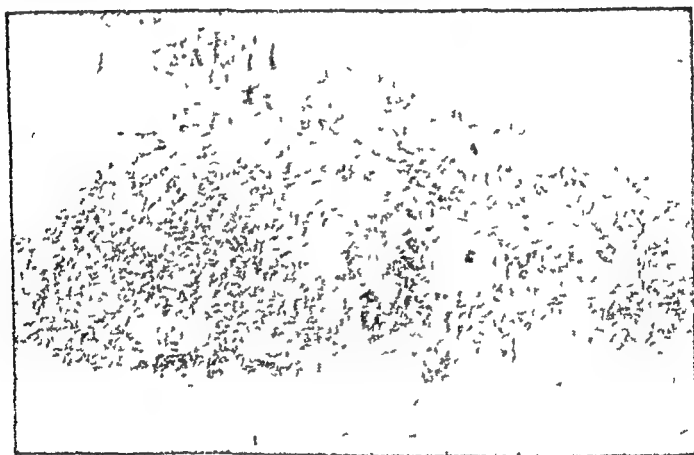
असीरगढ़ [भा० पु० वि०]

मुगलों की अधीनता कभी न मानी। उन चढ़ाइयों के प्रसंग में कश्मीर जीता गया। ठट्ठा अर्थात् दक्खिनी सिन्ध जीतने के लिए मुलतान का शासन बैरामखाँ के बेटे अब्दुर्रहीम खानखाना को सौंपा गया। खानखाना को इसमें सफलता मिली। पीछे सिबी, कन्दहार और मकरान भी अकबर के अधिकार में आ गये।

राजा भारमल के बेटे भगवानदास की और टोडरमल की मृत्यु के बाद

† ध्यान रहे कि स्वात-बाजौर के लोग पठान नहीं हैं, वे प्राचीन पच्छिमी गन्धार के लोगों अर्थात पंजाबियों के वंशज हैं। पठानों का प्रदेश काबुल नदी के दक्खिन था, स्वात-बाजौर उस नदी के उत्तर है।

मानसिंह को बिहार बंगाल के सूबे सौंपे गये। उसने तब उत्तरी उड़ीसा को भी जीत लिया। दक्खिनी राज्यों में से खानदेश ने सन्देश पा कर अधीनता मान ली। दूसरों पर फौज भेजी गयी। अहमदनगर में उस फौज का चाँदबीबी ने मुकाबला किया। वह अहमदनगर के सुल्तान की बुआ और बीजापुर के बालक सुल्तान की माँ थी। अन्त में अहमदनगर ने अधीनता मानी और बराड का प्रान्त छोड़ दिया (१५९६ ई०)। सन् १५९७ में राणा प्रताप और १५९८ में अब्दुल्ला उज्बक का देहान्त होने पर अकबर स्वयं दक्खिन गया। १६०० ई० में अहमदनगर तथा खानदेश का असीरगढ़, जो तब भारत भर में विकट गढ़ जाना जाता था, उसके हाथ आये।

तभी अकबर के बेटे सलीम ने विद्रोह किया और इलाहाबाद में स्वतन्त्र हो बैठा। अकबर को अपनी विजय योजनाएँ छोड़ आगरा लौटना पड़ा। अहमदनगर सल्तनत पूरी तरह मुगल साम्राज्य में न मिल पाई, तथा बीजापुर और गोलकुण्डा तो ज्यों के त्यों बने रहे। उन दोनों के दबाव से कर्णाटक के राजा वेंकटाद्रि के बेटे ने पेनुकोंडा को भी छोड़ तमिळ देश के उत्तरी छोर पर चन्द्रगिरि को अपनी राजधानी बनाया (लग० १६०० इ०)।

विद्रोह के प्रसंग में सलीम ने अकबर के मित्र अबुलफज्ल को ओरछा के राजा बीरसिंहदेव बुंदेले के हाथों मरवा डाला। पीछे बड़ी मुश्किल से उसने पिता से समझौता किया। १६०५ ई० में अकबर बीमार हुआ। तब दरबारियों का एक दल सलीम के बजाय उसके बेटे खुसरो को गद्दी पर बिठाने का जतन करने लगा, किन्तु अन्तिम समय अकबर ने सलीम को उत्तराधिकारी बनाया।

§४ **अकबर-युग में साहित्य और कला**—अकबर ने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों को मिला कर एक करना चाहा। इस विचार से उसने महाभारत, हरिवंशपुराण आदि के फारसी अनुवाद करवाये। उसके समय में फारसी में बहुत से इतिहास-ग्रन्थ भी लिखे गये। उनमें अबुलफज्ल के लिखे अकबरनामे के अन्तर्गत आईने अकबरी अनमोल ग्रन्थ है।

दरबारी साहित्य से कहीं अधिक महत्त्व का सन्तों का साहित्य था। सूरदास, तुलसीदास और गुरु अर्जुनदेव, तथा रामानन्द के अनुयायी दादू, मलूक,

रयिदास आदि सन्त कवि अकबर के समय में हुए। दादू अहमदाबाद का धुना था और रयिदास चमार। अब्दुर्रहीम खानखाना ने रहीम नाम से हिन्दी में जो कविता की, उस पर भी स्पष्ट वैष्णव छाप है। तुलसीदास का रामचरितमानस तो हिन्दीभाषी जनता का धर्म-ग्रन्थ बन गया।

अकबर की इमारतों में आगरा और इलाहाबाद के किले तथा फतहपुर-सीकरी के सुन्दर महल उल्लेखनीय हैं। उसके आश्रित हिन्दू राजाओं ने भी वृन्दावन में कई मन्दिर बनवाये।

संगीत और चित्रकला को भी अकबर ने प्रोत्साहन दिया। पन्द्रहवीं शताब्दी से चले संगीत के नवजीवन की परम्परा में १६वीं शताब्दी के शुरू में राजा मानसिंह तोमर ने ग्वालियर में एक संगीत-विद्यालय स्थापित किया था। वहाँ के गायक तानसेन को अकबर ने अपने दरबार में जगह दी।

§ ५. **चित्रकला की मुगल कलम**—इस्लाम में प्राणियों के चित्र बनाना वर्जित है, तो भी अरब देशों और ईरान मे ११वीं शताब्दी से चित्रकला पुनर्जीवित हो चुकी थी, जिस पर चीन-हिन्द की भारतीय कला का काफी प्रभाव था। तेरहवीं शताब्दी में मंगोल आधिपत्य के साथ "ईरानी चित्रकला में चीनी-पन व्याप उठा। (पर) इस चीनीपन में भी (कुछ) भारतीय प्रभाव था।" फिर हरात मे तैमूर वंशजों के राज्य में ईरानी कलम की उस चित्रकारी को खूब प्रश्रय मिला था। हुमायूँ के काबुल में स्थापित होने पर शीराज का ख्वाजा अब्दुस्समद तथा एक अन्य ईरानी चितेरा उसकी सेवा में आया। अकबर ने इनके साथ भारत के योग्य से योग्य चितेरों को भी जुटाया, जिनमें दसवन्त (जसवन्त) और बसावन सबसे नामी थे। अकबर की समन्वय-भावना और ऊँची प्रेरणा के प्रभाव से इनकी कलमों (शैलियो) का सामञ्जस्य हो कर एक नई जानदार कलम चली, जो मुगल कलम कहलाती है। इसमें सब से अधिक प्रभाव कश्मीर कलम का है, पर ईरानी कलम और राजपूत कलम का भी पुट है।

§ ६. **पहले सिक्ख गुरु**—पंजाब मे गुरु नानक ने अपने 'उदासी' (विरक्त) बेटे के बजाय अपने एक शिष्य को अपना पद और गुरु अंगद नाम दिया था। पंजाब मे तब महाजनो के कारबार मे काम आने वाले "लंडे" अक्षरों

के सिवाय कोई लिपि न थी । अंगददेव ने कश्मीर की शारदा लिपि को गुरमुखी नाम से अपना लिया और नानक की वाणी का उसमें सङ्कलन किया । तीसरे गुरु अमरदास ने अपने दामाद रामदास के वंश में गुरु गद्दी स्थायी कर दी । रामदास ने एक पुराने बौद्ध तीर्थ के स्थान पर अमृतसर की स्थापना की । पाँचवें गुरु अर्जुनदेव (१५८२–१६०६ ई०) ने गुरुओं की वाणियों तथा रामानन्द, नामदेव, कबीर, फरीद, रविदास, सूरदास आदि भक्तों के वचनों का सङ्कलन
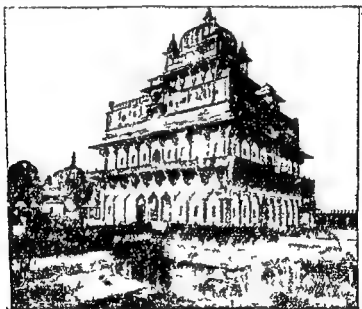
दतिया में वीरसिंहदेव का महल
१७वीं सदी के वास्तु शिल्प का नमूना [भा० पु० वि०]

एक 'ग्रन्थ' में किया जो 'सिक्खों' का धर्म ग्रन्थ बना । अर्जुन ने अपने शिष्यों को तुर्किस्तान से घोड़ों का व्यापार करने को भी प्रेरित किया, जिससे उनकी दूर देश जाने की झिझक निकल जाय और वे अच्छे सवार बन सकें ।

§७ जहाँगीर—सलीम जहाँगीर नाम से हिन्दुस्तान के तख्त पर बैठा तो उसका बेटा खुसरो बगावत कर आगरे से पंजाब की ओर बढ़ा । लाहौर के

कान के तट पर अनेक पुर्तगाली बस गये थे। उनकी दोगली सन्तान ने समुद्र और नदियों में लूटमार करना अपना धन्धा बना लिया। वे गोवा के शासन में न थे। अराकान के राजा ने अब उनका दमन कर उन्हें अपनी सेवा में ले लिया और वे लूट में आधा हिस्सा राजा को देने लगे। चटगाँव इन फिरंगियों का अड्डा था। इनकी मदद से अराकान के राजा ने बाकरगंज जीत लिया (१६२० ई०) और ढाका को लूटा (१६२५ ई०)। उसके बाद अराकानियों और फिरंगियों के धावे बंगाल पर बराबर होते रहे। उनकी नावों के 'हरमद' (Armada) को देख कर बंगाली नव्वारा (बेड़ा) भाग जाता। वे असहाय जनता को पकड़ ले जाते और उनके एक-एक हाथ में छेद कर एक रस्सी पिरो कर पशुओं की तरह अपनी नावों मे भर ले जाते। अराकानी उन्हें दास बना कर काम लेते। फिरंगी उन्हें दक्खिन के बन्दरगाहों पर या फिलिपीन आदि द्वीपों में दूसरे फिरंगियों के हाथ बेच देते। यह लूटमार और उजाड़ का यह सिलसिला जहाँगीर और उसके बेटे शाहजहाँ के शासन-काल में साल-ब-साल जारी रहा।

§१०. भारतीय समुद्र में ओलन्देज़, अंग्रेज़ और फ्रांसीसी—नई और पुरानी दुनिया में स्पेन का साम्राज्य कैसे फैल गया था, यह हम देख चुके हैं। स्पेन ने अपने अधीन छोटे राष्ट्रों को कुचलना चाहा, परन्तु १५७६ ई० में छोटे से हॉलैण्ड राष्ट्र ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया।

युरोप में मानसिक जागृति के बाद धार्मिक सुधार की लहर उठी। लूथर और कैल्विन नामक सुधारकों ने १६वीं सदी के शुरू में पोप की महन्ती का प्रतिवाद किया। उनके अनुयायी 'प्रतिवादी' (प्रोटेस्टैंट) कहलाये और पोप के अनुयायी 'रोमी सनातनी' (रोमन कैथोलिक)। स्पेन-सम्राट् ने पोप का साथ दिया। युरोप के कई राज्यों मे आधे से भी अधिक सम्पत्ति गिर्जों के हाथ में थी, और गिर्जों के पुजारी नियत करना पोप के हाथ में था। स्वाधीन-वृत्ति राष्ट्र अब प्रतिवादी बनने लगे। इंग्लैंड के राजा ने पोप से सम्बन्ध तोड़ कर अनेक गिर्जों की जागीरें जब्त कर लीं। स्पेन ने इंग्लैंड को भी दबाना चाहा। जिस फिलिप (१५५६–६८ ई०) के नाम से फिलिपीन द्वीपों का नाम पड़ा था, वह तथा इंग्लैंड की रानी एलिज़ाबेथ (१५५८–१६०३ ई०) अकबर के समकालीन

थे। फिलिप ने इंग्लैंड पर जंगी बेड़ा भेजा, जिसे अंग्रेजों ने हरा कर फूँक दिया (१५८८ ई०)। इससे पहले कई अंग्रेज नाविक भी पृथ्वी परिक्रमा कर आये थे। उधर ४० बरस की घोर कशमकश के बाद हौलैंड ने भी स्पेन से स्वतन्त्रता पा ली।

ओलन्देज अर्थात् हौलैंड के लोग* और अंग्रेज सुदूर समुद्रों पर भी स्पेन पुर्तगाल के एकाधिकार को तोड़ने लगे। ओलन्देजों ने पुर्तगालियों को चीन सागर से निकाल दिया। १६०० ई० के अन्तिम दिन इंग्लैण्ड में पूरब के व्यापार के लिए 'इस्ट इंडिया कम्पनी' बनी, जिसे राज्य की तरफ से उस व्यापार का एकाधिकार मिला। ईसाई मत के प्रचार के लिए पुर्तगाली जो जोर जुल्म करते थे, उनसे भारत के शासक परेशान थे। अंग्रेज और ओलन्देज 'प्रतिवादी' होने के कारण वैसे कट्टर न थे। उन्हें केवल अपने व्यापार से मतलब रहता। भारतवर्ष के शासकों ने पुर्तगालियों के मुकाबले में उनका स्वागत किया। अंग्रेजों ने सूरत में व्यापारी कोठी खोली, और सूरत के पास पुर्तगाली बेड़े को हराया। उनके राजा जेम्स १म का दूत सर टामस रो अजमेर में जहाँगीर से मिला। अंग्रेजों को भारत में व्यापार करने की इजाजत तो मिली ही, साथ ही अपनी बस्तियों में अपने कानून के अनुसार स्वय शासन करने का अधिकार भी उन्हें मिल गया। १६१६ ई० में ओलन्देज व्यापारी वान डर ब्रोक सूरत आया। तब ओलन्देजों को भी सूरत, बड़ोदा, अहमदाबाद और आगरे में कोठियाँ खोलने की आज्ञा मिल गई। १६२० ई० में फ्रांसीसी व्यापारी भी सूरत आये।

§११ **कन्दहार का छिनना**—१६२२ ई० में इरान के शाह अब्बास ने कन्दहार का फिर घेरा। शाहजहाँ के नेतृत्व में एक बड़ी फौज उसके खिलाफ जाने वाली थी, पर शाहजहाँ उसी समय विद्रोह कर बैठा। इरानियों ने कन्दहार ले लिया। चार बरस बाद शाहजहाँ ने पिता से सुलह की। उसकी बगावत का

---

*आजकल इस अर्थ में हिन्दी में कुछ लोग अंग्रेजी शब्द डच लिखने लगे हैं, पर मुगल युग में जब हौलैंड के लोगों से हमारा पहलेपहल परिचय हुआ, तब हम उन्हें आलन्देज कहते थे।

अफजलखाँ के नेतृत्व में वेदनोर, सेरा और बेंगलूर को जीतते हुए कावेरी तक जा पहुँचे । गोलकुंडा वालो ने समुद्र-तट के साथ-साथ उत्तर तरफ दक्खिनी उड़ीसा में शिकाकोल और चिलिका तक तथा कृष्णा के दक्खिन नल्लमलै के प्रदेशों तक अधिकार कर लिया ।

§ १५. **कन्दहार बलख बदख्शाँ के युद्ध**—बीजापुर और गोलकुंडा से अधीनता मनवाने के एक बरस पीछे शाहजहाँ ने कन्दहार के ईरानी हाकिम से षड्यंत्र कर उसपर भी अधिकार कर लिया (१६३८ ई०) । हिन्दूकश के उस पार बलख और बदख्शाँ के सूबे बुखारा के उज्बक सुल्तान के अधीन थे । बुखारा सल्तनत की अव्यवस्था से लाभ उठा कर उन्हें भी हिन्दुस्तान की फौजों ने जीत लिया, पर वहाँ उनका अधिकार केवल दो बरस (१६४६-४७ ई०) रह पाया । कन्दहार को भी शाह अब्बास २य ने वापिस ले लिया (१६४८ ई०), क्योंकि शाहजहाँ अपनी घिरी हुई फौज के पास वक्त पर कुमुक न भेज सका । इसके बाद १६५३ ई० तक उसने तीन बार कन्दहार वापिस लेने का जतन किया, पर बेकार । इस विफलता का मुख्य कारण था हिन्दुस्तानी तोपचियो का निकम्मापन । तीन युद्धो की हारों से हिन्दुस्तानियो पर ईरानियो की धाक बैठ गई और आगे एक सदी तक ईरानी हौआ हिन्दुस्तानी शासकों के दिमाग पर मँडराता रहा ।

§ १६. **शाहजहाँ के प्रशासन में पुर्तगाली, ओलन्देज़ और अंग्रेज़**—बंगाल में पुर्तगालियों की करतूतो का हाल कहा जा चुका है । उन्होने अपनी हुगली की कोठी की किलाबन्दी कर ली और सम्राट् के आज्ञा देने पर भी उसे नही ढाया । तब १६३१ ई० मे शाहजहाँ की फौज ने उस किले पर चढ़ाई की । पुर्तगालियो के दस हजार आदमी मारे गये, ४-५ हजार कैद हुए । उनके युरोपी शत्रु ओलन्देजो ने १६५८ ई० तक उनसे समूचा सिंहल और आशा अन्तरीप की बस्तियाँ भी छीन ली । शाहजहाँ के प्रशासन में अंग्रेजो ने पूरबी तट पर भी बसना शुरू किया; मसुलीपट्टम्, बालेश्वर और हुगली में कोठियाँ बनाईं, और चन्द्रगिरि के राजा से मद्रास का स्थान पा कर पहलेपहल वहाँ किलाबन्दी की । इसी समय पुर्तगाल स्पेन से स्वतन्त्र हो गया (१६४० ई०), और तब से पुर्तगाल की नीति इंग्लैड से मैत्री रखने की रही । हुगली के अंग्रेजों

ने बंगाल के सूबेदार शाहज़ादा शुजा से विशेष सुविधाएँ प्राप्त कीं। ३०००) वार्षिक एकमुश्त दे कर उन्हें बंगाल में बिना चुंगी व्यापार करने की इजाजत मिल गई। वे शोरा, खाँड और रेशम बिहार बंगाल से बाहर ले जाते, और बदले में सोना चाँदी लाते, जो तब दक्खिनी अमरीका की खानों से आ रहा था। फ्रांसीसियों ने भी १६४२ ई० में सूरत में अपनी कोठी खोली।

उधर इन राष्ट्रों के लुटेरों ने भारतीय समुद्र में डकैती भी शुरू की। जहाँगीर के समय में भी ऐसी एक घटना हुई थी। सन् १६३५ और १६३८ ई० में इंग्लैंड के राजा से परवाना पाये हुए जहाजों ने भी वैसी हरकतें कीं। मुगल सरकार ने इसपर सूरत के सब अंग्रेज़ों को कैद कर लिया और भारी हरजाना ले कर छोड़ा।

§१७ **शिवाजी का उदय**—जिस साल जहाँगीर की मृत्यु हुई, उसी साल शाहजी भोंसले की पत्नी जीजाबाई ने जुन्नर के पास शिवनेरी गढ़ में शिवाजी को जन्म दिया था। शाहजी जब बीजापुर की सेना में कर्णाटक और तमिळ नाड में लड़ता था, तब शिवाजी उसकी पूने की जागीर में जीजाबाई से ऊँचे आदर्शों की शिक्षा पाता था। उस शिक्षा से उसके हृदय में स्वतन्त्र होने की अदम्य प्रेरणा जाग उठी।

उन्नीस बरस की आयु से वह अपनी उमंगों को चरितार्थ करने लगा। तीन गढ़ उसकी जागीर में थे। १६४६ ई० से उसने दूसरे बीजापुरी गढ़ छीन कर कोंकण जीतना शुरू किया। सह्याद्रि की मावलों (दूनों) और कोंकण को उसने अपना आधार बनाया। बीजापुर दरबार ने इसपर शाहजी को कैद कर लिया (१६४८ ई०) और एक बरस बाद इस शर्त पर छोड़ा कि शिवाजी शान्त रहे। यों छः बरस तक शिवाजी को चुप बैठना पड़ा। इस बीच उसने अपने राज्य और सेना का संगठन किया।

§१८ **तमिळनाड के लिए संघर्ष**—इधर इसी बीच मुगल साम्राज्य के दक्खिन के सूबे अव्यवस्थित थे तथा बीजापुर और गोलकुंडा का दक्खिन फैलना जारी था। गोलकुंडा वाले कृष्णा से उत्तरी पैण्णार तक जीत कर चन्द्रगिरि राज्य की उत्तरी सीमा पर जा पहुँचे। बीजापुर वाले कावेरी की

दून से तमिळ तट में उतरे, और जिंजी का गढ़ जीत कर दक्खिन से चन्द्रगिरि को दबाने लगे। तब चन्द्रगिरि के राजा ने शाहजहाँ से शरण माँगी।

मीर जुमला नामक एक ईरानी सौदागर इस समय अब्दुल्ला कुतुबशाह का मन्त्री बन गया था। तमिळ मैदान को जीतने में उसने विशेष भाग लिया, और अब वहाँ खुदमुख्तार बन बैठा। बीजापुर और गोलकुंडा ने मिल कर उसपर चढ़ाई करना तय किया, तब मीर जुमला ने भी शाहजहाँ से शरण माँगी।

इस प्रकार तमिळनाड के उपजाऊ मैदान के लिए तीन शक्तियों में स्पर्धा पैदा हुई। बाद में तट की तीन नई शक्तियाँ—शिवाजी, फ्रांसीसी और अंग्रेज—भी इस छीना-झपटी में कूद पड़ीं। इस मैदान की बेहद सी गरम की वह पेचीदा कशमकश भारतीय इतिहास में भाग्यनिर्णायक हुई। वह तमिळ मैदान पहले विजयनगर या चन्द्रगिरि के कर्णाटकी राजाओं के अधीन था, इस कारण इस युग में बाहर के लोग इसे कर्णाटक कहने लगे थे। अंग्रेजी की अन्धी नकल से वह गलती आज भी जारी है।

औरंगजेब कन्दहार से सीधा दक्खिन के शासन पर भेजा गया (१६५३ ई०)। उसके आने से दक्खिन के मुगल सूबों में फिर सुव्यवस्था आ गई। उसने गोलकुंडा पर एकदम चढ़ाई कर उसे घेर लिया और भारी हरजाना ले कर सन्धि की (१६५६ ई०)। मीर जुमला शाहजहाँ की सेवा में आया, और उसकी तमिळ जागीर भी मुगल साम्राज्य में शामिल हुई। उसी बरस मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु होने से बीजापुर में गोलमाल होने लगा। औरंगजेब जब गोलकुंडा घेरे हुए था, तभी शिवाजी ने रत्नागिरि तक सब कोंकण जीत लिया था। औरंगजेब ने अब बीजापुर पर चढ़ाई की (१६५७ ई०) तो शिवाजी ने बीजापुर से सहयोग कर मुगलों के जुन्नर गढ़ में एकाएक घुस कर उसे लूट लिया, और अहमदनगर तक धावे मारते हुए उत्तरी रास्ते बन्द कर दिये। औरंगजेब बीजापुर तक न बढ़ सका और सीमान्त के गढ़—बिदर, कल्याण, परेन्दा—ले कर उसे बीजापुर से सन्धि करनी पड़ी। उस सन्धि से उत्तरी कोंकण, जो शिवाजी की जागीर था, मुगल साम्राज्य के हिस्से में आ गया। इसी समय शाहजहाँ की बीमारी की खबर आई और औरंगजेब उत्तर

को बटा। मीर जुमला को दक्खिन में छोड़ते हुए उसने उसे सावधान किया कि "एक कुत्ते का बच्चा मौके की ताक में है।"

§१९. मुगल साम्राज्य का वैभव—शाहजहाँ के प्रशासन में मुगल साम्राज्य का वैभव खूब चमका। उसे देख कर विदेशी चकित होते थे। शाहजहाँ ने तख्त ताऊस (मोर चौकी) और ताजमहल बनवाये। ताजमहल में उसने अपनी सुन्दरी और साध्वी स्त्री मुमताजमहल की स्मृति अमर की। उसकी अन्य रचनाओं में आगरे के किले की मोती मसजिद तथा आधुनिक दिल्ली शहर उर्फ शाहजहाँबाद प्रसिद्ध हैं।

शाहजहाँ तख्त ताऊस पर—समकालीन चित्र
[रौथ्शील्ड संग्रह, पेरिस, पर्सी ब्राउन के ग्रन्थ से]

मुगल साम्राज्य के जागीरदार और मनसबदार भी बड़े समृद्ध थे। मनसबदारों को बड़ी तनखाहें मिलती थीं, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनकी सब सम्पत्ति का वारिस बादशाह होता था, इससे वे अपनी कमाई खुले हाथों खर्चते थे। बादशाह और उनकी ऐयाशी के कारण प्रजा का धन फिर प्रजा के पास लौट आता था। देश के कारीगर उससे लाभ उठाते थे। बादशाह और प्रान्तीय सूबेदारों के अनेक कारखाने देश के कारीगरों का बड़ा सहारा थे। बादशाह को प्रजा के सुख दुःख का ध्यान रहता था। १६३०-३१ ई० में गुजरात, खानदेश और

दक्खिन में दुर्भिक्ष पड़ा। शाहजहाँ ने उस समय उन प्रान्तों के लगान में बहुत सी छूट कर दी, और अनाज मुफ्त बँटवाया।

देश की कारीगरी का उल्लेख करते समय यह याद रखना चाहिए कि युरोपी राष्ट्रों से भारतीय अब ज्ञानक्षेत्र मे पिछड़ रहे थे। जहाजरानी और सामुद्रिक व्यापार मे, भूमंडल के ज्ञान में तथा तोपें बनाने और चलाने की कला मे युरोपी राष्ट्र अब भारतीयों से आगे बढ़ गये थे। गोवा में पुर्तगाली पुस्तकें छापते थे, पर भारतीयों को कभी उनसे वह शिल्प सीखने की न सूझी।
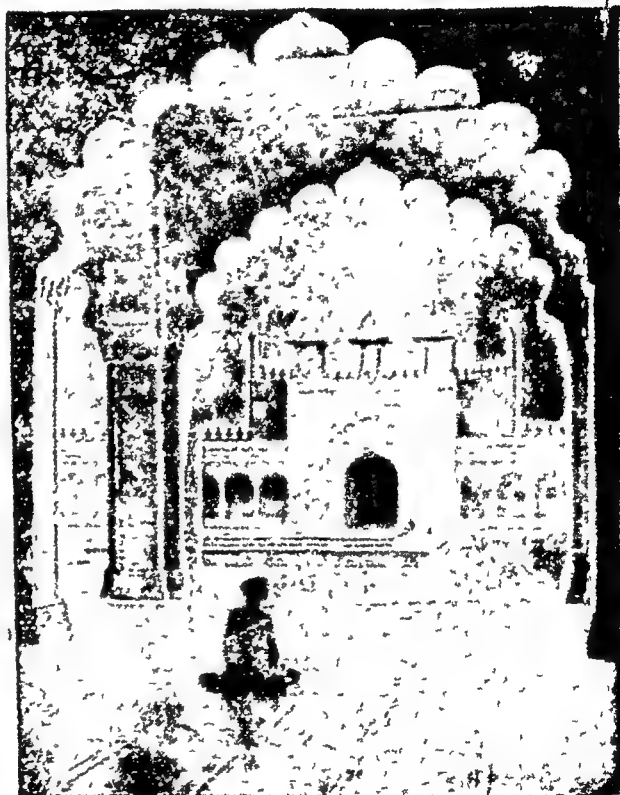
मोती मस्जिद, आगरा

पच्छिम से कुछ नये व्यसन और रोग भी इस युग में आये। सन् १६०५ मे बीजापुर में पहलेपहल पुर्तगाली तमाकू लाये, जिसको युरोप वालों ने अमरीका में पाया था। १६१६ ई० मे पंजाब मे और १६१८-१६ ई० मे दिल्ली-आगरा मे महामारी या प्लेग पच्छिम से आई।

स्थापत्य, चित्रकला, संगीत और साहित्य के लिए यह समृद्धि का युग था; पर इस युग के देशी भाषाओं के साहित्य में काव्य के अतिरिक्त कुछ न

था, और काव्य भी भक्तों के उद्‌गारों के सिवाय सब कृत्रिम शैली के थे। हिन्दी कवि बिहारी (१६०२–६३ ई०) की 'सतसई' में मुगल वैभव युग की ऐयाशी का पूरा प्रतिबिम्ब है। इस युग के भक्त कवियों में श्रेष्ठ थे महाराष्ट्र के तुकाराम (१६०७–४९ ई०) और समर्थ रामदास (१६०८–८१ ई०)। तुकाराम के कीर्तनों में शिवाजी शामिल होते थे और रामदास तो शिवाजी के गुरु ही थे।

पर भक्तों सन्तों की वाणियाँ हृदय को भले ही उठातीं, ज्ञानचक्षुओं को न जगाती थीं।

भारतीय राज्यों के इतिहास सब फारसी में ही लिखे जाते रहे। असम में बुरंजी नामक इतिहास ग्रंथ [८ ८६७] अब असमिया में लिखे जाने लगे। उनकी शैली जानदार है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ अकबर की चलाई शासनपद्धति का संक्षेप में विवरण दीजिए।

२ मनसबदार का क्या अर्थ है? मनसबदार पद्धति क्या थी?

३ अकबर के साम्राज्य में कौन कौन से सूबे थे? शाहजहाँ के समय तक और कौन से सूबे बने?

४ अकबर की धर्मसम्बन्धी नीति क्या थी? उसे उसने कैसे चरितार्थ किया?

५ अकबर और उसके वंशजों की अपने साम्राज्य को किन दिशाओं में बढ़ाने की आकांक्षा बनी रही? १५७६ ई० से १६०७ ई० तक मुगल साम्राज्य की सीमाओं में घट बढ़ किस प्रकार हुई?

६ चित्रकला की राजपूत कलम और मुगल कलम का विकास कब कैसे हुआ? उनकी विशेषताएँ क्या हैं?

७ अकबर के समय तक के सिक्ख गुरुओं का चरित संक्षेप में लिखिए।

८ जहाँगीर और शाहजहाँ के प्रशासन में दक्खिन और पूरबी बंगाल की जनता को क्या चिन्ता रहती थी? क्यों?

९ निम्नलिखित का परिचय दीजिए (१) तुलसीदास (२) रहीम (३) राणा अमरसिंह (४) चम्पतराय (५) मलिक अम्बर (६) जुझारसिंह (७) गुरु हरगोविन्द (८) शाइस्ता खाँ (९) पनहपुर मीरशी (१०) चन्द्रगिरि (११) मीर जुमला (१२) समर्थ रामदास।

१० निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए (१) जहाँगीर शाहजहाँ के प्रशासन में

कन्दहार की लड़ाइयाँ (२) भारतीय समुद्र में पच्छिम युरोपी लोगों का प्रभाव स्थापित होना (३) शिवाजी का पहला (१६५७ ई० तक का) चरित।

११. सत्रहवीं शताब्दी उत्तरार्ध में तमिळनाड पर आधिपत्य जमाने के लिए किन किन शक्तियों में किस प्रकार संघर्ष चला, स्पष्ट कीजिए।

१२. अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की बनवाई कौन कौन सी इमारतें प्रसिद्ध हैं? वे कहाँ कहाँ हैं?

१३. मुगल युग में भारतीय युरोपियों से किन बातों में पिछड़ गये थे?

अध्याय ५

शिवाजी और औरंगज़ेब

(१६५८–१७०७ ई०)

§१. गद्दी के लिए भ्रातृ-युद्ध—शाहजहाँ की बीमारी की खबर से चारों तरफ अव्यवस्था फैलने लगी। असम के अहोम राजा जयध्वज ने कामरूप और गौहाटी ले लिये। कोचबिहार के राजा प्राणनारायण ने उत्तरी बंगाल पर धावे किये। बंगाल में शुजा ने मुकुट धारण कर बनारस पर चढ़ाई की। गुजरात में उसके भाई मुराद ने भी अपने को बादशाह घोषित कर सूरत नगर को लूट लिया। औरंगज़ेब ने नर्मदा के घाट ऐसे रोके कि उसकी तैयारी की कोई खबर उस पार न जा सके। बादशाह ने सब राजकाज दाराशिकोह को सौंप रक्खा था। दारा ने शुजा के खिलाफ अपने बेटे सुलेमान शिकोह को भेजा और मुराद के खिलाफ मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह को। औरंगज़ेब मुराद से मिल गया। जसवन्त के पास दोनों से लड़ने की शक्ति न थी। उज्जैन के पास धर्मट में वह हार कर भागा। सुलेमान शुजा को हरा कर मुंगेर भगा चुका था कि उसने धर्मट की हार की खबर सुनी। उसके बाद औरंगज़ेब ने चम्बल पार कर सामूगढ़ पर दारा को हराया और आगरे को घेर कर किले से जमना का रास्ता काट दिया। उसके बूढ़े बाप को पानी के लिए गिड़गिड़ाते हुए किला सौंप कर कैदी बनना पड़ा। दारा दिल्ली से पंजाब की ओर भागा। मथुरा के पास औरंगज़ेब ने मुराद को शराब पिला कर कैद कर लिया और दिल्ली में अपने को

बादशाह घोषित किया। दारा का पीछा कर उसने उसे पंजाब में सिन्ध और सिन्ध से कच्छ भगा दिया।

शुजा अपने पिता को कैद से छुड़ाने को बढ़ा। दारा ने अपने मित्रों को उसकी मदद करने को लिखा। पंजाब से औरंगजेब शुजा के मुकाबले को लौटा। इलाहाबाद के पच्छिम खजवा पर दोनों का सामना हुआ। शुजा हार कर बंगाल की तरफ भागा। औरंगजेब ने मीर जुमला को उसका पीछा करने भेजा। सुलेमान ने श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा के यहाँ शरण ली। उधर गुजरात में औरंगजेब के ससुर शाहनवाज़ ने दारा को शरण दी और जसवन्तसिंह ने उसे अजमेर आने को कहा। खजवा से औरंगजेब उधर लौटा। अजमेर के पास दोराई में लड़ाई हुई, वहाँ शाहनवाज मारा गया और दारा फिर हार कर भागा। राजा जयसिंह कछवाहा उसके पीछे भेजा गया। दरा बोलान के पास एक पठान ने उसे पकड़ा दिया। सुलेमान की खातिर गढ़वाल के राजा पृथ्वीसिंह पर चढ़ाई की गई, पर बेकार। तब जयसिंह ने पृथ्वीसिंह के बेटे को रिश्वत दे कर सुलेमान को पकड़वा लिया। शुजा को अराकान भागना पड़ा, जहाँ उसका अन्त हुआ। औरंगजेब का बेटा मुहम्मद सुलतान शुजा से मिल गया था, वह पकड़ा गया और अपने बाप की कैद में मरा। दारा, मुराद और सुलेमान भी मारे गये।

§२. चम्पतराय का बलिदान—औरंगजेब आलमगीर नाम से गद्दी पर बैठा और उसने उन प्रान्तों में शान्ति स्थापित की जिनमें भ्रातृ युद्ध के समय अव्यवस्था मच गई थी। मथुरा के पास जाट किसानों के नेता नन्दराम ने लगान देना बन्द कर दिया था। उसे अब दबना पड़ा। चम्पतराय बुन्देले [६,८ § १२] ने मालवे के रास्ते रोक लिये थे। उसके खिलाफ दतिया और ओड़छे के बुन्देले राजा भेजे गये। वीरता से लड़ते हुए और अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए चम्पत और उसकी स्त्री कालीकुमारी ने मालवे में प्राण दिये (१६-६१ ई०)। उनका बेटा छत्रसाल बच कर भाग गया। सिक्ख गुरु हरगोविन्द [६,४ §§ ७,१३] के पोते हरराय ने दारा की मदद की थी। उसे सफाई देने को बुलाया गया, उसने अपने बेटे रामराय को भेजा। रामराय ने दरबार में चापलूसी से काम लिया, तब हरराय ने अपनी मृत्यु से पहले छोटे बेटे श्री

उत्तराधिकारी बनाया। वह बालक दिल्ली बुलाया गया और वहीं चेचक की बीमारी से मर गया। तब हरराय का चचा अर्थात् हरगोविन्द का दूसरा बेटा तेगबहादुर सिक्खों का गुरु बना (१६६४ ई०)।

§३. शिवाजी के खिलाफ अफजलखाँ और शाइस्ताखाँ—औरंगजेब के लौट जाने पर बीजापुर सरकार ने विद्रोही शिवाजी को कुचलने का निश्चय किया। सेनापति अफजलखाँ बड़ी सेना के साथ पच्छिम भेजा गया। उसने शिवाजी को अपने पास हाजिर होने का हुक्म भेजा। शिवाजी के मन्त्रियों ने अधीनता मानने की सलाह दी, पर जीजाबाई ने वह सलाह न मानी। प्रतापगढ के पहाडी गढ़ के नीचे दोनो का मिलना तय हुआ। अफजल ने शिवाजी को छाती लगाते हुए उसका गला घोट कर छुरी मारनी चाही, तब शिवाजी ने अपने हाथ और आस्तीन मे छिपाये बघनखे और बिछुए से उसका पेट फाड दिया (१६५९ ई०)। छिपे हुए मावलियो ने बीजापुरी फौज को तहसनहस कर दिया तब शिवाजी ने दक्खिन कोंकण, कोल्हापुर जिला और पन्हाला गढ जीत लिये।

मीर जुमला के बाद शाइस्ताखाँ दक्खिन मे मुगल सूबेदार बन कर आया था। अब उसने और बीजापुर के शाह ने मिल कर शिवाजी को दबाना चाहा। शाइस्ताखाँ और उसके साथी राजा जसवन्तसिंह ने, जो अब औरंगजेब की सेवा मे आ गया था, उत्तरी कोंकण के अतिरिक्त शिवाजी की असल जागीर पूना भी दखल कर ली। उधर बीजापुर के अली आदिलशाह ने दक्खिनी इलाके छीन कर शिवाजी को पन्हाला गढ़ मे घेरना चाहा (१६६० ई०)। शिवाजी पन्हाले से निकल गया। उसके विश्वस्त साथी बाजी प्रभु ने अपनी जान दे कर बीजापुरी फौज का रास्ता तब तक छेके रक्खा जब तक शिवाजी विशालगढ़ न पहुँच गया। बीजापुरी पन्हाले से आगे न बढ़ सके। अब शिवाजी के पास वही थोडा सा इलाका बचा रह गया।

शाइस्ताखाँ और जसवन्तसिह ने पूने में छावनी डाल दी। शिवाजी एक रात अपने चुने साथियों के साथ उस छावनी मे जा घुसा, और ठीक शाइस्ताखाँ के मकान मे पहुँच कर मारकाट शुरू कर दी (१६६३ ई०)। शाइस्ताखाँ खिडकी से निकल भागा। इससे पहले कि उसकी सेना सँभले,

शिवाजी भी निकल गया। शाइस्ताखाँ तब पूने में जसवन्तसिंह को छोड़ स्वयं औरंगाबाद चला गया। उधर बीजापुर के सुल्तान से शिवाजी ने दक्खिनी कोंकण (रत्नागिरि) और उत्तरी कनाडा तट जीत लिये।

उत्तरी कोंकण को वापिस ले कर दूसरे बरस शिवाजी ने सूरत पर चढ़ाई की (जनवरी १६६४ ई०)। वह मुगल साम्राज्य का सबसे समृद्ध बन्दरगाह था। मुगल फौज गढ़ में जा छिपी। चार दिन में एक करोड़ रुपया ले कर शिवाजी लौट गया। फिर बरसात में उसने अहमदनगर को और उसी जाड़े में कर्णाटक के समृद्ध नगर हुबली और कारवार को लूटा।

§४ **चटगाँव का विजय**—शुजा को अराकान भगाने के बाद मीर जुमला ने कोचबिहार, कामरूप और असम पर चढ़ाइयाँ कीं। वहाँ से लौट कर उसकी मृत्यु हुई (१६६३ ई०)। तब शाइस्ताखाँ दक्खन से बंगाल भेजा गया। बंगाल में उसने खूब नेकनामी कमाई। चटगाँव को जीत कर १६६६ ई० में उसने पुर्तगाली और अराकानी चाचियों† का अड्डा तोड़ दिया। सारे बंगाल में इस पर खुशियाँ मनाई गईं। आगे २१ बरस तक शाइस्ताखाँ के न्यायपूर्ण शासन में बंगाल ने मुगल साम्राज्य का पूरा वैभव देखा।

§५ **शिवाजी का कैद होना और भागना**—दक्खिन में शाइस्ताखाँ और जसवन्तसिंह की जगह शाहज़ादा मुअज्जम और जयसिंह कछवाहा को भेजा गया। जयसिंह ने शिवाजी के सब शत्रुओं को मिलाया और पूने के चारों तरफ उसके इलाके उजाड़ना शुरू किया। फिर उसने पुरन्दर गढ़ पर चढ़ाई की। शिवाजी कनाटा से लौट आया, पर पुरन्दर का घेरा न उठा सका। तब उसने जयसिंह से भेंट कर सन्धि की बात शुरू की, और अपने ३५ गढ़ों में से २३ दे कर दक्खिन में बादशाह की सेवा करना स्वीकार किया।

अब शिवाजी और जयसिंह मिल कर बीजापुर की चढ़ाई पर चले, पर वहाँ से वे विफल लौटे। जयसिंह की सलाह से शिवाजी ने आगरे जाना तय

† राजस्थानी, गुजराती और मराठी में जलदस्यु के लिए चाचिया शब्द चलता है। वह शब्द मुगल मराठा युगों का ही है। सुराष्ट्र समुद्रतट के चाँच नामक गाँव के लोग इस धंधे में अगुआ थे, यह शब्द उस गाँव के नाम का स्थिर स्मारक है।

किया। इस बहाने उसे मुगल बादशाहत तथा उत्तर भारत की हालत अपनी आँखों देखने का मौका मिला। अपने पीछे शासन-सूत्र जीजाबाई को सौंप कर वह आगरा गया। जयसिंह के बेटे रामसिंह ने उसे औरंगज़ेब के दरबार में पेश किया (१२-५-१६६६ ई०); लेकिन दरबारियों का सा बरताव शिवाजी से न बन पड़ा। औरंगज़ेब ने उसे कैद में डाल दिया। तीन महीने पीछे मिठाई के टोकरे में अपने को छिपा कर वह उस कैद से निकल भागा, और भेस बदल कर मथुरा, प्रयाग, बुन्देलखंड, गोंडवाने के रास्ते महाराष्ट्र पहुँचा। दूसरे वर्ष दक्खिन से लौटते हुए बुरहानपुर में जयसिंह मर गया।

शिवाजी का भागना मुगल-वैभव-युग के अन्त का सूचक था। पानीपत के दूसरे युद्ध के बाद से सौ बरस तक मुगल बादशाहत का गौरव बढ़ता ही गया था। मुगलों के शस्त्र तब अजेय समझे जाते थे और उनके साम्राज्य की सीमाएँ अनुल्लघनीय। शिवाजी ने उस धाक को तोड़ दिया। औरंगज़ेब जैसे पराक्रमी प्रतिभाशाली और दृढ व्यक्ति के गद्दी पर बैठने पर यह आशा की गई थी कि साम्राज्य का वैभव और बढ़ेगा। बेशक साम्राज्य की सीमाएँ औरंगजेब ने बहुत बढ़ा दीं; पर उसकी आँखों के सामने ही वह साम्राज्य खोदा और दिवालिया हो गया। विरोधी शक्तियाँ अब इतनी जाग उठीं कि औरंगज़ेब भी उनसे लड़ते-लड़ते चूर हो गया। एक अंश तक उसकी अपनी धर्मान्धता उन विरोधी शक्तियों को जगाने और भड़काने का कारण थी; किन्तु चम्पतराय और शिवाजी की स्वाधीनता चेष्टा औरंगजेब के राज्य से पहले प्रकट हो चुकी थी।

सन् १६६६ ई० में ही कैदी शाहजहाँ का देहान्त हुआ।

§ ६. **असम का स्वतन्त्र होना**—मुगल साम्राज्य के इतिहास का यह नया पन्ना खुलते ही सीमान्तों की अशान्ति और औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति प्रकट हुई। शिवाजी दक्खिन पहुँच कर अपनी तैयारी में लग गया, इससे दक्खिनी सीमान्त पर फिलहाल शान्ति रही। किन्तु अहोम राजा चक्रध्वज ने धुबड़ी तक समूचा असम वापिस ले लिया (१६६७ ई०)। राजा रामसिंह कछवाहा को उसके खिलाफ भेजा गया, पर वह आठ बरस के निरन्तर युद्धों के बाद अन्त में विफल लौटा। तब साम्राज्य के अधिकारियों ने रिश्वत दे कर गौहाटी

पर कब्जा कर लिया, पर राजा गदाधरसिंह ने उसे वापिस ले लिया और साथ ही कामरूप भी छीन लिया (१६८१ ई०)। यह स्थिति अन्त तक बनी रही।

§७ **पठानों का संघर्ष**—उत्तर पच्छिमी सीमान्त पर भी वैसी ही दशा रही। पुराने ज़माने में काबुल नदी के काँठे में और उसके उत्तर पठान लोग न रहते थे। बाबर ने जब स्वात और बाजौर जीता, तभी यूसुफजई पठान पहले पहल कन्दहार से स्वात के काँठे में आये थे। अब वे सिन्ध पार कर पखली (आजकल का हज़ारा ज़िला) दखल करने लगे। इस प्रयास के सिलसिले में उन्होंने काबुल, पेशावर और अटक में लूट मचा दी। तीन बरस की चढ़ाइयों के बाद मुगल सरकार उन्हें सिंध के पूरब से निकाल सकी। उसी प्रसंग में राजा जसवन्तसिंह को जमरूद का थानेदार नियत किया गया।

किन्तु पठानों और मुगलों में बाबर के समय से अस्थिवैर चला आता था। सन् १६७२ में अकमल के नेतृत्व में अफरीदी उठ खड़े हुए। उन्होंने मीर जुमला के बेटे से, जो काबुल की सूबेदारी पर जाता था, दो करोड़ रुपया लूट लिया, और खैबर का रास्ता बन्द कर दिया। खटक पठानों का नेता खुशालखाँ नामक कवि था। वह भी अकमल से जा मिला और कन्दहार से अटक तक सब पठान विद्रोह में शामिल हो गये। शाहजादा अकबर को कोहाट के रास्ते काबुल भेजा गया। आगरखाँ तुर्क और जसवन्तसिंह को कई घमासान लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। औरंगज़ेब खुद हसन-अब्दाल (रावलपिंडी और अटक के बीच) तक आया। पाँच बरस बाद पठानों को घूँस देकर खैबर का रास्ता खुलवाया गया। तब अमीरखाँ को काबुल की सूबेदारी दी गई। वह पठान कबीलों को एक दूसरे के खिलाफ उभाड़ने में सिद्धहस्त था। इस नीति से उसने २१ बरस तक शासन किया (१६७७–९८ ई०)। इस बीच अकमल मर गया और खुशाल को उसके बेटे ही ने पकड़वा दिया (१६९० ई०)।

§८. **शिवाजी की शासन-व्यवस्था**—शिवाजी ने तीन बरस मुगलों से शान्ति रक्खी। शाहजादा मुअज्जम अब दक्खिन का सूबेदार था। शिवाजी ने अपने बेटे सम्भाजी और सेनापति प्रतापराव गूजर को उसके दरबार में रक्खा। साथ ही इस बीच उसने एक बार पुर्तगालियों से गोआ छीनने की विफल चेष्टा

की तथा अपने 'स्वराज्य' का सुप्रबन्ध करने पर ध्यान लगाया। उसकी शासन-व्यवस्था में निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(१) लगान वसूलने वाले ठेकेदारों को हटा कर उसने कृषकों के साथ राज्य का सीधा सम्बन्ध कर दिया।

(२) सैनिक और मुल्की कर्मचारियों का कार्य बहुत अंश तक अलग-अलग कर दिया और कर की वसूली तथा देश-प्रबन्ध मुल्की कर्मचारियों को सौंप दिया।

(३) कर्मचारियों को जागीर के बजाय नकद वेतन देने का प्रबन्ध किया।

(४) 'अष्ट प्रधान' नाम की मन्त्रियों की समिति स्थापित की। इसका काम राजा को परामर्श देना था तथा इसका मुखिया पेशवा कहलाता था।

(५) सुनियन्त्रित सेना और गढ़ों की सुशृंखल व्यवस्था की।

(६) अपने शासन में उदार धार्मिक नीति से काम लिया। लूट के समय भी शिवाजी की सेना को सख्त ताकीद रहती कि बच्चों और स्त्रियों को कभी न पकड़ें, और मन्दिरों-मस्जिदों तथा धर्मपुस्तकों को कभी न बिगाड़ें।

(७) अपने "स्वराज्य" के बाहर "मुगलाई" के इलाकों से "चौथ" और "सरदेशमुखी" तलब की। चौथ अर्थात् मालगुजारी की चौथाई माँगने में उसकी यह युक्ति होती थी कि "तुम्हारे बादशाह ने मुझे अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए सेना रखने को बाधित किया है। उसका खर्चा तुम्हे देना होगा।" चौथ न देने वालों को लूटा जाता, देने वालों की रक्षा का भार लिया जाता। वह एक किस्म का खिराज था। ज़मीन के जमींदार, देशमुख या वतनदार का मालगुजारी मे १०% हिस्सा सरदेशमुखी कहलाता था। यह लगान वसूल करने की जिम्मेदारी के बदले में था। इस प्रकार शिवाजी का दावा था कि वह सारे दक्खिन की मालगुजारी स्वयं वसूल करेगा और उसकी रक्षा का जिम्मा अपने ऊपर लेगा।

§९. **औरंगज़ेब की धर्मान्ध नीति**—औरंगजेब अपनी धर्मान्धता का प्रमाण पहले ही दे चुका था। प्रसिद्ध सन्त मियाँमीर के शिष्य शाह-मुहम्मद को बुला कर उसने डाँटा, तथा सरमद नामक सूफी को फाँसी दी थी। अब उसकी

नीति उग्र रूप में प्रकट हुई। बिक्री के माल पर २½% चुंगी लगती थी। हिन्दुओं पर उसने वह चुंगी ५% कर दी। बाद में मुसलमानों के माल पर से महसूल बिलकुल उठा दिया। मुसलमान बनने वालों को सरकारी ओहदे, तरक्की, कैद से माफी आदि देना शुरू किया। दिल्ली और अन्य बड़े शहरों में संगीत बन्द कर दिया। शहरों में होली, दिवाली और मुहर्रम के जुलूस निकालना तथा पीरों का कब्रें पूजना रोका। 'काफिरों' के मन्दिर और विद्यालय ढाने का हुकम निकाला (१६६९ ई०)। उसके बाद सब हिन्दू पेशकारों और दीवानों को सरकारी सेवा से निकालने का हुक्म दिया, पर पीछे आधे पद हिन्दुओं को देने पड़े। मूर्तिपूजा रोकने का फरमान निकाला। अन्त में औरंगज़ेब ने गैर मुस्लिमों पर फिर से जज़िया लगा दिया (१६७९ ई०)। जज़िया एक किस्म का मुंड-कर था, इसलिए गरीबों पर उसका बोझ अधिक पड़ता था।

§१० गोकुला जाट, सतनामी और तेगबहादुर—औरंगज़ेब के हुकम से मथुरा में मन्दिर तोड़े गये तो गोकुला जाट के नेतृत्व में वहाँ के किसान बिगड़ उठे (१६६९ ई०)। मथुरा का फौजदार उनसे लड़ता हुआ मारा गया। दोआब और आगरा तक बलवा फैल गया, जिसे दबाने के लिए बादशाह को स्वयं जाना पड़ा। अन्त में तोपों के मुकाबले में जाट हारे, गोकुला कैद हुआ और मारा गया।

उज्जैन में जो शाही कर्मचारी मन्दिर तोड़ने गये उन्हें प्रजा ने मार डाला। ओरछा में उन्हें बुंदेलों ने मार भगाया। दिल्ली के पश्चिम नारनौल जिला सतनामी पन्थ का केन्द्र था। वह पन्थ राजपूत, बनिये इत्यादि सभी जातों के मिश्रण से बना था। १६७२ ई० में सतनामी विद्रोह कर दिल्ली के पास तक आ पहुँचे। अन्त में तोपों और बड़ी सेना के मुकाबले में वे परास्त हुए।

तेगबहादुर सिक्खों का गुरु बना [ऊपर § २] तो औरंगज़ेब ने उसे दिल्ली बुलाया। वहाँ से राजा रामसिंह उसे आसाम ले गया। आसाम से लौट कर गुरु ने पंजाब में फिर छेड़छाड़ शुरू कर दी और कश्मीर के हिन्दुओं को उत्साहित किया कि मुसलमान न बनें। बादशाह ने तेगबहादुर को दिल्ली बुला कर मुसलमान होने या सिर देने को कहा। तेगबहादुर ने सिर दे दिया (१६७५

ई०)। दिल्ली का सीसगंज गुरुद्वारा उस घटना का स्मारक है।

§११. **शिवाजी का अभिषेक**—सन् १६७० से शिवाजी ने फिर युद्ध छेड़ दिया। पुरन्दर की सन्धि के अनुसार जो गढ़ उसने मुगलों को दे दिये थे, उन्हे एक-एक करके फिर छीन लिया। उसने सूरत को फिर लूटा और बरार तथा बागलान (नासिक और सूरत के बीच के पहाड़ी प्रदेश) पर चढ़ाई कर साल्हेर का गढ़ ले लिया (१६७० ई०)। सन् १६७१ के अन्त में बहादुरखाँ को दक्खिन का सूबेदार बना कर भेजा गया। दिलेरखाँ पठान उसका सहायक था। उन्हे कोई स्थायी सफलता न हुई। शिवाजी ने बागलान का दूसरा बड़ा गढ़ मुल्हेर भी ले लिया। उसके बाद उसने सूरत के ठीक दक्खिन का कोंकण का प्रदेश—कोलवन—और नासिक जिले का कुछ अंश भी दखल कर लिया (१६७२ ई०)। फिर बराड और तेलगाना तक कई धावे मारे। सन् १६७२ से १६७७ तक शिवाजी मुगल इलाकों पर बराबर धावे मारता रहा। बहादुरखाँ और दिलेरखाँ ने उसे कोई नया इलाका दखल न करने दिया, पर वे उसके धावे न रोक पाते। १६७२ ई० मे बीजापुर का अली आदिलशाह मर गया। तब शिवाजी ने दक्खिन बढ़ कर पन्हाला और सातारा ले लिये, तथा हुबली और कनाडा पर भी धावे मारे।

सन् १६७४ के शुरू मे दिलेरखाँ ने कोंकण पर तथा बीजापुरियो ने पन्हाला और सातारा पर एक साथ चढ़ाई की, पर बेकार। तभी दिलेरखाँ को अपने पठान भाइयो से लड़ने के लिए उत्तरी सीमान्त पर बुला लिया गया। तब शिवाजी ने रायगढ़ मे अपना अभिषेक कराया और वह शिव छत्रपति कहलाने लगा। अब वह विद्रोही सरदार न रह कर स्वतन्त्र राजा हो गया। अभिषेक के एक महीना पीछे उसने बहादुरखाँ की छावनी पर धावा बोल कर एक करोड़ रुपया लूट लिया। दूसरे बरस बहादुरखाँ को सन्धि की बातों मे बहका कर उसने बीजापुर से फोंडा (गोवा के पास) का गढ़, कोल्हापुर और कनाडा का तट (कारवार, अंकोला) छीन लिये। तभी बेदनूर की रानी ने शिवाजी की अधीनता मान वार्षिक कर देना शुरू किया।

§१२. **शिवाजी की तमिळ चढ़ाई**— तांजोर में शाहजी की जागीर

शिवाजी

(मीर मुहम्मद कृत १६८६ ई० से पहले का चित्र जो अब पैरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में है)

उसके छोटे बेटे व्यंकोजी को मिली थी। उनका मन्त्री रघुनाथ नारायण हनुमन्ते था। हनुमन्ते व्यंकोजी को छोड कर शिवाजी की तरफ चला आया, और रस्ते में गोलकुंडा के वजीर मदन्न परिडत से मिला। उनकी योजना के अनुसार कुतुबशाह ने मुगलो के बजाय शिवाजी को एक लाख होन (सोने का सिक्का) वार्षिक कर देना कबूल कर के गोलकुंडा की रक्षा का भार उसे सौंप दिया (१६७६ ई०)। शिवाजी का दूत प्रह्लाद नीराजी गोलकुंडा में रक्खा गया।

बहादुरखाँ अब बीजापुर को दबाने में लगा था, और शिवाजी को भी दूर जाना था, इसलिए दोनों ने समझौता कर लिया। महाराष्ट्र का राज्य-कार्य पेशवा मोरो पिंगले को सौंप कर सन् १६७७ के शुरू में शिवाजी ने रायगढ़ से सीधे हैदराबाद की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उसका खूब स्वागत किया गया। कुतुबशाह ने पाँच हजार सेना, तोपखाना तथा चढ़ाई का तमाम खर्चा दे कर उसे विदाई दी। कृष्णा और पैएणार नदियाँ पार कर शिवाजी ने तमिळनाड पर चढ़ाई की और वेल्लूर से तांजोर की सीमा तक सब देश जीत कर महाराष्ट्र के अपने नये ढंग पर उसका फौजी और माली बन्दोबस्त किया। हनुमन्ते के हाथ मे उसका प्रबन्ध छोड कर वह कर्णाटक पठार में घुसा। वहाँ कोल्हार, बेंगलूर, शिरा, बेल्लारि, कोप्पल और धारवाड को अधीन करके और उसका एक प्रान्त बना कर वह पन्हाला लौट आया (१६७८ ई०)। उसके बाद उसने पन्हाला से तुंगभद्रा तक बीजापुर का इलाका जीत कर अपने कन्नड और तमिळ इलाकों को महाराष्ट्र से जोड दिया।

इस बीच दिलेरखाँ दक्खिन लौट आया था। शिवाजी को मदद देने के दंड मे उसने कुतुबशाह से एक करोड़ रुपया तलब किया, जिससे दोनों मे युद्ध छिडा। वजीर मदन्न के भाई गोलकुंडा के सेनापति अक्कन्न ने दिलेरखाँ को हरा दिया। शिवाजी ने अपने नये जीते प्रदेशो मे से कुतुबशाह को कुछ भी न दिया। इससे कुतुबशाह ने उससे लडना चाहा, पर वह कुछ न कर सका।

शिवाजी का बडा बेटा सम्भाजी दुश्चरित्र था। उसके एक अपराध के कारण उसे पन्हाला में नजरबन्द किया गया था; वह भाग कर दिलेरखाँ से जा मिला। किन्तु कुछ समय बाद वह ऊब कर वापिस आ गया।

औरंगजेब ने जब जजिया लगाया तब शिवाजी ने एक पत्र मे उसका प्रतिवाद करते हुए उसे लिखा कि ऐसी असहिष्णुता की नीति से अकबर का स्थापित किया साम्राज्य नष्ट कर लोगे। दूसरे वर्ष कुछ दिन की बीमारी के बाद एकाएक शिवाजी का देहान्त हो गया (५.४ १६८० ई०)।

सेनापति अकबर—समकालीन ओलन्देज चित्र [भा० पु० वि०]

§१३ छत्रसाल का उदय—अपने माता पिता की मृत्यु पर छत्रसाल बुन्देला [ऊपर § २] केवल ग्यारह बरस का था। अपने देश मे तब उसे कोई शरण न देता था। उस दशा मे उसने राजा जयसिंह की सेवा स्वीकार कर ली थी। जयसिंह के साथ वह पुरन्दर और बीजापुर गया, और फिर दिलेर-खाँ के साथ गोंडवाने की चढाई में। वहाँ से वह एक दिन अपनी स्त्री कमला-वती के साथ खिसक गया और महाराष्ट्र पहुँच कर शिवाजी से मिला (१६७१

ने झूठी चिट्ठी वाली वही चाल चली जिससे शेरशाह मेड़ताँ पर जीता था। गलती मालूम होने पर दुर्गादास ने अकबर को शरण दी। 'राजस्थान, मे उसे सुरक्षित न जान उसने मुगल सूबों को चीरते हुए उसे सम्भाजी के दरबार में रायगढ़ पहुँचा दिया।

इधर कुछ मास बाद राजसिंह के बेटे जयसिंह ने बादशाह से हार मान ली। जजिये की माँग के बदले में उसने तीन परगने सौंप दिये। मारवाड़ बादशाह के कब्जे में रहा।

§ १५. **सम्भाजी**—शिवाजी की मृत्यु के बाद अष्ट प्रधान ने रायगढ़ में उसके छोटे बेटे राजाराम को राजा घोषित किया था; पर सम्भाजी ने तुरन्त रायगढ़ पर चढ़ाई कर उसे कैद में डाल दिया और उसके साथियों का दमन किया। उसने अष्ट प्रधान की परवा न की, और प्रयाग के एक कनौजिया पंडे 'कविकुलेश' को, जो मन्त्र-तन्त्र और कृत्या-अभिचार में कुशल था, अपना सलाहकार बनाया। महाराष्ट्र के लोग इस कारण उससे और भी घृणा करने लगे।

मराठों और अकबर का मेल खतरनाक था, इसलिए राजस्थान से औरंगजेब सीधा दक्खिन गया। उसने महाराष्ट्र के खिलाफ बीजापुर से भी मदद लेनी चाही। परन्तु बीजापुर और गोलकुंडा के शाह अब यह अनुभव करने लगे थे कि उनके राज्य यदि मुगलों के हाथ जाने से बचे हैं तो केवल मराठा राज्य की बदौलत; इसलिए उन्होंने मराठों को मदद दी।

औरंगजेब दक्खिन पहुँचा तो सम्भाजी जंजीरा द्वीप के सिद्दियों से लड़ने मे लगा था। एक मुगल सेना ने उत्तरी कोंकण से घुस कर कल्याण का गढ़ ले लिया (१६८२ ई०)। तब सम्भाजी जंजीरा छोड़ उधर मुड़ा और मुगलों को कोंकण से निकाल कर उसने कल्याण को घेर लिया। मुगल इलाकों पर धावे मारने ही मे उसने अपनी रक्षा का उपाय माना, और औरंगाबाद, बिदर, नान्देड़ और चाँदा तक धावे मारे। १६८३ ई० में मुगलों को कल्याण भी छोड़ना पड़ा। तब सम्भाजी ने कोंकण का विजय पूरा करने को अकबर के साथ गोवा पर चढ़ाई की।

किन्तु मुगलों ने युद्ध बन्द न किया था। शाहआलम एक फौज ले कर दक्खिनी कोंकण में घुसा, तब गोवा सम्भाजी के हाथ जाते जाते बच गया (१६८४ ई०)। उत्तरी कोंकण में भी एक मुगल फौज घुस आई। इन दोनों फौजों को कोंकण से निकाल कर सम्भाजी विलास में डूब गया।

§१६ बीजापुर गोलकुंडा का पतन—औरंगजेब ने अब यह समझ लिया था कि महाराष्ट्र का दमन करने के लिए बीजापुर और गोलकुंडा को लेना आवश्यक है। इसलिए बीजापुर पर चढ़ाई कर घेरा डाला। मदन्न पंडित ने बीजापुर को मदद भेजी, तब शाहआलम को गोलकुंडा पर भेजा गया। उसने हैदराबाद ले लिया। कुतुबशाह गोलकुंडा के किले में भाग गया। उससे भारी हरजाना, बहुत सा इलाका तथा मदन्न और अक्कन्न को पदच्युत करने का वचन ले कर शाहआलम वापस आया। डेढ़ बरस तक घिरे रहने के बाद इधर बीजापुर औरंगजेब के हाथ आ गया (१६८६ ई०)। अकबर तब कोंकण से ईरान चला गया।

बीजापुर के बाद गोलकुंडा की बारी आई। कुतुबशाह ने शाहआलम से मिन्नत की कि पिछले बरस की सन्धि के अनुसार उसे बचा रहने दिया जाय। पर उसकी कौन सुनता था? औरंगजेब ने इस बातचीत के अपराध में ही अपने बेटे को उसके बेटों सहित कैद में डाल दिया! मीर शहाबुद्दीन नामक एक तूरानी सेनापति ने मेवाड़ युद्ध में बहादुरी दिखाई थी और फिर मराठा युद्ध में फीरोजजंग पद पाया था। शाहआलम की अनुपस्थिति में उसे गोलकुंडा का घेरा सौंपा गया। अन्तिम समय कुतुबशाह बड़ी वीरता से लड़ा। एक बरस के घोर युद्ध के बाद गोलकुंडा का पतन हुआ (१६८७ ई०)।

बीजापुर गोलकुंडा का बाँध टूटते ही शाही सेना तब तमिलनाड पर उमड़ पड़ी और मसुलीपट्टम से पलार नदी तक सब इलाका ले लिया, पर वहाँ उसे जिंजी के मराठों ने रोक दिया। उधर एक मुगल सेना फिर कोंकण भेजी गई। बदहोश सम्भाजी संगमेश्वर पर पकड़ा गया (जनवरी १६८९ ई०) और औरंगजेब ने उसे अन्धा करवा कर मरवा डाला।

§१७ महाराष्ट्र का स्वतन्त्रता-युद्ध—महाराष्ट्र के अष्ट प्रधानों ने

राजाराम को कैद से छुड़ा कर रायगढ़ में सभा की। सम्भाजी के बेटे शिवाजी २य (उर्फ शाहू) का अभिषेक किया और उसकी माँ येसूबाई के प्रस्ताव पर राजाराम को स्थानापन्न राजा बनाया। वजीर आसादखाँ के बेटे इत्तिकादखाँ ने तब रायगढ़ को आ घेरा। राजाराम वहाँ से निकल कर चला गया और रायगढ़ जीता गया। येसूबाई शाहू के साथ कैद हुई। इत्तिकाद को इसके उपहार में जुल्फिकारखाँ का पद मिला। येसूबाई के लिखने से राजाराम ने राजमुकुट धारण किया। उसने मराठा शासन का पुनःसंघटन किया, स्वयं अपने मन्त्रियों के साथ, जिनमें प्रह्लाद नीराजी मुख्य था, जिंजी जाना तय किया, और महाराष्ट्र की रक्षा रामचन्द्र नीलकंठ बावडेकर को सौंप कर उसे 'हकूमत-पनाह' (अधिनायक) पद के साथ राजा के सब अधिकार दे दिये। रामचन्द्र का सचिव शंकर मल्हार था। पन्हाले से राजाराम की मंडली अनेक जगह बाल-बाल बचती हुई जिंजी जा निकली (१६६० ई०)।

दक्खिनी छोर के सिवाय समूचा भारत अब औरंगज़ेब के पैरों तले था; पर तेईस बरस पहले जैसे शिवाजी उसके हाथ से निकल गया था, वैसे ही इस बार राजाराम निकल गया।

राजाराम जिंजी पहुँचा तो उसके पास न कोई भूमि थी, न कोष, न सेना। तो भी उसने अपने शासन का पुनः संघटन किया। उसने पेशवा से भी ऊँचा 'प्रतिनिधि' नाम का नया पद बनाया और उसपर प्रह्लाद नीराजी को नियुक्त किया। जागीर न देने की शिवाजी वाली नीति अब उसने छोड दी और मराठा सरदारों को मुगल इलाकों में जागीरें बाँट कर उन्हें जीतने की इजाजत और प्रेरणा दी। सेनापति सन्ताजी घोरपडे और धनाजी जादव राजाराम को जिंजी पहुँचा कर महाराष्ट्र लौट आये। जुल्फिकारखाँ ने जिंजी का घेरा डाल दिया।

महाराष्ट्र में केवल तीन गढ़ मराठों के पास बचे थे; पर रामचन्द्र बावडेकर ने तीन और वापस ले लिये। उधर जिंजी का घेरा और कसा गया। वजीर आसादखाँ और शाहजादा कामबख्श भी वहाँ भेजे गये। रामचन्द्र ने महाराष्ट्र से ३० हजार सेना खड़ी कर सन्ताजी और धनाजी को उधर भेजा। सन्ताजी ने तमिळनाड में पहुँचते ही दो मुगल फौजदार पकड लिये और कडप से कांची तक

अर्थात् उत्तरी पेण्णार से पालार तक सब मुगल थाने उठा कर अपने फौजदार बैठा दिये। जुल्फिकार को अपनी फौज समेटनी पड़ी और सन्ताजी ने उलटा उसे घेर लिया (१६६२ ई०)। औरंगजेब ने यह देख कर घिरी फौज को कुमुक भेजी। सन्ताजी का स्वभाव उग्र था, अत राजाराम ने मुख्य सेनापति का पद धनाजी को दिया (१६६३ ई०)। इससे सन्ताजी रूठ कर महाराष्ट्र चला आया। इधर उसने हैदराबाद तक धावे मारे। उधर जुल्फिकार ने जिंजी को फिर घेर लिया।

दक्खिन के सब सूबों मे मराठों ने अपने सूबेदार, कामविशदार और राहदार नियत कर दिये। कामविशदार मालगुजारी की चौथाइ वसूल करते और राहदार चुंगी लेते, सूबेदार उनकी मदद के लिए ७ हजार सेना के साथ रहते थे। हर सूबे के दुर्गम स्थानों में उन्होंने गढ़ियाँ बना लीं, जहाँ वे कठिनाई के समय शरण ले सकें। अनेक गाँवों के मुखियों ने मराठों से मिल कर मुगलों को कर देना बन्द कर दिया, अनेक मुगल हाकिम खुद चौथ देने लगे। स्थानीय प्रजा दुहरे हाकिमों से तग आ कर सभी जगह मुगलों के खिलाफ लड़ने को तैयार हो गइ। उत्तर भारत पर भी दक्खिन का प्रभाव पड़ने लगा। औरंगजेब ने जल्दी दिल्ली लौटने का इरादा छोड भीमा के किनारे ब्रह्मपुरी पर अपनी स्थायी छावनी डाल दी, और शाहआलम को कैद से छोड उत्तर पच्छिमी सीमान्त की रक्षा के लिए भेजा (१६६५ ई०)।

इसी वर्ष के अन्त में सन्ताजी बीजापुर जिले में और धनाजी भीमा पर प्रकट हुआ, कइ मराठे सरदार बराड और खानदेश पर टूट पड़े। धनाजी ने भीमा से जिंजी पहुँच कर वहाँ का घेरा फिर उठवा दिया। सन्ताजी ने चितलदुर्ग जिले में एक फौजदार को बड़ी सफाई से पकड़ कर और दूसरे को मार कर उनकी फौजों को कुचल दिया। मुगल फौज मे उसकी ऐसी धाक जम गई कि जब कोई घोड़ा पानी पीता अटकता तो उससे कहते—'क्यों? तुझे पानी मे सन्ताजी दिखाई देता है?' दक्खिन में युद्ध की प्रगति का अब यह रूप हो गया कि घटनाओं का आरम्भ सन्ताजी की ओर से होता, और मुगल नेताओं को अपनी रक्षा का ढग सोचना पड़ता। ब्रह्मपुरी के पड़ोस तक उसके दल धावे मारते थे।

अपने इन विजयों के बाद सन्ताजी जिंजी गया और उसने फिर सेनापति

बनना चाहा। प्रह्लाद नीराजी अब मर चुका था। धनाजी और सन्ताजी आपस में लड़ पड़े। राजाराम ने धनाजी का पक्ष लिया। धनाजी हार कर भागा; राजाराम को सन्ताजी ने पकड़ लिया और फिर उसके आगे हाथ जोड़ कर कहा, "मैं अब भी तुम्हारा सेवक हूं!" दोनों नेताओं के महाराष्ट्र पहुँचने पर फिर घरेलू लड़ाई हुई। सन्ताजी के कठोर नियन्त्रण से तंग आ कर उसकी सेना धनाजी से जा मिली; तब उसे अकेले भागना पड़ा। पीछे उसके एक शत्रु ने बदला चुकाने के लिए उसे मार डाला (१६९७ ई०)

उसी साल जिंजी का घेरा फिर कसा गया। तब सात साल पीछे अन्त को जुल्फिकार उसे ले पाया (१६९८ ई०)। इस विजय के उपहार में उसे नसरतजंग का पद मिला। किन्तु राजाराम फिर निकल गया और महाराष्ट्र में विशालगढ़ जा पहुँचा।

औरंगजेब ने अब महाराष्ट्र के गढ़ ले कर मराठों के दमन का अन्तिम यत्न आरम्भ किया। ब्रह्मपुरी में अपना बुंगा (आधार) रख कर वह मराठा गढ़ों को जीतने खुद रवाना हुआ (१६९९ ई०)। राजाराम ने बदले में बराड, खानदेश और नर्मदा पार चढ़ाई करना तय किया। देवगढ़ के गोंड राजा ने मुसलमान हो जाने के बावजूद एक तरफ राजाराम और दूसरी तरफ छत्रसाल को गोंडवाना आने का निमन्त्रण दिया। पर राजाराम ने गोदावरी काँठे और बराड पर चढ़ाई की। उसे कुछ सफलता न मिली, तो भी मराठों ने इस बार नर्मदा पार तक जा कर मांडू और धामुनी को लूट लिया। उस धावे की थकान से बीमार हो राजाराम ने प्राण त्याग दिये (१७०० ई०)।

उसकी मृत्यु से स्वतन्त्रता-युद्ध में तिल भर फरक न पड़ा। उसकी स्त्री ताराबाई अपने नन्हे बच्चे को गद्दी पर बिठा कर राजकाज चलाने लगी। उसने अपने पति से बढ़ कर पराक्रम और दृढ़ता दिखाई। औरंगजेब एक गढ़ को जा घेरता तो गढ़ की मराठी सेना अरसे तक उसका मुकाबला करती; बाहर से मराठों के धावे शाही शिविर पर होते रहते; अन्त में गढ़ की सेना बादशाह से भरपूर इनाम पा कर इज्जत और सामान के साथ निकल जाने का वचन ले गढ़ छोड़ देती। तब बादशाह दूसरे गढ़ पर चढ़ाई करता और मराठे दिये हुए गढ़ को

फिर ले लेने की ताक में रहते। यों साढ़े पाँच बरस में बारह गढ़ बादशाह ने जीते, किन्तु महाराष्ट्र के मुख्य गढ़ ले लेने पर भी वह मराठों की शक्ति न तोड़ सका। सन् १७०२ में नसरतजंग को मराठा धावे मारने वालों के पीछे ६ हजार मील दौड़ना पड़ा। दूसरे बरस निमाजी शिन्दे नामक स्वतन्त्र मराठा सरदार ने बराड़ के फौजदार को कैद कर लिया। फिर छत्रसाल का निमन्त्रण पा उसने नर्मदा पार की और दोनों ने मिल कर सिरोंज और मन्दसोर तक धावा मारा। नर्मदा के सब घाट रुक गये और बादशाह के पास हिन्दुस्तान की डाक का आना बन्द हो गया। फीरोजजंग तब निमाजी के पीछे भेजा गया और निमाजी हार कर बुन्देलखंड के रास्ते वापस भाग आया।

औरंगजेब [भा० क० भ०, काशी]

अन्त में औरंगजेब ने दिल्ली लौटने का निश्चय किया (१७०५ ई०)। लौटती फौज को घेरे हुए विजयोन्मत्त मराठा दल भी साथ साथ बढ़ने लगा। कभी कभी तो वे बादशाह की पालकी तक आ पहुँचते। बड़ी मुश्किलों से वह सवारी अहमदनगर पहुँची, जहाँ अठासी बरस बूढ़े औरंगजेब को अपनी 'यात्रा का अन्त' दिखाई पड़ने लगा। धनाजी ने तभी गुजरात पर चढ़ाई कर नर्मदा पर तीन मुगल फौजों को बारी-बारी से तहस नहस किया, और दक्खिनी गुजरात से चौथ वसूल की। दूसरे बरस अहमदनगर में अल्लाह का नाम जपते हुए औरंगजेब ने

अन्तिम साँस ली (२०-२-१७०७ ई०)।

चौबीस बरस के दक्खिन के युद्ध में उसकी फौज के एक लाख आदमी और तीन लाख जानवर सालाना मरते रहे। साम्राज्य की वार्षिक आमदनी शुरू में ही कम होने लगी थी, इसलिए दिल्ली और आगरे के पुराने खजाने खाली हो गये। अन्त में बंगाल की मालगुजारी का एकमात्र सहारा रह गया और फौज की तनखाह तीन-तीन साल पिछड़ने लगी। जब अन्त में वह दिल्ली लौटने लगा तब दक्खिन के खेतों और मैदानों में मीलों तक सफेद हड्डियों के ढेर बरफ की तरह छाये दिखाई देते थे।

§१८. **बुन्देलखंड, ब्रज, मारवाड़, पंजाब में संघर्ष**—महाराष्ट्र का संघर्ष दूसरे प्रान्तों में भी प्रतिरोध की भावनाएँ जगाता रहा। शिवाजी की मृत्यु के समय तक छत्रसाल भी बुन्देलखंड के एक अंश में उसकी तरह 'स्वराज्य' स्थापित कर चुका और उस आधार से 'मुगलाई' (मुगल साम्राज्य) पर धावे मार कर चौथ वसूलता था।

ब्रजभूमि में भरतपुर के पास सिनसिनी और सोगर गाँव के मुखिया राजाराम और रामचेहरा ने जाट किसानों की सेना संघटित की और गढ़ियाँ बना कर सिर उठाया (१६८५ ई०)। आगरे का सूबेदार उन्हें न दबा सका तब औरंगजेब ने दक्खिन से बहादुरखाँ को, जिसे अब खानेजहाँ का पद मिल चुका था, उनके दमन के लिए भेजा। आगरे में खानेजहाँ के रहते हुए राजाराम ने सिकन्दरा पर चढ़ाई की, और अकबर के मकबरे से सारा कीमती माल लूट लिया (१६८८ ई०)। उसी वर्ष रेवाड़ी के पास मेवात के फौजदार से लड़ता हुआ वह मारा गया। तब उसका भाई भज्जा और भज्जा का बेटा चूड़ामन ब्रज के नेता हुए। औरंगजेब ने रामसिंह कछवाहा के बेटे बिशनसिंह को, जिसने सतनामियों को दबाने में भी भाग लिया था, मथुरा का फौजदार बनाया। उसने सिनसिनी और सोगर की गढ़ियाँ छीन लीं (१६९०-९१ ई०)। तब चूड़ामन भाग कर जंगलों में जा छिपा।

मारवाड़ में सन् १६८१ से १६८६ ई० तक शाही सेना और राठोडों की कशमकश चलती रही। जैसलमेर के भाटी भी राठोडों से मिल गये (१६८२

ई०)। "सूर्यास्त के बाद मुगल राज केवल थानों में रह जाता, और मैदान पर अजित का राज होता था।" अकबर को महाराष्ट्र से विदा कर दुर्गादास मारवाड़ लौटा (१६८७ ई०) तो संघर्ष में तेजी आई। उसने मारवाड़ के सब मुगल थाने उठा दिये, और रोहतक रेवाड़ी पर धावा कर दिल्ली के करीब तक जा निकला। वहाँ उस समय राजाराम जाट भी बलवा किये हुए था। फिर उसने अजमेर पर धावा बोला (१६६० ई०)। मुगल सरकार ने राठोरों को राहदारी की चौथ देना स्वीकार कर कुछ शान्त किया और सन्धि की बातें शुरू की जो बरसों चलती रहीं। अजित भी ढीला पड़ गया। दुर्गादास ने तब स्वयं ब्रह्मपुरी पहुँच कर सन्धि की (१६९८ ई०)। उसे पाटन की फौजदारी दी गई, मगर अजित को राज नहीं मिला। शाहजादा आजम के सूबेदार बनने पर दुर्गादास को दरबार में बुला धोखे से मारने का यत्न किया गया (१७०१ ई०), पर उसे इसका पता लग गया और वह भाग निकला। इसके बाद फिर विद्रोह छिड़ा, पर अजित के मतभेद से विफल हुआ। गुजरात की चढ़ाई में धनाजी जादव के जीतने की खबर मिलने पर मारवाड़ में भी फिर बलवा हुआ और औरंगजेब के मरते ही अजितसिंह ने जोधपुर ले लिया।

सन् १६८९ से १६९२ ई० तक मुगल साम्राज्य अपने चरम उत्कर्ष पर था। खुशालखाँ खटक, सम्भाजी और राजाराम जाट मारे जा चुके थे, छत्रसाल दबा हुआ था। महाराष्ट्र के ६ ७ गढ़ों और जिंजी के सिवाय समूचा भारत औरंगजेब के पैरों तले था। पर रामचन्द्र बावडेकर ने जब उस दशा में भी महाराष्ट्र से ३० हजार सेना खड़ी कर ली और सन्ताजी ने उस सेना से जिंजी पर शाही शक्ति तोड़ दी, तब १६९३ ई० से पासा पलट गया। सन्ताजी के विजयों की प्रतिध्वनि उत्तर भारत में भी हुई। बुन्देलखण्ड और ब्रज के लोग फिर उठ खड़े हुए। पंजाब में सिक्खों ने भी शिवाजी के ढंग पर संघर्ष छेड़ना चाहा। छत्रसाल ने धामुनी और कालंजर गढ़ ले लिये और भेलसा को लूटा। वह सारे मालवे पर भी धावे मारता था। बराड़ में निमाजी शिन्दे और गोंडवाने का राजा बख्तबुलन्द उसे सहयोग देते थे। ब्रज के नये बलवे को दबाने के लिए शाहआलम आगरे का सूबेदार बनाया गया (१६९५ ई०)। चूड़ामन तब फिर

जंगलों में भाग गया और नई गढ़ियाँ बनाता रहा। १७०४ ई० में उसने सिनसिनी फिर वापिस ले ली, पर १७०५ और १७०७ ई० में उस पर चढ़ाई कर शाही सेना ने हजारों जाटों का संहार किया। १७०५ ई० मे फीरोजजंग ने औरंगजेब से छत्रसाल की सन्धि करवा दी।

सिक्खों के गुरु तेगबहादुर के असम प्रवास [ऊपर § १०] के समय पटने मे उनका एक पुत्र जन्मा था जिसका नाम गोविन्द रक्खा गया था। अपने पिता के बलिदान के बाद तरुण गुरु गोविन्द ने जमना और सतलज के बीच शिवालक की दूनों में शरण ले वहाँ अपनी तैयारी की। पौराणिक इतिहास की वीर गाथाओ से वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने सिक्खों को सैनिक सम्प्रदाय बना दिया (१६९५ ई०) और प्रत्येक सिक्ख के लिए पाँच ककार—केश, कंघा, कृपाण, कड़ा और कच्छा—धारण करने तथा सिंह नाम रखने का नियम कर दिया; जात-पाँत का भेद भूल जाने को कहा और अपने पीछे 'ग्रन्थ' को ही गुरु मानने तथा 'खालसा' (सिक्ख जनता) पंचायत के 'गुरमत' के अनुसार चलने का आदेश दिया। इसके बाद उसने शिवाजी के रास्ते पर कदम रक्खा। उन्हीं पहाड़ो मे दो तीन गढ़ियाँ बना कर उसने पहाड़ी राजाओं को अपने साथ मिलाना चाहा, परन्तु शिवाजी का मावलियों पर जैसा प्रभाव था, गुरु गोविन्द-सिंह का इन पहाड़ियो पर वैसा कभी न हुआ। सिक्ख अनुयायी सब पंजाब के मैदान के रहने वाले थे। राजाओ ने पहले गुरु की उपेक्षा की, फिर दबाव से साथ मिल कर मुगलो को कर देना छोड़ दिया, और अन्त में मुगलों से हार कर वे गुरु के शत्रु बन गये। इसी समय शाहआलम ब्रज का विद्रोह दबा कर पंजाब को शान्त करने पहुँचा। गोविन्दसिंह बिलासपुर रियासत मे आनन्दपुर गढ़ मे घिर गया (१७०१ ई०) और अन्त में केवल ४५ साथी रह जाने पर वहाँ से निकल भागा। साथियों मे से केवल ५ ही बच कर निकल सके, जो भेस बना कर छिपे रहे। गोविन्दसिंह के दो लड़के फतहसिंह और जोरावरसिंह सरहिन्द के फौजदार वजीरखाँ के हाथ पड गये, जिसने उन्हें मरवा डाला।

§ १९. औरंगज़ेब के समय में फिरंगी व्यापारी और चांचिये — स्पेन से अलग होने के बाद पुर्तगाल ने [६,४§§३,१६] इंग्लैंड से मैत्री

लगी। १६६१ ई० में पुर्तगाल की एक राजकुमारी अंग्रेज राजा को ब्याही तो उसके दहेज में पुर्तगाल के 'भारतीय उत्तरी प्रान्त' [६,२६४] का मुम्बई द्वीप दिया गया। राजा ने वह द्वीप पीछे ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिया। कम्पनी अपना मुख्य दफ्तर सूरत से उठा कर मुम्बई ले आई। मुम्बई में अंग्रेजों का व्यापार केन्द्र बन जाने से सूरत की अवनति होने लगी। औरंगजेब के समय में फ्रांसीसियों ने भी पूरबी तट पर चन्द्रनगर और मसुलीपट्टम में तथा जिंजी नदी के मुहाने पर पुदुचेरी ('पांडिचेरी') में जमीनें खरीद कर अपनी बस्तियाँ बसा लीं (१६६६-७४ ई०)। अंग्रेजों ने हुगली नदी में भी अपने किराये के जहाज चलाना शुरू किया (१६७९ ई०)।

जब गैर मुस्लिमों पर जजिया लगाया गया, तब उसके बदले में फिरंगियों के व्यापार पर १% चुंगी बढ़ाना तय हुआ। अंग्रेज कम्पनी के लन्दन के मुखिया जोशिया चाइल्ड ने यह बढ़ी हुई चुंगी न देना, और साथ ही सूरत से सब कारबार हटा कर मुम्बई ले जाना तय किया। उसने समुद्र में भारतीय जहाज पकड़ कर बदला लेना चाहा। बंगाल के अंग्रेजों को भी मुगल सरकार से बहुत सी "शिकायतें" थीं। वहाँ शुजा ने अपनी सूबेदारी के समय में चुंगी के बदले जो एकमुश्त वार्षिक रकम तय कर दी थी, अंग्रेज चाहते थे कि बाद के सूबेदार भी वही रकम लेते जांय, यद्यपि उनका व्यापार १६६८ ई० से १६८० ई० तक ३४ हजार पाउंड के बजाय डेढ़ लाख पाउंड हो गया था, और यह भी सन्देह था कि वे अंग्रेजी झंडे के नीचे दूसरों का माल भी ले जाते हैं।

मुर्शिदाबाद के पास कासिम बाजार की कोठी के मुखिया जौब चारनाक को हिन्दुस्तानी व्यापारियों का रुपया देना था। अदालत ने उसके खिलाफ फैसला दिया तो वह हुगली भाग गया और वहाँ की कोठी का मुखिया बनाया गया। उसके नेतृत्व में अंग्रेजों ने हुगली शहर लूट लिया (१६८६ ई०) और वहाँ से अपना सब सामान समेट कर सुतनती गाँव (कलकत्ता) पर डेरा डाल दिया। फिर वहाँ से भी हट कर उन्होंने मेदिनीपुर का हिजली द्वीप दखल कर लिया और बालेश्वर का गढ़ छीन लिया। इन दोनों स्थानों से निकाले जाने पर वे मद्रास चले गये। उधर मुम्बई का मुखिया जौन चाइल्ड सूरत से सब कारबार

हटा कर मुम्बई ले जा चुका और भारतीय जहाजों को पकड़ने लगा था। इस पर औरंगजेब ने सब अंग्रेजों की गिरफ्तारी का हुक्म दिया। तेलंगाना में बहुत से अंग्रेज पकड़े गये। जंजीरा के सिद्दी ने मुम्बई द्वीप पर दखल कर वहाँ के अंग्रेजों को गढ़ में घेर लिया। तब जौन चाइल्ड ने सन्धि-भिक्षा की। औरंगजेब ने हरजाना ले कर अंग्रेजों को छोड़ दिया और कलकत्ते की जमीन खरीदने की इजाज़त भी दे दी। (१६९० ई०)।

सन्ताजी घोरपडे के विजयों (१६९२–९६ ई०) से जब सारे भारत में खलबली मची, तब बंगाल में दो विद्रोही सरदारों ने बर्दवान, हुगली, माल्दा और राजमहल दखल कर लिये। उस खलबली में बंगाल के फिरंगियों को अपनी बस्तियों—कलकत्ता, चन्द्रनगर, चिंचुड़ा ('चिंसुरा')—की किलाबन्दी करने की इजाजत मिल गई। मुगल साम्राज्य में ये फिरंगियों के पहले गढ़ थे।

भारतीय समुद्र में भी अब फिरंगी चांचियों का उत्पात क्रमशः बढ़ता गया। किसी जहाज में वे मुसाफिर या नौकर बन कर चढ़ जाते और राह में उसे छीन डकैती का साधन बना लेते। इस धन्धे में अंग्रेज मुख्य थे। १६८९ ई० में अमरीका से समुद्री डाकुओं ने आ कर हिन्द महासागर को छेंक लिया। कुछ मलबार तट पर घूमने लगे और कुछ ने ईरान की खाड़ी और लाल सागर के मुहाने को अपना केन्द्र बनाया। एक दल मोजाम्बिक जलग्रीवा में और एक सुमात्रा पर मँडराने लगा। ब्रिगमैन उर्फ एवोरी नामक अंग्रेज ने एक जहाज छीन कर उसका नाम फैंसी रक्खा और उससे कई मार्के की डकैतियाँ डालीं। सूरत के बन्दरगाह पर सब से बड़ा शाही जहाज गंजे-सवाई था, जो हर साल हाजियों को मक्का ले जाता था। दमन और मुम्बई के बीच फैंसी ने उसका रास्ता रोका, उसकी तोपों को बेदम करके उसे तीन दिन जी खोल लूटा, और मक्के से लौटती हुई सैयद * स्त्रियों पर मनमाना बलात्कार किया (१६९५ ई०)। गंजे-सवाई के सूरत पहुँचने पर सारे साम्राज्य में सनसनी मच गई।

---

* सैयद हज़रत मुहम्मद के वंशज माने जाते हैं। मुस्लिम समाज में उनका दर्जा सब से ऊँचा है।

नक्शा—२२
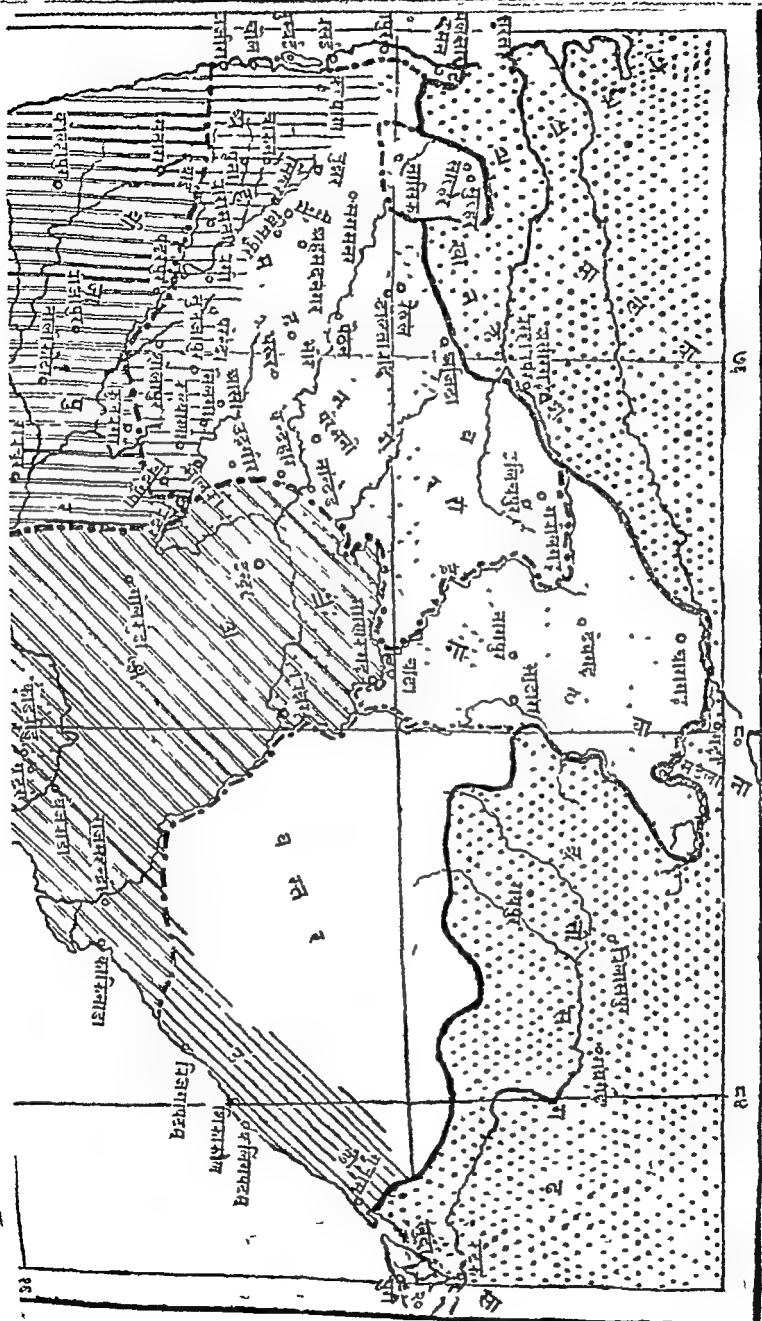
बादशाह के हुक्म से सब अंग्रेज क़ैद कर लिये गये। फिरंगियों का व्यापार बन्द कर उनके शस्त्र और झंडे छीन लिये गये, तोपों के चबूतरे ढा दिये गये, कोठियों की दीवारें नीची की गईं और गिरजों में घंटे बजना रोक दिया गया। औरंगजेब चाहता था कि फिरंगी व्यापारी मेहनताना ले कर अपने जंगी जहाजों द्वारा हाजी जहाजों की रखवाली करने का ज़िम्मा ले लें। सूरत की अंग्रेज कोठी के मुखिया ऐन्स्ले ने अन्त में बादशाह को वैसा इकरारनामा लिख दिया, तब सब क़ैदी छोड़ गये (१६९६ ई०)।

दूसरे वर्ष किड और शिवर्स नामक दो 'महान् बदमाश' हिंद महासागर में आये। किड अंग्रेज था, शिवर्स ओलन्देज। पहले बानिये पराये जहाज छीन लेते थे, पर किड जिस जहाज का कप्तान था, उसे अंग्रेज लॉर्डों (सरदारों) की एक कम्पनी (मंडली) ने इसी धंधे के लिए तैयार करके भेजा था। किड का आधार मदगास्कर में था। उसके बेड़े पर १२० तोपें थीं। इन डाकुओं की करतूतों के कारण फिरंगी व्यापारियों को फिर क़ैद होना पड़ा और आगे से ओलन्देजों ने लाल सागर की, फ्रांसीसियों ने ईरान की खाड़ी की तथा अंग्रेजों ने दक्खिनी समुद्र की रखवाली करने का ज़िम्मा लिया (१६९८ ई०)।

परन्तु इतने पर भी समुद्री डकैती नहीं रुकी और औरंगजेब को अन्त में व्यापारियों का इकरारनामा रद्द करना पड़ा, क्योंकि वह जानता था कि समुद्री डकैतों की पूरी रोक थाम करना व्यापारी मंडलियों के लिए असम्भव है। भारतीय समुद्र की रक्षा करना भारतवर्ष के सम्राट् का कर्त्तव्य था, न कि विदेशी व्यापारियों का। भारत-सम्राट् ने अपने को इस कर्त्तव्य पालन में अशक्त मान कर उन व्यापारियों को जंगी बेड़े रखने को उत्साहित किया। औरंगजेब ने यह अविचारित पूर्णता का काम किया। उन व्यापारियों के वंशजों ने भारत-सम्राट् के वंशजों को न केवल समुद्र की, प्रत्युत स्थल की भी रक्षा की चिन्ता से मुक्त कर दिया!

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. शाइस्ताखाँ के दलों का मावली युद्ध किस प्रकार हुआ?
२. शिवाजी ने किन स्थानों में फ़ौज का धावा की? चाकिन महाराष्ट्र में कैसे गया?

३. शाइस्ताखाँ ने अपनी बंगाल की सूबेदारी में कौन सा उल्लेखनीय काम किया ?

४. औरंगजेब के प्रशासन में भारत के उत्तरपूर्वी और उत्तरपच्छिमी सीमान्त की मुख्य घटनाओं का उल्लेख कीजिए।

५. शिवाजी की शासन व्यवस्था में क्या विशेषताएँ थीं ?

६. आगरे से लौटने के बाद शिवाजी के चरित का विवरण दीजिए। उसकी अन्तिम राज्यसीमाएँ क्या थीं ?

७. छत्रसाल का चरित संक्षेप से लिखिए। उसके पिता-माता के बारे में आप क्या जानते हैं ?

८. औरंगजेब को राजस्थान में क्यों युद्ध करना पड़ा ? कब और कैसे वह युद्ध हुआ ?

९. महाराष्ट्र के स्वतन्त्रता-युद्ध का वृत्तान्त लिखिए।

१०. गुरु तेगबहादुर और उसके पुत्र का चरित लिखिए।

११. औरंगज़ेब के समय में भारत के तीन तरफ के समुद्रों और समुद्रतट की क्या दशा थी ? उस सम्बन्ध में औरंगज़ेब की नीति क्या थी ? वह कहाँ तक ठीक या गलत थी ?

१२. निम्नलिखित का परिचय दीजिए (१) ताराबाई (२) अकमल (३) गोकला जाट (४) खुशालखाँ खटक (५) सतनामी (६) सम्भाजी (७) गजे-सवाई (८) राजाराम-जाट (९) किड (१०) रामचन्द्र बावडेकर (११) जसवन्तसिंह (१२) छत्रपति राजाराम।

अध्याय ६

मुगल साम्राज्य की घटती कला

(१७०७—१७२० ई०)

§ १. **बहादुरशाह**—औरंगजेब यह वसीअत छोड़ गया था कि उसके तीनों बेटों में साम्राज्य बँट जाय। शाहआलम ने भी इसपर अमल करना चाहा, क्योंकि वह चाहता था कि 'खुदा के बन्दों का खून न बहे।' परन्तु आज़म को कुछ सूबों के राज्य से सन्तोष न था। उसने कहा, उसे चाहिए "तख्त या तख्ता।" धौलपुर के पास जाजउ पर लड़ाई हुई, जिसमें आजम मारा गया और शाहआलम बहादुरशाह नाम से हिन्दुस्तान के तख्त पर बैठा।

दक्खिन से इस युद्ध के लिए चलते वक्त आजम ने शाहू को इस शर्त पर भाग जाने दिया था कि वह बादशाह की अधीनता माने, पर उसकी माँ

और भाई को नहीं छोड़ा था। बहादुरशाह ने वह स्थिति स्वीकार की। उसने गुरु गोविन्दसिंह को भी मना कर अपनी सेना में ले लिया और राजस्थान के रजवाड़ों को शान्त करने चला। उसने आमेर के नये राजा सवाई जयसिंह की रियासत ज़ब्त की, क्योंकि जयसिंह ने आज़म का साथ दिया था। अजित को महाराजा बनाया, तो भी जोधपुर में काजी और मुफ्ती फिर रक्खे। इसी समय बीजापुर में कामबख्श बादशाह बन बैठा। अजमेर से शाही सवारी सीधे दक्खिन की ओर बढ़ी और हैदराबाद के पास कामबख्श का अन्त हुआ।

मेवाड़, मारवाड़ और आमेर के राजा पीछे उदयपुर के पास उदयसागर पर मिले (१७१० ई०)। उन्होंने प्रण किया कि अब से वे मुगल सम्राट् की अधीनता न मानेंगे, शाही खानदान में अपनी बेटियाँ न देंगे और बादशाह यदि एक पर हमला करेगा तो दूसरे सब उसकी मदद करेंगे। इसके आधार पर उन्होंने आमेर और जोधपुर से शाही अधिकारियों को निकाल कर मेवात पर चढ़ाई की। बहादुरशाह दक्खिन से राजस्थान वापस आया तो राजाओं ने फिर उससे समझौता कर लिया। वहीं उसने छत्रसाल और चूड़ामन को भी बुला कर अपनी सेवा में लिया। यों औरंगज़ेब के समय के सभी हिन्दू विद्रोहियों से समझौता हो गया। परन्तु तभी पंजाब से सिक्खों के नये विद्रोह की खबरें आने लगीं।

§२. बन्दा बैरागी—शाही फौज के साथ हैदराबाद जाते हुए गोदावरी तट पर गोविन्दसिंह का देहान्त हुआ। मृत्यु से पहले एक पंजाबी बैरागी माधोदास से उसकी भेंट हुई। गोविन्दसिंह ने उसे अपने अधूरे काम को आगे चलाने के लिए अपनी तलवार दे कर पंजाब भेजा। माधोदास गुरु का 'बन्दा' (सेवक) बना। पूर्वी पंजाब पहुँच कर उसने एक फौज जमा की, सरहिन्द पर धावा बोला और फौजदार वजीरखाँ को मार गोविन्दसिंह के पुत्रों की हत्या का जी खोल कर बदला लिया। सरहिन्द से सिक्ख दक्खिन, पूरब और पच्छिम की ओर बढ़े। जमना और सतलज के बीच उनका पूरा दखल हो गया। तब सहारनपुर लूट कर वे दोआब में बढ़े और सतलज पार कर द्वाबे० में। उन्हें

* [illegible]

हुए इलाकों में वे सिक्ख फौजदार नियत करते गये। बहादुरशाह अजमेर से सीधा बन्दा के दमन के लिए बढ़ा। उसके आने पर सिक्खो ने सरमौर के पहाड़ों मे शरण ली, जहाँ वे लोहगढ़ नामक गढ़ में घिर गये। गढ़ जीता गया, पर बन्दा भेस बना कर निकल गया।

उसी समय लाहौर में बहादुरशाह चल बसा (२७-२-१७१२ ई०) और उसके चार बेटो मे वहीं परस्पर लड़ाई हुई। जेठे की जीत हुई और वह जहाँदारशाह नाम से गद्दी पर बैठा। बन्दा ने तब साधौरा (अम्बाला के पू०, नाहन की तराई में) और लोहगढ़ फिर ले लिये।

§ ३. मराठों का गृह-युद्ध—शाहू के छूट आने पर ताराबाई ने कहा, वह सम्भाजी का बेटा नहीं, औरंगजेब का पाला हुआ नकली शाहू है! किन्तु ताराबाई का अपना बेटा भी पगला था और महाराष्ट्र को एक राजा की जरूरत थी। धनाजी जादव का एक विश्वस्त कर्मचारी बालाजी विश्वनाथ भट्ट था। उसने धनाजी को शाहू की असलियत की तसल्ली करा दी तो धनाजी ने शाहू का पक्ष लिया। सातारा का गढ़ शाहू के हाथ आ गया। इन घटनाओं से महाराष्ट्र में घरेलू युद्ध शुरू हुआ। धनाजी १७१० ई० मे मर गया, तो भी बालाजी ने धीरे-धीरे शाहू का पक्ष दृढ किया। अन्त में उसने ताराबाई की सौत रजसबाई से ताराबाई को कैद करा दिया (१७१२ ई०) और रजसबाई के बेटे सम्भाजी को कोल्हापुर में राजा बना रहने दिया। शाहू ने बालाजी को अपना पेशवा बनाया (१७१३ ई०)।

घरेलू युद्ध के कारण महाराष्ट्र मे राजा की शक्ति खंडित होने तथा मुगल बादशाहत की कमजोरी से लाभ उठा कर मराठे जागीरदार या सरंजामदार शक्तिशाली होते गये। बराड में कान्होजी भोसले और दक्खिनी गुजरात में धनाजी के कर्मचारी खंडेराव दाभाडे ने पैर जमा लिये। धनाजी के बाद खंडेराव शाहू का सेनापति नियत हुआ। कान्होजी आंग्रे ने कोंकण और समुद्र में अपनी

दोआब समझा जाता है, वैसे ही पंजाब में केवल 'द्वाबा' कहने से सतलज-ब्यासा के बीच के द्वाबे का बोध होता है।

शक्ति बना ली थी। वह शाहू का सरखेल अर्थात् जलसेनापति नियुक्त हुआ।
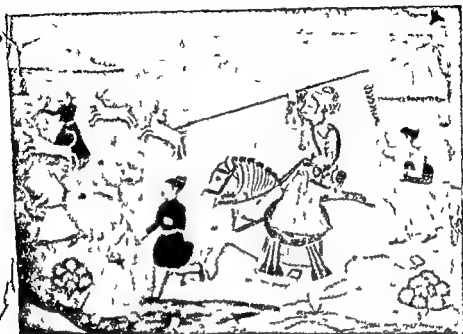
छत्रपति शाहू, शिकार खेलते हुए—अपनी कलम का चित्र। इसकी कलम राजपूत कलम का एक रूपान्तर है। [भारत इतिहास-संशोधक मंडल, पूना]

§८ फर्रुखसियर—जहाँदारशाह का भतीजा फर्रुखसियर पटने में था। बिहार और इलाहाबाद के सूबेदार अब्दुल्ला और हुसैनअली दो सैयद भाई थे। उनकी मदद से फर्रुखसियर ने आगरे के पास सामूगढ़ में जहाँदारशाह को हरा दिया (१०-१-१७१३ ई०), जो पकड़ा और मारा गया। उसका वज़ीर ज़ुल्फिकारखाँ भी मारा गया।

फर्रुखसियर ने अब्दुल्ला को अपना वज़ीर और हुसैनअली को मीर बख्शी बनाया। उनकी प्रेरणा से उसने पहला फरमान जज़िया हटाने का निकाला। औरंगज़ेब के पिछले समय से हिन्दुस्तानी मुसलमानों और "मुगलों" की स्पर्धा चली आती थी। सैयद बन्धु हिन्दुस्तानी मुसलमान थे, वे हिन्दुओं के होली आदि त्योहारों में भाग लेते थे। 'मुगलों' में ईरानी और तूरानी (तुर्क)

सम्मिलित थे। जुल्फिकार की हत्या से ईरानी दल टूट गया। तूरानियों के अब दो मुख्य नेता थे—एक फीरोजजंग का बेटा गाजिउद्दीन फीरोजजंग (२अ), जो बाद में निजामुल्मुल्क बना और जिसे हम सुविधा के लिए अभी से निजाम कहेंगे, तथा दूसरा निजाम का चचा मुहम्मद अमीनखाँ। मुहम्मद अमीन अब दूसरा बख्शी बनाया गया और दक्खिन की सूबेदारी निजाम को दी गई। फर्रुखसियर कृतघ्न और कमजोर था। उसने सैयदों से छुटकारा पाना चाहा; पर उसमें स्वयं दृढता न होने से तूरानी दल ने भी उसे सहयोग न दिया।

§५. फर्रुखसियर के समय में राजस्थान पंजाब और ब्रज— बहादुरशाह के मरते ही अजितसिंह ने शाही हाकिमों को निकाल कर अजमेर ले लिया था। हुसेन-अली ने उसपर चढ़ाई की। अजित ने बिना लड़े ही सन्धि कर ली, अपने बेटे अभयसिंह को मुगल दरबार में भेजा और अपनी बेटी फर्रुखसियर को ब्याह दी (१७१४ ई०)।

लाहौर और जम्मू का शासन मुहम्मद-अमीन के सम्बन्धी अब्दुस्समद और उसके बेटे जकरिया को सौंप कर उन्हें बन्दा के खिलाफ भेजा गया। साधौरा और लोहगढ़ उन्होंने ले लिये, लेकिन बन्दा फिर भाग गया। बाद में वह गुरदासपुर-मढ़ी के गढ में घिर गया। लोग समझते थे वह जादूगरी से किसी छोटे जानवर का रूप धारण कर निकल भागता है, इसलिए साम्राज्य की सेना ने तम्बू से तम्बू सटा कर घेरा पूरा किया और चारों तरफ दीवार बना दी जिस तक आती हुई कोई बिल्ली भी दिखाई दे तो उसे वे गोली मार देते। यों घिरी हुई सेना नौ मास तक वीरता से लडती रही। रसद चुक जाने पर वे अपने जानवर खाते रहे। फिर घास-पत्ती और हड्डियों का चूरा, और कहते हैं अन्त में अपनी जाँघों का मांस तक खा कर वे लडते रहे! बन्दा के ७३९ साथी पकड़ कर पिंजरों में बन्द किये और दिल्ली लाये गये। वहाँ वे बीभत्स क्रूरता से मारे गये (१७१६ ई०)।

बन्दा ने सिक्ख सम्प्रदाय के दो-एक बाहरी चिह्नों पर जोर न दिया था, इसलिए कट्टर सिक्खों का एक दल जो अपने को 'तत्व खालसा' कहता उससे अलग हो गया। इस फूट से लाभ उठा कर अगले आठ बरस तक अब्दुस्समद

ने सिक्खों का जोरों से दमन किया। सिक्खों को तब जंगलों के सिवाय और कहीं शरण न रही।

सामूगढ़ की लड़ाई में चूड़ामन जाट ने निष्पक्ष हो कर दोनों तरफों को लूटा था। बाद में वह दरबार में हाजिर हुआ और उसे दिल्ली से चम्बल तक के रास्तों की रक्षा का भार सौंपा गया (१७१३ ई०)। उसने उस प्रदेश पर पूरा अधिकार जमाना और आगे अपना इलाका बढ़ाना शुरू किया, बादशाह को कर देना भी छोड़ दिया तथा होडल के आगे जंगल में थूण नाम का एक गढ़ बना लिया। उस गढ़ को लेने के लिए सवाई जयसिंह को भेजा गया। पर वजीर अब्दुल्ला दिल से चूड़ामन की तरफ था। पौने दो साल के घेरे के बाद गढ़ लिया जाने के पहले ही अब्दुल्ला ने चूड़ामन से सन्धि करा दी (१७१८ ई०)।

§६ राजकर्त्ता सैयद बन्धु—फर्रुखसियर और सैयदों का बिगाड़ बढ़ता गया। अन्त में समझौता हुआ, जिससे दक्खिन के सूबों पर पूरा अधिकार हुसैनअली को मिला (१७१५ ई०)। फर्रुखसियर ने मराठा सरदारों को गुप्त पत्र लिखे कि वे हुसैन से लड़ें, लेकिन इस खेल में हुसैन उनसे बाजी ले गया। रामचन्द्र बावडेकर का सचिव शंकर मल्हार ताराबाई के प्रशासन में संन्यासी हो कर बनारस में रहने लगा था। वह हुसैन का मन्त्री बन कर अब उसके साथ दक्खिन लौटा। शंकर मल्हार के द्वारा हुसैनअली ने मराठा दरबार से सन्धि की और उनकी सब माँगें पूरी कराने का वचन दिया।

उधर फर्रुखसियर ने सैयद अब्दुल्ला को पकड़ने का विफल यत्न किया, फिर उसके विरोध के बावजूद जजिया लगा दिया (१७१७ ई०)। थूण के मामले ने विरोध और बढ़ा। फर्रुखसियर ने अपना पक्ष दृढ़ करने को अजितसिंह को दिल्ली बुलाया, पर वह भी अब्दुल्ला की तरफ हो गया। फिर समझौता हुआ और गुजरात की सूबेदारी अजित को दी गई।

अपने बेटे आलिमअली और शंकर मल्हार को दक्खिन में छोड़ हुसैनअली अब एक बड़ी सेना के साथ दिल्ली चला। पेशवा बालाजी विश्वनाथ और सेनापति खंडेराव दाभाडे मराठा सेना सहित उसके साथ थे। दिल्ली पहुँच कर सैयद बन्धुओं ने अपनी सिपाह की फौजें शहर और किले में रख लीं। मुगल

तब उसने स्वयं कुछ लेने के बजाय यह प्रार्थना की कि बंगाल में अंग्रेज जो विलायती माल लावें उसपर चुंगी न ली जाय।

इसी समय दक्खिन में मुम्बई के अग्रेजों ने कान्होजी आंग्रे को कुचलना चाहा। विजयदुर्ग और खंडेरी गढ़ो पर उनके बेडों ने चढ़ाइयाँ कीं (१७१७-१९ ई०), पर दोनो जगह वे विफल हुए।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. बहादुरशाह ने औरगजेब की नीति को किस प्रकार पलटा? और सैयद बन्धुओं ने?

२. बन्दा वैरागी का चरित लिखिए।

३. बालाजी विश्वनाथ भट्ट कौन था? उसकी शक्ति का उदय कैसे हुआ?

४. "औरगजेब के पिछले समय से हिन्दुस्तानी मुसलमानों और 'मुगलों' की स्पर्धा चली आती थी", इसे स्पष्ट कीजिए।

५. शिवाजी ने अपने राज्य से जागीरदार पद्धति उखाड दी थी। उसके बाद वह फिर कैसे स्थापित हुई?

६. निजाम ने दक्खिन मे अपनी शक्ति कैसे स्थापित की?

७. अंग्रेज़ पहलेपहल कब और कैसे संसार की प्रमुख सामुद्रिक शक्ति बन गये?

८. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) 'तख्त या तख्ता' (२) जाजउ, लाहौर, सामूगढ के घरेलू युद्ध (३) चूडामन जाट (४) शंकर मल्हार (५) कान्होजी आग्रे।

१०. मराठा पर्व

(१७२०—१७६६ ई०)

अध्याय १

मराठा साम्राज्य की नींव पड़ना

(१७२०-४० ई०)

§१. **मराठा राज्य का लक्ष्य**—बालाजी की मृत्यु पर शाहू ने उसके बेटे बाजीराव को पेशवा बनाया। मराठा राज्य की नीति अब क्या हो, इसपर शाहू की सभा में विचार हुआ। महाराष्ट्र में एक दक्खिनी दल था जिसका कहना था कि हम पहले अपने 'स्वराज्य' को शक्त बना लें और समूचे दक्खिन को जीत लें, तब दिल्ली की तरफ बढ़ने की सोचें। बाजीराव का रुख दूसरा था। वह और उसका भाई चिमाजी अप्पा अपने पिता के साथ दिल्ली हो आये थे। कहते हैं उसने कहा कि "मुगल साम्राज्य समृद्ध और क्षीण है, उसकी जड़ पर चोट करो तो शाखाएँ स्वयं गिर पड़ेंगी। हमें भारत में साम्राज्य स्थापित करना है। मेरी बात मानो तो मैं मराठा झंडा अटक की दीवारों पर गाड़ दूँगा।" और शाहू ने अनुमोदन करते हुए कहा, "उसे किम्पुरुषखंड पर जा गाड़ो।" अगले ७५ साल तक मराठा राज्य की यही नीति रही। परन्तु, जैसा कि हम देखेंगे, १७ साल बाद इस नीति में इतना परिवर्तन हुआ कि मुगल साम्राज्य को तोड़ने का विचार छोड़ उसे अपने हाथ में कर लेना तय किया गया। मुगल साम्राज्य यों बना रहा, किन्तु बड़ी घटनाओं का आरम्भ अब मराठा दरबार से होता और मुगल दरबार को अपने बचाव की चिन्ता करनी पड़ती।

भारत के साम्राज्य का लक्ष्य सामने होने पर बाजीराव ने सब से पहले अपनी सेना को सुसंघटित करना आवश्यक था। मराठे सरदार अब काफी शक्तिशाली थे, अपनी स्वतन्त्र जागीरें होने के कारण वे बहुत उच्छृंखल

भी थे । उन्हें जागीरों से वंचित कर नियन्त्रित करना बाजीराव को शक्य न प्रतीत हुआ । राजकीय सेनापति स्वयं बडा जागीरदार था । १७२१ ई० मे खडेराव दाभाडे की मृत्यु होने पर उस पद पर उसका बेटा त्र्यम्बकराव नियुक्त हुआ । बाजीराव ने अपनी स्वतन्त्र सेना खड़ी की, जिसके बल पर वह दूसरे सरदारो पर नियंत्रण रख सके । उस सेना के नेता रानोजी शिन्दे, मल्हार होल्कर, उदाजी पँवार आदि थे । बाद मे इनके वंशज भी बड़े बडे जागीरदार बन गये ।

१७२३ ई० मे बाजीराव ने मालवे की स्थिति का अन्दाजा लगाने के लिए पहली चढ़ाई की ।

§२. बुन्देलखंड ब्रज राजस्थान पंजाब गुजरात में संघर्ष— सैयद भाइयो का निपटारा हो जाने पर मुहम्मदशाह ने मुहम्मदअमीन को अपना वजीर बनाया और खानेदौरान शम्सामुद्दौला नामक हिन्दुस्तानी मुसलमान को मीर बख्शी । बुन्देलखंड का दूसरा स्वाधीनता-युद्ध जारी था और छत्रसाल ने कालपी दखल कर ली थी (१७२० ई०) । सैयद भाइयो के निश्चय को पलट कर अजमेर की सूबेदारी अजितसिंह के बजाय दूसरे व्यक्ति को दी गई । उसपर अजित ने विद्रोह किया और अजमेर मे नये सूबेदार को न घुसने दिया । चूडा-मन जाट ने अजित और छत्रसाल दोनो को मदद भेजी । छत्रसाल को दबाने के लिए मुहम्मदखाँ बंगश पठान को इलाहाबाद की सूबेदारी सौंपी गई । इसने हाल ही मे अपने फिरके को फर्रुखाबाद प्रदेश में बसाया था । बंगश ने कालपी से बुन्देलो को निकाल दिया । १७२१ ई० मे मुहम्मदअमीन की मृत्यु हुई । तब निजाम को दक्खिन से बुला कर वजारत सौंपी गई । मराठो को रोकने के लिए निजाम ने गुजरात और मालवे मे अपने सगे सूबेदार नियुक्त किये ।

चूडामन के बेटे आपस मे झगडते थे, उन्हे वह न मना सका तो उसने आत्मघात कर लिया । उसके भतीजे बदनसिंह ने तब सवाई जयसिंह की सेवा कर ली (१७२२ ई०), पर उसका बेटा मारवाड़ भाग गया । सवाई जयसिंह और बंगश दोनों अजित के खिलाफ भेजे गये । उसने भी तब अधीनता मानी (१७२२ ई०) । दूसरे साल अजित के छोटे बेटे बख्तसिंह ने उसे मार डाला ।

मारवाड़ से निपट कर बंगश ने जमना पार की (१७२४ इ०) और छ महीने में छत्रसाल को बाँदा के पास तक खदेड़ दिया।

इसी समय से पंजाब में भी सिक्ख जत्थे दिखाई देने लगे। उन्हें दबाने के लिए सूबेदार जकरियाखाँ ने एक गश्ती सेना नियुक्त की।

तभी ईरान में सफावी राजवंश का अन्त हुआ था। सन् १७०८ में कन्दहार के गिलजई अफगान स्वतन्त्र हो गये थे। अब उन्होंने समूचा ईरान जीत लिया था। इधर अब भारत का सीमान्त अरक्षित रहने लगा था। पठानों को 'सहायता' देने के लिए काबुल के सूबेदार को जो रकम भेजी जाती थी, उसे अब खानेदौरान हजम कर लेता था। काबुल की सेना का वेतन ५-५ बरस तक पिछड़ने लगा था। निजाम इस कुशासन को ठीक न कर सका, तो छुट्टी ले कर दिल्ली से हट गया (१७२३)।

छुट्टी बीतने पर निजाम फिर दक्खिन को भागा। बादशाह ने मुहम्मद-अमीन के बेटे कमरुद्दीन को वजीर बनाया और हैदराबाद के हाकिम को दक्खिन की सूबेदारी दे कर निजाम का मुकाबला करने को लिखा। छत्रसाल का बेटा कुँवरचन्द निजाम के साथ था। बाजीराव भी उससे जा मिला। मुगल साम्राज्य के एक विद्रोही का साथ देने में उन दोनों का उद्देश प्रकटतः साम्राज्य को कमजोर करना था। बराड में शकरखेड़ा नामक स्थान पर हुई लड़ाई में दक्खिन का सूबेदार मारा गया (१७२४ इ०) और निजाम खुदमुख्तार हो गया। मुहम्मदशाह ने तब उसका दिल्ली आने का रास्ता रोकने को गुजरात की सूबेदारी उसके चचा हमीदखाँ के बजाय सरबुलन्द को तथा मालवे की गिरिधर-बहादुर नागर को सौंपी, और बंगश को बुंदेलखंड से बुला कर ग्वालियर भेजा।

हमीदखाँ ने गुजरात देने से इनकार किया, और दाभाडे के अधीन सरदार कन्ताजी कदम बांडे तथा पिलाजी गायकवाड से मदद ली। उन्होंने सरबुलन्द के दो नायबों को मार डाला (१७२४-२५ इ०)। हमीदखाँ ने उन्हें गुजरात की चौथ दी। तब सरबुलन्द ने स्वयं दिल्ली से आ कर हमीदखाँ को गुजरात की सूबेदारी से निकाला, पर उसे भी मराठों को चौथ देने की बात माननी पड़ी। पिलाजी ने बड़ोदा और दाभोई दखल कर लिये (१७२७ इ०)।

मालवे में मराठों की गिरिधरबहादुर से बराबर मुठभेड़ें होती रहीं। बंगश के लौट आने से बुन्देलों को फिर छुट्टी मिली। छत्रसाल ने इस बीच बिहार की सीमा तक का इलाका जीत लिया। किन्तु १७२७ ई० के शुरू में बंगश और उसके बेटे कायमखाँ ने प्रयाग पर फिर जमना पार की, और दो साल तक बुन्देलों को दबाते हुए पूरबी बुन्देलखंड पूरा ले कर, महोबा, कुलपहाड़, जैतपुर तक छत्रसाल को धकेल दिया। ब्रज से जाटों की मदद आने के बावजूद १७२८ ई० के अन्त में जैतपुर भी छिन गया। तब छत्रसाल ने सन्धि की बातचीत से बंगश को बहकाना शुरू किया।

§ ३. निज़ाम का दक्खिन में स्थापित होना और बाजीराव के पहले विजय—शकरखेडा की जीत के बाद निजाम और बाजीराव एक दूसरे का रुख देखते रहे। निजाम ने दक्खिन की ओर अपनी शक्ति बढ़ाई और कई छोटे-छोटे सरदारों को दबाया। उसने शिवाजी के भतीजे तांजोर के राजा सर्फोजी से तिरुचिरापल्ली छीन ली। सर्फोजी ने शाहू से मदद माँगी; तब बाजीराव दक्खिनी दल के नेताओं के साथ गदग, वेदनूर और श्रीरंगपट्टम् तक गया (१७२५–२६ ई०)। पर वह चढ़ाई विफल रही।

निजाम ने इसके बाद हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाया और शाहू को चौथ देना बन्द कर दिया। बाजीराव झट सेना के साथ औरंगाबाद पर जा चढ़ा और निज़ाम का पीछा करके दौलताबाद के २० मील पच्छिम पालखेड पर उसे घेर लिया। निजाम ने तब सन्धि-भिक्षा की और चौथ की सब बाकी रकम दे दी। मुंगी-शेवगाँव में सन्धि हुई (मार्च १७२८ ई०), जिसके अनुसार निजाम राजा शाहू के सामन्त रूप में दक्खिन में स्थापित हुआ।

मालवे के किसानों और जमीदारों ने मुगल सरकार के जुल्म के खिलाफ सवाई जयसिंह से प्रार्थना की थी। जयसिंह ने कहा, बाजीराव को लिखो। मालवे के किसानों ने अपनी सेना खड़ी कर ली और बाजीराव को बुलाया। चिमाजी खानदेश हो कर और बाजी बराड के रास्ते मालवे को बढ़े। अमझरा पर चिमाजी अप्पा और उदाजी पँवार ने गिरिधरबहादुर और उसके भाई दयाबहादुर को घेर कर मार डाला (नव० १७२८ ई०)।

इसी समय बूढ़ा छत्रसाल जैतपुर के पास सङ्कट में पड़ा था। कहते हैं, उसने बाजीराव को लिखा—

जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति भई है आज।
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज।

गढ़ा मण्डला के रास्ते बाजीराव बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ा। अमझरा की जीत के तीन महीने बाद मराठों ने बंगश को घेर लिया, परन्तु बंगश बहादुरी से लड़ता रहा। चार महीने बाद उसके डेरे में अनाज सो रुपये सेर भी न मिलता था। छत्रसाल ने तब उसे जाने दिया पर उससे लिखवा लिया कि वह फिर जमना पार न करेगा।

सरबुलन्दखाँ ने राजा शाहू का गुजरात की चौथ देना स्वीकार कर लिया, तो बादशाह ने उसे सूबेदारी से हटा कर अजितसिंह के बड़े बेटे अभयसिंह राठोड़ को उसकी जगह भेजा (१७३० ई०), तथा गिरिधरबहादुर के मारे जाने पर मालवे की सूबेदारी बंगश को सौंपी। तीन मास के अन्दर बंगश ने अधिकांश मराठों को नर्मदा पार निकाल दिया। मल्हार होल्कर जयपुर भाग गया।

§४ **निज़ाम का षड्यन्त्र**—निज़ाम ने अब गुप्त षड्यन्त्र करके पेशवा के सब शत्रुओं का गुट्ट बनाया। गुजरात को त्र्यम्बकराव दाभाडे के आदमियों ने जीता था, बाजीराव के नियन्त्रण से वे असन्तुष्ट थे। दाभाडे ने कहा—बाजीराव ने राजा शाहू को कैदी बना रक्खा है मैं उसे मुक्त करूँगा। उसने अहमदनगर पर निज़ाम से मिल कर दक्खिन की ओर बढ़ना तय किया। उधर राजाराम के बेटे कोल्हापुर के सम्भाजी [६, ६ § ३] को निज़ाम ने अपनी ओर मिला लिया। तब नर्मदा के घाट पर निज़ाम और बंगश मिले और चौमुखा षड्यन्त्र पूर्ण हुआ। ठिकाने की दो चोटों से बाजीराव ने उसे तोड़ दिया।

सम्भाजी के खिलाफ दक्खिनी दल भेजा गया, जिसने उसे पूरी तरह हरा दिया। सम्भाजी ने आगे से शाहू के अधीन रहना माना।

त्र्यम्बकराव के निज़ाम से मिलने पर उतारू हो जाने पर शाहू ने लाचार हो बाजीराव को उसपर आक्रमण करने की आज्ञा दी। साथ ही आदेश दिया कि

भरसक उसे मना लो या पकड़ लाओ। इससे पहले कि दाभाडे निजाम से मिल पाय, बाजीराव गुजरात पर टूट पड़ा। दाभोई पर दाभाडे बहादुरी से लड़ा। सफेद झंडा दिखा कर बाजीराव ने कहा, 'ऐसी वीरता महाराजा के शत्रुओं के विरुद्ध दिखानी चाहिए।' पर त्र्यम्बकराव ने एक न सुनी और उसे पकड़ने के यत्न विफल हुए। उसी की तरफ से उसके मामा ने उसकी पीठ में गोली मार दी। निजाम और बंगश के जुदा होने के चौथे दिन यों निजाम का षड्यन्त्र धूल में मिल गया। दाभोई से बाजीराव सीधा निजाम की ओर बढ़ा। निजाम ने तब उससे यह गुप्त सन्धि की (१७३१ ई०) कि वह उत्तर की तरफ बेरोकटोक बढ़े, निजाम उसे पीछे से न छेड़ेगा।

इस घरेलू युद्ध का धक्का समूचे महाराष्ट्र ने अनुभव किया। त्र्यम्बकराव की माँ उमाबाई ने शाहू के पास आ कर बाजीराव से बदला लेने के लिए कहा। शाहू ने उमाबाई के गाँव में जा कर बाजीराव को उसके पैरों गिराया, और तब उमा के हाथ में तलवार दे उसे बाजीराव का सिर काटने को कहा! उमा ने बाजीराव को क्षमा कर दिया। तब उसका छोटा बेटा यशवन्तराव सेनापति नियुक्त किया गया। पर वह शराबी था, उसकी शक्ति धीरे-धीरे गायकवाड़ों के हाथ चली गई।

§५. मराठों का मध्य मेखला में स्थापित होना—उसी वर्ष (१७३१ ई०) छत्रसाल परलोक सिधारा। बुन्देलखंड का पूर्वार्द्ध तब उसके हाथ आ चुका था। उसने बाजीराव को अपना बेटा बना कर तीन बेटों में अपना राज बाँट दिया। यों हृदयशाह को पन्ना, जगतराज को जैतपुर और बाजीराव को सागर-दमोह मिले। बाकी बेटों को जागीरें दी गईं। मराठों और बुन्देलों में पूरे सहयोग की सन्धि हुई।

अभयसिंह राठोड ने पिलाजी गायकवाड से बड़ोदा छीन लिया और सन्धि की बात करने के बहाने पिलाजी को डाकोर तीर्थ में बुला कर धोखे से मार डाला (१७३२ ई०)। तब कोली आदि जातियाँ, जो मराठों के पक्ष में थीं, भड़क उठीं और पिलाजी के बेटे दमाजी ने गुजरात का बड़ा अंश जीत कर अभयसिंह को जोधपुर भगा दिया।

बंगश ने १७३१ ई० में मराठों को मालवे से निकाल दिया था, पर दूसरे वर्ष वे फिर दक्खिन और बुन्देलखण्ड से मालवा चढ़ आये। सिरोंज पर बंगश चारों तरफ से घिर गया। दिल्ली और निजाम से व्यर्थ मदद माँगने के बाद उसने मराठों से सन्धि कर ली। तब दिल्ली से हुक्म आया कि बंगश के बजाय सवाई जयसिंह मालवे का सूबेदार नियुक्त किया गया। पर अगले वर्ष रानोजी शिन्दे और मल्हार होल्कर ने गुजरात में चाँपानेर जीतने के बाद मालवा आ कर जयसिंह को भी घेर लिया। उसने हार मानी और छः लाख रुपया तथा २८ परगने दे कर छुटकारा पाया।

यों बुन्देलखण्ड, गुजरात और मालवे में मराठे स्थापित हो गये।

§ ८ **उत्तर भारत पर पहली मराठा चढ़ाई**—जयसिंह दोनों पक्षों से मौके मुताबिक अपनी गों निकालता था। इस उथलपुथल के बीच उसने अपना राज्य बढ़ाने का अवसर देखा और बूँदी के राजा बुधसिंह हाडा से वह राज्य छीन कर अपने एक दामाद को दे दिया था। बुधसिंह की स्त्री ने मल्हार होल्कर के पास राखी भेज उससे मदद माँगी। यों मराठों ने राजस्थान के राजपूत राज्यों के भीतर पहलेपहल हस्तक्षेप किया। बादशाह ने खानेदौरान को उनके खिलाफ भेजा। जयसिंह और अभयसिंह भी उसके साथ बढ़े। मुकुन्दरा घाटी के आगे रामपुरा प्रदेश में उन सब को मराठों ने घेर लिया और जयपुर जोधपुर के अरक्षित इलाकों पर हमले शुरू किये। जयसिंह और खानेदौरान ने तब मराठों को मालवे की चौथ दिला देने का प्रस्ताव कर सन्धि की बात शुरू की जिससे युद्ध रुक गया।

लेकिन बादशाह ने वह प्रस्ताव मंजूर नहीं किया और जयसिंह से आगरा और मालवा के सूबे ले कर वजीर कमरुद्दीन को दिये। इसपर जयसिंह ने बाजीराव के पास फिर युद्ध छेड़ने का सन्देश भेजा। चिमाजी अप्पा के नेतृत्व में मराठा सेना की हरावल राजस्थान और बुन्देलखण्ड के रास्ते एक साथ बढ़ती तथा खानेदौरान, कमरुद्दीन और बंगश के नेतृत्व में मुकाबले को आई शाही फौजों को ठेलती हुई चम्बल तक बढ़ आई और उसकी एक टुकड़ी जमना पार कर इटावा प्रदेश में जा घुसी। पीछे से स्वयं बाजीराव चला आ रहा

था। मेवाड की सीमा से महाराणा जगतसिंह उसे उदयपुर लिवा ले गया। मेवाड ने राजा शाहू को वार्षिक कर देना स्वीकार किया। बाजीराव के किशनगढ़ पहुँचने पर जयसिंह ने उससे भेंट की। इससे पहले खानेदौरान और बंगश भी सन्धि की प्रार्थना कर रहे थे। बाजीराव ने युद्ध रोक दिया और मालवे के रास्ते लौटते हुए सन्धि की बातचीत जारी रक्खी।

१७३५ ई० तक पंजाब में सिक्खों ने बूढ़ा दल और तरुण दल नाम से अपने दो दल खड़े कर लिये। उनका केन्द्र अमृतसर प्रदेश था।

§७. बाजीराव की दिल्ली चढ़ाई—बाजीराव की पहली शर्तें ये थीं—(१) मालवे का सूबा किलों और पुरानी जागीरों के सिवाय उसे सौंप दिया जाय; तथा (२) दक्खिन के छः सूबों की मालगुजारी का ५% राजा शाहू को दिया जाय। मुहम्मदशाह ने इन पर "मंजूर" लिख दिया। लेकिन मुगल साम्राज्य को कमजोर पा कर बाजीराव ने अपनी शर्तें पीछे बढ़ा दीं। मुहम्मद शाह ने उनमें से कुछ मान लीं, पर सब मानने से इनकार किया। बाजीराव ने जयसिंह का गुप्त सन्देश पा कर फिर चढ़ाई की। जैतपुर के रास्ते वह आगरे के दक्खिन भदावर प्रदेश में जमना पर आ निकला। मल्हार होल्कर ने वहाँ से दोआब पर धावा मारा। वह शिकोहाबाद आदि लूटता हुआ जलेसर पर अवध के सूबेदार सआदतखाँ से हार कर ग्वालियर पर बाजीराव से आ मिला। दिल्ली के तीन सेनापति—खानेदौरान, बंगश, सआदतखाँ—मथुरा पर जमा हुए। इसी समय रेवाडी पर एक मराठा हमले की खबर सुन कर वजीर कमरुद्दीन उधर बढ़ा, और उधर से मथुरा की ओर लौटने लगा।

बाजीराव चम्बल पार कर इन दोनों फौजों को दाहिने बाएँ एक एक दिन की राह पर छोड़ता हुआ एकाएक दिल्ली आ पहुँचा (९-४-१७३७ ई०)। सन्धि की बातचीत होने लगी, जिससे बाजीराव ने अपना इरादा बदल दिया। "हम दिल्ली जलाना चाहते थे, परन्तु फिर देखा कि वैसा करने और बादशाह की गद्दी नष्ट करने में लाभ नहीं है, क्योंकि बादशाह और खाने-दौरान हमसे सन्धि करना चाहते हैं, पर मुगल नहीं करने देते। हमारी तरफ से कोई अत्याचार होने से राजनीति का सूत्र टूट जाता, इसलिए जलाने का इरादा छोड

कर बादशाह और राजा बख्तमल को पत्र भेजे।" इसी बीच दूसरे दिन दिल्ली की फौज बाजीराव के मुकाबले को निकली और रिकाबगंज पर बुरी तरह हारी।

बाजीराव का दिल्ली पहुँचना सुन कर शाही सेनापति 'खीझ की अँगुली शर्म के दाँत पर रक्खे हुए' एकाएक लौटे। बाजीराव ने देखा कि बड़ी बड़ी सेनाएँ चली आ रही हैं तो वह पच्छिम की ओर हट कर अजमेर जा निकला। वहाँ से वह फिर दिल्ली पर चढ़ाई करने या अन्तर्वेद में घुसने का इरादा कर ग्वालियर लौटा। चिमाजी को उसने लिखा—"इधर किसी का डर नहीं है, उधर निजाम की एड़िया में रस्से डाले रक्खो।" किन्तु बाजीराव के दिल्ली पहुँचने के तीन दिन पहले मराठों की बड़ी सेना कोंकण में पुर्तगालियों के

पेशवा बाजीराव [भा० इ० स० मं०]

खिलाफ जुट चुकी थी, और खानदेश की मराठा टुकड़ी को भगा कर निजाम नर्मदा पार निकल आया था, इसलिए बाजीराव को एकाएक लौटना और कोंकण जाना पड़ा।

शाही दरबार में अब सब का यह मत था कि निजाम ही बाजीराव को रोक सकता है। इसलिए उसे फिर बुला कर वजीर बनाया गया। आगरा और मालवा के सूबे जयसिंह और बाजीराव के बजाय उसके बेटे गाजिउद्दीन को दिये गये। निजाम मालवा वापस लेने चला। अपने दूसरे बेटे नासिरजंग को उसने लिखा कि बाजीराव को दक्खिन से न निकलने दे। पर बाजीराव नर्मदा पार कर आया, और भोपाल पर उसने निज़ाम का सामना किया। पालखेड

और जैतपुर वाली बात दोहराई गई। निज़ाम पूरी तरह घिर गया, परन्तु तोपों के सहारे कुछ आगे बढ़ा। अन्त में दुराहासराय पर उसने सन्धि की प्रार्थना की। उसने नर्मदा से चम्बल तक के प्रान्त पर मराठा आधिपत्य मनवाने और उन्हें ५० लाख की खंडनी देने का वचन दिया (जनवरी १७३८ ई०)।

§८. आंग्रे और अंग्रेज़ः पुर्तगाली युद्ध—अपने ही देश के चांचियों को दबाने तथा कान्होजी आंग्रे की जलशक्ति तोड़ने में अपने को अशक्त देख ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने राजा से मदद माँगी। तब इंगलैंड से एक जंगी बेड़ा इस प्रयोजन के लिए मुम्बई आया। गोवा और बसई के पुर्तगाली गवर्नरों ने भी उसका साथ दिया। पर आंग्रे के कोलाबा किले से वे सब हार कर लौटे (१७२२-२३ ई०)। दूसरे वर्ष विजयदुर्ग पर ओलन्देज भी वैसे ही हारे। १७२९ ई० में कान्होजी की मृत्यु हुई। तब उसके बेटे आपस में झगड़ने लगे और उन झगड़ों में पुर्तगाली भी दखल देने लगे। बाजीराव ने झगड़ों को सुलझा कर पुर्तगालियों को दस्तन्दाजी से रोक दिया। किन्तु उसके बाद पुर्तगाली वाइसराय के अभिमानी भतीजे ने मराठा दूत के सामने बाजीराव को 'नेगरो' (काला हब्शी) कह दिया। चिमाजी अप्पा के नेतृत्व में महाराष्ट्र ने तब अपनी सारी शक्ति पुर्तगालियों के खिलाफ लगा दी। दो वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा (१७३७-३९ ई०); दुराहासराय से लौट कर बाजीराव की सारी सेना कोंकण चली आई और पुर्तगालियों का समूचा 'उत्तरी प्रान्त' मराठों के हाथ आया। बहादुरशाह गुजराती और अकबर जो काम करने को तरसते रहे, वह दो शताब्दी बाद पूरा हुआ। पुर्तगालियों से बसई छीनने के लिए मराठों को भारी बलिदान करना पड़ा। चिमाजी का प्रस्ताव बसई के बाद मुम्बई लेने का था। पर अंग्रेज़ों ने शाहू के सामने गिड़गिड़ा कर उसे शान्त कर लिया। शाहू ने उनके साथ मैत्री रखना तय किया।

§९. नादिरशाह की चढ़ाई—गिलजई पठानों का ईरान का राज्य दो वर्ष में टुकड़े-टुकड़े हो गया। अन्तिम सफावी शाह के बेटे तह्मास्प ने सिर उठाया; खुरासान में एक तुर्कमान सैनिक नादिरकुली ने उसका सेवक बन कर ईरान को स्वतन्त्र किया और उसे गद्दी पर बिठाया (१७२९ ई०)। किन्तु

दिल्ली के बादशाह को ऐसे समय मदद देना बड़े गौरव की बात होगी। मल्हार होल्कर, रानोजी शिन्दे और उदाजी पँवार को भेजता हूँ।" किन्तु वे सब सेना-नायक पुर्तगालियों के साथ ऐसे उलझे हुए थे कि किसी तरह कोंकण से न निकल सके। पानीपत पहुँच कर दिल्ली के सेनापतियों ने बादशाह को बुलाया और उसके आने पर करनाल तक आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने मोर्चाबन्दी कर अपने को दीवार से घेर लिया। चुस्त और सजग शत्रु ने चारों तरफ से उनके रास्ते काट दिये।

नादिर की सेना मुख्यतः सवारों की थी और वे जिजैल नामक लम्बी बन्दूकों से लड़ते थे। भारतीय सवारों के मुख्य शस्त्रास्त्र भाला, तलवार और तीर थे। इसके सिवाय नादिर की सेना में एक अच्छी संख्या ऊँटसवारों की थी जो जम्बुरक अर्थात् हलकी लम्बी तोपों से लड़ते थे। इस 'दस्ती तोपखाने' के मुकाबले में भारतीयों के पास कुछ भी न था; उनका भारी 'जिंसी तोपखाना' एक जगह टिका रहता था। नादिर के शब्दों में हिन्दुस्तानी मरना जानते थे, लड़ना नहीं।

सआदतखाँ पीछे से कुमुक ला रहा था, परन्तु वह ईरानियों के हाथ कैद हुआ। खानेदौरान उसकी मदद को गया और मारा गया। कैदी सआदत के द्वारा सन्धि की बातें शुरू हुईं; ५.० लाख खंडनी तय हुई, जैसी एक बरस पहले बाजीराव के लिए हुई थी। तभी मुगल दरबार में यह प्रश्न उठा कि खानेदौरान की जगह मीर-बख्शी कौन बने। इस प्रसंग में सआदत निजाम से रूठ बैठा। उसने नादिर से कहा, ५० लाख क्या लेते हो, दिल्ली चलो तो २० करोड़ मिलेंगे! नादिर ने निजाम, वजीर और मुहम्मदशाह को बातचीत के लिए बुला कर धोखे से पकड़ लिया। उन कैदियों के साथ ईरानी सेना दिल्ली की ओर बढ़ी। बिना नेताओं की हिन्दी सेना तितर-बितर हो गई।

नादिरशाह के दिल्ली पहुँचने पर जनता ने विद्रोह किया। तब नादिर ने कत्ले-आम का हुक्म दिया। एक दिन में २० हजार जानें ली गईं। उसके बाद वह दो मास तक प्रजा और अमीरों को लांछित करता और निचोड़ता रहा। उसने अजमेर-यात्रा की इच्छा प्रकट की तो जयसिंह आदि ने अपने परिवार उदयपुर भेज दिये। बाजीराव ने चम्बल के घाटों को अपने काबू में

रखना तय किया। उसने लिखा, "पुर्तगाली युद्ध कुछ नहीं है, दक्खिन की सब शक्ति, हिन्दू और मुस्लिम, एक करनी होगी। मैं मराठों को नर्मदा से चम्बल तक फैला दूँगा।" पर बसई के ढहते ही (१४-५-१७३९) जब होल्कर और शिन्दे बाजीराव से मिलने बुरहानपुर की तरफ बढ़े, तब नादिरशाह को दिल्ली से लौटे ६ दिन हो चुके थे।

दिल्ली से नादिरशाह कुल १५ करोड़ रुपये नकद और ५० करोड़ के रत्नाभूषण और सामान, जिनमें तख्ते ताउस भी शामिल था, ले गया। मुहम्मद शाह को उसने उसकी जान और राज्यसत्ता बख्शी, किन्तु ठठ्ठा (दक्खिनी सिन्ध) तथा सिन्ध नदी के पार के प्रान्त ले लिये और पंजाब पर आधिपत्य रख के वहाँ जकरियाखाँ को अपनी ओर से नियुक्त किया। लौटते हुए नादिर का कुछ माल-असबाब दिल्ली के पास ही जाटों ने लूट लिया। पंजाब में सिक्खों ने रावी पर डल्लेवाल किला बना लिया था। उन्होंने भी उसका भार कुछ हलका किया।

§११. बराड़ के भोंसले—१७३९ ई० में बराड़ के रघुजी भोंसले ने गोंडवाने में देवगढ़ का राज्य जीत लिया। इसके बाद शाहू की प्रेरणा से उसने तमिलनाड पर चढ़ाई की। तभी बाजीराव और चिमाजी दोनों भाइयों का बीमारी से देहान्त हो गया (१७४० ई०)। खबर पा कर रघुजी, जो पुदुचेरी में था, सातारा लौट आया, क्योंकि उसे पेशवा बनने की आशा थी।

तभी निज़ाम भी दक्खिन को लौट गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. बालाजी के पेशवा बनने पर मराठा दरबार में अपने राज्य के सम्बन्ध में क्या दो मुख्य मत थे? उनमें से कौन सा माना गया? बाद में उसमें कब कैसे क्या परिवर्तन हुआ?

२. [illegible] ने [illegible] का दूसरा [illegible] युद्ध कब [illegible] किन [illegible] में कैसे लड़ा?

३. निज़ामुलमुल्क [illegible] किस तरह स्थापित हुआ? उसका १७४० तक का इतिहास लिखिए।

४. [illegible] में कैसे स्थापित हुए?

५. बाजीराव की दिल्ली चढ़ाई का वृत्तान्त लिखिए।

६. पुर्तगाली उत्तरी प्रान्त का संक्षिप्त इतिहास दीजिए।

७. नादिरशाह की चढ़ाई में भारत की कमजोरी किन किन बातों में प्रकट हुई ?

८. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए (१) कान्होजी आंग्रे (२) त्र्यम्बकराव दाभाडे (३) चूड़ामन जाट की मृत्यु (४) छत्रसाल के राज्य का बँटवारा (५) दस्ती और जिन्सी तोपखाना।

अध्याय २

मराठों के मुकाबले अंग्रेज़ों का खड़ा होना

(१७४०-१७६१ ई०)

§१. तमिळनाड के लिए संघर्ष, पूर्वी प्रान्तों पर मराठा आधिपत्य—बाजीराव की मृत्यु पर शाहू ने उसके नौजवान बेटे बालाजी को पेशवा बनाया और रघुजी भोंसले को, जो उसके विरोधी दक्खिनी दल का नेता था, फिर तमिळनाड की चढ़ाई पर भेजा।

राजाराम के जिंजी छोड़ने के बाद से तमिळ देश पर दिल्ली-साम्राज्य का बराबर प्रभुत्व था। आरकाट तब तमिळनाड की राजधानी थी। आरकाट का नवाब दक्खिन के सूबेदार के अधीन शासन करता था। पहले जुल्फिकारखाँ ने, फिर फर्रुखसियर ने, सआदतुल्लाखाँ को आरकाट की नवाबी सौंपी थी। शकरखेडा की जीत [१०,१§२] के बाद निजाम दक्खिन का स्वतन्त्र 'सूबेदार' बना तो उसने भी सआदतुल्ला को बना रहने दिया। लम्बे सुशासन के बाद १७३१ ई० में सआदत की मृत्यु हुई। तब उसका भतीजा दोस्तअली आरकाट का नवाब बना। रघुजी कर्णाटक पठार से तमिळ मैदान में उतरने लगा तो दोस्तअली ने आरकाट के ५० मील पच्छिम आम्बूर के पास दमलचेरी घाट पर उसे रोका। दोस्तअली को युद्ध में हरा और मार कर रघुजी तमिळ मैदान की ओर बढ़ा। दोस्तअली का दामाद चन्दा साहब तिरुचिरापल्ली में लड़ता हुआ कैद हुआ (१७४१ ई०)। रघुजी ने उसे सातारा भेज दिया और कृष्णा के दक्खिन गुत्ती में बसे हुए मराठा सरदार मुरारीराव घोरपडे को त्रिची (तिरुचिरापल्ली) में अपना हाकिम नियुक्त

किया। चन्दा ने अपना परिवार पुदुचेरी के फ्रांसीसी हाकिम द्यूमा (Dumas) के पास भेज दिया था।

रघुजी ने पुदुचेरी पहुँच कर द्यूमा से खिराज का बकाया और चन्दा साहब का परिवार तलब किया। द्यूमा ने इनकार करते हुए कहला भेजा कि फ्रांसीसी राष्ट्र ने कभी किसी को खिराज नहीं दिया। रघुजी ने अपने दूत को यह देखने भेजा कि द्यूमा किस बूते पर ऐसा लिखता है। द्यूमा ने अपनी रसद, तोपें और कवायद सीखे हुए सिपाही दिखाये। १२०० फ्रांसीसी सैनिकों के सिवाय वहाँ ५००० भारतीय सिपाही फ्रांसीसी नियन्त्रण में कवायद सीखे हुए तैयार थे। उनसे प्रभावित हो कर रघुजी लौट गया। उसे लौटा देने के लिए निजाम ने द्यूमा को भेंट भेजी और मुहम्मदशाह ने उसे नवाब का पद दिया।

अठारहवीं सदी के शुरू में औरंगजेब ने मुर्शिदकुलीखाँ को बंगाल और उड़ीसा का नाजिम और दीवान नियत किया था। उसके बाद उसका पद तथा बिहार की सूबेदारी भी उसके दामाद को मिली। अब अलीवर्दीखाँ ने उसके बेटे को मार कर वह पद छीन लिया और बादशाह से भी उस पद पर अपनी नियुक्ति की स्वीकृति ले ली (१७४० ई०)। दूसरे पक्ष के बुलाने से पहले रघुजी भोंसले के मन्त्री भास्करपन्त कोल्हटकर ने और फिर खुद रघुजी ने रामगढ़ (आधुनिक हजारीबाग जिले) और बाँकुड़ा के रास्ते बर्दवान पर चढ़ाई की और कटवा में छावनी डाल कर राजमहल से मेदिनीपुर तक बंगाल का पच्छिमी पहाड़ी प्रदेश जीत लिया।

बुरहानसराय की संधि को पक्का कराने के लिए पेशवा बालाजीराव ग्वालियर तक बढ़ आया था। बादशाह की तरफ से सवाई जयसिंह ने धौलपुर में उससे मिल कर उसे मालवे का सूबा दे दिया। उसके बाद बादशाह ने उससे प्रार्थना की कि वह बंगाल से रघुजी को निकाल दे। तदनुसार फरवरी १७४३ में बालाजी प्रयाग, बनारस, गया, मुंगेर, वीरभूम के रास्ते बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद की तरफ बढ़ा। कटवा के उत्तर पलाशी गाँव पर अलीवर्दी ने उससे मिल कर बंगाल की चौथ देना स्वीकार किया। रघुजी वीरभूम की तरफ हट गया था, बालाजी ने पीछा कर उसे भगा दिया।

इसी समय तमिळनाड में भी रघुजी के किये कराये पर पानी फिर गया। निज़ाम ने वह प्रान्त फिर से जीत कर अनवरुद्दीन को नवाब नियत किया और मुरारीराव घोरपडे को भेंट-पूजा से खुश कर लौटा दिया। इस दशा में राजा शाहू ने बालाजी और रघुजी के बीच समझौता करा दिया (३१-८-१७४३)। मालवा, आगरा, इलाहाबाद के सूबे बालाजी के अधिकार-क्षेत्र माने गये तथा बिहार, बंगाल, उडीसा और अवध रघुजी के। मुगल साम्राज्य की जड हिल चुकी थी। उसकी शाखाएँ बटोरने का काम यों शाहू ने दो नेताओं को बाँट दिया।

इसके बाद तुरन्त ही रघुजी ने पहले नागपुर के गोंड राज्य को जीत लिया। फिर सन् १७४४ के शुरू में भास्करपन्त ने बंगाल पर दोबारा चढ़ाई की। इस बार अलीवर्दीखाँ ने उसे सन्धि की बातचीत के बहाने बुला कर उसके २१ नायकों सहित कत्ल कर डाला (३१-३-१७४४)। अगले वर्ष अलीवर्दी के अफगान सैनिकों ने, जो दरभंगे में बसे हुए थे, विद्रोह किया। उनके बुलाने से रघुजी भोंसले ने फिर चढ़ाई की, उडीसा दखल कर लिया और पच्छिमी बंगाल में छावनियाँ डाल कर बिहार मे अफगानों को मदद दी। बादशाह ने पेशवा से सन्धि करके बिहार की १० लाख चौथ पेशवा के लिए तथा बंगाल की २५ लाख बराड के भोंसले के लिए नियत कर दी। लेकिन बूढ़े अलीवर्दी ने भोंसले को चौथ देना स्वीकार न किया और आगे पाँच वर्ष तक लड़ता रहा। अन्त मे सन् १७५१ में उसने भी सन्धि की, जिसके अनुसार मेदिनीपुर जिले के सिवाय समूचा उडीसा प्रान्त रघुजी को "जागीर के रूप मे" दे दिया, और बंगाल की चौथ १२ लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया।

§ २. **"भारतीय सिपाही का आविष्कार"**—रघुजी की तमिळ चढ़ाई से मराठा नेताओं को पहलेपहल फ्रांसीसियों की सिखाई हुई नये नमूने की सेना का पता मिला। उस समय वह घटना छोटी प्रतीत हुई, पर इतिहास मे उसका बड़ा महत्त्व था।

१८वीं सदी में युरोप ने स्थल-युद्ध-कला मे भी बडी उन्नति कर ली थी। बन्दूक का प्रयोग बढ़ जाने से वहाँ पैदल बन्दूकचियों की पाँतें तैयार हो कर युद्ध

का मुख्य साधन बन गई थी। ये पाँतें एक साथ एक आदेश पर गोली दागतीं और इनकी सारी गति नेताओं के आदेशों से नियमित रहती थी। इनके सामने ढीले अनुशासन पर चलने वाले रिसाले निकम्मे हो गये। इन सुनियन्त्रित पैदल सेनाओं से राजाओं ने अपने उच्छृंखल सरदारों से कोटले ढहा कर उन्हें काबू कर लिया। यों सेनाओं और युद्ध शैली में केन्द्रीय नियन्त्रण बढ़ जाने से युरोप की शासनसंस्था में भी राजाओं का केन्द्रीय नियन्त्रण बढ़ गया। भारत में जो युरोपी थे वे सोचने लगे कि वे यदि भारत में अपनी सेनाएँ ला सकें तो यहाँ के समुद्र तट के प्रान्तों को आसानी से जीत लें। युरोप के मध्य भाग अर्थात् जर्मनी और उसके पड़ोसी प्रदेशों का राजा तब सम्राट् कहलाता था। भारत में रहने वाले कुछ अंग्रेजों ने जर्मन सम्राट् को यहाँ सेना लाने के लिए लिखा भी। पर इतनी दूर बड़ी सेना लाना तब सम्भव न था। इस दशा में पुदुचेरी के हाकिम द्यूमा ने भारतीय सिपाहियों को कवायद सिखा कर उन्हें नई युद्ध कला में दीक्षित किया। उसने यह अनुभव किया कि भारतवर्ष के लोगों में एक पुरानी सभ्यता के वारिस होने के कारण इतनी समझ और भौतिक वीरता है कि वे अच्छे सैनिक बन सकते हैं। अफरीका आदि की दूसरी जिन जातियों से युरोपियों को वास्ता पड़ा था, वे ऐसी न थीं। साथ ही उसने देखा कि भारतीयों की महत्त्वाकांक्षा और जिज्ञासा ऐसी सोई हुई है कि जितनी बातें उन्हें सिखा दी जायँ उतनी सीख लेते हैं, पर उससे आगे बढ़ कर समूचे ज्ञान को अपनाने की उत्कंठा उनमें नहीं जागती। उनमें राष्ट्रीयता की अनुभूति भी इतनी मन्द है कि उन्हें किसी के भी भाड़े के सैनिक बन कर अपने भाइयों पर गोली दागने में कोई हिचक नहीं होती। इसलिए जहाँ वे दूसरों के अच्छे हथियार बन सकते हैं वहाँ इस बात का खटका नहीं है कि वे स्वयं युरोपी ढंग की सेनाएँ संघटित कर लें। प्रत्युत उन्हीं के द्वारा युरोप वाले भारत को जीत सकेंगे। द्यूमा को जो यह नई बात सूझी, इसे युरोप वालों ने "भारतीय सिपाही का आविष्कार" कहा। १८वीं सदी का यह सबसे बड़ा मार्मिक आविष्कार था। युरोपियों के हाथ में इससे एक ऐसा साधन आ गया जिससे उन्होंने पृथ्वी का नक्शा पलट दिया।

§ ३. राजस्थान और महाराष्ट्र के भीतरी झगड़े—सन् १७४३

में सवाई जयसिंह की मृत्यु हुई; उसी वर्ष राजा शाहू को असाध्य रोग हुआ और छः बरस बीमार रह कर वह परलोक सिधारा (१४-१२-१७४९)। ९-६-१७४७ को नादिरशाह कत्ल किया गया तथा १५-४-१७४८ को मुहम्मदशाह और २१-५-१७४८ को निजाम चल बसा। १७४९ ई० में मारवाड़ का राजा अभयसिंह मरा। इन सब मृत्युओं से उत्तराधिकार के अनेक झगड़े खड़े हुए।

जयसिंह का बड़ा बेटा ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा तो उसके छोटे भाई माधोसिंह ने राज्य का बड़ा हिस्सा माँगा। माधोसिंह के मामा उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने अपने भानजे का पक्ष लिया। राजपूतों के इन तुच्छ झगड़ों में उलझ कर मराठा सरकार भी पथभ्रष्ट हो गई। पहले वह ईश्वरीसिंह के पक्ष में थी, तो भी महाराणा ने मल्हार होल्कर को अपने पक्ष में खींच लिया। बाद में मराठा सरकार ने भी माधोसिंह का पक्ष ले लिया। ईश्वरीसिंह ने पेशवा को याद दिलाई कि उसके पिता और बाजीराव की कैसी दाँतकाटी रोटी थी, लेकिन बालाजीराव ने एक न सुनी और १७४८ ई० में जयपुर राज्य पर चढ़ाई कर दी। ईश्वरीसिंह को झुकना पड़ा। दो बरस बाद वह हरजाने की रकम न चुका सका और मराठों ने फिर चढ़ाई की तो उसने और उसकी रानियों ने आत्महत्या कर ली। इन घटनाओं से राजपूत मराठों के शत्रु बन गये। माधोसिंह जयपुर का राजा बना, पर अब उसका रुख बदल गया, और समूचे राज्य में मराठो के विरुद्ध विद्रोह हुआ जो कठिनाई से दबाया गया।

अभयसिंह के मरने पर उसका भाई बख्तसिंह तथा उसका बेटा रामसिंह आपस में लड़ने लगे। बख्तसिंह ने १७५१ ई० मे राज छीन लिया, पर अगले वर्ष वह मर गया और उसका बेटा विजयसिंह उत्तराधिकारी हुआ।

राजा शाहू के कोई सन्तान थी। उसकी बीमारी के छः वर्षों में उत्तराधिकार के अनेक प्रस्ताव पेश हो कर रद्द होते रहे। ताराबाई ने कहला भेजा कि उसका एक पोता मौजूद है जिसे उसने रजसबाई से बचाने को छिपा दिया था। बड़ी जाँच पड़ताल के बाद यह बात ठीक मानी गई। शाहू की मृत्यु के बाद बालाजी और अन्य प्रधानो ने शाहू की इच्छानुसार ताराबाई के पोते

रामराजा को सातारा की गद्दी दी। रघुजी भोंसले ने भी इस बात में बालाजी का साथ दिया। किन्तु ताराबाई की आकांक्षा अपने पोते के नाम पर स्वयं शासन करने की थी। उसने उमाबाई दाभाडे [१०,१§४] से मिल कर षड्यन्त्र रचा और अपने पोते को भी षड्यन्त्र में मिलाना चाहा, पर उसके न मानने पर सातारा का गढ़ छीन कर उसे कैद कर लिया। पश्चात् यशवन्तराव दाभाडे और दमाजी गायकवाड़ ने महाराष्ट्र पर चढ़ाई कर दी। बालाजी तब हैदराबाद के इलाके में गया हुआ था। उसे एकाएक लौटना पड़ा (अप्रैल १७५१)। विद्रोह को कुचल कर उसने दाभाडे और गायकवाड़ को कैद कर लिया और सातारा गढ़ और रामराजा ताराबाई के हाथ में रहने दिये। दमाजी गायकवाड़ ने गुजरात के कर का पिछला सब चुकाया और आगे से वार्षिक कर और सब विजयों का आधा हिस्सा देना तथा राजकीय सेवा में अपनी सेना भेजना स्वीकार किया। ताराबाई ने भी पेशवा से समझौता किया, उसका गढ़ और कैदी उसके हाथ में रहने दिये गये।

बालाजीराव पेशवा, दाहिने उसका पुत्र विश्वासराव, सामने नरोशंकर दानी (तीनों बैठे हुए) [भा० इ० सं० मं०]

गुजरात के दो अंशों—अहमदाबाद और खम्भात—में अब तक दिल्ली की बादशाहत बची हुई थी। इस समझौते के बाद बालाजी के भाई रघुनाथराव (राघोबा) के नेतृत्व में सम्मिलित मराठा सेना ने समूचा गुजरात जीत लिया (१७५२-५३ ई०)।

§४ उत्तर भारत में पठान और मराठे—१७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और १८वीं के शुरू में प्राचीन पञ्चाल देश में अनेक पठान आ बसे

थे। फर्रुखाबाद और शाहजहाँपुर में तथा बरेली जिले के आँवला और बानगढ़ कस्बों में (दे० नक्शा ५) उनकी खास बस्तियाँ थीं। अफगानिस्तान में पहाड़ को रोह कहते हैं, इससे ये लोग रुहेले कहलाये। पुराने जमीन्दारों से छीन खसोट कर रुहेलों ने बहुत सी जागीरें बना लीं। १७४१ ई० में उनके नेता अलीमुहम्मद ने कटहर के फौजदार को मार डाला। कमजोर मुगल दरबार ने अलीमुहम्मद को ही फौजदार बना दिया, और कटहर या सम्भल का इलाका (उत्तर पंचाल) अब रुहेलखण्ड कहलाने लगा। रुहेलों की छीनाखसोटी तब और भी बढ़ गई। १७४४ में खुद बादशाह ने बानगढ़ पर चढ़ाई की और अलीमुहम्मद को रुहेलखंड से हटा कर सरहिन्द का फौजदार बना दिया। हमने देखा है कि इसी समय—१७४५ ई० में ही—दरभंगे के पठानों ने भी बंगाल के सूबेदार के विरुद्ध विद्रोह कर रघुजी भोंसले को बुलाया था।

उसी वर्ष पंजाब के जबर्दस्त सूबेदार जकरियाखाँ की मृत्यु हुई और उसके बेटे आपस में लड़ने लगे।

नादिरशाह के अधीन अहमद अब्दाली नामक पठान उसका सब से योग्य सेनापति था। नादिर के मारे जाने पर उसने मुकुट धारण किया और कन्दहार आ कर वह अफगानों का शाह बन गया। उसी साल जाड़े में उसने भारत पर चढ़ाई की। जकरिया के बेटे से लाहौर छीन कर वह आगे बढ़ा। दिल्ली से वजीर कमरुद्दीन और शाहजादा अहमद उसके मुकाबले को चले। सरहिन्द के पास मानुपुर पर लड़ाई हुई जिसमें कमरुद्दीन तो मारा गया, पर उसके बेटे मुइनुल्मुल्क तथा सआदतखाँ के भतीजे अवध के सूबेदार सफदरजंग ने अब्दाली को हरा कर लौटा दिया (११-३-१७४८ ई०)। पठानों ने मुगल साम्राज्य से कभी समझौता न किया था। अब्दाली की इस चढ़ाई के समय उत्तर भारत के पठान फिर से मुगल साम्राज्य के अन्त और पठान साम्राज्य की स्थापना के सपने देखने लगे। अलीमुहम्मद सरहिन्द से भाग आया और उसके रुहेलों ने पूरा रुहेलखंड दखल कर लिया।

मानुपुर की लड़ाई के एक मास बाद मुहम्मदशाह की मृत्यु हुई। उसका बेटा अहमदशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उसने मुइनुल्मुल्क को

पंजाब की सूबेदारी तथा साम्राज्य का वज़ीर का पद लिया। तभी अलीमुहम्मद भी मर गया। उसके पीछे चार रुहेले सरदार मिल कर रुहेलखंड का शासन

अहमदशाह दरबार में

बादशाह के बायें बगल में खान मुस्तुरुल्ला, दाहिने दूसरा गाज़ीउद्दीन

[दिल्ली म०, भा० पु० वि०]

चलाने लगे। सफ़दरजंग ने अपने इन लड़ाकू पड़ोसियों से छुटकारा पाने को उन्हें परस्पर लड़ाने की युक्ति सोची। इसीलिए उसने फर्रुखाबाद के कायमखाँ बंगश [१०,१ § २] को रुहेलखंड का सूबेदार बना कर भेजा। कायमखाँ मारा गया, तब सफदर ने उसकी जागीर ज़ब्त कर ली।

सन् १७४६ के अन्त में अब्दाली ने फिर पंजाब पर चढ़ाई की। मुइन ने चनाब पर उसका सामना किया, पर उसे दिल्ली से कोई मदद न मिली और लाचार उसने अब्दाली को वार्षिक कर का वचन दे कर लौटाया।

कायमखाँ के भाई अहमद बंगश ने नेतृत्व में फर्रुखाबाद के पठानों ने विद्रोह किया। उनसे लड़ता हुआ सफदरजंग बुरी तरह हारा (१३-६-१७५०)। तब उसने मराठो तथा तथा ब्रज के जाटों की मदद ली। मल्हार होल्कर और रानोजी शिन्दे (मृत्यु १७५० ई०) का बेटा जयप्पा जयपुर में थे। वहाँ से वे पेशवा की आज्ञा से दोआब आये। ब्रज का नेता अब चूड़ामन के भतीजे बदनसिंह [१०,१६२] का दत्तक पुत्र सूरजमल था। बदनसिंह ने जयपुर के सामन्त रूप में बड़ी शक्ति बना ली थी। सिनसिनी, थूण आदि पुराने गढ़ों की जगह उसने भरतपुर, डीग, कुम्भेर आदि गढ़ बना लिये थे।

मराठों और ब्रज की सेना ने पठानो को हरा कर फर्रुखाबाद का किला फतहगढ ले लिया (१६-४-१७५१)। अहमद बंगश ने आँवले में शरण ली। तब मराठो ने रुहेलखंड पर चढ़ाई की और रुहेलो को कुमाऊँ की तराई तक धकेल दिया। मार्च १७५२ मे सन्धि हुई जिससे दक्खिण पंचाल में इटावा आदि इलाके मराठो को मिले।

इधर दिसम्बर १७५१ में अब्दाली ने पंजाब पर फिर चढाई की, क्योंकि मुइन ने उसके पास कर नं भेजा था। मुइन का दीवान राजा कौड़ामल लड़ता हुआ मारा गया (५-३-१७५२ ई०); तब मुइन को अब्दाली का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। बादशाह सफदरजंग को बुलाता रहा कि वह रुहेलो से सन्धि करके शीघ्र लौटे, पर सफदर मुइन का नाश चाहता था इससे वह ढील ढाल करता रहा। अब्दाली के लाहौर ले लेने पर सम्राट ने उसे लिखा कि वह अब्दाली के खिलाफ मराठों की मदद लावे। इसलिए सफदर ने मराठों से सन्धि की जिसकी मुख्य शर्तें ये थी कि पेशवा को दिल्ली साम्राज्य की सब भीतरी विद्रोहियो और बाहरी शत्रुओं से रक्षा का भार सौंपा गया, जिसके बदले मे उसे अजमेर और आगरे की सूबेदारी, पंजाब और सिन्ध की चौथ, हिसार, सम्भल, मुरादाबाद, बदाऊँ जिलो की जागीर तथा पंजाब के चार महालो की मालगुजारी दी गई। दक्खिन,

मालवा और बिहार बंगाल का आधिपत्य उसे पहले ही माना जा चुका था। इस सन्धि से अब अवध और इलाहाबाद के सिवाय समूचे भारत का आधिपत्य पेशवा को सौंप दिया गया। सफदर मराठा की मदद से काबुल भी वापस लेने की बातें करने लगा।

लेकिन वह जब ढील ढाल कर रहा था, तभी अब्दाली ने लाहौर से अपना दूत दिल्ली भेज कर पंजाब का मुतालबा किया था, और कमजोर बादशाह ने उसे पंजाब दे दिया था। सफदर ने दिल्ली पहुँच कर यह सुना तो मराठों के साथ फौरन पंजाब पर चढ़ाई करने को तैयार हो गया। लेकिन पेशवा मराठों को तभी दक्खिन आने को पुकार रहा था। घरेलू विद्रोह को तो वह दबा चुका था, पर एक और भयंकर शत्रु से उसे वास्ता पड़ा था।

जकरियाखाँ की मृत्यु के बाद से सिक्ख पंजाब में प्रबल होते गये। अब्दाली की पिछली लड़ाई के समय उन्होंने अमृतसर से पहाड़ों तक कब्जा कर लिया था। मुइन ने अब्दाली के लौटने पर अदीना बेग को उन्हें दबाने भेजा। अदीना ने उन्हें हरा कर उनसे यह समझौता किया कि उनसे मालगुजारी नाम को ली जायगी और वे दूसरी प्रजा से चुंगी वसूल कर सकेंगे। यों पंजाब में एक स्थानीय शक्ति भी उठ खड़ी हुई। उस वर्ष के अन्त में मुइन की मृत्यु हुई। उसकी विधवा मुगलानी बेगम पंजाब का शासन चलाने लगी।

§५. दक्खिन में फ्रांसीसी और अंग्रेज शक्ति का उदय—सन् १७४४ में इंग्लैंड और फ्रांस में युद्ध छिड़ा, तब दूमा के उत्तराधिकारी दूप्ले ने चोलमंडल की मद्रास आदि सब अंग्रेजी बस्तियाँ छीन लीं। केवल एक देवनपटम् (फोर्ट सेंट डैविड) अंग्रेजों के पास बचा।

दूप्ले ने नवाब अनवरुद्दीन से मदद ली थी और बदले में उसे मद्रास देने को कहा था। अब वह उस वचन को भूल गया। अनवरुद्दीन ने अपने बेटे को १० हजार फौज के साथ मद्रास पर भेजा। २३० फ्रांसीसियों और ७०० भारतीय सिपाहियों की सेना ने अडयार नदी पर उस फौज को हरा कर उसकी तोपें छीन ली (१७४६ ई०)। इस लड़ाई से सारे भारत में उस नई शक्ति की चर्चा पहुँच गई जिसे रघुजी भोंसले ने पाँच बरस पहले देखा था, और यह

प्रकट हो गया कि युरोपी तरीके पर तैयार की हुई सेना के सामने भारतीय सेना किसी काम की न थी। इंग्लैंड और फ्रांस ने १७४८ ई० में सन्धि करके एक दूसरे की बस्तियाँ लौटा दीं।

डूप्ले ने अब बूमा के इस नये हथियार द्वारा भारतीय राजनीति में हाथ डाल कर फ्रांसीसी साम्राज्य खड़ा करना चाहा। चन्दासाहब का परिवार पुद्दुचेरी में ही था। डूप्ले ने सोचा यदि वह चन्दा को कैद से छुड़ा कर तमिळ देश का नवाब बना सके तो वह स्वयं वहाँ का सर्वेसर्वा हो जाय। उसने राजा शाहू को सात लाख रुपया दे कर चन्दासाहब को छुड़ा लिया (१७४८ ई०)।

तभी निजामुलमुल्क भी चल बसा और उसके दूसरे बेटे नासिरजंग तथा उसके दोहते मुजफ्फरजंग में युद्ध छिड़ा। नासिर ने मराठों से मदद पाई। चन्दासाहब मुजफ्फरजंग से जा मिला तथा दोनों पहले तमिळनाड गये। सीमा पर पहुँचते ही फ्रांसीसी सेना उनसे आ मिली। नवाब अनवरुद्दीन ने दमलचेरी घाट पर उनका सामना किया। अनवरुद्दीन मारा गया और उसका बेटा मुहम्मदअली बची-खुची सेना के साथ कावेरी पार त्रिची (त्रिरुचिरापल्ली) भाग गया।

डूप्ले ने कहा, फौरन त्रिची पर चढ़ाई की जाय; लेकिन मुजफ्फर और चन्दासाहब ने महीनों जश्न-जुलूसों में बिता दिये, और वे तांजोर तक ही पहुँचे थे कि नासिरजंग बड़ी फौज ले कर उनपर आ पड़ा (दिस० १७४९ ई०)। फ्रांसीसी सेना के अनेक अफसर इस्तीफे दे कर चले गये थे। मुजफ्फर ने अपने को मामा के हाथ सौंप दिया। चन्दासाहब पुद्दुचेरी भागा। डूप्ले ने भी सन्धि का सन्देश भेजा, पर साथ ही नासिरजंग के पठान सरदारों से षड्यन्त्र शुरू किया। नासिर आरकाट जा कर ऐश में डूब गया।

तब डूप्ले अपनी ताकत परखने लगा। थोड़ी सी सेना समुद्र के रास्ते भेज उसने मसुलीपटम ले लिया। फिर तमिळनाड के सबसे मजबूत गढ़ जिंजी पर एक टुकड़ी भेज कर एक रात में उसे छीन लिया! नासिर ने तब डूप्ले से सन्धि कर ली। लेकिन तब तक पठान सरदारों वाला षड्यन्त्र भी पक चुका था और एक सरदार की गोली से नासिरजंग का काम तमाम हो गया (५-१२-१७५० ई०)।

मुजफ्फर कैद से छूट कर पुद्दुचेरी गया। उसने नुग्ले को कृष्णा से कन्याकुमारी तक का नाजिम तथा चन्दासाहब को उसका नायब बनाया। मुहम्मद अली फिर त्रिची भागा, और अंग्रेजों, मराठों तथा मैसूर के राजा से मदद माँगने लगा। फ्रांसीसी सेनापति दि बुसी मुजफ्फरजंग को दक्खिन के सूबेदार की गद्दी पर बैठाने गोलकुंडा ले चला। रास्ते में एक बलवा दबाते हुए मुजफ्फर मारा गया। उसके तीन मामा वहीं मौजूद थे। दि बुसी ने उनमें से बड़े, सलाबतजंग को सूबेदार बनाकर प्रयाण जारी रक्खा।

नासिरजंग की मृत्यु पर बादशाह ने पेशवा की प्रेरणा से उसके बड़े भाई गाजिउद्दीन को, जो दिल्ली में ही था, दक्खिन की सूबेदारी दी। गाजिउद्दीन ने पेशवा को अपना नायब नियत किया। सलाबतजंग कृष्णा पर पहुँचा तो पेशवा उसका रास्ता रोके खड़ा था। लेकिन तभी पेशवा को महाराष्ट्र के घरेलू विद्रोह की खबर मिली और अपनी कठिनाई का पता लगने दिये बिना वह सलाबत से एक बड़ी रकम लेना ठीक करके लौट गया। दि बुसी ने सलाबतजंग को औरंगाबाद पहुँचा कर सूबेदार घोषित किया (२० ६ १७५१ ई०)।

उधर चन्दासाहब ने त्रिची को घेर लिया था। अंग्रेजों ने भी अब भारतीय सिपाहियों की सेना तैयार कर ली थी और यह समझ कर कि मुहम्मदअली को बचाने में ही उनका बचाव है, उसकी मदद करने लगे थे। इस प्रसंग में क्लाइव नामक अंग्रेज ने यह प्रस्ताव किया कि आरकाट पर हमला किया जाय तो चन्दा उसे बचाने के लिए त्रिची का घेरा खुद ढीला कर देगा। तदनुसार क्लाइव ने आरकाट ले लिया (११ ६-१७५१ ई०)। परिणाम वही हुआ। चन्दासाहब ने अपने बेटे राजूसाहेब के साथ अपनी आधा सेना आरकाट भेजी। उधर मुहम्मदअली की मदद में मैसूरी सेनापति नन्दिराज तथा मुरारीराव घोरपड़े भी आ गये थे। राजूसाहेब ने आरकाट को आ घेरा। उस फूटे कोटले में मुट्ठी भर सेना के साथ क्लाइव बहादुरी से डटा रहा। मुरारीराव उसकी मदद को आया, तब राजूसाहेब को घेरा उठाना पड़ा (२५ ११ १७५१ ई०)। क्लाइव तब मैदान में निकल कर लड़ता रहा।

घर का विद्रोह दबा कर बालाजी ने फिर औरंगाबाद पर चढ़ाई की।

इसपर दि-बुसी गोलकुंडा से बढ़ा और मराठों को हराता हुआ पूने से १६ मील कोरेगाँव तक आ पहुँचा (२८-११-१७५१ ई०)। इस युद्ध में युरोपी शैली की चुस्त और नियमित गोलाबारी को पहली बार देख कर मराठे दंग रह गये। तो भी उन्होंने जी-जान से मुकाबला किया और चारों तरफ छापे मार कर शत्रु को सताते रहे। रघुजी भोंसले ने पेनगंगा और गोदावरी के बीच का निजाम का पूरबी प्रदेश दबा लिया। सलाबतजंग ने तब अहमदनगर लौट कर लड़ाई बन्द कर दी। पेशवा के बुलाने से उत्तर भारत की मराठा सेना गाजिउद्दीन को साथ ले कर दिल्ली से रवाना हुई (४-५-१७५२)। बुरहानपुर और औरंगाबाद के मुसलमान गाजिउद्दीन के पक्ष में थे। उनकी मदद से उसने औरंगाबाद ले लिया।

इस बीच त्रिची के मोर्चे पर मुहम्मदअली का पलड़ा भारी होते देख तांजोर के राजा ने भी उसकी मदद की। चन्दासाहब योग्य शासक था; वह सफल होता तो मैसूर, तांजोर आदि दक्खिन के सब छोटे राज्यों को जीतने की कोशिश करता; इसी से वे उसके विरोधी थे। अन्त में चन्दासाहब और फ्रांसीसी सेना को श्रीरंगम् द्वीप में हटना पड़ा, जहाँ वे खुद घिर गये। तांजोरी सेनापति ने चन्दासाहब को धोखे से पकड़ कर मार डाला (जून १७५२ ई०)।

मुहम्मदअली ने मैसूरियों को तिरुच्चिरापल्ली देने का वचन दिया था। अब उसने धोखा दिया और गढ़ में अंग्रेजी सेना डाल दी। इस पर नन्दिराज और मुरारीराव फिर घेरा डाल कर पड़े रहे और फ्रांसीसियों का पक्ष लेने लगे।

गाजिउद्दीन की एक सौतेली माँ ने उसे ज़हर दे दिया (१६-१०-१७५२ ई०)। तब सलाबतजंग के राज्य में झगड़ा खतम हुआ और उसने फ्रांसीसियों को बड़े पुरस्कार दिये। दूप्ले ने राजूसाहब को तमिलनाड का नवाब घोषित किया। गाजिउद्दीन ने मराठों को बुरहानपुर औरंगाबाद के इलाके देने को कहा था, पेशवा ने उनका मुतालबा न छोड़ा। अन्त में सलाबतजंग ने भालकी पर पेशवा से सन्धि की (२५-११-१७५२ ई०), और बराड के पच्छिम के तापी-गोदावरी के बीच के प्रदेश दे दिये।

यों पाँच बरस के युद्ध का परिणाम यह निकला कि हैदराबाद में, जिसे मराठे अपने मुँह का कौर समझे हुए थे, फ्रांसीसी शक्ति स्थापित हो गई, पर

उनकी थोड़ी बहुत रोकथाम पेशवा कर पाया । तमिळनाड में जिंजी फ्रांसीसियों के हाथ और आरकाट और त्रिची अंग्रेजों के हाथ चले गये, तथा मैदान में दोनों का युद्ध चलता रहा जिसमें मेंबूरी और मुरारीराव अब फ्रांसीसियों का साथ दे रहे थे।

§६. बालाजीराव की दिशामूढ़ राजनीति—१७५२ तक महाराष्ट्र में भीतरी शान्ति होकर नई व्यवस्था स्थापित हो चुकी, दिल्ली में सफदरजंग द्वारा तथा बंगाल में अलीवर्दीखाँ के साथ हुई सन्धि से प्रायः समूचे भारत का आधिपत्य मराठों को प्राप्त हो चुका तथा भालकी की सन्धि से दक्खिन में भी तमिळनाड के सिवाय सर्वत्र शान्ति हो चुकी थी । बाजीराव की मृत्यु के बाद से घटनाओं की जो नई परंपरा शुरू हुई थी वह यों १७५२ में आकर पूरी हुई । महाराष्ट्र के नेताओं के लिए अब परिस्थिति को देखने सोचने का अवसर था । इन बारह बरसों में परिस्थिति बहुत बदल गई थी।

महाराष्ट्र के भीतरी नेतृत्व में शिवाजी के वंशज अब आँख से ओझल हो गये थे। यों तो राजा शाहू ने भी घटनाओं में कभी कोई सचेष्ट भाग नहीं लिया था, तो भी शाहू का प्रभाव काफी था और कठिन स्थितियों में वह उन्हें सरल ढंग से सुलझा दिया करता था । बालाजीराव पेशवा ने कोई षड्यन्त्र या अनुचित कार्य करके शिवाजी के वंशजों के हाथ से शक्ति नहीं छीनी, प्रत्युत ताराबाई के अपने गलत बर्ताव से तथा बालाजी के अपना कर्तव्य निभाते जाने से राज की सब शक्ति आप से आप उसके हाथ आ गई।

उत्तर भारत में अब नाम का मुगल साम्राज्य मराठों की भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की आकांक्षा का विरोधी नहीं, प्रत्युत साधन बन गया । साथ ही वहाँ पठान मराठों के मुख्य प्रतिद्वन्द्वी रूप में प्रकट हुए । पठान मुगल साम्राज्य के विरुद्ध बराबर संघर्ष करते रहे थे, इसी से मुगल शासक पठानों को प्रायः घृणा की दृष्टि से देखते रहे । अंग्रेजी जमाने में भी पठानों ने अपनी स्वतन्त्रता पूरी तरह कभी न गँवाई और जितनी गँवाई उसे भी वापिस लेने के लिए बराबर लड़ते रहे । इस कारण तथा भारत के लोगों में पारस्परिक विद्वेष बनाये रखने के लिए अंग्रेज पठानों को दूसरे भारतीयों के सामने सदा विदेशी

और सरहद्दी लुटेरा बना कर दिखाते रहे। वास्तव में पठान भारत के सब से पुराने लोगों में से हैं, जो वैदिक काल से यहाँ रहते आये हैं [२,§५; ३,§५]। हाल की शताब्दियों में उनमें बहलोल लोदी और शेरशाह जैसे महापुरुष पैदा हुए थे। बालाजीराव के समय की घटनाओं पर विचार हमें पठानों विषयक अंग्रेजी प्रचार के प्रभाव से मुक्त हो कर करना चाहिए।

दक्खिन में जो समुद्र पार के फ्रांसीसियों और अंग्रेजों की शक्ति उठ खड़ी हुई थी, वह बाजीराव के बाद की बिलकुल नई समस्या थी। उस समय के भारत के लोग यदि अपनी ऐतिहासिक परिस्थिति को ठीक पहचानते तो वे यह देखते कि पिछले १२ बरस की घटनाओं में यही सबसे बड़ी समस्या खड़ी हुई थी, और यह उसी समस्या का बढ़ाव थी जो १५०६ ई० से भारतीय समुद्र में उनके सामने उपस्थित थी। इस समस्या के विषय में यदि वे गहराई और स्पष्टता से सोचते तो उन्हें यह दिखाई देता कि युरोपियों की अजेय जान पड़ने वाली जल और स्थल सेनाओं की जड़ में केवल दो बातें थीं—एक तो नई युद्धकला जिस पर भारतीय ध्यान देते तो उसे १०-१५ बरस में पूरी तरह सीख सकते थे, और दूसरी यह कि फ्रांसीसियों और अंग्रेजों की नई स्थल-सेनाएँ भारतीय सैनिकों की ही बनी थीं, जिन्हें अपनी ओर मिला लेना भारतीयों के लिए बहुत सुकर था। पर पहली बात को किसी भारतीय ने सन् १५०६ से नहीं समझा था और दूसरी को भी १७४० से लग० १८५५ तक प्रायः नहीं देखा।

पर इन बातों को न देखते हुए भी इतना तो उस समय के महाराष्ट्र नेताओं को दिखाई देना ही चाहिए था कि यदि दक्खिन से वे समुद्र पार के विदेशियों को निकाल सकते और उत्तर भारत में पठान समस्या को सुलझा कर शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर सकते तो भारत का साम्राज्य तो उनके हाथ आया ही हुआ था। यह भी उन्हें दिखाई देना चाहिए था कि युरोपियों को भारत से निकालने का कार्य इतने महत्त्व का था कि उसे देखते हुए पठानों से समझौते का कोई भी अच्छा अवसर हाथ से खोना न चाहिए था। और यदि फ्रांसीसियों और अंग्रेजों की सैनिक शक्ति की जड़ पर चोट करने की वे न सोच सकते थे तो भी इतना तो उन्हें सोचना ही चाहिए था कि दक्खिन से युरोपियों

को निकालने के लिए मैसूर आदि सब छोटे राज्यों का सहयोग लेना चाहिए। इसी प्रकार यदि उत्तर भारत में रुहेलों को रुहेलखंड से आगे न बढ़ने देना तथा अफगानिस्तान के पठानों को सिन्ध पार रखना उन्हें आवश्यक लगता था, तो इतना तो उन्हें देखना ही चाहिए था कि इसके लिए राजस्थान, ब्रज, अवध और पंजाब के लोगों का सहयोग लेना तथा दिल्ली साम्राज्य की बची खुची शक्ति का उपयोग करना चाहिए था।

पर बालाजीराव पेशवा ने अपनी परिस्थिति को इस दृष्टि से बिलकुल न देखा। उसकी दृष्टि में दिल्ली साम्राज्य की जड़ पर चोटें लग चुकी थीं, और उसे गिरा कर केवल उसकी शाखाएँ बटोरने का काम बाकी था जिसे बल या छल से कर लेना था। अब मराठा दरबार और सेना में यह मुख्य चर्चा थी कि सब से पहले समूचा दक्खिन मराठा साम्राज्य में आ जाना चाहिए। और चूँकि फ्रांसीसी इस काम में आड़े आ गये थे, इसलिए उन्हें उखाड़ फेंकना बालाजी ने अपना मुख्य ध्येय मान लिया। और तो और उसने यह भी सोचा कि उन्हें निकालने के लिए वह अंग्रेजों का उपयोग कर सकता है। वह स्वयं दक्खिन में उलझा रहा और उत्तर भारत में अपने भाई रघुनाथराव (राघोबा) या अपने सेनापतियों को भेजता रहा।

§७ बालाजी की दक्खिन-दिग्विजय-चेष्टा—सबसे पहले समूचे दक्खिन को जीतना था, और दक्खिन जीतने में मुख्य रुकावट हैदराबाद का फ्रांसीसी सेनापति था, इसलिए पेशवा ने सलाबतजंग के भाइयों और नीजाम से षड्यन्त्र करके बुसी की शक्ति तोड़ने का यत्न किया, पर बेकार। उलटा सन् १७५३ के अन्त में सलाबत ने आन्ध्र तट के चार उत्तरी सरकार (ज़िले)—कोंडपल्ली, एलोर, राजमहेन्द्री, चिकाकोल—फ्रांसीसी कम्पनी को जागीर रूप में दे दिये। किन्तु दक्खिन भारत में फ्रांसीसियों की शक्ति को अपने घर की तरफ से धक्का लगा। फ्रांसीसी और अंग्रेज दोनों अब युद्ध से ऊब गये थे। फ्रांसीसी कम्पनी की आर्थिक दशा अंग्रेजी कम्पनी से बहुत कमजोर थी, उसमें जनता का उत्साहपूर्ण सहयोग न था, वह बहुत कुछ सरकारी सहायता से चलती थी और उस समय की फ्रांसीसी सरकार की तरह कुव्यवस्था का नमूना थी। उसके

संचालकों ने अब दूप्ले को पदच्युत कर उसके स्थान में दूसरे व्यक्ति को भेजा (अगस्त १७५४), जिसने युद्ध रुकवा कर मुहम्मदअली को तमिळनाड का नवाब मान लिया। दोनों पक्षों ने एक आरजी सन्धि का मसविदा तैयार कर स्वीकृति के लिए विलायत भेजा। पर मैसूरियों ने मुहम्मदअली से युद्ध बन्द नहीं किया और हैदराबाद में दि बुसी बना ही रहा।

ठीक इसी समय बालाजीराव दक्खिन भारत के दिग्विजय को निकला। उसने सलाबतजंग के दीवान को अपने साथ मिला कर यह मनवा लिया कि मराठे और निजाम मिल कर मैसूर और अन्य छोटे दक्खिनी राज्यों को जीत लें। मैसूर की सेना तिरुच्चिरापल्ली में अंग्रेजों को घेरे हुए थी, तो भी दि-बुसी को उनके देश पर चढ़ाई करनी पड़ी। पेशवा और सलाबत की सेना के श्रीरंग-पट्टम् पहुँचने पर मैसूरी सेना को त्रिची से लौटना पड़ा, जिससे मुहम्मद अली और अंग्रेजों को चैन पड़ा। मैसूर के साथ ही बेदनूर पर भी चढ़ाई की गई। तुंगभद्रा के दक्खिन, मैसूर और तमिळनाड की उत्तरी सीमा पर सावनूर, कर्नूल और कड़प के पठान सरदारों के तथा गुत्ती के सरदार मुरारीराव घोरपडे के इलाके थे। नासिरजंग की मृत्यु के बाद से ये बहुत कुछ स्वतन्त्र हो गये थे। इनके इलाकों का बड़ा अंश ले कर इन्हें अधीन किया गया (मई १७५६)। निजाम की सेना इसके बाद लौट गई, पर मराठों की यह बेमौसम दक्खिनी चढ़ाई अगले साल भर जारी रही।

§८. मराठा जंगी बेड़े का ध्वंस—इसी बीच महाराष्ट्र के भीतरी शासन में भी पेशवा ने एक आत्मघाती भूल की। कोंकण के आंग्रे भाइयों में से तुलाजी ने विद्रोह कर अनेक अत्याचार किये थे। बालाजी ने अपने उस प्रजाजन के खिलाफ विदेशी अंग्रेजों से मदद ली! तुलाजी का सुवर्णदुर्ग छिन गया (अप्रैल १७५५) और वह विजयदुर्ग भाग गया। अंग्रेजी बेड़ा लौट गया, पर मराठा सेना ने तुलाजी को घेर कर सन्धि के लिए विवश किया। फ्रांसीसियों और अंग्रेजों की सुलह बहुत दिन न टिकी। मध्य और दक्खिनी अमरीका में स्पेनियों का साम्राज्य स्थापित होने [६,२§४] के बाद उत्तरी अमरीका में ओलन्देजों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों ने अपने उपनिवेश बसा लिये

थे। सन् १७५५ में अमरीका के उन अंग्रेजी और फ्रांसीसी उपनिवेशों में युद्ध छिड़ गया। भारत में भी इससे उनका फिर युद्ध छिड़ेगा यह देखते हुए इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री पिट ने वाटसन और क्लाइव को फ्रांसीसियों से लड़ने के लिए मुम्बई भेजा। उनका यह प्रस्ताव था कि अंग्रेज मराठों के साथ मिल कर हैदराबाद पर चढ़ाई करें और बुसी को वहाँ से निकाल दें। ऐसा न हुआ तो क्लाइव और वाटसन ने विजयदुर्ग पर चढ़ाई करके तुलाजी का सब बेड़ा डुबा दिया (१२ ४ १७५६)। तीस वर्ष पहले जिस आंग्रे से अंग्रेज सदा हारते रहे, उसके मराठा बेड़े को यों स्वयं मराठा सरकार ने उनसे डुबवा दिया। क्लाइव और वाटसन वहाँ से मद्रास गये और क्लाइव मद्रास का गवर्नर नियुक्त हुआ।

§९. दिल्ली के शासन में मराठों का पहला हस्तक्षेप—उधर दिल्ली में सन् १७५३ में बादशाह और वजीर सफदरजंग के बीच घरेलू युद्ध छिड़ गया था। बादशाह ने सफदर की जगह कमरुद्दीन [१०,१§३, ऊपर §४] के बेटे इन्तिजामुद्दौला को वजीर बनाया। पिछले साल जब गाजिउद्दीन की हत्या की खबर आई थी तब उसके बेटे शिहाब ने सफदर के पास फूट फूट कर रो कर कहा था कि मुझ अनाथ के तुम्हीं बाप हो। सफदर का दिल पिघल गया और उस १५ साल के लड़के को उसने इमादुलमुल्क का पद दे कर साम्राज्य का मीर बख्शी बनवा दिया था। वही इमाद अब सफदर का जानी दुश्मन हो गया। मराठे भी उस सफदरजंग का साथ देने के बजाय, जिसकी पिछले साल करवाई सन्धि से उन्हें उत्तर भारत पर आधिपत्य मिल गया था, १६ बरस के छोकरे इमाद की तरफ हो गये। लेकिन सूरजमल ने सफदर का साथ दिया। नजीबखाँ रुहेला अपनी सेना के साथ बादशाह के पक्ष में आ मिला। सफदर की सेना धीरे धीरे दिल्ली से धकेली गई। पीछे बादशाह और इन्तिजाम भी इमाद से रुधा और सफदर में समझौते की बात करने लगे। समझौता होने पर सफदर अवध चला गया। इस घरेलू युद्ध में दिल्ली सरकार दिवालिया हो गई और उसकी रही सही सैनिक शक्ति भी चूर हो गई।

पेशवा ने मुख्य मराठा सेना को तब तक रोके रक्खा जब तक दोनों पक्ष क्षीण न हो जायँ। जब रघुनाथ दादा के नेतृत्व में मराठा सेना उत्तर भारत

पहुँची तब बादशाह और इमाद के बीच उसे अपनी-अपनी तरफ मिलाने की होड़ लग गई। मराठों ने फिर इमाद का ही साथ दिया, क्योंकि एक तो उन्हें उसके द्वारा दक्खिन में सुविधाएँ पाने की आशा थी, दूसरे वे और इमाद दोनों ब्रज के राजा को दबाना चाहते थे। परन्तु बादशाह और वजीर इस ख्याल से सूरजमल का पक्ष करते थे कि इमाद प्रबल न होने पाय। राजस्थान से राघोबा ने सीधे ब्रज पर चढ़ाई की (जनवरी १७५४ ई०)। सूरजमल ने कुम्भेरगढ़ की शरण ली। कुम्भेर के मुहासरे में मल्हार होल्कर का बेटा खंडेराव मारा गया। मई में सूरजमल ने समझौता किया और अधीनता मानी।

इस बीच बादशाह और इमाद में खुला झगड़ा हो गया था। वजीर इन्तिजाम ने मराठों और इमाद के खिलाफ सफदरजंग, सूरजमल और राजपूत राजाओं से मदद लेना तय किया। इस उद्देश से वह बादशाह को ले कर दिल्ली से सिकन्दराबाद तक आया, जहाँ सफदर और सूरजमल को भी बुलाया गया था। परन्तु तभी सूरजमल से सन्धि कर के मराठे वहाँ आ पहुँचे। अहमदशाह के डेरे में भगदड़ मच गई। २६ मई को प्रातः दो बजे गहरे अँधेरे में सब लोग दिल्ली भागने लगे। शाही बेगमों में से अधिकांश मराठों के हाथ पड़ी, जिन्हें मल्हार ने इज्जत के साथ पहरे में रख दिया।

मल्हार ने जो कुछ कहा, अहमदशाह को मानना पड़ा। २-६-१७५४ को बादशाह ने इमाद को वजीर बनाया। इमाद ने कुरान हाथ में ले कर शपथ ली कि वह सदा उसका वफादार रहेगा। दरबार से बाहर आ कर उसने बहादुर-शाह के एक पोते को शाही महल की कैद से मँगवाया, उसे आलमगीर के नाम से गद्दी पर बिठाया, और अहमदशाह को कैद में डलवा दिया! तैमूरी वंश की बची खुची इज्जत तो यों धूल में मिली ही, साथ ही जो बात राजस्थान के झगडों में लोगों ने देखी थी वही इन दिल्ली के झगडों में भी देख ली कि मराठा सरकार भी केवल अपने क्षणिक लाभ को देखती हुई कैसे टुच्चे लोगों का साथ देती है। ब्रज के लोग भी मराठों से चिढ़ गये; और सफदरजंग के तजरबे से लोगों को मालूम हो गया कि मराठा सरकार की मैत्री में कितना पानी है!

दिल्ली से राघोबा ने जयप्पा शिन्दे को मारवाड़ भेजा, जहाँ रामसिंह

बिजयसिंह [ऊपर §३] के खिलाफ मदद माँग रहा था। जयप्पा से हार कर बिजयसिंह ने नागोरगढ में शरण ली। जयप्पा ने घेरा डाल दिया। पेशवा का आदेश था कि बिजयसिंह को बहुत न दबाया जाय। पर जयप्पा अड़ गया। इस बीच सफदरजंग की मृत्यु हुई। पेशवा ने जयप्पा को फिर लिखा कि मारवाड़ का मामला निपटा कर अवध जाओ और प्रयाग-बनारस पाने की कोशिश करो। लेकिन हठी जयप्पा मरुभूमि में अटका रहा। उसके अभिमानी बर्ताव से चिढ कर राजपूतों ने उसे कत्ल कर दिया (२४ ७ १७५५)। तब उसका भाई दत्ताजी उसकी जगह डट गया और उसने बिजयसिंह को पूरी तरह हरा कर बीकानेर भगा दिया। फरवरी १७५६ में सधि हुई जिससे अजमेर मराठों को मिला।

मुख्य मराठा सेना साल भर पहले दक्खिन चली गई थी। इस बार पेशवा ने मल्हार को भी दक्खिन की चढाइ के लिए बुला लिया।

पंजाब म मुगलानी बेगम के शासन [ऊपर §४] की अव्यवस्था हटाने के लिए अब्दाली ने अपना प्रतिनिधि भेज दिया था। इमाद ने अदीना बेग [ऊपर §४] को भेज कर उसे भगा दिया (जनवरी १७५६)। पीछे उसने मुगलानी को भी पकड़ मँगाया और अपना सूबेदार लाहौर में रख दिया।

§१० अब्दाली की दिल्ली-मथुरा-चढाई और अंग्रेजों का बंगाल-बिहार जीतना—दक्खिन भारत की राजनीति में विदेशी युरोपी लोग अपनी सेनाओं और जंगी बेड़ों से जिस प्रकार दखल दे रहे थे, उसे बंगाल-बिहार का बूढा नवाब अलीवर्दीखाँ बहुत आशंकित होकर देख रहा था। उसने अपने नाती और उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला को इस खतरे से सावधान किया। विजयदुर्ग पर अंग्रेजी झंडा फहराने के दो दिन पहले अलीवर्दी का देहान्त हुआ और सिराजुद्दौला नवाब बना। अंग्रेज अपना कलकत्ते वाला किला बढाने लगे। वे पहले से ही नवाब के खिलाफ षड्यन्त्र कर रहे थे। सिराज ने हुक्म दिया कि बंगाल में कोई विदेशी युद्ध की तैयारी न करे। अंग्रेजों के न मानने पर सिराज ने चढाइ कर कलकत्ता ले लिया, और बंगाल भर म अंग्रेजों की कोठियाँ दखल कर लीं। अंग्रेज कलकत्ते के दक्खिन फल्ता भाग गये। सिराज ने उन्हें वहाँ बना

रहने दिया, क्योंकि वह उन्हें तुच्छ समझता था। उसके ख्याल से युरोप कोई छोटा सा टापू था, जिसके कुल बाशिन्दे १०-१२ हजार थे, जिनमें से चौथाई अंग्रेज थे! चन्द्रनगर के फ्रांसीसी सिराज की मदद के लिए तैयार थे। बालाजी ने देखा कि बंगाल में भी फ्रांसीसी हैदराबाद की तरह सर्वेसर्वा हो जायेंगे, इसलिए उसने वहाँ के अंग्रेजों के मुखिया ड्रेक को सन्देश भेजा कि नवाब से न दबे, मराठा सेना मदद को आ सकती है। ड्रेक ने वह मदद न ली, तो भी बालाजी ने अपनी सारी शक्ति इस ओर लगा दी कि बुसी बंगाल न पहुँचने पाय। उसने आन्ध्र तट की फ्रांसीसी जागीर में बलवा करा दिया, जिसे दबाने में बुसी को तीन मास लग गये। इस बीच वाटसन और क्लाइव ने मद्रास से जा कर कलकत्ता ले लिया (२-१-१७५७)।

इसी बीच पंजाब में भी भयंकर स्थिति पैदा हो गई थी। इमाद का पंजाब लेना केवल अब्दाली को चिढ़ाना था। १७५६ के जाड़े में अब्दाली ने पंजाब पर चढ़ाई की। जनवरी में वह दिल्ली की तरफ बढ़ा। इमाद को कुछ न सूझा कि क्या करे। गृह-युद्ध के बाद के दिवालियापन से दिल्ली की सेना तितर-बितर हो चुकी थी। मराठे दक्खिन चले गये थे। इमाद ने नजीबखाँ, सूरजमल और सफदर के बेटे शुजाउद्दौला से व्यर्थ मदद माँगी। ग्वालियर से अन्ताजी माणकेश्वर अपनी ३ हजार की टुकड़ी के साथ उसकी मदद को आया कि जो कुछ भी प्रतिरोध हो सके किया जाय।

अब्दाली के नजदीक आने पर रुहेले उससे जा मिले। कायर इमाद चुपके से दिल्ली से निकला और अब्दाली की छावनी में जा कर आत्म-समर्पण कर दिया (१६-१-१७५७)। रुहेलों के बीच से मुश्किल से रास्ता काटते हुए अन्ताजी दिल्ली के दक्खिन फरीदाबाद तक हट गया। अब्दाली ने दिल्ली में प्रवेश किया और नादिरशाह की तरह शहर के धन और इज्जत की मुहल्लेवार लूट शुरू की। बड़े-बड़े अमीर-उमरावों को साधारण चोरों की तरह यातनाएँ दी गईं।

२० हजार अफगान सवारों ने फरीदाबाद में अन्ताजी को एकाएक घेर लिया। दिन भर लड़ने और अपनी तिहाई सेना कटाने के बाद वह घेरा तोड़

कर मथुरा जा निकला। वहाँ उसने सूरजमल से कहा, आओ मिल कर मुकाबला करें। पर सूरज तैयार न हुआ, और जब २२ फरवरी को अब्दाली दिल्ली से दक्खिन बढ़ा तो उसने कुम्भेरगढ़ में शरण ली। ब्रज में घुसते ही अब्दाली ने अपनी सेना को खुली लूट की इजाजत दे दी। "सूरजमल ब्रज की यह बरबादी कुम्भेर से देखता रहा।" किन्तु उसके बेटे जवाहरसिंह ने कहा कि जाटों की लाशों के ऊपर से अफगान भले ही ब्रज में घुसें, ऐसे ही न घुस पायेंगे। १० हजार जवानों के साथ जवाहर ने मथुरा का रास्ता रोका। उस टुकड़ी के कटे जाने पर वह थोड़े से साथियों के साथ बच कर निकल गया और अफगानों ने मथुरा में प्रवेश किया। २१ मार्च को अफगान हरावल आगरे में घुसी। वहाँ किले की तोपों ने मुकाबला किया। इस बीच सड़ती हुई लाशों के कारण अफगान सेना में हैजा फैला और अब्दाली ने एकाएक वापसी का हुक्म दिया। नजीबखाँ रुहेले को दिल्ली में अपना प्रतिनिधि नियत कर, तथा पंजाब का शासन अपने बेटे तैमूर और अपने मुख्य सेनापति जहानखाँ को सौंप कर, कई करोड़ की लूट लिये वह वापस चला गया। वापसी में पटियाले के सिक्ख जाट आलासिंह तथा दूसरे सिक्खों ने उसकी लूट का बोझ कुछ हलका किया।

क्लाइव के कलकत्ता वापस लेने पर सिराज ने बुसी को मदद के लिए लिखा। लेकिन बुसी को तुरन्त न आते देख तथा अब्दाली के हमले का आतंक बंगाल तक पहुँच जाने से उसने क्लाइव से समझौते की बात की। उसे समझौते की बातों में रखते हुए क्लाइव ने चन्द्रनगर भी ले लिया (२३ ३ १७५७)। उधर आन्ध्र जिलों का पूरा बन्दोबस्त कर बुसी गंजाम पहुँचा और समाचारों की राह देखने लगा कि इतने में उसे चन्द्रनगर के पतन की खबर मिली। तब बंगाल जाना व्यर्थ समझ वह दक्खिन लौटा और आन्ध्र तट की अंग्रेजी बस्तियों को एक एक कर सफाई करता गया।

तभी क्लाइव ने सिराज पर चढ़ाई कर दी। अलीवर्दी का बहनोई मीर जाफर सिराज का सेनापति था। क्लाइव ने उसके साथ षड्यन्त्र रचा। सिराज मुर्शिदाबाद से बढ़ा। हुगली और मोर के संगम पर पलाशी गाँव में लड़ाई हुई (२३ ६ १७५७)। लड़ाई के बीच में मीरजाफर शत्रु से जा मिला। सिराज

हारा और भाग गया। क्लाइव ने मीरजाफर को मुर्शिदाबाद ले जा कर नवाब बनाया। मीरजाफर ने अंग्रेज कम्पनी और उसके कर्मचारियों को प्रकट और गुप्त सन्धियों से करीब पौने तीन करोड़ रुपया हरजाने, भेंट और रिश्वत के रूप में तथा चौबीस-परगना जिला जागीर के रूप में देना स्वीकार किया था। मुर्शिदाबाद के खजाने में कुल डेढ़ करोड़ रुपया था। इसलिए जवाहरों और सामान को नीलाम कर और नकद मिला कर आधी रकम नावों में कलकत्ते भेजी गई और बाकी को तीन सालाना किस्तों में देना तय हुआ।

उत्तर और पूरब भारत में जब ये घटनाएँ घट रही थीं तब मराठा और मुगल साम्राज्यों की रक्षा का अन्तिम दायित्व जिसे सौंपा गया था, वह भारत का प्रमुख नेता बालाजी दिशा भूल कर अपनी दक्खिन चढ़ाई में ही उलझा था! अब्दाली का पंजाब लेना सुन उसने मल्हार और राघोबा को उत्तर भेजा, पर स्वयं कर्णाटक की तीसरी चढ़ाई जारी रक्खी। उस प्रसंग में मैसूर राज्य के १४ जिले उसके हाथ आये। बलवन्तराव मेहन्देले को वहाँ छोड़ कर १६ जून को बालाजी पूना लौटा और उसके बाद सलाबतजंग के राज्य में षड्यन्त्र करके बुसी को निकालने की कोशिश में अपनी सारी ताकत लगा दी। लेकिन बुसी ने भी उसकी सब कोशिशें बेकार कर दीं (जनवरी १७५८)।

बलवन्तराव ने मैसूर के इलाके काबू कर तथा कडप, कर्नूल, सावनूर के नवाबों के गुट्ट को कुचल कर तमिळ सीमा के घाटों तक अधिकार कर लिया और तब आरकाट के नवाब मुहम्मदअली से बकाया चौथ तलब की। हम देख चुके हैं कि १७५५ ई० से अंग्रेजों का कठपुतली मुहम्मदअली वहाँ निर्विवाद स्थापित हो चुका था। बलवन्तराव अब भी तामिळनाड में नहीं आया; उसने केवल चौथ माँगी, जो अंग्रेजों ने दे दी। लेकिन अब वहाँ फ्रांसीसियों ने भी फिर युद्ध छेड़ कर त्रिची को घेर लिया और पुदुच्चेरी और आरकाट के बीच विन्दवास ('वान्दिवाश') तथा नौ और गढ़ ले लिये। यों सन् १७५७ में जहाँ बंगाल-बिहार पर अंग्रेजों और आन्ध्र तट पर फ्रांसीसियों का पूरा अधिकार हो गया, वहाँ तमिळनाड में फिर युद्ध जारी हो गया।

§११. मराठों का पंजाब जीतना—रघुनाथ १४ फरवरी को इन्दौर

पहुँचा । लेकिन उसे सामान जुटाते समय लग गया । मई म मराठा हरावल ने आगरा पहुँच सूरजमल से समझौता किया । रुहेलों से दोआब वापिस ले कर उन्होंने दिल्ली को घेर लिया । नजीब ने सन्धि करके दिल्ली छोड़ दी (६ १७५७) और यह भी कहा कि कहो तो मैं अब्दाली के पास जाऊँ और सीमाएँ निश्चित कर स्थायी सन्धि करा दूँ । यों मराठों के लिए अब भी मौका था कि अब्दाली और रुहेलों से समझौता करके और उन्हें साथ ले कर बिहार बंगाल पर चढ़ाई करते और वहाँ अंग्रेजों के पैर जमने न देते । उत्तर भारत में रुहेलों से समझौता हो जाता तो वे निजाम के राज्य और तमिळनाड में दखल दे कर वहाँ से भी विदेशियों के पैर उखाड़ने पर पूरा ध्यान लगा पाते । किन्तु रघुनाथ ने नजीब की बात पर कान न दिया और पूरब की चिन्ता करने के बजाय उत्तर—पंजाब—का रास्ता पकड़ा । मराठों के

रघुनाथराव [भा० इ० म० म०]

उमड़ने से पंजाब में सिक्ख भी विद्रोह करने लगे । अन्त में २१ मार्च १७५८ रघुनाथ ने सरहिन्द जीत लिया, तथा एक मास बाद लाहौर में प्रवेश किया । तैमूर और जहानखाँ अटक पार भाग गये, मुलतान में भी मराठा छावनी पड़ गई । इसके बाद पंजाब का शासन अदीना बेग को सौंप कर रघुनाथ दक्खिन लौट गया ।

§१२ फ्रांसीसी शक्ति का अन्त—सन् १७५६ में इंग्लैंड से फिर युद्ध छिड़ने पर फ्रांसीसी सरकार ने लाली नामक सेनापति को भारत भेजा ।

अप्रैल १७५८ में चोळ-मंडल पहुँच कर उसने देवनपटम को घेर लिया और महीने बाद ले लिया। तब उसने बुसी को लिखा, "अब मद्रास लेते ही मेरा इरादा स्थल या समुद्र के रास्ते फौरन गंगा पर पहुँचने का है।" लाली के आने से पहले बुसी आन्ध्र तट के जिलों का पक्का बन्दोबस्त कर हैदराबाद में पूरा प्रभुत्व स्थापित कर चुका था। लाली से वह बड़ी आशाएँ लगाये हुए था।

देवनपटम के बाद मद्रास की बारी थी। लेकिन पुदुदुचेरी का खजाना खाली था। रुपये के लिए लाली ने तांजोर पर चढ़ाई की, पर उसमें उसे सफलता न हुई। वह वीर और कुशल सेनापति था, लेकिन उतावला और किसी की न सुनने वाला। अब मद्रास पर हमला करने के लिए उसने त्रिची और मसुलीपटम वाली टुकड़ियों तथा बुसी को भी बुला लिया। बुसी ने उसे समझाना चाहा कि उसे हैदराबाद मे रहने दिया जाय। लेकिन लाली ने कहा, "मुझे बादशाह और कम्पनी ने हिन्दुस्तान भेजा है अंग्रेजो को मार भगाने के लिए।... मुझे इससे क्या मतलब कि अमुक अमुक राजा अमुक नवाबी के लिए लड़ रहे हैं?"

बुसी के चले आने पर आन्ध्र तट के एक पालयगार (जमींदार) ने विशाखपट्टन ('विजागापटम') ले कर अंग्रेज कम्पनी को अपनी फौज भेजने को लिखा। क्लाइव ने बंगाल से कर्नल फोर्ड को वहाँ भेज दिया। फोर्ड ने बचे-खुचे फ्रांसीसियो के साथ सलाबतजग को भी मसुलीपटम पर हरा दिया। सलाबत ने आन्ध्र तट का ८० × २० वर्ग मील प्रदेश अंग्रेजो को दे दिया और आगे से फ्रासीसियो से सम्बन्ध त्याग दिया। यो जिस जमीन से लाली को युद्ध का सारा खर्चा मिल सकता था, वह उसकी अपनी बेसमझी और जल्दबाजी से अंग्रेजो के हाथ चली गई।

इस बीच राजूसाहब [ऊपर § ५] ने आरकाट ले लिया और लाली ने मद्रास को आ घेरा था। लेकिन ठीक संकट के समय अंग्रेजी बेडे के आ जाने से लाली को मद्रास से हटना पड़ा। (१७-२-१७५९)।

सलाबत मसुलीपटम आया तो पीछे उसके भाई निजामअली ने हैदराबाद ले लिया। लौटने पर सलाबत को उसे अपना दीवान बनाना पड़ा और वह खुद नाम का सूबेदार रह गया।

सन् १७५६ के शुरू में पेशवा ने मैसूर में गोपालराव पटवर्धन को भेजा। उसे पहले तो बराबर सफलता हुई, पर जब वह बेंगलूर को घेरे हुए था, तब हैदरअली नामक एक मैसूरी सेनापति ने बहादुरी से मुकाबला करके घेरा छुड़ा दिया। गोपालराव वहाँ से तमिळनाड गया, पर वहाँ उसे कुछ न सूझा कि क्या करे। हैदरअली इसके बाद श्रीरंगपट्टम् जा कर उस राज्य का सर्वेसर्वा बन गया।

बालाजी अब अंग्रेजों से आशंकित हो उठा था। सन् १७५८ में उसने उनसे जंजीरा के सिद्दी के खिलाफ मदद माँगी, जो उन्होंने नहीं दी। उन्हें डर था कि जंजीरा के बाद वह मुम्बई लेने की कोशिश न करे। फिर १७५६ ई० में अंग्रेजों ने धोखे से सूरत का कोटला छीन लिया। बालाजी तब फ्रांसीसियों से मिल कर जंजीरा और मुम्बई पर चढ़ाई की सोचने लगा। लेकिन अक्तूबर १७५६ में अब्दाली के फिर चढ़ाई करने पर मराठे उधर फँस गये, और ठीक इसी समय आयरकूट इंग्लैंड से ताजी सेना के साथ मद्रास आ पहुँचा। उसने आते ही विन्दवास ले लिया। उस गढ़ को वापस लेने की चेष्टा में लाली की हार हुई और बुसी कैद हुआ (२२ १० १७५६)। इसके बाद मुरारीराव घोरपड़े, जो फ्रांसीसियों की मदद कर रहा था, अपने दल के साथ तमिळनाड से चलता बना और कूट ने आरकाट भी ले लिया।

निजामअली ने पेशवा के रोकने पर भी अंग्रेजों से साँठगाँठ की। इसलिए १७५६ के अन्त में पेशवा ने चिमाजी अप्पा के पुत्र सदाशिवराव तथा अपने बेटे विश्वासराव को उस पर चढ़ाई के लिए भेजा। इब्राहीमखाँ गार्दी* नामक बुसी का सिखाया हुआ एक पदातिनायक उनकी सेना में था। मांजरा नदी के काँठे में उद्गीर पर हार कर निजामअली अउसा के कोटले में घिर गया। चार दिन बाद उसने सन्धि की और असीरगढ़, बुरहानपुर, दौलताबाद, अहमदनगर, बीजापुर के किले तथा ६२ लाख आय का प्रदेश मराठों को दे दिया (जन० १७६०)। यों निजामअली की शक्ति चूर हुई और मराठे फिर तीन

* 'गार्दी' शब्द का मूल फ्रांसीसी गार्द है।

इ० प्र०—३२

वर्ष मे समूचा दक्खिन जीत लेने के सपने देखने लगे ।

सितम्बर १७६० मे कूट ने पुद्दुचेरी को जा घेरा । लाली ने तब बालाजी-राव से मदद माँगी । जिंजी का गढ़ तब तक फ्रांसीसियों के हाथ मे था, और पेशवा की मदद के बदले मे लाली उसे देने को तैयार था । पेशवा के लिए तमिळनाड में दखल दे कर युरोपी शक्ति को तोड देने का यह फिर सुनहरा अवसर था, पर वह मोलभाव करता रह गया—इस कारण कि पठानों से समझौता न कर के उसने अपनी सारी शक्ति तब उत्तर भारत में लगा रक्खी थी—और जनवरी १७६१ मे कूट ने पुद्दुचेरी ले ली । बाद मे जिंजी भी ली गई । १७६३ ई० मे पैरिस की सन्धि में फ्रांस को उसकी पुरानी बस्तियाँ लौटा दी गईं ।

§१३. मराठा अफगान युद्ध—सन् १७५८ के अन्त मे पेशवा ने मल्हार होल्कर के बजाय दत्ताजी शिन्दे को आगरे का सूबेदार बना कर भेजा । पंजाब पर अधिकार दृढ करना और बिहार को जीतना, ये दो कार्य उसे सौंपे गये थे । अदीनाबेग मर चुका था; उसकी जगह दत्ताजी का छोटा भाई साबाजी लाहौर का सूबेदार नियत किया गया । पेशवा ने आखिर अब यो समझ लिया था कि इमाद लबार और निकम्मा आदमी है । उसकी जगह शुजाउद्दौला [ऊपर § १०] को वजीर बनाने का प्रस्ताव था । इसके बदले मे शुजा से प्रयाग और बनारस इस तरह ले लेना था कि दत्ताजी बादशाह और वजीर के साथ बिहार पर चढ़ाई करे और उसी समय रघुनाथदादा बुन्देलखड के रास्ते प्रयाग पर उससे आ मिले ।

बिहार की चढाई के लिए नजीब से हो सके तो समझौता करना, अन्यथा उसे उखाड़ देना था, क्योंकि उत्तर भारत में मराठा नीति के मार्ग में वह एकमात्र काँटा था । दत्ताजी कोरा सैनिक था । इमाद तो उसके आगे झुक कर वजीर बना रहा, पर नजीब से समझौता न हो पाया । बालाजी को बिहार-बंगाल अंग्रेजों से वापिस लेना था तो पठानों से समझौता करना ही चाहिए था । पठानों को उखाडना ऐसा आसान काम न था जो रास्ते चलते हो जाता । दूसरी तरफ उनसे समझौता हो जाता तो बिहार-बंगाल फिर से जीतने मे वे बहादुरी से साथ देते । मल्हार होल्कर जो उत्तर भारत का सबसे अनुभवी मराठा

सेनापति था, नजीब को अपना बेटा मानता था। पेशवा को नजीब से समझौता करना था तो यह काम उसे सौंपने से आसानी से हो जाता। मल्हार और नजीब के इस ताल्लुक़ से यह भी प्रकट है कि पठानों को उस युग के भारतीय उस दृष्टि से न देखते थे जिस दृष्टि से अंग्रेज़ों ने उन्हें बाद में देखने की आदत डाल दी।

जून १७५९ में दत्ताजी और नजीब में युद्ध छिड़ गया। हरद्वार के ३२ मील दक्खिन गंगा के खादर में शुक्रताल नामक स्थान है (दे० नक्शा ५)। नजीब ने उसकी मोर्चाबन्दी कर गंगा पर पुल बाँध वहाँ शरण ली। दत्ताजी ने उसका घेरा डाल दिया। किन्तु शुक्रताल दूसरा नागौर बन गया और उसमें फँस कर दत्ताजी न तो बिहार पर चढ़ाई कर सका और न पंजाब को बचा सका। उसने गोविन्दपन्त बुन्देले* को हरद्वार के रास्ते नजीबाबाद पर धावा मारने भेजा। वह धावा सफल न हुआ। गोविन्द तब शुक्रताल के पूरब तरफ पहुँचा, किन्तु वहाँ अवध की सेना खुद शुजा के नेतृत्व में रुहेलों की मदद को आ गई थी, इससे वह कुछ न कर सका। अवध का नवाब शुजा, अपने पिता सफ़दरजंग के तजरबे [ऊपर § ६] से बालाजी की मैत्री का मूल्य जान चुका था, इसलिए वह नजीब को सहायता दे रहा था।

इस बीच अब्दाली ने पंजाब पर चढ़ाई कर दी थी। दत्ताजी की मदद न आती देख साबाजी को लाहौर छोड़ना पड़ा, और वह शुक्रताल पहुँचा (८।११।१७५९), परन्तु दत्ताजी इसके बाद भी वहीं अड़ा रहा।

नवम्बर बीतते-बीतते अब्दाली ने सरहिन्द ले लिया। इमाद ने यह सोच कर कि कहीं अब्दाली बादशाह का उपयोग न करे, आलमगीर २य को क़त्ल कर दिया और कामबख्श के एक पोते को शाहजहाँ २य नाम से गद्दी दी। एक बरस पहले इमाद ने आलमगीर २य के शाहज़ादे अलीगौहर को मारने की कोशिश की थी। अलीगौहर बच कर अवध भाग गया था और बिहार को जीतने की कोशिशें कर रहा था। उसने भी अब अपने को शाहआलम नाम से बादशाह घोषित किया।

---

* गोविन्दपन्त का असल उपनाम खेर था, पर वह अपने को बुन्देला कहता था।

८ दिसम्बर को दत्ताजी ने शुक्रताल का घेरा उठाया और जमना पार कर अब्दाली के मुकाबले को बढ़ा। तरावडी पर अफगान हरावल से उसकी मुठभेड हुई; पर अब्दाली जमना पार कर नजीब से जा मिला और दोआब के रास्ते दिल्ली की ओर बढा। दत्ताजी यह देख फौरन दिल्ली आ गया और जमना के घाटों पर सेना तैनात कर प्रतीक्षा करने लगा। ६ जनवरी १७६० को दिल्ली के सामने जमना के बीच टापू में अफगानों से लड़ता हुआ वह मारा गया। अब्दाली ने दिल्ली ले ली; इमाद भरतपुर भागा; जयप्पा शिन्दे का बेटा जनकोजी बची-खुची मराठा सेना के साथ नारनौल की तरफ हट गया।

इसी बीच मल्हार ने तेजी से राजस्थान से आ कर नारनौल के पास मराठा सेना का नेतृत्व ले लिया। अब्दाली ने दिल्ली से डीग पर, जहाँ सूरजमल था, चढ़ाई की; पर मल्हार उसके पीछे दिल्ली की ओर बढ़ा। अब्दाली को पीछे हटना पड़ा और मल्हार इसी तरह उसे दिल्ली से दोआब वापस ले गया। सिकन्दराबाद के पास नजीब का खजाना लूटने के लिए मल्हार दो-चार दिन रुक गया; वहाँ जहानखाँ उस पर अचानक आ टूटा (४ मार्च)। मल्हार हार कर भरतपुर भागा; लेकिन उसकी दाँवपेंच की लडाई से इस बार ब्रज भूमि युद्ध से साफ बच गई।

दत्ताजी की मृत्यु के एक दिन पहले तक की खबरें पेशवा को उद्‌गीर की सन्धि से पहले मिल चुकी थीं। वह दक्खिन से बड़ी सेना भेज रहा था। इसलिए नजीब ने अब्दाली से प्रार्थना की कि वह गर्मियों में न लौटे। अब्दाली ने गंगा पर अनूपशहर में छावनी डाल दी। पेशवा ने भी अपनी सेना शीघ्र भेजी। सदाशिवराव भाऊ, जिसने दक्खिन के युद्धों में योग्यता दिखाई थी, इस सेना का नेता था। ३० मई को वह ग्वालियर आ पहुँचा। उत्तर भारत की मराठा सेना ब्रज में थी, उसका कुछ अंश गोविन्द बुन्देले के अधीन इटावे में था। भाऊ ने मल्हार और गोविन्द को लिखा था कि राजस्थान बुन्देलखंड में मित्र ढूँढें और शुजा को अपनी तरफ मिलायें। उसने बुन्देले को इटावे पर नावें तैयार रखने को भी लिखा था, जिससे वह आते ही जमना पार कर अवध और रुहेलखंड के बीच अपनी सेना का पच्चर घुसेड़ दे। पर उस साल बरसात

जल्दी शुरू हुई और जमना में भारी बाढ़ आ गई थी।

सदाशिवराव [भा० इ० सं० मं०]

सदाशिव ने राजपूत राजाओं को मनाने की बड़ी कोशिशें कीं, पर उन लोगों ने तटस्थ रहना ही तय किया* और जुलाई में शुजा भी अब्दाली से आ मिला। शुजा ने सोचा कि अब्दाली जीत गया तो वापस चला जायगा, पर मराठे जीत गये तो उसे अधीन करेंगे। यदि १७४३ में जयपुर के उत्तराधिकार का प्रश्न आने के समय से और उससे भी बढ़ कर सफदरजंग की

* यह प्रचलित विश्वास है कि भाऊ के अभिमानी बर्त्ताव से खीझ कर राजस्थान और ब्रज के राजा अलग हो गये। समकालीन कागजों की नई खोज से यह बिलकुल गलत सिद्ध हुआ है। उन राजाओं को रुठाने में बालाजीराव की १७४३ के बाद की नीति का चाहे जितना दोष रहा हो, भाऊ का कोई दोष नहीं था।

१७५२ वाली सन्धि के समय से मराठा सरकार किसी टिकाऊ और दूरदर्शितापूर्ण नीति पर चली होती तो इस समय मराठों की ऐसी असहाय दशा न होती।

१४ जुलाई को भाऊ आगरा आया। तब भी जमना की बाढ़ उतरी न थी जिससे उसे दोआब में घुसने का इरादा छोड़ना पड़ा। मल्हार और सूरजमल उत्तर भारत के अनुभवी योद्धा थे। उन्होंने सलाह दी की भरतपुर को आधार बना कर तोपखाने, पैदल सेना, स्त्रियां और भारी सामान को वहाँ छोड़ दिया जाय और हलके सवारों के साथ शत्रु से मुठभेड़ की जाय। इस ढंग से मराठे पंजाब की तरफ बढ़ कर अब्दाली का अफगानिस्तान से सम्बन्ध भी काट सकते थे। पर सदाशिव फ्रांसीसी शैली से लड़ने वाले अपने गार्दियों का अचूक प्रभाव देख चुका था, उसने वह सलाह न मानी। इससे सूरजमल का जी ऊब गया।

२ अगस्त को भाऊ ने दिल्ली ले ली। इससे उसे कोई वास्तविक लाभ न था, तो भी शत्रु पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा, और सन्धि की चर्चा जारी हो गई। सन्धि की बात शुरू होते ही सूरजमल रूठ कर चला गया। उसे अलग होने का कोई बहाना चाहिए था। मराठे और अफगान दोनों पर उसे भरोसा न था; वे दोनों लड़ मरें तो अच्छा, इसीसे उसे अब सन्धि होना पसन्द न था। मराठे यदि पंजाब पर दावा छोड़ दें और रुहेलों को न सताने का वचन दें तो अब्दाली अब भी लौटने को उत्सुक था। परन्तु पेशवा की पंजाब के लिए अड़ थी और भाऊ को भी दिल्ली लेने के बाद अपनी शक्ति का मिथ्याभिमान हो गया था। यों सन्धि की बातें विफल हुईं।

अक्तूबर में शाहआलम को बादशाह तथा शुजाउद्दौला को वजीर घोषित कर सदाशिव पंजाब की तरफ बढ़ा। उसका उद्देश सरहिन्द ले कर अब्दाली का आधार काट देना था। उसने जमना के पच्छिम तट पर कुंजपुरा ले लिया, जहाँ अफगानों की १६ लाख की नकदी और माल उसके हाथ लगा और सरहिन्द का फौजदार मारा गया। इससे सिक्खों के भी हौसले बढ़े और उन्होंने लाहौर और स्यालकोट घेर लिये। सदाशिव की यह योजना बहुत अच्छी होती यदि वह अगस्त में ही पंजाब की ओर बढ़ता, जब कि जमना में बाढ़ थी, और यदि वह पुरानी मराठा शैली से लड़ता होता। लेकिन भारी सामान, तोपखाने

और पैदल सेना को लिये हुए अपने आधार से अटूट सम्बन्ध रक्खे बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता, युरोपी नई युद्ध शैली के इस सिद्धान्त को उसने बिलकुल समझा न था। उसने अपना आधार भरतपुर तथा दिल्ली में भी न रक्खा था, वह सब कुछ साथ लिये फिरता था, मानो उसका आधार हवा में हो। जब वह कुंजपुरा से आगे कुरुक्षेत्र जा रहा था, तभी खबर मिली कि नीचे बागपत पर जमना पार कर अब्दाली उसके और दिल्ली के बीच आ गया। सदाशिव तब पीछे लौटा। १ नवम्बर को पानीपत पर दोनों सेनाएँ आमने सामने हुईं, और मोर्चाबन्दी कर जम गईं।

दो मास तक चपावलें (झपटा झपटी) होती रहीं। शुरू में मराठों ने मैदान काबू रक्खा। लेकिन ७ दिसम्बर रात की एक चपावल में बलवन्तराव मेहेंदले, जो भाऊ का मानो दाहिना हाथ था, मारा गया। तब से मराठा पक्ष दबने लगा। अफगान सवारों ने चौगिर्द इलाके काबू कर पटियाले के आलासिंह से मराठों का सम्बन्ध तोड़ दिया। भाऊ ने गोविन्द बुन्देले को रुहेलों और अवध के इलाकों पर छापे मारने का काम सौंपा था। अब्दाली द्वारा भाऊ का दिल्ली और दक्खिन का रास्ता काट दिया जाने के बाद भाऊ ने गोविन्द बुन्देले को इटावे से दोआब के बीचोंबीच होकर मुजफ्फरनगर तक पहुँचने का आदेश दिया था। यदि गोविन्द मुजफ्फरनगर तक पहुँच जाता तो दिल्ली के बजाय दक्खिन का दूसरा रास्ता भाऊ के लिए खुल जाता। वह इटावे से गाजियाबाद तक बढ़ा, और वहाँ मारा गया (१७ दिसम्बर)। इसके बाद मराठा सेना पूरी तरह घिर गई। अन्त में १४ जनवरी को सवेरे वह निराश हो कर लड़ने को निकली।

अब्दाली की ६२ हजार सेना के मुकाबले में भाऊ की ४५ हजार थी। उसका बायाँ पहलू इब्राहीम गार्दी के तिलंगे बन्दूकचियों का था, मध्य में स्वयं भाऊ और सब से पच्छिम तरफ मल्हार था। व्यूह रचना में भी भाऊ ने युरोपी शैली को ठीक न समझा था। पैदल बन्दूकचियों की पाँत के पीछे पीछे सवारों को रखना जरूरी था, जिससे बन्दूकची जब एक बार शत्रु को पछाड़ें तभी सवार हमला करके उसे कुचल दें। लेकिन भाऊ के पदाति एक तरफ थे और सवार दूसरी तरफ। पदातियों की बन्दूकों के सिवाय दोनों सेनाओं की शस्त्र-सज्जा में भी

वही अन्तर था जो नादिरशाह की लड़ाई के समय। अफगान रिसाला जिज़ैलों से लड़ता था, मराठे सवार भालों-तलवारों से। अफगानों की ऊँटों पर लदी दस्ती जम्बुरकों के मुकाबले में मराठों का भारी और अचल तोपखाना था।

इब्राहीम गार्दी के तिलंगों ने रुहेलों को पछाड़ दिया, पर उनके पीछे से कोई दत्ताजी शिन्दे जैसा रिसाले का नेता नहीं बढ़ा। भाऊ ने अफगान मध्य को पीछे धकेल दिया, लेकिन अब्दाली ने अपने भगोड़ों को घेर कर वापस लौटाया। मराठा दाहिना पहलू लड़ा ही नहीं। मल्हार के सामने नजीब था जिसे मल्हार अपना बेटा कहा करता था; उन्होंने आपस में समझौता कर लिया। दो बजे के बाद विश्वासराव के माथे में गोली लगी; उसे दो घाव पहले लग चुके थे। भाऊ का वह प्रिय भतीजा अपने दादा की तरह सुन्दर और होनहार था। उसके शव को हाथी पर लेटवा कर भाऊ ने एक बार निहारा, और फिर सेनापति का कर्त्तव्य भूल वह घमसान में कूद पड़ा। बिना नेता की मराठा सेना में अब हर किसी ने अपनी समझ से काम लिया। मल्हार अपने दल को पच्छिम भगा कर शत्रु की पाँत के किनारे से घूम कर भाग निकला। बाकी सैनिक और असैनिक प्रायः सब उलटी तरफ—उत्तर ओर—दौड़े, अतः बहुत थोड़े बच कर निकल पाये। शुजा ने कुछ को बचाने में मदद की। सूरज-मल के यहाँ उन सब को शरण मिली। लड़ाई के अन्त में विश्वासराव का शव अब्दाली के डेरे पर पहुँचा तो अफगान भी उसके भव्य चेहरे को निहार कर चीख पड़े।

बालाजी मालवे तक आ गया था, जहाँ उसे ये खबरें मिलीं। पछार (सिरोंज से प्रायः ३१ मील उत्तर) पर उसे पानीपत से बचे हुए लोग मिले। इस चोट ने उसे असाध्य रोगी बना दिया।

अब्दाली की सेना का भी भारी संहार हुआ। उसने दिल्ली में प्रवेश कर राजपूत राजाओं से कर तलब किया। तब जयपुर के माधोसिंह ने बालाजी से, जो मालवे में था, बूँदी आने की मिन्नत की और लिखा कि सब राजपूत राजा सेना सहित वहाँ आ मिलेंगे। पेशवा ने उसे डाँट कर लिखा—"पहले विजयसिंह के साथ अजमेर आइये। भाऊ ने सब अपराधों को माफ कर

पानीपत की तीसरी लड़ाई

(१७६१ ई०)

व्याख्या

मराठा सेना

१—इब्राहीम गार्दी	(८०००)
२—दमाजी गायकवाड	(२५००)
३—विट्ठल शिवदेव	(१५००)
४—छोटे सरदार	(२०००)
५—भाऊ का झंडा	
६—केन्द्र	(१३५००)
७—अन्ताजी माणकेश्वर	(१०००)
८—पिलाजी जादव के बेटे	(१५००)
९—छोटे सरदार	(२०००)
१०—जसवन्त पँवार	(१५००)
११—शमशेर बहादुर	(१५००)
१२—नाकोजी शिन्दे	(७०००)
१३—मल्हार होल्कर	(३०००)

अब्दाली की सेना

१४—बरखुरदार और अमीर बेग	(३०००)
१५ १६—रुहेले सरदार	(१४०००)
१७—अहमद बंगश	(१०००)
१८—ऊँट सवार जम्बुरक लिये हुए	(१००० × २)
१९—काबुली पैदल सेना	(१०००)
२०—केन्द्र, शाह वली	(१५०००)
२१—शुजाउद्दौला	(३०००)
२२—नजीब	(१५०००)
२३—शाहपसन्द	(५०००)
२४—रक्षित सेना (नसरुल्ला)	
२५—मुल्की हाकिम आदि	
२६—अग रक्षक गुलामों का दल	(३०००)
२७—अब्दाली का खेमा	

पिछली बातें भूलने को कहा था......राजपूतों को कुछ होश आना चाहिए। हम हार गये तो नर्मदा पार चले जायेंगे। मुझे अब अब्दाली का डर नहीं है।" लेकिन अब्दाली की सेना भी बकाया वेतन के लिए विद्रोही हो रही थी और उसमें अब शिया-सुन्नी (मुसलमानों के दो मूल पन्थ) आपस में लड़ रहे थे। दिल्ली को नजीब के हाथ सौंप वह २० मार्च को विदा हुआ; बालाजी भी तब मालवे से पूने को रवाना हुआ, रास्ते से अब्दाली ने बालाजी को मनाने तथा उसके पुत्र और भाऊ की मृत्यु के लिए समवेदना प्रकट करने को अपना दूत भेजा। वह दूत मथुरा में सूरजमल, इमाद तथा मराठा प्रतिनिधियों से मिला। उन लोगों ने उसे वहीं रोक लिया, क्योंकि बालाजी अब मौत के मुँह मे था। लाहौर में आबिदखाँ को सूबेदार नियत कर अब्दाली वापिस चला गया।

मथुरा की शान्ति-सभा मे रुहेलों, बंगश और शुजा के प्रतिनिधि भी शामिल हुए कि सब मिलकर कोई समझौते का मार्ग निकालें और आगे की व्यवस्था नियत करें। पर फल कुछ न निकला। कारण यह था कि सूरजमल को अब शान्ति पसन्द न थी; मराठे और अफगान दोनों पस्त हो गये थे; अब उसके लिए मौका था कि वह अपना राज बढ़ा ले। शान्ति सभा के उठते ही उसने आगरे का किला हथिया लिया (१२-७-१७६१)।

शाहआलम को सब ने बादशाह माना था; पर वह नजीब के डर से दिल्ली न आया और अवध मे ही रहा। २३-६-१७६१ को बालाजीराव की मृत्यु हुई।

§१४. बालाजीराव का चरित—बालाजीराव सच्चरित्र, परिश्रमी, कर्त्तव्यपरायण और निष्ठावान् पुरुष था। उसका पिता महान् राजनेता (स्टेट्समैन) और सेनानायक होते हुए भी शासन-प्रबन्ध में बहुत कच्चा था; बालाजीराव उस अंश में बहुत योग्य था। उसने महाराष्ट्र की कर-प्रणाली और न्याय-प्रणाली को बहुत नियमित कर दिया, सेना की खुराक और साज-सामान में बड़ी उन्नति की। किन्तु बाजीराव का सा ऊँचा दिल बालाजी को नही मिला था; बाजीराव मे जो महापुरुता और दूरदर्शिता थी वह बालाजी को छू न गई थी। बाजीराव एक विशाल क्षेत्र तैयार कर उसमे सुन्दर और बलिष्ठ साम्राज्य की पौद लगा कर

तथा उस क्षेत्र को सींचने और पौद को पनपाने के सब साधन जुटा कर दे गया था। बालाजी ने उन साधनों को मरुभूमि में बखाद कर अपने साम्राज्य की पौद को सूखने और क्षेत्र को उजड़ने दिया तथा वहीं गुलामी के विष वृक्षों की कलमें रोपवा कर उन्हें सींचा।

बुन्देलखण्ड और राजस्थान के लोगों में कैसी ऊँची भावनाएँ शिवाजी और बाजीराव ने जगाई थीं, और उनसे कैसे मैत्री के सम्बन्ध स्थापित किये थे! बालाजी ने सन् १७४३ से ले कर आठ बरसों में जयपुर के उत्तराधिकार के मामले में कमीनी नीति पर चल कर उन मैत्री भावनाओं को कैसे नष्ट कर दिया और कैसी द्वेष की भावनाएँ जगा दीं!

सन् १७५१ में रुहेलखण्ड को पार कर पहली बार मराठा सेनाएँ हिमालय के चरणों तक पहुँचीं। १७५२ में बादशाह अहमदशाह ने वजीर सफदरजंग की प्रेरणा से मराठों से जो सन्धि की उसके द्वारा मराठा आधिपत्य सारे भारत पर माना गया। ये सफलताएँ बाजीराव के छोड़े हुए साधनों और प्रभाव से ही प्राप्त हुई थीं। इसके बाद मराठा सरकार यदि इस सन्धि के दायित्व को ही निभाती चलती तो भारत का साम्राज्य तो उसे मिल ही चुका था। दूसरी तरफ, १७४१ से ५२ तक तमिळनाड और आन्ध्र में युरोपी खतरा पूरी तरह खड़ा हो चुका था। उस खतरे से भारत को बचाना भारत साम्राज्य की जिम्मेदारी निभाने में सबसे पहला काम था।

अगले ही बरस बादशाह और सफदरजंग में झगड़ा होता है, तो पेशवा उसे शान्त करने का यत्न नहीं करता, प्रत्युत खुश होकर तमाशा देखता है। और फिर बादशाह, सफदरजंग, नये वजीर और ब्रज के नेताओं सब के विरोध में वह इमाद जैसे पतित छोकरे का साथ देता है! प्रकट है कि आँखों की शर्म और शालीनता नाम की भी कोई वस्तु है इसका बालाजीराव को अनुभव न था। उसकी इस करनी का फल मराठों को १७६० में भोगना पड़ता है, जब सदाशिवराव राजस्थान ब्रज और अवध के नेताओं को मनाना चाहता है, पर कोई नहीं मानता। जिस सफदरजंग के साथ ऐसा कृतघ्नता का बर्ताव बालाजी ने किया अन्त में सदाशिव को उसी के बेटे शुजाउद्दौला को वजीर घोषित करना

किन दशाओं मे किया ? इतिहास में उसका क्या प्रभाव हुआ ?

३. शिवाजी वंश के हाथ से पेशवा वश के हाथ मे सब राजशक्ति कब कैसे चली गई ?

४. सफदरजग ने १७५२ ई० मे मराठों से जो सन्धि की, वह क्या थी ? इस सन्धि से प्राप्त दायित्व को मराठा सरकार ने अगले आठ बरसों मे कैसे निवाहा ?

५. थून्ने ने किन दशाओं में कैसे भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य खड़ा करने का यत्न किया ? अन्त मे वह प्रयत्न कैसे विफल हुआ ?

६. बाजीराव की मृत्यु के बाद के बारह बरसों में भारत की राजनीतिक स्थिति में कौन से बड़े परिवर्तन हुए ? १७५२ ई० की स्थिति में कौन सी मुख्य समस्याओं के सुलझाने के क्या मार्ग हो सकते थे ?

७. सन् १७५७ में अफगानों ने व्रजभूमि लूटी और अंग्रेज़ों ने बंगाल-बिहार जीता। इन प्रान्तों को लूट और गुलामी से बचाने का मुख्य दायित्व तब भारत मे किसका माना जाता था ? वह इन प्रान्तों को कैसे बचा सकता था, पर क्यों न बचा सका ?

८ तमिळनाड अंग्रेज़ों के हाथ में कैसे गया ? उसे महाराष्ट्र का पेशवा कैसे बचा सकता था ? क्यों न बचा सका ?

९. सन् १७५९-६१ के मराठा-अफगान-युद्ध का वृत्तान्त लिखिए।

१०. बालाजीराव के समय में मराठों और पठानों का बिगाड़ कैसे हुआ ! उन्हें समझौता करने के कौन कौन से अवसर मिले ? उन अवसरों पर समझौता क्यों न हुआ ? उस समय के मराठा-पठान-द्वन्द्व का स्थायी फल क्या हुआ ?

११. मराठों ने पंजाब कब कैसे जीता ? वहाँ उनका राज कितने समय तक रहा ? पंजाब जीत कर उन्होंने अच्छा किया या बुरा ? क्यों ?

१२. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) नजीबखाँ रुहेला (२) बुसी (३) इमाद (४) मल्हार होल्कर (५) आरकाट का घेरा (६) गोविन्दपन्त बुन्देला (७) विश्वासराव (८) सदाशिवराव भाऊ (९) इब्राहीम गार्दी (१०) चन्दासाहब (११) सूरजमल।

१३. "किन्तु शुक्रताल दूसरा नागोर बन गया" इसकी व्याख्या कीजिए।

१४. पानीपत की लड़ाई में मराठों का मुँह किस ओर था, पठानों का किस ओर ? कैसे वे उस स्थिति में आये ? अब्दाली पानीपत से पहले कहाँ था ?

१५. सामरिक (मिलिटरी) दृष्टि से पानीपत में मराठों की हार के क्या कारण हुए ?

१६. बालाजीराव के चरित पर छोटा लेख लिखिए।

अध्याय ३

मराठा साम्राज्य-स्थापना का पुनः प्रयत्न

(१७६१—१७७२ ई०)

§१ **पेशवा माधवराव**—बालाजीराव की मृत्यु पर उसका दूसरा बेटा माधवराव १६ वर्ष की उम्र में पेशवा बना और राघोबा उसके नाम पर शासन करने लगा। सब तरफ मराठा साम्राज्य के सामन्त और पड़ोसी महाराष्ट्र की विपत्ति से लाभ उठाने की कोशिश कर रहे थे। जयपुर के माधोसिंह ने अब्दाली के हटते ही विद्रोह किया। मल्हार होल्कर ने इन्दौर से उसपर चढ़ाई कर कोटा के उत्तर पार्वती के किनारे माँगरोल पर जयपुर की सेना को हराया २९.११.१७६१ ई०)। उसके तुरन्त बाद शुजा ने बुन्देलखंड पर चढ़ाई कर कालपी और झाँसी जीत ली। उसी समय निजामअली अपने भाई को कैद में डाल पूने की ओर बढ़ा। उसे तो राघोबा ने मार भगाया, पर हैदरअली ने उसके बाद शिरा, हरपनहल्ली, चितलदुर्ग गुत्ति आदि प्रदेश जिन्हें बालाजी ने अपनी दक्खिन चढ़ाई में जीता था, दखल कर लिये।

सन् १७६२ में माधवराव ने शासन अपने हाथ में ले लिया। इसपर राघोबा बिगड़ कर निजामअली से जा मिला और पूने पर चढ़ाई की। घरेलू युद्ध से शत्रु का लाभ होता देख माधवराव ने अपने को राघोबा के हाथ सौंप दिया। राघोबा फिर पेशवा के नाम से शासन करने लगा, परन्तु उसने अपने अन्यायपूर्ण शासन से अनेक सरदारों और नेताओं को विरोधी बना लिया और वे अब उसके देशद्रोह के दृष्टान्त का अनुसरण करने लगे। निजामअली ने फिर युद्ध छेड़ा। गोदावरी के किनारे पैठन के पास राक्षसभुवन पर राघोबा को शत्रु ने घेर लिया और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। माधवराव ने, जो मराठा सेना की चन्दावल में कैद था, भागती सेना को लौटा कर उस हार को जीत में परिणत कर दिया और राघोबा को बचा लिया (१०-८-१७६३)। तब राघोबा को उसे शासन में भाग देना पड़ा। माधवराव के सुशासन से महाराष्ट्र में शीघ्र शान्ति स्थापित हो गई।

माधवराव ने जिन व्यक्तियों को अपना सहायक बनाया, उनमें से उसके मन्त्री बालाजी जनार्दन भानु उर्फ नाना फडनीस और बल्लाल फडके तथा न्यायाधीश रामशास्त्री प्रमुख आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध हुए।

§२. पठानों का पंजाब और ब्रज से संघर्ष—अब्दाली के जाते ही पंजाब में चारों तरफ सिक्ख गढ़ियाँ बनने लगीं। आबिदखाँ [१०,२§११] ने गुजराँवाले पर, जहाँ चड्तसिंह नामक नेता ने गढ़ी बना ली थी, चढ़ाई की। सिक्खों ने आबिद को हरा कर भगा दिया। तब उन्होंने जलन्धर द्वावे पर हमला किया और सरहिन्द से पेशावर का रास्ता काट दिया। अब्दाली फिर लौट कर आया। सिक्ख सतलज पार भाग गये। अढ़ाई दिन में लाहौर से लुधियाने पहुँच वह एकाएक उनपर टूट पड़ा और उनका संहार किया (५-२-१७६२)। वह लड़ाई 'घुल्लू घेरा' नाम से प्रसिद्ध हुई। अब्दाली ने उस साल लाहौर में ही ठहर कर दिल्ली से पेशवा के वकील तथा नजीबखाँ को बुलाया, और अपना दूत पेशवा को मनाने के लिए पूना भेजा। इस बार उसने जम्मू के राजा रणजीतदेव की मदद से कश्मीर भी जीत लिया। वहाँ अब तक दिल्ली की ओर से दीवान सुखजीवनराम शासन कर रहा था। दिसम्बर में अब्दाली लौट गया।

सूरजमल ने आगरे के बाद मेवात भी जीत लिया और फिर हरियाने (गुड़गाँव-रोहतक) की तरफ बढ़ने लगा। इसपर उसकी नजीब से लग गई और वह गाजियाबाद के पास लड़ता हुआ मारा गया (२५-११-१७६३ ई०)।

नवम्बर १७६३ में सिक्खों ने फिर विद्रोह किया, कसूर और मालेरकोटला की पठान बस्तियों को उजाड़ डाला, और सरहिन्द को जीत कर वह प्रदेश आपस में बाँट लिया। अब्दाली के सेनापति जहानखाँ [१०,२§१०] ने अटक पार से उनपर चढ़ाई की; लेकिन चनाब पर उनके दूसरे दल ने उसे हरा दिया, और फिर लाहौर पर हमला कर आबिदखाँ को भी मार डाला। नजीब ब्रजराज्य की विपत्ति से लाभ उठाता पर सिक्खों ने जमना पार कर उसके सहारनपुर और शामली कसबे लूट लिये। इस दशा में अब्दाली खुद आया (मार्च १७६४)। सिक्ख मैदान से हट गये और वह काबुलीमल नामक अफगान ब्राह्मण को

लाहौर का शासन सौंप कर वापिस चला गया। उसके पीठ फेरते ही लहनासिंह, गुज्जरसिंह और शोभासिंह ने काबुलीमल से लाहौर का किला छीन कर गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के नाम का सिक्का चलाया। दूसरे सिक्ख दलों ने जेहलम तक जीत लिया। लहनासिंह अपने सुशासन के लिए शीघ्र प्रसिद्ध हो गया। जमना से जेहलम तक सिक्ख दलों के छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये।

नवम्बर १७६४ में ब्रज के नये राजा जवाहरसिंह ने दिल्ली को आ घेरा। उसने मराठों और सिक्खों से भी सहायता ली। पेशवा की आज्ञा से मल्हार उसकी मदद को गया। तीन महीने तक दिल्ली घिरी रही, लेकिन मल्हार ने नजीब से भीतर भीतर समझौता कर लिया, और जवाहर के सरदार, जो उसके छोटे भाई को गद्दी देना चाहते थे, विश्वासघात करते रहे। जयपुर का राजा माधोसिंह भी नजीब को मदद देता रहा, क्योंकि जयपुर और ब्रज के राजाओं की सदा से लगती थी। अन्त में घेरा उठ गया। उसके बाद से जवाहर ने मराठों, माधोसिंह तथा अपने भाई और सरदारों से बदला लेना ही अपना कार्य मान लिया।

सन् १७६७ के शुरू में अब्दाली अन्तिम बार भारत आया। सिक्ख एक हार के बाद मैदान से हट गये। अब्दाली ने आलासिंह के पोते अमरसिंह को सरहिन्द का फौजदार बनाया, पर दूसरे सिक्ख दलों का पीछा करता रहा। किन्तु अब उसके सैनिक खुल्लमखुल्ला बलवा करके अफगानिस्तान चल दिये। उनके हटते ही सिक्खों के एक दल ने रोहतासगढ ले कर सिक्ख राज्य को अटक तक पहुँचा दिया।

§३. **सिक्ख मिसलें**—इस प्रकार सारा पंजाब सिक्ख दलों के छोटे छोटे बारह राज्यों में बँट गया। वे राज्य मिसल कहलाते थे। ये मिसलें वास्तव में सैनिक और धार्मिक (सिक्ख पन्थ की) पंचायतें थीं, जिनके मुखिया सिक्ख सैनिकों के दलों द्वारा चुने जाते थे। प्राय प्रत्येक सिक्ख सैनिक था और उन सैनिकों में से अधिकांश कृषक थे। जिन सैनिकों में युद्ध में नेतृत्व करने की योग्यता थी, वे दलों के नेता बनते गये और अब उन दलों के छोटे-छोटे राज्य बन गये। नेताओं को चुनने की रस्म ज़रूर की जाती थी, भले ही बाप के बाद बेटा चुना जाता।

साधारण सैनिक मिसल की ज़मीन में या तो मुखिया के 'पत्तीदार' होते थे या 'मिसलदार' (सैनिक सेवा की शर्त पर ज़मीन पाने वाले); किन्तु ये मिसलदार चाहे जब एक मिसल को छोड़कर दूसरी की सेवा में जा सकते थे। उनके अतिरिक्त दूसरे लोग 'ताबेदार' या 'जागीरदार' के रूप में भी ज़मीन पाते थे, पर उनपर मिसल के सरदार का पूरा निजी अधिकार रहता था।

जो इलाके सिक्खों के संरक्षण में, पर उनके सीधे नियन्त्रण में न होते, उनसे 'राखी' कर लिया जाता था, और अपने इलाकों से 'मालिया' (मालगुजारी)।

कृषक जनता कहीं इतनी सुखी न थी जितनी इन कृषक सैनिकों के राज में। सिक्खों ने यह शीघ्र समझ लिया कि व्यापार पर भारी चुंगी होने से उन्हें हानि होती है, इसलिए चुंगी बहुत कम कर दी। उनका दण्ड-विधान भी कठोर न था।

आपस की छीनझपट से मिसलों की सेनाएँ प्रायः बदलती रहती थीं, तो भी सामूहिक विपत्ति के समय सब सरदार मिल जाते थे। हर साल दशहरे पर अमृतसर में सब सरदारों की संगत लगती थी, जहाँ सामूहिक कार्यों का निश्चय किया जाता था। अमृतसर का मन्दिर अकाली लोगों के हाथ में रहा जो किसी मिसल में शामिल न थे और सिक्ख धर्म की परम्परा के विशेष रक्षक थे। विशेष धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोग अकाली बन जाते थे। अमृतसर नगरी में कई मिसलों के सरदारों ने अपनी अलग-अलग गढ़ियाँ बना लीं। वह नगरी इन्हीं मिसलों के शासन के बीच समृद्ध व्यापारी बस्ती बन गई।

§४. मीर कासिम और अंग्रेज़ कम्पनी—मीर जाफर को शासन चलाने की कतई तमीज न थी और न वह अंग्रेजों की रकमें चुका पाया। इसलिए सन् १७६० में कलकत्ता कौंसिल ने उसे हटा कर उसके दामाद मीर कासिम को नवाब बनाया। कौंसिल ने उससे कम्पनी के लिए बर्दवान, मेदिनीपुर, चटगाँव जिलों की मालगुजारी और ५ लाख रुपया तथा अपने लिए २० लाख रुपये की रिश्वतें लीं। मीर कासिम ने अपने दरबार का खर्च घटा कर अंग्रेजों की बाकी रकमें और अपनी सेना की बकाया तनखाह शीघ्र चुका दीं। वह अपनी

राजधानी मुगेर ले गया। वहाँ उसने बन्दूकों का कारखाना खोला और सैनिकों को कवायद सिखा कर नये ढग की सेना तैयार की। शासन को हर पहलू से उसने व्यवस्थित करना चाहा, पर अंग्रेजों ने उसे वैसा करने न दिया।

बगाल बिहार मे ईस्ट इडिया कम्पनी के आयात निर्यात व्यापार पर फर्रुखसियर ने चुगी माफ कर दी थी। कम्पनी के नौकर निजी रूप से भीतरी व्यापार भी करने लगे थे और पलाशी के विजय के बाद से वे उसपर भी नवाब के अधिकारियों को चुगी न देते। आयात निर्यात वाले माल को प्रमाणित करने के लिए कम्पनी के मुखिया 'दस्तक' दिया करते थे। वैसे 'दस्तक' लिये हुए और नावों पर अंग्रेजी झडे उड़ाते हुए अंग्रेजों के गुमाश्ते अब जनता के नित्य बरतने की हर चीज का व्यापार करते फिरते और नवाब के अधिकारी यदि उन्हें कहीं टोकते तो उन्हे मुश्कें बँधवा कर पिटवाते थे। यही नहीं, वे जनता से मनमाने दामों पर खरीदने के नाम से माल छीन लेते, और उसी प्रकार महँगे दामों पर जबरदस्ती उसे 'बेचते'। जो लोग लेने देने से इनकार करते, उन्हे वे कोड़ों से पिटवाते और कैद की सजा देते। हर गुमाश्ता जहाँ कहीं अपनी 'कचहरी' लगा लेता, छोटे बड़े सब पर हुक्म चलाता और चौकी बैठा कर लोगों के मकानों की तलाशियाँ ले कर जुरमाने वसूल करता। यह तो निजी 'व्यापार' था।

कम्पनी के निर्यात 'व्यापार' का ढग यह था कि गुमाश्ता किसी भी औरग (कारीगरों की बस्ती) में जा कर 'कचहरी' लगा देता। हरकारों को भेज कर वह दलालों और जुलाहों को वहाँ बुलवाता, और कुछ पेशगी दे कर उनसे यह मुचलका लिखवा लेता कि अमुक दाम पर अमुक दिन इतना माल देना होगा। जुलाहों की स्वीकृति का कोई प्रश्न न था। वे पेशगी लेने से इनकार करते तो कोड़ों से मरम्मत की जाती। जिन जुलाहों के नाम गुमाश्ते की बही में चढ जाते, वे किसी दूसरे का काम न कर पाते। इन जुल्मों से बचने के लिए अनेक नागोड (रेशम के कारीगर) अपने अँगूठे काट लेते।

मीर कासिम ने देखा कि वह इन गुडों से प्रजा के व्यापार व्यवसाय को बचा नहीं सकता तो उसने अपनी आमदनी की परवाह न कर कुल व्यापार से

चुंगी उठा दी । इस पर कलकत्ता कौंसिल ने युद्ध छेड़ दिया और मीरजाफर से ५० लाख घूँस ले कर उसे फिर नवाब बनाया (दिसम्बर १७६३) । कासिम ने नागपुर के जनोजी भोंसले से मदद माँगी । जनोजी के कटक के हाकिम ने
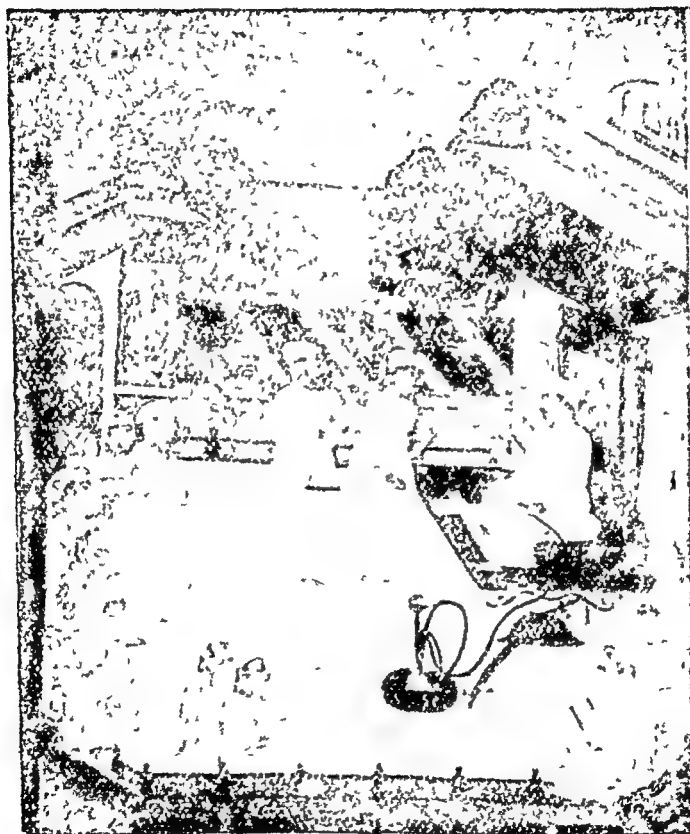
नवाब मीर कासिम—पिछली मुगल शैली का पटना कलम का चित्र
[खुदाबख्श पुस्तकालय, पटना]

१७६०-६१ में बंगाल की चौथ के लिए चढ़ाई की थी और उसके विफल होने पर नागपुर का दूत कलकत्ते आ कर चौथ माँग रहा था । अंग्रेजों ने अब उससे कहा कि हम चौथ देंगे, पर कासिम को मदद न देना । घेरिया पर तथा

राजमहल के दक्खिन उधुआ नाला पर मीर कासिम की सेना वीरता से लड़ी, पर अन्त में हारी। कासिम और उसका खिम सेनापति समरू अवध की ओर भागे।

§५ गंगा काँठे, आन्ध्रतट और तमिळनाड में अंग्रेजी राज की स्थापना—अवध से शुजा और शाहआलम को साथ ले कर कासिम ने बिहार पर चढ़ाई की। मेजर मुनरो ने बक्सर पर उन्हें हरा दिया (२३ १०-१७६४)। शाहआलम तब अंग्रेजों की शरण म आ गया। कर्मनाशा पार कर अंग्रेज अवध के सूबे में घुसे। उन्होंने चुनार का गढ़ घेरा, पर उसे ले न सके, तो भी बनारस और इलाहाबाद ले लिये। शुजा ने रुहेलों और मराठों की मदद ली। वह मराठों से बुन्देलखंड छीन चुका था, तो भी मल्हार उसकी मदद को आया। कोड़ा* की लड़ाई म अंग्रेजी तोपों के सामने उसे भागना पड़ा (३ ५ १७६५)। शुजा ने तब आत्म-समर्पण कर दिया। उसी वर्ष क्लाइव फिर बंगाल में कम्पनी का मुखिया बन कर आया। उसने बनारस पहुँच कर शुजाउद्दौला से और इलाहाबाद में शाहआलम से अलग अलग सन्धियाँ कीं।

शुजा ने अंग्रेजों को ५० लाख रुपया हर्जाना दिया, काशी के राजा को एक तरह से उनकी रक्षा में सौंप दिया, अंग्रेजों के शत्रुओं को अपना शत्रु माना तथा अपने राज्य की रक्षा के लिए उन पर निर्भर रहना मजूर किया।

शाहआलम ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी दे दी। उड़ीसा का केवल मेदिनीपुर जिला अंग्रेजों के हाथ में था। इसके अतिरिक्त आन्ध्र तट के जिलों पर भी बादशाह ने अंग्रेजों का सीधा अधिकार मान लिया तथा आरकाट की नवाबी मुहम्मदअली को दे कर उसे निजाम अली से स्वतन्त्र कर दिया। बंगाल की आमदनी में से वार्षिक २६ लाख रुपया कम्पनी ने बादशाह को देना स्वीकार किया तथा कोड़ा और कड़ा† जिले

* फतहपुर जिले का कस्बा कोड़ा जहानाबाद। उन दिनों जिले का नाम इसी से पड़ता था।

† इलाहाबाद जिले का नाम पहले कड़ा मानिकपुर कस्बे के नाम से पड़ता था।

बादशाह के खर्च के लिए अवध से दिला दिये। शाहआलम इलाहाबाद में अंग्रेजों की रक्षा में रहने लगा। इस बीच मीरजाफर मर चुका था। कलकत्ता कौंसिल ने फिर २३ लाख रुपया घूँस ले कर उसके बेटे को गद्दी पर बैठाया, पर उसे केवल नाम का नवाब रहने दिया।

कोड़ा से लौट कर मल्हार ने झाँसी वापिस ले ली, परन्तु कुछ समय बाद वह चल बसा (२०-५-१७६६)। इस बीच राघोबा फिर उत्तर भारत आया था। मराठों को फिर आया देख, क्लाइव ने छपरे में एक 'कांग्रेस' बुलाई (जुलाई १७६६), जिसमें शुजा स्वयं तथा ब्रज और रुहेलखंड के दूत आये और सब ने मराठों के खिलाफ गुट्ट बनाने की कोशिश की।

बंगाल-बिहार की आमदनी से खर्चा निकाल कर सवा करोड़ रुपया वार्षिक कम्पनी को बचने लगा, जो अब हर साल भारत से इंग्लैंड को जाने लगा। कम्पनी के नौकरों की निजी लूट इससे अलग थी। डाइरेक्टरों ने क्लाइव को तीसरी बार इसीलिए भेजा था कि वह 'भेंट' और निजी 'व्यापार' के नाम से होने वाली इस लूट को बन्द कर दे। पलाशी युद्ध के बाद से नौ साल में बंगाल-बिहार से कम्पनी के नौकरों ने प्रायः ६ करोड़ रुपया निजी तौर से भेंट या हरजाने के नाम से लिया था। 'भेंट' लेने की अब सख्त मनाही की गई। निजी व्यापार को बन्द करने के बजाय क्लाइव ने उसे शृंखलाबद्ध कर दिया। सब अंग्रेज अफसरों की, पद के अनुसार, पत्ती डाल कर एक साझेदारी बना दी गई जिसके हाथ में बंगाल-बिहार के नमक, सुपारी और अफीम के व्यापार का एकाधिकार दे दिया गया। ये परिवर्त्तन करके सन् १७६७ के शुरू में क्लाइव लौट गया। डाइरेक्टरों ने इस नये निजी व्यापार को भी रोक दिया, परन्तु नमक और अफीम का एकाधिकार स्वयं ले लिया।

मुहम्मदअली तमिळ्नाड का नवाब बना तो अंग्रेजों ने बीस बरस के युद्ध का सारा खर्चा उसके मत्थे मढ़ दिया। आगे के लिए भी देश की रक्षा उसने कम्पनी को सौंप दी और उसके लिए कई जिलों की मालगुजारी उन्हें दे दी। युद्ध का खर्च वह चुका न सका और उस पर वह कर्ज लद गया। कम्पनी के उस कर्ज या उसके सूद को चुकाने के लिए वह कम्पनी के नौकरों से

उधार लेने लगा। धीरे धीरे तमिळ देश के तमाम खेतों की खड़ी फसलें तक उन सूदखोरों के हाथ गिरवी रक्खी जाने लगी।

§६ हैदरअली—सन् १७६३ में हैदर बेदनूर, सावनूर और धारवाड़ ले कर मलप्रभा (कृष्णा की दक्खिनी शाखा) तक आ पहुँचा। घरेलू झगड़ों से छुट्टी पा कर मई १७६४ से माधवराव ने कृष्णा पार की। साल भर युद्ध चलता रहा जिसके अन्त में हैदर ने सावनूर, गुत्ति, अनन्तपुर आदि इलाके छोड़ दिये और बड़ा हरजाना दिया।

सन् १७६६ मे हैदर ने मलबार पर चढ़ाई कर उसे पूरा दखल कर लिया। १७६७ ई० के शुरू में माधवराव ने उसपर फिर चढ़ाई की और शिरा का इलाका ले लिया। उसी समय निजामअली और अंग्रेजों ने भी उसपर चढ़ाई कर दी थी और अंग्रेज बारामहाल (सेलम, कृष्णगिरि) मे घुस आये थे। हैदर ने माधवराव से शरण माँगी, वे सब इलाके लौटा दिये जिन्हें बालाजी ले चुका था, और आगे मे नियम से कर देना स्वीकार किया।

माधवराव से यों समझौता होने के बाद हैदर ने अंग्रेजों के उस बेड़े को नष्ट कर दिया जो मुम्बई से कनड़ तट पर चढ़ाई करने आया था। वह पूरब बढ़ा तो निजामअली अंग्रेजों का साथ छोड़ उससे मिल गया और अंग्रेज सेनापति ने तिरुवरणामलै गढ़ की शरण ली। छ मास के युद्ध के बाद निजाम अली ने अंग्रेजों से सन्धि कर ली। अंग्रेज नवाब मुहम्मदअली को साथ ले फिर मैसूर की तरफ बढ़े। जवाब में हैदर ने सारे तमिळनाड पर छापे मारना शुरू किया, और एकाएक मद्रास पर पहुँच कर वहाँ अंग्रेजों से सन्धि लिखवाई (४४१७६६)। उस सन्धि की शर्तें ये थीं कि दोनों एक दूसरे के इलाके लौटा देंगे तथा आगे से यदि एक पर शत्रु हमला करे तो दूसरा मदद करेगा।

§७ बंगाल-बिहार में दुराज और दुर्भिक्ष—बंगाल बिहार की सेना और कोष अब अंग्रेजों के हाथ चले गये थे, पर शासन और न्याय का काम अभी तक नवाब के हाकिम चलाते, जिन्हें अंग्रेजों के कारिन्दे आगानी ने अपनी कठपुतली बना लेते थे। मालगुजारी की वसूली भी पुराने हाकिमों द्वारा होती, पर उनके ऊपर हर जिले मे अंग्रेज हाकिमों की एक कौंसिल बना दी

गई थी। यह एक तरह का दुराज था।

सन् १७५७ और १७६० में जो जिले कम्पनी के हाथ आये थे, उनमें अंग्रेजों ने मालगुजारी नीलाम करके कड़ाई से वसूली शुरू की थी। दीवानी पाने के बाद वे सारे बंगाल-बिहार और आन्ध्र-तट में वैसा ही करने लगे। हर जिले में अंग्रेज मुखिया और कौंसिलें नियुक्त कर दी गईं। वे ऊँची से ऊँची बोली देने वाले को मालगुजारी की वसूली सौंप देतीं। इस प्रकार पुराने जागीरदारों की जगह, जिन्हें सैनिक सेवा के बदले में मालगुजारी सौंपी जाती थी और जो परम्परा से बँधी दरों से कर वसूलते थे, अब कलकत्ते के दलाल और अंग्रेजों के तुच्छ गुमाश्ते और पिछलग्गू मालगुजारी का ठेका ले कर किसानों पर अकथनीय जुल्म करने लगे।

व्यापारी कम्पनी को तो केवल अपने नफे से मतलब था। सन् १७६५ से १७७१ तक छः बरस में कम्पनी को बंगाल और बिहार की मालगुजारी में से साढ़े चालीस लाख पौंड (लगभग ३ करोड़ रुपये) की बचत हुई, जिसे उसने अपना मुनाफा माना। कम्पनी के नौकर भीतरी व्यापार से जो निजी लाभ उठाते, या तनखाह आदि पाते थे, सो अलग था। सन् १७६६ से ले कर तीन बरसों में इन प्रान्तों में इंग्लैंड से जो माल आया, उससे लगभग ४३३ लाख रु० का अधिक माल वहाँ गया। यह वास्तव में खिराज था जो अब भारत से बाहर जाने लगा था।

इंग्लैंड से डाइरेक्टरों ने हुक्म भेजा कि बंगाल-बिहार में रेशम के कपड़े न बनें, केवल कच्चा रेशम तैयार हो, और रेशम अटेरने वाले केवल कम्पनी की कोठियों में ही उसे अटेरें। इस हुक्म के कारण पर हम आगे विचार करेंगे। इस तरह उद्योग-धन्धों का नाश होने लगा। उद्योग-धन्धों का नाश, धन की सालाना निकासी और दुराज से उन प्रान्तों की बड़ी दुर्गति हो गई। १७७० ई० में बंगाल-बिहार में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। कम्पनी के नौकरों ने तब अन्न के व्यापार पर एकाधिकार कर जनता का कष्ट और बढ़ा दिया। तीन करोड़ आबादी में से एक करोड़ उस दुर्भिक्ष में मिट गई।

§८. नेपाल में गोरखा राज्य की स्थापना—जब पंजाब में सिक्ख

राज्य की स्थापना हुई, तभी नेपाल में भी एक नया मजबूत हिन्दू राज्य स्थापित हुआ। अलाउद्दीन खिलजी ने जब मेवाड़ जीता था, तब वहाँ के राजवंश की एक शाखा दक्खिन चली गई थी, जिसमें शिवाजी पैदा हुआ था, और एक शाखा कुमाऊँ के पहाड़ों में चली आई थी। कुमाऊँ से ये लोग और पूरब बढे और कालीगण्डक की दून मे पालपा और गोरखा बस्तियो में जा बसे। ठेठ नेपाल की दून अर्थात् काठमाड़ू, भातगाँव और पाटन की बस्तियों में वहाँ के मूल निवासी नेवारों* के, जिनमें मिथिला के लिच्छवियों का खून मिल चुका था, तीन सरदार राज करते थे। गोरखा के ठाकुर पृथ्वीनारायण ने नेपाल पर चढ़ाई कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। पराजित नेवारों ने अंग्रेजों से मदद माँगी। बेतिया मे मेजर किनलोच तराई के पहाड़ो में घुसा, पर हार कर लौटा (१७६७ ई०)। गोरखा बस्ती से आने के कारण पृथ्वीनारायण और उसके वंशज गोरखा कहलाने लगे।

§९ **मराठा-साम्राज्य-स्थापना का पुन॰ प्रयत्न**—उत्तर भारत में लौट कर राघोबा ने फिर षड्यन्त्र शुरू किये। माधवराव ने उसे बड़ी जागीर देनी चाही, पर वह आधा राज्य माँगता था। इसी समय मुम्बई के अंग्रेजों ने अपना एक कारिन्दा उसके पास षड्यन्त्र करने भेजा। माधवराव ने तब राघोबा को एकाएक नासिक के पास कैद करके पूना ला कर महल में नजरबन्द कर दिया (१७६८ ई०)।

हैदरअली ने अंग्रेजों की नई सन्धि के भरोसे पेशवा को मालाना कर न भेजा और सावनूर पर हमला किया। तब माधवराव ने उसके राज्य पर तीसरी चढ़ाई की (१७६९) और जीते हुए जिलों का पूरा दखल और बन्दोबस्त करता हुआ वह बेंगलूर तक जा पहुँचा। हैदर ने तब बेंगलूर तक का सब इलाका दे कर सन्धि की (जून १७७२)। इस प्रकार मैसूर राज्य पहले से भी छोटा रह गया और पूरी तरह मराठों का सामन्त बन गया।

१७६९ ई० में पेशवा ने एक सेना रामचन्द्र गणेश के नेतृत्व में उत्तर

---

* नेवारों की भाषा किरात परिवार की है। गोरखों की भाषा गोरखाली या परबतिया राजस्थानी से निकली पहाड़ी की एक शाखा है। दे० परिशिष्ट १।

भारत भी भेजी । रामचन्द्र के साथ विसाजी कृष्ण पंडित, रानोजी शिन्दे का छोटा बेटा महादजी और मल्हार होल्कर की उत्तराधिकारिणी—उसके कुम्भेर-गढ़ पर मारे गये बेटे खंडेराव की पत्नी—अहल्याबाई का सेनापति तुकोजी होल्कर भी गये । मराठों के आने से एक साल पहले ब्रज का राजा जवाहरसिंह अपने एक सैनिक के हाथों मारा जा चुका और नजीब अपने बेटे जाबिता को दिल्ली छोड़ नजीबाबाद चला गया था । जवाहर की हत्या से ब्रज की शक्ति टूट गई थी । नजीब मराठों से मिलने आया और जाबिता का हाथ तुकोजी के हाथ में देते हुए बोला कि इस पर वैसी ही दयादृष्टि रखना जैसी मल्हारराव ने मुझ पर रक्खी थी। इसके शीघ्र बाद नजीब चल बसा।

उत्तर भारत में मराठों की पहले सी स्थिति हो जाने पर शाहआलम ने अंग्रेजों के बजाय उनकी शरण ली और मराठा सेना के साथ दिल्ली में प्रवेश किया (६-१-१७७२) । मराठों ने बादशाह की तरफ से रुहेलखंड को अधीन किया । शुजा ने घबरा कर अंग्रेजों से मदद माँगी और अंग्रेजी सेना के साथ रुहेलखंड की सीमा पर पहरा देता रहा । मराठों ने कोड़ा और इलाहाबाद भी लेने चाहे । वे कहीं झाड़खंड (रामगढ़ राज्य) के रास्ते बंगाल पर चढ़ाई न करें इसलिए अंग्रेजों ने झाडखंड के सब राज्यों को अपने अधीन कर लेने को कप्तान कैमक को बड़ी सेना के साथ भेजा।

अब मराठों और अंग्रेजों का सीधा टाकरा होता । १७६१ ई० के बाद ११ वर्षों में उत्तर भारत में मराठों की पठानों के मुकाबले में स्थिति न केवल ज्यों की त्यों हो गई थी, प्रत्युत पठान पंजाब से भी हट चुके थे। पर इस बीच अंग्रेजों को भारत में पैर जमाना मिल गया था । पानीपत की लड़ाई इसी दृष्टि से निर्णायक हुई। अब अंग्रेजों को निकालना ही भारत की स्पष्ट पहली समस्या थी। माधवराव ने हैदरअली से सन्धि करते समय उसके साथ मिल कर मद्रास पर चढ़ाई करने का गुप्त प्रस्ताव किया । वह एक साथ उत्तर और दक्खिन में अंग्रेजों पर आक्रमण करना चाहता था । हैदर का हित मराठों के साथ रहने में था; किन्तु उसने भोलेपन में, इस आशा से कि अंग्रेज उसे मराठों के विरुद्ध मदद देंगे, वह प्रस्ताव अंग्रेजों के आगे खोल दिया । अंग्रेजों ने तब अपने दूत

नोस्टिन को पूने भेजा । पर इसी बीच महाराष्ट्र का सब से योग्य पेशवा मृत्यु-शय्या पर पड गया था। वह शीघ्र ही परलोक सिधारा (१८ ११ १७७२)।

पेशवा माधवराव को युद्धों से जो फुरसत मिली, वह उसने राष्ट्र का शासन प्रबन्ध ठीक करने में लगा दी । उसने योग्य पुरुषों को पहचान कर उनके अनुरूप पदों पर बिठाया। उसमें अपने पिता की सी प्रबन्ध योग्यता और अपने दादा की सी समर नायकता और महापुरुषता थी। उसकी अकाल मृत्यु से भारत को जो धक्का लगा वह पानीपत के धक्के से अधिक गहरा था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ पंजाब में सिक्ख राज्य कैसे स्थापित हुआ ?

२ मिसल सिक्खें क्या थीं? उनकी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक रचना को स्पष्ट कीजिए।

३ सन् १७६१ के बाद ब्रज के राजा सूरजमल और उसके उत्तराधिकारी का चरित लिखिए।

४ पलाशी युद्ध के बाद के दस बरसों में बंगाल बिहार में अंग्रेजों के वाणिज्य-व्यापार की पद्धति क्या थी ?

५ शुजाउद्दौला और शाहआलम के साथ क्लाइव ने किन दशाओं में सन्धियां कीं ? उन सन्धियों की मुख्य बातें क्या थीं ?

६ सन् १७६१ की मथुरा की शान्तिसभा और १७६६ की छपरा की 'कांग्रेस' किन दशाओं में किस किस के प्रयत्न से हुई ? मथुरा की सभा के बाद छपरा की कांग्रेस होने की नौबत क्यों और कैसे आई ? दोनों में मुख्य समस्या क्या थी और दोनों में क्या अन्तर था ?

७ नेपाल में गोरखा राज्य कब कैसे स्थापित हुआ ? उस राज्य को गोरखा क्यों कहा गया ?

८ बंगाल बिहार की दीवानी पाने के बाद अंग्रेजों ने वहां मालगुजारी का कैसा बन्दोबस्त किया ?

९ पेशवा माधवराव ने किस प्रकार मराठा साम्राज्य के पुन स्थापन का प्रयत्न किया ?

१० निम्नलिखित लड़ाइयों के क्रम पर ध्यान रखते हुए बताइए कि वे किन किन के बीच किन दशाओं में हुई तथा इतिहास की धारा को उन्होंने कैसे प्रभावित किया—

(१) मागरोल, नवम्बर १७६१ (२) चुल्लु घेरा, फरवरी १७६२ (३) राक्षस-भुवन, अगस्त १७६३ (४) गाज़ियाबाद, नवम्बर १७६३ (५) उधुआ नाला, १७६४ (६) बक्सर, अक्टूबर १७६४ (७) दिल्ली का घेरा, नवम्बर १७६४–जनवरी १७६५ (८) कोडा, मई १७६५।

११. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—

(१) काबुलीमल (२) आरकाट का नवाब मुहम्मदअली (३) नजीबखां की तुकोजी होलकर से भेंट (४) कैमक की झाड़खंड पर चढ़ाई (५) माधवराव पेशवा और हैदरअली।

अध्याय ४

नाना फडनीस और वारन हेस्टिंग्स

(१७७३–१७९६ ई०)

§१. भारत में अंग्रेज़ी शासन पद्धति की नींव पड़ना—इंग्लैंड के लोगों के सामने यह प्रश्न आया कि उनके देश के कुछ व्यापारियों ने जो एक नया देश जीत लिया, वह किसका है। उन व्यापारियों का या अंग्रेजी राष्ट्र का? अंग्रेज लोग जहां कहीं भी चले जांय, अंग्रेजी कानून उनपर लागू होता था, और इन व्यापारियों को भारत में व्यापार करने का एकाधिकार भी तो ब्रितानवी राष्ट्र से ही मिला था। इसलिए स्वभावतः इंग्लैंड के लोगों ने यह सिद्धान्त स्थापित किया कि राष्ट्र का कोई व्यक्ति जो भूमि जीतता है, वह राष्ट्र के लिए जीतता है। तदनुसार सन् १७६७ में अंग्रेजी पार्लिमेंट (विधान-सभा) ने एक कानून द्वारा कम्पनी के मुनाफे की दर नियत कर दी और यह तय किया कि कम्पनी ब्रितानवी सरकार के कोष में ४ लाख पौंड वार्षिक दिया करे। कुछ बरस बाद जब कम्पनी यह रकम न दे सकी तब उसके कार्य को नियमित करने के लिए एक 'रेग्युलेटिंग ऐक्ट' (नियामक कानून) बना दिया (१७७३ ई०)। इन कार्रवाइयों को समझने के लिए इंग्लैंड की राज्यसंस्था के विषय में जानना आवश्यक है।

अंग्रेज लोगों के पुरखा मुख्यतः आंग्ल और सेक्सन "जनों"* के थे जो प्राचीन जर्मनी से इंग्लैंड में जा बसे थे। वे आर्य वंश की जर्मन या ट्यूटन शाखा के थे। प्राचीन आर्य 'जनों' में यह रिवाज था कि राजा सरदारों की सलाह से शासन करता था। उत्तर भारत में जब तुर्क आये, तभी इंग्लैंड को नौर्मन लोगों ने जीता। नौर्मन राजाओं ने जब प्रजा के पुराने अधिकार कुचलने चाहे, तब प्रजा ने उन्हें बाधित किया कि वे सरदारों की सभा या 'पार्लिमेंट' की सलाह से ही शासन करें। धीरे धीरे पार्लिमेंट में सरदारों के अतिरिक्त नगरों के नेता भी शामिल होने लगे। यह रिवाज बराबर जारी रहा। इंग्लैंड के राजा जो कर लगाते वह पार्लिमेंट की स्वीकृति ले कर ही लगाते। जहाँगीर और शाहजहाँ के समकालीन इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम और चार्ल्स प्रथम थे। उन्होंने निरंकुश होना चाहा। तब प्रजा ने कर देना बन्द कर विद्रोह किया और चार्ल्स को कैद कर फाँसी दे दी (१६४६ ई०—शिवाजी के उत्थान का वर्ष)। कुछ वर्ष प्रजा के मुखिया क्रौमवेल के शासन के बाद चार्ल्स के बेटे फिर बुलाये गये। किन्तु प्रजा ने उन्हें फिर निकाल कर हौलैंड के एक राजकुमार को, जिसने स्पेन के विरुद्ध विद्रोह में प्रमुख भाग लिया था, इस शर्त के साथ अपने देश की गद्दी दी कि वह प्रजा के अधिकार स्वीकृत करे (१६८८-८६ ई०—सम्भाजी के पतन का वर्ष)।

---

* परिवार के नमूने पर जो अपने को सनाभि मानने वाले मनुष्यों के समूह वैदिक भारत में 'जन' कहलाते थे [७,२§२]। 'जन' प्राचीन आर्यों का शब्द है जो आर्य वंश की अनेक शाखाओं में चलता था। भारत गणराज्य संविधान के हिन्दी संस्करण ने जिस अनुवाद समिति ने इस अर्थ के लिए जनजाति शब्द गढ़ा जो कि आधुनिक हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए उपयुक्त होगा। किन्तु संविधान को छपाई होते समय उसके बदले 'आदिम जाति' कर दिया गया। इस अनचाही शब्द से यह सूझता होता है कि भारत में अब भी जो लोग जनजातीय (क़बायली) दशा में हैं, अर्थात् जिनका समाज अपने को सनाभि मानने वाले समूहों से बना है, वे भारत के आदिम लोग हैं। यह गलत कल्पना है। असम मणिपुर और बस्तर के बहुत से सनाभि समूह वहाँ ११वीं शताब्दी तक में आये [८,३§२]।

इस क्रान्ति से प्रजा के अनेक बुनियादी अधिकार स्थापित हो गये। पार्लिमेंट की स्वीकृति बिना राजा कोई भी कर न लगा सकता और न कहीं से रुपया उधार ले सकता था। करों की स्वीकृति पहले राजा की आयु भर के लिए दी जाती थी, अब वार्षिक आय-व्यय की स्वीकृति दी जाने लगी। इससे राज-कर्मचारियों के वेतन पर नियन्त्रण हुआ। व्यय की स्वीकृति देने से पहले पार्लिमेंट उनके कार्यों की पूरी जाँच करती। सेना की संख्या भी पार्लिमेंट प्रतिवर्ष नियत करने लगी। कानून बनाना और राजा का उत्तराधिकारी नियत करना भी पार्लिमेंट के ही हाथ आ गया। पार्लिमेंट के सदस्यों को भाषण और विचार-विवाद की पूरी स्वतन्त्रता दी गई। किसी व्यक्ति को अकारण और बेकायदा कैद करने का अधिकार राजा को न रहा। पार्लिमेंट में सरदारों के बजाय क्रमशः प्रजा के प्रतिनिधियों का पद बढ़ता गया। यों समूचा शासन प्रजा के हाथों मे आ गया। पार्लिमेंट के हाथों में सब शक्ति आ जाने से राजा के लिए यह आवश्यक हो गया कि पार्लिमेंट मे जो बहुपक्ष हो, उसी के नेताओं को अपना मन्त्री चुने। समय-समय पर पार्लिमेंट का नया चुनाव होने से प्रजा के रुझान के अनुसार उसका बहुपक्ष बनने लगा। अठारहवीं सदी के मध्य तक इंग्लैंड की यह राज्य-संस्था पूरी तरह स्थापित हो गई। तब से राजा केवल नाम और प्रभाव के लिए रह गया। शासन-सम्बन्धी और गोपनीय कार्य मन्त्रिमंडल द्वारा होते हैं; किन्तु पार्लिमेंट बाद मे उनकी सफाई माँग सकती है। इस राज्यसंस्था के कारण तथा इंग्लैंड के लोगों को अपना हिताहित पहचानने का जो अभ्यास हो चुका है उसके कारण प्रजा का योग्यतम आदमी सुगमता से राष्ट्र का नेता बन जाता है और आन्तरिक उलझनों मे राष्ट्र की शक्ति कम से कम घिसती है।

अठारहवी सदी में फ्रांस भारत और अमरीका में अपने लोगों को सहारा न दे सका या योग्य आदमी न भेज सका, इसका कारण यही था कि तब फ्रांस का आन्तरिक शासन खराब था। फ्रांस की प्रजा ने इंग्लैंड से १०० वर्ष पीछे अपना घर सँभाला। तब तक अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड चुकी थी।

भारत की प्रजा अपने घर का जो प्रबन्ध स्वयं न कर सकी, सो इंग्लैंड की प्रजा अब इतनी दूर से करने लगी। रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार बंगाल-

बिहार के मुल्की और फौजी शासन के लिए कलकत्ते में एक गवर्नर जनरल चार सदस्यों की कौंसिल के साथ, तथा न्याय के लिए एक सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) नियत किया गया। सुप्रीम कोर्ट की नियुक्ति इ० इ० कम्पनी द्वारा नहीं, प्रत्युत ब्रितानवी सरकार द्वारा होती। पहले पाँच वर्ष के लिए गवर्नर-जनरल और कौंसिल की नियुक्ति भी ब्रितानवी सरकार ने की। बंगाल के अतिरिक्त मद्रास और बम्बई की भी दो 'प्रेसिडेंसियाँ' कहलाती थीं, क्योंकि कम्पनी की स्थानीय कौंसिल के प्रेसिडेंट या सभापति उनके शासन के मुखिया थे। उन दोनों प्रेसिडेंसियों पर भी गवर्नर जनरल का निरीक्षण और नियन्त्रण रक्खा गया। गवर्नर-जनरल और कौंसिल को रेग्युलेशन (नियम) बनाने का अधिकार दिया गया। वे रेग्युलेशन सुप्रीम कोर्ट में प्रकाशित होने से कानून बन जाते थे, किन्तु ब्रितानवी सरकार उन्हें रद्द कर सकती थी। अपने कार्यों के लिए गवर्नर जनरल और कौंसिल पार्लिमेंट के सामने जवाबदेह बनाये गये। कम्पनी के डाइरेक्टरों के लिए भारत की मालगुजारी तथा मुल्की और फौजी शासन सम्बन्धी सब कागद पत्र ब्रितानवी सरकार के सामने पेश करना आवश्यक कर दिया गया।

§७ वारन हेस्टिंग्स—सन् १७७२ में बंगाल का गवर्नर वारन हेस्टिंग्स था। रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अनुसार वही पहला गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया। उसने बंगाल बिहार में दुराज का अन्त कर सीधे अंग्रेजी शासन की स्थापना की। कलकत्ते में एक बोर्ड आव रेवेन्यू स्थापित कर उसके अधीन हर जिले में एक अंग्रेज कलक्टर नियत कर दिया। एक सदर दीवानी और एक सदर निजामत अदालत कलकत्ते में बैठा कर उनकी देखरेख में कलक्टरों को जिलों में दीवानी मामले और पुराने देशी अधिकारियों को फौजदारी मामले सुनना सौंप दिया। ये अदालतें किस कानून के अनुसार चलें, यह प्रश्न आया। हेस्टिंग्स ने हिन्दू और मुस्लिम विद्वानों द्वारा उनके कानून का एक सकलन करा के एक 'कोड' या स्मृति बनवाई। भारतवर्ष और पूरबी देशों के विषय में जानकारी प्राप्त करने और ज्ञान का संग्रह और खोज करने के लिए सर विलियम जोन्स ने वारन हेस्टिंग्स के प्रोत्साहन से 'एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल' की स्थापना की (१७८४ इ०)।

मालगुजारी का बन्दोबस्त नीलामी द्वारा ही होना रहा जिससे पुरानी जागीरें कलकत्ते के दलालों और गुमाश्तों के हाथ बिकती गईं। इनके जुल्मों से प्रजा में त्राहि-त्राहि की पुकार मच गई। वहाँ कहीं पुराने जमींदारों ने प्रजा को बचाने की कोशिश की—रानी भवानी नाम की राजशाही की एक जमींदारिन का नाम इस प्रसंग में प्रसिद्ध हुआ। किन्तु इन्हें सफलता न हुई। कई जगह किसान खेत छोड़ कर भागे; तब उन्हें अंग्रेजी फौज ने घेर कर वापिस धकेल दिया।

तमिळनाड के नवाब मुहम्मदअली से ऋण चुकाते न बना तो उसने अपने उत्तमर्णों से कहा कि तांजोर के राजा को लूट कर वसूल लो। इस प्रकार १७७१ ई० में अंग्रेजी फौज ने तांजोर पर चढ़ाई कर ४० लाख रुपया वसूल किया। १७७३ में फिर चढ़ाई करके उन्होंने राजा को कैद किया और उसका इलाका मुहम्मदअली ने उन सूदखोरों के हाथ रहन रख दिया। दक्खिन भारत का वह बाग तब वीरान हो गया।

सन् १७७५ में लार्ड पिगोट को मद्रास का गवर्नर बना कर इस उद्देश से भेजा गया कि वह नौकरों के निजी कर्जों से पहले कम्पनी का कर्ज वसूलने का उपाय करे। पिगोट ने तांजोर के राजा को छोड़ दिया, लेकिन मद्रास के कौंसिलरों ने पिगोट को ही कैद कर लिया! वारन हेस्टिंग्स ने उसकी सुध न ली और वह कैद में ही मरा। मुहम्मदअली के कर्ज बढ़ते ही गये, उनका कोई लिखित हिसाब भी न था! उसे भी क्या परवा थी? कर्ज चुकाने वाले तो तमिळ किसान थे। १७८२ ई० में उस प्रान्त में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा।

वारन हेस्टिंग्स को अपनी कौंसिल के कारण सदा कठिनाई रही। बहुमत के अनुसार कानून और बजट बनाना आदि ठीक होता है, किन्तु नित्य का शासन कभी बहुमत से नहीं चल सकता। ५ में से ३ सदस्यों के मत से यदि युद्ध शुरू कर दिया जाता, तो कुमुक भेजने का मौका आने पर एक सदस्य अपना मत बदल लेता। इससे यह तजरबा हुआ कि शासन-समितियों का काम केवल सलाह देना होना चाहिए, और शासन का अन्तिम दायित्व सदा एक व्यक्ति पर रहना चाहिए। यदि वह अपने दायित्व का दुरुपयोग करे तो पीछे

उससे पालिमेंट सफ़ाई माँग सकती है।

§३ पेशवा नारायणराव और "बारा भाई" (१७७२-७५ ई०)—माधवराव के बाद उसका छोटा भाइ नारायणराव पेशवा बना। माधव ने मृत्यु से पहले राघोबा से समझौता करके उसे छोड़ दिया था। नारायणराव ने उसे फिर कैद कर लिया। अंग्रेज दूत मोस्टिन से राघोबा की साँठगाँठ थी। राघोबा ने नारायण को कैद कर स्वयं छूटने का षड्यन्त्र किया, जिसका फल यह हुआ कि महल के रक्षक 'गार्दियों' ने नारायणराव की हत्या कर डाली (३०-८-१७७३ ई०)। राघोबा ने अपने को निर्दोष कह कर राज-काज अपने हाथ में कर लिया। किन्तु नारायण की तिलाञ्जलि के दिन नाना फड़नीस, हरि बल्लाल फड़के आदि बारह नेताओं ने शपथ ली कि वे उस हत्यारे को देश का शासन न करने देंगे।

वारन हेस्टिंग्स, जान पड़ता है, नारायणराव की हत्या पर घात लगाये बैठा था। मोस्टिन से खबर पाते ही वह बनारस दौड़ा आया और शुजाउद्दौला से सन्धि कर अवध-रुहेलखंड को अपने शिकञ्जे में कस लिया। निजामअली और हैदरअली ने भी महाराष्ट्र की विपत्ति से लाभ उठा कर अपने छिने हुए इलाके वापिस लेने की कोशिश की। राघोबा उनकी तरफ बढ़ा। पीछे उन बारह नेताओं या "बारा भाइ" ने नारायण की विधवा गंगाबाई और उसके गर्भस्थ बालक के नाम पर शासन अपने हाथ में ले लिया। राघोबा हैदरअली की सीमा से लौटा, किन्तु उसे पूने में घुसने की हिम्मत न हुई। उसने मुम्बई के अंग्रेजों से बातचीत शुरू की और नर्मदा पार कर गुजरात जा पहुँचा। तभी गंगाबाइ के पुत्र हुआ (१८-४-१७७४)। चालीसवें दिन उस सवाइ माधवराव को पेशवाइ के वस्त्र पहनाये गये। हरि फड़के, महादजी शिन्दे और तुकोजी होल्कर ने राघोबा का पीछा किया। तब वह परेशान हो कर अंग्रेजों की शरण में सूरत पहुँचा।

पलासी और बक्सर के विजयों से अंग्रेजों के दिलों में भारत में साम्राज्य बनाने की जो आशा जग गई थी, पेशवा माधवराव के चरित ने उसे बहुत कुछ ठंडा कर दिया था। माधवराव की मृत्यु से वह आशा फिर भड़क उठी, और नारायणराव की हत्या ने उसका रास्ता साफ हो गया। सूरत पहुँच कर

राघोबा ने अंग्रेजो से सन्धि की जिससे उसने मराठा साम्राज्य में मीरजाफर का काम करना मान लिया। उसी वर्ष नेल्सन, जो बाद मे इंग्लैंड का प्रसिद्ध नाविक हुआ, मुम्बई आया।

§४. **अवध-रुहेलखंड अंग्रेज़ी शिकंजे में**—बनारस की नई सन्धि के अनुसार शुजाउद्दौला ने कोडा और कडा अर्थात् फतहपुर और इलाहाबाद जिले अंग्रेजो से ५० लाख रुपये मे खरीद लिये तथा उनकी सेना के खर्च का एक अश देते रहना स्वीकार किया। अंग्रेजो ने और ४० लाख रुपया ले कर उसे रुहेलखंड जीतने को सैनिक सहायता देना स्वीकार किया। अब से उन्होंने बादशाह को २६ लाख वार्षिक देना भी बन्द कर दिया।

अंग्रेजी सेना ने शुजा के साथ रुहेलखड पर चढ़ाई की। मीरनपुरकटरा के पास बबूल नाले मे रुहेले वीरता से लडे, पर हार गये। विजेताओं ने रुहेल-खंड को बुरी तरह लूटा और रुहेलो का सहार किया। अन्त मे एक रुहेले सरदार की बेटी ने शुजा को मार डाला। उसके बेटे आसफुद्दौला को हेस्टिंग्स ने अपने राज्य मे अधिक अंग्रेजी फौज रखने को बाधित किया, और उस फौज के खर्चे के लिए गोरखपुर, बहराइच जिलो की मालगुजारी ले ली। यो अवध अब पूरी तरह अंग्रेजो का रक्षित राज्य बन गया। इसके अतिरिक्त अवध के नवाब ने अब बनारस राज्य पूरी तरह अंग्रेजो को दे दिया। गोरखपुर बहराइच में बंगाल-बिहार की तरह मालगुजारी की नीलामी के साथ प्रजा पर घोर जुल्म होने लगे। लगान न दे सकने वाले किसानो को पिंजरे मे बन्द कर धूप में छोड़ देना अंग्रेजी कारिन्दों का एक साधारण तरीका था। इन जिलो मे बंगाल-बिहार की तरह विद्रोह हुआ जो कुचला गया।

§५. **पहला अंग्रेज़ मराठा-युद्ध**—कलकत्ते की अंग्रेज कौंसिल ने मीरजाफर के साथ किये षड्यन्त्र द्वारा जैसे एक बडा प्रान्त जीत लिया था, मुम्बई की अंग्रेज कौंसिल भी राघोबा के साथ किये षड्यन्त्र द्वारा वैसे ही एक बड़ा प्रान्त जीत लेने के सपने देखने लगी। यो पहले अंग्रेज-मराठा-युद्ध का सूत्रपात हुआ।

राघोबा और मोस्टिन की प्रेरणा से गुजरात के फतेसिंह गायकवाड ने

भरुच अंग्रेजों को दे दिया। मुम्बई से कर्नल कीटिंग को राघोबा के साथ पूने पर चढ़ाई करने के लिए खम्भात भेजा गया। पर वे नर्मदा पार न कर सके।

मुम्बई के अंग्रेजों की यह विफलता उनकी छोटी कल्पना और जल्दी कर दिखाने के लिए उतावलेपन के अनुरूप थी। वारन हेस्टिंग्स देख रहा था कि भारत की प्रमुख शक्ति से युद्ध दूसरे ढंग से बड़े क्षेत्र में और बड़ी तैयारी से चलाना होगा, और वह उस तैयारी में लगा था। पर उसके लिए यह आवश्यक था कि मुम्बई कौंसिल ने जो युद्ध शुरू कर दिया था पहले उसे रोका जाय। इसलिए कलकत्ते की बड़ी कौंसिल ने इस युद्ध को रोक कर अपने प्रतिनिधि उप्टन को "बार भाइयों" से सन्धि करने पुरन्दर भेजा। १ ३ १७७६ को सन्धि हुई जिसकी शर्तें ये थीं कि (१) साष्टी और भरुच अंग्रेजों के पास ही रहेंगे, और (२) राघोबा पेंशन ले कर महाराष्ट्र में रहेगा। परन्तु सन्धि के अनुसार भी मुम्बई सरकार ने राघोबा को मराठों के हाथ न सौंपा।

इसी समय इंग्लैंड की साम्राज्य-लालसा को भारी धक्का लगा। अमरीका के अंग्रेजी उपनिवेशों पर ब्रितानी पार्लिमेंट ने कुछ कर लगाने चाहे, परन्तु वहाँ के लोगों ने कहा कि हमारे अपने प्रतिनिधि ही हम पर कर लगा सकते हैं, और विद्रोह कर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी (१७७६ ई०)। आठ बरस तक अपने उन उपनिवेशों के साथ इंग्लैंड ने विफल युद्ध किया। ठीक इसी समय भारत में पहला अंग्रेज-मराठा युद्ध चलता रहा। साम्राज्य पर संकट आने से भारत में भी अंग्रेज बड़े सतर्क रहे।

वारन हेस्टिंग्स ने अपनी युद्ध-योजना के अनुसार नागपुर के राजा मुधोजी भोंसले को मराठा गुट में से फोड़ लेने की कोशिश की और कर्नल लेस्ली को प्रयाग की तरफ से मराठा साम्राज्य में घुसने को भेजा। मुम्बई से भी राघोबा के साथ पूने पर चढ़ाई को फिर फौज भेजी गई (ई० १७७८)। सागर के हाकिम बालाजी गोविन्द बुन्देला ने लेस्ली को रोके रक्खा, जो वहीं बीमार हो कर मर गया। राघोबा के साथ वाली अंग्रेजी सेना बड़ी परेशानी के बाद पूने से १८ मील तक पहुँच गई। तब एक मराठा टुकड़ी ने चक्कर काट कर उसका मुम्बई से सम्बन्ध काट दिया। अपनी तोपें एक तालाब में फेंक कर

वह वहीं से लौटने लगी। दो दिन बाद वडगाँव में चारों तरफ से घिर कर उसने सन्धि की प्रार्थना की। राबोबा ने महादजी शिन्दे के आगे आत्म-समर्पण कर दिया और अंग्रेजों ने यह ठहराव किया कि १७७३ ई० के बाद उन्होंने कोंकण में जो कुछ जीता है सब लौटा देंगे, भरुच महादजी को देंगे और बंगाल से आती हुई कुमुक को रोक देंगे।

सन्धि की शर्तें पूरी कराये बिना मराठों ने उस कैदी सेना को जाने दिया। उसके मुम्बई पहुँचते ही अंग्रेजों ने सन्धि तोड़ दी। मराठा सरकार ने उस समय के भारतीय राज्यों के पारस्परिक बर्त्ताव में माने हुए राजनीतिक सदाचार पर चल कर वडगाँव की सन्धि पर भरोसा किया और अंग्रेज कैदियों को छोड दिया था। उसे जानना चाहिए था कि वह अंग्रेजों से बरत रही है। डेढ़ मास बाद लेस्ली का उत्तराधिकारी जनरल गौडर्ड मुधोजी भोंसले की चश्मपोशी और भोपाल के नवाब के सहयोग से "मराठा साम्राज्य को सूखे बाँस की तरह बीचोबीच चीरता हुआ" सूरत जा पहुँचा। इधर राबोबा को झाँसी में नजरबन्द रखने भेजा जा रहा था तो वह नर्मदा के घाट से भाग कर भरुच जा पहुँचा।

गौडर्ड ने गुजरात में युद्ध छेड़ना तय किया (१७८० ई०) क्योंकि वहाँ फतेसिंह गायकवाड की मदद मिल रही थी। उन दोनों ने गुजरात में पेशवा के इलाकों पर चढ़ाई की और दाभोई और अहमदाबाद ले लिये। महादजी शिन्दे और तुकोजी होल्कर गौडर्ड के खिलाफ भेजे गये। वे उसे लुभा कर आगे-आगे बढ़ाने लगे। पीछे से एक मराठा टुकडी ने कोंकण से आ कर उसे सूरत के आधार से काटना चाहा। कोंकण में एक अंग्रेज टुकड़ी काट डाली गई।

नाना फडनीस ने माधवराव की योजना को पुनरुज्जीवित कर अंग्रेजों की तीनों प्रेसिडेंसियों पर एक साथ आक्रमण करना तय किया। मुधोजी भोंसले को सीधा करके उसने हैदर और निजामअली को साथ लिया। निजामअली से कुछ न बन पड़ा। मुधोजी को ३० हजार सेना से बंगाल पर चढ़ाई करने का आदेश दिया, परन्तु वह टालता रहा और उलटा हेस्टिंग्स को पता दे दिया कि उसे

चढ़ाई करनी पड़ेगी। हैदरअली के मराठों से मिल जाने की सूचना अंग्रेजों को मद्रास के पास के जलते हुए गाँव देख कर मिली। उसने मद्रास पर घेरा डाल दिया और तमिलनाड में जहाँ तहाँ अंग्रेजी फौज को खोज खोज कर कैद किया।

हैदरअली
[विक्टोरिया स्मारक कलकत्ता, श्री सुन्दरलालजी के सौजन्य से]

उत्तरी रणांगण में अंग्रेजों ने गोहद के जमींदार (धौलपुर राजा के पूर्वज) को फोड़ लिया और उसकी मदद से कप्तान पौफम ने ग्वालियर ले लिया। शिन्दे को तब गोडर्ड का पीछा छोड़ कर उधर लौटना पड़ा और गोडर्ड कोंकण में हारती अपनी सेना को बचा पाया। हैदरअली ने गिलाफ गुण्टूर से बेली और मद्रास से मुनरो दो फौजें ले कर चले। उन्हें मिलने न देकर हैदर ने बेली की सारी फौज कैद कर ली या काट डाली। और मुनरो—बक्सर का विजेता मुनरो—अपनी तोपें कांची के तालाब में फेंक लस्टमपस्टम मद्रास भागा।

उधर गोडर्ड ने बसई ले ली। हेस्टिंग्स ने तब सन्धि का प्रस्ताव किया परन्तु नाना और हरि फड़के ने कोई उत्तर न दिया। गोडर्ड ने अरनाला द्वीप ले कर फिर सन्धि का प्रस्ताव भेजा। जवाब में नाना ने परशुरामभाऊ पटवर्धन और हरि फड़के को सेना के साथ भेजा। उन्होंने गोडर्ड को पूरी तरह हरा कर कोंकण को अंग्रेजी फौज से साफ कर दिया।

जिस कप्तान कैमक को सन् १७७२ में भाड़खण्ड जीतने को नियुक्त किया गया था, उसने १७८० तक उस प्रान्त को पूरी तरह अधीन कर लिया। अब

उसे भी शिन्दे के राज पर उत्तर से चढ़ाई करने भेजा गया। मालवे में सिपरी ले कर वह सिरोंज तक बढ़ आया।
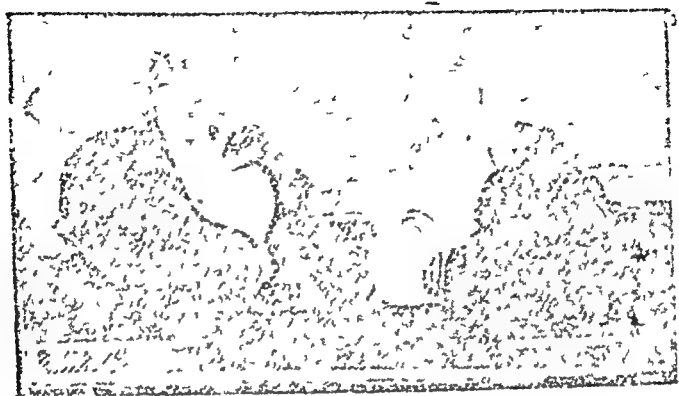
सवाई माधवराव पेशवा
सामने हरिपन्त फड़के (उजले कपड़े पहने) और महादजी शिन्दे
[भा० इ० सं० मं०]

इस युद्ध का खर्चा जुटाने के लिए वारन हेस्टिंग्स ने सब तरह के उपाय किये। काशी के राजा चेतसिंह पर दबाव डाल कर वह सन् १७७८ से कर तथा सेना के खर्च के अलावा ५ लाख रुपये वार्षिक ले रहा था। १७८१ में उसने और रकम माँगी। चेतसिंह ने इनकार किया और मराठों से बात की; तब हेस्टिंग्स ने बनारस पहुँच कर उसे कैद कर लिया। इसपर प्रजा भड़क उठी और हेस्टिंग्स को घेर लिया। मुधोजी भोंसले के दूत उसके साथ थे। उन्होंने उसे बचा कर गंगा पार उसकी छावनी में पहुँचा दिया। अवध के आसफुद्दौला पर दबाव डाल कर हेस्टिंग्स ने उसकी माँ और दादी से अत्यन्त निर्घृण तरीकों से एक करोड़ रुपया ऐंठ लिया। बनारस का राज्य उसने चेतसिंह के भानजे को दे कर उसके अधिकार बहुत परिमित कर दिये।

सन् १७७८ में फ्रांस ने और उसके बाद स्पेन और हौलैंड ने भी अमरीकी उपनिवेशों का पक्ष ले कर इंग्लैंड से युद्ध-घोषणा कर दी थी। फ्रांसीसी एक जबरदस्त जंगी बेड़ा भारत भेजने को तैयार कर रहे थे। इस दशा

में हेस्टिंग्स ने बूढ़े आयरकूट को मद्रास भेजा। इसके साथ ही उसने मुधोजी भोंसले को पचास लाख रुपया रिश्वत दे कर न केवल बंगाल पर चढ़ाई करने से रोक दिया, प्रत्युत बंगाल से उसके इलाके द्वारा एक सेना मद्रास की कुमुक में भेजी। स्थल द्वारा बंगाल से मद्रास जाने वाली अंग्रेजों की यह पहली सेना थी। कूट ने हैदर की रोकथाम की और जगह जगह घिरी हुई अंग्रेजी फौजों को छुड़ाया (जुलाई सितम्बर १७८१), तो भी वह हैदर को तमिळनाड से निकाल न सका। फ्रांसीसी बेड़ा भी तब भारतीय समुद्र में पहुँचने वाला था। नाना ने निश्चय किया कि उस साल जाड़े में बंगाल के साथ साथ मुम्बई पर भी चढ़ाई की जाय। लेकिन बरसात में कैमक ने महादजी के इलाके बुरी तरह उजाड़े, इस से महादजी ने अब हिम्मत हार दी और नाना से भी समझौता करा देना मान लिया (१३.१०.१७८१)।

§६. सालबई और मंगलूर की सन्धियाँ—महादजी की मध्यस्थता से ग्वालियर के पास सालबई में सन्धि हुई (१७.५.१७८२)। उसके अनुसार अंग्रेजों ने राघोबा को मराठों के हाथ सौंप दिया और पुरन्दर की सन्धि के बाद जो इलाका छीना था सब लौटा दिया। भड़ौच शिन्दे को और अहमदाबाद आदि गायकवाड़ को इस शर्त पर दिये गये कि नियम से पूना कर भेजते रहें। पेशवा ने हैदरअली से तमिळ प्रदेश लौटाने का जिम्मा लिया। अंग्रेजों ने राघोबा द्वारा मराठा साम्राज्य में जो खेल खेलना चाहा था उसमें वे निष्फल हुए। इसी तरह गायकवाड़ और भोंसले को उन्होंने मराठा संघ से तोड़ना चाहा था, उसमें भी उन्होंने हार मानी। राघोबा गोदावरी के तट पर कोपरगाँव में जा रहा और दो बरस बाद मर गया।

पेशवा नारायणराव की हत्या के बाद से महाराष्ट्र में भी कलकत्ते और मुम्बई की कौंसिलों की तरह 'बारा भाइयों' की समिति शासन चला रही थी। किन्तु इस युद्ध के बीच धीरे धीरे उसके स्थान में एक ही अधिनायक नाना फड़नीस का शासन स्थापित हो गया।

हैदर ने युद्ध बन्द न किया था। सिंहल द्वीप [६,४§§३,१६] का विशाल बन्दरगाह त्रिंकोमली अंग्रेजों ने ओलन्देजों से छीन लिया (सन्० १७८२

ई०), पर तभी हैदर के बेटे टीपू ने ताञ्जोर पर एक अंग्रेजी टुकड़ी की पूरी सफाई कर दी और फ्रांस के श्रेष्ठ नाविक सूफ्रॉ ने २००० फ्रांसीसी सेना तट पर उतार दी। उनकी मदद से हैदर ने कुड्डलूर जीत लिया और सूफ्रॉ ने त्रिंकोमलै भी अंग्रेजों से छीन लिया। किन्तु युद्ध के बीच ही हैदरअली की मृत्यु हुई (७-१२-१७८२)। वह पहला स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी प्रशासक था जिसने युग की नई युद्ध शैली को ठीक ठीक समझ लिया था। अपना जंगी बेड़ा बनाने का भी यत्न किया। उसका शासन दृढ और निष्पक्ष था। मजहबी तअस्सुब उसे छू न गया था।

हैदर के बेटे टीपू ने युद्ध जारी रक्खा। फ्रांस से बुसी भी फिर भारत आया, पर उसके आने के बाद शीघ्र ही फ्रांस-इंग्लैंड के बीच सन्धि हो गई। टीपू तब अकेला लड़ता रहा। अंग्रेजो ने पच्छिम तट से उसके राज्य पर हमला किया, इसलिए उसे उधर जाना पड़ा। मार्च १७८४ में उसने मंगलूर में अंग्रेजों से लाभ की सन्धि की।

पहले अंग्रेज-मराठा-युद्ध से जहाँ यह प्रकट हुआ कि मराठा साम्राज्य को अंग्रेज बंगाल की सल्तनत की तरह एक ही झटके में नहीं ले सकते, वहाँ मराठा साम्राज्य की कमजोरी भी प्रकट हुई। शत्रु की सेना उसके दो किनारों को चीरती हुई बनारस से सूरत और कलकत्ते से मद्रास तक निकल गई। तमिळनाड पर हैदरअली की चढ़ाई के सिवाय और सब जगह मराठो ने रक्षा-परक युद्ध ही किया।

§७. पिट का भारत-शासन-विधान, और कार्नवालिस का स्थायी बन्दोबस्त—वारन हेस्टिंग्स के शासन-काल के तजरबे से ब्रितानवी भारत के शासन-विधान को बदलने की जरूरत मालूम हुई; इससे प्रधान-मन्त्री (छोटे) पिट ने पार्लिमेंट से एक नया कानून पास कराया (१७८४ ई०)। इस कानून का सार यह था कि अंग्रेजी सरकार छः व्यक्तियो का एक नियन्त्रण-वर्ग (बोर्ड आव कंट्रोल) नियत करे, तथा कम्पनी के डाइरेक्टर भारत के शासन और मालगुजारी-विषयक तमाम कागज-पत्र उसके पास भेजा करे, और वर्ग उन पर जो आज्ञा दे उसे वे भारत मे अपने कर्मचारियों के पास पहुँचा दिया

करें। डाइरेक्टर कोई सीधी आज्ञा भारत में अपने कर्मचारियों को न दें। वर्गं वे जो आदेश युद्ध आदि गोपनीय विषयों के बारे में हों वे डाइरेक्टरों की सभा के बजाय उस सभा की गुप्त समिति द्वारा भेजे जाँय। गवर्नरों और प्रधान सेनापतियों के सिवाय बाकी सब कर्मचारियों की नियुक्ति कम्पनी करे कलकत्ता कौंसिल मे ३ सदस्य हों, भारत के गवर्नर कोई युद्ध या युद्धपरक सन्धि गुप्त समिति की आज्ञा बिना न करें। इस कानून से कम्पनी का शासन-सम्बन्धी सब कार्य ब्रितानवी सरकार के पूरे नियन्त्रण में चला गया। कम्पनी का काम केवल बोर्ड के आगे प्रस्ताव रखना, उसकी आज्ञाओं को भारत में पहुँचाना और छोटे पदों पर नियुक्तियाँ करना रह गया। ब्रितानवी भारत के शासन-विधान में बाद में चाहे जो परिवर्तन होते रहे, उस विधान का ढाँचा बराबर वही रहा जो छोटे पिट ने खड़ा किया था। १७८६ ई० के एक संशोधन से गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल के बहुमत को भी न मानने का अधिकार दिया गया।

इस शासन विधान के साथ-साथ नवाब मुहम्मदअली के ऋणों का प्रश्न भी पार्लिमेंट के सामने आया। उस जमाने में इंग्लैंड के निर्वाचकमण्डल बड़े भ्रष्ट थे। मुहम्मदअली के अंग्रेज उत्तमर्णों ने लूट के रुपये से उनके मत खरीद कर अपने प्रतिनिधि पार्लिमेंट में भी भर लिये थे। मन्त्रिमण्डल को उन प्रतिनिधियों के मतों की जरूरत थी, इसलिए पार्लिमेंट ने उनके सब असली और फर्जी कर्जों को स्वीकार कर लिया—अर्थात् तमिळ किसानों की लूट पर अपनी मुहर लगा दी। तब गोरे सूदखोरों का एक नया दल गिद्धों के झुंड की तरह तमिळ भूमि पर आ मँडराने लगा और मुहम्मदअली के कर्ज और बढ़ते ही गये।

वारन हेस्टिंग्स के उत्तराधिकारी कार्नवालिस (१७८६-९३ ई०) ने अपना ध्यान मुख्यतः शासन को व्यवस्थित करने पर लगाया। उसने पुलिस का संगठन किया, कलक्टरों के पास केवल वसूली का काम रहने दिया, और न्याय कार्य के लिए अलग जज नियत किये। बंगाल बिहार-बनारस में उसने जमीन का "स्थायी बन्दोबस्त" किया (१७९३ ई०), पर आन्ध्र तट के जिलों में पहले

पर उसे टीपू ने हरा दिया। तब खुद कार्नवालिस ने उधर आ कर बेंगलूर लेते हुए श्रीरंगपट्टम् आ घेरा। टीपू ने उसका सम्बन्ध चारों तरफ से काट कर उसे लौटने को बाधित किया। उस दशा में उसे एक सेना दिखाई दी जिसे शत्रु जान वह मरने को तैयार हुआ। किन्तु वह सेना मराठों की निकली। तीनों सेनाओं ने मिल कर फिर से श्रीरंगपट्टम् घेर लिया। टीपू ने सन्धि-भिक्षा की। कार्नवालिस टीपू के राज्य का अन्त करना, पर नाना उसे बनाये रखना चाहता था। इसलिए विजेताओं ने तीन करोड रुपया और आधा राज्य लेकर टीपू से सन्धि की (१७६३ ई०)। उत्तरपच्छिमी और उत्तरपूरबी जिले क्रमशः मराठों और निजामअली को तथा कोडगु (कुर्ग), मलबार, दिन्दिगुल और बारा-महाल (सेलम, कृष्णागिरि) अंग्रेजों को मिले।

§१०. **उत्तर भारत में महादजी शिन्दे**—पेशवा माधवराव ने अपने अन्तिम समय में जिस सेना को उत्तर भारत में रहने के लिए भेजा था, उसे नारायणराव ने १७७३ ई० में वापिस बुला लिया था। नारायणराव ने भी बालाजीराव की तरह यह सोचा था कि पहले सारी शक्ति लगा कर तमिळनाड को जीता जाय!

१७७३ में ही अहमदशाह अब्दाली की मृत्यु हुई। उसके बेटे तैमूरशाह ने सिक्खों से मुलतान वापिस ले लिया (१७७६ ई०)। सिन्ध पर अब्दालियों का अधिकार बना ही था।

दिल्ली और राजस्थान में १७७३ से दस वर्ष तक मराठों की अनुपस्थिति में अंग्रेजों ने अपने अनेक गुरगे बिठा दिये थे। सालबई की सन्धि के बाद १७८२ में महादजी शिन्दे फिर दिल्ली पहुँचा तो बादशाह ने खैर मनाई। उसने महादजी के हाथ में राज्य की सब शक्ति दे दी और पेशवा को अपना वकीले-मुतलक अर्थात् एकमात्र प्रतिनिधि बना दिया। महादजी ने अंग्रेजों के शिकंजे से अवध को छुडाने के लिए सिक्खों के साथ सन्धि की। किन्तु वह जैसा योग्य सेनापति था, शासन-प्रबन्ध में वैसा ही कोरा था। अंग्रेजी गुरगों से वह पार न पा सका और उसे दिल्ली से हटना पड़ा (१७८५ ई०)।

अंग्रेजों के कारिन्दे मुहम्मद बेग हमदानी आदि ने राजस्थान के राजाओं

को भी मराठों के विरुद्ध भड़काया। बंगाल में अकबर के जमाने में मानसिंह के साथ जा कर बसे हुए राजस्थानी ("मारवाड़ी") व्यापारियों के कुछ वंशजों ने भी, जिनका कारबार इस्ट इंडिया कम्पनी के साथ था, राजस्थान के राजाओं और सामन्त वर्ग को अंग्रेजों के साथ मिल कर मराठों का विरोध करने को उभाड़ा। जुलाई १७८७ में जयपुर राज्य में लालसोत-चाटसू के पास महादजी की सेना राजस्थान के विद्रोहियों के मुकाबले में बुरी तरह हारी। अजमेर मराठों के हाथ से निकल गया, हमदानी और उसके साथियों ने मथुरा आगरा पर भी अधिकार कर लिया। नजीबखाँ रुहेले के पोते गुलाम कादिर ने, जो इन लुटेरों के साथ मिल कर लूटमार करता फिरता था, दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उसने शाह-आलम की आँखें अपने हाथ से निकालीं, उसे बेंतों से मारा, और शाही परिवार पर घृणित अत्याचार किये (१७८८ ई०)।

महादजी तब नाना फड़नीस की प्रेरणा और सहायता से दिल्ली वापिस आया और बादशाह की रक्षा कर उसने गुलाम कादिर को उचित दण्ड दिया। पिछले तजरबे ने उसने यह समझ लिया था कि युरोपी युद्धशैली अपनाये बिना मराठों का काम न चलेगा। इसीलिए उसने फ्रांसीसी अफसर अपने यहाँ रख कर पैदल बन्दूकची सेना तैयार कर ली थी। उन अफसरों में द ब्वाञ और पेरों मुख्य थे। मारवाड़ जयपुर में अंग्रेजी गुरगों के खड़े किये विद्रोह को दबाने के लिए महादजी ने अब द-ब्वाञ को भेजा (१७९० ई०)। जयपुर के उत्तर तँवरों की पाटण और मेड़तां में दो गहरी लड़ाइयाँ हुईं। तँवरों की पाटण में ५० हजार राजस्थानी सवार जिनके साथ बड़ा तोपखाना भी था, द ब्वाञ के नेतृत्व में दस हजार मराठा सैनिकों के सामने तीन घंटा मैदान में न ठहर सके। इस लड़ाई से राजस्थान की हवा में भी नई युरोपी युद्धशैली की चर्चा पहले-पहल फैली। सारे राजस्थान ने फिर मराठों की अधीनता मानी। बादशाह ने पेशवा के वंश में वकीले मुतलक पद स्थायी कर महादजी को अपना "फरजन्द जिगर-बन्द" कहा और सारे साम्राज्य में गोहत्या बन्द करने का फरमान निकाला। पेशवा को यह पद सौंपने के लिए महादजी ने पूने की यात्रा की (१७९२ ई०)।

शाही खिलअत और फरमान ले कर महादजी के पूना आने पर बड़ा

समारोह किया गया। वह बादशाह की तरफ से यह सन्देश भी लाया था कि टीपू से युद्ध करना बड़ी भूल थी, इस समय अंग्रेजों के खिलाफ उसे भी अपने साथ मिलाना चाहिए। दिल्ली में भी इस बात की चर्चा थी। मुगल बादशाह का महाराष्ट्र के पेशवा के पास यो सन्देश भेजना और दिल्ली और पूने के बीच एकप्राणता प्रकट करना चालीस बरस से होती आती घटनाओं के अनुरूप था। १७५२ की सफदरजंग वाली सन्धि, १७६१ की मराठों की हार के बाद बादशाह का भटकते फिरना और अब्दाली का मराठों के सहयोग से भारत की राजव्यवस्था खड़ी करने का यत्न, १७७२ में मराठों की रक्षा में बादशाह का दिल्ली वापिस आना तथा १७८२ में महादजी के दिल्ली वापिस आने पर उसका स्वागत करना और पेशवा को अपना एकमात्र प्रतिनिधि बनाना, इन घटनाओं की परम्परा में ही १७९२ का यह खिलअत सौंपना था। और इन सब घटनाओं की तह में मुगल साम्राज्य के नेताओं और उस समय के भारत के प्रमुख लोगों की यह धारणा थी कि मुगल साम्राज्य ज्यों का त्यों महाराष्ट्र के नेताओं को सौंप दिया जाय और वे नेता उस साम्राज्य की जिम्मेदारी अर्थात् भारत की विदेशियों और भीतरी विद्रोहियों से रक्षा का दायित्व उठा लें। यह धारणा बाजीराव के अन्तिम समय से ही जाग चुकी थी। उस समय से ही भारत के विचारशील लोग यह अनुभव करने लगे थे कि मराठों की शक्ति ही ऐसी है जो भारत की स्वाधीनता और एकता को बचाये रख सकती है। मुगल साम्राज्य के नेता उसके बाद से मराठों को यह दायित्व सौंपने को उत्सुक रहे। भारत की उस समय की स्थिति में उनका वह रुख ही सब से ठीक मार्ग का सूचक था। पर बाजीराव के उत्तराधिकारी ने स्थिति को न समझ कर जो उलटा रास्ता पकड़ा उसके कारण और उसके बाद अंग्रेजों को बीस बरस का अवसर और मिल जाने के कारण विदेशी अंग्रेजों के पैर भारत में ऐसे जम गये कि अब दिल्ली और पूने के नेताओं ने एक हो कर उनके विरुद्ध जो यत्न करना चाहा, उसकी काट भी वे आसानी से कर सके। उन्होंने अब अपने दूत मराठा और अन्य राज्यों में भेज कर बड़ी सतर्कता से कोशिश की कि उनके विरुद्ध कोई गुट न बन पाय।

डेढ़ वर्ष बाद पूने में ही महादजी का देहान्त हुआ। तभी अहल्याबाई और हरिपन्त फड़के भी चल बसे।

§११ **मराठों की अन्तिम सफलता**—निजामअली कई बरस से चौथ न दे रहा था। उसने भी रेमों नामक फ्रांसीसी को अपनी सेना को कवायद सिखाने के लिए रख लिया था, और उसके भरोसे उसका दीवान पूना जलाने की डींगें मारने लगा था। नाना फड़नीस ने युद्ध की तैयारी की। निजामअली ने अंग्रेज गवर्नरजनरल सर जौन शोर से मदद माँगी। शोर ने मराठा से लड़ना उचित न समझा। निजामअली तब अकेला बिदर से आगे बढ़ा। परशुरामभाऊ के नेतृत्व में मराठे पूने से बढ़े। एक लड़ाई के बाद निजामअली एकाएक भाग निकला और खड़ा के कोटले में शरण ली। दौलताबाद का किला, ताप्ती से परिन्दागढ तक का प्रदेश और ३ करोड़ रुपया उसने पेशवा को तथा उसी हिसाब से भूमि और रुपया मुधोजी भोंसले के बेटे रघुजी को दिया, और अपने दीवान को पेशवा के हाथ सौंप कर मराठों से सन्धि की (१७९५ ई०)।

इस विजय से मराठा सघ की धाक बँध गई। नाना फड़नीस तब सारे भारत में प्रमुख पुरुष गिना जाने लगा। किन्तु उसी साल पेशवा सवाई माधव राव की एकाएक मृत्यु हुई। उसके कोई सन्तान न थी। उसके वंश में जेठा पुरुष तब राघोबा का बेटा बाजीराव (२४) था। इसलिए वह उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने को कह गया।

कार्नवालिस के बाद सर जौन शोर १७९३ से १७९८ ई० तक ब्रितानवी भारत का गवर्नर रहा। उसने कोई नया प्रदेश नहीं जीता, पर रुहेलखंड, अवध और आरकाट की रियासतों पर अपना शिकंजा और कसा।

§१२ **मराठा साम्राज्य में अन्धेरगर्दी**—बाजीराव २४ सुन्दर और मधुरभाषी, किन्तु क्रूर कायर और मूर्ख था। नाना ने चाहा सवाई माधवराव की विधवा किसी को गोद ले ले, पर महादजी के उत्तराधिकारी—उसके भाई के पोते—दौलतराव शिन्दे और उसके मन्त्री बालोबा ने इसका विरोध किया। तब नाना को बाजीराव को कैद से छोड़ पेशवाई देनी पड़ी। बाजीराव ने नाना

को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। इस पर दौलतराव और बालोबा ने पूना पर चढ़ाई की। उन्होंने बाजीराव को कैद कर उसके भाई चिमाजी को जबरदस्ती पेशवा बनाया। नाना इस बीच भाग गया था। कुछ मास बाद उसने दौलत-राव को समझा कर बाजीराव को छुड़ा लिया।

मराठा संघ की इस अव्यवस्था को अंग्रेज सतर्कता से देख रहे थे। सन् १७९६ मे उनके एक नेता टामस मुनरो ने लिखा—"अपने शासन की एकसूत्रता और अपनी महान् सामरिक शक्ति के कारण हम देसी राज्यों से आसानी से बाजी ले जा सकते हैं, और यदि हम केवल मौकों की ताक में ही रहें तो भी निकट भविष्य में बिना विशेष खटके और खर्चे के अपना राज्य सारे भारत पर फैला सकते हैं।"

१७९७ ई० मे तुकोजी होल्कर की मृत्यु हुई। उसके बेटो के झगड़ों में दौलतराव शिन्दे ने दखल दे कर एक को मार डाला, दो को भगा दिया। उसके बाद बाजीराव ने दौलतराव द्वारा नाना को कैद करा लिया। पूना दरबार मे यों दौलतराव सर्वेसर्वा हो गया। उसकी कृपा के बदले में बाजीराव को दो करोड रुपया देना था। जब वह दे न सका तो उसने उसे पूना लूटने की छुट्टी दे दी! बाजीराव अब दौलतराव के विरुद्ध तैयारी करने लगा तो दौलत ने नाना को छोड़ दिया और नाना फिर मन्त्री बना (१५-१०-१७९८)। पर इस बीच साम्राज्य मे अराजकता मच चुकी थी।

इसी बीच अंग्रेजों ने दो बाजियाँ मार ली। उन्होंने निजामअली से सन्धि करके हैदराबाद मे अंग्रेजी "आश्रित" सेना रख दी (१७९८ ई०)। खर्डा की विजय के बाद मराठे निजामअली को अपना सामन्त माने हुए थे; अब वह अंग्रेजो का रक्षित हो गया। इसके बाद उन्होंने टीपू के राज्य पर चढ़ाई की। श्रीरंगपट्टम् के घेरे मे टीपू लड़ता हुआ मारा गया (४-५-१७९९ ई०)। उसके राज्य का बडा अंश अंग्रेजो और निजामअली ने बाँट लिया, तथा बाकी मैसूर के उस राजा के पोते को दे दिया जिसे हैदर ने पदच्युत किया था। वह राजा भी अंग्रेजो का रक्षित बना। टीपू की मृत्यु की खबर मराठा दरबार पर गाज सी पड़ी। हैदराबाद और मैसूर मे ब्रितानवी आधिपत्य स्थापित हो जाने से अंग्रेजो

का पलड़ा एकाएक भारी हो गया। वे महाराष्ट्र की ठीक सीमा पर पहुँच गये। अगले वर्ष नाना फड़नीस चल बसा। "उसके साथ मराठा राज्य का सब सयानापन विदा हो गया।"

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ रेगुलेटिंग ऐक्ट क्या था ? उसके अनुसार वारन हेस्टिंग्स ने बंगाल में जो शासनपद्धति चलाई उसकी मुख्य बातें क्या थीं ?

२ पेशवा नारायणराव की हत्या कैसे हुई ? उस हत्या के पीछे किसका हाथ था ? भारत के इतिहास पर उस हत्या का क्या प्रभाव पड़ा ?

३ भारत की मुख्य शक्तियों के संघर्ष के फलस्वरूप अवध और रुहेलखंड को १७४१ से १७८१ तक जिन उतार चढ़ावों में से गुजरना पड़ा उनका विवरण दीजिए।

४ पहले अंग्रेज मराठा-युद्ध का घटनाक्रम स्पष्ट कीजिए ?

५ निम्नलिखित सन्धियाँ किस किस के बीच किन दशाओं में हुईं ? इन सन्धियों का फल क्या हुआ ? (१) पुरन्दर १७७६ (२) बड़गाँव १७७८ (३) सालबाई १७८२ (४) मंगलूर १७८४।

६ सन् १७८४ के पिट के भारत शासन विधान का स्वरूप स्पष्ट कीजिए ?

७ पलाशी युद्ध के बाद से १७९३ ई० तक बंगाल बिहार के विभिन्न भागों में अंग्रेजों ने जमीन बन्दोबस्त क्रमशः किस किस पद्धति से किया ? उन बन्दोबस्तों का उन प्रान्तों के आर्थिक सामाजिक ढाँचे पर क्या प्रभाव हुआ ?

८ आरकाट के नवाब मुहम्मदअली पर ऋण कैसे चढ़े ? वे कैसे चुकाये गये ?

९ नेपाल राज्य की आधुनिक सीमाएँ कब कैसे स्थापित हुईं ?

१० निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) सर विलियम जोन्स (२) मोस्टिन (३) बारा भाई ?

११ सन् १७७२ में शाहआलम का पेशवा को निमन्त्रण भेजना पहले की उस जैसी किन घटनाओं की परम्परा में था ? उन घटनाओं के पीछे क्या विचार था ?

अध्याय ५

मुगल-मराठा युग का भारतीय समाज

§१. **पन्द्रहवीं-सत्रहवीं शताब्दी का पुनरुत्थान**—मुगल युग के वैभव की चर्चा हो चुकी है। यहाँ हमें उस युग के जीवन का दूसरा पहलू देखना है। १३वीं-१४वीं शताब्दी में पुराने भारतीय राज्य दीमक के खाये हुए ठूँठ से हो गये थे। १५वीं-१६वीं शताब्दी में विजयनगर के नेतृत्व में कन्नडों ने, मेवाड़ के नेतृत्व में राजस्थानियों ने, कपिलेन्द्र के नेतृत्व में उड़ियों ने और लोदियों-सूरों के नेतृत्व में पठानो ने जो शक्ति का नमूना दिखाया वह नये जीवन का सूचक था। उन शताब्दियों में धार्मिक संशोधन भी चल रहा था।

राजपूतो पठानों की अपेक्षा बाबर अकबर की महत्त्वाकांक्षा उच्चतर, दृष्टि विशालतर और शस्त्रास्त्र नये और बेहतर थे। पर अकबर के एक शताब्दी बाद उसके वंशजों में भी वह महत्त्वाकांक्षा क्षीण हो गई। और तब महाराष्ट्र, बुन्देलखंड, ब्रज और पंजाब में नया जीवन प्रकट हुआ। वह पुनरुत्थान स्पष्ट ही १५वीं-१६वीं शताब्दी के संशोधन का फल था। गंगा के काँठे, सिन्ध, गुजरात, आन्ध्र और तमिळ मैदानों में—अर्थात् भारतवर्ष के सब से उपजाऊ प्रान्तों में—वह पुनरुत्थान प्रकट नहीं हुआ और वहाँ दिल्ली साम्राज्य के टुकड़े कुछ समय पीछे तक बचे रहे। फिर इन्हीं प्रान्तों में अंग्रेजों को पहले-पहल पैर जमाने का अवसर मिला। यदि फ्रांसीसी और अंग्रेज बीच में न आ पड़ते, तो ये प्रान्त भी मराठों या सिक्खों के हाथ मे आने को ही थे।

§२. **मराठी और हिन्दी की सीमाएँ मिलना**—महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और आन्ध्र की सीमा पर गोंडवाना में तथा महाराष्ट्र, गुजरात और मालवे के बीच खानदेश में जो जंगली जातियाँ थीं, उनके प्रदेश के आरपार आर्य भाषाएँ इसी युग में जा निकलीं। दक्खिनी गोंडवाना—नागपुर, चाँदा और भांडारा—में मराठी फैल गई और गोंडवाना—जबलपुर तथा मंडला—बुन्देली के क्षेत्र में आ गया।

§३ जनता का आर्थिक सामाजिक जीवन—न केवल मुगल युग में प्रत्युत अठारहवीं शताब्दी के राजविप्लवों के नीचे भी कृषक कारीगर और व्यापारी जनता प्राय खुशहाल और सुखी रही। परिवर्तन काल में कुछ कष्ट अवश्य होता था। पजाब की सिक्ख मिसलें राज्यसस्था का बडा अस्थिर नमूना थी, तो भी उनमें कृषक शिल्पी और व्यापारी खुशहाल थे। अमृतसर जैसे व्यापार केन्द्र का विकास उन्हीं के शासन में हुआ।

पठान और मराठा शासन के विषय में बहुत झूठ फैलाया गया है। पठानों को पहले तो उनके प्रतिद्वन्द्वी 'मुगल' बदनाम करते रहे, फिर अंग्रेज हिन्दू मुस्लिम झगडा उभाडने के लिए पठान हौआ खडा करते रहे। पर शेरशाह पठान था और रुहेलों की अपनी हिन्दू प्रजा उनके शासन में सुखी सुरक्षित और समृद्ध थी। युद्ध में अपने शत्रुओं के तई रुहेले जैसी खूँख्वारी दिखाते, अपनी प्रजा की खुशहाली के लिए वैसी ही चिन्ता भी करते थे। पर कश्मीर के पठान शासकों के विषय में यही बात नहीं कही जा सकती। कश्मीर को अब्दाली ने १७६२ ई० में जीता था [१०, ३ § २], और रणजीतसिंह द्वारा उसके जीते जाने तक वहाँ पठान राज रहा। उस आधी शताब्दी के पठान शासन में कश्मीर की प्रजा सुखी नहीं रही।

मराठों को लुटेरा प्रसिद्ध करने में अंग्रेजों का विशेष स्वार्थ रहा। सच बात यह है कि १६वीं शताब्दी के शुरू में मराठा साम्राज्य में जो अनेक लुटेरे मँडराते रहे वे प्राय अंग्रेजों के ही खरीदे या खडे किये हुए भडकाऊ कारिन्दे थे। मराठा शासन के विषय में अपना कोई मत हमें उनकी करतूतों को देख कर नहीं प्रत्युत जिन प्रदेशों में मराठा शासन कुछ अरसा टिका उनकी दशा को देख कर बनाना चाहिए। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में जिन अंग्रेजों ने मराठों को हरा कर दक्खिन और मध्यमेखला में अंग्रेजी शासन खडा किया, उनमें सर जौन मालकम से अधिक योग्य व्यक्ति कोई नहीं हुआ। मालकम के जीवन का मुख्य भाग महाराष्ट्र और मालवे में बीता। मालकम का कहना था कि उसने "सन् १८०३ में दक्खिनी मराठा जिलों को जैसा पाया उनसे अधिक धन धान्य पूरित प्रदेश कभी कहीं नहीं देखे।" "पेशवा की राजधानी पूना बड़ी

धनी और फूलती-फलती नगरी थी ।" "मालवे में...मैंने आश्चर्य से देखा कि उज्जैन में व्यापारियों के बड़ी रकमों के लेन-देन बराबर चलते थे; ऊँची हैसियत और साख वाले साहूकार बड़ी समृद्ध दशा में थे; न केवल बड़ी राशि में हुंडी का आना-जाना बराबर जारी था, प्रत्युत वहाँ के बीमे के दफ्तरों ने, जो उस सारे प्रदेश में फैले हैं,...कभी अपना कारबार बन्द नहीं किया था ।" "कृष्णा-तट के जिलों के समान कृषि और व्यापार की समृद्धि भारत के किसी और प्रान्त में न थी । मेरे विचार में इसके कारण थे—(एक तो) उनकी शासन-पद्धति जो कभी कभी ज्यादतियाँ करने के बावजूद भी नरम है..., (दूसरे) मराठों की कृषि के विषय में पूरी जानकारी और लगन, (तीसरे) हमारी अपेक्षा उनका शासन के कई पहलुओं को, खासकर गाँवों और नगरों को समृद्ध बनाने के उपायों को, अच्छा समझना,...और सबसे बढ़ कर जागीरदारों का अपनी जागीरों पर रहना तथा उन प्रान्तों का ऊँचे दर्जे के ऐसे आदमियों द्वारा शासन होना जिनका जीना और मरना उसी जमीन के साथ है ।...किन्तु इन सब से भी बढ़ कर समृद्धि का कारण यह था कि गाँवों की पंचायतों और अन्य स्थानीय संस्थाओं को सदा बढ़ावा दिया जाता था ।"

भारतीय कारीगरों ने अपनी पुरानी योग्यता इस युग में भी बनाये रक्खी और यदि किसी नई बात पर उनका ध्यान चला जाता तो वे उसे शीघ्र अपना लेते, बल्कि उससे भी अच्छा नमूना तैयार कर देते थे । सूरत के बन्दरगाह में जहाज बनते थे । उन्हें युरोपी लोग खरीद ले जाते थे । उधुआ नाला की लड़ाई में मीरकासिम ने अपने कारखाने की जो बन्दूकें बरती थीं, वे अंग्रेजी बन्दूकों से अच्छी पाई गई थीं । पर इस युग के भारतीय कारीगरों में प्रगति का भाव न था, और वह जागरूकता न थी कि वे स्वयं दुनिया की प्रगति का पता रखते रहे । अधिकांश कारीगर महाजनों के काबू में थे । वे महाजनों से अगाऊ रकम ले कर उसका हिसाब चुकाने को अपना तैयार माल देते रहते थे । महाजनी के इसी मार्ग से अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारतीय कारीगरों को अपने कब्जे में करके तबाह कर दिया । हमने देखा है कि सातवाहन और गुप्त युगों में कारीगरों की श्रेणियों की इतनी हैसियत थी कि राजा लोग अपनी स्थायी धरोहर

उनके पास जमा करते थे [५, ५ § ८, ६, ५ § २]। किन्तु मध्य काल में उनकी शक्ति टूट गई, और उनकी श्रेणियाँ पृथक् कर जातें बन गईं, जिनका काम केवल अपने सदस्यों पर तुच्छ और व्यर्थ के सामाजिक बन्धन लगाना रह गया। जैसे किसानों पर जागीरदारों ने अपना प्रभुत्व जमा लिया, वैसे ही कारीगरों को महाजनों ने काबू कर लिया। यह परिवर्तन ठीक ठीक कब और कैसे हुआ, इसकी खोज अभी तक नहीं हुई।

मराठों के उत्तर भारत जीतने से उत्तर और दक्खिन के बीच आदान प्रदान खूब बढ़ा। उत्तर भारत के अनेक रस्मरिवाज और आराम आसाइश के सामान दक्खिन पहुँचे। संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थ बड़ी संख्या में उत्तर से दक्खिन जाते रहे।

महाराष्ट्र और बुंदेलखंड ने इस युग में अनेक महान् स्त्रियाँ भी पैदा कीं। इस युग की मराठा और बुंदेला युवतियों को घुड़सवारी का अच्छा अभ्यास रहता था। किन्तु दूसरे प्रान्तों में स्त्रियों की हैसियत गिरी हुई थी। अधिक स्त्रियाँ रखना बड़प्पन का चिह्न समझा जाता था।

मुगल युग में मुगल साम्राज्य के विरुद्ध खड़े होने वाले प्रत्येक बुन्देले के साथ उसकी पत्नी के भी रण में लड़ने का उल्लेख है। जुझारसिंह के साथ पार्वती [६, ४ § १३] और चम्पतराय के साथ काली कुमारी [६, ५ § २] ने वीर गति प्राप्त की, छत्रसाल के संघर्ष में कमलावती ने शुरू से ही हाथ बँटाया [६, ५ § १२]। मध्य युग में राजस्थान की अनेक स्त्रियों ने अपने पतियों को वीरोचित आचरण के लिए प्रोत्साहित किया और उनके वीर गति पाने पर सती हो गई थीं, इस युग में बुंदेलखंड की स्त्रियाँ युद्ध में पुरुषों के साथ जाती रहीं। छत्रसाल ने बाजीराव को मस्तानी नाम की सुन्दरी गायिका सौंपी थी, जो मुस्लिम माँ की बेटी थी। बाजीराव की प्रत्येक युद्ध यात्रा में वह घोड़े पर चढ़ साथ जाती और प्रत्येक लड़ाई में साथ रहती। उसकी मृत्यु पर वह सती हो गई। बाजीराव मस्तानी को रखैल की तरह नहीं, पत्नी की तरह रखना चाहता और उससे हुए अपने बेटे को हिन्दू की तरह पालना चाहता था। किन्तु उसके परिवार और बिरादरी के लोगों ने उसे ऐसा करने नहीं दिया।

बाजीराव और मस्तानी के बेटे शमशेरबहादुर ने पानीपत की लड़ाई में वीरगति पाई। उसके वंशज जो बांदे के नवाब बने प्रत्येक राष्ट्रीय युद्ध में मराठों की तरफ से लड़ते रहे। अन्त में १८५७ के स्वाधीनता-युद्ध में भाग लेने के कारण अंग्रेजों ने उनका चिह्न मिटा दिया।

इस उदाहरण से यह प्रकट होगा कि १५वीं-१६वीं शताब्दी के धार्मिक संशोधन और राजनीतिक पुनरुत्थान से हिन्दुओं की सामाजिक संकीर्णता कुछ घटी जरूर, तो भी बहुत कुछ बनी रही। इसी का यह फल हुआ कि भारतीय हिन्दू और मुस्लिम के रोजमर्रा के जीवन मे अस्वाभाविक अन्तर बराबर बना रहा, जिसे अंग्रेजों ने अपने मतलब के लिए उभाड़ा और जिसका उन्होंने दुरुपयोग किया। इस युग का धार्मिक सशोधन इतना गहरा नहीं था कि उस अन्तर को मिटा देता।

§४. **ज्ञान-जागृति का अभाव**—भारतवर्ष का यह पुनरुत्थान अन्त में सफल न हुआ। मराठे और सिक्ख अंग्रेजो के मुकाबले मे न टहर सके। इसके दो कारण हमने देखे हैं। एक तो यह कि जल और स्थल के शस्त्रास्त्रों और समरकला मे भारतीय युरोपियों से बिछुड़ गये थे। दूसरे, हमारा राष्ट्रीय संघटन अंग्रेजो के मुकाबले मे अत्यन्त शिथिल और अशक्त था। राष्ट्रीयता का भाव महाराष्ट्र में काफी था। तो भी वह इतना गहरा और उत्कट न था कि उसकी प्रेरणा से मराठे अपने समूचे राष्ट्र-संघटन को विचारपूर्वक ऐसा ढाल लेने को प्रेरित होते कि जिससे राष्ट्र का अधिकतम हित हो सकता। अंग्रेजो मे एक योग्य नेता के हटने पर दूसरा उसका स्थान झट ले लेता था। इधर यह दशा रही कि बालाजीराव जैसे दिशा भूले व्यक्ति के हाथ में अत्यन्त नाजुक समय मे राष्ट्र की पतवार केवल इस कारण थमा दी गई कि वह बाजीराव का बेटा था, और बाजीराव २य सा पतित व्यक्ति भी केवल इसलिए राष्ट्र का मुखिया बन गया कि वह बाजीराव १म का पोता था। अच्छा राष्ट्र-संघटन वह है जहाँ राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता का अधिकतम विकास करने का अवसर मिले और उसकी योग्यता से राष्ट्र को अधिकतम लाभ पहुँच सके।

किन्तु हमारे पुरखो ने अपनी इन त्रुटियो को पहचान कर सुधार क्यों

नहीं लिया ? अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब, शिवाजी, बाजीराव जैसे हमारे योग्य शासक बराबर यह देखते रहे कि पच्छिमी लोग जहाजरानी में, तोपों-बन्दूकों को बनाने और बरतने में तथा समरकला में हमसे आगे निकलते जाते हैं; तो भी उनमें से किसी को यह न सूझा कि पच्छिम के उस ज्ञान को प्राप्त कर लें। गोआ में पुर्तगाली १६वीं सदी से मराठों की आँखों के सामने पुस्तकें छापने लगे थे। यदि मराठों का ध्यान उनकी मुद्रणकला को अपनाने की ओर चला जाता तो भारत में भी वैसी जागृति हो सकती! महाराष्ट्र के स्वतन्त्रता-युद्ध के अधिनायक रामचन्द्र बावडेकर ने बाद में कोल्हापुर के अमात्य रहते हुए "आज्ञापत्र" नामक राजनीति का ग्रन्थ लिखा। उसमें उसने लिखा कि युरोपी लोग जहाजरानी में और तोप बन्दूक गोला-बारूद बनाने में दक्ष हैं, इस कारण वे खतरनाक हैं और उन्हें भारत में बसने न देना चाहिए। पर न तो रामचन्द्र ने यह सोचा कि वे क्यों इन बातों में बढ़े हुए हैं और न उसे यह सूझा कि उनसे य शिल्प हमें ले लेने चाहिएँ। बसई जीत लेने पर पुर्तगालियों के जहाजी कारखाने और गोदियाँ (डोकयार्ड) मराठों के हाथ आ गये थे, किन्तु उनका कुछ भी उपयोग उन्होंने नहीं किया।

औरंगजेब को युरोपी समुद्री डाकुओं की समस्या से कितना परेशान होना पड़ा! उस जैसा योग्य और शक्त सम्राट् अपना ध्यान उस समस्या को जड़ से सुलझाने में लगा देता तो भारत की वह कमजोरी उसके शासन-काल में ही दूर हो सकती थी।

अन्तिम संकट आ जाने पर हैदरअली ने पच्छिमी युद्धशैली को समझा और अपने देश की कमजोरी को दूर करने का यत्न किया तो उसका कार्य उसकी मृत्यु के साथ ही रुक गया। हैदर ने जब अपना जंगी बेड़ा तैयार करना चाहा तब यह पाया गया कि भारत में योग्य यन्त्रयोजक (इंजीनियर) आसानी से उपलब्ध नहीं थे।

मीर कासिम और महादजी शिन्दे ने पाश्चात्य युद्ध शैली अपनाई तो केवल कामचलाऊ ढंग से। उन्होंने युरोपी अफसर रख लिये, परन्तु यह न सोचा कि कभी वे अफसर धोखा दें तो क्या होगा और ऐसा उपाय नहीं किया कि उस

दशा में अपने आदमी ज्ञानपूर्वक उनका स्थान ले सकें।

नाना फड़नीस अंग्रेजों की मुम्बई और कलकत्ता कौंसिलों की गुप्ततम कार्रवाइयों का पता तुरन्त निकाल लेता था। पर अंग्रेजी सेना के भीतर सेंधने की उसे कभी न सूझी—यह नहीं सूझा कि अंग्रेजों की जिस सेना से भारत को इतना खतरा था वह भारतीयों की ही थी, उसे अपनी ओर मिला लेना चाहिए। फिर अंग्रेजों की कौंसिलों की पूरी कार्यप्रणाली नाना की आँखों के सामने रहती थी; तो भी नाना को यह कभी न सूझा कि महाराष्ट्र में भी उसी नमूने पर जो बारभाई-समिति खड़ी हो गई थी, वैसी कोई राष्ट्र के श्रेष्ठ व्यक्तियों की स्थायी संस्था महाराष्ट्र में बनी रहे।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि मुगल-मराठा युगों में हमारे पुरखों में जागरूकता और जिज्ञासा न थी; उनके ज्ञान-नेत्र बन्द थे; वे मानो मोह-निद्रा में थे। वे अपने बँधे हुए मार्ग पर ही चले जा रहे थे; किन्तु अपने चारों ओर की दुनिया की प्रगति के विषय मे कुछ भी सतर्क न रहते थे। और तो और, हमारे अपने देश के विषय मे भी पच्छिमी लोगों की जिज्ञासा हमारे इस युग के पुरखों से अधिक थी। हिन्दुस्तानी (उर्दू) का सबसे पहला व्याकरण किसी भारतीय ने नहीं, प्रत्युत काटलर नामक ओलन्देज ने लिखा। वह हॉलैंड के दूतों के साथ बहादुरशाह के दरबार में लाहौर आया था (१७१२ ई०)। पेशवाई जमाने का दक्खिन भारत का मराठा नक्शा मौजूद है; उसी जमाने का रेनल नामक अंग्रेज का ई० इं० कम्पनी की प्रेरणा से तैयार किया भारत का नक्शा भी है [नक्शा २५ और २६]। इन दोनों की तुलना से साफ दिखाई देगा कि भारतवर्ष के विषय में मराठों का ज्ञान कैसा था और अंग्रेजों का कैसा। अपने देश की स्थिति को ही यदि इस युग के भारतीय देखते समझते होते तो मराठे अब्दाली से उलझने की सोचते भी नहीं। पानीपत की जीत के बाद अब्दाली के पीठ फेरते ही सिक्खो ने उसके विरुद्ध संघर्ष शुरू किया, जिसके फलस्वरूप पानीपत के छः वर्ष बाद ही अटक तक से पठानों को हटना पड़ा। पंजाब की इस नई उठती शक्ति को मराठे यदि देख सकते तो अब्दाली के बारे मे चिन्ता करने की उन्हें जरूरत ही न होती। पेशवा बालाजीराव की करनी में

जो आत्मघाती सूझ रही वह तो निरा अन्धापन था जिसने उस युग की मोह-निद्रा को भी मात कर दिया।

अपने इतिहास के इस पहलू को देख कर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि १७वीं १८वीं शताब्दियों के राजनीतिक पुनरुत्थान में भारतीयों की कर्म-चेष्टा ही पुनर्जीवित हुई, ज्ञान और जिज्ञासा पुनर्जीवित नहीं हुई। नानक ने पंजाबियों को पाखण्ड से उबार कर शुद्ध भक्ति सिखाई थी, अर्जुन, गोविन्दसिंह और बन्दा ने भक्ति से सरल बने हृदयों में कर्मवीरता जगा दी, पर ज्ञान की ज्योति ने उन सच्चे और सचेष्ट सिक्खों को जागरूक न बनाया। १५वीं १६वीं शताब्दियों के धार्मिक संशोधन ने मध्य काल की हिन्दुओं की शिथिलता और निश्चिन्तता बहुत कुछ दूर की, ढोंग-ढकोसलों को कुछ हटा कर सामाजिक अन्यायों को दूर किया, किन्तु वह संशोधन की लहर इतनी गहरी न थी कि ज्ञान पाने के लिए बेचैनी पैदा करती और प्रत्येक वस्तु को विचारपूर्वक समझने और सुधारने की प्रवृत्ति भी जगा देती। वह संशोधन की लहर प्राचीन भारत के ज्ञान और जीवन का पुनरुद्धार नहीं कर सकी। इस पुनरुद्धार का आरम्भ युरोपियों से हमारे पूरी तरह पद्दलित होने के बाद ही हुआ।

हम अचरज करते हैं कि अकबर, औरंगजेब, शिवाजी और बाजीराव जैसे महापुरुषों ने भी साधारण जागरूकता क्यों न दिखाई। हमारा यह अचरज अपनी आज की स्थिति पर विचार करने से दूर हो सकता है। क्या आज डेढ सौ बरस तक अंग्रेजों द्वारा पद्दलित होने के बाद भी हमारे राष्ट्र के ज्ञानचक्षु खुल गये हैं? आज भी हमारे देश का शिक्षित वर्ग अपने देश के विभिन्न प्रान्तों के बारे में या अपने पड़ोस के देशों के बारे में अंग्रेजों की बताई बातों के अतिरिक्त क्या कुछ भी जानता है? आज (अप्रैल १९५२ में) भी स्वतन्त्र भारत की स्थल जल और नभ सेना, और हमारे देश के सब महकमे के कल कारखाने क्या अंग्रेजों पर आश्रित और निर्भर नहीं हैं?

अंग्रेजों ने हमें अपना उपकरण बनाने के लिए अंग्रेजी भाषा सिखाई और हम जीविका की दृष्टि से या अपने समाज में ऊँचा पद पाने के लिए उसे सीख लेते रहे। पर क्या समाज के उस ज्ञान को हमने आज भी अपनाने का

यत्न किया है जो सारी शक्ति का स्रोत है ?

§५. **जागृति के अग्रदूत**—यों भारतीयों की ज्ञान और विचार की प्रवृत्ति इस युग में सोई हुई थी। पर उस मोहनिद्रा के कुछ अपवाद भी हुए। दिल्ली में शाह वलीउल्लाह नामक सूफ़ी १७०२ से १७६२ ई० तक जीया। उसने समाज में आर्थिक समानता की आवश्यकता बताई, कहा कि शासक वर्ग ने अपनी आरामतलबी के लिए कारीगर वर्ग पर इतना बोझ डाल रक्खा है कि वे "लोग गधों और बैलों की तरह सिर्फ़ रोटी कमाने को काम करते हैं"। वलीउल्लाह ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए संघटन खड़ा किया (१७३१ ई०)। उसके शिष्यों की परम्परा चलती रही।

उज्जैन, जयपुर, बनारस और दिल्ली में सवाई जयसिंह की बनवाई वेधशालाएँ, जिनकी अब इमारतें भर बची हैं यन्त्र सब गायब हो चुके हैं, सूचित करती हैं कि भारतीयों में नये ज्ञान को अपनाने की शक्ति सर्वथा लुप्त न
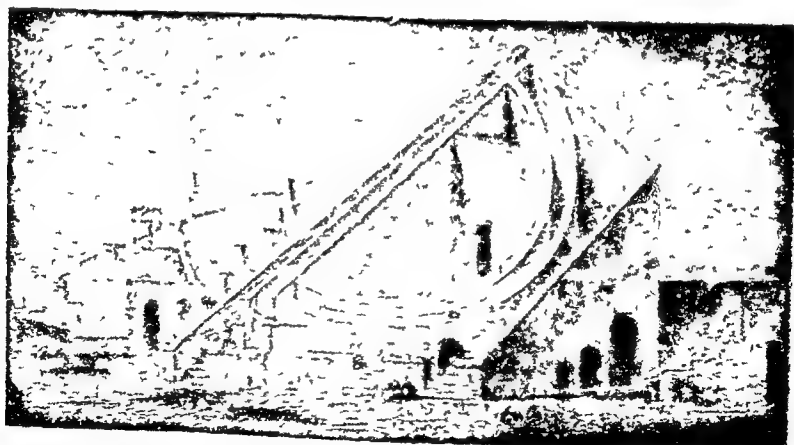
सवाई जयसिंह के बनवाये जन्तरमन्तर (=यन्त्रमन्दिर) दिल्ली का एक अंश

हो गई थी। जयसिंह स्वयं बड़ा ज्योतिषी था; उसने ज्योतिष की अनेक नई तालिकाएँ तैयार की थीं। जब उसे मालूम हुआ कि युरोप में ज्योतिष की नई खोजें हुई हैं तब उसने बड़ा खर्च कर जर्मन ज्योतिषियों को बुलाया और उनकी तालिकाओं को भी जाँचा समझा।

सन् १७५६ मे अंग्रेजों के विजयदुर्ग छीनने के समय हरि दामोदर नामक व्यक्ति वहाँ उपस्थित था। उसी वर्ष वह झाँसी का सूबेदार नियत हो कर आया और १७६५ ई० म अपनी मृत्यु तक उस पद पर रहा। उसका बेटा रघुनाथ बराबर उसके साथ था। पानीपत के बाद मल्हार होल्कर के नेतृत्व मे उत्तर भारत म मराठा साम्राज्य को पुन स्थापित करने में इन पिता पुत्र ने विशेष भाग लिया। १७६५ से १७६४ ई० तक रघुनाथ हरि झाँसी का सूबेदार रहा। इलाहाबाद के अंग्रेजों से उसे प्राय वास्ता पड़ता था। रघुनाथ ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि पच्छिम के नये ज्ञान को अपनाये बिना भारतीयों का बचाव नहीं है। इस विचार से उसने अंग्रेजी सीखी और अंग्रेजी विश्वकोष (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका) का दूसरा संस्करण, जो तब प्रचलित था, मँगाया। उसके द्वारा उसने भौतिकी (फिजिक्स), रसायन (केमिस्ट्री) आदि विज्ञान पढ़े। उसने झाँसी म एक विशाल पुस्तकालय, परीक्षणालय (लैबारेटरी) और वेधशाला स्थापित की। काश कि उस युग में रघुनाथ हरि की छूत समूचे भारत में फैल गई होती।

§६ सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में साहित्य और कला—दिल्ली साम्राज्य के विस्तार और पतन का तथा अधूरे पुनरुत्थान का प्रभाव इस युग के साहित्य पर भी हुआ। पंचाल (रुहेलखंड और कन्नौज) और शूरसेन (ब्रज) की बोलियाँ में से कोई एक सदा भारत की राष्ट्रभाषा बनती रही है, क्योंकि वे बोलियाँ सब आर्यावर्त्ती भाषाओं की केन्द्रवर्त्ती हैं। इस बार दिल्ली साम्राज्य के सहारे उत्तर पंचाल की 'खड़ी बोली' भारत भर मे चल गई। साम्राज्य के अन्तिम विस्तार के साथ उसमें एक नई कविता शैली प्रकट हुई जिसे हम उर्दू कविता कहते हैं। फारसी लिपि में लिखी खड़ी बोली का ही नाम उर्दू है। सब से पहले उर्दू कवियों में औरंगाबाद के वली (१६६८-१७४४ ई०) का नाम प्रसिद्ध है।

भूषण और लाल कवि ने शिवाजी और छत्रसाल के विषय में हिन्दी में जो कविताएँ कीं, उन्हें पुनरुत्थान से प्रेरणा मिली थी, तो भी भूषण की कविता परम्परागत कृत्रिम "रीति" की ही है। मराठी पोवाडे अर्थात् कथागीत

जो मराठा इतिहास की घटनाओं पर निर्भर है, काफी जानदार है। पंजाबी कवि वारिसशाह के महाकाव्य 'हीर-रांझा' में ग्राम्य जीवन का सुन्दर चित्र है। पश्तो कवि अकमल की रचनाएं भी सुन्दर हैं। पिछले मुगलों और उनके प्रान्तीय दरबारों का साहित्य कृत्रिम, अतिरंजित और विपर्यपरणापूर्ण है। मराठी और असमिया के सिवाय भारत की विद्यमान भाषाओं में गद्य नहीं के बराबर था। महाराष्ट्र
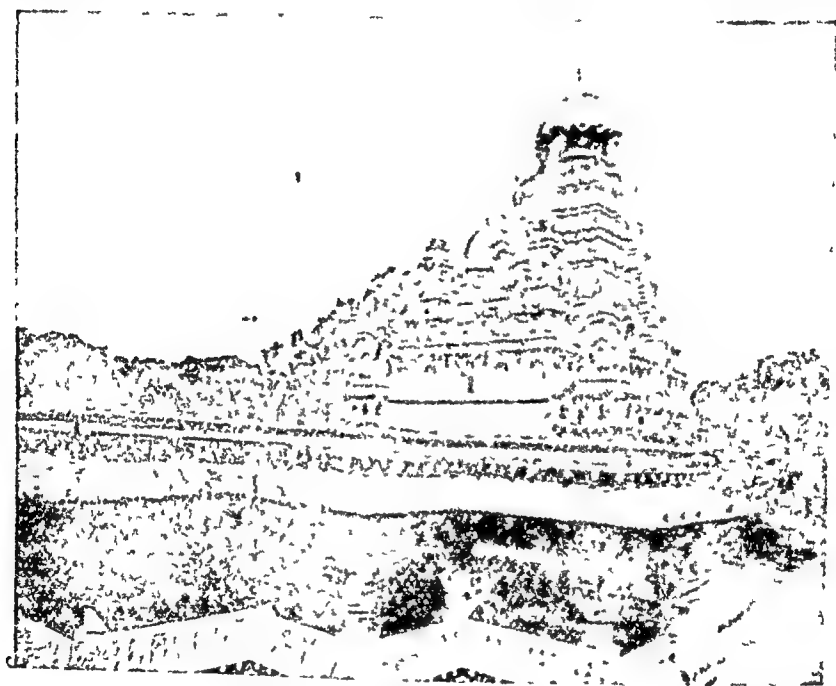
घृष्णेश्वर, वेरूल, [हैदराबाद पु० वि०]

में शिवाजी के अभिषेक के बाद से राज्य-कार्य के लिए गद्य का विकास हुआ। वहाँ अनेक 'बखर' अर्थात् ऐतिहासिक वृत्तान्त भी लिखे गये; किन्तु वे कहानियों से भरे हुए और अप्रामाणिक हैं। इतिहास और साहित्य की दृष्टि से उनसे कहीं अधिक महत्त्व के वे सैकड़ों फुटकर पत्र हैं जिनमें समकालीन घटनाओं का वर्णन है। उनकी भाषा नपी-तुली और अर्थपूर्ण तथा शैली विशद और सजीव है। उनमें ऊँचे दर्जे की प्रतिभा झलकती है।

जहाँ जहाँ मराठों का राज्य पहुँचा, उन्होंने मन्दिरों और तीर्थों का पुनरुद्धार किया, और सार्वजनिक उपयोगिता के घाट, बगीचे, धर्मशालाएँ आदि बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। उज्जैन का महाकाल और काशी का विश्वनाथ मन्दिर तथा अजमेर का गलताबाग आदि इसके नमूने हैं। इस सम्बन्ध में अहल्याबाई होल्कर का नाम उल्लेखनीय है। वेरूल ('इलोरा') के पास उसका घृष्णेश्वर मन्दिर, पन्ना में छत्रसाल और कमलावती की समाधि, अमृतसर का 'दरबार साहब', कन्दहार में अहमदशाह अब्दाली का मकबरा, पूने में नाना फडनीस का बेलबाग आदि इस युग की स्थापत्य कला के सुन्दर
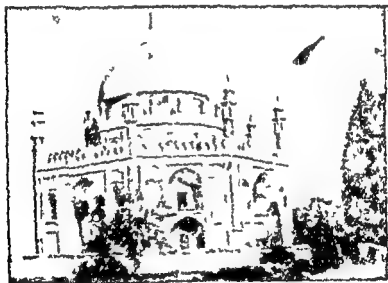
[illegible] अब्दाली का मकबरा, [illegible]

नमूने हैं। सवाई जयसिंह ने जयपुर बसाया जो उत्तम नगर-रचना का नमूना है। बनारस में कबीर के [illegible] है वह [illegible] न था। इससे सिद्ध होता है कि मराठा सरदार केवल मन्दिर, मस्जिद और महल ही नहीं, प्रत्युत सार्वजनिक उपयोगिता की भी अच्छी रचनाएँ कर सकते थे।

§७. चित्रकला की पहाड़ी कलम—पन्द्रहवीं शताब्दी की जिस राजपूत कलम का उदय हुआ था [८,८§८], वह [६,४§५] के साथ-साथ चलती रही, और उसमें १७वीं-१८वीं श दखनी और बुन्देलखडी कलमें निकलीं। किन्तु इन दोनों कलमों के चित्र जानदार बने। राजपूत कलम की एक शाखा जम्मू के नामक टिकाने में भी जा लगी। कला के प्रति औरंगजेब की उपेक्षा मुगलों के समय की अव्यवस्था के कारण १७वीं-१८वीं शताब्दियों बादशाही चित्रकार नये आश्रयों को खोजते कश्मीर और गढ़वाल के सतलज और जमना दूनों के छोटे-छोटे टिकानों चम्बा, नूरपुर, गुले कुल्लू, मंडी, सुकेत, नाहन आदि में जा बसे। वहाँ के शान्त एकान्त से भारत मे होती बडी घटनाओं को निहारते हुए उनकी मुगल कलम कलम [७,८§६] का नया पुट मिला, जिससे पहाडी कलम नाम की शैली का उदय हुआ। राजपूत कलम मुख्यतः आलंकारिक थी, प प्रदान है। "ऐसा कोई रस या भाव नहीं है जिसका पूर्ण सफल अं शैली के) कलाकार न कर सके हों।...उनकी प्रत्येक रेखा में प्रा और प्रवाह रहता है।" अजिंटा युग के बाद पहाडी कलम में ह चित्रकला की सबसे ऊँची उडान दिखाई दी। सिक्खों के उत्कर्ष-का मे भी इसके केन्द्र स्थापित हुए, और पंजाब की स्वाधीनता जब तक तक इस कलम† का भी जीवन रहा।

§८. व्यावसायिक क्रान्ति—भारत के लोग जब मोहनिद्र तभी युरोप वाले एक और मैदान मारते जा रहे थे। वे अपनी शिल्प-प्रक्रियाओं मे विचारपूर्वक सुधार और उन्नति करने लगे थे जिससे व पहले इंग्लैंड में और फिर अन्य देशों मे—"व्यावसायिक क्रान्ति" हो

युरोप में बहुत से शिल्प मध्यकाल मे भारत चीन आदि पूर्व

---

† पहाड़ी कलम के नमूने के लिए अगले पर्व में महाराजा रणजीतसिंह का चित्र देखिए।

ARABIAN SEA

नक्शा—
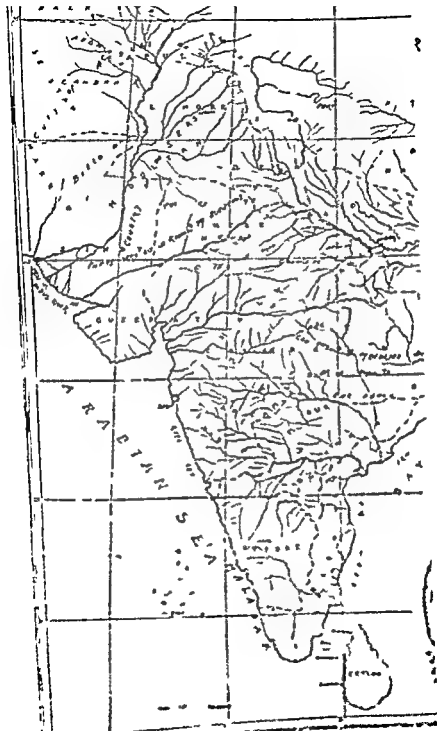
अगले पृष्ठ पर छपे नकशे में दिशाएँ साधारण नकशों के अनुसार हैं, अर्थात् पृष्ठ के ऊपर तरफ उत्तर, नीचे की तरफ दक्खिन इत्यादि । दक्खिन-पूरबी कोने में सिंहल द्वीप है । दक्खिनी सीमा पर मध्य में कन्या कुमारी की नोक है । समुद्र काली स्याही से दिखाया है; उसमें मछलियाँ तैरती दिखाई हैं । पहाड़ भी मोटी काली रेखा से दिखाये हैं । पच्छिमीतट के साथ समुद्र से कुछ हटकर सह्याद्रि है । जिले और शहर अपने महत्त्व के अनुसार बड़े-छोटे चौकोर और गोल चिह्नों से दिखाये गये हैं ।

पेशवाई ज़माने का दक्खिन भारत का मराठा नक्शा [भा० इ० सं० म०]

नक्शा—२६
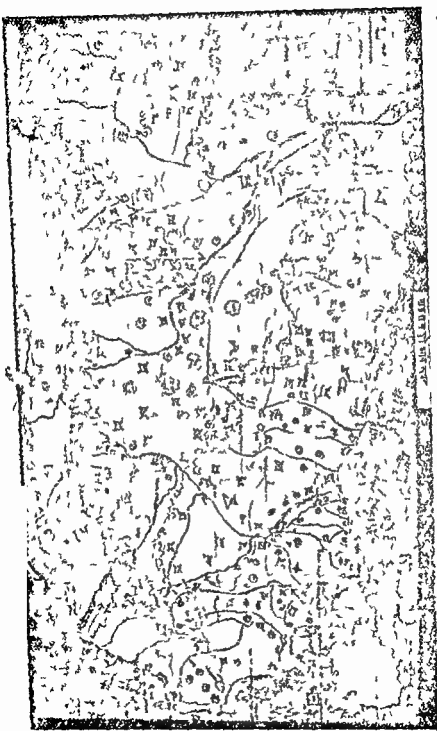
ही गये थे। चर्खा वहाँ मध्य काल में पहुँच चुका था। इतालिया वाले चीन से रेशम का कीड़ा चुरा ले गये थे। इंग्लैंड में तो सत्रहवीं सदी में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने ही सूती कपड़ा पहनने का प्रचार किया। तब तक वहाँ ऊनी कपड़ा ही बनता और पहना जाता था। सूती कपड़े के व्यवसाय का दुनिया भर का केन्द्र ५वीं शताब्दी ई० पू० से १८वीं शताब्दी ई० तक भारतवर्ष ही था।

किन्तु इंग्लैंड की प्रजा और राष्ट्र के नेताओं को अपने देश के शिल्पों को आगे बढ़ाने का बराबर ध्यान था। भारतवर्ष की छींट इंग्लैंड में बहुत पसन्द की जाती थी। पर ब्रितानवी पार्लिमेंट ने अपने देश के ऊनी कपड़े के कारबार को बचाने के लिए १७०० और १७२१ ई० में भारतीय छींट का इंग्लैंड में लाना और पहनना या बरतना भी रोक दिया। ई० इं० कम्पनी तब वह कपड़ा युरोप के दूसरे देशों में ले जाती थी। एक जर्मन अर्थशास्त्री के शब्दों में "भारत के नफीस सस्ते कपड़े इंग्लैंड खुद नहीं लेता, वह अपने मोटे मँहगे से सन्तोष कर लेता है। पर युरोपी राष्ट्रों को वह खुशी से सस्ता नफीस माल देता है।"

१६वीं सदी में ही युरोप में पैर से चलने वाला चरखा चल पड़ा था। सन् १६०७ में इतालिया में रेशम का डोरा बटने और अटेरने के लिए पनचक्की का प्रयोग होने लगा था। सन् १७३३ में जॉन के नामक अंग्रेज ने "उड़ती ढरकी" (फ्लाई शटल) की ईजाद की, जिससे ताने में बाना जल्दी डाला जाने लगा और कपड़े की उपज दूनी होने लगी। सन् १७६७ में हार्ग्रीव्स ने ऐसा चरखा निकाला जिसमें आठ तकुए एक ही पहिये से चलते थे और चिमटियों से पूनियाँ पकड़ी जाती थीं जिन्हें एक ही आदमी सँभाल सकता था। इस चरखे को उसने अपनी स्त्री के नाम से "जेनी" कहा। बाद में उसने ऐसी जेनी बनाई जो १०० धागे एक साथ निकाल सकती थी। १७६९ में आर्कराइट नामक नाई ने कातने का नया यन्त्र बनवाया जिसमें बेलनों के बीच से रेशे निकलते और घूमते तकुओं द्वारा काते जाते थे। यह "बेलन-ढाँचा" पनचक्की से चलता था। १७७९ ई० में क्राम्पटन ने जेनी और बेलन-ढाँचे को मिला कर नया यन्त्र बनाया जिसे उसने मिश्रित होने के कारण "खच्चर" (म्यूल) कहा। इन ईजादों से इंग्लैंड में इतना सूत पैदा होने लगा कि उसे हाथ के करघे पूरा बुन न पाते

थे। उस दशा में १७८५ ई० में कार्टराइट ने शक्ति करघा (पावर लूम) निकाला जो पहले आदों से चलाया जाता था, पर १७८६ ई० से भाप की शक्ति से चलने लगा। इसी अरसे में बेलने, धुनने, रंगने, छापने आदि के भी नये यन्त्र और तरीके निकल रहे थे। इनके कारण १८वीं सदी के अन्त तक इंग्लैंड में कपड़े का नया व्यवसाय उठ खड़ा हुआ। पलाशी के बाद से भारत की लूट की जो पूँजी ब्रितानिया पहुँच रही थी, उससे इन इजादों के उपयोग के लिए कारखाने खड़े करने में बड़ी सहायता मिली। जिन लोगों को आसानी से या मुफ्त का धन मिला होता है प्राय वही उसे नये तजरबों के लिए खुले हाथ खर्च करने को तैयार होते हैं।

किन्तु इन इजादों और इस सहायता के बावजूद भी इंग्लैंड का यह व्यवसाय भारत के अढाई हजार वर्ष पुराने व्यवसाय का मुकाबला न कर सकता था। इस दशा में इंग्लैंड ने अपनी नई राजनीतिक शक्ति से लाभ उठाया। हम देख चुके हैं कि पलाशी के बाद बंगाल बिहार के जुलाहों पर कैसे जुल्म ढाये गये तथा रेशमी कपड़ा बुनने का काम कैसे जबरदस्ती रोका गया [१०, ३§७]। सन् १७६३ में मांचेस्टर और ग्लासगो के नये व्यवसायियों ने पार्लिमेंट द्वारा यह कोशिश की कि भारत में कुल कपड़े का आयात बन्द किया जाय तथा कातने-बुनने के नये यन्त्र भारत में न जाने पायें। किन्तु भारत में इन यन्त्रों की नकल करने का होश ही किसे था? और यदि होता तो क्या भारत के बड़े भाग में, जो तब तक मराठों और सिक्खों के अधीन था, अंग्रेज उन यन्त्रों का खड़ा होना रोक सकते थे?

कपड़े के शिल्प के साथ साथ धातु शिल्प में तथा प्रकृति की शक्तियों से काम लेने के तरीकों में युरोप वाले जो उन्नति कर रहे थे, वह भी उल्लेखनीय है।

भाप की शक्ति से काम लेने का विचार बहुत पुराना था। सन् १६०१ में पोता नामक इतालवी ने एक भद्दा सा भाप ऐंजिन बना डाला था। १६२० ई० में एक और इतालवी ब्राका ने उसमें सुधार किया। सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई अंग्रेजों ने उसमें और उन्नति की। अन्त में १७१२ ई० में न्यूकोमन नामक अंग्रेज ने ऐसा भाप ऐंजिन बना दिखाया जो खानों के भीतर से पानी

उठाने वाले पिचकारों (पम्पों) को बखूबी चला सकता था।

लोहे की धातु से लोहा निकालने की भट्ठियों में पनचक्की द्वारा हथौड़े और धौंकनियाँ चलाने का तरीका जर्मनी में १७वीं सदी में ही जारी हो गया था। इंग्लैंड में तब खानों से पत्थर-कोयला भी निकाला जाता था। १७०६ ई० में डार्बी नामक अंग्रेज और उसके बेटे ने जले हुए पत्थर-कोयले के 'कोक' के साथ जला कर लोहा साफ कर दिखाया। छोटे डार्बी ने अपनी भट्ठी में न्यूकोमन-ऐंजिन का प्रयोग किया। इसके बाद १७६० ई० में स्मीटन नामक अंग्रेज ने चमड़े की धौंकनी के बजाय चार बेलनों वाला हवा का पिचकारा ईजाद किया, और १७६६ ई० में जेम्स वाट ने नया भाप-ऐंजिन तैयार कर दिखाया।

प्रायः इसी समय गाल्वानी और वोल्ता नामक इतालवी बिजली की शक्ति पर परीक्षण कर रहे थे।

आवाजाही के साधनों में भी उन्नति की जा रही थी। खानों से बन्दरगाहों तक कोयला-गाड़ियों को खींचने के लिए तख्तों से मढ़ी सड़कें इंग्लैंड में १७वीं शताब्दी में ही बन चुकी थीं। सन् १७७६ में उनके किनारे पर लोहे की पटरी (रेल) गाड़ देने का तरीका निकला। तब से ऐंजिनों से गाड़ी खींचने की बात लोग सोचने लगे। १७८१ ई० में जेम्स वाट ने ऐसा तरीका निकाला जिससे ऐंजिन के नल के भीतर चकिया (पिस्टन) की गति, जो ऊपर नीचे ही होती थी, चक्करदार भी हो सके। इससे अनेक यन्त्रों का ऐंजिन से चलना सम्भव हो गया।

१७८४ ई० में कोर्ट ने लोहा कमाने की नई प्रक्रियाएँ निकालीं, और दस बरस बाद मौडस्ले ने नई खराद निकाली जिससे यन्त्रों के औजार टिकाई से बनने लगे। १८०० ई० में अकेले इंग्लैंड की लोहे और कोयले की उपज दुनिया के और सब देशों के बराबर थी। भारत में भी ईस्ट इंडिया कम्पनी लोहे का माल काफी लाती थी; यहाँ तक कि मराठी कागजों में हमें लोहे की कील के लिए 'इंग्रज' शब्द मिलता है।

यह व्यावसायिक क्रान्ति उन्नीसवीं शताब्दी में भी जारी रही। १८३० ई० तक बहुत सी बड़ी बड़ी ईजादें हो गईं। सन् १८०० तक कपड़े और धातु-शिल्प

की नई इजादों से सम्बन्ध जुड़ गया, और चरखे और करघे सब लोहे के बनने और भाप से चलने लगे।

युरोपी लोग जब यों शिल्प-व्यवसाय के नये तरीके निकाल रहे थे, तब भारतीय अपने पुराने रास्ते पर ही चले जा रहे थे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१ सत्रहवीं शताब्दी में भारत में राजनीतिक पुनरुत्थान हुआ, यह किन बातों से सूचित होता है? उस पुनरुत्थान का प्रभाव किन प्रान्तों में दिखाई दिया, किन में नहीं?

२ पुराने गोंडवाना में आजकल के कौन कौन जिले थे? उनमें अब कौन सी भाषाएँ बोली जाती हैं? वे भाषाएँ वहाँ कब पहुँचीं?

३ मराठों का शासन लूटमार का था, यह विचार कैसे फैला? मराठों के शासन में देश की आर्थिक दशा कैसी थी, प्रमाण सहित बताइए।

४ मुगल मराठा युग में भारतीय कारीगर किस प्रकार महाजनों के नियन्त्रण में थे? सातवाहन गुप्त युगों में उनकी दशा से इस युग की दशा में क्या भेद था?

५ मस्तानी कौन थी? उसके चरित्र से क्या सूचित होता है?

६ मुगल मराठा युग के इतिहास में प्रसिद्ध महाराष्ट्र और बुंदेलखंड की कुछ स्त्रियों का परिचय दीजिए।

७ सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक के पुनरुत्थान में भारतीयों के ज्ञान चक्षु मुँदे रहे, यह कैसे सूचित होता है?

८ महादजी सिंदे ने किस प्रकार युरोपी युद्धरीति अपनाने का यत्न किया? उसमें क्या त्रुटि थी?

९ रघुनाथ हरि कौन था? भारतीय इतिहास में उसके चरित्र का क्या महत्त्व है?

१० व्यावसायिक क्रान्ति का क्या अर्थ है? वह पहलेपहल कब कैसे कहाँ हुई?

११ अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजों ने भारत के वस्त्र व्यवसाय के मुकाबले में अपने देश के वस्त्र व्यवसाय को किन राजनीतिक उपायों से बचाया?

१२ अंग्रेजों ने भारतीय उद्योग धंधों का नाश किस प्रकार किया?

१३ निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—

(१) शाह वलीउल्लाह (२) [illegible] (३) [illegible]।

— —

११. अंग्रेज़ी राज पर्व

(१७६६—१६४७ ई०)

अध्याय १

अंग्रेज़ों का मराठा साम्राज्य जीतना

(१७६६—१८२७ ई०)

§१. **हैदराबाद मैसूर पर आधिपत्य**—हमने देखा है कि हैदराबाद और मैसूर सन् १७६८-६६ में अंग्रेजी आधिपत्य में आ गये थे। वह किन दशाओं मे हुआ सो देखना है।

अहमदशाह अब्दाली की मृत्यु १७७३ मे हुई थी। उसके बेटे तैमूरशाह ने २० वर्ष राज किया। तैमूर ने सिक्खों से मुलतान वापिस ले लिया था, सिन्ध और कश्मीर अब्दालियों के अधीन थे ही [१०,४§१० १०,३§२]। सन् १७६३ मे तैमूरशाह की मृत्यु हुई और उसका बेटा जमानशाह गद्दी पर बैठा। हमने देखा है कि उसके पहले वर्ष महादजी शिन्दे दिल्ली से विशेष सन्देश ले कर पूना गया था। भारत की सब मुख्य शक्तियों के सहयोग से अंग्रेजों को भारत से निकालने का माधवराव पेशवा का विचार उस समय पुनर्जीवित हो कर भारत के प्रमुख राजनेताओं को प्रेरित कर रहा था [१०,३§६; १०,४§१०]। शिन्दे और जमानशाह ने प्रकटतः इसी विचार से इस समय एक दूसरे के पास दूत भेजे। यों अब मराठे और पठान परस्पर-सहयोग की बात सोच रहे थे। रुहेलखंड के सरदार गुलाम मुहम्मद ने स्वयं काबुल जा कर और अवध के नवाब आसफुद्दौला ने सन्देश भेज कर जमानशाह से प्रार्थना की कि भारत पर चढ़ाई कर उन्हें अंग्रेजों से छुटकारा दिलावे। टीपू ने भी अपने दूत या सन्देशहर

जमान के पास भेजें। इस प्रकार जमानशाह की चढ़ाई की अफवाह फैल गई जिससे उत्तर भारत में हलचल मच गई। उस दशा में अंग्रेज गवर्नर जनरल सर जान शोर ने अवध राज्य का कुछ अंश अपने सीधे शासन में ले कर उसकी सीमा पर अनूपशहर में छावनी डाल दी (१७९८ ई०)।

टीपू उधर फ्रांस से भी सहयोग और सहायता माँग रहा था। हम देख चुके हैं कि भारत में फ्रांसीसियों की विफलता का कारण था उनके अपने देश का शासन सुशृंखल न होना। सन् १७९३ में फ्रांस में राज्यक्रान्ति हुई और फ्रांस के लोगों ने अपने स्वेच्छाचारी राजा को फाँसी दे कर सब फ्रांसीसियों की स्वाधीनता और समानता की घोषणा की। उस समय युरोप के कई राज्यों ने मिल कर फ्रांस के उस शिशु गणराज्य को कुचलना चाहा। अकेले फ्रांस ने उन सब को हरा दिया। समुद्र पार अपना साम्राज्य बनाने में फ्रांस जो पिछड़ गया था, फ्रांसीसी गणराज्य ने अब अपनी शक्ति देख कर उस कमी को पूरा करना चाहा। फ्रांसीसी राष्ट्र-समिति ने अपने युवक सेनापति नेपोलियन बोनापार्त को मिस्र पर चढ़ाई करने भेजा (मई १७९८ ई०)। मोरक्को से मिस्र तक समूचा उत्तरी अफरीका तब कुस्तुन्तुनिया के तुर्क साम्राज्य के अन्तर्गत था। नेपोलियन ने उसकी सेना को आसानी से हरा दिया। मिस्र से नेपोलियन की सेना भारतीय समुद्र की तरफ बढ़ सकती और भारतीय राज्यों में जो अनेक फ्रांसीसी सेनानायक थे उनका सहयोग पा सकती थी। नेल्सन नामक अंग्रेज नाविक ने नील नदी के मुहाने में फ्रांसीसी बेड़े को जला दिया। तो भी जब तक फ्रांसीसी सेना मिस्र में बनी थी, तब तक अंग्रेजों को चैन न था।

जिन भारतीय राजाओं ने फ्रांसीसी अफसर रख कर नये ढंग की सेना खड़ी की थी, उनमें शिन्दे प्रमुख था। होल्कर और निजाम ने भी उसका अनुसरण किया था। इन सेनाओं से साधारण दशा में अंग्रेजों को कोई डर

शिन्दे और अन्य भारतीय राज्यों के जमानशाह से यों संपर्क करने की बात जोसफ डेवी कनिंघम ने अपने "सिक्खों का इतिहास" (लंडन, १८४९, पृ० २८०) में बहावलपुर राज्य के कागजों के आधार पर दी है। टीपू की बात एल्फिन्स्टन ने लिखी है। आसफुद्दौला भी अंग्रेजों के विरुद्ध था इसकी उस समय अंग्रेजों ने कल्पना भी न की थी।

न होता । प्रत्युत जब महादजी शिन्दे ने पहलेपहल युरोपी ढंग की सेना तैयार करनी शुरू की तब वारन हेस्टिंग्स ने कहा था कि वही मराठों के पतन का कारण होगी। बात स्पष्ट थी। इन सेनाओं को नये ढंग की कवायद तो सिखाई जाती थी, पर इनका संघटन पुराना सामन्त प्रणाली वाला ही था । सैनिकों की भरती सेनापतियों के हाथों में सौंप दी जाती और उनके खर्च के लिए उन्हें बड़ी-बड़ी जागीरें दे दी जाती थीं । दूसरे, इस नई युद्ध-कला को मराठों ने स्वयं हृदयंगत नहीं किया कि वे स्वयं अपनी सेना का संचालन कर सकें । इस काम में वे युरोपी अफसरों पर ही निर्भर रहते, जो उनकी सामन्त-शासन-प्रणाली के अनुसार अब राज्य के बड़े-बड़े इलाकों के शासक भी हो गये थे। ये विदेशी सामन्त यदि कभी विश्वासघात करें तो मराठों का सेना-यन्त्र और शासन-यन्त्र ठप्प हो सकता था । इसी से सर टामस मुनरो ने मराठा सेनाओं के विषय में कहा था कि "उन्हें एक सी वर्दी पहना कर कवायद क्या कराई जाती है, मानो सजा कर कुर्बानी के लिए ले जाया जाता है !" तो भी जब नैपोलियन मिस्र में था, तब भारत में फ्रांसीसी अफसरों के अधीन बड़ी बड़ी सेनाओं का होना अंग्रेजों के लिए खतरनाक था।

इस समय मौर्निंगटन ब्रितानवी भारत का मुख्य शासक बना कर भेजा गया। पीछे उसे लौर्ड वेल्जली नाम मिला, पर हम उसे सुविधा के लिए पहले से ही वेल्जली कहेंगे। भारत में फ्रांसीसी सेनाओं को तोड़ देना उसका मुख्य ध्येय था। उसने पहला लक्ष्य निजामअली को बनाया। हैदराबाद में किर्कपैट्रिक और मालकम नामक अंग्रेज दूतों ने बड़ी दक्षता से निजामअली के वजीर से रेमों की सेना की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ विसर्जित करवा दीं। उधर मद्रास से अंग्रेजी सेना चुपचाप हैदराबाद की सीमा पर आ गई। तब निज़ामअली से एकाएक कहा गया कि वह बची-खुची फ्रांसीसी सेना को तोड़ दे और उसके बदले अवध के नवाब की तरह अंग्रेजों की "आश्रित" सेना अपने राज्य में अपने खर्च पर रख ले। निजामअली और उसका वजीर यह सुन कर हक्के-बक्के रह गये, पर उन्हें मानना पड़ा (१-६-१७६८ ई०)।

हैदराबाद के काबू आते ही वेल्जली ने टीपू के खिलाफ युद्ध-घोषणा

कर दी। उसके भाई आर्थर वेल्जली और जनरल हैरिस ने पूरबी घाटों से तथा मुम्बई की सेना ने पच्छिमी घाटों से मैसूर राज्य में प्रवेश किया। मलवल्ली पर हैरिस ने टीपू को हराया और फिर उसे श्रीरंगपट्टम् में घेर लिया। आगे क्या हुआ सो कहा जा चुका है।

मैसूर युद्ध के समय वेल्जली को बराबर डर बना हुआ था कि कहीं शिन्दे टीपू की मदद न करे। महादजी शिन्दे के पूना आने के समय से ही अंग्रेज सशंक थे, क्योंकि वे जानते थे कि किस उद्देश्य और योजना को ले कर वह दिल्ली से पूना गया था। तब से शिन्दे का पूने में रहना ही उन्हें अखरता था। यद्यपि महादजी और सवाई माधवराव पेशवा की मृत्यु के बाद दौलतराव शिन्दे और बाजीराव रघु ने जैसी करतूतें शुरू कर दी थीं उनसे महादजी का उद्देश्य और योजना सब नष्ट हो गई थी, तो भी वेल्जली ने कोलब्रुक नामक दूत को नागपुर भेजा कि वह बराड़ के राजा को टीपू और शिन्दे के खिलाफ भड़का कर निज़ामअली और अंग्रेज़ों के गुट्ट में मिला दे। वास्तव में यदि महाराष्ट्र के अब कोई योग्य नेता होते और महादजी वाली योजना उनके सामने होती, तो हैदराबाद और मैसूर पर अंग्रेज़ों की चढ़ाई होते ही उन्हें तुरन्त दखल देना और टीपू की सहायता को जाना चाहिए था।

उधर नेपोलियन सन् १७९९ तक मिस्र से फ्रांस पहुँच कर फ्रांस का अधिनायक बन गया था। सन् १८०० में अंग्रेज़ों ने एक भारतीय सेना मिस्र भेजी। लाल सागर से उतर कर वह भूमध्य सागर तक पहुँची, पर उससे पहले फ्रांसीसी सेना आत्म-समर्पण कर लौट चुकी थी।

§७ ज़मानशाह की चढ़ाई—ज़मानशाह १७९६ ई० के अन्त में लाहौर तक आया था, किन्तु पीछे अपने भाई महमूद की करतूतों के कारण उसे वापिस लौटना पड़ा था। उसकी रोकथाम के लिए वेल्ज़ली ने अब ईरान को अफगानिस्तान के विरुद्ध उभाड़ने की नीति पकड़ी। मुम्बई से अंग्रेज़ों का एक भारतीय मुस्लिम कारिन्दा बुशहर भेजा गया। उसने यह कह कर ईरान के शाह को उकसाया कि सुन्नी अफगानों ने लाहौर में शियों पर बड़े जुल्म किये हैं। सन् १७९८ के अन्त में ज़मान फिर लाहौर आया। इस बार महमूद को ईरान

से मदद मिल गई। जिस चडतसिंह ने गुजराँवाले में पहलेपहल अब्दालों का मुकाबला किया था, [१०,३§२] उसके पोते रणजीतसिंह को लाहौर का राजा नियुक्त कर जमानशाह लौट गया। इसके बाद वेल्जली ने मालकम को ईरान भेजा। उसे यह आदेश था कि जमानशाह की शक्ति का ठीक पता लगावे और उसके निर्वासित भाइयों से मेल जोल पैदा करे।

भारतवर्ष में जो लोग जमानशाह की चढ़ाई से आशाएँ लगाये या घबड़ाये हुए थे, उनमें से कोई भी सिक्खों की शक्ति को पहचान न पाया था। यदि जमान को पीछे की चिन्ता न भी होती तो भी अब वह पंजाब को लाँघ कर ठेठ हिन्दुस्तान तक न पहुँच सकता था। उसके लौट जाने पर वेल्जली का ध्यान सिक्खों की तरफ गया और शिन्दे के दरबार के अंग्रेज कारबारी (एजंट) ने एक गुप्त कारिन्दा सिक्ख सरदारों के पास भेजा।

§३. तमिळनाड और पंचाल दखल—यों अढ़ाई साल के भीतर लौर्ड वेल्जली ने अफगानों और फ्रांसीसियों के आतंक को दूर कर अंग्रेजों को भारत की प्रमुख शक्ति बना दिया। इसके बाद उसने जीर्ण राज्यों को मिटा कर अंग्रेजी इलाके को बढ़ाना शुरू किया। सन् १७९९ में तांजोर के राजा को पेंशन दे कर उसका इलाका ले लिया। सूरत का गढ़ एक नवाब के हाथ में था जो अंग्रेजों का रक्षित था। उसे भी अब पेंशन दे कर अलग किया। निजाम ने दो मैसूर-युद्धों में तुंगभद्रा के दक्खिन के जो जिले पाये थे, वे उसने अंग्रेजी सेना के खर्चे की रकम के बदले में दे दिये। आरकाट का बूढ़ा नवाब मुहम्मद-अली १७९५ ई० में मर चुका था। सन् १८०१ में उसका राज्य वेल्जली ने दखल कर लिया। मुहम्मदअली के गोरे उत्तमर्णों ने तब ३० करोड़ रुपये के नये कर्जों का दावा पेश किया। इन दावों की जाँच की गई, और १ करोड़ ३४ लाख के सिवाय सब फर्जी निकले। इसी साल लौर्ड वेल्जली ने अवध के नवाब की अंग्रेजी सेना की "सहायता" की रकम बढ़ा दी और उससे रुहेलखंड और फर्रुखाबाद प्रदेश अर्थात् उत्तर और दक्खिन-पंचाल ले कर उनका शासन अपने भाई हैनरी वेल्जली को सौंप दिया।

§४ गायकवाड और पेशवा का अंग्रेजों का आश्रित बनना—वेल्ज़ली ने मराठा संघ के भीतर भी भेद नीति का जो बीज बोया था, वह अब फूल लाने लगा। सन् १८०० में गोविन्दराव गायकवाड के मरने पर उसका बेटा आनन्दराव बड़ोदे की गद्दी पर बैठा। वह कमजोर दिमाग का था। अपने राज्य में अपनी रक्षा के लिए उसने अंग्रेजी सेना बुला कर रख ली (मार्च १८०२ ई०)।

पेशवा, शिन्दे और भोंसले के दरबारों के अंग्रेज दूत भी उन्हें एक दूसरे का डर दिखा कर अंग्रेजी सेना रख लेने को बराबर उकसा रहे थे। नागपुर में जो अंग्रेज दूत कोलब्रुक भेजा गया था वह भोंसले राजा को तो न फोड़ सका, पर दौलतराव शिन्दे ने अत्याचार से तुकोजी होलकर के नागपुर भागे हुए बेटे यशवन्तराव को उभाड़ने में सफल हुआ।

इधर स्वयं पेशवा बाजीराव २य भी अंग्रेजों की "आश्रित" सेना रखने पर राजी हो गया, किन्तु इस शर्त पर कि वह कम्पनी के ही इलाके में रहेगी और पेशवा जब चाहे उसे बुला सकेगा। "वह आसन्न विनाश को देखे बिना इससे अधिक मानने वाला न था"। वह विनाश भी शीघ्र उपस्थित कर दिया गया! यशवन्तराव के सहोदर विठोजी ने कोल्हापुर में शरण ले कर उपद्रव किया। उसने यशवन्तराव के कहने पर पेशवा से अनुरोध किया कि वह शिन्दे और होल्कर वंशों में होते झगड़े में बीचबिचाव करा दे। पर पेशवा ने विठोजी को पकड़वा कर क्रूरतापूर्वक मरवा दिया। यशवन्तराव होल्कर ने तब पूने पर चढ़ाई की। दौलतराव शिन्दे उत्तर भारत जा चुका था। यशवन्तराव ने उसकी बची खुची सेना और पेशवा की सेना को हरा दिया। पेशवा तब पूना छोड़ कर भागा—शिन्दे की नहीं, अंग्रेजों की शरण में! बसइ पहुँच कर उसने अपने इलाके में "आश्रित" सेना रखने की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये (३१.१२. १८०२ ई०)।

अपनी पराधीनता का वह पट्टा लिख देने के बाद पेशवा पछताने लगा, और फिर अपने सरदारों से सुलह की सोचने लगा। उसके, होल्कर के और शिन्दे के दूत नागपुर के बूढ़े राजा के पास इस अभिप्राय से पहुँचे कि वह सब के बीच तसफिया करा दे। शिन्दे और होल्कर का नागपुर के भोंसले राजा से

उधर वेल्ज़ली के मुकाबले को एक पैदल सेना और तोपखाना रख कर शिन्दे और भोंसले रिसाले के साथ हैदराबाद या पूने के इलाकों पर छापा मारने की घात मे रहे । बराड की सीमा पर असई गाँव मे मराठा पैदल सेना और अंग्रेजी सेना का सामना हुआ (२३-९-१८०३ ई०)। राजा लोग वहाँ नही थे। मराठा सेना के अफसरो ने फिर धोखा दिया। इस हार से मराठा पदाति-सेना और तोपखाने की रीढ़ टूट गई।

अगले मास में आगरे के किले ने समर्पण किया। उधर दो महीने में उडीसा का तट-प्रदेश—पुरी, कटक आदि—जीत लिया गया था। उडिया जनता तमाशबीन बनी रही; भोंसले की सेना ने वहाँ ढीला सा मुकाबला किया।

पेशवा ने एक नई सन्धि द्वारा बुन्देलखंड का प्रदेश अंग्रेजो को दे दिया था। पर वहाँ के शासक शमशेरबहादुर और कुछ सरदारो से अंग्रेजों को लडना पडा। अक्तूबर तक कर्नल पावेल ने बुन्देलखंड ले लिया।

असई की हार के बाद शिन्दे ने पैदल सेना उत्तर भारत भेज दी, और दोनो राजा फिर छापे मारने को ताक मे रहे। असई और दिल्ली की बची-खुची नेतृहीन सेना तोपखाने के साथ निरुद्देश घूमती थी कि लेक ने उसका पीछा किया। मथुरा और अलवर के बीच लासवाडी पर १ नवम्बर को लड़ाई हुई जिसमे शिन्दे के सैनिक "दैत्यो की तरह, या सच कहे तो वीरो की तरह लड़े। यदि फ्रांसीसी अफसर उनका संचालन करते होते तो न जाने क्या परिणाम होता ?" अलीगढ़, दिल्ली, असई और लासवाड़ी की हारो से शिन्दे की पैदल सेना और तोपखाना कुचले गये।

उधर असई के बाद स्टीवन्सन ने बुरहानपुर और असीरगढ़ का घेरा डाला और वेल्ज़ली राजाओ की रोक-थाम करता रहा। असीरगढ़ में शिन्दे के १७ युरोपी अफसर गढ़ सौंप कर शत्रु से जा मिले। वेल्ज़ली को मराठा रिसाले का पीछा करना असम्भव और खतरनाक दीखा। इसलिए उसने शिन्दे से युद्ध-विराम की सन्धि कर ली, और उसे सन्धि के धोखे मे रख कर इलिचपुर के पास उस पर एकाएक हमला कर दिया। आरगाँव की इस लडाई मे शिन्दे की फिर हार हुई (२९-११-१८०३ ई०)। तब अंग्रेजो ने गवीलगढ़ ले लिया,

जिसके बाद राजाओं ने अलग अलग सन्धियाँ कीं (दिसम्बर १८०३ ई०)। अंग्रेजों ने जो प्रदेश जीत लिये थे, वे उन्हीं के पास रहे। भोंसले ने बराड भी निज़ाम को सौंपा। दोनों राजाओं ने माना कि अंग्रेजों के सिवाय और किसी यूरपी को अपनी सेना में न रक्खेंगे। फरवरी १८०४ में शिन्दे ने होल्कर के डर से अंग्रेजो से "आश्रित" सन्धि भी कर ली। उसके बाद लौर्ड वेल्जली ने उससे ग्वालियर और गोहद के जिले भी ले लिये।

§६. **यशवन्तराव होल्कर**—यशवन्तराव होल्कर को जो आशाएँ दी गई थीं उनके आधार पर उसने बुन्देलखंड, दोआब और हरियाना (कुरुक्षेत्र बागर) के अनेक जिले, जो पहले होल्कर वंश के रह चुके थे, लौर्ड लेक से माँगे। तब उसकी आशाओं पर पानी फिरा और उसने अंग्रेजों का असल रूप पहचान लिया। उसने यह भी देखा कि उसने अपनी सेना में जो अंग्रेज अफसर रक्खे थे वे कम्पनी से षड्यन्त्र कर रहे हैं। इसपर उसने अपने तीन षड्यन्त्रकारी अंग्रेज नौकरों को पकड़ कर फाँसी चढ़ा दिया।

यशवन्तराव ने मराठा, राजपूत, जाट, रुहेले, सिक्ख, अफगान आदि भारत के सभी लोगों के नेताओं को अपने द्वेष भूल कर और एक दूसरे को क्षमा कर भारत की स्वाधीनता के लिए लड़ने को पुकारा। उसने मराठा शैली से लड़ने का निश्चय कर पूरबी राजस्थान में मोर्चा लिया जहाँ से वह दोआब, दक्खिन और गुजरात—अंग्रेजी शक्ति के तीनों केन्द्रों—पर चोट कर सके।

लौर्ड वेल्जली ने आर्थर वेल्जली को दक्खिन से और लेक को दोआब से उसके खिलाफ बढ़ने को कहा। पर वे दोनों हिचकिचाने लगे। वेल्जली ने कहा मेरी सेना ताप्ती के उत्तर निकल जाय तो महाराष्ट्र में ५० होल्कर उठ खड़े होंगे। लेक ने कहा, मैं इस लुटेरे की तरफ बढ़ूँ तो वह खिसक कर दोआब आ निकलेगा जहाँ रुहेले इसका साथ देने को आतुर हो रहे हैं। वास्तव में रुहेले अंग्रेजों द्वारा अपनी स्वतन्त्रता हर लिये जाने और बार बार लाञ्छित किये जाने के कारण अब बहुत ही बेचैन थे। मल्हार होल्कर के समय से होल्कर वंश के साथ उनके नेताओं का जैसा सम्बन्ध रहा था [१०,२§१३, १०,३§६], उसकी याद से तथा यशवन्तराव के युद्ध का निश्चय करने से उनपर उसको

पुकार का गहरा असर पडा था और वे उत्कण्ठित हो उसके आने की राह देख रहे थे।

युरोप की नई युद्धशैली का मैदान मे मुकाबला मराठा शैली न कर सकती थी, पर जमे हुए शत्रु के पैर उखाडने के लिए, जहाँ जनता का सहयोग मिल सके वहाँ मराठा शैली अब भी अत्यन्त प्रभावकारी थी।

सन् १८०४ के वसन्त में लेक ने मॉनसन के नेतृत्व मे अपनी श्रेष्ठ सेना जयपुर की तरफ से रवाना की और आर्थर वेल्जली ने कर्नल मरे को गुजरात से बढ़ाया। वे दोनो सेनायें मालवे में शिन्दे की सेना के साथ मिल कर यशवन्तराव को कुचलने को थीं। कर्नल वालेस के नेतृत्व मे एक और सेना पूने से मालवे की दक्खिनी सीमा पर चौकसी को आ गई।

यशवन्त जयपुर में था; वह अपने को डर दिखा कर मालवे के उत्तरी छोर तक जहाँ की जनता का पूरा सहयोग उसे प्राप्त था, हट आया। मॉनसन उसके फन्दे में फँस आगे बढ़ता आया। जयपुर के राजा को उसने अपनी तरफ मिला लिया और जयपुर और बूँदी के बीच टोंक-रामपुरा का गढ़ ले कर होल्कर के पीछे-पीछे बढ़ा। उधर से मरे मही कॉठे से बॉसवाडा, प्रतापगढ़ राज्यो की सहायता से इन्दौर की तरफ बढ़ रहा था। मालवे मे शिन्दे के सेनापति बापू शिन्दे और जीन फिलोस ने होल्कर के सिहोर, भेलसा आदि शहर छीन लिये।

इसी समय बुन्देलखण्ड में छापेमार सवारो के एक दल ने जालौन से झॉसी के रास्ते पर कोंच की अंग्रेजी छावनी को एक रात आ घेरा, और कुल अफसरो और सैनिको का सफाया कर उनकी सब तोपे छीन लीं (२१-५-१८०४)। गवर्नर-जनरल ने इस प्रकार के युद्ध में अपनी सेना के उलझने का खतरा देख मौनसन और मरे को लौटाने और युद्ध बन्द करने का आदेश दिया, पर वे दोनो सेनानायक काफी आगे बढ़ चुके थे इसलिए युद्ध बन्द न हुआ।

मौनसन कोटा के दक्खिन मुकुन्दरा का दर्रा पार कर मालवे मे घुसा। मरे भी मालवे की पच्छिमी सीमा पर आ गया था। तब यशवन्त लडने के लिए उठा। उसके उठते ही मौनसन और मरे दोनों उलटे पाँव भागे। यशवन्त ने मौनसन का पीछा किया। अपनी तोपो को कीलते और फेंकते,

गोला-बारूद को नष्ट करते, स्त्रियों बच्चों और घायलों को उनकी किस्मत पर छोड़ते और अनेक जगह पिटते हुए जुलाई (१८०४) के अन्त में वह टोंक-रामपुरा वापिस पहुँचा, जहाँ उसे लेक की भेजी कुमुक मिली। इधर बापू शिन्दे कोटा में यशवन्तराव की तरफ जा मिला। यशवन्त को मौनसन में उलझा देख मरे फिर लौटा और उसने इन्दौर बिना किसी लड़ाई के दखल कर लिया। यशवन्तराव ने उसकी चिन्ता न की।

यशवन्त को नजदीक आया देख मौनसन को नई कुमुक आ जाने के बावजूद भी टोंक-रामपुरा में मोर्चा लेने की हिम्मत न हुई। वह फिर पीछे भागा और बनास नदी के घाट पर फिर मार खा कर जयपुर राज्य में कुशलगढ पहुँचा, जहाँ दौलतराव शिन्दे की कुछ सेना सदाशिव भास्कर के नेतृत्व में थी। यह वह सेनापति था जिसे यशवन्तराव ने दो बरस पहले पूने में हराया था। पर सदाशिव अब अपना पुराना झगड़ा भूल यशवन्तराव से जा मिला। मौनसन की भारतीय सेना का एक अंश भी यशवन्तराव की पुकार पर उससे जा मिला। यह पहला मौका था जब कि अंग्रेजों की भाड़ैत भारतीय सेना को अपनी ओर मिलाने का यत्न किसी भारतीय ने किया, और यशवन्त इसमें अंशतः सफल हुआ।

कुशलगढ से भाग कर अगस्त के अन्त में मौनसन आगरा पहुँच गया। लेक का कहना था कि उसने अपने सर्वोत्तम सेना दल मौनसन के हाथ सौंपे थे, जो सब नष्ट हो गये।

अन्तर्वेद या ठेठ हिन्दुस्तान में इस समय अंग्रेजों के नये नये राज के विरुद्ध असन्तोष की लहर उमड़ी हुई थी। अनेक असन्तुष्ट लोग भरतपुर के राजा रणजीतसिंह के पास पहुँच रहे थे। पिछले साल के युद्ध में लेक ने उस राजा को मराठों से "स्वतन्त्र" कर दिया था। यशवन्तराव ने अब उसे अपनी ओर मिला कर मथुरा पर चढ़ाई की। अंग्रेजी सेना मथुरा से हट गई। दौलतराव शिन्दे तब बुरहानपुर में था। वह भी यशवन्तराव से मिलने के विचार से युद्ध क्षेत्र की तरफ बढ़ा।

इस दशा में लेक कानपुर से दिल्ली आया। यशवन्त ने मथुरा छोड़ दिल्ली को जा घेरा। दिल्ली को वह औक्टरलोनी से ले न सका, और दोआब

में घुसा। लेक ने उसका पीछा किया और १८ दिन तक २३ मील रोज की चाल से दौड़ते हुए फर्रुखाबाद में उसके रिसाले को जा पकड़ा। यशवन्तराव तब जमना पार कर डीग वापिस लौट आया और अन्त में भरतपुर गढ़ में शरण ली। लेक ने तब भरतपुर को आ घेरा (३-१-१८०५ ई०)। तीन बार उसने गढ़ पर हल्ला बोला, तीनों बार विफल।

यशवन्तराव ने जिस बहादुरी से अंग्रेजों का मुकाबला किया उसे देख दूसरे मराठों के भी हौसले बढ़ रहे थे और वे सोचने लगे थे कि व्यर्थ में ही हिम्मत हार कर उन्होंने अपना राज खो दिया। यशवन्त की पुकार पर वे अपनी खोई स्वतंत्रता को वापिस लेने की सोचने लगे थे। अंग्रेजों ने देखा भारतीय नेताओं का कोई बड़ा संघ बनने से पहले ही उनसे अलग-अलग सन्धि कर लेनी चाहिए। इसलिए मार्च के अन्त में उन्होंने यशवन्तराव को गढ़ से जाने दे कर रणजीतसिंह से सन्धि कर ली।

दौलतराव शिन्दे चम्बल तक पहुँचा था कि भरतपुर का घेरा उठ गया। रणजीतसिंह के अंग्रेजों से सन्धि कर लेने से यशवन्तराव को व्रजभूमि छोड़नी पड़ी। चम्बल के दक्खिन व्रज और बुन्देलखंड की सीमा पर सबलगढ़ में उसकी और दौलतराव की भेंट हुई। वहाँ पेशवा और भोसले के दूत भी आये थे। शिन्दे का दोगला अंग्रेज सेनापति फिलोस बराबर ऐसी ढील करता रहा था जिससे वह समय पर भरतपुर न पहुँच सके। होल्कर के कहने से उसे कैद किया गया। लेक ने दोनों राजाओं पर हमला करना चाहा, पर वे अजमेर की तरफ हट गये। उधर बढ़ने की लेक को हिम्मत न हुई।

मराठे अब अपनी शैली से युद्ध कर रहे थे और युद्ध की पहल उनके हाथ में आ गई थी। उसे वे चाहे जितना लम्बा कर सकते थे। उस शैली में उनसे कैसे और कब पार पाया जा सकेगा, और उस बीच भारत में नये खड़े अंग्रेजी राज पर क्या कुछ खतरे आ सकते हैं, और कितना खर्च का बोझा लद सकता है सो अंग्रेज देख न पा रहे थे। इस दशा में ब्रितानवी सरकार ने लौर्ड वेल्जली को वापिस बुला कर बूढ़े कौर्नवालिस को शान्ति-स्थापना के लिए फिर भारत भेजा। जुलाई सन् १८०५ के अन्त में वह कलकत्ते पहुँचा,

और नाव द्वारा उत्तर भारत के लिए रवाना हुआ। शिन्दे के दीवान मुंशी कमलनयन को जौन मालकम इससे पहले ही गद्दार बना चुका था और उसके द्वारा मराठा संघ को फोड़ने की कोशिश कर रहा था। कौर्नवालिस ने प्रस्ताव किया कि यदि शिन्दे और होल्कर अलग हो जांय तो शिन्दे को गोहद और ग्वालियर इलाके तथा जयपुर का आधिपत्य लौटा दिया जाय। इस पर दौलत राव शिन्दे ने यशवन्तराव का साथ छोड़ दिया। यशवन्तराव ने अजमेर से यह कह कर पंजाब की राह ली कि सिक्ख सरदारों और काबुल के शाह को साथ ले कर अंग्रेजों से लड़ूँगा।

गाजीपुर पहुँच कर कौर्नवालिस चल बसा (५.१०.१८०५ ई०)। तब सर जौर्ज बार्लो स्थानापन्न गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। शिन्दे के साथ सन्धि हो गई, और उसे आश्रित सेना की सन्धि से भी मुक्त किया गया।

यशवन्तराव अब अमृतसर पहुँचा। लेक भी उसके पीछे पीछे व्यास तक चढ़ गया। अमृतसर में सिक्ख सरदारों की संगत जुटी, उनमें से कुछ मराठों से मिलना चाहते थे तो कुछ अंग्रेजों से। यशवन्तराव काबुल के शाह को बुलाने की भी बात करता था। सरदार रणजीतसिंह को पंजाब में अपना राज्य स्थापित करना था, इसलिए वह नहीं चाहता था कि पंजाब में मराठा, अफगान और अंग्रेज सेनाएँ आयं। उसके प्रभाव से यशवन्तराव को पंजाब में कुछ मदद न मिली। तब वह पेशावर जाने लगा। लेकिन लेक ने उसे सन्देश भेजा कि यदि शान्ति से लौट जाय तो उसके सब इलाके लौटा दिये जांयगे। इस आधार पर उसने सन्धि कर ली (दिसम्बर १८०५ ई०)।

§७ **अमरसिंह और भीमसेन थापा**—सन् १७६२ में नेपाल पर चीनियों की चढ़ाई होने पर [१०,४ § ८] नेपालियों ने अंग्रेजों से सहायता माँगी और उनसे व्यापारी सन्धि कर ली थी। कौर्नवालिस का दूत जब काठमाण्डू पहुँचा, पर उसे शीघ्र लौटना पड़ा, क्योंकि चीन से युद्ध समाप्त हो चुका और नेपाल चीन का आधिपत्य मान चुका था। नेपाल के मुख्य शासक बहादुर ने उस बीच अंग्रेज दूत से मेलजोल बढ़ाया। उसने अंग्रेजों का सहारा ले कर और अपने भतीजे रणबहादुर को कैद कर स्वयं राजा बनने का षड्यन्त्र किया। यह

देखे नेपाल के प्रमुख लोग उसके विरुद्ध हो गये, क्योंकि स्वयं पृथ्वीनारायण [१०, ३ § ८] ने अंग्रेजों को नेपाल में किसी बहाने न घुसने देने की नीति निश्चित की थी। रणबहादुर भी युवा हो चुका था। उसने बहादुर को कैद कर अपने हाथ में राज ले लिया।

रणबहादुर रँगीला जवान था। सन् १७९७ में अपने दो बरस के बेटे गीर्वाणयुद्धविक्रम का राजतिलक करा और अपनी बड़ी रानी राजराजेश्वरी को उसका नायब बना वह संन्यासी हो गया। उसकी एक प्रेमिका जो गीर्वाण की माँ थी, उसके साथ ही संन्यासिनी हो गई। दो बरस बाद उस संन्यासिनी की मृत्यु होने पर वह विक्षिप्त रहने लगा और राजकाज में उलटपुलट हस्तक्षेप करने लगा। प्रधान मन्त्री दामोदर पांडे ने उसे कैद करना तय किया। तब राजराजेश्वरी रणबहादुर से जा मिली और वे दोनों भाग कर बनारस जा पहुँचे (२१-४-१८०१)। दामोदर पांडे ने पीछे दूसरी रानी को नायब बना लिया।

नेपाल के राजा रानी को बनारस भाग आया देख गवर्नर-जनरल वेल्जली बड़ा खुश हुआ। दामोदर पांडे ने यह इच्छा प्रकट की कि रणबहादुर को अंग्रेजी सरकार नजरबन्द रक्खे। इस उपकार के बदले वह ई० इं० कम्पनी से व्यापारी सन्धि करने को तैयार था। अक्तूबर १८०१ में व्यापार और मैत्री की सन्धि लिखी गई। अप्रैल १८०२ में कप्तान नौक्स उसके अनुसार रेजिडेंट बन काठमाँडू पहुँचा। पर नेपाल के पुराने सरदार सन्धि के विरोधी थे, इस कारण १७९२ की सन्धि की तरह इस सन्धि पर भी हस्ताक्षर न हो पाये। विरोधी नेताओं में प्रमुख अमरसिंह थापा था जिसके पिता ने पृथ्वीनारायण के झंडे तले लड़ते हुए वीर गति पाई थी और जिसने स्वयं राजेन्द्रलक्ष्मी के समय से नेपाल राज्य को पच्छिम तरफ बढ़ाने में नेतृत्व किया था। नेपाल सरकार ने अंग्रेजों का विरोध दबाने के लिए उसे कैद में डाल दिया। नौक्स ने दामोदर पांडे और उसके साथियों को घूस दे कर अपना काम कराने का यत्न भी किया, पर उन लोगों ने उसकी बात अनसुनी कर दी। उन्होंने अपने जानते नेपाल के हित में सन्धि करनी चाही थी, अपने देश को निजी लाभ के लिए बेचने वाले वे नहीं थे।

बनारस रहते हुए रणबहादुर का मानसिक रोग दूर हो गया। नवम्बर

१८०२ में राजराजेश्वरी बनारस छोड़ नेपाल में घुसी। पहाड़ों के दक्खिनी छोर पर मकवानपुर* तक ही उसके पहुँचने पर नेपाल दरबार ने इस डर से कि आने वाले गृहकलह में अंग्रेजी सरकार का सहारा लिये बिना काम न चलेगा, सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये, और राजराजेश्वरी को कैद करने को सेना भेजी। वह सेना राजराजेश्वरी से जा मिली। फरवरी १८०३ में राजराजेश्वरी ने नेपाल का शासन अपने हाथ में लिया। दामोदर पांडे को उसने प्रधानमन्त्री पद पर रहने दिया, पर अमरसिंह थापा को कैद से छुड़ा मन्त्रिमण्डल में ले लिया और फिर शीघ्र गढ़वाल का विजय पूरा करने को रवाना कर दिया। राजराजेश्वरी नेपाल में अंग्रेजों के घुसने की स्पष्ट विरोधिनी थी। मार्च १८०३ में नॉक्स को नेपाल से लौटना पड़ा।

नवम्बर १८०४ में वेल्जली ने सन्धि को रद्द कर रणबहादुर को छोड़ दिया। उसके नेपाल दून† के किनारे थानकोट तक पहुँच जाने पर दामोदर पांडे ने मुकाबला करना चाहा। पर सेना रणबहादुर से जा मिली, दामोदर पकड़ा और मारा गया। रणबहादुर ने भीमसेन थापा को जो बनारस के प्रवास में बराबर उसके साथ रहा था, प्रधान मन्त्री, तथा अमरसिंह के बेटे रणध्वज को उसका सहायक नियत किया।

बनारस रहते हुए भीमसेन थापा मराठों से प्रभावित हुआ और उसने अंग्रेजों का मराठा साम्राज्य का बड़ा अंश हड़प लेना बड़ी आशंका से देखा था। अंग्रेजों की शक्ति देख उसकी हिम्मत पस्त नहीं हुई, प्रतिरोध की भावना ही जगी। यशवन्तराव के युद्ध से उसे विशेष प्रोत्साहन मिला था। अंग्रेजों या फ्रांसीसियों का नये ढंग का सेना संगठन भी उसने देखा और काठमाड़ू आ कर वहाँ एक कोट बनाया जिसे उसने 'कम्पू' (कैम्प) नाम दिया। वहाँ सेना के

* आधुनिक नेपाल रेलवे के उत्तरी छोर आमलेखगंज के पास।

† ठेठ नेपाल दून जिसमें काठमाड़ू, भातगाँव और पाटन की बस्तियाँ हैं, कश्मीर दून की तरह पहाड़ों के भीतर घिरा हुआ मैदान है। पर कश्मीर दून की लम्बाई चौड़ाई जहाँ ८४ × २५ मील है, वहाँ नेपाल दून की केवल २६ × १६। रक्सौल आमलेखगंज की तरफ से जाने पर थानकोट नेपाल मैदान के किनारे पर पड़ता है।

इकट्ठी हो कर कवायद करने और वहीं उसकी बन्दूकें रखने की पद्धति उसने चलाई। नेपालियों ने यह नये ढंग की कवायद बहुत जल्द सीख ली।

उधर अमरसिंह थापा के नेतृत्व में नेपाली सेना ने अलमोड़े से गढ़वाल पर चढ़ाई की। अमरसिंह ने अपनी एक टुकड़ी को अलमोड़े से तिब्बत में उत्तर से भी गढ़वाल पर आक्रमण किया। गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर के लिये जाने पर वहाँ का राजा प्रद्युम्नशाह नीचे तराई में भाग गया और फिर १२ हजार सेना ले कर देहरादून में घुसा। जनवरी १८०४ में देहरादून के पास खुरबुडे की लड़ाई में उसके मारे जाने पर जमना और टोंस† तक नेपाली राज्य की सीमा पहुँच गई।

जमना के उस पार सरमौर राज्य था जिसकी राजधानी नाहन थी। जमना से सतलज तक 'बारह ठकुराई' अर्थात् १२ मुख्य राज्यों के ठिकाने तथा अनेक छोटे छोटे ठिकाने परस्पर कलह में व्यस्त थे। सरमौर के राजा ने अमरसिंह को जमना पार बुलाया। जमना तक पहुँचने के साल भर के भीतर अमर उन सब दुर्गम ठिकानों को जीतता हुआ सतलज तक पहुँच गया।

सतलज से रावी तक के पहाड़ी राज्यों पर तब कटोच* के राजा संसारचन्द का आतंक छाया था, जो उन सब को एक एक कर जीत रहा था। संसारचन्द ने १८०३-४ में सतलज-व्यास-द्वाबे पर भी दो चढ़ाइयाँ की थीं, पर रणजीतसिंह तथा एक और सिक्ख सरदार के हाथों हार कर भाग आया था। सन् १८०५ के अन्त में सतलज पार के सुकेत, कुल्लू, चम्बा, नूरपुर, बसौली आदि ११ राज्यों के अनुरोध पर अमरसिंह ने सतलज लाँघी। इससे पहले उसने अपने पीछे की तरफ कुमाऊँ गढ़वाल की सुरक्षा के लिए नेपाल सरकार की ओर से योग्य अधिकारी नियत करा दिये थे। सतलज के किनारे महलमोरी और व्यास के किनारे सुजानपुर तीरा पर हार कर संसारचंद ने कांगड़ा गढ़ की शरण ली।

---

† जमना में उत्तरपच्छिम से मिलने वाली नदी। प्रयाग और मिर्जापुर के बीच गंगा में दक्खिन से एक दूसरी टोंस मिलती है। दोनों का संस्कृत नाम भी एक ही है—तमसा।

* कांगड़ा जिले में एक बस्ती जो संसारचन्द की राजधानी थी।

अमरसिंह ने ज्वालामुखी तीर्थ पर डेरा लगा चारों तरफ के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। चम्बा जसौली तक के राजाओं ने ज्वालामुखी आ कर नेपाल की अधीनता मानी। भीमसेन थापा ने अपने भाई नयनसिंह को अमरसिंह की सहायता के लिए भेजा था। नयनसिंह ने कांगड़ा कोट पर हल्ला बोल उसे लेने का यत्न किया, जिसमें उसकी जान गई। अमर तब काँगड़े को घेर कर बैठ गया।

अमरसिंह थापा वीर और कुशल सेनानायक होने के साथ साथ जागरूक राजनेता शासक और चरित्रवान् पुरुष भी था। उसका ध्येय कश्मीर की सीमा तक हिमालय के समूचे पहाड़ी भाषी क्षेत्र* को एक शासन में ले आना था, जिस तक वह करीब-करीब पहुँच ही गया। यशवन्तराव होल्कर ने भारत के सभी राजाओं सरदारों को अंग्रेजों के विरुद्ध एक साथ खड़े होने को पुकारते समय कटोच के संसारचन्द से भी यही अनुरोध किया था। संसार ने तब उससे नेपालियों के विरुद्ध सहायता माँगी, जो यशवन्त ने देने का वचन दिया। संसारचन्द के यहाँ अंग्रेजों का संवाददाता भी था। यशवन्त ने नहीं जाना कि संसारचन्द के बजाय उस समय ये नेपालियों का सहयोग उसके लिए कितना कीमती होता।

§८ मराठा राज्यों की अवनति—दूसरे अंग्रेज-मराठा युद्ध और उसके पहले पीछे की घटनाओं के फल स्वरूप गायकवाड़ और पेशवा के इलाके अर्थात् गुजरात, ठेठ महाराष्ट्र और उत्तरपूरबी बुन्देलखंड अंग्रेजों के रक्षित बन गये, भोंसले का बराड़ प्रदेश भी निजाम की मार्फत उनकी रक्षा में और उड़ीसा उनके सीधे शासन में चला गया, तथा शिन्दे का आगरा दिल्ली प्रदेश उनके हाथ आ गया था। इसके अतिरिक्त दिल्ली के पड़ोस के अनेक सरदारों—धौलपुर, लोहारू, पटौदी, जींद, नाभा, पटियाला आदि—को उन्होंने

* हिमालय में चनाब जहाँ दक्खिनपच्छिम घूमती है वहाँ उसकी दून के कष्टवार और भद्रवा प्रदेशों तक में कश्मीरी भाषा की पूरबी बोलियाँ बोली जाती है। उसके पूरब रावी दून के चम्बा प्रदेश से ले कर आधुनिक नेपाल राज्य के पूरबी छोर तक एक ही पहाड़ी भाषा का क्षेत्र है, जिसमें रावी से टोंस जमना तक पच्छिमी पहाड़ी, फिर टोंस से काली तक मध्य पहाड़ी और उसके पूरब पूर्वी पहाड़ी बोली जाती है।

उनकी गद्दारी के पुरस्कार में मराठों से "स्वतन्त्र" कर खड़ा कर दिया था। भोंसले, शिन्दे और होल्कर के अधीन इसके बाद भी सतलज से महानदी तक का अर्थात् राजस्थान से छत्तीसगढ़ बस्तर तक का भारत के बीचोंबीच का भूमाग बचा रहा। इन राज्यों मे कहीं भी अंग्रेजी सेना की छावनियाँ नहीं पड़ीं, और अंग्रेजों ने अपने गुप्त कारिन्दो द्वारा इनमें फूट फैलाने के अतिरिक्त अब ऐसी लूटमार फिसाद आदि की कार्रवाइयाँ जारी कीं जिससे लोग मराठा शासन से ऊब कर अंग्रेजी शासन के लिए तैयार हो जायँ।

शिन्दे के विषय में सन् १८०४ में ही आर्थर वेल्ज़ली ने लिखा था, "उसके दरबार में हमारा पैर ऐसा जमा है कि वह कम्पनी से लड़े तो उसकी आधी सेना और सरदार हमारी तरफ होंगे।" उसका दीवान मुंशी कमलनयन अंग्रेजो के हाथ बिका था सो कहा जा चुका है। शिन्दे के दरबार के अंग्रेज रेजिडेंट के अधीन काम करने वाले जेम्स टौड नामक व्यक्ति को राजस्थान का नक्शा तैयार करने तथा राजपूत राज्यो को मराठों के विरुद्ध उभाडने को भेजा गया।

यशवन्तराव होल्कर जब पहलेपहल नागपुर भागा और वहाँ अंग्रेजो की बातो मे बहका था, तभी से अमीरखाँ नामक पठान सरदार को उन्होंने उसके साथ कर दिया था। यह अमीरखाँ शुरू से ही अंग्रेजो के हाथ बिका हुआ उनका भडकाऊ कारिन्दा था और बराबर यशवन्तराव के साथ रहा। यशवन्त सन् १८०८ से विक्षिप्त रहने लगा और १८११ में चल बसा। उसके बच्चे के नाम पर राज्य की बागडोर अमीरखाँ ने सँभाल ली। सन् १८०६ में उसने प्रकटतः निजाम के उभाडने से नागपुर राज्य पर चढ़ाई की। वह राज्य अंग्रेजो का आश्रित न था, तो भी नये गवर्नर-जनरल मिंटो ने अंग्रेज़ी सेना भेज कर उसे अमीरखाँ से बचाया, और इस सेवा के बदले में भोंसले राजा से कुछ भी न माँगा। यह नाटक इसलिए रचा गया जिससे नागपुर का राजा यह समझ ले कि होल्कर से उसे अंग्रेजो की आश्रित सेना ही बचा सकती है।

इसके बाद अमीरखाँ और उसके साथियो ने राजस्थान में चारों तरफ लूटमार और अन्धेरगर्दी मचाये रक्खी। तुच्छ झगड़े उभाड़ कर, उन झगडों

में सदा अन्याय-पक्ष को बढ़ावा दे कर, भले आदमियों की खुली हत्याएँ करा कर उन्होंने राजस्थान की जनता और सरदारों को ऐसा लाञ्छित और अपमानित किया कि उन्हें आत्मग्लानि से दम घुटता लगने लगा। उदयपुर के राणा की लड़की कृष्णाकुमारी के विवाह के मामले में दखल दे कर अमीरखाँ ने ऐसा बखेड़ा मचा दिया कि असहाय राणा को अपनी उस बेटी की हत्या करा देने के सिवाय कोई चारा न दिखाई दिया। कृष्णाकुमारी को यह पता लगा तो उसने विष पी कर आत्महत्या कर ली और उसकी मा ने भी अनशन से प्राण त्याग दिये। जोधपुर राजा के गुरु देवनाथ नामक साधु ने जोधपुर जयपुर और बीकानेर के आपसी झगड़े में समझौता करवा दिया था। अमीरखाँ ने उसे और जोधपुर के दीवान इन्द्रराज को जोधपुर के महल में ही मरवा डाला (१८१५)। बीकानेर के एक मन्त्री अमरचन्द सुराणा तथा जयपुर के दो प्रधानों की भी, जो अंग्रेजों के विरोधी थे, तभी हत्या की गई।

मराठा राज्यों के नेता अंग्रेजों के अनेक गुप्त कारिन्दों को पहचान भी न सके और उनके इस गहरे खेल का कोई प्रतिकार न कर सके।

§९. अंग्रेजों की पहली उत्तरपच्छिमी सन्धियाँ—नैपोलियन सन् १८०० ई० में फ्रांस का अधिनायक और १८०४ में सम्राट् बन गया था। भारत पर उसकी नजर बराबर लगी थी, और मिंटो के समय (१८०७–१३ ई०) उसकी चढ़ाई का वास्तविक भय उपस्थित हो गया।

ईरान में नादिरशाह के पतन के बाद काजार वंश का राज्य शुरू हुआ था। उस वंश के समय में सन् १८०६ से रूस ईरान की उत्तरपच्छिमी सीमा पर दबाने लगा। ईरानियों ने वेल्जली वाली सन्धि के अनुसार अंग्रेजों से मदद माँगी, पर अंग्रेजों को तब रूस से मैत्री रखनी थी। ईरानी दूत तब नैपोलियन के दरबार में पहुँचे। इसी बीच जून १८०७ में नैपोलियन और रूस सम्राट् के बीच भी सन्धि हो गई। तब रूस, तुर्की और ईरान के सहयोग से नैपोलियन ने कन्दहार, गजनी, गोमल, डेरा-इस्माइलखाँ के रास्ते भारत पर चढ़ाई करने की योजना बनाई। अंग्रेजों ने भी तब ईरान, अफगानिस्तान, सिन्ध और पंजाब में अपने दूत भेजे।

ईरान में जौन मालकम को भेजा गया, पर वह नैपोलियन के विरुद्ध ईरानियों को अपने पक्ष में न मिला सका। किन्तु नैपोलियन के फिर युरोप के झगड़ों में फँस जाने पर इंग्लैंड और ईरान के बीच यह सन्धि हो गई कि यदि कोई युरोपी शक्ति ईरान पर चढ़ाई करे तो अंग्रेज ईरान को धन और सेना की सहायता देंगे।

अफगानिस्तान में जमानशाह को सन् १८०१ में उसके सौतेले भाई महमूद ने गद्दी से उतार कर अन्धा कर दिया था। जमान के सगे भाई शुजा ने १८०३ में महमूद से गद्दी छीन ली, तो भी उसे बराबर महमूद का डर बना था। पेशावर, कश्मीर, अटक, डेराजात (सिन्ध नदी के पच्छिम का डेरा-इस्माइल खाँ, डेरा-गाजीखाँ का खादर) मुलतान और सिन्ध तब तक अब्दाली साम्राज्य में थे।

सन् १८०८ में कम्पनी का दूत एल्फिन्स्टन बीकानेर-मुलतान के रास्ते पेशावर पहुँच कर शाह शुजा से मिला। एल्फिन्स्टन ने शाह से फ्रांस के विरुद्ध मदद माँगी तो शाह शुजा ने बदले में महमूद के विरुद्ध रुपये की मदद चाही। इसके लिए वह सिन्ध प्रान्त कम्पनी के पास रहन रखने को अथवा उसकी दीवानी सौंपने को तैयार था। उसने कहा, महमूद ईरानियों की मदद से गद्दी लेना चाहता है, यदि वह सफल हुआ तो ईरानियों और फ्रांसीसियों के पैर सिन्ध में जमे समझो। अन्त में यह सन्धि हुई कि ईरानियों या फ्रांसीसियों की चढ़ाई होने पर शाह शुजा उन्हें रास्ता न देगा और कम्पनी शाह की रुपये से मदद करेगी।

सिन्ध के स्थानीय शासक तालपुर वंश के बलोच थे, जो हैदराबाद, मीरपुर तथा खैरपुर में रहते थे। वे शाह शुजा से छुटकारा पाने को उत्सुक थे। जब कम्पनी का दूत उनके यहाँ पहुँचा तब ईरानी दूत वहाँ पहले से उपस्थित थे, और ईरान और फ्रांस दोनों की तरफ से बात कर रहे थे। उन्होंने सिन्धी अमीरों को शाहशुजा से स्वतन्त्र करने और कन्दहार दिलाने का प्रलोभन दिया था। अंग्रेजों की सहायता का वचन मिलने पर सिन्धियों ने उसे तरजीह दी और अंग्रेज रेजिडेंट अपने यहाँ रख लिया।

§१० रणजीतसिंह का उदय और उसकी रोक-थाम—मिंटो की सन्धियों में से सब से मुख्य वह थी जो रणजीतसिंह के साथ की गई। वह सन्धि वस्तुत दूसरे अंग्रेज मराठा युद्ध का परिणाम थी।

सन् १७९९ में ज़मानशाह के लौटने के बाद से रणजीतसिंह पंजाब में अपना राज्य बढ़ाता गया। ठेठ पंजाब में सिक्ख मिसलें क्षीण हो रही थीं, उन्हें वह एक एक कर अधीन करता गया। अफगानिस्तान में घरेलू लड़ाई होने पर उसने पच्छिमी पंजाब पर भी धीरे धीरे अधिकार कर लिया। सतलज और जमना के बीच सरहिन्द प्रदेश भी मुख्यत सिक्ख मिसलों के अन्तर्गत था। वहाँ के सरदार पहले मराठों को कर देते थे, जिससे अंग्रेज़ों ने उन्हें मुक्त कर दिया था। रणजीतसिंह ने सन् १८०६-७ में दो बार उस प्रदेश पर चढ़ाई कर उसका बहुत सा अंश अधीन किया। वहाँ के कुछ सरदार तब अंग्रेज़ों के पास पहुँचे।

इस दशा में अंग्रेज दूत मेटकाफ को रणजीतसिंह के पास भेजा गया। मेटकाफ ने उससे नैपोलियन के खतरे की बात कही, तब रणजीत ने पूछा कि अंग्रेज़ी सरकार सरहिन्द पर उसका आधिपत्य मानती है कि नहीं। मेटकाफ ने कुछ उत्तर न दिया, तब रणजीत ने उसकी उपस्थिति में तीसरी बार सतलज पार की और अम्बाला आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इस बीच नैपोलियन का खतरा मिट गया था। तब रणजीतसिंह से कहा गया कि सरहिन्द के राज्य अंग्रेजों के रक्षित हैं। जनवरी १८०९ में औक्टरलोनी दिल्ली से फौज ले कर लुधियाना आ डटा। रणजीतसिंह ने पहले युद्ध की ठानी, दौलतराव शिन्दे के पास दूत भेजे, और सरहिन्द के सिक्खों को उभाड़ने की कोशिश की। चार बरस पहले जब यशवन्तराव ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध सम्मिलित मोर्चा बनाने का अनुरोध किया था, तब इसी रणजीतसिंह ने सिक्खों को उसमें शामिल होने से रोका था। अब उसे मराठों के सहयोग की याद आई! वह सहयोग नहीं मिला तो अपने को विवश मान उसने अंग्रेज़ों की प्रस्तावित सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये (२५।४।१८०९), तीसरी चढ़ाई में जीते प्रदेश लौटा दिये और यह माना कि आगे से सतलज पार न करेगा।

हमने देखा है कि सन् १८०६ में अमरसिंह थापा के नेतृत्व में नेपालियों ने सतलज से रावी तक के हिमालय प्रदेश को अधीन कर संसारचन्द को कोट-कांगड़े में घेर लिया था। रणजीत भी उसी वर्ष ज्वालामुखी के दर्शन को गया और वहाँ संसार और अमर दोनों से मोलभाव करता रहा। अमर उसके बाद कोट-कांगड़े का शीघ्र निपटारा कर देता, जिससे रणजीत के लिए उसमें हाथ डालने का मौक़ा न रह जाता, पर उसे पीछे से अभीष्ट कुमुक नहीं मिली। अप्रैल १८०६ मे नेपाल के राजा रणबहादुर को उसके सौतेले भाई शेरबहादुर ने दरबार में ही मार डाला। शेर भी वहीं मारा गया। रानी राजराजेश्वरी सती हो गई। भीमसेन थापा ने सब से छोटी रानी को नायब बना और सभी षड्यन्त्रकारियों का निपटारा कर स्थिति को दृढ़ता से सँभाला। पर नेपाल के उस घरेलू झगडे के कारण अमरसिंह के पास कोई सहायता नहीं पहुँची। सन् १८०९ तक कोट-कांगड़े का घेरा पड़ा ही हुआ था, जब अंग्रेजों के साथ अमृतसर में सन्धि कर रणजीत सीधा वहाँ पहुँचा (मई १८०९)। उसने फिर दोनो पक्षों से मोलतोल शुरू किया और तीन मास बाद चालाकी से अपनी सेना गढ़ में डाल ली (२४-८ १८०९)। अमरसिह को वह समूचा प्रदेश छोड़ सतलज पार चले जाना पडा।

अंग्रेजों के प्रति रणजीत के मन में खीझ इसके बाद भी बनी रही। अपने पड़ोसी नेपालियों से तो उसने बिगाड़ ली, पर होल्कर और शिन्दे के दरबारों से अंग्रेजों का एक साथ मुकाबला करने के लिए वह बातचीत चलाता रहा। अन्त मे कहते हैं सन् १८११ से उसने अंग्रेजों से लड़ने का विचार त्याग दिया। अंग्रेजों ने भी उसे नेपालियों के विरुद्ध उभाडा और उनसे लडने के लिए पहाड या मैदान में सतलज लाँघ कर जाने की इजाजत दे दी।

इधर एल्फिन्स्टन और मेटकाफ काबुल और पंजाब से लौट कर आये और उधर शाह शुजा को महमूद ने अफगानिस्तान से निकाल दिया। तब वह रणजीतसिंह की शरण में आया (१८१२ ई०)। दोनों ने भाईचारा करते हुए पगड़ियाँ बदलीं, जिससे प्रसिद्ध कोहेनूर हीरा रणजीत को मिला। उसी बरस अटक के किलेदार ने वह किला रणजीतसिंह को सौंप दिया। शाह महमूद के

वज़ीर फतहखाँ ने अपने भाई दोस्तमुहम्मद के साथ अटक वापिस लेने के लिए चढ़ाई की। रणजीत के सेनापति मोहकमचन्द ने उन दोनों को हरा दिया।

§ ११ **भारतीय समुद्र पर एकाधिपत्य**—मारिशस और उसके पड़ोस के द्वीप फ्रांस के अधीन थे। नैपोलियन के ज़माने में फ्रांसीसी जहाज वहाँ से अंग्रेजी जहाजों पर छापे मारते थे। युरोप के प्राय सभी देश एक एक करके नैपोलियन के अधीन हो गये। तब उसने युरोप के सब बन्दरगाह अंग्रेजी जहाजों के लिए बन्द कर दिये। बदले में अंग्रेजों ने पुर्तगाल, हौलैंड और फ्रांस के भारतीय समुद्र वाले सभी उपनिवेशों पर भारतवर्ष से चढ़ाइयाँ कर दखल कर लिया। मारिशस आदि टापू फ्रांस से छिन गये। हौलैंड के आशा अन्तरीप के उपनिवेश (केप कालोनी) में एक फ्रांसीसी सेनापति को समर्पण करना पड़ा। वह जावा गया। तब जावा पर स्वयं मिंटो ने चढ़ाई की। वहाँ कर्नल गिलेस्पी ने उस सेनापति को फिर हराया।

आर्थर वेल्जली ने भारत में मराठा युद्ध शैली का जो तजरबा पाया था वह उसके बड़े काम आया। यहाँ से लौट कर स्पेन में उसने उसी छापामार शैली से नैपोलियन का सफल सामना किया, जिसके बाद उस ड्यूक आव वैलिंगटन का पद मिला। सन् १८१५ में जर्मन सेनापति ब्लूखर ने वैलिंगटन की मदद से वाटर्लू नामक स्थान पर नैपोलियन को हरा दिया। नैपोलियन पकड़ा गया और ईस्ट इंडिया कम्पनी के सेंट हेलिना टापू में कैद किया गया। तब केप-कालोनी और मारिशस के सिवाय अन्य सब बस्तियाँ उनके पहले मालिकों को लौटा दी गईं।

§१२. **भारत को उपनिवेश बनाने का यत्न**—उक्त घटनाओं से प्रकट है कि नैपोलियन के युद्धों के समय भारत का साम्राज्य ब्रितानिया के लिए कितने काम का सिद्ध हुआ। नैपोलियन ने जब युरोप के बन्दरगाह अंग्रेजी माल के लिए रोक दिये तब इंग्लैंड के नये-नये कारखानों का माल भारत के बाजारों में बिना चुंगी भेजा जाने लगा। इस विषय पर हम आगे और विचार करेंगे। यहाँ इतना कहना बस है कि इसी समय से भारत ब्रितानिया का औपनिवेशिक बाजार अर्थात् राजनीतिक शक्ति से बाधित हो कर कच्चा माल देने और

कारखानों का तैयार माल खरीदने वाला बाजार बनता चला गया। वह बाजार सन् १८१३ ई० से सब अंग्रेजों के लिए खोल दिया गया; ईस्ट इंडिया कम्पनी का एकाधिकार केवल चीन के व्यापार में रह गया।

इसके अतिरिक्त सन् १८१३ में कम्पनी को नया पट्टा (चार्टर) देते समय पार्लिमेंट में यह भी कहा गया कि भारत में अंग्रेज बस्तियाँ बसाई जाँय। भारत के पहाड़ी प्रान्तों का जलवायु इसके लिए उपयुक्त होने के कारण उन प्रान्तों को नेपाल से छीन लेना यों तय हो गया।

§ १३. **अंग्रेज़-नेपाल युद्ध**—ज्वालामुखी से हटने के बाद अमरसिंह ने आजकल के शिमले से (पच्छी की उड़ान से) प्रायः १३ मील पच्छिम अर्की या राजगढ़ को अपना अधिष्ठान बनाया। जमना के पच्छिम सरमौर राज्य की राजधानी नाहन में नेपालियों की दूसरी बड़ी छावनी रही। अर्की से कुमाऊँ तक उसने सड़क बनवाई तथा सब महत्त्व के नाकों और चौकसी के स्थानों पर गढ़ियाँ और पहरा-चौकियाँ स्थापित कीं। उन चौकियों के स्थानों पर ध्यान देने से आज भी दिखाई देता है कि पहाड़ की रणनीति में उस समय के नेपाली कितने कुशल तथा अपने देश की रक्षा के लिए कितने जागरूक थे।

कौर्नवालिस के समय से अंग्रेजों और नेपालियों के बीच दोनों राज्यों की सीमा के बारे में अनेक विवाद उठते और सुलझते रहते थे। अवध के नवाब ने गोरखपुर-बहराइच जिले वारन हेस्टिंग्स के समय अंग्रेजों को दिये थे [१०, ४ § ४]; उनकी सीमा पर के बुटवल और शिवराज स्थानों के बारे में १८०५ से विवाद चल रहा था। अक्तूबर १८१३ में जब हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बन कर आया तब उसे निपटाने के लिए दोनों तरफ के प्रतिनिधि नियत हो चुके थे। मार्च १८१४ में अंग्रेज प्रतिनिधि ने नेपाली प्रतिनिधियों का जान बूझ कर अपमान किया; फिर हेस्टिंग्स ने लिखा कि २५ दिन में नेपाली उन स्थानों को खाली कर दें। वह अवधि बीतते ही गोरखपुर के कलक्टर ने उन्हें दखल कर अपने थाने बिठा दिये।

हेस्टिंग्स की २५ दिन में बुटवल और शिवराज को खाली करने की धमकी काठमांडू पहुँची तो नेपाल के नेताओं ने जाना कि अंग्रेजों ने युद्ध की ठान

ली है। तो भी प्रायः सब नेता उन स्थानों को दे देने के पक्ष में थे। पर भीमसेन थापा के प्रभाव और प्रोत्साहन से सब युद्ध के लिए तैयार हो गये। मई के अन्त में नेपालियों ने शिवराज और बुटवल के थाने घेर कर वापस ले लिये। इस बीच नेपाल दरबार ने अपने पच्छिम के अधिकारियों—कुमाऊँ के चतुर शासक ब्रह्मशाह चौतरिया, हस्तिदल साही और जमना पार के अमरसिंह थापा—से भी सम्मति माँगी। इन तीनों ने एकमत हो उत्तर दिया कि पच्छिम में हमारा राज अभी नया है, मराठों और रणजीतसिंह से अंग्रेजों की सन्धि हो जाने के कारण समय उनके अनुकूल है, इसलिए अब भी थाने लौटा कर सन्धि कर ली जाय। नेपाल सरकार ने यह मान कर अमरसिंह को सन्धि की बातचीत की इजाजत दी, अमरसिंह ने लुधियाने में औक्टरलोनी के पास यह सन्देश भी भेजा कि नेपाल बुटवल की लूट का दण्ड भरने को तैयार है, पर उत्तर मिला की सन्धि की कोई आशा नहीं। सितम्बर में नेपाल सरकार ने काठमाडू से एक दूत गवर्नर-जनरल के नाम पत्र के साथ रवाना किया। हेस्टिंग्स ने उसे चम्पारन में रुकवा दिया। और उधर औक्टरलोनी को लिखा कि अमरसिंह थापा यदि आत्म समर्पण की बातचीत करे तो उससे बात की जाय और उसे बड़ी जागीर दी जाय।

अक्तूबर में अंग्रेजों की पाँच सेनाएँ हिमालय पर चढाइ को चलीं। लुधियाने से औक्टरलोनी ने सतलज के साथ साथ ऊपर बढते हुए उसकी कोहनी में शिवालक की पेंदी में पलासिया गाँव पर छावनी डाली। मेरठ से जिलेस्पी शिवालक की केरी घाटी पार कर देहरादून की दून में घुसा। उसे जीत कर उसकी सेना का एक हिस्सा गढवाल में घुसता, दूसरा नाहन पर औक्टरलोनी से जा मिलता। बनारस गोरखपुर से एक सेना बुटवल के रास्ते पालपा गोरखा पर चढाई को भेजी गई। पटना मुर्शिदाबाद से एक और सेना काठमाडू की ओर रवाना हुइ। और एक छोटी सेना पुर्णिया सीमा की रक्षा को तथा सिक्किम के राजा को उभाड़ने को रक्खी गइ।

मेरठ वाली साढे तीन हजार सेना २४ अक्तूबर को देहरादून जा पहुँची। देहरादून के नेपाली रक्षक बलभद्र के पास कुल २५० से ५०० तक

सैनिक थे। उसने उनके साथ शहर छोड़ कर चार मील दूर नालापानी के पहाड़ पर शरण ली, जहाँ वह तब तक एक अड्डा अधूरा बना पाया था।

नेपालियों के ये झटपट बन जाने वाले अड्डे अर्थात् लकड़ी के खटोलों से बनी बाड़ें ही उनके गढ़ थे और इस युद्ध में इनका विशेष प्रभाव रहा। किसी ऊँचे पठार पर नेपाली सैनिकों का एक दल खुखरियों से लकड़ी काटने लगता और दूसरा दल कुदालो से जमीन साफ करता। उन लकड़ियों को दो समान्तर पाँतों मे पास पास गाड़ कर उनमें पत्थर भर दिये जाते। इस प्रकार की रचनाएँ हरद्वार-देहरादून प्रदेश में खटोले कहलाती हैं, और बाँध बनाने में अब भी काम आती हैं। ऐसे खटोलों से घिरी बाड़ों की आड़ से नेपाली सैनिक पत्थरकलो (muskets)† से या 'जिजलों' से लड़ते। 'जिजल' नादिरशाह के समय की 'जिजैल' [१०,१§६] का नेपाली रूपान्तर था। वे लम्बी बन्दूकें थीं जिनमे डेढ़ दो छटाँक का गोला पड़ता था। इस युद्ध में नेपालियों ने उनका बड़ी दक्षता से प्रयोग किया।

बलभद्र का देहरादून वाला अड्डा जिसे अंग्रेजों ने गढ़ या किला माना, वास्तव में सालों की पाँत से घिरी पत्थरो की बाड़ थी। नेपाली उसके पीछे ऐसे सजग डटे थे कि अंग्रेजी सैनिक उनकी आँख बचा कर आगे नहीं जा सकते थे। अंग्रेज सेनापति ने पहाड़ के सामने तोपें लगा दीं। तोपों की मार जहाँ "गढ़" मे छेद करती वहाँ उस मार के बीच नेपाली उसकी मरम्मत कर लेते।

नैपोलियन के साथी को जावा में हराने वाले जिलेस्पी से यह सहा न गया कि मुट्ठी भर हिन्दुस्तानी उसका यों सामना करें। ३ दिन में पहाड़ का पूरा घेरा डाल कर उसने "गढ़" पर हल्ला बोला (३१-१०-१८१४ ई०)। कलेजे में गोली खा कर वह वहीं मारा गया। उसके अगले दिन १ नवम्बर १८१४ को गवर्नर-जनरल हेस्टिंग्स ने नेपाल से युद्ध की घोषणा की।

जिलेस्पी का उत्तराधिकारी महीना भर घेरा डाले पड़ा रहा। नई कुमुक

† चकमक पत्थर की रगड़ से जिन बन्दूकों का पलीता सुलगता था वे पत्थरकला कहलाती थीं।

आने पर २७ नवम्बर को अंग्रेजों ने फिर "किले" पर हल्ला बोला और फिर उसी तरह ढकेले गये। इसके बाद उन्होंने नेपालियों की पानी लेने की जगह स्थानीय लोगों से मालूम की। उस पहाड़ के नीचे नालापानी के सुन्दर झरने से नेपाली पानी ले जाते थे। अंग्रेजों ने उस झरने पर तोपों का मुँह ७२ घंटे लगातार खोले रखा। ३० नवम्बर को तोपें चुप हुईं, तब गढ से बन्दूकें चलना भी बन्द हुआ, और ७० आदमी हाथ में कृपाण और कंधे पर पत्थरकला लिये, कमर में खुखरी और सिर पर चक्र बाँधे, और स्त्रियां बच्चों को पीठ पर लपेटे, नाला पानी के मीठे झरने पर उतरे, और वहाँ अपनी प्यास बुझा कर अंग्रेजी पाँतों के बीच से राह काटते चले गये। सब अंग्रेजी सेना ने उन्हें साफ निकल जाने दिया और तब तीसरी बार गढ पर हल्ला बोल उसे जमींदोज कर दिया।

नालापानी की लड़ाई में नेपाली स्त्रियों ने भी खुल कर भाग लिया। गोले गोलियों की मार के बीच वे भी गढ की दीवारों पर शत्रु के सामने आ काम करतीं। न केवल नालापानी में प्रत्युत इस सारे युद्ध में नेपालियों के बजगपन और जोरदार आक्रमण शैली का आतंक अंग्रेजी सेना पर छा गया। उनके गौरवपूर्ण बर्त्ताव से भी उनके शत्रु प्रभावित हुए—शत्रुओं को अपने साथियों के शव उठा लेने का समय वे बराबर देते तथा उन शवों की जेबें तब कभी न टटोलते थे।

गोरखपुर से जो सेना पालपा चढने को थी वह तराई के आगे न बढ सकी और उसका अंग्रेज सेनापति उसे छोड़ कर भाग गया। पटने वाली सेना भी तराइ में ही बुरी तरह पिटी। अवध से रंगपुर तक कहीं भी अंग्रेजी सेना तराई के जंगलों के भीतर न घुस सकी। पर पूर्वी सीमा पर जो छोटी सेना भेजी गई थी, उसने सिकिम के राजा से मिल कर पुर्णियां के उत्तर नेपाल के मोरंग प्रदेश पर कब्जा कर लिया। पच्छिमी सीमा पर ओक्टरलोनी भी ठंडे दिमाग से डटा रहा। अमरसिंह ने भी बड़ी बजगता से उसका सामना किया।

सतलज के साथ साथ ऊपर तक जा कर शत्रु अमरसिंह के पीठ पीछे से भी हमला कर सकता था, यह देखते हुए अमर ने सतलज किनारे की ऊपर तक की चौकियों पर अपने सैनिक तैनात रक्खे। बिलासपुर से नाहन तक

शिवालक के पहाड़ों में उसकी दक्खिनी दुर्गपंक्ति थी। नाहन का बड़ा मोर्चा उसके बेटे रणजोरसिंह के सिपुर्द था। शिवालक प्रांत के पीछे अर्की के पास मलौन के गढ़ से स्वयं अमर युद्ध को चलाता था। नेपालियों की थोड़ी सी सेना इन सब चौकियों की रक्षा करने, इनका सम्बन्ध बनाये रखने और बाहर निकल कर शत्रु पर हमला करने को काफी न थी, तो भी उनका प्रत्येक सैनिक अपने अपने स्थान पर डट गया। मलौन और उसके आसपास की चौकियों में अमरसिंह के पास कुल २८०० सैनिक थे। ऑक्टरलोनी के पास शुरू में ही इससे दूनी, बाद में तिगुनी सेना थी। अमरसिंह के शब्दों में उनका उसी सेना के भरोसे अंग्रेजों से लड़ना "जुआ खेलने के समान था।"

डेविड ऑक्टरलोनी
दिल्ली में अंकित समकालीन चित्र
[दिल्ली सग्र०, भा० पु० वि०]

अंग्रेजों की छोटी तोपें नेपालियों के पहाड़ी अड्डों को तोड़ न पातीं और बड़ी तोपें पहाड़ों पर चढ़ाई न जा सकतीं। पर ऑक्टरलोनी ने रास्ते बना कर बड़ी तोपें ऊपर चढ़ाना तय किया। शिवालक में नालागढ़ उर्फ हिंडूर के राजा को फोड़ कर उसने उसकी सहायता से नालागढ़ के सामने की चोटी पर तोप चढ़ा ली। नेपालियों ने अपने उस गढ़ में पत्थरों के ढेर जमा कर रक्खे थे जिन्हें वे ऊपर चढ़ते शत्रु पर लुढ़काते। पर ऑक्टरलोनी की तोप के ९-९ सेर के गोले उन पत्थरों पर पड़े तो वे छटक छटक कर गढ़ के रक्षकों को लगने लगे। इस दशा में नालागढ़-तारागढ़ के ५०० रक्षकों ने ऑक्टरलोनी की ७००० सेना के सामने हथियार रक्खे (५-११-१८१४) और शिवालक दुर्गपंक्ति में पहला छेद हुआ।

अमरसिंह द्वारा सन्धि की बातचीत इस बीच भी चल रही थी। उस प्रसंग में हेस्टिंग्स ने यह प्रस्ताव किया (२१-११-१८१४) कि यदि अमरसिंह

या रणजोरसिंह आत्मसमर्पण कर दें तो उन्हें जमना से सतलज तक पहाड़ का राज्य दे दिया जाय। अमरसिंह ने सन्धि की बात नेपाल दरबार की ओर से चलाई थी, न कि अपने लिए। उसने इस घूस के प्रस्ताव को अनसुना कर उत्तर दिया—"यदि गवर्नर जनरल की इच्छा झगड़ा मिटाने की हो तो मैं एक विश्वस्त पुरुष को भेजूँ। यदि उनकी राय पहाड़ में युद्ध करने की ही हो तो भगवान् की जो इच्छा होगी उसके अनुसार किया जायगा।" इसके बाद भी अमर की प्रत्येक हार के बाद उसे डिगाने के प्रस्ताव किये जाते रहे, सतलज की उपरली दून में रामपुर-बशहर का राज्य उसे देने का प्रलोभन दिया गया, पर वह प्रत्येक प्रस्ताव को ठुकराता रहा।

नालापानी के गढ को उजाड़ने के बाद मेरठ वाली अंग्रेजी सेना ने नाहन पहुँच कर वहाँ के राजा को अपनी तरफ मिला लिया। अमरसिंह ने रणजोर को नाहन से हट कर उसके उत्तर जैथक में डटने का आदेश दिया। जैथक का पानी काटने की अंग्रेजों की सब कोशिशें बेकार करते हुए रणजोर वहाँ अन्त तक डटा रहा। मेरठ वाली सेना जैथक तक पहुँचने में एक तिहाई कट गई।

उधर दिसम्बर में नई कुमुक और तोपें आ जाने पर ओक्टरलोनी ने शिवालक के छेद में से गोरी नदी के साथ पहाड़ों के भीतर बढते हुए उस नदी के स्रोत पर पहुँच अर्की का पूर्वी रास्ता रोक लिया। गम्बर नदी की दून अर्की को पच्छिम तरफ बिलासपुर से मिलाती थी। उस दून से बिलासपुर पर चढाई कर उसने पच्छिमी रास्ता भी बन्द कर दिया। अमरसिंह ने शिवालक के बाकी गढों से अपनी सेना मलौन बुला ली, जहाँ वह तीन ओर से घिर चुका था (फरवरी १८१५)।

नालापानी और मलौन के पतन के बाद नेपाल दरबार ने अमरसिंह को लिखा कि देहरादून से सतलज तक का प्रदेश अंग्रेजों को देकर सन्धि कर ली जाय। इसपर अमर ने लिखा (२-३-१८१५) कि यह समय सन्धि की चर्चा का नहीं है, यदि शत्रु ने "हम लोगों की शर्त मान भी ली तो वह हमारे साथ वैसा ही बर्ताव करेगा जैसा टीपू सुलतान के साथ। वह फिर कोई बहाना ढूँढ निकालेगा और हमारे अन्य इलाके भी छीन लेगा। * जैथक में हमने

शत्रु को जीता है। यदि मैं ओक्टरलोनी पर विजय पा सका...तो रणजीतसिंह शत्रु के विरुद्ध शस्त्र उठायेंगे।...जमना पार कर हम फिर दून (देहरादून) लौटा लेंगे। आशा है कि हमारे हरद्वार पहुँचने पर लखनऊ के नवाब हमसे आ मिलेंगे।...दो वर्षों तक तराई का इलाका शत्रु के हाथ रह जाय तो रहने दीजिए।...सिक्ख हमसे नहीं मिले तो भी पहाड़ में...डरने का कोई कारण नहीं है।...जब तक हमारी जीत न हो तब तक सन्धि की चर्चा नहीं करनी चाहिए।...रणजीतसिंह को अपनी ओर मिला लेने...के लिए मुझे दो-तीन लड़ाइयाँ जीतनी पड़ेंगी।...सिक्खों और गोरखों के जमना की ओर बढ़ने पर दक्खिन के राजा भी हमारे दल में आ मिलेंगे ऐसी मुझे आशा है।...यदि हमारी जीत हुई तो हम मतभेद के अन्य सब प्रश्नों का निपटारा कर सकेंगे। यदि हार हुई तो अपमानजनक शर्तें मानने की अपेक्षा प्राण त्याग करना अच्छा होगा।" इसके अतिरिक्त अमरसिंह ने सलाह दी कि नेपाल दरबार अपने अधिपति चीन-सम्राट् से सहायता माँगे और उसे लिखे कि वह तिब्बत के रास्ते २–३ लाख सेना बंगाल पर भेजे। सम्राट् को यह भी लिखा जाय कि "नेपाल जीतने के बाद अंग्रेज...ल्हासा पर आक्रमण करने को बढ़ेंगे"। अमरसिंह का यह पत्र नेपाल नहीं पहुँचा, अंग्रेजों के हाथ लग गया।

रणजीतसिंह को अपनी तरफ मिलाने का यत्न अमरसिंह १८१३ से बराबर कर रहा था। नेपाल से कुछ सेना की कुमुक अर्की के लिए रवाना हो कर प्यूठाना तक पहुँच चुकी थी। अमर और रणजोर उसकी राह देख रहे थे। उस कुमुक के आने पर रणजोर मैदान में उतर कर ओक्टरलोनी के पीछे से चोट करना चाहता था। इसी समय नेपाल दरबार ने भी रणजीतसिंह को लिखा कि "अंग्रेजों के साथ मित्रता...के धोखे में न पड़िए। हमारे साथ भी उनकी मित्रता थी...। आप अपनी सेना लेकर पलासिया आ जायँ तो हम मलौन का गढ़ आपको दे देंगे। उसके बाद हरद्वार पर चढ़ाई...। लखनऊ के नवाब, मराठे और...रुहेले...आपके आने का समाचार पाते ही हम लोगों से आ मिलेंगे। ज्यों ही हम सब मिल जायेंगे त्यों ही हिन्दुस्तान को जीत लेना और शत्रु को निकाल भगाना अत्यन्त आसान हो जायगा।"

रणजीतसिंह पर न केवल इन अनुरोधों का कोई असर नहीं हुआ प्रत्युत वह नेपालियों के प्रत्येक प्रस्ताव की सूचना अंग्रेजों को देता रहा। इस बीच अंग्रेजों ने मुरादाबाद से कुमाऊँ पर भी चढ़ाई कर दी। वहाँ नेपाली सेना बहुत ही कम थी। ब्रह्मशाह चौतरिया ने प्यूठाना से आती कुमुक वहाँ रोक ली, पर फिर भी अलमोड़े को बचा न सका और २७ ४ १८१५ को उसे सौंप कर काली नदी के पूरब हट गया। इधर मलौन के पास दो चोटियाँ अंग्रेजों ने ले ली।

मई १८१५ में ऑक्टरलोनी ने मलौन पर गोलाबारी शुरू की। १५ ५ १८१५ को उसकी अमरसिंह के साथ यह सन्धि हुई कि सतलज से काली तक के सब नेपाली अधिकारी और सैनिक अपने परिवारों, सामान, शस्त्रास्त्र और झंडों के साथ काली के पूरब चले जायँगे। मलौन में तब २५० सैनिक बचे थे। अमरसिंह जब मलौनगढ़ से निकला तब उसके शत्रु यह देख कर दंग रह गये कि उसका निजी सामान कितना थोड़ा है।

रणजीतसिंह अमरसिंह के अनुरोधों पर सदा टालमटोल करता रहा था, पर अब उसने यह सुना कि नेपाली मलौन और जैथक छोड़ कर चले गये तो वह चिन्ता में पड़ गया। अपने सरदारों से उसने कहा, अंग्रेजों की हमसे मैत्री तो केवल रस्मी है, मैं सोचता था अंग्रेज कभी गड़बड़ करेंगे तो मैं गोरखों से मैत्री कर लूँगा, आवश्यकता होगी तो उन्हें बागड़ा दे दूँगा, पर अब तो वे चले ही गये। अब हाथ मलने से क्या होता था।

ब्रह्मशाह चौतरिया ने अलमोड़ा छोड़ा तो उसे इसकी आशंका थी कि नेपाल के लोग उसके समर्पण पर क्या कहेंगे और वहाँ उसपर कैसी बीतेगी। इसपर हेस्टिंग्स ने उसे उभाड़ा कि वह अंग्रेजों की सहायता से डोटी (काली के पूरब लगे प्रदेश) का राजा बन बैठे, पर ब्रह्मशाह ने उस प्रलोभन पर कान नहीं दिया। मई १८१५ के अन्त में मुजफ्फरपुर के उत्तर सुगौली गाँव में नेपाली दूतों से सन्धि की बात शुरू हुई। अंग्रेजों की मुख्य शर्तें ये थीं कि काली के पच्छिम के प्रदेश और तराई के मुख्य भाग नेपाल के अधीन न रहेंगे, सिक्किम पर नेपाल का आधिपत्य न रहेगा तथा काठमाडू में अंग्रेज रेजिडेंट रहेगा। लम्बी चर्चा के बाद नेपाल दरबार ने इन शर्तों को प्राय मान ली

लिया था कि दिसम्बर १८१५ में अमरसिंह थापा ने नेपाल पहुँच कर एक छोटी शर्त के विरुद्ध उमरावों को उभाड दिया। जिस तराई को अंग्रेज ले रहे थे उसमें कुछ जागीरें नेपालियों की थीं; अंग्रेजों ने उन जागीरदारों को दो लाख रु० वार्षिक देना तय किया था। अमरसिंह ने कहा इस ढंग से अंग्रेज हमारे देश के भीतर अपने खरीदे आदमी रख लेंगे, इसलिए रुपये के बदले वे तराई का वह अंश नेपाल को दें। सन्धि पर हस्ताक्षर न हो कर फिर युद्ध की तैयारी हुई।

इस बार अंग्रेजों ने सीधे नेपाल दून पर चढ़ने का यत्न किया (फरवरी १८१६)। औक्टरलोनी रक्सौल-आमलेखगंज वाले मुख्य रास्ते से मकवानपुर की ओर बढ़ा। उसके दाहिने तरफ एक सेना-दल बागमती की दून में तथा बायें तरफ एक दल बेतिया-रामनगर से चला। भिछाखोरी या आमलेखगंज के आगे हिमालय की बाहरी शृंखला के चूडियाचौकी या चुरे पहाड पर चढ़ने के सब रास्ते नेपालियों ने रोक रक्खे थे। पर एक मात्र सब से दुर्गम रास्ते पर उन्होंने ध्यान न दिया था। औक्टरलोनी किसी स्थानीय आदमी से उसका पता पा कर रातों रात चुरे घाटी पर चढ़ गया। "यदि उस घाटी के निकट पहाड पर २० आदमी भी होते तो वे बिना अपनी जान सकट में डाले (उसकी) समूची ब्रिगेड को नष्ट कर सकते थे।" यों धीरे-धीरे औक्टरलोनी मकवानपुर गढ़ी तक पहुँच गया। दूसरी तरफ बागमती से बढ़ने वाले दल ने हरिहरपुर गढ़ी ले ली। ३ मार्च १८१६ को सन्धिपत्र पर नेपाल दरबार ने अपनी मुहर लगा दी। पर नेपालियों की प्रतिरोध-भावना के बल पर भीमसेन थापा ने अंग्रेजों से सन्धि की वह शर्त बदलवा ली जिसपर अमरसिंह ने आपत्ति की थी।

इस सन्धि के कुछ दिन बाद ही अमरसिंह थापा ने प्राण त्याग दिये। उसी वर्ष राजा गीर्वाणयुद्धविक्रम की चेचक से मृत्यु हुई और उसका तीन बरस का बच्चा राजेन्द्रविक्रम गद्दी पर बैठा। राजशक्ति भीमसेन के हाथ में ही रही।

§१४. पेंढारी तथा तीसरा अंग्रेज़-मराठा युद्ध—दक्खिन की रियासतों में सेना के साथ अनियमित सवार रखने की प्रथा चली आती थी, जो शान्ति के समय खेती-बारी करते, परन्तु जिन्हें युद्ध के समय शत्रु के देश में पहुँचने पर वेतन के बजाय लूटने की इजाजत मिल जाती थी। इन्हें पेंढारी

कहलाते थे। शिन्दे और होल्कर वंशों की सेवा में रहने के अनुसार ये शिन्देशाही या होल्करशाही कहलाते थे। मालवा इनका केन्द्र था।

सन् १८०३ ई० की अपनी हारों के विषय में मराठों की यह धारणा थी कि युरोपी शैली की नकल करने से वे हारे। इसीसे मराठा राज्य पेंढारियों की वृद्धि से सन्तुष्ट थे। शायद वे उन्हें आगे चल कर अपनी सेवा में लेने की सोचते थे। सन् १८१४-१५ ई० में नेपालियों ने अपने दूत मराठा राज्यों में और बरमा तक में भी भेजे। नेपालियों की वीरता देख मराठों के भी हौसले बढ़े। १८१५ के शुरू में पूने से बालाजी कुंजर नामक दूत सब मराठा दरबारों में और नर्मदा के किनारे निमावर पर चीतू पेंढारी की छावनी में भी गया। पेंढारी नेताओं ने निश्चय किया कि वे अंग्रेजों और उनके मित्र निजाम† के राज्य पर छापे मारेंगे। सभी भारतीय राज्य अंग्रेजों से कुढ़ते थे। हेस्टिंग्स ने यह सम्भावना देखी कि यदि रणजीतसिंह सतलज पार कर आये और बरमा का राजा चटगाँव पर चढ़ाई कर दे तो मराठे राज्य भी उठ खड़े होंगे। पर भारतीय राजा ढिलमिल यकीन और पस्तहिम्मत थे। नेपालियों की तरह डट कर लड़ने को कोई तैयार न था।

दूसरी तरफ अंग्रेजों की तैयारी थी पेंढारियों के साथ साथ मराठा राज्यों की बची खुची शक्ति को भी कुचल देने की। एक तो, गायकवाड और पेशवा के राज्यों में अर्थात् गुजरात, महाराष्ट्र और बुन्देलखंड में सन् १८०३ से उनकी छावनियाँ पड़ी थीं। दूसरे, जेम्स टौड को राजस्थान में जो काम करने भेजा गया था [ऊपर § ८], वह उसने १८१५ तक पूरा कर लिया। उसका नक्शा तैयार हो गया और उसके षड्यन्त्र भी सफल हुए। टौड से पहले युरोपियों की राजस्थान के भू-अंकन की जानकारी बड़ी धुँधली थी। जैसा कि वारेन हेस्टिंग्स युग के रेनल के नक्शे [१०,५§४, नक्शा २५] को देखने से प्रकट होता है वे तब तक राजस्थान की नदियों को दखिनवाहिनी और

---

† निजामुलमुल्क [९,६§४] और निजामअली [१०,३§१] के उत्तराधिकारी बाद में सभी निजाम कहलाने लगे।

नर्मदा में मिलती समझते थे। तीसरे, युद्ध का आधार वह नक्शा जहाँ तैयार हुआ, वहाँ अंग्रेजों के कारिंदो द्वारा मचाई लूटमार से त्रस्त तथा टौड की लल्लो-चप्पो से पुचकारे हुए अभिमानी राजपूत राजाओं के दूत विदेशी वनियों की कंपनी के पास शरण-भिक्षा माँगने भी आ पहुँचे। चौथे, अंग्रेजों के शत्रु पेंढारियों के भी अनेक नेता अंग्रेजों के खरीदे हुए थे जिनका कार्य था पेंढारी दलों को एकमत न होने देना तथा उन्हें उभाड कर उनसे ऐसे काम कराना जिनसे उनकी बदनामी और हानि हो। अमीरखाँ [ऊपर §८] पेंढारी ही था।

सन् १८१५ के अन्त मे निजाम की आश्रित सेना के अंग्रेज अफसर ने शिन्देशाही पेंढारियो पर हमला किया। जवाब में पेंढारी निजाम राज्य पर टूट पडे और कृष्णा नदी के किनारे बढ़ते हुए "उत्तरी सरकारों" अर्थात् आन्ध्र तट के जिलो [१०,२§७] को लूटने लगे।

इधर इसी बीच रघुजी (२य) भोसले की मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी अप्पासाहेब भोसले ने अंग्रेजो से आश्रित सन्धि कर ली (१८१६ ई०)। नागपुर राज्य मे अंग्रेजी छावनियाँ पड जाने से शिन्दे और होल्कर के राज्य दक्खिन तरफ से भी घिर गये। शिन्दे पेशवा को फिर से उठाने की सोचता था, पर अब उन दोनो के बीच अंग्रेजो ने यह लोहे की दीवार खडी कर दी। पेशवा और भोसले के एक बार काबू आने के बाद से अंग्रेजों की नीति यह रही कि उन्हें और अधिक दबाया जाय, यहाँ तक कि वे खीझ कर मुकाबले को उठें, और तब उन्हे कुचल दिया जाय।

गायकवाड को पेशवा की बडी रकम देनी थी। उसके बारे में समझौता कराने को अंग्रेजों का एक पिछलग्गू गंगाधर शास्त्री पूना भेजा गया। इस आदमी का बर्ताव बड़ा गुस्ताखी का और चिढ़ाने वाला था जैसा कि विदेशियों के सहारे इतराने वाले आदमियो का प्रायः हुआ करता है। अपने उद्धत बर्त्ताव की बदौलत वह पंढरपुर में मारा गया। इसपर रेजिडेंट एल्फिन्स्टन ने पेशवा को एक नई सन्धि करने को बाधित किया (१३-६-१८१७), जिससे पेशवा ने बहुत से गढ़ और प्रदेश दिये तथा गुजरात पर कुल अधिकार छोड दिया। इसके बाद उससे कहा गया कि एक सेना खड़ी करके पेंढारियों के दमन के लिए

अंग्रेजों को दे। तब उसने जाना कि यों उसकी सेना भी उससे ले लेने के बाद उससे फिर किसी "सन्धि" पर हस्ताक्षर कराये जायँगे।

पेशवा के बाद शिन्दे की बारी आई। अंग्रेजी सरकार ने उसे अपने तई को लूटने वाले पैंडारियों की रोकथाम करने को न कहा, प्रत्युत स्वयं उसके राज्य में घुस कर उनके दमन का निश्चय किया। ३० हजार पैंडारियों को दबाने के बहाने १ लाख १४ हजार अंग्रेजी सेना मैदान में उतारी गई। उत्तरी सेना ने हेस्टिंग्स के नेतृत्व में राजस्थान बुंदेलखंड के उत्तरी छोर पर रेवाड़ी, आगरा, कालपी और कालंजर पर मोर्चे लिये। दक्खिनी सेना दाहोद (गुजरात) से खानदेश होते हुए बराड़ तक तैनात थी। उसकी दुहरी पाँत थी, एक उत्तर मुँह किये आगे बढ़ती और दूसरी दक्खिन मुँह किये पेशवा या भोंसले को शिन्दे होल्कर की सेनाओं से मिलने से रोकती।

अंग्रेजों की इस योजना और मराठों की मनोवृत्ति को देखते हुए कहना पड़ता है कि यह युद्ध नहीं, बड़ा शिकार था। डेढ़ मास के भीतर शिन्दे, होल्कर, पेशवा और भोंसले चारों की शक्ति कुचल दी गई।

हेस्टिंग्स के शब्दों में दौलतराव "शिन्दे देशी राजाओं में सबसे अधिक प्रबल था। उसकी सेना पुराने सधे हुए सिपाहियों की थी, तोपें बहुत अच्छी और तोपची होशियार थे।" यह होते हुए भी १८१४–१५ में जब नेपाली स्वयं युद्ध न करते हुए उसे सहयोग के लिए पुकार रहे थे और उसके लिए भी अपने को १८०३ वाले बन्धनों से मुक्त कर लेने का दूसरा अवसर था, तब वह बैठा तमाशा देखता रहा। पर अब जब अंग्रेजों का नया फन्दा उसे अपनी गर्दन पर आता दिखाई दिया तब १८१७ के मध्य में उसने नेपाल को भारत के स्वतन्त्र राजाओं के साथ मिल कर लड़ने को प्रोत्साहित करते हुए पत्र लिखा। वह पत्र अंग्रेजों के हाथ पड़ गया।

ग्वालियर के २० मील दक्खिन पच्छम से उसके पूरब की छोटी नदी सिंध तक एक पहाड़ी इलाका है। हेस्टिंग्स ने चारों से घेर कर उसके सारे सिपाहियों के संग घाटों को एकाएक रोक लिया। शिन्दे घिर गया। अब या तो वह डट कर लड़ने को तैयार होता और या यदि मानता तो सेना छोड़ता और

खजाने को छोड़ किसी पगडंडी से ही भाग सकता था । इस दशा में हेस्टिंग्स ने उससे नई सन्धि पर हस्ताक्षर कराये (५-११-१८१७)। शिन्दे ने अजमेर दे दिया और बाकी राजस्थान पर अपना आधिपत्य छोड़ दिया। १६ राजपूत राज्य कम्पनी की रक्षा में ले लिये गये। इससे अधिक हेस्टिंग्स उसे नहीं दबा सका। पहले युद्ध में उसने आगरा-दिल्ली प्रदेश दिया था, इसमें राजस्थान दे दिया, पर अपने बाकी राज्य में वह स्वतन्त्र रहा। उसकी स्वतन्त्र सेना भी बनी रही। न तो उसने अंग्रेजो की आश्रित सेना अपने यहाँ रक्खी और न विदेशों से सम्बन्ध रखने की अपनी स्वतन्त्रता उन्हें सौंपी।

उधर एल्फिन्स्टन ने अपनी टुकडी को पूने से ४ मील, खडकी, हटा लिया, और मुम्बई तथा सिरूर छावनी (भीमा में मिलने वाली घोड नदी पर, पूने से अहमदनगर की राह मे) से फौज मँगाई । पेशवा के सेनापति बापू गोखले ने उस पर चढ़ाई की । ठीक जिस जिन शिन्दे ने सन्धि पर हस्ताक्षर किये उसी दिन खडकी पर मराठो की हार हुई, और पेशवा पूना छोड सेना के साथ भाग निकला । अंग्रेज़ों के साथ उसकी कई जगह मुठभेड़ें हुईं, जिनमें कोरेगाँव और आष्टी की लडाइयाँ मुख्य थीं। महाराष्ट्र की जनता के भी उभडने का डर था, इसलिए एल्फिन्स्टन ने बालाजी नातू नामक गद्दार द्वारा शिवाजी के वंशज सातारा के राजा को हाथ मे किया, और उससे मराठो के नाम एक घोषणा निकलवाई कि पेशवा का साथ न दिया जाय।

नागपुर मे भी तभी वैसी ही घटनाएँ हुईं । अप्पासाहब आश्रित सन्धि के शिकंजे मे परेशान था; उसने उसकी शर्तो को कुछ नरम करने की प्रार्थना की । इसपर रेजिडेंट ने पड़ोस की छावनियों से सेना बुला ली, और शहर से सटी हुई सीताबल्डी की टेकरी पर मोर्चा लिया। राजा की सेना यह देख कर भडकी और अंग्रेजी फौज पर कुछ गोलियाँ चल गईं। अंग्रेजो ने इसपर राजा को हुक्म दिया कि अपनी सब युद्ध-सामग्री सौप और सेना तोड़ कर हमारी छावनी में चले आओ । अप्पासाहब यह मान कर कैदी बन गया। ३०-१२-१८१७ तक सेना ने भी समर्पण कर दिया । तब राजा से कहा गया कि अपने सब गढ़ तथा सागर और नर्मदा के प्रदेश (आधुनिक मध्य प्रदेश के हिन्दी-

भारी अंश) सौंप दे, तथा गवीलगढ़, सरगुजा आदि पर आधिपत्य छोड़ दे। राजा ने यह भी मान लिया, पर अब भीतर भीतर मुकाबले की तैयारी करने लगा। तब १५ मार्च को उसे कैद कर प्रयाग को रवाना किया गया। परन्तु वह रास्ते से भाग गया।

होल्कर के राज्य में अंग्रेज़ों ने अब अमीरखाँ को खुल्लमखुल्ला मिला कर उसे टोंक की नवाबी दे दी। तब उस राज्य की नायक हीन सेना पर चढ़ाई की। उज्जैन के उत्तर शिप्रा के तट पर महीदपुर पर युद्ध हुआ (२० १२ १८१७)। तोपची दल के नेता रोशन बेग ने वीरता से मुकाबला किया, पर अमीरखाँ का दामाद अब्दुलगफूर तभी शत्रु से जा मिला। यों अंग्रेज़ों की जीत हुई। अब्दुलगफूर को जावरा की रियासत दी गई। मन्दसोर की सन्धि से होल्कर राज्य अंग्रेज़ों का रक्षित बन गया और उसने भी राजस्थान पर सब दावे छोड़ दिये।

इस बीच पिंडारी लश्करों (दलों) से भी युद्ध जारी था। उन्होंने पहले अंग्रेज़ी घेरा चीर कर उत्तर की ओर निकलना चाहा, पर ग्वालियर से पीछे धकेले गये, और फिर दक्खिन और पूरब से घेर लिये गये। इस दशा में भी उनकी शक्ति तोड़ना सुगम न जान पड़ा, क्योंकि वे फुर्तीले सवार थे और छापे मारना ही उनका काम था। अंग्रेज़ों ने तब उनमें से बहुतों को मालवे में जागीरें दे कर फोड़ लिया। बाकी पिंडारी भी चाहते तो चुपचाप किसानों में मिल सकते थे। तो भी वे मुसीबतों, खतरों, भूख और मौत की परवा न करते हुए अन्त तक लड़ते रहे। जनता की सहानुभूति उनके साथ थी और उनके बारे में कोई सूचना अंग्रेज़ों को मुश्किल से मिल पाती थी।

अप्पासाहब ने भाग कर महादेव पहाड़ियों में शरण ली। उसने चौरागढ़ (अंग्रेज़ों ने पीछे छीन लिया, नागपुर और छत्तीसगढ़ में अपना संघटन फैलाया, और सिन्दे की सरपरस्ती में बुरहानपुर में फौज भरती करना शुरू किया। असीरगढ़ दुर्ग जसवन्तराव लाड नामक सरदार के हाथ में था जो समूचे महाराष्ट्र को स्वतन्त्रता-युद्ध के लिए उभाड़ना चाहता और स्वयं शहीद होने को उत्सुक था। उसने पेशवा को निमन्त्रण दिया। पेशवा के पास अभी ११ हजार सेना बाकी थी। अंग्रेज़ों ने देखा उसका असीरगढ़ पहुँचना खतरनाक होगा, और

यदि वह युद्ध में मारा जाय या कैद हो जाय तो भी समूचा महाराष्ट्र भड़क उठेगा। इस दशा में उसे खरीद लेना ही उचित समझा गया। ८ लाख रुपया वार्षिक पेंशन पाने की शर्त पर उसने अपने को सौंप दिया (१८-६-१८१८)। तब उसे बिठूर (कानपुर के पास) भेज दिया गया। उसके राज्य का कुछ अंश सातारा के राजा को दे कर बाकी अंग्रेजों ने ले लिया।

अक्टूबर में एक अंग्रेजी सेना महादेव पहाड़ियों में घुसी। अप्पासाहब तब चीतू पेंढारी की मदद से असीरगढ़ पहुँच गया। स्वयं चीतू गढ़ तक न पहुँच कर जंगल में भागा जहाँ वह एक बाघ के मुँह में पड़ गया। ७ अप्रैल १८१९ को असीरगढ़ भी लिया गया, किन्तु अप्पासाहब निकल भागा था। वह इसके बाद क्रमशः लाहौर, मंडी और जोधपुर में शरणागत रहा।

उक्त घटनाओं से प्रकट है कि मराठे अंग्रेजों की गुलामी से असन्तुष्ट होते हुए भी कितने किंकर्त्तव्यविमूढ़ और पस्त-हिम्मत थे। इस युद्ध में भाग लेने वाले एक अंग्रेज अफसर ने लिखा—"अपने शत्रुओं में भी इतनी क्षुद्र-हृदयता देख कर निराशता नहीं रोकी जाती। ऐसे तीस गढ़ कुछ सप्ताहों में लिये गये, जिनमें से प्रत्येक शिवाजी जैसे स्वामी के रहते भारत की समूची अंग्रेजी सेना को रोके रख सकता था, जिन्हे अभेद्य बनाने के लिए दृढ़-संकल्प रक्षकों के सिवाय किसी चीज की जरूरत न थी।...यह समूचा देश, जो प्राकृतिक नाके-बन्दी की दृष्टि से शायद ससार में सबसे विकट है, जिसे प्रकृति ने मानो स्वा-धीनता के सफल युद्ध लड़े जाने के लिए ही बनाया है,...जिसमे अनसधे अर्धसज्जित सिपाही अत्यन्त चतुर अनुभवी सैनिकों को रोक सकते थे,...कुछ हफ्तों मे ही...हमारे हाथ आ गया।"

सन् १८१६ मे कच्छ का राजा भी अंग्रेजों की रक्षा में आ गया।

§१५. अब्दाली साम्राज्य का अन्त, सिक्ख राज्य की बढ़ती—सन् १८०५ मे रणजीतसिंह केवल एक सरदार था, पर १८०६ ई० तक राजा बन चुका था। सतलज पार की सब मिसलें तब तक उसके राज्य मे मिल चुकी थीं। पर राजा बन जाने पर भी वह अपने को सिक्ख जनता का अधिनायक मानता और प्रत्येक राजकीय काम 'खालसा' (सिक्ख जनता) के नाम पर ही

करता था। उसकी प्रजा सुशासित और खुशहाल थी। पंजाब के किसान और व्यापारी मिसलों के शासन में भी खुशहाल थे। पर मिसलों के सरदारों की पारम्परिक छीनाझपटी के कारण जो अव्यवस्था रहती थी, उसे भी अब रणजीतसिंह ने हटा दिया।

सन् १८०६ तक सब सिक्ख सेना सवारों की ही थी। अठारहवीं सदी में सिक्ख सवारों ने धनुष बाण और भाले के बजाय बन्दूक अपना ली थी, और घोड़े पर चढ़े-चढ़े पथरकला चलाने में वे बड़े होशियार गिने जाते थे। सन् १८०५ में लेक के पंजाब आने पर रणजीत भेस बदल कर उसकी छावनी में यह देखने गया था कि शिन्दे और होल्कर को हरा देने वाले अंग्रेजों की व्यूह-रचना कैसी है। १८०९ ई० में उसने मेटकाफ के अंगरक्षकों की सुशृंखल गति विधि देख कर प्रशंसा की। तब से उसने पंजाब में भी वैसी पंक्तिबद्ध पदाति सेना खड़ी करने का निश्चय किया। भीमसेन थापा का ध्यान उससे भी पहले इस ओर जा चुका था, और १८१४-१५ ई० के युद्ध में रणजीत ने नेपालियों को अंग्रेजों का सफल मुकाबला करते देखा तो उसका पंक्तिबद्ध पदाति सेना में विश्वास और भी दृढ़ हो गया। अंग्रेज नेपाल युद्ध के बाद अमरसिंह थापा का बेटा भूपाल रणजीत की सेवा में आ गया और उसकी मार्फत नेपाली बड़ी संख्या में पंजाब की सेना में भरती होने लगे। रणजीत ने उनकी अलग पलटन बना ली। साथ ही उसने अंग्रेजों की सेना से सीख कर निकले हुए लोगों को सेवा में ले कर पंजाबियों की भी नियमित सेना तैयार करनी शुरू की।

राजपूत, मराठे और पठान योद्धाओं को पाँत में खड़े हो कर आदेश के अनुसार लड़ने में हेठी मालूम होती थी। सिक्खों में वह भाव बहुत कम था, और जो था भी, उसे रणजीत के प्रोत्साहन ने निकाल दिया। वह पैदल सेना को अच्छा वेतन देता, उसकी कवायद और साज सामान पर पूरा ध्यान रखता और बीच बीच में खुद वर्दी पहन कर कवायद में शामिल होता। तोप का काम सिक्खों ने और भी उत्सुकता से सीखा। पंजाबी सेना इस प्रकार प्राय तैयार हो चुकी थी, जब सन् १८२२ में फ्रांसीसी सेनापति वेंतुरा और अलार ईरान के रास्ते लाहौर आये और सेवा में लिये गये। उन्होंने उस सेना का नियन्त्रण और पूर्ण कर दिया।

इस बीच रणजीत पच्छिमी पंजाब की तरफ क्रमशः बढ़ रहा था। सन् १८१६ में शाह शुजा उसकी शरण से अंग्रेजों की शरण में लुधियाना भाग आया, और वे उसे ५० हजार रुपया वार्षिक वृत्ति देने लगे। सन् १८१८ में शाह महमूद के बेटे ने उसके वजीर फतहखाँ को मार डाला। फतहखाँ का एक भाई मुहम्मद-अज़ीम कश्मीर का नाजिम था। उसने काबुल पर चढ़ाई की। शाह महमूद भाग कर हरात चला गया। तब से अब्दाली वंश के पास केवल हरात बचा रहा, और कश्मीर, पेशावर, काबुल, गजनी तथा कन्दहार पर मुहम्मद-अज़ीम अपने भाइयों की मदद से राज करने लगा। यों १८१८ ई० में मराठा और अब्दाली साम्राज्य साथ-साथ समाप्त हुए।

इस बीच रणजीतसिंह के सेनापति दीवानचन्द ने मुलतान जीत लिया था, और रणजीत ने अटक पार कर पेशावर के पास खैराबाद में छावनी डाल दी थी। अगले तीन बरस मे कश्मीर, डेरा-गाजीखाँ और डेरा-इस्माइलखाँ भी जीते गये। सन् १८२३ में मुहम्मद-अजीम पेशावर पर आया। नौशेरा पर काबुल नदी के दक्खिन रणजीतसिंह ने उसका सामना किया। नदी के उत्तर तरफ के पठान भी जिहाद की घोषणा कर पहाड़ो पर आ जुटे। रणजीत ने अपनी सेना का एक अंश मुहम्मद-अजीम के मुकाबले को छोड़ स्वयं काबुल नदी पार की। पंजाबी रिसाले का पठानों पर हमला विफल हुआ। तब पठानो ने हमला कर पंजाबी पैदल पाँतो को भी गड़बड़ा दिया। लेकिन नेपाली सैनिको की पाँतें उस हमले के बीच चट्टान की तरह डटी रहीं। नदी पार से तोपों की मार ने भी पठानों की बाढ़ को रोका। इस बीच मे पिछली पंजाबी पाँतें आगे बढ़ आईं और रिसाले ने फिर हमला किया। रणजीत की पूरी जीत हुई (१४-३-१८२३ ई०)। दूसरे दिन पठान फिर इकट्ठे हुए, लेकिन मुहम्मद-अजीम मैदान से भाग गया था। तब खैबर दर्रे तक रणजीतसिंह ने अधिकार कर लिया। पेशावर में उसने मुहम्मद-अजीम के एक भाई को अपना सामन्त नियत किया।

इसके बाद मुहम्मद-अजीम चल बसा और उसका भाई दोस्त-मुहम्मद काबुल पर राज करने लगा। कन्दहार में भी उसके भाइयों का राज था। काबुल और कन्दहार ये दो ही प्रदेश अब इन भाइयों के स्वतन्त्र राज्य में रहे।

सन् १८१८ ई० में फतहखाँ के मारे जाने पर अंग्रेजों ने शाह शुजा को भी अफगानिस्तान पर चढ़ाई करने जाने दिया था। लुधियाने से बहावलपुर सक्खर के रास्ते वह शिकारपुर तक बढ़ा और वहाँ से हार कर लौटा था।
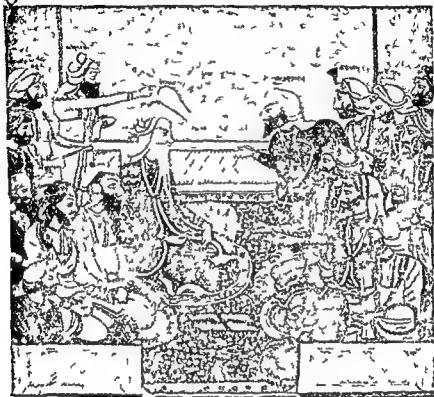
महाराजा रणजीतसिंह दरबार में
महाराजा के दाहिने बैठे (१) खड्गसिंह (२) नौनिहालसिंह, सामने बैठे (१) हीरासिंह (२) शेरसिंह (३) गुलाबसिंह (४) प्रतापसिंह, सामने खड़े (१) ध्यानसिंह (२) सुचेतसिंह।
समकालीन पंजाबी चित्र, पहाड़ी कलम।
[प्रिंस आव वेल्स म्यू०, मुम्बई के न्यासपालों के सौजन्य से]

§१६ **पहला आंग्ल-बरमा युद्ध**—हेस्टिंग्स ने १८२३ ई० तक भारत का शासन किया। १८२३ से २८ ई० तक ऐम्हर्स्ट गवर्नर-जनरल रहा। उसके समय में अंग्रेजों ने भारत की भाड़ैत सेना से बरमा पर पहली चढ़ाई कर

युद्ध किया तथा भरतपुर लिया।

बरमी लोगों का केन्द्र मध्य इरावनी काँठे में है। वे पहले पगू के तलाई राज्य के अधीन थे। तलाई उस आग्नेय नृवंश [१,२§४] में से हैं जो बरमियों और स्यामियों के आने से पहले समूचे परले हिन्द में फैला हुआ था [५,४§६; ८,३§२]। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में बरमी उठे और उन्होंने पगू, स्याम का तनेतइ (तनेसरीम) प्रान्त, अराकान राज्य तथा उत्तरी बरमा जीत लिये। कुछ विद्रोही अराकानी भाग कर चटगाँव मे आ बसे। मिंटो और हेस्टिंग्स के शासनकाल मे ये लोग बराबर युरोपियो के नेतृत्व में अराकान पर छापे मारते और चटगाँव में शरण लेते थे। ये अंग्रेजों के पेंढारी थे। सन् १८२२ तक मणिपुर और असम जीत कर बरमी लोग सिलहट के पूरब के कछार राज्य को जीतने लगे। तब १८२४ में अंग्रेजी सेना कछार और असम में घुसी। साथ ही कलकत्ते और मद्रास से एक अंग्रेजी फौज ने रंगून पर भी चढ़ाई की। बरमियो ने शहर खाली कर दिया था। अंग्रेजों ने उसे ले लिया, पर रसद और वाहन न मिलने से तथा बरमियो के छापों के कारण आगे न बढ़ सके।

इधर बरमी सेनापति महाबन्धुल चटगाँव जिले में घुसा और वहाँ एक अंग्रेज़ी सेना को कुचल कर आगे बढ़ने लगा। ढाके और कलकत्ते में तब आतंक छा गया। किन्तु रंगून का लिया जाना सुन बन्धुल उधर लौट पड़ा। "ऐसे सेनापति से विशेष डरने की जरूरत न थी जिसने (शत्रु की) ऐसी कठिन स्थिति से लाभ उठाने की न सोची।"

कछार की तरफ से अंग्रेज़ बरमा में न घुस सके, किन्तु उन्होंने समुद्र-तट का अरक्षित तनेतइ (तनेसरीम) प्रान्त दखल कर लिया, जहाँ उन्हें रसद-सामान काफी मिल गया। १ अप्रैल १८२५ ई० को दोनाबू की लड़ाई में महाबन्धुल मारा गया; उसके बाद अंग्रेज़ प्रोम तक जा पहुँचे। जाड़े मे अंग्रेज़ सेनापति के राजधानी आवा से चौथे पड़ाव यांडबो पहुँच जाने पर सन्धि हुई (२-३-१८२६ ई०)। बरमियों ने असम, कछार, अराकान और तनेतई (तनेसरीम) प्रान्त सौंप दिये।

§१७. बारकपुर का कत्ले-आम—बंगाल में अंग्रेज़ो के भाड़ैत

भारतीय सिपाहियों को उन दिनों बारकें न मिलती थीं, अपने खर्च से झोंपड़े बनाने पड़ते थे। युद्ध भूमि तक अपना सामान ले जाने का प्रबन्ध भी स्वयं करना पड़ता था। वेतन ५॥) मासिक ही था। जब तक अंग्रेजी राज्य कर्मनाशा नदी (बिहार की पच्छिमी सीमा) तक था, वे इसमें कठिनाई न मानते थे। अब बारकपुर (कलकत्ते के पास) की रेजिमेंट को बरमा युद्ध के प्रसंग में रंगून जाने का आदेश हुआ तो सैनिकों ने पहले तो समुद्र पार जाने से इनकार किया, पीछे कहा कि दूना भत्ता मिलना चाहिए। अंग्रेज प्रधान सेनापति ("जंगी लाट") ने परेड में देशी रेजिमेंट को गोरी फौज से घिरवा कर हुक्म दिया कि कूच को तैयार हो या शस्त्र रख दो। उनसे यह भी नहीं कहा कि तोपों में अंगूरी छर्रा भरा है और वे छुटने को तैयार हैं। एक बार इनकार करते ही उन्हें तोपों से उड़ा दिया गया (१-११ १८२४ ई०)।

§१८. भरतपुर का पतन—भरतपुर के गढ़ को अंग्रेज सारी शक्ति लगा कर भी न ले सके थे, इससे न केवल भारत भर के प्रत्युत पड़ोसी देशों के भी लोगों का ढारस बंधा था। १८१४ में जब हेस्टिंग्स की धमकी से नेपाल के उमराव डर रहे थे तब भीमसेन थापा ने उन्हें यह कह कर प्रोत्साहित किया कि मनुष्य का बनाया छोटा सा भरतपुर गढ़ था, अंग्रेज उसे भी न जीत सके, हमारे पहाड़ों को तो भगवान् ने अपने हाथों बनाया है। अमरसिंह ने नेपाल दरबार को जो पत्र लिखा उसमें भी भरतपुर की चर्चा थी। अंग्रेजों को अपनी धाक बनाये रखने के लिए भरतपुर को जीतना आवश्यक लगता था। १८२५ में वहाँ का राजा रणजीतसिंह मरा और उसके उत्तराधिकार के दो दावेदार आपस में झगड़ने लगे। उनमें से किसी ने अंग्रेजों को बुलाया नहीं, फिर भी उन्होंने भरतपुर को जा घेरा और डेढ़ मास के कड़े घेरे के बाद गढ़ को ले लिया (१८-१-१८२६)। इस घटना का प्रभाव बरमा युद्ध पर भी हुआ, आवा के राजा ने भरतपुर के पतन का समाचार सुना तो संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। अंग्रेजों के भरतपुर ले लेने से भारत के मुख्य भाग पर उनका निर्विवाद आधिपत्य स्थापित हो गया।

परिशिष्ट ६

बलभद्र की समाध

नेपाली लोग छावनी को खलगा कहते हैं। नालापानी के पहाड़ पर उनका खलंगा था जिसे अंग्रेजों ने उस पहाड़ का नाम समझा। वह शब्द अंग्रेजी से हो कर हिन्दी मे आते आते कलुंगर बन गया। देहरादून में उस पहाड़ के सामने रिस्पना नदी के बीच एक एकान्त टापू पर जितेश्वी और बलभद्र की स्मारक दो सीधी-साधी समाधें अंग्रेजों ने साथ-साथ खड़ी कीं, जिनका चित्र सामने दिया गया है।

दक्खिन तरफ की समाध के पूरब ओर यह लेख खुदा है—

THIS IS INSCRIBED
AS A TRIBUTE OF RESPECT
FOR OUR GALLANT ADVERSARY
BULBUDDER
COMMANDER OF THE FORT
AND HIS BRAVE GOORKHAS
WHO WERE AFTERWARDS
WHILE IN THE SERVICE
OF RUNJEET SINGH
SHOT DOWN IN THEIR RANKS
TO THE LAST MAN
BY AFGHAN ARTILLERY

अर्थात्—यह लेख हमारे वीर प्रतिद्वन्द्वी गढ़ के नायक बलभद्र और उसके

६. नेपाल और अंग्रेजों के बीच १८०१ मे व्यापारिक सन्धि का प्रस्ताव किन दशाओं में हुआ ? वह प्रस्ताव सफल हुआ या विफल ? क्यों और कैसे ?

७. दूसरे और तीसरे अंग्रेज़-मराठा युद्ध के बीच मराठा साम्राज्य की भीतरी दशा कैसी रही ? कारण-सहित स्पष्ट कीजिए।

८. रणजीतसिंह और अंग्रेजों के बीच अप्रैल १८०९ में अमृतसर में जो सन्धि हुई उसका मुख्य अभिप्राय क्या था ? किन दशाओं मे कैसे वह सन्धि हुई ?

९. रणजीतसिंह ने (अ) कोट-कांगड़ा (इ) कोहेनूर हीरा (उ) अटक का किला और (ऋ) पेशावर कैसे पाया ?

१०. नैपोलियन की भारत पर चढ़ाई की आशंका कब कैसे उपस्थित हुई ? और कैसे दूर हुई ? अंग्रेज़ों ने नैपोलियन के मुकाबले के लिए भारतीय सेना का कब कहाँ उपयोग किया ?

११. नेपाल और अंग्रेज़ों के बीच युद्ध क्यों हुआ ? दोनों में विवाद किस बात पर था ? उस विवाद का शान्ति से निपटारा क्यों न हो सका ?

१२. नालापानी की लडाई का विवरण लिखिए।

१३. अंग्रेज़-नेपाल युद्ध की मुख्य घटनाओं का विवरण दीजिए।

१४. अमरसिंह थापा ने (अ) मार्च १८१५ मे नेपाल दरबार को अंग्रेज़ों से सन्धि-प्रार्थना न करने की सलाह क्यों दी ? (इ) दिसम्बर १८१५ मे प्रस्तावित अंग्रेज़-नेपाल सन्धि के किस अंश पर क्या आपत्ति की ?

१५. सन् १८०१ से १८१५ तक अंग्रेज़ों ने नेपाल के किस किस राज्याधिकारी को किस किस दशा में घूस दे कर खरीदने का यत्न किया ? फल क्या हुआ ? इसे देखते आप उन्नीसवीं शताब्दी आरम्भ के नेपाली चरित्र के बारे मे क्या परिणाम निकालते हैं ? और अंग्रेजी राजव्यवहार (डिप्लोमेसी) के बारे में ?

१६. "अंग्रेज़ों की इस योजना और मराठों की मनोवृत्ति को देखते हुए कहना पड़ता है कि यह युद्ध नहीं, बड़ा शिकार था।" तीसरे अंग्रेज़-मराठा युद्ध के विषय मे यह बात क्यों कही गई है ? विवरण दे कर स्पष्ट कीजिए।

१७. महादजी शिन्दे सन् १७९२ मे दिल्ली से पूना क्या सन्देश ले कर आया था ? १७९५ से १८१८ ई० तक की घटनाओं का क्रमिक निदर्शन कर बताइए कि उस सन्देश के आदर्श के अनुसार मराठे कब कब अपना कर्त्तव्य करने से चूक गये ? और कब कब उन्होंने कर्त्तव्य से ठीक उलटा आचरण किया ?

१८. बारकपुर के कत्लेआम (१८२४) से अंग्रेज़ों की भाड़ैत भारतीय सेना की आर्थिक मानसिक स्थिति पर क्या प्रकाश पडता है ?

१९. ऐतिहासिक यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि अमरसिंह थापा का इतिहास में वही स्थान है जो मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह का। किन बातों में दोनों की समानता है? और किन बातों में अमरसिंह की तुलना महाराणा साँगा और महाराणा कुम्भा से की जा सकती है?

२०. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए (१) जमानशाह (२) राजराजेश्वरी (३) अमीरखाँ (४) मौनसन (५) कृष्णाकुमारी (६) १८१४-१६ के युद्ध में नेपालियों के गढ़ और सरदार (७) जेम्स टौड (८) रणजीतसिंह की सेना (९) महाबन्धुल (१०) नौशेरा की लड़ाई, मार्च १८२३ (११) भरतपुर गढ़ १८०५, १८२५-२६ (१२) रणजीतसिंह और नेपाली।

अध्याय २

अंग्रेज़ों का कृषिभूमि का बन्दोबस्त और शासन का ढाँचा

(१७६६–१८३६ ई०)

§१. ज़मींदारी, रैयतवारी और महालवारी बन्दोबस्त— क्लाइव और वारन हेस्टिंग्स के पहले विजयों के बाद जब उनके सामने देश के शासन और ज़मीन के बन्दोबस्त के प्रश्न आये, उन्हें कोई पद्धति न सूझ पड़ी, और वे साल-ब-साल मालगुज़ारी को नीलाम करते रहे। कौर्नवालिस ने बंगाल, बिहार और बनारस में ज़मीन का स्थायी बन्दोबस्त किया और एक शासन का ढाँचा खड़ा किया। आन्ध्र देश के "उत्तरी सरकारों" (तट के ज़िलों) में तब भी पुराने तरीके से मालगुज़ारी नीलाम होती रही।

सन् १७९२ ई० में कौर्नवालिस को टीपू से मलबार और बारामहाल (सेलम, कृष्णगिरि) मिले। बारामहाल का बन्दोबस्त एक फ़ौजी अफ़सर को सौंपा गया। टौमस मुनरो उसका सहायक था। वेल्ज़ली के समय टीपू के राज्य में से कनड़ तट कोयम्बटूर और नीलगिरि कम्पनी ने ले लिये। निज़ाम को तुंगभद्रा के दक्खिन के बेल्लारि, अनन्तपुर, कड़प्पा ज़िले मिले, जो उसने अंग्रेज़ों को दे दिये। फिर तंजौर और आरकाट सरकार दख़ल किये गये। इन इलाक़ों में से अधिकांश का बन्दोबस्त टौमस मुनरो ने ही किया। बाद में मद्रास सरकार

के शासन का संघटन उसी को सौंपा गया, और सन् १८२० से १८२७ तक वह मद्रास का गवर्नर रहा।

वेल्ज़ली के अधीन काम सीखने वाले नवयुवकों में मौंटस्टुअर्ट एल्फिन्स्टन, जौन मालकम और चार्ल्स मेटकाफ थे। इनके कार्यक्षेत्र क्रमशः महाराष्ट्र, मालवा और दिल्ली रहे।

एल्फिन्स्टन सन् १८१६ से १८२७ तक मुम्बई का गवर्नर रहा; उसके बाद उसी पद पर मालकम ने काम किया। वेल्ज़ली ने अवध के नवाब से इलाहाबाद, फर्रुखाबाद और रुहेलखंड के इलाके लिये, तथा इटावे से पच्छिम के जमना तट के ज़िले शिन्दे से जीते। पहले इनका शासन बंगाल के अधीन रहा। १८३४ ई० से आगरे का अलग प्रान्त बना तो मेटकाफ उसका पहला गवर्नर नियत किया गया।

विलियम बैंटिंक सन् १८०३ से १८०७ तक मद्रास का गवर्नर था। वेल्लूर में सिपाहियों का एक बलवा होने पर उसे पदच्युत किया गया। सन् १८२८ में उसे भारत का गवर्नर-जनरल बना कर भेजा गया। उसके बाद एक बरस (१८३५-३६ ई०) मेटकाफ उस पद पर रहा। टौमस मुनरो ने मद्रास में जिस शासन-योजना का विकास किया, प्रायः उसी का अनुसरण एल्फिन्स्टन ने मुम्बई में किया, और फिर उन दोनों की नीति का बैंटिंक ने समूचे भारत पर प्रयोग किया।

बारामहाल का मालगुजारी-बन्दोबस्त करते समय मुनरो ने यह देखा कि वहाँ ज़मींदार नहीं हैं। उसने वहाँ सीधा किसानों से बन्दोबस्त किया। तब से उसका झुकाव रैयतवारी अर्थात् किसानों से सीधा बन्दोबस्त करने की तरफ हो गया।

कम्पनी हर इलाके को अधिक से अधिक दुहना चाहती थी। मालगुजारी जितनी बढ़ सके बढ़ाई जाती, और उसे सख्ती से वसूल किया जाता। मलबार में अंग्रेज़ अफसरों द्वारा ऐसा किये जाने पर वहाँ के 'राजाओं' और नायर सरदारों ने विद्रोह किया। उस विद्रोह को कड़ाई से कुचला गया। यों धीरे-धीरे मलबार से ज़मींदार प्रायः लुप्त हो गये।

तांजोर के किसान अपने मुखियों द्वारा राजा को मालगुजारी दिया करते थे। ये मुखिया पट्टकदार कहलाते थे और धीरे-धीरे जमींदार बनते जाते थे। अंग्रेज़ों ने सीधे किसानों से बन्दोबस्त किया जिससे पट्टकदारों की सफाई हो गई।

आरकाट के इलाकों में अनेक छोटे सरदार थे। उनकी जागीरें पालयम और वे पालयगार कहलाते थे। ये पुराने समयों के गाँवों के मुखियों या राज्याधिकारियों के वंशज थे जो नवाब के अनिच्छुक सामन्त बन गये थे। अनेक राज-विप्लवों के बीच यही देश के वास्तविक शासक रहे थे। इनकी सामरिक शक्ति भी काफी थी। नवाब मुहम्मदअली ने इनके दमन के लिए अनेक बार अंग्रेज़ों से मदद ली। अंग्रेज़ों को भी इन्हें कुचल देना अभीष्ट था। सन् १७६६-१८०० ई० में इनकी अपने-अपने गाँवों से बाहर की जमीनें जब्त करके बाकी जमीनों पर एकाएक ११७ फी सदी मालगुजारी बढा दी गई। इस पर इन्होंने विद्रोह किया तो इनकी जागीरें जब्त की गईं और बहुतों को फाँसी चढ़ा दिया गया। मुनरो ने लिखा—"कोई आवारा राजा सिर उठायेगा तो मैं उसे ठीक कर दूँगा।" सन् १८०२-३ में बचे-खुचे पालयगारों के साथ स्थायी जमींदारी बन्दोबस्त और बाकी इलाकों में रैयतवारी बन्दोबस्त किया गया।

"उत्तरी सरकारों" अर्थात् आन्ध्र तट के जिलों में सन् १८०२ से १८०५ तक लौर्ड वेल्जली ने जमींदारों से स्थायी बन्दोबस्त करा दिया। वहाँ बहुत सी "हवेली" अर्थात् राजकीय ज़मीनें भी थीं। उनकी चकबन्दी करके उन चकों की ज़मींदारियाँ नीलाम कर दी गईं। पुराने ज़मींदार तो पुराने स्थानीय शासक थे और पुरानी परम्परा से चलते थे। पर इन नये ज़मींदारी खरीदने वालों ने केवल नफे के ख्याल से पूँजी लगाई थी, इसलिए ये किसानों से अधिक से अधिक लगान लेने लगे।

मद्रास के अधिक हिस्सों में किसानों से सीधा बन्दोबस्त करने का उद्देश यह नहीं था कि किसानों के पास उनकी पूरी कमाई बनी रहे, प्रत्युत यह कि उपज का जो हिस्सा ज़मींदार ले जाते, वह भी कम्पनी को मिले। रैयतवारी बन्दोबस्त में भी किसान को ज़मीन का मालिक न माना गया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी खुद मालिक बन बैठी थी, और मालिक अपनी पूँजी से जिस नफे की

आशा करता है, भारत के खेतों से वह नफा वह खुद लेना चाहती थी। किसान उसकी दृष्टि में उसकी "रैयत" थे, जिन्हें मज़दूरी भर मिलनी चाहिए थी। इस प्रकार इस पद्धति में हाकिम किसी रैयत को जो खेत सौंप दे, उसका जिम्मा उस रैयत को लेना ही पड़ता था। बाद में नफा न होने से यदि वह खेत को छोड़ कर भागे भी, तो उसका पीछा करके उसे पकड़ा जाता। एक-एक कलक्टर के लिए डेढ़-डेढ़ लाख किसानों के साथ बन्दोबस्त करना सम्भव न था। इसलिए छोटे अमले किसानों पर मनमानी करने लगे।

किसानों की दृष्टि से ज़मींदारी और रैयतवारी दोनों बन्दोबस्त एक समान थे। एक में ज़मींदार ज़मीन के मालिक बन बैठे थे और दूसरे में कम्पनी; किसान दोनों दशाओं में मालिक के बजाय "रैयत" बन गये थे। पुराने जागीर-दार वास्तव में स्थानीय शासक थे, और जिन किसानों से वे वसूली करते थे, ज़मीन के मालिक वही थे। जागीरदारों की शासन-शक्ति अंग्रेज़ों ने तोड़ दी। किन्तु इसके बावजूद बंगाल-बिहार में जब कौर्नवालिस ने उन जागीरदारों के साथ ज़मीन का बन्दोबस्त किया तब उसका अर्थ केवल यह था कि स्थानीय शासन के कार्य में से वसूली का काम उन्हें सौंपा गया जिसके बदले में उन्हें १० प्रतिशत कमीशन दिया गया। जिन लोगों के साथ बन्दोबस्त किया गया था, वे प्रायः मालगुज़ारी-वसूली को नीलामी में खरीदने वाले व्यापारी थे। किन्तु धीरे-धीरे उनका वह वसूली का ठेका ज़मीन की मिलकियत बनता गया और "नीलाम खरीदने वालों ने जो शक्तियाँ हथिया लीं, उनके कारण किसानों के पास किसी अधिकार की परछाँही भी नहीं बची, और खुशहाल और समृद्ध कृषक जनता दरिद्रता की सबसे निचली सतह पर जा गिरी।"

उस समय मद्रास के मालगुज़ारी दफ्तर (बोर्ड आव रेवेन्यू) ने एक ऐसा प्रस्ताव किया जिससे वहाँ के किसानों को उस गड्ढे में गिरने से बचाया जा सकता था। भारतवर्ष में उस समय तक सब जगह गाँवों की पुरानी पंचायतें बनी हुई थीं। मद्रास बोर्ड का प्रस्ताव था कि सरकार प्रत्येक गाँव की पंचायत से मालगुज़ारी का स्थायी बन्दोबस्त कर दे, और गाँव के भीतर उसका बँटवारा तथा उसकी वसूली सब पंचायत पर छोड़ दे। इससे किसानों की मिलकियत भी

नष्ट न होती और स्थानीय स्वशासन भी उनके हाथों में बना रहता। लेकिन मुनरो के प्रभाव से यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो पाया, और सन् १८२० में, मद्रास प्रान्त में जहाँ जहाँ ज़मींदारी से स्थायी बन्दोबस्त न हो चुका था, वहाँ अस्थायी रैयतवारी बन्दोबस्त कर दिया गया, और उपज की ४५, ५०, ५५ फी सदी तक मालगुज़ारी तय की गई। पीछे मुनरो ने इस दर को घटा कर उपज का तिहाई कर दिया।

मुम्बई का विशाल प्रान्त तीसरे अंग्रेज़-मराठा युद्ध के बाद बना। वहाँ भी अनेक जगह कृषक ही ज़मीन के मालिक थे, जो मिराशी या मिराशदार कहलाते थे। जहाँ जागीरदार थे, उनकी शक्ति तोड़ने की भरसक चेष्टा की गई। गाँवों की पंचायतें सब जगह थीं, जो "आत्म-परिपूर्ण छोटे-छोटे राज्य जैसी थीं।" एल्फिन्स्टन ने मालगुज़ारी का बन्दोबस्त तो सीधा कृषकों से कराया (१८२४-२८ ई०), पर वसूली का काम गांव के मुखियों को सौंप दिया। इससे वे मुखिया सरकारी नौकर बन गये। पंचायतों के हाथ में कोई सामूहिक कार्य न रह जाने से वे धीरे धीरे लुप्त होती गईं।

मुम्बई प्रान्त के इस बन्दोबस्त में बहुत गलत माप और पैदावार के बढ़ाये हुए अन्दाज़ के आधार पर उपज की ५५ प्रतिशत मालगुज़ारी नियत की गई। कृषकों को भयंकर यातनाएँ दी गईं; वे घर छोड़ भागने लगे। सन् १८३५ में विंगेट ने फिर ३० बरस के लिए बन्दोबस्त किया, जिसमें माप तो ठीक की गई, पर कर की दर ऊँची ही रही। किसान अपनी ज़मीनें बचाने के लिए सूदखोर महाजनों के पंजों में फँसते गये।

अवध के नवाब के सौंपे हुए इलाके सन् १८०१ में सात ज़िलों में बाँटे गये, और उनकी मालगुज़ारी एकदम २०-३० लाख रुपया वार्षिक बढ़ा दी गई। यह घोषणा की गई कि १० बरस बाद स्थायी बन्दोबस्त किया जायगा। सन् १८०३ में शिन्दे से जीते हुए इलाके के ५ ज़िले बनाये गये और वहाँ भी वैसी ही घोषणा की गई। उस युद्ध और मालगुज़ारी बढ़ाने का परिणाम सन् १८०४ का दुर्भिक्ष हुआ।

मिंटो और हेस्टिंग्स दोनों ने अपने-अपने शासन-काल में इन इलाकों में

स्थायी बन्दोबस्त कर डालने का अनुरोध किया। लेकिन कम्पनी के डाइरेक्टरों ने फैसला किया कि वैसा न होगा।

सर चार्ल्स मेटकाफ
दिल्ली में अंकित समकालीन चित्र
[दिल्ली संग्र०, भा० पु० वि०]

यह फैसला हो जाने पर सन् १८२२ में उत्तर भारत के तथा भोंसले से जीते गये कटक प्रदेश के मालगुजारी-बन्दोबस्त के लिए यह योजना बनाई गई कि कुल जमीन-मिलकियत की जाँच की जाय, और एक-एक "महाल" पर अर्थात् जायदाद की एक-एक इकाई पर सरकारी "जुम्मा" तय कर दिया जाय। जहाँ जमींदार हों वहाँ जमींदारों से, और जहाँ किसानों की जमीनें हों वहाँ गाँव के मुखियों से बन्दोबस्त किया जाय। इन मुखियों का कलक्टर के रजिस्टर में नम्बर रहता, इससे ये नम्बरदार कहलाये।

यह योजना भी एक अरसे तक सफल न हुई। सरकार की माँग इतनी अधिक थी कि किसान और जमींदार दे न पाते थे। मिलकियत की जाँच में लोग सहयोग न देते थे। सन् १८३० में मेटकाफ ने प्रस्ताव किया कि पंचायतों को बनाये रक्खा जाय और व्यक्तिशः किसानों से बन्दोबस्त न किया जाय। सरकार ने यह स्वीकार नहीं किया। सन् १८३३ में बैंटिंक ने मालगुजारी की दर घटा दी। उसके अनुसार रौबर्ट बर्ड ने सन् १८३३ से १८४६ तक इन इलाकों का ३० साल के लिए बन्दोबस्त किया।

नेपालियों से लिये गये पहाड़ी प्रदेशों में मालगुजारी बन्दोबस्त करते समय बेगार और "कुली-उतार" को भी मालगुजारी का अंश बना दिया गया। पहाड़ी प्रदेशों में दौरा करने जब कोई सरकारी अधिकारी आय, तब स्वयं कुली बन कर अथवा अपने आश्रित मजदूरों द्वारा उसका बोझा ढोने ढुवाने की जिम्मेदारी प्रत्येक मालगुजारी देने वाले पर डाली गई। जो उन्हें बारी-बारी निभानी पड़ती। जिस गाँव में से अधिकारी गुजरें या जहाँ डेरा डालें वहाँ के

लोगों को बेगार में सब तरह का रसद-सामान भी उनके लिए मोहय्या करना पड़ता। न केवल अधिकारी प्रत्युत गोरे यात्री भी इस प्रथा का लाभ उठाते, और जब कोई 'साहब' पहाड़ में जाता पचासों मजदूर एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव तक उसका सामान—कमोड तक—सिर पर ढो कर ले जाते। यों यह एक तरह की गुलामी प्रथा मालगुजारी-बन्दोबस्त में शामिल कर दी गई।

"सागर और नर्मदा प्रदेश" अर्थात् आजकल के मध्य प्रदेश का हिन्दी भाषी अंश सन् १८१८ में अंग्रेजी शासन में आया। सन् १८६१ तक उसका शासन कभी सीधा भारत-सरकार के और कभी उत्तर-पच्छिमी प्रान्त (आधुनिक उत्तर प्रदेश) के अधीन रहा। शुरू में यहाँ त्रिवार्षिक और पंचवार्षिक बन्दोबस्त होता रहा। मराठा सरकार जितनी मालगुजारी लेती थी, अंग्रेज़ों ने एकदम उससे सातगुनी कर दी। सन् १८३५-३६ में २०-वार्षिक बन्दोबस्त किया गया, पर मालगुजारी की दर तब भी मराठा दर से तिगुनी रही। फल यह हुआ कि "परगने मानो मुर्दा हो गये। ऐसी बरबादी हुई कि मानव जीवन के चिह्न न दिखाई देते थे।"

१८१८ के बाद राजस्थान में अजमेर को अंग्रेजी शासन का केन्द्र बना कर औक्टरलोनी को वहाँ का मुख्य कामदार (एजंट-जनरल), तथा टौड और मालकम को उसके अधीन 'राजपूताने' और मालवे का राजनीतिक कामदार (पोलिटिकल एजंट) नियत किया गया। शिन्दे का स्वतन्त्र राज्य इनके पड़ोस में अभी बना था। यह देखते हुए अंग्रेजों ने अपना पक्ष दृढ करने की खातिर उन सब लोगों का अपने कब्जे की जायदादों पर अधिकार मान लिया जो पिछली अव्यवस्था का लाभ उठा कर जहाँ तहाँ ज़मीनों या गाँवों के मालिक बन बैठे थे। इस प्रदेश में अपने अनेक पिट्ठुओं को अंग्रेज़ों ने दूसरे अंग्रेज़-मराठा युद्ध के बाद जागीरें और रियासतें दिलाई थीं और अब भी वैसा ही किया। हाड़ौती (कोटा-बूँदी) की जनता ने पहले यशवन्तराव होल्कर का फिर पेंढारियों का साथ दिया था। वहाँ के लोगों का मराठा राज्यों से सम्बन्ध काट देने की दृष्टि से हाड़ौती के दक्खिनी छोर का राज्य टौड ने अंग्रेज़ों के एक पिट्ठू जालिमसिंह झाला को दिला कर उस प्रदेश का नाम झालावाड़ रख दिया। इसी प्रकार

टोंक के नवाब अमीरखाँ को सिरोंज जैसे नाकेबन्दी के प्रदेश सौंपे ।

§२. अंग्रेज़ी शासन-ढाँचा और गाँव-पंचायतों का टूटना— कौर्नवालिस का चलाया शासन-ढाँचा सफल न हुआ था । मिंटो और हेस्टिंग्स के समय बंगाल-बिहार के जिलों के जिलों पर डाकुओं का स्वच्छन्द राज बना रहता था । अंग्रेज़ राजकर्मचारी देश से अपरिचित होने के कारण शासन और न्याय का काम न चला सकते थे ।

मद्रास में अब शासन के पुनः संघटन का काम भी टौमस मुनरो को सौंपा गया । मुनरो ने ये प्रस्ताव किये—(१) गाँव-पंचायतें फिर से संघटित कर गाँवों में पुलिस का प्रबन्ध उन्हीं को सौंप दिया जाय; (२) न्याय-विभाग में भरसक देशी जज नियुक्त किये जाँय; और (३) कलक्टर को मजिस्ट्रेट के अधिकार भी दिये जाँय ।

उसकी पहली बात न मानी गई । दूसरी बात अंशतः मानी गई और छोटे पदों पर देसियों की नियुक्ति होने लगी । तीसरी बात को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उत्सुकता से स्वीकार किया । उन्हें अपनी आमदनी से मतलब था, इसलिए मालगुजारी वसूल करने वाले हाकिमों के हाथ में अधिक से अधिक ताक़त देना उन्हें पसन्द था । बाद में बेंटिंक ने यह योजना समूचे भारत के लिए जारी कर दी ।

बम्बई का शासन-संघटन एल्फिन्स्टन ने किया । उसने अंग्रेजों के चलाये हुए कुल नियम-कायदों को स्मृतिबद्ध कर दिया । मुनरो की तरह उसने भी छोटे पदों पर भारतीयों को नियुक्त करने की नीति पकड़ी । उसने शिक्षा फैलाने की भी कोशिश की । उस समय की अनेक ग्राम-पंचायतें पाठशालाएँ भी चलाती थीं । उसने उन शालाओं को पुस्तकें छपवा कर देने का प्रबन्ध किया । लेकिन वे पंचायतें स्वयं लुप्त होने जा रही थीं ।

पिछले युगों के स्थानीय शासन में जागीरदारों के साथ साथ गाँव-पंचायतों का भी हाथ रहता था । गाँव के भीतर मालगुजारी का बँटवारा और उगाहना, अपराधियों को पकड़ना आदि सभी सामूहिक कार्य वही करतीं थीं । अंग्रेजी शासन में उनके हाथ में कोई अधिकार और दायित्व न रह गया, जिससे

वे धीरे धीरे मिटती गईं।

§ ३. **नमक और अफ़ीम का एकाधिकार**—कम्पनी ने जो भी नया प्रदेश पाया वहाँ क्लाइव की नीति का अनुसरण करते हुए नमक और अफीम के रोज़गार पर अपना एकाधिकार रक्खा। बेंटिंक ने अपनी गवर्नर-जनरली में नमक पर कम्पनी का पूरा एकाधिकार मानते हुए राजस्थान की साँभर झील और साँभर जिले पर भी कब्जा किया, पर उससे मारवाड़ और जयपुर में व्यापक विद्रोह हुआ और एक अंग्रेज मारा गया। तब वह कब्जा छोड़ना पड़ा।

§ ४. **शिक्षा, कानून और अन्य सुधार**—कलकत्ते में एक 'मदरसे' की स्थापना सन् १७८५ में और बनारस में संस्कृत कालेज की स्थापना सन् १७९१ में ही हो चुकी थी। सन् १८१७ में डेविड हेयर नामक एक घड़ीसाज़ ने कलकत्ते में पहलेपहल एक अंग्रेजी स्कूल खोला। सन् १८२३ में कम्पनी की सरकार ने शिक्षा के लिए कुछ खर्च मंजूर किया। तब दिल्ली और आगरे में भी कालेज खोले गये, और संस्कृत और अरबी की कुछ पुस्तकें छापी गईं।

सन् १८३३ में कम्पनी को नया पट्टा (चार्टर) मिलने पर शिक्षा के सम्बन्ध में एक कमिटी बिठाई गई। मैकाले उसका सभापति था। भारतवासियों को कैसी शिक्षा दी जाय यह प्रश्न उस कमिटी के सामने था। कमिटी में कुछ ऐसे अंग्रेज थे जो संस्कृत, फारसी आदि "प्राच्य" भाषाओं का अध्ययन और "प्राच्य" पुरातत्त्व की खोज करते थे। इनका मत था कि इन्हीं भाषाओं और इनके पुराने साहित्यों द्वारा भारतीय युवकों को शिक्षा दी जाय। दूसरा पक्ष पाश्चात्य शिक्षा वालों का था। बंगाल में उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में (१७७४–१८३३ ई०) राममोहन राय नामक सुधारक हुआ। उसका कहना था कि भारतवासियों को "प्राच्य" शिक्षा से वैसा लाभ न होगा जैसा युरोपी विज्ञान आदि की शिक्षा देसी भाषाओं में पाने से।

मैकाले ने "प्राच्य" शिक्षा का मज़ाक उड़ाया और पाश्चात्य पक्ष का साथ दिया। पर उसने पच्छिमी विज्ञान के बजाय अंग्रेजी भाषा और साहित्य की शिक्षा पर ही ज़ोर दिया, और इस बात की उपेक्षा की कि देशी भाषाओं द्वारा भी शिक्षा दी जा सकती थी। वास्तव में भारतीयों की शिक्षा के लिए ठीक

७. भारत की गाँव-पंचायतें अंग्रेज़ी जमाने में क्यों और कैसे लुप्त हो गईं ?

८. भारत युरोप से ज्ञान में पिछड़ गया था इसे देखते हुए उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के लिए शिक्षा की उचित पद्धति क्या होती ? जो पद्धति अपनाई गई वह किन अंशों में उससे भिन्न थी ? क्यों वैसी पद्धति अपनाई गई ?

अध्याय ३

अंग्रेज़ों का सिक्ख राज जीतना

(१८३०-१८४६ ई०)

§१. मध्य एशिया में रूसी और अंग्रेज़ अग्रदूत—हम देख चुके हैं [८,८§६] कि १५वीं-१६वीं शताब्दी में रूसियों ने अपने देश के पूरबी भाग से मंगोलों को निकाल दिया था। उसी प्रसंग में वे ऊराल से पूरब बढ़ते गये। सन् १५८० ई० में उन्होंने इर्तिश नदी के निचले काँठे में सिबिर नामक कसबा दखल कर लिया। वहाँ से पूरब तरफ़ निर्जन बर्फीले प्रदेशों पर अधिकार जमाते हुए सन् १६३६ में वे ओखोत्स्क समुद्र तक जा पहुँचे। सिबिर के नाम से इस विशाल प्रदेश का नाम उन्होंने सिबिरिया रक्खा। १७ वीं शताब्दी के मध्य तक उनका साम्राज्य दक्खिन तरफ़ बैकाल झील तक पहुँच गया। १६ वीं शताब्दी के शुरू से वे कोह काफ़ (काकेशस पर्वत) के रास्ते ईरान को दबाने लगे और उनके अग्रदूत मध्य एशिया में पहुँचने लगे। सन् १८१५ में एक रूसी व्यापारी लदाख के राजा तथा रणजीतसिंह के नाम रूसी अमात्य की चिट्ठियाँ ले कर आया।

इधर अंग्रेज अग्रदूत भी अब भारत से मध्य एशिया को जाने लगे, सन् १८१६ में मूरक्रौफ्ट नामक अंग्रेज पंजाब-लदाख के रास्ते यारकन्द और बुखारा की यात्रा के लिए रवाना हुआ। उसके बाद कई अंग्रेजों ने मध्य एशिया की यात्रा की।

नैपोलियन के पतन के बाद फ्रांस और इंग्लैंड की पुरानी स्पर्द्धा समाप्त हुई, और रूस तथा इंग्लैंड में यह नई स्पर्द्धा शुरू हो गई।

§२. सिन्धु नौचालन-योजना—सिन्ध प्रान्त उत्तर-पच्छिमी देशों की कुंजी है। कन्दहार ईरान के सीधे रास्ते उसमें से जाते हैं और वह समुद्र से लगा है। मुलतान-डेराजात जीतने के बाद से रणजीतसिंह उसे ले लेने का मौका देख रहा था; शिकारपुर पर तो उसका खास तौर से दावा था। इधर अंग्रेज भी सिन्ध पर घात लगाये हुए थे। सिन्ध नदी की पैमाइश का उन्होंने अब एक अच्छा बहाना बनाया। इंग्लैंड के राजा की तरफ से रणजीतसिंह को भेंट करने को एक गाड़ी और घोड़े मुम्बई मँगाये, और उन्हें सिन्ध और रावी नदियों द्वारा लाहौर भेजना तय किया। जब लेफ्टिनेंट बर्न्स इस बेड़े को ले कर सिन्ध नदी में घुसा (१८३१ ई०) तब नदी के किनारे एक सैयद ने हाथ उठा कर कहा, "सिन्ध अब गया! अंग्रेज़ों ने हमारी नदी को देख लिया!"

रणजीत भी अंग्रेज़ों की इस चाल से बेचैन हो सिन्ध की सीमा पर अपना अधिकार दृढ करने लगा। उसकी रोकथाम करने को बेंटिंक रोपड़ में उससे मिला (अक्तूबर १८३१ ई०)। रोपड़ आने से पहले वह कर्नल पोटिंजर को सेना के साथ हैदराबाद (सिन्ध) भेज चुका था। सिन्ध के अमीरों को उसने यह सन्धि करने को बाधित किया कि वे अंग्रेज़ी जहाजों के लिए सिन्ध नदी को खुला रक्खेंगे और उसमें गोदियाँ (डौक-यार्ड) स्थापित करेंगे। परन्तु इसके साथ यह शर्त भी थी कि कोई जंगी सामान या बेड़ा सिन्ध में से न गुज़रेगा। यह हो जाने पर रणजीत से लाहौर में कहा गया कि वह भी सिन्ध-सतलज-संगम के ऊपर सतलज में अंग्रेज़ी नावों के लिए वैसी ही सुविधा कर दे। उससे यह भी कहा गया कि ब्रितानवी सरकार उसे शिकारपुर जीतने की इजाज़त नहीं दे सकती। रणजीत इस पर बहुत झुँझलाया, तो भी उसने सतलज का रास्ता खोल दिया। सिन्ध के मुहाने से रोपड़ तक तब अंग्रेज़ी आग-बोटें चलने लगीं। मिठनकोट (सिन्ध-सतलज-संगम के नीचे) तथा हरि-के-पत्तन (व्यास-सतलज-संगम पर) के सामने अंग्रेज कारिन्दे इस व्यापार की देखभाल के लिए रहने लगे।

§३. बर्न्स की मध्य एशिया यात्रा—सन् १८३२ के शुरू में बर्न्स तीन साथियों के साथ दिल्ली से मध्य एशिया की यात्रा के लिए निकला। पंजाब अफगानिस्तान हो कर वह बोखारा तक गया और सन् १८३३ में वापिस

आ कर इंग्लैंड चला गया। वहाँ उसका बड़ा स्वागत हुआ। इंग्लैंड का राजा विलियम चतुर्थ भी उससे मिला और उसकी कहानी बड़ी रुचि से सुनने के बाद कहा, "तुम्हारा जीवन बना रहे, हमारे पूरबी साम्राज्य का लाभ हो!" सन् १८३५ में बर्न्स भारत लौट आया।

बर्न्स मध्य एशिया वेश में
[विक्टोरिया स्मारक, कलकत्ता]

§४. सिक्ख राज का दक्खिन और पच्छिम से घेरा जाना—इस प्रसंग में अंग्रेज़ी सरकार ने शाहशुजा को फिर अफगानिस्तान पर चढ़ाई करने को उकसाया और उसके लिए रुपये की मदद दी। उस उथलपुथल में कोई न कोई पक्ष अंग्रेज़ों की शरण माँगेगा, सो निश्चित ही था।

रणजीतसिंह के तटस्थ रहे बिना शाहशुजा चढ़ाई न कर सकता था, इसलिए उसने उससे सन्धि की और सिन्ध पार के उसके जीते सब इलाके उसे विधिवत् दे दिये। शाह लुधियाने से बहावलपुर के रास्ते सिन्ध में घुसा और शिकारपुर के पास सिन्धियों को हरा कर कन्दहार की ओर बढ़ा। रणजीतसिंह ने सोचा कि काबुल में सफल होने पर शाह का रुख शायद बदल जाय, इसलिए उसने सेनापति हरिसिंह नलवा को भेज कर पेशावर को अपने सीधे शासन में ले लिया।

कन्दहार पर शाहशुजा और खैबर पर हरिसिंह को देख दोस्त-मुहम्मद ने अंग्रेज़ों से शरण माँगी। किन्तु १-७-१८३४ ई० को उसने कन्दहार के पास

शाह को हरा दिया, और तब अंग्रेज़ों को भूल गया। शाहशुजा लुधियाना लौट आया।

उसके लौट आने पर आगे से उसकी वैसी किसी चढ़ाई के कष्ट से बचने की दृष्टि से शिकारपुर के शासक ने अपने को रणजीतसिंह की रक्षा में सौंपना चाहा। रणजीत के पोते नौनिहालसिंह की अधीनता में पंजाबी सेना सिन्ध की सीमा पर आ जुटी। तब अंग्रेज़ों ने हस्तक्षेप कर कहा कि हैदराबाद में अब से अंग्रेज रेज़िडेंट रहेगा और वही सिन्धियों के बाहरी मामलों का नियन्त्रण करेगा। रणजीत के सरदारों ने उससे आग्रह किया कि अंग्रेज़ों की न सुने, लेकिन उसने सिर हिलाया और कहा, "मराठों के दो लाख भाले (अंग्रेजों के मुकाबले में) कहाँ गये?" और फिर उस मामले को भूल जाने के लिए उसने उसी नौनिहाल के ब्याह पर, जो सिन्ध का विजेता होता, गवर्नर-जनरल को निमन्त्रित किया। गवर्नर-जनरल के बजाय प्रधान सेनापति सर हेनरी फेन विवाह में सम्मिलित हुआ (मार्च १८३७ ई०)। उस मौके पर उसने पंजाब की शक्ति का अन्दाज़ लगा लिया और उसके अधीन एक अफसर ने लाहौर इलाके का पूरा नक्शा बना लिया जो अगले युद्ध में बहुत काम आया।

उधर दोस्त-मुहम्मद ने शाहशुजा को भगाने के बाद सिक्खों के खिलाफ युद्ध-घोषणा की। वह खैबर पार तक आया। ११ मई सन् १८३५ को रणजीत ने उसे प्रायः घेर लिया; तब वह लड़े बिना भाग निकला।

हरिसिंह ने खैबर से आगे बढ़ने को जमरूद की किलाबन्दी की। दोस्त मुहम्मद के बेटे अकबरखाँ ने जमरूद पर हमला किया। ३०-४-१८३७ की लड़ाई में हरिसिंह मारा गया और सिक्खों की हार हुई। लेकिन अफगान जमरूद को ले न सके और पीछे हट गये। रणजीत ने शीघ्र बड़ी कुमुक भेजी और स्वयं रोहतास तक आ गया। वह दोस्त मुहम्मद को अंग्रेज़ों के हाथ न जाने देना चाहता था, इसलिए उसे मना कर सन्धि की। पर इस बीच अंग्रेज दूत भी काबुल पहुँच चुका था, और उसने सिक्खों-अफगानों के मामले में टाँग अड़ानी चाही। रणजीत ने देखा कि अंग्रेज अब उसे पच्छिम तरफ भी रोकना और घेरना चाहते हैं।

§५. **काबुल में अंग्रेज़ 'वाणिज्य'-दूत**—सन् १८३६ में ऑकलैंड भारत का गवर्नर-जनरल बन कर आया। उसने बर्न्स को अंग्रेज़ी 'वाणिज्य-दूत' बना कर काबुल भेजा। दोस्तमुहम्मद ने चाहा कि अंग्रेज़ उसे पेशावर प्रदेश रणजीतसिंह से वापिस दिला दें। बर्न्स ने उसे अंग्रेज़ों की मदद मिलने की आशा दिलाई।

तभी ईरानियों ने रूसियों की मदद से हरात को घेर लिया और रूसी दूत भी काबुल पहुँचा। कर्नल पौटिंजर मुस्लिम फकीर का वेश धारण कर हरात के किले में जा घुसा और किले के रक्षकों का नेता बन बहादुरी से ईरानियों का मुकाबला किया।

बर्न्स ने दोस्तमुहम्मद को आशाएँ तो बहुत दिलाईं पर उन्हें पूरा न कर सका। कारण कि उसकी सरकार का रुख तब और ही था। वह एक भारी षड्यंत्र पका रही थी। तब वह काबुल से वापिस लौट आया। उधर भारत से एक जंगी बेड़ा ईरान की खाड़ी में पहुँचा, जिससे डर कर ईरानियों ने हरात का घेरा उठा दिया (६-६-१८३८ ई०)।

§६. **सिक्खों का लदाख जीतना**—अंग्रेजों ने सिक्ख राज्य की प्रगति पूरब, दक्खिन तथा पच्छिम तरफ रोक दी तो वह उत्तर तरफ हिमालय के बाँध को पार कर बढ़ने लगा। रणजीतसिंह ने अंग्रेजों को अपना मित्र मान—सच कहें तो उनसे डरते हुए—नेपालियों से कैसा बर्त्ताव किया था, और बाद में अपने पड़ोस से उनके चले जाने पर कैसे पछताया था, सो हम देख चुके हैं [११,१§§१०,१२]। अंग्रेज धोखा दें तो नेपालियों से मदद लूँ यह विचार जान पड़ता है उसके मन में बसा रहा और इसलिए नेपालियों को अपने पड़ोस में देखने की इच्छा भी बनी रही। उधर नेपाली भी सन् १८१६ के धक्के से सँभलने के बाद फिर से भारत के विभिन्न राज्यों को उभाड़ने के यत्न करते रहे, और यह सम्भव है कि सन् १८३४-३७ के बीच नेपाल से यह सुझाव रणजीत के पास आया हो कि दोनों राज्य हिमालय पार तिब्बत का पच्छिमी अंश जीत कर वहाँ अपनी सीमाएँ मिला लें।

गुलाबसिंह नामक डोगरा* साधारण सिपाही के रूप में रणजीतसिंह की सेना में भरती हुआ था। अपनी योग्यता के बल पर उसने धीरे-धीरे जम्मू की जागीर प्राप्त की। उसके छोटे भाई ध्यानसिंह और सुचेतसिंह भी ऊँचे पदों पर पहुँचे। तीनों को राजा का पद मिला। बाद में रावी से जेहलम तक सारे पहाड़ी प्रदेश का शासन उन्हें सौंपा गया। गुलाबसिंह के अधीन कष्टवार† के सेनापति जोरावरसिंह ने १८३५ ई० में तिब्बत के सबसे पच्छिमी प्रान्त लदाख या मरयुल पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया।

§७. त्रिपक्ष षड्यन्त्र—उत्तरपच्छिमी भारत के प्रश्न पर अंग्रेज राजनीतिचिन्तकों में इस समय तीन विचार-धाराएँ प्रचलित थीं। एक यह कि सतलज और थर अंग्रेज़ी राज की बहुत अच्छी सीमाएँ हैं; और यदि रूस का प्रभाव अफगानिस्तान तक पहुँच भी जाय तो भी सिक्खों की मैत्री पर भरोसा रखना चाहिए। दूसरा विचार बर्न्स का था। वह यह कि अंग्रेजों को अफगानिस्तान में प्रभाव जमा कर रूस की दाल वहाँ न गलने देनी चाहिए। "वेल्ज़ली ने अफगानों पर ईरान द्वारा दबाव डलवाया था, अब हम सिक्खों द्वारा डाल रहे हैं; क्यों न हम अफगानों से सीधा सम्बन्ध रक्खें ?" किन्तु लन्दन और शिमला के राजनेताओं को न सिक्खों से प्रेम था, न अफगानों से; उन्होंने एक हिम्मत की कल्पना की थी। वह यह थी कि शाहशुजा को मीरजाफर बना कर काबुल की गद्दी पर बिठाया जाय, जिससे एक ही मार में अफगानिस्तान अंग्रेज़ों के हाथ की कठपुतली बन जाय, सिन्ध शाह के नाम पर उनके काबू में आ जाय और पंजाब तीन तरफ से घिर जाय।

परन्तु रणजीतसिंह की सहमति के बिना यह कल्पना सफल न हो सकती थी। इसलिए गवर्नर-जनरल का कौंसिलर मैकनाटन, जो कि इस षड्यन्त्र का दिमाग था, सन् १८३८ की गरमी में रणजीत के पास गया। शाहशुजा कई

---

* रावी और चनाब के बीच हिमालय की तराई, जिसका मुख्य नगर जम्मू है, डुगर कहलाती है, और उसके निवासी डोगरे।

† चम्बा के उ० प० तथा जम्मू के उ० पू०, चनाब नदी के बोड़नी जैसे मोड़ की दून, जो भद्रवाह दून के ठीक पूरब लगी है। संस्कृत नाम—काष्ठवाट।

बार पहले भी अपनी गद्दी वापिस लेने के लिए रणजीत से मदद माँग चुका था, और उन दोनों के बीच सन्धि का मसविदा भी लिखा गया था। पर वह बात इस आशंका से टल गई थी कि अंग्रेज़ इस मामले में न जाने क्या रुख लें। रणजीत ने पहले समझा अंग्रेज़ अब उस योजना के लिए सहमति दे रहे हैं। किन्तु जब उसे मालूम हुआ कि वे इसमें सचेष्ट भाग लेंगे, और पंजाबी सेना के बजाय अंग्रेजी सेना ही शाहशुजा को काबुल ले जायगी, तब वह बात-चीत अधूरी छोड़ कर चल दिया। मैकनाटन ने जब उसे सन्देश भेजा कि वह भाग ले या न ले, काबुल पर चढ़ाई होगी ही, तब वह बड़ी अनिच्छा से षड्यन्त्र में शामिल हुआ। अंग्रेज़ों का यह आग्रह था कि चढ़ाई दो तरफ से हो—पंजाब से और सिन्ध से, और साथ ही यह कि अंग्रेज़ी सेना शाहशुजा के साथ सिन्ध के रास्ते से जाय। इसमें उनके दो मतलब थे, एक तो वे शाह को रणजीत के हाथ में नहीं देना चाहते थे, और दूसरे, इस बहाने वे सिन्ध को पूरी तरह वश में कर लेना चाहते थे।

§८. **अंग्रेज़ों की अफगानिस्तान चढ़ाई**—फीरोजपुर में अंग्रेज़ी सेना जमा हुई और शाहशुजा को साथ लिये नये "जंगी लाट" (प्रधान सेनापति) सर जौन कीन की नायकता में सतलज के बायें-बायें सिन्ध में घुसी। मैकनाटन तथा बर्न्स उसके साथ थे। सिंध में उस फौज के दाखिल हो जाने पर सिन्ध के अमीरों से एक बड़ी रकम ली गई तथा उनसे इकरार कराया गया कि आगे से वे सिन्ध में एक 'आश्रित' अंग्रेज़ी सेना रक्खेंगे। खैरपुर के अमीर ने सक्खर के सामने सिन्ध नदी के बीच पथरीले टापू पर बसा बक्खर का किला अंग्रेज़ों को "उधार" दिया।

दर्रा बोलान को पार कर इस सेना ने कन्दहार और गजनी जीत लिये। दोस्त-मुहम्मद काबुल से भाग गया। अगस्त १८३९ में अंग्रेज़ी सेना ने शाहशुजा को काबुल की गद्दी पर बैठा दिया। तभी रूसियों ने मध्य एशिया में खीवा के राज्य पर चढ़ाई की, किन्तु वे उसमें पूरी तरह विफल हुए (नवम्बर १८३९ ई०)।

इधर शाहशुजा का बेटा तैमूर लुधियाने के अंग्रेज़ एजंट के साथ सिक्खों की रक्षा में पंजाब के रास्ते बढ़ा। किन्तु सिक्खों और अंग्रेज़ों का भीतर-

भीतर संघर्ष चल रहा था। औकलैंड रणजीतसिंह के पास आया और उसे इस बात के लिए राजी किया कि अफगानिस्तान से अंग्रेजी सेना पंजाब के रास्ते लौट सके। तभी रणजीतसिंह की मृत्यु हुई (२७-६-१८३९ ई०)।

§९. **नौनिहालसिंह और रामजंग पांडे**—रणजीतसिंह की मृत्यु पर उसका बेटा खड्गसिंह महाराजा तथा ध्यानसिंह वजीर बना। खड्गसिंह जितना ढीला था, उसका उन्नीस बरस का बेटा नौनिहालसिंह उतना ही तेजस्वी था। राज्य की सब बागडोर नौनिहाल के हाथ चली आई। नौनिहाल को अपने दादा का अंग्रेजों के दबाव में आ कर झुक जाना भी अखरता था। पठानों और सिक्खों को अंग्रेज एक दूसरे से लड़ावें यह उसे असह्य था।

लौर्ड कीन की सेना तब पंजाब हो कर लौटी और नौनिहाल को उसे रास्ता देना पड़ा, किन्तु अंग्रेजी और पंजाबी सेनाएँ एक दूसरे को शत्रु की तरह घूरती रहीं। दोस्त-मुहम्मद और उसके पठान अंग्रेजों के विरुद्ध उठने की तैयारी कर रहे थे। नौनिहाल उन्हें मदद देने लगा। दूसरी तरफ वह नेपालियों से अंग्रेजों के विरुद्ध सहयोग करने लगा।

नेपाल में भीमसेन थापा का प्रभाव सन् १८३२ से घटने लगा था। राजा राजेन्द्रविक्रम जो तब १९ वर्ष का हो गया था, पांडे लोगों के पक्ष में झुकने लगा था। भीमसेन का बर्ताव अंग्रेजों के तईं बराबर अभिमानयुक्त और सन्देह-पूर्ण रहा था, पर पांडे लोग उससे भी उत्कट कार्रवाई करना चाहते थे। अन्त में सन् १८३७ में राजा ने भीमसेन को पदच्युत कर रामजंग पांडे को प्रधान मन्त्री नियत किया। रामजंग ने राज्य का अन्य खर्च घटा कर सेना और सेना का सामान बढ़ाना आरम्भ किया तथा भारतीय राज्यों को अंग्रेजों के विरुद्ध उभाड़ने के प्रयत्न में धड़ाधड़ अपने दूत भेजना शुरू किया। ये दूत युवराज के विवाह की बात का बहाना ले कर ग्वालियर, रीवाँ, नागपुर, हैदराबाद, लाहौर, जोधपुर और राजस्थान के अन्य राज्यों में तथा सिक्किम, भूटान और आवा (बरमा की राजधानी) तक में पहुँचने लगे। लाहौर में सन् १८३७ में रणजीतसिंह के पास भी नेपाली दूत कुछ प्रस्ताव लाये थे और तब अंग्रेजों को सन्देह हुआ था कि रणजीत भी उनकी तरफ झुक रहा है। अंग्रेजों ने उसी वर्ष नेपाल

की सीमा पर अपना चौकसी-दल (ओब्ज़र्वेशन कोर) बैठा दिया। भीमसेन थापा का भतीजा माथवर्सिंह १८३८ में रणजीत के पास जाने के लिए लुधियाने पहुँचा। अंग्रेज़ों ने पहले उसे रोक लिया, पर फिर तसल्ली हो जाने पर कि वह पांडे पक्ष द्वारा निकाला जाने पर काम की तलाश में आया है, जाने दिया। रणजीत ने उसे अपनी सेवा में ले लिया।

अफगानिस्तान में अंग्रेज़ों की पहली सफलता होने पर नेपाली कुछ दबे जान पड़े, पर १८४० में जब अफगान उठने की तैयारी कर रहे थे तभी नेपाल और अंग्रेज़ों के बीच भी युद्ध छिड़ने की नौबत आ गई। अंग्रेज़ों ने तब माथवर-सिंह से बातचीत कर भाँपने की कोशिश की कि वह नेपाल का प्रधान मंत्री बने तो कैसे बर्त्तेगा। वह युद्ध होते होते टल गया।

इसी समय लदाख के पंजाबी शासक जोरावरसिंह ने लदाख से सिन्ध नदी की दून में नीचे उत्तरपच्छिम चढ़ कर बाल्ती या बोलौर प्रदेश (राजधानी स्कर्दू) को जीत लिया। लदाख से सिन्ध दून के साथ ऊपर (दक्खिनपूरब) बढ़ते हुए तिब्बती इलाकों को लेता हुआ वह नेपाल की तरफ बढ़ने लगा।

५ नवम्बर १८४० ई० को महाराजा खड़गसिंह की मृत्यु हुई। नौनिहाल अपने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करके लौटता था कि एक छत के गिरने से उसकी जान जाती रही। वह छत का गिरना आकस्मिक था कि किसी षड्यन्त्र के कारण इसकी जाँच नहीं हुई। पर यह प्रकट है कि नौनिहाल की मृत्यु से अंग्रेज़ों के रास्ते का एक काँटा निकल गया और पंजाब बिना नेता के रह गया।

तभी दोस्तमुहम्मद ने भी आत्मसमर्पण कर दिया और उसे कैद कर कलकत्ते पहुँचाया गया।

§१०. सिक्ख सेना की शक्ति का उदय—नौनिहालसिंह की मृत्यु पर उसकी माँ चन्दकौर राज करने लगी। रणजीत का दत्तक पुत्र शेरसिंह उसका नायब तथा ध्यानसिंह वज़ीर रहा। चन्दकौर पर अतरसिंह और अजीतसिंह सिंधन-वाला नामक दो भाइयों का प्रभाव था जिनसे शेर और ध्यान की बनती न थी। वे दोनों लाहौर से हट गये और बहुत सी सेना को मिला कर उन्होंने जनवरी १८४१ में लाहौर को आ घेरा। चार दिन बाद समझौता हुआ। चन्दकौर को

जागीर दी गई, शेरसिंह महाराजा बना, तथा सेना का वेतन एक रुपया मासिक बढ़ गया। सिन्धनवाले भाग कर अंग्रेजों की शरण में पहुँचे।

किन्तु सेना अब शेरसिंह के वश में न रही। वह जहाँ-तहाँ जिन अफसरों और दूसरे लोगों से नाराज थी, उनसे बदला चुकाने लगी। लोग डरने लगे कि सारे पंजाब में लूट मचेगी; अमृतसर के व्यापारी अंग्रेजों की रक्षा की पुकार मचाने लगे। अंग्रेजों ने भी अवसर से लाभ उठाना चाहा। मैकनाटन ने शाहशुजा के नाम पर पेशावर और डेराजात को लेने का यत्न किया। लुधियाने का अंग्रेज राजनीतिक कारबारी (पोलिटिकल एजंट) महाराजा शेरसिंह की "मदद" के लिए लाहौर पर चढ़ाई करने को तैयार हो गया। जब रणजीतसिंह का विश्वस्त सेवक फकीर अजीजुद्दीन यह प्रस्ताव ले कर आया तब शेरसिंह ने उसके मुँह पर हाथ रख कर अपनी गर्दन पर अँगुली फेरते हुए संकेत किया कि चुप रहो, ऐसी बात मुँह से निकालोगे तो सेना मेरी गर्दन उतार लेगी!

किन्तु सेना शीघ्र शान्त हो गई और उसने कोई लूट-मार न की। सिक्ख सेना भाड़े की टट्टू न थी; उसके अन्दर ऊँची भावना थी। उसकी विभिन्न टुकड़ियों की पंचायतें बन गई थीं जो अपने को "खालसा" या सिक्ख जनता का प्रतिनिधि और उसके हितों का रक्षक समझती थीं। अपनी स्वतन्त्रता के लिए वे सजग थीं और अपनी अटूट एकता और नियन्त्रण का उन्हें अभिमान था। साधारण बातों में वे नियुक्त अफसरों के आदेश मानती रहीं, पर देश के शासन में अपनी समझ के अनुसार हस्तक्षेप करने लगीं। पंजाब की यह सेना अधिकतर सिक्खों की थी, पर उसमें हिन्दू और मुसलिम सैनिक और अफसर भी काफी थे। अंग्रेज और उनके कारिंदे पंजाब की स्वतन्त्रता हरना चाहते हैं, यह विचार सेना में फैल गया था, इस कारण उनके प्रति वह बड़ी सशंक थी।

कश्मीर में सेना ने अपने अफसर को मार डाला था। वहाँ शान्ति-स्थापना के लिए गुलाबसिंह को भेजा गया। तब से कश्मीर के शासन को भी उसने अपने हाथ में कर लिया। लोनिहाल की नीति पर चलते हुए उसने पठानों और नेगनियों से मेल रक्खा। मई जून १८४१ में जोरावरसिंह ने तिब्बत और सतलज के स्रोतों की दूनें जीत कर मानसरोवर के पास तकलाकोट की ओर

हिमालय के उस पार पंजाब और नेपाल की सीमाएँ मिला दीं! मैकनाटन पेशावर लेना चाहता था; पंजाब-सरकार ने गुलाबसिंह को पेशावर सौंपना तय किया।

उस दशा में अंग्रेज़ों ने महाराजा शेरसिंह पर दबाव डाल कर उसे मना लिया कि गुलाबसिंह को पेशावर न दिया जाय तथा जोरावरसिंह तिब्बतियों को गारतोक* वापिस दे दे। इससे पहले कि महाराजा का हुक्म जोरावर के पास पहुँचता, ल्हासा की चीनी सेना ने पूस के जाड़े में उसे आ घेरा। बर्फ में ठिठुरते हुए पंजाबी और नेपाली सैनिक अपनी बन्दूकों के कुन्दे जला कर हाथ गरमाने लगे। जोरावर उस लड़ाई में मारा गया और नेपाल की सीमा वाली सेना तहस-नहस हो गई। मानसरोवर के रास्ते में तकलाकोट से तीन मील पर तोयो गाँव में जोरावर की समाध है जिसे तिब्बती अब भी पूजते हैं।
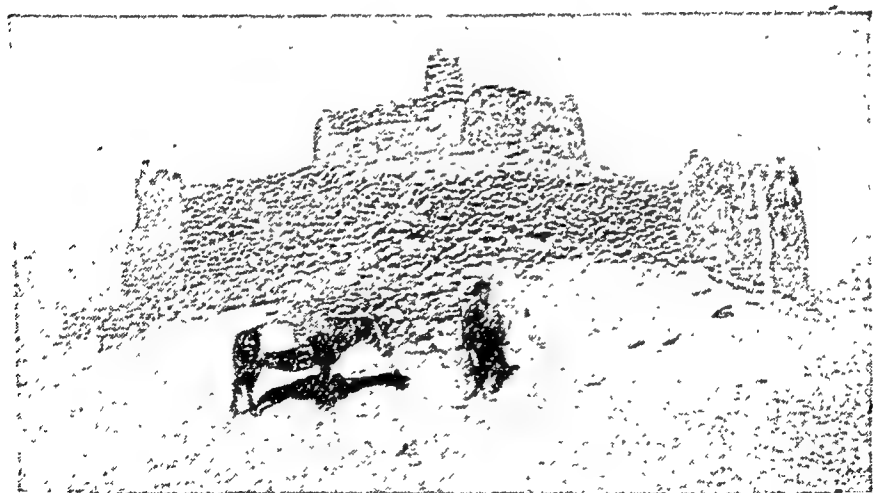
जोरावरसिंह की समाध
[स्वामी प्रणवानन्द जी के सौजन्य से]

भारत का मुख्य भाग अंग्रेज़ों के अधीन होने और विदेशों में भी भारतीयों के अंग्रेज़ों के भाड़ैत बन कर जाने से विदेशों के लोग सभी भारतीयों

*मानसरोवर के पच्छिम के तिब्बती प्रदेश का मुख्य स्थान, सिन्ध की उपरली दून में।

को अंग्रेज़ों के सेवक समझने लगे थे। इसी समय चीन से भी अंग्रेज़ों ने भारतीय सेना के बल पर युद्ध छेड़ रक्खा था। तिब्बत में पंजाबी-नेपाली सेना घुसी तो चीनियों ने जाना था कि उसे भी अंग्रेज़ों ने भेजा है!

§११. **अफगानों का उठना**—अंग्रेज़ों ने अफगानिस्तान के मुख्य-मुख्य शहरों में छावनियाँ डाल दी थीं, तो भी देश को वश में न कर सके। वे यह आस लगा कर गये थे कि भारत की तरह वहाँ भी स्थानीय भाड़ैत सेना खड़ी कर लेंगे, पर एक भी अफगान विदेशी की सेना में भरती नहीं हुआ। दो बरस में न तो वे देश का बन्दोबस्त कर सके, और न कोई कर उगाह सके। शिया-सुन्नियों के बीच "निफाक फैलाने" और अफगानों की भाड़े की सेना खड़ी करने की मैकनाटन की सब कोशिशें बेकार हुईं। इसके अलावा, अफगान अंग्रेज़ों की बड़ी फौज का तो मुकाबला न करते, पर उनकी छोटी टुकड़ियों और रसद-सामान पर बराबर छापे मारते थे। फलतः अफगानिस्तान को वश में रखने को बराबर भारत से सेना लानी पड़ती, और भारत के खर्च पर शासन चलाना पड़ता।

निष्फलता की खीझ से अंग्रेज़ों की ऐंठ बढ़ने लगी। मैकनाटन हरात और पेशावर जीतने की धुन में था। काबुल के अंग्रेज़ अफसरों ने अनेक अफगान परिवारों की इज्जत खराब की। इस बात को अफगान भूलने वाले न थे। २ नवम्बर १८४१ को उन्होंने बर्न्स का मकान घेर लिया और उसे सड़क पर खींच कर मार डाला। काबुल के अंग्रेज़ों ने मदद के लिए कन्दहार और गन्दमक सन्देश भेजे; पर कोई मदद न आई। इस बीच उनकी रसद भी अफगानों ने छीन ली। तब ११ दिसम्बर को मैकनाटन ने दोस्त मुहम्मद के बेटे अकबरखाँ से यह सन्धि की कि अंग्रेज़ों को अफगानिस्तान से लौटने दिया जाय तो वे दोस्त मुहम्मद को छोड़ देंगे। अकबरखाँ ने ओल माँगे। अभी यह बात-चीत चलती थी कि मैकनाटन ने फिर अफगान सरदारों को अकबरखाँ के खिलाफ भड़काने की कोशिश की। मैकनाटन और अकबरखाँ का मिलना तय हुआ। अकबर ने इन गुप्त षड्यन्त्रों के बारे में उससे सफाई तलब की, तब दोनों गर्म हो उठे। मैकनाटन वहीं मारा गया।

अन्त में जनवरी १८४२ में अफगानों से फिर सन्धि कर अपनी तोपें और रसद उन्हें सौंप कर, तथा १२० कैदी, जिनमें दो अफसर और अनेक स्त्रियाँ थीं, अकबरखाँ को ओल दे कर, अंग्रेज़ी सेना और उसके हाली-मुवाली कुल १६ हज़ार आदमी वापिस चले। एक हफ्ते में जगदलक दर्रे तक पहुँचते-पहुँचते सब खतम हो गये! एक घायल डाक्टर ब्राइडन बच कर उस संहार की कहानी सुनाने जलालाबाद पहुँचा।

अमीर दोस्त मुहम्मद

जलालाबाद वाली सेना भी घिर गई थी। फीरोजपुर से चार रेजिमेंटें पंजाब के रास्ते उसकी मदद को पेशावर भेजी गईं। पेशावर में अंग्रेज़ों ने सिक्ख अधिकारियों से अनुरोध किया कि वे उनकी मदद करें या खुद जलालाबाद तक बढ़ें। सिक्ख नाजिम ने अपनी रेजिमेंट के पंचों से पूछा। उन्होंने घृणा से इनकार कर दिया। औकलैंड ने तब जनरल पोलक को पेशावर भेजा और कन्दहार के जनरल नौट को अफगान युद्ध का अधिनायक बना दिया। तभी औकलैंड के स्थान में एलिनबरो गवर्नर-जनरल हो कर आया (२८-२-१८४२)। उसके आने के शीघ्र बाद अंग्रेजी सेना को गजनी भी छोड़नी पड़ी और शाहशुजा एक अफगान की गोली से मारा गया।

पर उसी समय पोलक ने खैबर पार किया और दस दिन बाद जलालाबाद पहुँच गया, जहाँ अंग्रेजी सेना अब डट कर लड़ रही थी। एलिनबरो ने नई हारों से घबरा कर पोलक को पेशावर वापिस आने और नौट को कन्दहार से लौटने का आदेश भेजा, परन्तु उन दोनों ने वे आदेश नहीं माने।

§१२. **पहला अफीम युद्ध**—इस बीच अंग्रेजों का चीन से भी युद्ध

चल रहा था।

चीन में पहले-पहल सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगाली व्यापारी पहुँचे थे और उन्होंने मकाओ बन्दरगाह ले लिया था। उनकी लुटेरी प्रवृत्ति देख कर चीनी सम्राट् ने और किसी बन्दर में उन्हें घुसने न दिया। ओलन्देज और अंग्रेज १७वीं सदी में वहाँ पहुँचे। सन् १७५७ से युरोपी व्यापार के लिए चीन का केवल एक सबसे दक्खिनी बन्दरगाह क्वाङतुङ (कैंटन) नियत कर दिया गया था। परन्तु वहाँ भी ये लोग बसने न पाते थे। वे मकाओ से खास मौसम में बिना परिवारों के क्वाङतुङ आने पाते और व्यापारिक लेन-देन कर लौट जाते थे। शुरू में यह व्यापार एकतरफा था। चीन से ये लोग रेशम चाय आदि ले जाते और बदले में कोई चीज इनके पास लाने की न होती इसलिए सोना-चाँदी ही लाते थे। धीरे-धीरे ये भी कई चीजें लाने लगे जिनमें अफीम मुख्य थी। पीछे अफीम का आयात इतना बढ़ता गया कि १८३० ई० से चीन के निर्यात का पलड़ा हलका रहने लगा। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का अफीम के व्यापार पर एकाधिकार होने से अंग्रेजों को इस व्यापार में दुहरा नफा था।

चीन सम्राट् ने सन् १८३८ में अफीम के व्यापार को बन्द करने की कोशिश की। अंग्रेज व्यापारियों की सब अफीम जब्त कर ली गई और उनसे जमानत माँगी गई कि आगे से अफीम न लायँगे। इस पर अंग्रेज क्वाङतुङ से हाङकाङ हट गये और युद्ध छेड़ दिया (१८४० ई०)। उन्होंने क्वाङतुङ की नाकाबन्दी कर दी, उत्तर की तरफ बढ़ कर तट को उजाड़ा, और पाँच बन्दरगाह छीन लिये। उसके बाद क्वाङतुङ दखल कर लिया, और भाप-जहाजों से याङचे नदी में घुस कर चीनी साम्राज्य के सूखे बाँस की तरह दो टुकड़े करने लगे।

अफगानिस्तान में मार खा कर अंग्रेजों ने चीन से शीघ्र सन्धि कर ली (अगस्त १८४२)। हाङकाङ उन्हें मिला; जब्त अफीम के दाम के अलावा बड़ा हरजाना भी उन्होंने पाया। क्वाङतुङ से शांघाई तक पाँच बन्दरगाह व्यापार के लिए खोल दिये गये और उनमें रहने तथा खुला व्यापार करने का अधिकार भी मिल गया। सबसे बढ़ कर यह हुआ कि चीन ने चुंगी नियत करने का अपना अधिकार छोड़ दिया और आगे से विदेशी व्यापारियों की सलाह से

इसके बाद उसने हैदराबाद को घेर कर सर किया । अंग्रेज़ी सेना ने उस धनी शहर को खुल कर लूटा; अकेले नेपियर को उस लूट में से सात लाख रुपये मिले । अंग्रेज़ सारजेंटों और सैनिकों की स्त्रियाँ अमीरों के जनानों में भेजी गईं, और उन्होंने उन अभागिनियों की नाकों और कानों से कीमती ज़ेवर नोच-नोच कर विनोद किया और अपनी जेबें भरीं । रेजिडेंट सर जेम्स आउटराम ने इस लूट का एक रुपया भी छूने से इनकार किया । लेकिन नेपियर सीधा सिपाही था; उसे मक्कारी पसन्द न थी । इस धींगाधाँगी पर कुछ लोगों ने अँगुली उठाई तो उसने सीधा जवाब दिया, "हमारा भारत जीतने का···एकमात्र उद्देश रुपया था । पिछले साठ बरस में भारत से एक अरब पौंड से अधिक निचोड़ा जा चुका कहा जाता है । इसमें से एक-एक शिलिंग लहू में से बीना गया, पोंछा गया और कातिल की जेब में भरा गया है; पर चाहे कितना ही पोंछो और धोओ, निगोड़ा दाग तो छुटता नहीं ।"

हैदराबाद लेने के एक महीना बाद नेपियर ने खैरपुर (उत्तरी सिन्ध) के अमीर को डब्बो पर हराया, और यों समूचा सिन्ध दखल कर लिया ।

§१५. **ग्वालियर का अधीन होना**—सिन्ध के बाद पंजाब की बारी थी । लेकिन अंग्रेज़ पंजाब की तरफ बढ़ते तो उन्हें बायीं ओर से एक और शत्रु का खतरा रहता । वह थी ग्वालियर की सेना । जैसा कि पीछे [११,१ § १४] स्पष्ट किया जा चुका है, ग्वालियर अभी तक अंग्रेज़ों का आश्रित या अधीन न हुआ था । महादजी शिन्दे ने जिस सेना की नींव रक्खी थी, वह अभी तक विद्यमान थी, और सतलज के दक्खिन वही एकमात्र सधी हुई सुसज्जित भारतीय सेना थी । अंग्रेज़ों की दृष्टि में "ऐसी बड़ी सेना का यहाँ रहना सतलज से आने वाले शत्रु के मुकाबले को बढ़ने वाली हमारी सेना के लिए खतरनाक" था । इसलिए वे मनाते थे कि "ग्वालियर दरबार और उसकी सेना को भूकम्प निगल जाय तो अच्छा हो ।"

सो ठीक उनकी मनौती और आवश्यकता के अनुसार इसी समय राजा जनकोजीराव शिन्दे की एकाएक विष दिये जाने से मृत्यु हुई (७-२-१८४३) । उसकी ११ वर्ष की विधवा ८ बरस के बच्चे, जयाजीराव, को गोद ले कर राज

करने लगी। असल राजकाज दरबार के हाथ में रहा। एलिनबरो ने दरबार पर दबाव डाल कर अपने एक पिट्ठू दिनकरराव को प्रधान नियत कराया। परन्तु कुछ समय बाद रानी और दरबार ने उसे हटा कर सर्वसम्मति से दादा खासजी-वाला को प्रधान नियत किया। दादा योग्य शासक था। उसने सेना का बकाया वेतन दे डाला; युरोपी और दोगले अफसरों को हटा दिया तथा अनेक अंग्रेज-विरोधियों को, जिन्हें गत महाराजा ने रेजिडेंट के दबाव में आ कर हटा दिया था, फिर से पद दिये।

एलिनबरो ने ग्वालियर के उत्तर और पूरब सेना जमा कर दरबार से मुतालबा किया कि दादा को उसके हाथ सौंप दे। दरबार ने दब कर ऐसा कर दिया तो एलिनबरो ने उसे और दबाया। अंग्रेजी सेना दोनों तरफ से बढ़ी। इधर लड़ाई की कोई तैयारी न थी, इसी से चम्बल के घाटों पर भी उसे किसी ने न रोका। मुसीबत सिर पर आ जाने पर ग्वालियर की सेना लड़ी। एक ही दिन (२९-१२-१८४३ ई०) ग्वालियर के उत्तर महाराजपुर तथा दक्खिन पनियार पर लड़ाइयाँ हुई, जिनमें ग्वालियर की नेतृहीन सेना बहादुरी से लड़ कर हारी। महाराजपुर की जीत अंग्रेजों को काफी मँहगी पड़ी।

सिन्ध दखल करने के कुछ मास बाद यदि ग्वालियर को भी अंग्रेज दखल कर लेते तो देशी राज्य भड़क उठते। इसलिए एलिनबरो ने संयम से काम लिया और ग्वालियर को अधीन राज्य बना कर सन्तोष किया।

§१९. पंजाब में सेना का राज और उसके विरुद्ध तैयारी— सन् १८४३ में सिक्खों ने कश्मीर के उत्तरपच्छिम गिल्गित जीत लिया। वह उनका अन्तिम विजय था। सन् १८३५ में फीरोजपुर के जागीरदार के निःसंतान मरने पर अंग्रेजी सरकार ने उस शहर को ले कर वहाँ भारी छावनी डाल दी थी। एलिनबरो ने अम्बाला, कसौली और जुतोग (शिमला) में भी नई छावनियाँ डालीं।

सिन्धनवाला सरदारों को अंग्रेजी सरकार की कोशिश से सिक्ख दरबार में फिर ऊँचा स्थान मिल गया। अजीतसिंह सिन्धनवाला महाराजा शेरसिंह का घनिष्ठ मित्र बन गया। इसके बाद एक दिन (१५-९-१८४३ ई०) उसने एका-

एक शेरसिंह, कुमार प्रतापसिंह, और वजीर ध्यानसिंह की हत्या कर डाली। ध्यान के बेटे हीरासिंह की प्रेरणा से सेना ने लाहौर का किला घेर लिया; अजीतसिंह लड़ाई में मारा गया। तब रणजीतसिंह की छोटी रानी जिन्दाँ का ५ बरस का बच्चा दिलीपसिंह महाराजा तथा हीरासिंह उसका वज़ीर बनाया गया।

एलिनबरो पंजाब पर घात लगाये बैठा था। वह सतलज में लाने को मुम्बई में लोहे की ऐसी नावें तैयार करवा रहा था जो पीपों (पोण्टून) की तरह भी बर्ती जा सकें। अप्रैल १८४४ में उसने लिखा, "मेरी अभिलाषा है कि नवम्बर १८४५ तक हमें सतलज पार न करनी पड़े।"

अगले महीने अतरसिंह सिन्धनवाला ने, जो थानेसर में अंग्रेज़ों की शरण में था, अपने दल के साथ फीरोजपुर पर सतलज पार की और एक प्रसिद्ध सिक्ख सन्त को तथा रणजीतसिंह के एक दत्तक बेटे को अपने साथ मिला कर लाहौर की तरफ बढ़ने लगा। वजीर हीरासिंह ने इस संकट के अवसर पर खालसा पंचायत के सामने खड़े हो विनती की और उन्हें याद दिलाया कि सिन्धनवाले अंग्रेज़ों के हथियार हैं। एक सेना तब उनके विरुद्ध बढ़ी। लड़ाई में अतरसिंह और उसके साथी मारे गये।

हीरासिंह राजकाज में अपने शिक्षक पंडित जल्ला की सलाह से चलता था। जल्ला विचारशील आदमी था। पंजाब के लोकमत को जाग्रत करने के लिए वह प्रेस की स्थापना की बात भी सोचता था। उसका ख्याल था कि पंजाब की मालगुजारी का बड़ा अंश गुलाबसिंह के हाथ चला जाने से राज्य की क्षति होती है। इसलिए उसने सेना में धीरे-धीरे यह विचार फैला दिया कि गुलाबसिंह से उसकी जागीरें वापिस लेनी चाहिएँ। वह दूसरे जागीरदारों की जागीरें भी जब्त करने लगा। लेकिन इस काम में उसने कुछ जल्दी की। जिन जागीरदारों की जागीरें जब्त की गईं, वे सिक्ख थे, और सिक्ख सेना को उकसाने लगे। इस बीच जल्ला के मुँह से रानी जिन्दाँ के विषय में कुछ अनुचित शब्द निकल गये। रानी के भाई जवाहरसिंह ने तब सेना को एकदम भड़का दिया। जल्ला और हीरासिंह पकड़ कर मार डाले गये (२१-१२-१८४४)।

कुछ अव्यवस्था के बाद जवाहरसिंह तथा एक लालसिंह ने नया शासन

बनाया। उन्होंने गुलाबसिंह से समझौता कर लिया। किन्तु सेना के पंचों ने समझौते की शर्तें न मानीं और जम्मू पर चढ़ाई की। चतुर गुलाब ने दान और विनय द्वारा सेना को खुश किया, और अपनी जागीरों का बड़ा अंश राज्य को सौंप दिया। उसके कुछ सैनिक लाहौर की सेना से झगड़ पड़े, तब उसने अपने को सेना के हाथ में सौंप दिया और कैदी हो कर वह उनके साथ लाहौर तक गया। वह कैदी चाहता तो आसानी से वजीर बन सकता था क्योंकि सेना उसकी योग्यता और विनय की कायल थी। किन्तु गैर-सिक्ख होने के कारण उसे उनपर भरोसा न था। उसकी उपस्थिति में जवाहरसिंह बाकायदा वजीर बनाया गया (१४-५-१८४५ ई०)।

जवाहर तुच्छ आदमी था। सेना के प्रभाव से घबरा कर उसने दो बार सतलज पार भागने की कोशिश की, पर सेना चौकन्नी थी। रणजीतसिंह के एक और दत्तक बेटे ने अटक में विद्रोह किया। वह पकड़ कर लाहौर लाया गया। जवाहर ने उसे मरवा डाला। इस बात से सेना ऊब उठी। पंचों ने कहा कि ऐसी बातें राज्य में होने पायँगी तो हम सब खतरे में पड़ जायँगे। पंचायतों की संगत जुटी और उसमें तय हुआ कि जवाहर को मृत्यु-दंड दिया जाय। २१-६-१८४५ को उसे खालसा संगत के सामने बुलाया गया। बहुत सा सोना और रत्न ले कर हाथी पर बैठे हुए, महाराजा को साथ लिये वह वहाँ पहुँचा और भेंट-पूजा से पंचों को फुसलाना चाहा। तब उसे कड़ाई से कहा गया कि चुप रहो और महाराजा को एक तम्बू में बिठा दिया गया। तब पंचों की आज्ञा से सैनिकों ने आगे बढ़ कर जवाहर को गोली मार दी। इसके बाद राज्य में किसी किस्म की लूटमार या अव्यवस्था न हुई।

अब गुलाबसिंह को वजीर बनने के लिए बुलाया गया, पर वह त्रास के मारे न आया। इसपर नवम्बर १८४५ में लालसिंह को वजीर तथा तेजसिंह को प्रधान सेनापति चुना गया।

उधर एलिनबरो की जगह पर हार्डिंज गवर्नर-जनरल हो कर आ गया था (१-८-१८४४), और पंजाब के पड़ोस की छावनियों में सेना और सामान बराबर बढ़ाया जा रहा था। सितम्बर १८४५ में मुम्बई वाले नाव-पीपे फीरोजपुर

आ पहुँचे। सिक्ख जागीरदारों के साथ षड्यन्त्र चल ही रहे थे। सिक्खों के अनेक स्वार्थी जागीरदार सदा से चाहते थे कि पंजाब में अंग्रेज दखल दें जिससे उनकी जायदादें स्थिर हो जायँ। सतलज के पूरब के जागीरदारों ने इसी प्रेरणा से अपने को अंग्रेजों की रक्षा में सौंपा था। सतलज के पच्छिम के जागीरदार पहले रणजीतसिंह की प्रतिभा से और अब शस्त्र-बद्ध जनता के तेज से पराभूत रहे। वे अब सोचने लगे कि सेना के नाश से ही उनका बचाव होगा। जिन लालसिंह और तेजसिंह को सिक्खों ने अपना नेता चुना वे न केवल उसी प्रकार के जागीरदारों में से थे, प्रत्युत अंग्रेजों के षड्यन्त्र में गहरे शामिल हो कर भड़काऊ कारिंदों का काम कर रहे थे।

§ १७. सतलज की लड़ाइयाँ—अक्तूबर में हार्डिंज पंजाब की तरफ रवाना हुआ। लालसिंह और तेजसिंह ने सेना को अंग्रेजों की तैयारी दिखा कर ताना देते हुए पूछा—"क्या तुम देखते रहोगे जब कि पंजाब को विदेशी पद-दलित करेंगे?" वीर सिक्खों ने उत्तर दिया—"हम जान पर खेल कर अपनी भूमि को बचायेंगे।" वे न केवल इन नीच देशद्रोहियों के बहकाने में आ गये, प्रत्युत युद्ध के समय एक नेता की जरूरत देखते हुए उन्होंने पंचायतें बन्द कर इन्हीं के हाथ सेना की कुल बागडोर सौंप दी! यों नवम्बर १८४५ में, ठीक उस समय जब कि अंग्रेज चाहते थे, सिक्खों ने युद्ध का निश्चय किया, और उनकी सेना सतलज की ओर बढ़ी।

शुरू दिसम्बर में हार्डिंज अम्बाले पर प्रधान सेनापति गफ से आ मिला। अम्बाले से अंग्रेजी सेना फीरोजपुर की तरफ बढ़ी। सिक्खों ने फीरोजपुर के ऊपर सतलज पार की। फीरोजपुर में तब केवल ७ हजार अंग्रेजी सेना थी। सिक्खों के लिए स्पष्ट रास्ता यह था कि सब से पहले उस छावनी को छीन लेते। लेकिन लालसिंह और तेजसिंह को तो अपनी सेना को पिटवा देना अभीष्ट था। उन्होंने अंग्रेज अफसरों को सन्देश भेजा कि डरें नहीं, और अपने सिक्खों से कहा कि इस तुच्छ सेना से क्या लड़ना, आगे बढ़ कर गवर्नर-जनरल को मारो या कैद करो! यों अपनी सेना को आगे ले जा कर फीरोजपुर से २० मील, मुदकी गाँव पर, लालसिंह ने उसके एक अंश को अंग्रेजों की बड़ी फौज के साथ

टकरा दिया (१८ दिसम्बर १८४५ ई०) । गफ ने उसे धकेल दिया और तय किया कि शत्रु से लड़ने से पहले फीरोज़पुर वाली टुकड़ी से मिला जाय ।

सिक्ख सेना की हरावल मुदकी और फीरोजपुर के बीच फेरूशहर* गाँव के गिर्द घोड़े के सुम की शकल में पड़ी थी । २१ दिसम्बर को अम्बाला और फीरोजपुर की सेनाओं के मिल जाने पर हार्डिंज और गफ ने उस पर सन्ध्या से एक घंटा पहले हमला किया । अंग्रेज़ी सेना भरोसे से बढ़ी, उनकी तोपें गोले उगलने लगीं । लेकिन सिक्ख तोपों ने तेज़ी से और ठीक निशाने से जवाब दिया; तोपों के बीच से सिक्ख पदाति दृढता से बन्दूकें दागते रहे । इस मुकाबले को देख कर अंग्रेज़ दंग रह गये । उनकी तोपें उखड़ गई, बढ़ते हुए दस्ते धक्के खा कर लौटे, पाँतें टूट गई और अंधेरे में नायकों को पता न चलता कि उनके सिपाही कहाँ गये । ढेर हुई सेना जहाँ जाड़े से बचने को आग जलाती वहीं सिक्ख तोपों के गोले आ कर पड़ते । अंग्रेज़ उस दिन जिस धरती पर खड़े थे, उसपर उन्हें भरोसा न था । कोई रक्षित सेना उनके नजदीक न थी; सिक्खों के पास दूसरी ताजी सेना तैयार थी ।

गफ और हार्डिंज ने तब भी हिम्मत करके हमला किया और दूसरे दिन सुबह सिक्खों को उस शिविर से धकेल दिया । किन्तु तभी सिक्ख सेना का दूसरा अंश तेजसिंह की नायकता में आ गया । गद्दार तेजसिंह जान बूझ कर देर करता रहा, जिससे लालसिंह वाली सेना पूरी पस्त हो जाय और अंग्रेज़ फिर अपनी पाँतें बाँध लें । उसके बाद भी उसने दृढता से हमला न किया, और छोटी-मोटी मुठभेड़ें करके ठीक उस समय भाग निकला जब कि अंग्रेज़ी तोपों का गोला खतम हो चुका था और उनकी सेना का एक अंश फीरोजपुर लौट रहा था । उस समय यदि सिक्ख दृढता से बढ़ते तो अंग्रेज़ों की बाकी सेना की पूरी सफाई हो जाती ।

इस लड़ाई से पता चला कि सिक्ख तोपों की मार अंग्रेज़ी तोपों से लम्बी, गोला ज्यादा भारी, पछाड़ कम तथा चलाने वाले अंग्रेजी चालकों से

---

*'फेरूशहर' का अंग्रेज़ी में 'फीरोज़शाह' बना दिया गया है ।

अधिक होशियार थे। सिक्ख नेताओं की गद्दारी से अंग्रेज़ों की जीत तो हुई, पर उनकी शक्ति को लकवा मार गया। उन्होंने सिक्खों को आराम से सतलज पार कर नई तैयारी करने दी, तथा स्वयं दूर-दूर से नई सेनाएँ और एक-एक दो-दो अफसर भी बुलाये। उन्हें अब दिल्ली और जमना के घाटों की चिन्ता लगी थी!

अंग्रेज़ों की कुमुक आने पर उन्होंने फीरोजपुर से हरि-के-पत्तन तक मोर्चे बनाये। सिक्ख सामने सतलज के उस पार थे। सरहिन्द प्रदेश में रसद-सामान जुटाने और लाने में भी अंग्रेज़ों को दिक्कत होने लगी। तभी दस हज़ार सिक्ख सेना ने रणजोरसिंह के नेतृत्व में लुधियाने के सामने सतलज पार की। मेजर-जनरल हैरी स्मिथ को लुधियाना बचाने भेजा गया। रणजोर लुधियाने के सात मील पच्छिम बद्दोवाल पर था; स्मिथ ने दाहिने घूम कर, उससे बच कर, निकलने की कोशिश की (२१-१-१८४६)। लेकिन सिक्ख उसका रास्ता काटने बढ़े। मुख्य सेना के आने पर स्मिथ सामना करने को पाँतें बनाने लगा। तब उसने देखा कि चुस्त सिक्खों ने उसके पिछली तरफ, रेत के टिब्बों के पीछे-पीछे से, चुपके चुपके अपनी तोपें ला कर उसका बायाँ पासा घेर लिया है। "ये तोपें बड़ी फुर्ती और ठिकाने से गोलों की धारा बहाने लगीं। उनके गोलों की लगातार सांय-सांय में झुंड के झुंड गिरते सैनिकों की कराहें न सुन पड़ती थीं।" स्मिथ ने सेना को फिर कूच का हुक्म दिया। सिक्खों ने पीछा न किया, "क्योंकि उनका कोई नेता न था, या जो था वह अंग्रेज़ों की हार न चाहता था।" यह मुठभेड़ फेरूशहर की मुठभेड़ की तरह सैनिकों ने अपनी सूझ से की थी। उन्होंने स्मिथ की टुकड़ी का तमाम असबाब लूट लिया और अनेक अंग्रेज़ कैद किये।

सिक्खों के हौसले अब बढ़ने लगे। समूची सेना ने स्वाभाविक प्रेरणा से गुलाबसिंह को बुला कर वजीर बनाया। गद्दार लालसिंह और तेजसिंह भीतर-भीतर कांपने लगे। २७ जनवरी को गुलाबसिंह लाहौर पहुँचा। किन्तु, वह बहुत देर से पहुँचा! रणजोरसिंह बद्दोवाल से सतलज के किनारे १५ मील नीचे हट गया था। लुधियाना पहुँच कर नई कुमुक के साथ हैरी स्मिथ उसके मुकाबले को निकला। अलीवाल और बुँदरी गाँवों पर २८ जनवरी को फिर उनकी लड़ाई

हुई। रणजोरसिंह अपने डोगरों के साथ भाग निकला; सिक्ख तोपची और पदाति वीरता से लड़े, पर उनकी पूरी हार हुई। इस हार ने अवसरदर्शी गुलाबसिंह का रुख बदल दिया। अब वह भी अंग्रेज़ों से बातचीत करने लगा। हार्डिंज ने देखा, सिक्खों के समान वीर सुसज्जित बहुसंख्यक सैनिकों का वैसे योग्य नेता के संचालन में चले जाना खतरनाक है, और उसे खरीद लेने का निश्चय किया।

हार्डिंज ने कहा कि सिक्ख सरकार को स्वीकार किया जा सकता है, बशर्ते कि वह अपनी सेना को तोड़ दे। गुलाबसिंह ने कहा सेना पर उसका वश नहीं चलता। तब यह तय हुआ कि सिक्ख सेना पर अंग्रेज़ आक्रमण करें और जब वह पिट जाय तब सिक्ख सरकार खुल्लमखुल्ला उसका साथ छोड़ दे तथा अंग्रेज़ों को बे-रोक-टोक लाहौर जाने दे। "सयानी नीति और बेहया गद्दारी की ऐसी अवस्थाओं के बीच सभरावाँ की लड़ाई लड़ी गई।"

शुरू फरवरी में दिल्ली से अंग्रेज़ों की गढ़तोड़ तोपें आ गईं, जिन्हें सिक्खों के विरुद्ध मैदान में बर्तना तय किया गया था। सिक्ख सरकार के देशद्रोह के कारण सिक्ख सेना को रसद-बारूद भी ठीक न मिल रहा था। उनकी मुख्य सेना सतलज के पूरब सभरावाँ के मोर्चे पर जमा हुई। मोर्चाबन्दी किसी योजना या आदेश पर न हुई थी। "सैनिकों ने सब कुछ किया, पर नेताओं ने कुछ नहीं किया था। हिम्मती दिल और मेहनती हाथ बहुत थे, पर चलाने वाला दिमाग कोई न था।" मध्य और बायें पासे में सधे हुए सैनिक और अच्छी मोर्चाबन्दी थी; दाहिना पासा नदी की बालू में था, जहाँ मोर्चे बनाना कठिन था, और वहीं अनियमित सेना तेजसिंह के नेतृत्व में "रहने दी गई या जान बूझ कर रक्खी गई थी।" अंग्रेज़ों ने उसी पासे पर सब से जोर की चोट लगाना तय किया।

१० फरवरी को प्रातःकाल के अँधेरे और गहरी धुन्ध में अंग्रेज़ो सेना चुपचाप बढ़ी। सिक्ख झटपट तैयार हुए। सूर्योदय के साथ ही अंग्रेज़ी तोपखाने ने मुँह खोला और तीन घंटे बौछार करता रहा। सब बेकार। सिक्ख "दमक के बदले दमक और आग के बदले आग लौटाते हुए" निडर डटे रहे।

दूर की गोलाबारी से कुछ न बनता देख अंग्रेज़ी सेना का बायाँ पासा हमले के लिए बढ़ा और शत्रु के बढ़े हुए मोर्चों और खन्दकों में जा घुसा।

गद्दार तेजसिंह पहला हमला होते ही भागा और सतलज पार करते हुए पुल के बीच की एक नाव डुबाता गया। तब अंग्रेज़ों का दाहिना पासा भी बढ़ा, और असवार धकेले जा कर भी बढ़ता ही रहा। सख्त मुकाबले के बावजूद उन्होंने खाई कूद कर धुसबन्दी पर चढ़ कर शत्रु की तोपों को छीन लिया। तो भी लड़ाई खतम न हुई। सिक्ख पाँतों में सब जगह छेद हो जाने पर भी उनकी अकेली-दुकेली तोपें जहाँ-तहाँ चलती रहीं, और उनकी पाँत के मध्य में वीर आदमी डटे थे जो चप्पा-चप्पा ज़मीन के लिए जूझते थे। गोलों की मार के बीच धुसबन्दी पर बेधड़क खड़े अनेक सिक्ख तलवार घुमा कर अपने तोपचियों को दिखाते थे कि किधर गोरों के झुण्ड जमा हैं। धीरे-धीरे सब मोर्चे ले लिये गये और सिक्ख सेना नदी की तरफ धकेली गई। पर अन्त तक "एक भी सिक्ख ने समर्पण न किया या शरण न माँगी। वे भौंहें ताने और बेरुखी दिखाते धीरे-धीरे टहलते हुए हट जाते या अकेले-अकेले शत्रु-दल से लड़ते हुए निश्चित मौत पाते। पराजितों के अदम्य तेज को देख विजेता चकित रह जाते; उनके शत्रु उनपर वार करते रुक जाते। परन्तु (अंग्रेज़) नेताओं की प्रतिहिंसा तृप्त न हुई थी, या कूटनीति अपना हिसाब न चुका पाई थी। लाशों के ढेरों के बीच खड़े हो उन्होंने तोपखाने को और आगे—करीब सतलज के अन्दर तक—बढ़े चलने का आदेश दिया, जिससे कि वह सेना जो इतने दिन तक उनकी शक्ति की अवहेलना करती रही थी, पूरी तरह नष्ट हो जाय।"

अंग्रेज़ी सेना सतलज पार कर पंजाब में घुसी। अमृतसर की तरफ अभी २० हज़ार सिक्ख सेना और थी; पर उनकी पंचायती शक्ति टूट चुकी थी, और दरबार ने अंग्रेज़ों से सुलह कर ली। सेना ने दरबार की यह बात मान ली कि वज़ीर गुलाबसिंह, लाहौर में सिक्ख राज रखते हुए, जैसी चाहे सुलह करे। पंजाब सरकार ने अंग्रेज़ों को सतलज-व्यास का द्वाबा तथा डेढ़ करोड़ रुपया हरजाना देना मान लिया।

गुलाबसिंह की आकांक्षा पंजाब का वज़ीर बनने की थी। हार्डिंज ने देखा कि वह वज़ीर बन जाय तो बची-खुची सिक्ख सेना के सहारे अब भी पंजाब में दृढ राज्य खड़ा कर लेगा। इसलिए उसने उसे सिक्खों से अलग करना तय

किया। लाहौर दरबार डेढ़ करोड़ में से पचास लाख की रकम ही दे पाया था। बाकी एक करोड़ के बजाय अंग्रेज़ों ने ब्यास से सिन्ध तक का पहाड़ी प्रदेश ले कर उसमें से काँगड़ा और हज़ारा ज़िले अपने पास रख कर बाकी ७५ लाख में गुलाबसिंह को बेच दिया, और उसे महाराजा का पद दिया।

देशद्रोही लालसिंह वज़ीर बनाया गया। वह और उसके साथी बची खुची सिक्ख सेना के मुकाबले में भी न टिक पाते इसलिए उन्होंने दिलीपसिंह के बालिग होने तक अंग्रेज़ी सेना को पंजाब में रख लिया और एक अंग्रेज़ रेजिडेंट को दरबार का मुखिया बना कर पूरा शासन सौंप दिया।

§ १८. नेपाल में राणाशाही का उदय—रामजंग पाँडे के नेतृत्व में नेपाली अंग्रेज़ों के विरुद्ध उठने का जो नया प्रयत्न कर रहे थे [ऊपर § ६], उसकी रोकथाम के लिए अंग्रेज़ रेजिडेंट हौगसन ने बड़ी चतुराई से नेपाली सरदारों का पारस्परिक द्वेष उभाड़ा और अपने भेदिये बनाये। नेपाल दरबार पंजाब दरबार से जो गुप्त बातचीत उस समय चला रहा था उसका बहुत कुछ भेद वह माथबरसिंह के भानजे जंगबहादुर द्वारा पाता रहा। सन् १८४२ में नेपाल सीमा पर का चौकसी दल हटा लिया गया, क्योंकि तब हौगसन की सफलता से उसकी आवश्यकता न रह गई। एलिनबरो ने पंजाब की तरह नेपाल पर चढ़ाई की भी योजना बनाई और दोनों योजनाएँ सम्मति के लिए ड्यूक आव वेलिंगटन के पास इंग्लैंड भेजीं। पर वेलिंगटन ने नेपाल वाली योजना को अव्यावहारिक कहा और नेपाल पर चढ़ाई किये बिना ही वहाँ अंग्रेज़ों की इष्ट-सिद्धि हो गई।

राजा राजेन्द्रविक्रम दुर्बल व्यक्ति था। उसकी बड़ी रानी पाँडे पक्ष की मुख्य सहारा थी। वह विष दे कर मारी गई। राजा ने उसके बाद छोटी रानी को शासन चलाने के सब अधिकार दे दिये (मार्च १८४३)। वह बहुत बुरी स्त्री थी। तभी माथबरसिंह को पंजाब से वापिस बुला कर प्रधान मंत्री बनाया गया। मई १८४३ में पाँडे पक्ष के अनेक प्रमुख लोगों को फाँसी चढ़ा दिया गया।

जंगबहादुर १८४४ से छोटी रानी पर प्रभाव जमा कर प्रमुखता में आने लगा। हौगसन के स्थान में तब हेन्री लारेंस रेजिडेंट बन कर आ गया था।

१८ मई सन् १८४५ को रानी ने माथवर को महल में बुलाया । राजा वहाँ नहीं था। जंगबहादुर महल के जनाने में था । उसने वहीं से एक गोली मार कर अपने मामा को ठंडा कर दिया । जिस निर्घृणता से उसने यह हत्या की उसे देख अंग्रेज़ों का उसपर भरोसा बढ़ गया। उसे उन्होंने शस्त्रास्त्र दिये।

इसके बाद फतहजंग चौतरिया प्रधान मंत्री नियत हुआ तथा गगनसिंह प्रधान सेनापति । जंगबहादुर भी मंत्रिमंडल में रहा । गगनसिंह से रानी की विशेष मैत्री थी । १४ सितम्बर १८४६ को रात १० बजे गगन अपने घर में पूजा करता था कि खिड़की में से एक गोली ने आ कर उसका काम तमाम कर दिया । यह भी जंग का काम था। पर झुँझलाई हुई रानी ने दूसरों पर सन्देह किया और उलटा जंग से ही सलाह ली कि क्या किया जाय। उसकी सलाह से उसने उसी रात राजा और सब सरदारों को काठमांडू के कोट में, जहाँ दरबार लगता था, बुलाया । किसी को पता न था कि वे क्यों बुलाये गये हैं इसलिए सब निहत्थे आये, पर जंग ने अपनी सेना बाहर तैयार रक्खी। इसके बाद उसने रानी को उभाड़ा और ऐसा वातावरण पैदा किया जिससे वह अपनी सेना का उपयोग कर सके। वीरकिशोर पांडे नामक युवक को गगनसिंह की हत्या के सन्देह में अभियुक्त बना कर रानी की आज्ञा से हथकड़ी बेड़ी पहना कर वहाँ लाया गया था।

राजा ने रानी को समझाने का यत्न किया कि अभियुक्त को सफाई का अवसर देना चाहिए, पर वह न मानी। विवाद बढ़ा तो राजा वहाँ से चुपचाप चला गया। जंगबहादुर ने तब रानी को और उभाड़ा और रानी ने अभियुक्त को वहीं मारने का हुक्म दिया। प्रधान मन्त्री फतहजंग चौतरिया तथा एक और मन्त्री ने कहा, इसका परिणाम बहुत बुरा होगा। जंगबहादुर ने दोनों मन्त्रियों से आग्रह किया कि रानी की बात मानें, पर उन्होंने कहा कि अभियोग का ठीक ठीक विचार होना चाहिए और अभियोग सिद्ध हो तभी दण्ड मिलना चाहिए। रानी तब उनपर भी बिगड़ी और वीरकिशोर पर स्वयं तलवार चलाने को तैयार हुई। दोनों मन्त्रियों और जंग ने उसे रोका। तब वह ऊपर की मंजिल को चढ़ी;

वे उसके पीछे पीछे जाने लगे। उसके ऊपर जाते ही जंगबहादुर के सैनिकों ने गोलियाँ चलाईं और फतहजंग को वहीं गिरा दिया। उसके बाद वहाँ उपस्थित ३० और सरदारों तथा उनके १०३ अनुचरों का उन्होंने वहीं संहार कर दिया, जिनमें जैथक पर अंग्रेजों को हराने वाला रणजोरसिंह थापा [११,१ § १३] और उसके दो भाई भी थे। जंगबहादुर प्रधान मन्त्री और प्रधान सेनापति बन बैठा।

डेढ़ मास बाद उसने १३ और सरदारों का, जो मुख्यतः बसनैत वंश के थे, वध किया। दिसम्बर में राजा बनारस भाग गया। जंगबहादुर ने तब रानी को भी भगा दिया। राजा ने नेपाल तराई पर चढ़ाई की, जो विफल हुई। अगले वर्ष जंगबहादुर ने राजा को पदच्युत कर युवराज सुरेन्द्रविक्रम को गद्दी दे दी (१२-५-१८४७)। राजा ने फिर चढ़ाई की और कैद हुआ। सुरेन्द्रविक्रम से जंग ने कुछ समय बाद सनद लिखवा ली कि जंग के वंश में प्रधान मन्त्री पद स्थिर कर दिया गया। जंग ने यह नियम बाँधा कि उसके बाद उसके भाई क्रम से शासन करेंगे और फिर सब भाइयों के बेटे आयुक्रम से। उसने अपने को महाराजा और राणा कहना भी शुरू किया। इसलिए उसकी चलाई पद्धति राणाशाही कहलाई।

नेपाल के सभी वंशों के सरदार—थापा, पांडे, चौतरिया, बसनैत आदि—जो पृथ्वीनारायण के साथ साथ उठे थे, अंग्रेजों के विरोधी थे। सन् १८०१–०४ में अंग्रेजों ने थापों के विरुद्ध पांडों का सहारा ले कर [११,१§७] फिर १८३७–४३ में थापों और दूसरों के सहारे से पांडों को कुचलने का यत्न कर अपना काम निकालना चाहा, किन्तु सफल न हुए। उन्होंने विभिन्न सरदारों को एक-दूसरे के विरुद्ध उभाड़ कर खरीदने के जो यत्न किये उनमें भी विफल हुए थे [११,१§७]। कारण यह कि इन सभी सरदार वंशों में पृथ्वीनारायण के समय से जागी हुई उच्च आकाङ्क्षाओं और भावनाओं की परम्परा चली आती थी, और पारस्परिक मतभेद होने पर भी उस परम्परा को तोड़ कर अपने देश का अहित करने को कोई तैयार न होता था। पंजाब की सिक्ख जनता-सेना की आदर्श-परम्परा की तरह नेपाल के सरदारों की यह आदर्श-परम्परा

अंग्रेज़ी साम्राज्य के रास्ते में काँटा थी। कोट† के कत्ले-आम से वह काँटा निकल गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सिक्ख राज्य अंग्रेज़ों द्वारा पूरब दक्खिन और पच्छिम से कैसे किस क्रम से घेरा गया?

२. अफ़गानिस्तान पर १८३९ में अंग्रेज़ों ने जो चढ़ाई की उसके लिए पड़ोस के किस किस शासक से क्या क्या षड्यन्त्र किया? उस चढ़ाई से वे क्या कुछ सिद्ध कर लेना चाहते थे?

३. कुमार नौनिहालसिंह कौन था? उसके विचारों और आदर्शों के बारे में आप क्या जानते हैं?

४. अफ़गानों के स्वतन्त्रता-युद्ध १८३९-१८४१ ई० का विवरण लिखिये और उसकी भीतरी प्रेरणाओं को स्पष्ट कीजिए।

५. बाजीराव २य ने १८०३ में पूने में अंग्रेज़ी सेना बुलाई, शाहशुजा ने १८३९ में काबुल में। अंग्रेज़ी सेना के महाराष्ट्र में और अफ़गानिस्तान में जाने के बाद जो घटनाएँ हुईं उनकी तुलना कीजिए। उस तुलना से उन्नीसवीं शताब्दी के मराठों और अफ़गानों की मनोवृत्ति में क्या अन्तर प्रकट होता है?

६. पंजाब में सिक्ख सेना की शक्ति का उदय कैसे हुआ? कब से कब तक वह शक्ति बनी रही और कैसे टूटी? उस बीच सिक्ख सेना ने अपनी शक्ति का उपयोग कैसे किया मो मुख्य घटनाओं का विवरण दे कर स्पष्ट कीजिए।

७. सन् १८४५-४६ की सतलज की लड़ाइयों का विवेचनात्मक विवरण दीजिए।

८. "सयानी नीति और बेहया गद्दारी की ऐसी अवस्थाओं के बीच सभरावाँ की लड़ाई लड़ी गई!" कौन सी वे अवस्थाएँ थीं, स्पष्ट कीजिए।

९. कोट का कत्ले-आम किन दशाओं में कैसे हुआ? उस कत्ले-आम के पीछे क्या योजना थी? उसका नेपाल और भारत के इतिहास पर क्या प्रभाव हुआ?

१०. निम्नलिखित के बारे में आप क्या जानते हैं—(१) सिन्धु-नौचालन-योजना, १८३१ ई० (२) बर्न्स (३) जोरावरसिंह (४) अफ़ग़ान युद्ध १८४०-४२ ई० (५) हैदराबाद

---

† नेपाली लोग उसका उच्चारण 'कोत' करते हैं, पर वस्तुतः वह हिन्दी शब्द कोट का रूपान्तर है। पंजाबी कोट, जैसे कोट-कांगड़ा = कांगड़े का गढ़, भी वही शब्द है। सब का संस्कृत मूल कोट्ट है।

(सिन्ध) की लूट १८४३ ई० (६) कश्मीर की बिक्री-खरीद १८४६ ई० (७) रामजंग पांडे।

११. 'सिक्ख जागीरदार तथा पंजाब में अंग्रेज़ी राज की स्थापना' इस विषय पर एक छोटा लेख लिखिए।

१२. सिक्खों ने लदाख, बोलौर, गिलगित कब किन दशाओं में जीते?

१३. अंग्रेज़ों ने ग्वालियर पर १८४३ ई० में चढ़ाई क्यों और किन दशाओं में की? उसका परिणाम क्या हुआ?

अध्याय ४

खँडहरों की सफाई

§१. खँडहरों की सफाई—भारतीय राज्य चोटें खा-खा कर खँडहर बन चुके थे; अब उन खँडहरों की सफाई करना बाकी था। अंग्रेज़ अब भारत की ज़मीन और साधनों से नफा कमाने को अधीर हो रहे थे। सिन्ध जीतने पर कपास का एक अच्छा क्षेत्र उनके हाथ आ गया था। किन्तु पंजाब, बराड और नागपुर की कपास भी उन्हें ललचा रही थी। नीलगिरि और कोडुगु में काफी की तथा बिहार-बंगाल में नील और पाट (जूट) की खेतियाँ करा के अंग्रेज़ पूँजीपति नफा कर रहे थे। अवध की ज़मीन भी वैसे व्यवसाय के लिए उन्हें लुभाती थी। कुमाऊँ और शिमले में उन्होंने नई बस्तियाँ बसाईं और बगीचे लगाये थे। नेपाल और कश्मीर को देख कर भी उनके मुँह में पानी भर आता था।

अंग्रेज़ों के हाथ में अब नये यन्त्र और साधन भी आ गये थे जिनके द्वारा वे समूचे भारत को शीघ्र पूरा दखल कर लेने की सोचते थे। सन् १८१३-१४ ई० में स्टिफन्सन ने लोहे की पटरी पर दौड़ने वाला एंजिन बना दिखाया था और १८२५-३० ई० में इंग्लैंड में पहली रेलगाड़ी चल पड़ी थी। तभी आम्पीयर नामक फ्रांसीसी ने बताया कि बिजली से चुम्बक शक्ति का काम लिया जा सकता है, और इस आधार पर १८३६ ई० में मौर्स नामक अमरीकी ने दूरलेखन (टेलीग्राफी) की ईजाद की। भाप से चलने वाले जहाज (स्टीमर) फ्रांस और अमरीका में उन्नीसवीं सदी के शुरू से ही जारी थे, और

हम देख चुके हैं कि सिन्ध और पंजाब के युद्धों में उनका प्रयोग हुआ था। लोहे के तारों और पटरियों से अब सारे भारत को कसा जा सकता था।

इस दशा में सन् १८४७ के शुरू में डलहौजी को हार्डिंज का उत्तराधिकारी बना कर भेजा गया। उसने कहा, मैं हिन्दुस्तान की ज़मीन को समथर कर दूँगा, और आते ही खँडहरों की सफाई में लग गया।

§२. दूसरा अंग्रेज़-सिक्ख युद्ध—सिक्ख राज्य के एक बार काबू आते ही अंग्रेज़ उसपर अपना शिकंजा कसने और मुसलमानों को सिक्खों के विरुद्ध उभाड़ने लगे। रणजीतसिंह के विश्वस्त मन्त्री फकीर अज़ीज़ुद्दीन का भाई नूरुद्दीन दरबारियों में से एक था। उसके द्वारा रेजिडेंट ने दरबार में अपना पक्ष दृढ़ करके रानी जिन्दाँ को लाहौर से शेख़ूपुरा हटा दिया। वे अंग्रेज़ अफसर, जो पंजाबी हाकिमों की "सहायता" के लिए सीमान्त के जिलों में भेजे गये थे, पच्छिमी पंजाब की लड़ाकू मुस्लिम जातियों से षड्यन्त्र करने लगे। इस प्रकार एडवर्डस् ने सिन्ध काँठे के टियाणों को तथा ऐबट और निकल्सन ने हज़ारा ज़िले के हज़ारियों को उभाड़ना शुरू किया।

रणजीतसिंह के समय का मुलतान का शासक दीवान सावनमल और उसका बेटा मूलराज सिक्ख राज्य के योग्यतम शासकों में से थे। मूलराज के शासन में प्रजा बहुत सुखी थी। अब उससे शासन ले लेने के लिए एक काहनसिंह और दो अंग्रेज़ों को भेजा गया। इसपर मुलतान में बलवा हो गया (१६-४-१८४८); अंग्रेज़ों के साथ गये हुए रक्षक सैनिक मुलतानियों से जा मिले। उस इलाके के हिन्दू, सिक्ख, मुस्लिम, सभी मूलराज के झंडे के नीचे जमा होने लगे। महारानी जिन्दाँ ने भी उसे पत्र भेज कर उत्साहित किया। रेजिडेंट करी ने नूरुद्दीन की मदद से महारानी को कैद कर बनारस भेज दिया। खालसा सैनिक इस पर क्षुब्ध हो उठे। लेकिन उन्हें सूझता न था कि क्या करें। वे कहते, "हमारी महारानी निर्वासित हो गई, दिलीपसिंह अंग्रेज़ों के हाथ में है, लड़ें तो किसके लिए? किन्तु यदि मूलराज चढ़ाई करे तो हम सरदारों और अफसरों को पकड़ कर उससे जा मिलेंगे।" इससे प्रकट है कि वीर और स्वाधीनताप्रेमी सिक्ख अपना कोई नेता न होने से किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे।

मुलतान के बलवे को दबाने के बजाय करी उसके बहाने लाहौर दरबार को जलील करने लगा। उसने दरबार से कहा, बलवे को दबाओ, नहीं तो पंजाब को दखल किया जायगा। उधर एडवर्ड स सिन्धसागर के कबीलों को ले कर मूलराज से लड़ने लगा। दरबार की तरफ से सरदार शेरसिंह को मूलराज के विरुद्ध भेजा गया, पर उसकी सेना मूलराज से जा मिली (१४-६-१८४८)।

शेरसिंह का पिता चतरसिंह हरिपुर-हज़ारा में हाकिम था। इसी समय ऐबट ने हज़ारियों को भड़का कर उसे घिरवा दिया था। इस दशा में शेरसिंह उत्तर की तरफ गया और उसने सिक्खों की ओर से अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। काबुल के अमीर दोस्तमुहम्मद ने सिक्खों को सहायता देने की सन्धि की। लेकिन लाहौर दरबार अब भी रेजिडेंट के काबू में रहा, और उसकी सेना अन्त तक अंग्रेजों के हाथ में रही।

अंग्रेज प्रधान सेनापति गफ लाहौर से शेरसिंह के विरुद्ध बढ़ा। शेरसिंह के पास उससे कम सेना थी। चनाब के घाट रामनगर पर पहली मुठभेड़ हुई जिसमें किसी पक्ष की जीत न हुई। डेढ़ मास बाद जेहलम के काँठे में चिलियाँवाला पर शेरसिंह ने गफ को बुरी तरह हराया (१३-१-१८४९)। तब वह अंग्रेज़ी सेना के गिर्द घूम कर लाहौर की तरफ बढ़ने लगा, जहाँ गुलाबसिंह भी उससे आ मिलने को उद्यत था। उधर दोस्तमुहम्मद के पठान भी युद्ध की गति-विधि को देख रहे थे। गफ ने सिक्ख सेना का पीछा किया और गुजरात पर उन्हें आ पकड़ा। यदि सिक्ख वहाँ शेरसिंह की योजना पर लड़ते तो गफ की शायद फिर हार होती और वह पठानों और सिक्खों के बीच घिर जाता। किन्तु अपने साथी सरदारों का बहुमत शेरसिंह को मानना पड़ा और गुजरात पर सिक्खों की हार हुई (२२-२-१८४९)। तब वे फिर पीछे मुड़े। अंग्रेजी सेना ने उनका पीछा किया। मणिकिआला (जि० रावलपिंडी) पहुँच कर सिक्खों ने आत्म-समर्पण कर दिया (१२-३-१८४९)।

उधर नौ मास तक बहादुरी से लड़ने के बाद मूलराज भी जनवरी में समर्पण कर चुका था। महारानी जिन्दाँ ने बनारस से भाग कर नेपाल में शरण ली।

डलहौज़ी ने पंजाब दखल कर लिया (२९-३-१८४९), और तीन

अफसरों का एक बोर्ड पंजाब के शासन के लिए नियत किया। बाद में बोर्ड के बजाय अकेले जौन लारेन्स को चीफ कमिश्नर बनाया गया। इन लोगों ने पंजाब को बहुत शीघ्र निःशस्त्र करके शान्त कर दिया, और सबसे अद्भुत बात यह की कि कुछ ही बरसों में स्वाधीनवृत्ति सिक्खों को पूरा भाड़े का सिपाही बना दिया।

§३. दूसरा अंग्रेज़-बरमा युद्ध—बरमा तट के अराकान और तनेतई (तनेसरीम) प्रदेश सन् १८२५-२६ से अंग्रेजों के अधीन हो चुके थे। उनके बीच का पगू प्रान्त ले लेने से बंगाल की खाड़ी का समूचा तट उनके हाथ आ जाता। यह भी खयाल था कि पगू में सोने की खानें हैं। इसलिए डलहौज़ी ने सन् १८५२ में उसे छीन लिया। वह घटना, जो कि उस समय के एक अमरीकी राजनेता के शब्दों में, "एक छीनाखसोटी की कहानी" है, संक्षेप में इस प्रकार है।

दो अंग्रेजी नावों के कप्तानों ने बरमा के समुद्र में तीन बंगाली माँझियों को मार डाला। रंगून के बरमी न्यायालय ने इसपर उन्हें १७१ पौंड जुरमानें की सजाएँ दीं। भारत सरकार ने इसपर बरमा राज्य से ६२० पौंड हरजाना तलब किया, और उसे वसूल करने के लिए दो जंगी जहाज भेज दिये। बरमा के राजा ने हरजाना देना मान लिया। तब अंग्रेजी जहाज के नायक ने कहा कि उसके आदमियों का रंगून के शासक ने अपमान किया है और बरमा के राजा का बड़ा जहाज छीन लिया। वह बात खतम हुई तो डलहौज़ी ने इस चढ़ाई के खर्चे का एक लाख पौंड तलब किया, और उसके न मिलने पर पगू प्रान्त दखल कर लिया।

§४. कलात पर आधिपत्य—सिन्ध प्रान्त की पच्छिमी सीमा पर लगा कलात का पठार है, जहाँ ब्राहुई लोग रहते हैं। १८४५ ई० में कलात के खान से एक सन्धि की गई जिसके अनुसार खान ने अंग्रेज़ों से पूछे बिना किसी विदेशी राज्य से सम्बन्ध न रखना और अपने राज्य में अंग्रेज़ी सेना रखना मान लिया।

§५. जब्तियाँ और दखल—भारतवर्ष को "समथर" बनाने की नीति कम्पनी के डायरेक्टर सन् १८३४ में ही निश्चित कर चुके थे, और उसके

अनुसार कई छोटी-छोटी रियासतें राजाओं के निःसन्तान मरने पर जब्त कर ली गई थीं। महाराष्ट्र में एक "इनाम कमीशन" जाँच कर रहा था, जिसने ३५ हज़ार "इनामों" (जागीरों) में से प्रायः २१ हज़ार को जब्त करवाया। अब उसी तरह महाराष्ट्र में सातारा, बुन्देलखंड में जैतपुर तथा उड़ीसा में सम्भलपुर रियासतें जब्त की गईं। १८५१ ई० में बिठूर में बाजीराव (२य) चल बसे; उसने नानासाहब नामक व्यक्ति को गोद ले रक्खा था। डलहौज़ी ने उसे बाजीराव वाली पेंशन देना स्वीकार न किया।

सन् १८५३ में निज़ाम से बराड ले लिया गया। नज़र तो उसके समूचे राज्य पर थी, पर वह इस समय बच गया। उसी बरस झाँसी के राजा के मरने पर उसकी विधवा लक्ष्मीबाई के गोद लिये बेटे को गद्दी नहीं दी गई। उसके बीस दिन बाद नागपुर में भी वही बात हुई। वहाँ के राजा के रत्न-आभूषण भी नीलामी के लिए कलकत्ते भेजे गये और हाथी-घोड़े सब मांस के मूल्य पर नीलाम कर दिये गये। अवध का नवाब वाजिदअली शाह १८४७ ई० में गद्दी पर बैठा था। वह अपनी सेना की कवायद पर बहुत ध्यान देने लगा। १३ फरवरी १८५६ को उससे राज ले कर उसे कलकत्ते में नज़रबन्द कर दिया गया। इसके बाद डलहौज़ी भारत की बागडोर कैनिंग को दे कर इंग्लैंड चला गया।

सातारा के राजा और नानासाहब ने अपने एलची लन्दन भेजे। नानासाहब ने इस विषय में कुछ और भी सोच लिया था। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने कहा, "मेरा झाँसी देंगा नहिं।" लक्ष्मीबाई बनारस में एक मराठा परिवार में पैदा हुई और बचपन में नाना की बहन की तरह बिठूर में पली थी। वह भारतीय जागृति के अग्रदूत और भारत की युरोपियों से हार के कारण पर सबसे पहले विचार करने वाले रघुनाथ हरि [१०,५§५] के भतीजे की पत्नी थी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. "हिन्दुस्तान की ज़मीन को समथर कर" देने के लिए डलहौज़ी ने क्या क्या कार्य किये?

२. दूसरा अंग्रेज़-सिक्ख युद्ध किन दशाओं में कैसे हुआ?

अध्याय ५

पहला स्वाधीनता-युद्ध

§१. **स्वाधीनता-युद्ध का विचार और आयोजन**—भारतीय राज्यों के नायक सौ बरस से अंग्रेजों की सामरिक शक्ति को देख देख काँपते और उससे हार पर हार खाते रहे थे। पर अंग्रेजों की यह शक्ति भारतीयों की ही भाड़ैत सेना पर खड़ी थी [१०,२§§२,५,६]। इस सरल सीधे सत्य को जो बराबर उनकी आँखों के सामने था [१०,५§४], भारत के नेता कभी न देखते। अन्त में सौ बरस बाद उनमें से कुछ की आँखें खुलीं और उन्होंने इसे देखा-पहचाना। यह आँखों का खुलना डलहौजी की मार खा कर हुआ, अथवा आँखें खुल रही थीं कि मार पड़ी, इसकी बारीकी से जाँच की आवश्यकता है। जो भी हो, इस सत्य को पहचान लेना ही भारत के पहले स्वाधीनता-युद्ध की बुनियाद थी।

इस पहचान से प्रेरणा पा कर स्वाधीनता-युद्ध को चलाने का संकल्प पहले-पहल शायद बिठूर में नानासाहब और उसके मन्त्री अजीमुल्ला के बीच पैदा हुआ। लन्दन में अजीमुल्ला और सातारा के एलची रंगो बापूजी ने इस विषय पर परामर्श किया था। अजीमुल्ला अंग्रेजी और फ्रांसीसी दोनों भाषाएँ बोल सकता था। लन्दन से युरोप घूमता हुआ वह भारत लौटा। अंग्रेज और रूसी तब क्रीमिया में लड़ रहे थे (१८५४–५६ ई०); इसलिए अजीमुल्ला ने समझा, भारत के उठने का यह अच्छा अवसर है। उसके भारत पहुँचने के बाद सन् १८५५ में उसने और नाना ने तथा रंगो बापूजी ने भारत के तमाम राज्यों को स्वाधीनता-युद्ध में शामिल होने के लिए निमन्त्रण भेजे। दिल्ली में बादशाह बहादुरशाह और बेगम जीनतमहल, कलकत्ते में नवाब वाजिदअली शाह तथा उसका वजीर अलीनकीखाँ आदि उनकी योजना में सम्मिलित हो गये।

प्रकाशित गुप्त पत्र से नेताओं ने देशवासियों को सम्बोधित कर लिखा; "भाइयो, हम खुद ही विदेशी की तलवार अपने बदन में घोंपते हैं।" इसलिए उन्होंने अंग्रेजों की तमाम भारतीय सेना को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश की और दूर-दूर तक गुप्त रूप से प्रचारक भेजे। इन प्रचारकों में से फैजाबाद

का मौलवी अहमदशाह आगे चल कर मुख्य नेताओं में से हुआ। अंग्रेज़ी सरकार के बहुतेरे मुलाज़िम, पुलिस तथा अंग्रेज़ों के बावर्चों, भिश्ती आदि भी संघटन में मिलाये गये।

सन् १८५५-५६ में अंग्रेज़ों का ईरान से भी युद्ध चलता था। ईरानियों ने हरात को घेरा, जिसके जवाब में अंग्रेज़ों ने बुशहर बन्दर ले कर उन्हें घेरा उठाने को बाधित किया। मई १८५६ में ईरान ने सन्धि की और तब अंग्रेज़ी सेना वहाँ से सीधे चीन की चढ़ाई के लिए जाने लगी। काबुल के अमीर दोस्त-मुहम्मद से भी आंग्ल-सिक्ख युद्ध के बाद १८५५ और १८५७ ई० में सन्धियाँ की गईं।

सन् १८५३ से कम्पनी की भारतीय सेना में नये किस्म के कारतूस चले थे जिनकी टोपी दाँत से काटनी पड़ती थी। जनवरी १८५७ में कलकत्ते के पास बारकपुर छावनी के सिपाहियों को दमदम के कारखाने के एक मेहतर से मालूम हुआ कि उन्हें गाय और सुअर की चर्बी से चिकना किया जाता है। इस खबर ने देश भर में फैले अंगारों को एकाएक सुलगा दिया।

३१ मई १८५७ ई० सारे भारत में एक साथ उठने का दिन नियत किया गया था। यह बात केवल छावनियों के नेताओं को मालूम थी; बाकी लोगों ने उनकी आज्ञा पालने का प्रण किया था। मार्च में नाना और अज़ीमुल्ला "तीर्थयात्रा" के लिए निकले और दिल्ली, अम्बाला, लखनऊ, कालपी में अपने संघटन को देखते तथा प्रकट रूप से अंग्रेज़ अफसरों से दिल खोल कर मिलते हुए बिठूर लौट आये।

§२. **मंगल पांडे और मेरठ का बलवा**—छावनियों के अन्दर विप्लव के नेताओं ने बड़ी कोशिश की कि कारतूसों के मामले से सिपाही भड़कें नहीं और ३१ मई तक बिलकुल शान्त रहें। लेकिन धर्मान्धता ने सिपाहियों को बेकाबू कर दिया। फरवरी में बारकपुर की एक पलटन ने उन कारतूसों को वर्त्तने से इनकार किया। उसी पलटन के मंगल पांडे नामक सिपाही ने २९ मार्च को पाँत के आगे कूद कर अपने साथियों को धर्म-युद्ध के लिए ललकारा, और तीन अफसरों को वहीं ढेर कर दिया। मंगल पांडे को फाँसी दी गई और

बारकपुर की दो पलटनें तोड़ दी गईं। अलीनकीखाँ ने बड़ी होशियारी से बंगाल की छावनियों में अपना संघटन फैलाया था, और ये दोनों पलटनें उस संघटन में शामिल थीं। इनके अग्र निहत्थे हो बैठने से बंगाल के संघटन की कमर टूट गई। मंगल पांडे के नाम से आगामी युद्ध में अंग्रेज सभी क्रान्तिकारी सिपाहियों को पांडे कहने लगे।

मेरठ के रिसाले में ८५ सिपाहियों को चर्बी वाले कारतूस न छूने के अपराध में दस-दस साल की सजाएँ दी गईं। उनके साथियों ने पहले तो निश्चित तिथि तक शान्त रहना तय किया, लेकिन जब ये शहर में से जाते थे तब शहर की स्त्रियों ने उन्हें ताने दिये कि तुम्हारे भाई तो कैद में गये और तुम मक्खियाँ मार रहे हो। उन्होंने उसी रात (६ मई) दिल्ली में नेताओं को खबर भेजी और दूसरे दिन बलवा करके दिल्ली को चल दिये। गोरी फौज के अफसरों को भी यह न सूझा कि तोपखाने से उनका पीछा करें।

दूसरे दिन वे दिल्ली पहुँचे। वहाँ कोई गोरी फौज न थी। अंग्रेज अफसर एक देसी सेना को ले कर उनके मुकाबले को आये तो वह सेना भी विद्रोहियों से आ मिली। वे अफसर मारे गये और तार-बाबू पंजाब के कुछ स्थानों को ही खबर दे पाया था कि काट दिया गया। लाल किले में पहुँच कर विद्रोहियों ने सम्राट् बहादुरशाह से कहा कि हमारा नेतृत्व कीजिये। बहादुरशाह और बेगम जीनतमहल ने देखा कि अब ११ मई तक रुके रहना असम्भव है, इसलिए उन्होंने स्वाधीनता की घोषणा कर दी। किले के पास बड़ा शस्त्रागार था; उसके भीतर नौ अंग्रेज थे। उन्होंने उसे सौंपने के बजाय बारूदखाने में आग लगा कर अपने साथ २५ विद्रोहियों और अनेक शहरियों को भी उड़ा दिया। उसके बाद भी शस्त्रागार में बहुत बन्दूकें थीं जो विद्रोहियों के हाथ पड़ीं। शस्त्रागार पर अधिकार हो जाने के बाद बाकी सभी देसी पलटनें विद्रोहियों में मिल गईं। १६ मई तक दिल्ली से अंग्रेजी राज के सब चिह्न मिट गये।

§ ३. दबाने की पहली चेष्टाएँ—मेरठ पलटन के इस उतावले कार्य से युद्ध को मोड़ना गड़बड़ा गई, और अंग्रेजों को सँभलने का मौका मिल

गया। उत्तर भारत की देसी पलटनें प्रायः सब "पुरबियों"* अर्थात् अवध वालों की थीं। ये सब विप्लव के संघटन में आ गई थीं। विप्लव शुरू होते ही ये सब से पहले गोरी पलटनों पर हमला करतीं। इस दृष्टि से युद्ध की योजना में पंजाब सबसे नाजुक कड़ी था, क्योंकि एक तो वह पुरबियों के अपने घर से दूर था और दूसरे उत्तर भारत की प्रायः सब गोरी सेना पंजाब में जमा थी। अंग्रेजों को पहले खबर मिल जाने से पंजाब की पुरबिया पलटनें खतरे में पड़ गई।

१३ मई को मियाँमीर (लाहौर) की देसी सेना को परेड के समय तोपखाने और गोरे रिसाले से घेर कर शस्त्र रखवा लिये गये। उसी दिन फीरोजपुर की पलटन ने बलवा कर दिया, और फीरोजपुर के महत्वपूर्ण नाके को शत्रु के हाथ छोड़ वह दिल्ली को चल दी!

२१ मई को पेशावर की पलटन से शस्त्र रखवाये गये, और उसके बाद पेशावर के उत्तर होती-मर्दान की पलटन पर चढ़ाई की गई। इस पलटन के लोगों ने भागना चाहा, तब उन्हें पकड़-पकड़ कर तोपों के मुँह पर बाँध कर उड़ा दिया गया या सिन्ध नदी में बहा दिया गया।

उधर गवर्नर-जनरल कैनिंग ने दिल्ली की खबर पाते ही जंगी लाट को, जो शिमले में था, फौरन दिल्ली पर चढ़ने का हुक्म दिया। जंगी लाट अम्बाला पहुँचा, पर जनता द्वारा पूरा बहिष्कार होने से रसद का सामान न जुटा सका। इस दशा में पटियाला, नाभा और जींद के राजाओं ने उसे मदद दी। वे तीनों सिक्ख राजा जिनके इलाके जमना और सतलज के बीच पड़ते हैं, अंग्रेजों के कारण ही अपनी हस्ती को कायम समझते थे। पहले वे रणजीतसिंह से बचने को अंग्रेजों की शरण में गये थे, फिर आंग्ल-सिक्ख युद्धों में अपने भाइयों के विरुद्ध लड़े थे। अब उनकी मदद से अंग्रेजी सेना रास्ते की ग्रामीण जनता को बीभत्स यातनाओं से मारती हुई दिल्ली की तरफ बढ़ी।

मेरठ वाली गोरी फौज भी उससे मिलने को बढ़ी। इससे पहले कि वे

---

* हमारे देश में दिशाओं की गिनती मध्यदेश से है [१,२§१;३,१§३;४,२§५]। ठेठ हिन्दी प्रदेश के पूरब सबसे पहले अवध पड़ता है, इसीसे वहाँ के निवासी पुरबिये कहलाते हैं।

मिल पायँ, ३० मई को दिल्ली के क्रान्तिकारियों ने मेरठ वाली फौज पर हमला किया। गोरों ने उनके बायें पासे को तो छोड़ कर पीछे हटने को बाधित किया। लेकिन जब वे तोपों पर कब्जा करने को बढ़े तब तोपों के बीच छिपे हुए एक सिपाही ने पलीता लगा कर अपने साथ बहुत से गोरों को भी उड़ा दिया।

ईरान का युद्ध तभी समाप्त हुआ और अंग्रेजों ने चीन से झगड़ा कर लिया था। कैनिंग ने अब चीन जाती फौज को लौटा लिया। लखनऊ के चीफ कमिश्नर हेन्री लौरेंस ने 'रेजिडेंसी' की किलाबन्दी शुरू की। उसी प्रकार कानपुर के सेनापति ह्वीलर ने एक किला बनाया। ह्वीलर ने उसके अलावा नानासाहब से मदद माँगी। नाना कानपुर आया और ह्वीलर ने खजाने की रक्षा का काम उसे सौंप दिया।

§४. विप्लव का फूटना—(१) दोआब-रुहेलखंड और अवध— ३१ मई से १० जून तक रुहेलखंड, दोआब और अवध के हर जिले में सेना और प्रजा ने स्वाधीनता की घोषणा कर बहादुरशाह का हरा झंडा फहराया, और अंग्रेजी राज के चिह्न मिटा दिये। रुहेलखंड में बहादुरखाँ ने नये शासन का संघटन किया; इलाके की रक्षा के लिए स्वयंसेवक भरती किये और बरेली की पलटन को बख्तखाँ के नेतृत्व में दिल्ली भेज दिया।

कानपुर में अंग्रेजों ने नये किले में शरण ली, और नाना ने ६ जून से उसका मोहासरा शुरू किया। इलाहाबाद के किले में कुछ सिक्ख सेना थी। क्रान्तिकारियों की उसे समझाने की सब कोशिशें बेकार हुई और उस किले पर अंग्रेजी झंडा फहराता रहा। बनारस के आसपास विद्रोह होने पर ४ जून को बनारस की देसी सेना से शस्त्र रखवाने की कोशिश की गई। लेकिन उन्होंने मुकाबला किया और इलाके में फैल गये। बनारस के राजा तथा सिक्ख सैनिकों की मदद से शहर पर अंग्रेजों का अधिकार बना रहा।

अवध में केवल लखनऊ शहर हेन्री लौरेंस के हाथ में बना रहा। स्वाधीनता के प्रचारक अहमदशाह को फाँसी की सजा सुना कर फैजाबाद जेल में रक्खा गया था। उसे विद्रोहियों ने फाँसी की कोठरी से निकाल कर क्रान्ति का नेता बनाया। दोआब-रुहेलखंड में अनेक जगह और अवध में प्रायः सब

जगह युद्ध के नेताओं ने व्यक्तिगत रूप से अंग्रेज़ों को अपने घरों में शरण दी और लखनऊ या बनारस पहुँचा दिया। ये अंग्रेज़ इलाकों के जानकार थे और इन्होंने गोरी सेना के साथ शीघ्र लौट कर क्रान्ति के दबाने में बड़ी मदद की।

(२) **बिहार-बंगाल**—बिहार-बंगाल में उत्तेजना काफी थी। तो भी बिहार का संघटन उतना मज़बूत न था, इसी से ठीक समय पर वहाँ कुछ न हुआ। कलकत्ते में १४ जून को बारकपुर की एक और पलटन से शस्त्र रखवा लिये गये, और १५ जून को वाजिदअली शाह और अलीनकीखाँ को किले में कैद कर दिया गया।

(३) **राजस्थान-बुन्देलखंड**—नसीराबाद (अजमेर) की पलटन २८ मई को ही विद्रोह कर दिल्ली की तरफ चल दी। झाँसी की रानी और बाँदे का नवाब ठीक समय पर उठे। ग्वालियर में कम्पनी की सेना १४ जून को विद्रोह करके जयाजीराव शिन्दे से कहने लगी कि हमारा नेतृत्व करो और आगरा दिल्ली कानपुर पर चढ़ाई करो। "शिन्दे के लिए बदला लेने का बहुत ही बढ़िया मौका था। यदि वह इस सेना के साथ अपनी मराठा सेना को भी ले कर निकलता तो आगरा और लखनऊ एकदम ले लिये जाते...इलाहाबाद किले का घेरा पड़ जाता और...विद्रोही बनारस के रास्ते कलकत्ते पर जा पहुँचते।" लेकिन शिन्दे अपने गद्दार मन्त्री दिनकरराव से प्रभावित हो विद्रोहियों को टालता रहा और वह सेना वहीं खाली बैठी रही।

मऊ की पलटन ने विद्रोह कर इन्दौर की रेज़िडेंसी पर हमला किया। होल्कर की अपनी सेना भी उनसे मिलना चाहती थी, पर होल्कर भी उसी तरह टालता रहा। प्रजा ने इन राजाओं को उभाड़ने की कोशिश की, पर ये लोग न उठे।

नसीराबाद और नीमच की पलटनें ५ जुलाई को आगरे पर आ टूटीं। अंग्रेज़ों ने किले में शरण ली। भरतपुर राजा की सेना विद्रोहियों के मुकाबले को भेजी गई। उन लोगों ने कहा—हम स्वयं विद्रोह न करेंगे, क्योंकि हमारे राजा का हुक्म नहीं है, पर अपने इन भाइयों पर गोली न चलायेंगे। ऐसा ही बर्त्ताव जयपुर जोधपुर की सेनाओं ने भी किया। स्पष्ट है कि राजस्थान में प्रजा

और सेना सब जगह स्वतन्त्र होने को तत्पर थी, पर जिनसे वह नेतृत्व और संचालन की आशा करती थी उन्होंने धोखा दिया।

(४) **पंजाब और नेपाल**—जालंधर और फिलौर की पुरबिया पलटनों पर अंग्रेज़ों को सन्देह न हुआ था। ६ जून को ये विद्रोह कर लुधियाने की तरफ बढ़ीं। लुधियाने के अंग्रेज़ों ने सतलज का पुल तोड़ दिया और नाभे की सिक्ख सेना के साथ घाट पर सामना किया। तो भी क्रान्तिकारियों ने नदी पार कर ली, गोरों और सिक्खों को भगा दिया और लुधियाने पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद वहाँ उनका कोई नेता न होने से वे दिल्ली चले गये। यदि वे लुधियाने पर कब्ज़ा बनाये रखते तो पंजाब से दिल्ली जाने वाली कुमुक का रास्ता काट सकते, तथा पटियाला, नाभा और जींद के देशद्रोहियों पर पीछे से चोट कर सकते।

सिक्खों को अपनी स्वतन्त्रता गँवाये आठ ही बरस बीते थे, पर उनके देश को काबू रखने वाली अंग्रेज़ों की सेना का बड़ा अंश जब विद्रोह कर के चला गया तब भी उन्होंने सिर न उठाया। वे पिछली हार से पस्तहिम्मत हो गये थे, और अब उनके सामने अंग्रेज़ों ने विद्रोहियों को जैसे कुचल दिया उससे उनपर अंग्रेज़ों की संघटित शक्ति का आतंक और भी जम गया। उनके सरदार पहले से ही विश्वासघाती थे। अंग्रेज़ों ने १८४८ ई० में पंजाबी मुसलमानों को सिक्खों के विरुद्ध उभाड़ा था; अब चूँकि युद्ध का नेता बहादुरशाह था इसलिए सिक्खों को मुसलमानों के विरुद्ध उभाड़ा। सरहदी मुस्लिम कबीले इस वक्त चढ़ाई न करें इसलिए मुल्लों को घूस दे कर उनमें प्रचार करने भेजा। यों पंजाब के वीर लोग लज्जास्पद रूप से बेवकूफ बनते रहे। इसके अलावा जौन लौरेंस ने पंजाब के जिलों से ६ प्रतिशत सूद पर कम्पनी के लिए ऋण उठाया। लोगों ने काफी दबाव पड़ने पर अपना रुपया दिया, लेकिन जब एक बार दे दिया तब उनका स्वार्थ अंग्रेज़ों के साथ बँध गया।

नेपालियों के बारे में अंग्रेज़ों ने सोचा कि वे इस अवसर से न चूकेंगे। जंगबहादुर को भी डर लगा कि उसकी सेना विद्रोह करेगी। वैसा ही होता प्रतीत हुआ। नेपाल के अनेक सरदारों ने सोचा कि अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता

को वापिस लेने का यह अच्छा अवसर है। वे सेना में भरती हो गये और ज़ंग जब सेना ले कर अंग्रेजों की मदद को जा रहा था, तभी उन्होंने उसका काम तमाम करने की तैयारी की। किन्तु उनका भेद खुल गया और वे फाँसी चढ़ाये गये।

(५) **दक्खिन**—दक्खिन में विप्लव संघटित रूप से नहीं हुआ। अंग्रेज़ों ने पहले पहल भारतीय सेना मद्रास में ही भरती की थी और वह प्रायः तिलंगों अर्थात् आन्ध्रों की थी। क्रान्ति के नेता तिलंगों तक नहीं पहुँच सके। हैदराबाद की प्रजा और सेना में जून-जुलाई में बड़ी उत्तेजना रही; लेकिन निज़ाम के वज़ीर सालारजंग ने उसे दबा कर बराबर अंग्रेज़ों का साथ दिया। नागपुर की पलटन १३ जून को उठना चाहती थी, पर उससे पहले ही मद्रासी सेना ने वहाँ पहुँच कर उसे दबा दिया। इसी तरह मुम्बई की पल्टन की दशा हुई। कोल्हापुर, बेलगाँव और जबलपुर में जुलाई, अगस्त, सितम्बर में विद्रोह हुए जो दबा दिये गये। रंगो बापूजी को भागना पड़ा, उसके लड़के को फाँसी दी गई। दक्खिनी महाराष्ट्र में सन् १८५८ तक कुछ विफल चेष्टाएँ होती रहीं।

§५. **इलाहाबाद और कानपुर का पतन**—अम्बाले और मेरठ वाली अंग्रेज़ी सेनाएँ ७ जून को दिल्ली के पास आ मिलीं। एक गोरखा पलटन भी उनसे आ मिली थी। दिल्ली के पास बुन्देल-की-सराय पर क्रान्तिकारियों से उनकी गहरी लड़ाई हुई। उसके बाद सेनापति बर्नार्ड ने दिल्ली के पच्छिम की पहाड़ी पर डेरा लगा दिया।

पंजाब और बंगाल में क्रान्तिकारी संघटन टूट जाने और बिहार के फिलहाल चुप रहने से अंग्रेज़ दिल्ली और बनारस से अपनी कार्रवाई शुरू कर सके। बनारस से सेनापति नील इलाहाबाद की तरफ बढ़ने लगा। रास्ते के गाँवों में आम रास्तों पर टिकटिकियाँ खड़ी कर उसके सैनिक निहत्थे आदमियों को फाँसी चढ़ाते जाते। इसके बाद उन्होंने आम और नीम के पेड़ों से टिकटिकियों का काम लिया। फाँसी चढ़ने वालों के अंगों से अंग्रेज़ी ८ और ९ अंकों की शक्लें बना कर वे विनोद करते। यातना देने की कला के कई नये तरीके उन्होंने ईजाद किये। आदमी की गर्दन में लकड़ियाँ बाँध कर जला देना, युवतियों के केशों और कपड़ों में आग लगा कर तमाशा देखना और समूचे गाँवों को घेर कर

आग लगा कर तमाम प्राणियों सहित भून देना—ये उस अंग्रेजी सेना के विनोद के कुछ तरीके थे।

११ जून को नील इलाहाबाद पहुँचा और किले पर अंग्रेजी झंडा देख चकित हुआ। ४०० सिक्खों ने उस झंडे की रक्षा की थी। पर नील को उन सिक्खों पर क्या भरोसा था? उसने फौरन गोरों को किले के भीतर रख कर सिक्खों को गाँव जलाने भेज दिया। एक हफ्ते की लड़ाई के बाद उसने इलाहाबाद शहर पर अधिकार कर के उसी तरह के कार्य किये। कानपुर में घिरे हुए अंग्रेज तब उसे मदद के लिए पुकार रहे थे। किन्तु उसके सब पैशाचिक कृत्यों के बावजूद भी देहाती जनता दबी न थी और इसीलिए वह समय पर कानपुर न पहुँच सका।

कानपुर के अंग्रेजों ने निराश हो २५ जून को शस्त्र रख दिये। नानासाहब ने उन्हें प्रयाग पहुँचाने के लिए नावों का प्रबन्ध कर दिया। सतीचौरा घाट पर उन्हें विदा करने को अजीमुल्ला तथा नाना का भाई बालासाहब उपस्थित थे। तभी नील के जुल्मों से पीड़ित लोग, जो कानपुर में जमा हो रहे थे, बदले की पुकार मचाने लगे। ज्योंही नावें चलीं कि वे लोग उनपर टूट पड़े। नाना के पास यह खबर पहुँची तो उसने आज्ञा दी कि स्त्रियों और बच्चों को बचाया जाय। १२५ स्त्रियाँ-बच्चे, जो वहाँ थे, बचा कर नजरबन्द रक्खे गये और पुरुष सब पंक्ति में खड़े कर मार डाले गये।

कानपुर की लड़ाई खतम होते ही लखनऊ पर क्रान्तिकारियों का दबाव बढ़ा और २६ जून को हेन्री लौरेंस ने चिनहट गाँव पर उनसे हार कर रेजिडेंसी में शरण ली। क्रान्तिकारियों ने वाजिदअली शाह के नाबालिग बेटे को अवध का नवाब घोषित किया। उसकी माँ हजरतमहल उसके नाम पर शासन चलाने लगी।

तभी सेनापति हैवलौक जो ईरान से लौटा था, मुख्य अफसर नियत हो इलाहाबाद पहुँचा, और गाँवों को घेर कर जलाता हुआ कानपुर की तरफ बढ़ा। नाना की सेना को हरा कर उसने फतहपुर में प्रवेश किया और उस शहर को लूटने के बाद जिंदा भून दिया। खबर पा कर नाना खुद मुकाबले के लिए

चढ़ा। तभी अंग्रेजों के कुछ जासूस पकड़े गये जिनसे यह भेद खुला कि बीबीगढ़ की कोठी में नजरबन्द अंग्रेज स्त्रियाँ चोरी से इलाहाबाद खबरें भेजती रही हैं। इस बात से तथा फतहपुर की घटना से उत्तेजित कुछ सिपाहियों ने नाना की इजाजत बिना उन सब को मार कर पड़ोस के कुएँ में फेंक दिया*। एक सख्त लड़ाई में नाना को हराने के बाद १७ जुलाई को हैवलॉक ने कानपुर में प्रवेश किया। नाना फतहगढ़ (फरुखाबाद) की तरफ हट गया।

§६. **दिल्ली का पतन**—इस बीच दिल्ली के बाहर भी कड़ी लड़ाई जारी थी। पंजाब से जान लौरेंस अंग्रेजों को बराबर नई कुमुक भेज रहा था। शहर के भीतर शस्त्रों के कारखाने खुले थे जिनमें तत्परता से काम हो रहा था। बादशाह ने एक ऐलान निकाल कर स्वाधीन भारत में गोहत्या की मुमानियत कर दी।

१२ जून से क्रान्तिकारियों ने बाहर निकल कर अंग्रेजी फौज पर हमले शुरू किये। लेकिन उनमें योग्य नेता की कमी थी। शुरू में शाहजादे सेनाओं के नेता बनाये गये। वे नेतृत्व तो क्या करते, उलटा उनकी उच्छृंखलता से शहर में अव्यवस्था मची रहती। इस दशा में बरेली के सेनापति बख्तखाँ की ओर सब की निगाहें लगी थीं। २ जुलाई को वह दिल्ली पहुँचा और बादशाह द्वारा प्रधान सेनापति नियत किया गया। बख्तखाँ ने तमाम जनता को शस्त्रबद्ध होने का आदेश दिया। ३ जुलाई की परेड में २० हजार सेना दिल्ली में मौजूद थी। अगले रोज खुद बख्तखाँ ने पहाड़ी पर हमला किया। ६ से १४ जुलाई तक पहाड़ी पर सख्त लड़ाई होती रही।

बख्तखाँ योग्य और वीर सेनापति था, परन्तु साधारण कुल का। उस युग के भारतीय नेतृत्व को ऊँचे कुल की पैदाइश से अलग कर के न देख सकते थे। इसी से बख्तखाँ के आदेश पूरी तरह न माने जाते। जो लोग भाड़े के सिपाही होने की दशा में किसी भी गोरे के हुक्म पर जान देने को भी दौड़ पड़ते थे वही स्वाधीन होने पर अपने नेता के आदेश मानने में ननु-नच करते!

---

* इन स्त्रियों की बेइज्जती और अंगच्छेद किये जाने की अनेक कल्पित कहानियाँ बना ली गई थीं जो जाँच से सब निर्मूल सिद्ध हुई।

यदि जयाजीराव शिन्दे जैसा कोई नेता क्रान्तिकारियों को मिल जाता तो युद्ध की गति कुछ और ही हो जाती। इस दशा में उदारचेता बहादुरशाह ने अनेक भारतीय राजाओं के पास इस आशय का पत्र अपने हाथ से लिख कर भेजा—"मेरी यह ख्वाहिश है कि तमाम हिन्दोस्तान आजाद हो जाय। इसके लिए जो क्रांतिकारी युद्ध शुरू किया गया है वह तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कोई ऐसा शख्स जो कौम की मुख्तलिफ ताकतों को संघटित कर एक ओर लगा सके और जो अपने को तमाम कौम का नुमाइन्दा कह सके, मैदान में आ कर इस क्रान्ति का नेतृत्व अपने हाथों में न ले ले। अंग्रेज़ों के निकाल दिये जाने के बाद अपने निजी फायदे के लिए हिन्दोस्तान पर हकूमत करने की मुझमें जरा भी ख्वाहिश नहीं है। अगर आप राजा लोग आगे आने को तैयार हों तो मैं अपने तमाम शाही अख्तियार आप के किसी ऐसे संघ के हाथ में सौंप दूँगा जिसे इस काम के लिए चुन लिया जाय।"

इस बीच पंजाब से नई सेना और तोपखाना ले कर निकल्सन दिल्ली आ रहा था। बख्तखाँ ने उसका रास्ता काट कर तोपें छीनने का निश्चय किया और नजफगढ की ओर बढ़ा (२५ अगस्त)। वहाँ पहुँचने पर नीमच वाली पलटन ने बरेली वाली पलटन के पास डेरा डालना स्वीकार न किया और बख्तखाँ की आज्ञा न मान कर एक पड़ोसी गाँव में डेरा डाला। निकल्सन ने उन्हें अलग पड़ा देख कर हमला किया। नीमच वाली पलटन वीरता से लड़ती हुई समूची काटी गई। यह वीरता किस काम की थी?

इसके बाद अंग्रेज़ी सेना ने बढ़ कर आक्रमण करना शुरू किया। १४ सितम्बर को उन्होंने दिल्ली के परकोटे पर हल्ला बोला। गोले-गोलियों की बौछार के बीच कश्मीरी दरवाजे का एक हिस्सा उड़ा कर निकल्सन के नेतृत्व में उनके तीन दस्ते भीतर घुस गये। भीतर भी चप्पा-चप्पा जमीन के लिए लड़ाई जारी रही। एक तंग गली में अक्षरशः खून की धारा बह गई और निकल्सन सहित अंग्रेज़ों के तीन नेता गिर गये। सेनापति विल्सन ने लौटना तय किया। "लौटना!" घायल पड़े निकल्सन ने चीख कर कहा—"लौटने की बात की तो मुझमें अब भी इतना दम है कि विल्सन की जान ले लूँगा!" क्रान्तिकारियों

कोशिश करने पर भी हैवलौक गंगा से आगे न बढ़ सका। इसके अलावा, उसने गंगा पार की तो नाना बिठूर को वापिस ले कर कानपुर की तरफ बढ़ा, और तभी खबर आई कि बिहार में भी विद्रोह भड़क उठा है। २५ जुलाई को पटने में पीर अली नामक नेता को फाँसी दी गई, जिसपर दानापुर की पलटन विद्रोह कर शाहाबाद जिले में जगदीशपुर के राजा कुँवरसिंह के यहाँ चली गई, और उस अस्सी बरस के बूढ़े राजा ने आरा शहर पर हमला किया था। १२ अगस्त को हैवलौक कानपुर वापिस आ गया; १७ को उसने नाना के सेनापति तात्या टोपे को हराया। तब उसने कुमुक के लिए कलकत्ते सन्देश भेजा। इस बीच कुँवरसिंह को अंग्रेजों ने जंगलों में भगा दिया था और नेपाल का जंगबहादुर पूरबी अवध पर चढ़ाई करने पर क्रान्तिकारियों द्वारा पीछे धकेल दिया गया था।

लखनऊ के भीतर भी क्रान्तिकारियों की वही दशा रही जो दिल्ली में। बहादुरी थी, किन्तु नियमानुवर्त्तन का तथा सञ्चालन की एकसूत्रता का अभाव था। क्रान्तिकारियों की तोपों ने एक बार रेजिडेंसी की दीवार में इतना बड़ा छेद कर दिया कि समूची सेना भीतर घुस सकती थी; पर किसी ने उससे लाभ न उठाया। केवल तीन आदमियों ने भीतर घुसने की कोशिश की; और उन तीन ने चाहे निकल्सन से बढ़ कर वीरता दिखाई, तो भी सामूहिक चेष्टा के बिना वह वीरता किस काम की थी?

नई कुमुक के साथ १५ सितम्बर को आउटराम कानपुर पहुँचा। अब हैवलौक के बजाय उसे मुख्य अफसर नियत किया गया था। हैवलौक जब मुख्य अफसर नियत हो कर आया था तब नील ने उसके प्रति कुछ गुस्ताखी की थी। हैवलौक ने उसे लिखा, "यदि सार्वजनिक हित में बाधा पड़ने का डर न होता तो मैं तुम्हें कैद कर लेता।" उसके बाद नील रूठ नहीं गया, प्रत्युत सच्चे दिल से सहयोग देता रहा। आउटराम ने आ कर देखा कि हैवलौक यदि लखनऊ की तरफ नहीं बढ़ सका तो इसमें उसका कुछ दोष न था। इसलिए उसने पहला आदेश यही दिया कि "मैं वीर हैवलौक को अपने पद का अधिकार सौंपता हूँ; लखनऊ का मोहासरा उठने तक मैं एक स्वयंसेवक की तरह उसके अधीन काम करूँगा।" अंग्रेज अपने सार्वजनिक बर्ताव में व्यक्तिगत भावों को

किस प्रकार नियन्त्रित कर लेते हैं !

अब हैवलौक, आउटराम और नील तीनों गंगा पार कर २३ सितम्बर को लखनऊ के पास आ निकले। दो दिन बाद वे शत्रु की पाँतों में से रास्ता काटते हुए रेजिडेंसी में जा पहुँचे। लेकिन वे खुद अपने साथियों की तरह मोहासरे में फँस गये। नील उस लड़ाई में मारा गया।

§७. लखनऊ और झाँसी का पतन—भारत में क्रान्ति शुरू होते ही इंग्लैंड से गोरी सेनाओं और अनुभवी सेनापतियों की कुमुक रवाना की गई। ऐसे दो सेनापति सर कौलिन कैम्बल और सर ह्यू रोज अब कलकत्ता और मुम्बई पहुँच गये थे। कैम्बल कलकत्ते से जंगी बेड़े के साथ चल कर ३ नवम्बर को कानपुर पहुँचा। उधर दिल्ली से एक अंग्रेज सेनापति दोआब में नील से बढ़ कर ज़ुल्म करता हुआ कानपुर आया। कानपुर से कैम्बल लखनऊ गया और १४ नवम्बर को रेजिडेंसी की तरफ़ बढ़ने लगा। १० दिन की सख्त कशमकश के बाद, जिसमें मकानों के एक-एक कमरे और एक-एक सीढ़ी के लिए लड़ाई होती रही, वह रेजिडेंसी का उद्धार कर सका। शहर तब भी क्रान्तिकारियों के हाथ रहा।

कैम्बल जिस दिन लखनऊ पहुँचा, उसी दिन तात्या टोपे ने कालपी का गढ़ ले लिया और उसके बाद कानपुर के अंग्रेज़ नायक को घेर कर "अंग्रेजी सेना से उसकी छावनी, उसका सामान और मैदान सब कुछ छीन कर" शहर ले लिया। कैम्बल को लखनऊ से लौटना पड़ा। कानपुर वापिस ले कर उसने तात्या को कालपी भगा दिया।

अब अवध, रुहेलखंड, दोआब और बुन्देलखंड क्रान्ति के मुख्य क्षेत्र थे। इसलिए कैम्बल ने एक सेनापति को कानपुर से इटावे के रास्ते दोआब में भेजा; दो अंग्रेज़ सेनापति और तीसरा जंगबहादुर पूरब से लखनऊ की ओर बढ़े; और सर ह्यू रोज़ मुम्बई से मऊ (इन्दौर के पास) आ कर बुन्देलखंड की तरफ़ चला।

लखनऊ में मौलवी अहमदशाह ने कोशिश की कि अंग्रेज़ी सेना के अवध तक पहुँचने से पहले आउटराम की टुकड़ी का सफाया कर दे। "अहमद-

शाह महान जनान्दोलन और बड़ी सेना दोनों का नेतृत्व करने के योग्य था।" लेकिन वह भी बख्तखाँ की तरह साधारण कुल का था, और उसके आदेश पूरी तरह माने न जाते। एक बार तो उसके प्रतिस्पर्धियों ने बेगम हजरतमहल को बहका कर उसे कैद तक करा दिया। बाद में छुटने पर उसके साथ बेगम खुद भी मैदान में आई, लेकिन उसी असंघटित रूप से काम होता रहा।

कैम्बल दोआब से फिर लखनऊ घूमा। पूरब से आने वाली तीनों सेनाएँ मार्च १८५८ में उससे आ मिलीं। ६ से १५ मार्च तक लखनऊ शहर में वैसी ही लड़ाई हुई जैसी सितम्बर में दिल्ली में हुई थी; और बाद में वैसी ही घटनाएँ। हजरतमहल और अहमदशाह ने मोहासरे में से निकल कर युद्ध जारी रक्खा।

अंग्रेज़ी सेनाएँ जब अवध पर चढ़ाई कर रही थीं, तब कुँवरसिंह आजमगढ़ ले कर बनारस की तरफ बढ़ा। शत्रु का आधार काटने की उसकी इस कोशिश से कैनिंग को, जो इलाहाबाद में था, चिन्ता हुई। लेकिन कुँवरसिंह इसे छोड़ कर जगदीशपुर चला गया, जहाँ रास्ते के एक घाव से उसकी मृत्यु हुई।

मऊ से चल कर, चन्देरी और सागर लेते हुए ह्यू रोज़ झाँसी की तरफ बढ़ा। एक अंग्रेज़ सेनापति ने तभी जबलपुर से सागर के रास्ते बाँदा पर चढ़ाई की। लक्ष्मीबाई ने झाँसी के चौगिर्द इलाके को वीरान कर दिया था, लेकिन ग्वालियर और ओरछा राज्यों की मदद के कारण रोज़ को रसद की तकलीफ न हुई। २० मार्च को वह झाँसी के सामने पहुँचा; २४ को रानी ने लड़ाई शुरू की। तात्या टोपे रानी की मदद के लिए बढ़ा; लेकिन रोज़ ने उसे हरा कर भगा दिया। सख्त लड़ाई के बाद ३ अप्रैल को अंग्रेज़ी सेना एक भारतीय गद्दार की मदद से झाँसी के गढ़ में जा घुसी। लक्ष्मीबाई १०-१५ साथियों के साथ निकल भागी, और पीछा करने वालों को काटते-गिराते कालपी जा पहुँची। बाँदा और महोबा के सर हो जाने पर बाँदे का नवाब अलीबहादुर भी वहीं आ पहुँचा। झाँसी लेने के बाद अंग्रेज़ों ने उसे भी न केवल पूरी तरह लूटा, प्रत्युत रघुनाथ हरि के समय से चले आते पुस्तकालय आदि [१०,५६५] को जला कर राख कर दिया।

लखनऊ और झाँसी के पतन के बाद क्रान्तिकारी दो क्षेत्रों में बँट गये, एक तो कानपुर के उत्तर का अवध-रुहेलखंड का क्षेत्र जहाँ नानासाहब और अहमदशाह नेतृत्व कर रहे थे, और दूसरा उसके दक्खिन का बुन्देलखंड के उत्तरी छोर पर कालपी का क्षेत्र जहाँ लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे और बाँदा का नवाब इकट्ठे हुए थे।

§८. अवध रुहेलखंड की पिछली कशमकश—लखनऊ के पतन के बाद क्रान्ति के नेताओं ने अपने साथियों के नाम आदेश निकाला, "खुले मैदान में दुश्मन का सामना मत करो, नदियों के घाटों पर पहरा रक्खो, दुश्मन की डाक काटो, रसद रोको और चौकियाँ तोड़ दो। फिरंगी को चैन न लेने दो।" यह एक दो हारों से खत्म होने वाला युद्ध नहीं था। नानासाहब, हजरत-महल और अहमदशाह मैदान में थे। दिल्ली का एक शाहजादा फीरोज भी वहीं आ पहुँचा था। कैम्बल ने उन्हें उत्तरपच्छिम धकेलने की कोशिश की। इस कोशिश में उसका एक साथी सेनापति मारा गया। शाहजहाँपुर को ले कर कैम्बल रुहेलखंड की तरफ बढ़ा जो बहादुरखाँ के नेतृत्व में अब तक स्वाधीन था। ५ मई को बहादुरखाँ सहित सब नेता बरेली में घिर गये, लेकिन शहर सर होने तक सभी निकल गये। अहमदशाह ने फिर शाहजहाँपुर ले लिया, और कैम्बल ने उसे वहाँ घेरा तो नाना, हजरतमहल और फीरोज मदद को पहुँच उसे बचा लाये। ५ जून को अवध के एक गद्दार जमींदार ने अहमदशाह की छल से हत्या करके उसका सिर अंग्रेजी डेरे में पहुँचा दिया। एक अंग्रेज ऐतिहासिक के शब्दों में "मौलवी अहमदशाह सच्चा देशभक्त था। उसने किसी निहत्थे की हत्या से अपनी तलवार पर धब्बा न लगाया था। संसार के वीर और सच्चे लोगों में उसका नाम आदर के साथ याद किया जाना चाहिए।"

मौलवी अहमदशाह की घृणित हत्या से अवध में युद्ध की आग और भड़क उठी। क्रान्तिकारी दल घाघरा के उत्तर अयोध्या के सामने नवाबगंज पर इकट्ठे हुए और फिर लखनऊ पर चढ़ाई करने की सोचने लगे। एक अंग्रेज सेनापति ने उनपर हमला किया। अवध की समथर भूमि छापामार युद्ध के लिए उपयुक्त नहीं है, तो भी वह युद्ध साल भर जारी रहा।

१ नवम्बर १८५८ को इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया ने अपने ऐलान से ईस्ट इंडिया कम्पनी का अंत कर भारत का शासन सीधा अपने हाथों में ले लिया। बेगम हजरतमहल ने उसके उत्तर में ऐलान निकाला, "हमारी प्रजा को इसपर एतबार नहीं करना चाहिए, क्योंकि कम्पनी के कानून, कम्पनी के अंग्रेज मुलाजिम, कम्पनी का गवर्नर-जनरल और कम्पनी की अदालतें......सब ज्यों की त्यों बनी रहेंगी।" अवध के क्रान्तिकारी और छः महीने तक उसी तरह लड़ते रहे। बिना रसद के जहाँ चाहें जा सकते थे, क्योंकि लोग सब जगह उन्हें भोजन पहुँचा देते थे। वे बिना पहरे के अपना असबाब जहाँ चाहें छोड़ सकते थे। उन्हें सदा अपनी और अंग्रेज़ों की स्थिति का ठीक पता रहता था, क्योंकि लोग उन्हें घंटे-घंटे पर सूचना देते रहते थे।" अप्रैल १८५९ तक यों युद्ध चलता रहा। अंत में अवध के ६० हजार स्त्री-पुरुष-बच्चे नेपाल-तराई में धकेल दिये गये। जंगबहादुर ने वहाँ अंग्रेज़ी सेना को भी घुसने दिया। अनेक लोग शस्त्र फेंक कर वेश बदल कर लौट आये; अनेकों ने "हार मानने की अपेक्षा नेपाल के जंगलों में भूखों मर जाना पसन्द किया।" हज़रतमहल को नेपाल में शरण मिली। नाना अन्तर्धान हो गया।

§९. **लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे**—कालपी में तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई और अलीबहादुर के अतिरिक्त नानासाहब का भतीजा रावसाहब तथा बुन्देलखंड के अनेक सरदार जमा हुए थे। डेढ़ मास के अवकाश में वे अपना एक नेता न चुन सके। तात्या टोपे, जिसमें अंग्रेज़ों के दृष्टि से "सच्चे सेनापति के स्वाभाविक गुण मौजूद थे", बहुत ही साधारण कुल में पैदा हुआ था—वह बाजीराव के दानाध्यक्ष का बेटा था। लक्ष्मीबाई स्त्री थी, और सो भी सिर्फ २२ बरस की लड़की! ये लोग इसी पसोपेश में रहे कि ह्यू रोज़ कालपी की तरफ़ बढ़ आया। लक्ष्मीबाई ने तब दक्खिन बढ़ कर कोंच पर उसका मुकाबला किया, लेकिन उसे रोक न सकी और रोज ने कालपी भी ले ली (२४ मई १८५८)। क्रान्तिकारी नेता बच कर निकल गये।

इसके बाद एक नई योजना के अनुसार ग्वालियर की सेना और प्रजा को अपनी ओर मिलाने के लिए तात्या गुप्त रूप से ग्वालियर गया। उसके

लौटने पर २८ मई को सब ने जयाजीराव शिन्दे के पास पत्र भेजा, "हमारे और अपने पुराने सम्बन्ध को याद कीजिये। हमें आपसे सहायता की आशा है, जिससे हम दक्खिन का ओर बढ़ सकें।" सहायता देने के बजाय शिन्दे सामना करने निकला; पर उसकी सेना क्रान्तिकारियों से आ मिली, और वह आगरे की ओर भाग गया। यों ग्वालियर का नया आधार दक्खिनी क्रान्तिकारियों के हाथ आ गया।

महारानी लक्ष्मीबाई
[महारानी के भतीजे श्री गोविन्द चिन्तामण ताम्बे के सौजन्य से]

ग्वालियर में दरबार करके रावसाहब को पेशवा तथा तात्या को उसका सेनापति नियत किया गया। उन्होंने पेशवा के सब पुराने सामन्तों से अनुरोध किया कि उसके झंडे तले इकट्ठे हो अपनी गुलामी के बन्धन काट लें। लक्ष्मीबाई ने चाहा कि सेना को तुरन्त तैयार कर मैदान में लाया जाय। पर रावसाहब को अभी पेशवाई पाने की दावतों और उत्सवों से छुट्टी न थी। इतने में ह्यू रोज़ १[illegible] जून को ग्वालियर पर आ पहुँचा। ग्वालियर राज्य की सेना कम्पनी की सेना के सामने न ठहर सकी। तो भी लक्ष्मीबाई ने बिखरी सेना को इकट्ठा किया और मुकाबले के लिए डट गई। दो दिन तक वह "अलौकिक वीरता" से लड़ती रही। दूसरे दिन शत्रु

भीतर घुस आये और रानी उनके बीच घिर गई। शत्रु की पाँतों को चीर कर रानी ने दूसरे क्रान्तिकारियों से मिलने की कोशिश की। गोरे सवारों ने उसका पीछा किया। उनमें से अनेक को काट गिराने के बाद वह स्वयं वीर गति को प्राप्त हुई।

तात्या टोपे, रावसाहब और अलीबहादुर के साथ ग्वालियर से निकल दक्खिन जाने की कोशिश करने लगा। उसका लक्ष्य मराठा राजधानियाँ—इन्दौर, नागपुर, बड़ोदा—और ठेठ महाराष्ट्र था। अंग्रेज़ी सेनाएँ उसे आगे पीछे से घेरने को दौड़ती रहीं। पहले वह राजस्थान को मुड़ा। टोंक का नवाब उसके मुकाबले को आया; पर नवाब की सेना तोपों सहित उससे आ मिली, और तात्या मेवाड़ आ निकला। वहाँ उसकी तोपें छिन गईं; और तीन सेनाओं से बच कर चम्बल पार कर वह झालरापाटन पहुँचा। झालावाड़ का राजा मुकाबले को आया, लेकिन उसकी सेना भी तात्या की चुम्बक शक्ति से खिंच गई, और राजा को ३२ तोपें तथा १५ लाख रुपया देना पड़ा। वहाँ से तात्या सीधे इन्दौर को बढ़ा, पर इन्दौर के प्रायः ११० मील उ० पू० राजगढ़ से उसे मुड़ना पड़ा। छः सेनापति उसे घेरने को दौड़ते रहे। कहीं वह सब कुछ गँवा देता, तो कहीं फिर नई सेना, नया खज़ाना और नया तोपखाना पा लेता। अन्त में ललितपुर में वह पाँच तरफ़ से घिरता मालूम हुआ, लेकिन उस घेरे को तोड़ कर, तीन सेनाओं के पीछा करने के बावजूद होशंगाबाद पर नर्मदा पार कर अक्तूबर में नागपुर आ निकला! यदि एक साल पहले महाराष्ट्र में पेशवा का सेनापति आ गया होता तो शायद दशा और ही होती। लेकिन अब उसे नागपुर से कोई मदद न मिली। वह बड़ोदे की ओर बढ़ा; फिर राजस्थान को लौटा और छः महीने उसी तरह लड़ता रहा। अन्त में अलवर के पास एक विश्वासघाती ने उसे धोखे से पकड़वा दिया (७-४-१८५९)।

§ १०. **विफलता का कारण**—भारत के पहले स्वाधीनता-युद्ध को अंग्रेज़ों ने सिपाही-विद्रोह नाम दिया और यह दिखाने का यत्न किया कि यह धार्मिक अन्धविश्वास पर चोट लगने से उमड़े हुए सैनिकों का प्रयत्न था। पर घटनाओं से स्पष्ट प्रकट है कि अम्बाला-दिल्ली से बनारस तक भारत के 'मध्य-

देश की समूची जनता उठ खड़ी हो कर इस युद्ध में भाग ले रही थी, तथा बिहार, राजस्थान, बुन्देलखंड और दक्खिन की जनता भी भाग लेने को बेचैन थी। दिल्ली और लखनऊ में जिस तरह एक एक मकान की एक एक कोठरी के लिए लड़ाई हुई, बनारस से कानपुर तक और कानपुर से लखनऊ तक जनता ने जिस तरह अंग्रेजी सेनाओं का रास्ता रोका, अम्बाले से दिल्ली चढ़ने वाली अंग्रेज़ी फौज का जिस तरह बहिष्कार किया, तथा अंग्रेजों ने जिन पाशविक तरीक़ों से बदला ले कर अपने दिल की कसक निकाली और जनता को दबाने की चेष्टा की, उस सब से प्रकट है कि यह समूची जनता का स्वाधीन होने के लिए संघर्ष था।

राज्यों की जब्तियों से उभड़े हुए कुछ राजा नवाब लोग इस युद्ध में भाग ले रहे थे इससे भी इसके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि जनता अपनी स्वतन्त्रता के लिए बेचैन हो कर न उठी होती तो उन लोगों को चूं करने की हिम्मत न हुई होती और वे पुकारते भी तो उनकी पुकार बहरे कानों पर पड़ती। ग्वालियर, इन्दौर, भरतपुर, टोंक, झालावाड आदि राज्यों की घटनाओं से उलटा यह प्रकट है कि जनता तो वहाँ भी उठने को तैयार बैठी थी, पर राजाओं-नवाबों ने धोखा दिया। और जिन राजाओं ने साथ दिया, उन्होंने स्वाधीनता की सच्ची प्यास से दिया और इसी लिए वे अन्त तक लड़े। बहादुरशाह को कोई नया अपमान सहना नहीं पड़ा था। लक्ष्मीबाई जिस वातावरण में पली थी उसमें उसे बचपन से ही ऊँची भावनाएँ मिली थीं, और जिस कुल में उसका विवाह हुआ उसमें भारत की सर्वप्रथम जागृति की परम्परा चली आती थी।

अन्धविश्वास से थोड़े ही सैनिक उभड़े और उभड़ कर उन्होंने क्रान्ति-युद्ध को हानि ही पहुँचाई। अधिकांश सैनिक चर्बी वाले कारतूसों की बात जानते हुए भी न केवल निश्चित तिथि तक चुप रहे, प्रत्युत उसके बाद अंग्रेजी शस्त्रभंडारों से छीने हुए उन कारतूसों का युद्ध में बराबर उपयोग करते रहे। और यह तो निश्चित ही है कि इस युद्ध की तैयारी कम से कम १८५५ से हो रही थी, जब कि कारतूसों की बात जनवरी १८५७ में ही सामने आई।

तब भारतीय जनता का वह पहला स्वाधीनता-युद्ध विफल क्यों हुआ ? जिन्होंने इसे सिपाही विद्रोह मान रक्खा है, उनका उत्तर है कि सिक्ख, गोरखे और तिलंगे इसमें शामिल नहीं हुए। बेशक, यदि अंग्रेजी फौज के सिक्ख, गोरखे और तिलंगे सिपाहियों को भी क्रान्तिकारी मिला सके होते तो अंग्रेजों के लिए इस क्रान्ति को दबाना बहुत कठिन, शायद असम्भव हो गया होता। किन्तु दिल्ली से बनारस तक का प्रदेश फ्रांस या जर्मनी के बराबर है। उसकी सारी जनता जब उठी थी, और राजस्थान बुन्देलखंड बिहार और महाराष्ट्र की जनता भी उसके साथ उठने को तैयार थी, तब उस प्रदेश को बाहर की किसी भी शक्ति का सामना कर सकना चाहिए था, यदि उसके भीतर कोई त्रुटि न रही होती।

वह भीतर की त्रुटि भी घटनाओं के विवरण से प्रकट है। इस समूचे स्वाधीनता-युद्ध में संचालन की एकसूत्रता नहीं थी, युद्ध की सुविचारित योजना नहीं थी, प्रत्येक सेना-दल और जनता को समयानुसार उसके निश्चित कार्य का आदेश देने वाली कोई अधिकारी शक्ति नहीं थी, यथेष्ट नेतृत्व नहीं था। अंग्रेजों के हाथ बिकी हुई भारतीय सेना के बड़े भाग को भारतीयों ने अपनी तरफ मिला लिया था, किन्तु उस सेना के ठीक ठीक संचालन का उपाय नहीं किया था।

तो क्या भारतीयों में सेना-संचालन की योग्यता नहीं थी ? यह प्रश्न आने पर हमारा ध्यान बख्तखाँ, मौलवी अहमदशाह, लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे की ओर जाता है। उनके चरितों से सूचित है कि उनमें ऊँचे दर्जे की सामरिक प्रतिभा सहज ही विद्यमान थी। पर उस प्रतिभा को ठीक शिक्षण और विकास का अवसर न मिला था, तथा उन प्रतिभाशाली व्यक्तियों को यथेष्ट अधिकार सौंप कर उनसे पूरे युद्ध का संचालन शुरू से नहीं कराया गया था। इस युद्ध का आयोजन करने वालों ने भारत में अंग्रेजों की सामरिक शक्ति के इस एक तत्त्व को ठीक पहचान लिया था कि वह शक्ति भारतीय सैनिकों से बनी है, पर दूसरे इस तत्त्व [१०,२§६] की ओर उनका ध्यान नहीं गया था कि युरोपी सेना-संचालन नये किस्म का है, वह बड़ा नियमित और सुशृंखल है; वैसा संचालन करने के लिए उपयुक्त प्रतिभा वाले व्यक्तियों को उचित शिक्षा और अभ्यास का अवसर मिलना चाहिए, तथा उस प्रकार के अभ्यस्त व्यक्ति

द्वारा ही सेना का संचालन होना चाहिए। इस तत्त्व को न पहचानना और इसके अनुकूल आचरण न होना भारत के पहले स्वाधीनता-युद्ध की विफलता का असल कारण था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. भारत के पहले स्वाधीनता-युद्ध की तह में क्या विचार था? उस युद्ध का संकल्प, विचार और आयोजन किन लोगों ने कब कैसे किया?

२. पहला स्वाधीनता-युद्ध निश्चित तिथि से पहले क्यों छिड़ गया? वैसा होने से युद्ध की सफलता में कहाँ तक बाधा पड़ी?

३. भारत के विभिन्न प्रान्तों में पहला स्वाधीनता-युद्ध आरम्भ करने के लिए विप्लव किस प्रकार किस क्रम से फूटा? उससे क्रान्ति की शक्ति कहाँ कितनी प्रकट हुई?

४. भारत के पहले स्वाधीनता-युद्ध को अंग्रेज़ों ने कैसे किस क्रम से दबाया?

५. लखनऊ और झाँसी के पतन के बाद सन् १८५८ में भारतीय क्रान्तिकारी किस स्थिति में थे? उसके बाद उन्होंने युद्ध का संचालन किस योजना पर किस प्रकार किया?

६. भारत का पहला स्वाधीनता-युद्ध विफल क्यों हुआ? विवेचनापूर्वक लिखिए।

अध्याय ६

कम्पनी-राज में भारत की आर्थिक सामाजिक दशा

§१. कम्पनी के शासन में भारतीय किसान—एक व्यापारी मंडली ने हमारे देश को जीत लिया और किसानों से उनकी जमीन की मिलकियत भी छीन ली। व्यापारी अपना धन्धा नफे के खातिर ही करते हैं। उन व्यापारियों ने भारतवर्ष की भूमि और जनता को अपने कारोबार का साधन बना डाला। "हर हिन्दुस्तानी के बारे में यही समझा जाता (था) कि वह ईस्ट इंडिया कम्पनी की कमाई करने को पैदा हुआ प्राणी है।"

हमने देखा है कि रैयतवारी पद्धति में खेती का नफा जमीन के मालिक की हैसियत से कम्पनी ले लेती थी; किसानों को खाली मजदूरी मिलती थी। लेकिन बहुत बार उनकी मजदूरी भी खेती से न निकलती; तब वे खेत छोड़ना चाहते पर उन्हें छोड़ने न दिया जाता, जिसका यह अर्थ था कि वे बँधे हुए गुलाम

बन गये थे। इस दशा में या तो कर्ज़ ले कर या यातनाओं से बाधित हो कर ही वे लगान दे पाते थे। मद्रास प्रान्त में लगान की वसूली के लिए जो यातनाएँ प्रचलित थीं, उनका परिगणन एक सरकारी रिपोर्ट में यों किया गया है—

"धूप में खड़ा रखना; भोजन या हाजत के लिए न जाने देना; किसानों के मवेशियों को चरने न जाने देना;...मुर्गा बनाना; अँगुलियों के बीच डंडिया डाल कर दबाना; चमौटी, चाबुक की मार,...दो नादिहन्दों के सिर टकराना या दोनों को पीठ की ओर से केशों से बाँध देना; शिकञ्जे में कसना; गधे या भैंस की पूँछ से केश बाँध देना; इत्यादि।"

ऐसी यातनाएँ कब तक सही जातीं? धीरे-धीरे उनका स्थान ऋण ने ले लिया। "वे रैयत जो पहले समृद्ध थे, जमीन पर पूँजी लगा सकते थे,... अपनी उपज को जब तक अच्छे दाम न मिलें रोक रखते थे, अब भारी सूद वाले ऋण में डूब" गये।

पहले किसान न केवल अपनी जमीनों के मालिक थे, प्रत्युत गाँव के भीतर सरकारी मालगुजारी का बँटवारा और वसूली उनकी पंचायतें ही करती थीं अब ये काम तुच्छ सरकारी कारिंदे करने लगे, और किसान का काम केवल हुक्म बजाना रह गया। इस पद्धति का परिणाम यह हुआ कि "हर आदमी अपनी नजरों में गिर गया और सदा के लिए ताबेदारी में फँस गया। आत्म-निर्भर ईमानदार व्यक्ति वाली मर्दानी चाल उसकी न रही। अपने से बड़े की कृपा या त्यौरी की परवा न कर सम्मान से सीधा खड़ा होना उसके लिए असंभव हो गया।"

इस दशा में भी यदि खेती जारी रही तो इस कारण कि "भूख से लाचार हो कर किसान खेती करने को बाधित होता था।"

§ २. **कारीगरों की दशा**—कम्पनी का पुराना "व्यापार" [१०,३§४] भी सन् १८३३ तक जारी रहा। उस "व्यापार" के लिए अब मालगुजारी में से ही पूँजी बचा ली जाती थी; इसलिए उस पूँजी से जो माल खरीद कर इँग्लैंड भेजा जाता था, उसके बदले में कुछ न आता था। यह पूँजी व्यापारी रेजिडेंटों की कोठियों में बाँट दी जाती थी। रेजिडेंट लोग खास दिन पर पड़ोस के जुलाहों की हाजिरी तलब करते और उन्हें रुपया अगाऊ दे देते। माल की दर रेजिडेंट

तय कर देते, जुलाहा न माने तो उसके घर पर पहरा बिठा दिया जाता। माल लाने में देरी हो तो चमौटी लिये चपरासी भेजा जाता जिसका खर्चा जुलाहे पर पड़ता था। रेगुलेशन बनाया गया था कि जो जुलाहा कम्पनी से अगाऊ ले, वह और किसी को माल न दे। जमींदारों और किसानों को हुक्म था कि व्यापारी रेजिडेंटों और उनके कारिंदों से अदब से बर्तें और उन्हें जुलाहों के घर पहुँचने में बाधा न दें। सन् १८१३ से कम्पनी के सिवाय दूसरे अंग्रेजों को भी भारत में व्यापार करने की इजाजत मिल गई। ये खानगी व्यापारी चमौटी और शिकजे का प्रयोग और भी खुल कर करते। यों पलाशी के बाद से अंग्रेजों ने व्यापार का जो नया तरीका निकाला था, वह सन् १८३३ तक जारी रहा।

§ ३. कारीगरी का नाश—गुलामी की ये यातनाएँ भोगने के बाद भारतीय कारीगरी को अब सर्वनाश का सामना करना था। भारत का विदेशी व्यापार अब पूरी तरह अंग्रेजों के हाथ में था। अठारहवीं शताब्दी से ही वे भारतीय माल को अपने देश में घुसने से रोकने लगे थे [१०,५ § ८]। नैपोलियन ने युरोप के सब बन्दरगाहों को अंग्रेजी माल के लिए बन्द कर दिया। तब से अंग्रेजों ने अपने कारखानों का फालतू माल भारत पर लादना शुरू किया। तो भी "सन् १८१३ तक भारतीय कपड़ा इंग्लैंड में अंग्रेजी कपड़े से ५०-६० फी सदी कम दाम पर भी नफे में बिक सकता था। तब उसपर ७०-८० फी सदी चुंगी या सीधी रोक लगा दी गई। ऐसा न होता तो पैसली और मांचेस्टर की मिलें शुरू में ही बन्द हो जातीं और फिर भाप की शक्ति से भी न चल सकतीं।"

इसके बाद चौथाई शताब्दी तक भारत में अंग्रेजी कपड़े पर २॥ फी सदी चुंगी रही, और ब्रितानिया में भारतीय पर १० से १००० फी सदी तक। सन् १८१६-१७ में भारतीय जुलाहों ने अपने देश की जनता को पहनाने के बाद १६६ लाख रुपये का कपड़ा बाहर भेजा। १८४६-४७ तक वह सारा निर्यात गायब हो गया, उलटा ४ करोड़ का कपड़ा इंग्लैंड से भारत को आया। सूरत, ढाका और मुर्शिदाबाद की समृद्ध बस्तियाँ उजड़ गईं। ढाके की आबादी डेढ़ लाख से ३० हजार रह गई और उसे जंगल और मलेरिया ने आ घेरा।

कोई कोई भारतीय कारीगरी इस संहार के बीच भी बहादुरी से डटी रही। मारवाड़ और गुजरात में रंग-बिरंगी चुनरियाँ तैयार होती थीं। लड़कियाँ अपनी चपल अँगुलियों से कपड़े में गाँठें बाँध कर उसे एक रंग में रँगतीं, फिर नई गाँठें बाँध कर दूसरे रंग में; इस तरह एक कपड़े पर कई रंग चढ़ाये जाते और वह कपड़ा 'बाँधणी' कहलाता। भारत के ऐसे रेशमी 'बाँधणे' (रूमाल) फ्रांसीसियों को बहुत भाते थे और सन् १८५७ तक उनका व्यापार चमकता रहा। "वह भारत की मरती कारीगरियों में से अन्तिम थी।"

सन् १८४० तक कलकत्ते और मुम्बई में अच्छे जहाज बनते थे। मुम्बई के पारसियों ने इस व्यवसाय में नाम कमाया था। लेकिन इंग्लैंड में सन् १६५१ से १८४६ तक ऐसे "नाविक कानून" रहे कि इंग्लैंड में जो माल आय वह अंग्रेज़ी जहाज़ों में ही आय। जिन देशों के साथ इंग्लैंड की बराबरी की संधियाँ थीं, उनमें भी अंग्रेज़ी जहाजों को सुविधाएँ थीं। उन सुविधाओं से वञ्चित होने के कारण भारत में जहाज बनाने का काम जारी न रहा।

"भारत के जो लोग दस्तकारी से खाली होते गये, वे मुख्यतः कृषि में गये।" यों जमीन पर बोझ बढ़ता गया और जंगलों और चरागाहों वाली जमीनें भी खेती में लगाई जाने लगीं।

§४. खिराज तथा राष्ट्रीय ऋण—भारतवर्ष को जीतने और काबू रखने का सब खर्चा तो ई० इं० कम्पनी ने भारत से वसूला ही, उसके अलावा भारतीय सेना को जब अंग्रेज़ों के स्वार्थ के लिए मिस्र, जावा, बरमा, अफ़गानिस्तान, चीन और ईरान भेजा तब उसका खर्चा भी भारत से लिया। अकेले आंग्ल-अफगान युद्ध के लिए भारतीय जनता को १५ करोड़ रु० देना पड़ा। दूसरी तरफ, सन् १८५७ की भारतीय क्रान्ति को दबाने के लिए जो गोरी सेना विलायत से आई उसकी इंग्लैंड से चलने से छः महीने पहले तक की तनखाहें तथा इंग्लैंड की छावनियों में भारतीय सेवा के नाम से जमा सेना की १८६० तक की तनखाहें भी भारत ने दीं।

इन सब खर्चों और अंग्रेज़ हाकिमों की भारी तनखाहों के बावजूद भी कम्पनी के कुल शासन-काल में सरकारी व्यय से आय अधिक हुई। लेकिन

ब्रितानवी सरकार का जो नियन्त्रण-वर्ग (बोर्ड ऑव् कण्ट्रोल) लन्दन में था [१०, ४ § ७], उसका खर्चा और कम्पनी की पूँजी पर डिविडेंड या मुनाफा भी भारत की जनता को देना पड़ता था। जिस साल सरकारी आमदनी खर्चे से कम हुई, या जब-जब उसमें से मुनाफा देने की गुंजाइश न रही, तब-तब कम्पनी भारत के नाम पर ऋण लेती गई और उससे अपना मुनाफा पूरा करती रही। उस ऋण का सूद भारतीय जनता पर पड़ता गया। यों कम्पनी के शासन में हर साल लगभग ३०-३५ लाख पौंड इस लन्दन के खर्चे और मुनाफे के लिए भारत से इंग्लैंड को जाता रहा। यह कुल मालगुजारी का लगभग ⅙ होता था। अंग्रेज हाकिम जो अपनी निजी बचत भेजते वह अलग थी। इस खिराज की खातिर भारत पर जो ऋण लदता गया, वह सन् १८५८ में ६६५ लाख पौंड था।

यह खिराज सोने चाँदी के रूप में नहीं, प्रत्युत माल के रूप में प्रतिवर्ष जाता रहा। हमने देखा है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी पहले मालगुजारी में से बचत करके उससे कपड़ा खरीद कर विलायत भेजती थी। पीछे जब भारत के कारीगरों से खरीदने को कुछ न रहा, तब अन्न के रूप में यह जाने लगा। दूसरे देशों को भारत जितना माल भेजता उतना ही उनसे मँगाता भी था। पर इंग्लैंड को यह "आयात से निर्यात की अधिकता द्वारा खिराज देता" रहा। एक तो दस्तकारी की चीजों को अन्न दे कर खरीदना ही दरिद्रता का कारण था, दूसरे यह गुलामी का कर भी भारतीय जनता अन्न में चुकाने लगी। एक स्पष्टवादी अंग्रेज के शब्दों में "हमारी पद्धति एक स्पञ्ज के समान है जो गंगा-तट से सब अच्छी चीजों को चूस कर टेम्स-तट पर जा निचोड़ती है।" इस पद्धति का एक ही परिणाम हो सकता था—दुर्भिक्ष, बार-बार दुर्भिक्ष।

§५. गोरे कृषिव्यवसायी और भारतीय कुली—उक्त कारणों से देश में ऐसे लोगों की बड़ी संख्या होती गई जो किसी भी शर्त पर मजदूरी करने को तैयार होते। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू से अनेक गोरे भारत में खेती बाड़ी में पूँजी लगा कर उन सस्ते मजदूरों से लाभ उठाने लगे। बंगाल-बिहार में वे नील की खेती कराने लगे। सन् १८१३ से भारत में गोरी बस्तियाँ बसाने की

बाकायदा कोशिशें होने लगीं। कोडुगु (कुर्ग) और नीलगिरि में काफी (कहवे) और सिनकोने की काश्त के लिए तथा असम, कुमाऊँ और काँगड़े में चाय की खेती के लिए गोरों को माफी जमीनें दी गईं। अपने देश में अनेक खनिजों की तरफ भारतीयों का ध्यान न गया था। बर्दवान प्रदेश की कोयले की खानें पहलेपहल १८१४ ई० में अंग्रेज़ों ने खुदवानी शुरू कीं।

गोरे कृषिव्यवसायियों के लाभ के लिए "प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा" चलाई गई, जिसमें मजदूर पाँच बरस मजदूरी करने का ठहराव कर देते और उस ठहराव से भागना फ़ौजदारी अपराध बना दिया गया था। भूखे मरते बेकारों को सब्ज बाग दिखा कर उनसे ठहरावों पर अँगूठा लगवा कर इन व्यवसायियों के दलाल उन्हें ले जाते थे। एक बार ऐसे ठहराव में जो मजदूर फँस गया उसे ५ साल बाद कोई चारा न होने से फिर ठहराव करना पड़ता था। ये मजदूर कुली कहलाते और यह कुली प्रथा गुलामी का नया रूप थी।

निलहे गोरे किसानों पर पाशविक जुल्म करते। बंगाली लेखक दीनबन्धु मित्र ने अपने नाटक 'नीलदर्पण' में उन जुल्मों का चित्रण किया। सन् १८५६-६० ई० में निलहों के विरुद्ध किसानों ने एक साथ विद्रोह किया; उसके बाद से नील की खेती घटने लगी और उसमें कुछ सुधार हुए।

सोलहवीं सदी से युरोपी लोग अपने अमरीका आदि के उपनिवेशों में जलील मेहनत का काम लेने के लिए अफरीका के लोगों को पकड़ ले जाते थे। उन्नीसवीं सदी के शुरू तक अमरीकी उपनिवेश तो अफरीकी गुलामों से पट चुके थे और उनमें काम की तलाश करने वाले गोरे मजदूर भी काफी पैदा हो चुके थे। पर मारिशस, त्रिनिदाद, गियाना, जैमेका आदि के खाँड पैदा करने वाले और अनेक दूसरे गोरे उपनिवेशकों का काम अभी गुलामों के बिना न चल सकता था। भारत के गोरे कृषिव्यवसायियों के तजरबे से इन उपनिवेशों के गोरों को भी अब मालूम हो गया कि "स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी हब्शी गुलाम से सस्ती जिन्स था" जिससे १८२३ में अंग्रेज़ी पार्लिमेंट ने कानून बना कर अंग्रेज़ी उपनिवेशों में "प्रतिज्ञाबद्ध कुलियों" को ले जाना नियमित कर दिया। अंग्रेज इतिहासिकों का कहना है कि सन् १८३३ के लगभग अंग्रेज़ों का अन्तरात्मा

गुलामी प्रथा के विरुद्ध जाग उठा और उस प्रथा को उठाने के कानून बनाये गये। पर वह तभी जागा था जब गुलामों से सस्ते भारतीय कुलियों की धारा साल-ब-साल अंग्रेजी उपनिवेशों में नियम से पहुँचने लगी थी।

§६. भारत में अंग्रेज़ी उपनिवेशों का न पनपना—भारत में गोरों को बसाने की कोशिशें सफल न हुईं, क्योंकि अंग्रेज "अपना अन्तिम जीवन भारत में बिताना न चाहते" थे। उसका भी कारण यह था कि वे भारत में अपना समाज न खड़ा कर सके—वे भारतीयों का न तो अमरीका के मूल बाशिन्दों की तरह संहार कर सके, और न उन्हें अफरीकियों की तरह इतना रौंद सके कि भारत में स्वतन्त्र युरोपी समाज पनप सकता।

ऐसा वे न कर सके इसका मूल कारण यह था कि भारतीय उनका कुछ न कुछ प्रतिरोध करते ही रहे—सौ बरस के युद्धों में हारते हुए भी वे कुछ न कुछ मुकाबला करते ही रहे, जिससे प्रत्येक युद्ध के अन्त में अंग्रेजों को सबक मिलता कि उन्हें और अधिक दबाना ख्तरनाक होगा।

§७. नमक का एकाधिकार—कम्पनी ने अपने शासन-काल में नमक पर बराबर एकाधिकार रक्खा, और "उत्पादन के खर्च पर २०० या २५० फी सदी का जालिमाना कर" लगाती रही। फलतः इंग्लैंड में जहाँ सन् १८५२ में नमक का भाव ३० शिलिंग प्रति टन था, वहाँ भारत में २१ पौंड प्रति टन था। इसी से इंग्लैंड से भारत को नमक का आयात भी काफी होता रहा।

भारत अपना वार्षिक हिसाब चुकाने को आयात से अधिक जो निर्यात भेजता था, उसे ढोने वाले जहाज वापसी यात्रा में खाली न आयें, इसलिए किसी बहुत सस्ती वस्तु से उन्हें भरना होता था। यों इंग्लैंड से भारत को नमक लाना आवश्यक था। नमक के एकाधिकार का आरम्भ तो अंग्रेजों की व्यापार के नाम पर लूट से हुआ था [१०, ३ § ५], पर अब अंग्रेजों की भारत को निचोड़ने की जो पद्धति स्थापित हुई, उसका एक आवश्यक पुर्ज़ा बन कर वह कम्पनी के शासन के बाद भी जारी रहा।

§८. नहरें और लपथ—गंगा-जमना दोआब अंग्रेजों के हाथ आने पर गवर्नर-जनरल मिंटो के समय उनका ध्यान उधरी पुरानी नहरों की तरफ

आंग्ल-सिक्ख युद्ध तक—केवल एक आंग्ल-नेपाल युद्ध के सिवाय—प्रत्येक युद्ध में नेतृत्व का अभाव या नेताओं का विश्वासघात ही भारतीयों की हार का मुख्य कारण हुआ और प्रत्येक युद्ध में नेतृहीन सेना वीरतापूर्वक लड़ी। माधवराव पेशवा ने १७६६-७२ ई० में जब भारत की सब शक्ति को एकमुख कर के भारत से अंग्रेज़ों को निकालने के लिए लगाने का यत्न किया था, और फिर १७६२ में जब शाहआलम ने वैसा ही करने का सन्देश दे कर महादजी को पूने भेजा था, तब से वह विचार स्पष्ट रूप से भारत के लोगों के सामने था। यशवन्तराव होल्कर ने १८०४-०५ में तथा अमरसिंह और भीमसेन थापा ने १८१४-१५ में फिर भारतीय राज्यों के नेताओं को उस आदर्श के लिए उठाने का यत्न किया, पर उन लोगों ने अपने अपने निकटवर्त्ती निजी स्वार्थ के सिवाय कुछ न देखा। रणजीतसिंह और मराठा राज्य उस अवसर पर उठते तो अपने को आने वाली विपत्ति से बचा सकते। १८४१-४२ में जब अफगानों ने अंग्रेज़ों की एक बड़ी सेना काट डाली, तब फिर सिक्खों और ग्वालियर राज्य के लिए उठ कर अपने को आने वाली विपत्ति से बचाने का बहुत ही अच्छा अवसर था। पर नौनिहाल की मृत्यु के बाद सिक्खों का कोई नेता न था, और ग्वालियर राज्य के नेता बदहोश सोये हुए थे। हम देख चुके हैं कि १८५७ के स्वाधीनता-युद्ध के समय भी किस प्रकार अनेक प्रदेशों की जनता उठना चाहती थी, पर वह जिनसे नेतृत्व की आशा करती रही वही लोग धोखा देते रहे।

ज्ञान में पिछड़ जाना भारतीयों की हार का एक और कारण था, सो भी हमने देखा है। साथ ही यह भी देखा है कि नये ज्ञान को अपनाने की योग्यता का अभाव न था, यदि ध्यान चला जाय तो वे नई बात को शीघ्र सीख लेते थे। सन् १७६३ में जैसे मीर कासिम के मुंगेर के कारखाने की बनी बन्दूकें अंग्रेज़ी बन्दूकों से अच्छी निकली थीं [१०,५§३] वैसे ही १८४५ में फेरूशहर की लड़ाई में सिक्खों की तोपें हर बात में अंग्रेज़ी तोपों से बढ़िया निकलीं [११,३ § १७]। इसी प्रकार युद्ध में सेना-संचालन की योग्यता या सामरिक प्रतिभा का भी भारतीयों में अभाव न था। आंग्ल-नेपाल युद्ध में अमरसिंह थापा और उसके साथियों का सेना-संचालन अंग्रेज़ों के सेना-संचालन से पिछड़ा न था।

दूसरे आंग्ल-सिक्ख युद्ध में जिस शेरसिंह का गफ ने सामना किया, उस समय के अन्य अंग्रेज सेनानायकों का मत था कि युद्धकला में वह गफ से अधिक कुशल था। तात्या टोपे की सामरिक प्रतिभा को देख कर तो उस समय के श्रेष्ठ युरोपी सेनानायक दाँतों तले उँगली दबाते थे। परन्तु इस प्रकार राष्ट्र में योग्यता और प्रतिभा के रहते हुए भी उस योग्यता और प्रतिभा को यथास्थान लगाने वाला नेतृत्व नहीं था—जिन लोगों के हाथ में राष्ट्र की आर्थिक राजनीतिक शक्ति थी वे स्वार्थलिप्त और बदहोश थे। यही भारत के इस घोर पतन का मूल कारण था।

इस कारण जिस गुलामी और दरिद्रता में भारतीयों को फँसना पड़ा, उसका प्रभाव उनके चरित्र पर पड़ना अवश्यम्भावी था। तो भी पहले स्वाधीनता-युद्ध के जमाने तक भारत के साधारण लोगों का चरित्र उतना गिरा न था। ठगी प्रथा को उखाड़ने वाले कर्नल स्लीमैन ने लिखा था, "मैंने ऐसे सैकड़ों मौके देखे जब एक हिन्दुस्तानी की सम्पत्ति, स्वाधीनता, जीवन, सब एक झूठ बोलने से बच सकते थे, पर उसने न बोला।"

§ ११. समाज-सुधार और ज्ञान-प्रसार के पहले प्रयत्न—कुछ विचारशील भारतीयों ने अपने देश की दुर्दशा के कारणों पर विचार किया और इस परिणाम पर पहुँचे कि भारतीयों के धर्म-कर्म और समाज-संघटन में सुधार और नये ज्ञान के प्रचार द्वारा ही अपने राष्ट्र को जाग्रत किया जा सकता है। बंगाल के राममोहन राय (१७७४-१८३३ ई०) का उल्लेख हो चुका है। राममोहन ने धार्मिक सामाजिक सुधार के लिए 'ब्राह्म समाज' की स्थापना की। भारत के पुराने ज्ञान के साथ युरोप के नये ज्ञान का समन्वय कर के भारत की देशी भाषाओं में उसे उपस्थित करने को राममोहन ने भारतीयों के जागरण का विशेष मार्ग माना। इसी समय (१८१८) से बँगला में अखबार भी निकलने लगे। गवर्नर-जनरल हार्डिंज के समय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बंगाल में शिक्षा फैलाने की विशेष चेष्टा की और अच्छे पाठ्य-ग्रन्थ तैयार किये।

अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद मराठों की जो पहली पीढ़ी आई उसमें बाळशास्त्री जांभेकर (१८१२-१८४६ ई०) और गोपाल हरि देशमुख (१८२३-

१८६२) नामक सुधारक और विचारक हुए। जांभेकर ने तेरह वर्ष की आयु तक संस्कृत शास्त्रों का खूब अभ्यास किया था; उसके बाद अंग्रेजी, फ्रांसीसी और लातीनी सीख कर युरोप के नये गणित और ज्योतिष का गहरा अध्ययन किया और इन विषयों पर मराठी में पहले ग्रन्थ लिखे; एल्फिंस्टन के चलाये शिक्षा-विभाग में सेवा कर जी-जान से अपने प्रांत में शिक्षा-प्रसार का यत्न किया; अपने देश के इतिहास-पुरातत्व की ओर ध्यान दिया; बँगला, फारसी, गुजराती और कन्नड भी सीख कर मराठी में पहला साप्ताहिक और मासिक पत्र निकाला, समाज-सुधार के पहले प्रयत्न किये तथा अपने शिष्यों में देशसेवा की भावना जगाई।

गोपाल हरि का पिता अन्तिम पेशवा के सेनापति बापू गोखले की सेवा में रहा था, जिससे गोपाल का ध्यान बचपन से ही मराठा राज्य के पतन की दशाओं की तरफ गया। उसने भारत में गहरे धार्मिक सामाजिक राजनीतिक उलटफेर की आवश्यकता देखी और २६ बरस की ही आयु में बड़ी पैनी और विचारमथक शैली में 'लोकहितवादी' नाम से मराठी में अपने पूरे सिद्धान्त प्रकाशित किये (१८४६ ई०)। अंग्रेज़ी राज से पैदा हुई भारत की दरिद्रता को दूर करने के लिए उसने स्वदेशी कारबार बढ़ाने, स्वदेशी वस्तुओं के बर्त्तने और अंग्रेज़ी माल के बहिष्कार का रास्ता पहलेपहल बताया। पर ऐसा नहीं प्रतीत होता कि लोकहितवादी का ध्यान भारत की पराधीनता के उस सीधे कारण—भारतीयों के अंग्रेज़ों के भाड़ैत बनने—की ओर भी गया हो, जिसे तभी उसका समवयस्क नाना साहब और उसके साथी पहचान रहे थे।

महाराष्ट्र और बंगाल के अन्य अनेक लोगों ने भी, जिनका प्रायः मैकाले-पद्धति से पहले वाले अंग्रेज़ों के शिक्षा-प्रसार के प्रयत्नों से सम्बन्ध था, इस समय बड़े उत्साह से युरोप के नये विज्ञान सीख कर मराठी, बँगला और हिन्दी में भी वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखे। इनमें बापूदेव शास्त्री का गणित विषयक हिन्दी ग्रन्थ (१८५० ई०) मार्के का है। भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक वाङ्मय की यह धारा अच्छी चलती दिखाई दी, पर दूसरी ओर मैकाले की शिक्षापद्धति में अंग्रेज़ी साहित्य और कानून की शिक्षा पर तथा भारतीयों के अंग्रेज़ी बोलना-

लिखना सीखने पर ज़ोर दिया जा रहा था; जिससे वे अंग्रेज़ों के अच्छे उपकरण बन सकें। कम्पनी के ऊँचे अधिकारियों के आदेश से सन् १८५७ में लन्दन युनिवर्सिटी (विद्यापीठ) के नमूने पर अंग्रेजी के माध्यम से परीक्षा लेने वाली युनिवर्सिटियाँ कलकत्ता, मद्रास और मुम्बई में स्थापित की गईं। शिक्षा में अंग्रेज़ी का महत्व क्रमशः बढ़ते जाने से भारतीय भाषाओं में विज्ञान-वाङ्मय की जो धारा चली थी, वह कुछ दूर जा कर छीज गई।

'लोकहितवादी' के स्वदेशी की पुकार उठाने के पाँच बरस बाद कावसजी नानभाई दावर ने मुम्बई में कातने-बुनने की पहली नये ढंग की मिल खड़ी की (१८५४ ई०)।

§१२. **भारत-विषयक अध्ययन का उदय**--बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना [१०, ४ § २], के बाद से युरोपियों का भारत-विषयक अध्ययन तेज़ी से बढ़ा। उस संस्था की स्थापना से पहले सन् १७६७ में कोर्दो नामक फ्रांसीसी ने पहले पहल यह पहचाना था कि संस्कृत, यूनानी और लातीनी भाषाएँ सगोत्र हैं। कोलब्रुक ने संस्कृत-व्याकरण, गणित, ज्योतिष आदि पर तथा चार्ल्स विल्किन्स ने भारत के पुराने लेखों पर ध्यान दिया। भारतीय पंडित अपने पुराने लेखों को पढ़ते न थे; पर कोशिश करते तो सातवीं शताब्दी से इधर के लेखों को पढ़ सकते थे। सन् १७८५ में विल्किन्स ने बंगाल का एक पाल अभिलेख तथा राधाकान्त शर्मा ने अशोक की दिल्ली वाली लाट पर का बीसलदेव चौहान का लेख पढ़ डाला। उसके बाद विल्किन्स ने गया के पास का एक मौखरि अभिलेख पढ़ डाला, जिससे गुप्त युग की लिपि आधी पहचानी गई।

सन् १८०२ में नैपोलियन के एक अंग्रेज़ कैदी से श्लीगल नामक जर्मन ने पेरिस में संस्कृत सीखी। श्लीगल का समकालीन फ्रांसीसी फ्रांज़ बौप था। इन दोनों ने संस्कृत की ईरानी तथा युरोपी भाषाओं से तुलना कर तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की नींव डाली। इन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से जाना गया कि इन्हें बोलने वाली जातियों के धर्म-कर्म, देवगाथाओं, प्रथाओं और संस्थाओं में भी बड़ी समानता थी, और यों आर्य नृवंश का पता चला। यह उन्नीसवीं शताब्दी की सब से बड़ी खोजों में से एक थी। उक्त तुलनात्मक अध्ययनों से सन्

१८४० के लगभग यह विचार जगा कि मानव-समाज का क्रम-विकास होता आया है। यह विचार हमारी आधुनिक विचारपद्धति की प्रमुख आधार-शिला है।

अठारहवीं सदी में युरोपियों ने भारत के जो नक्शे बनाये थे, वे सब अंदाज़ से थे। अब सन् १८०२ में लैम्बटन को मद्रास की "आधार-रेखा" मापने पर लगाया गया, जिससे भारत की पैमाइश वैज्ञानिक ढंग पर शुरू हुई।

सिंहल में काम करने वाले युरोपियों का ध्यान इसी समय पालि बौद्ध वाङ्मय की ओर गया। सन् १८३४ तक इलाहाबाद किले की अशोक की लाट पर का समुद्रगुप्त का लेख पूरा पढ़ा गया जिससे गुप्त युग की लिपि पूरी जानी गई।

साँची, भारहुत, वेरूल आदि के अभिलेखों की छापों का इस बीच संग्रह किया गया था। पंजाब में सेनापति वेंतुरा [११,१§१५] ने एक-दो पुरानी "ढेरियाँ" खुदवा कर स्तूपों के अवशेष निकाले थे, तथा बर्न्स आदि यात्रियों ने पंजाब और अफगानिस्तान से पुराने सिक्कों का संग्रह किया था। भारत के विभिन्न स्थानों में अशोक के जो अभिलेख हैं, उनकी छापों के मिलान से जेम्स प्रिन्सेप ने पहचान लिया कि उनमें से बहुत से एक ही हैं। उस लिपि के कुछ अक्षर गुप्त लिपि की सहायता से चीन्हे गये। अफगानिस्तान से पाये गये सिक्कों में अनेक यूनानियों के थे। उनके एक तरफ यूनानी लेख हैं, दूसरी तरफ उन्हीं के प्राकृत अनुवाद। यूनानी की सहायता से प्राकृत लेख पढ़े गये और यों धीरे-धीरे मौर्य युग की ब्राह्मी लिपि सन् १८३७ तक समूची पहचान ली गई।

अपने इतिहास के पुनरुद्धार से भारतीय राष्ट्र आज अपने को फिर पहचानने लगा है। उन्नीसवीं शताब्दी के युरोप पर प्राचीन भारतीय आदर्शों का सीधा प्रभाव हुआ। जर्मन महाकवि गेटे (१७४६-१८३२ ई०) ने कालिदास की शकुन्तला को पृथ्वी और अन्तरिक्ष के माधुर्य का सार कहा, और शकुन्तला के नमूने के प्रक्रमपूर्ण रसमय जीवन का आदर्श युरोपी साहित्य में चला दिया। गीता और मनुस्मृति के विचारों को अनेक जर्मन दार्शनिकों ने अपनाया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. "वे रैयत जो पहले समृद्ध थे...अब भारी सूद वाले ऋण में डूब" गये। 'भय से लाचार हो कर किसान खेती करने को बाधित होता था।" ई० इ० कम्पनी के

शासन में यह दशा कैसे आई ?

२. "हर आदमी अपनी नज़रों में गिर गया···आत्मनिर्भर ईमानदार व्यक्ति वाली मर्दानी चाल उसकी न रही।" उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में यह दशा कैसे पैदा हुई ?

३. पलाशी युद्ध के बाद से १८३३ ई० तक भारत में अंग्रेज़ों का वाणिज्य-व्यापार किस तरीके से होता था ?

४. भारत की पुरानी कारीगरी का नाश उन्नीसवीं शताब्दी में किस प्रकार हुआ ?

५. अंग्रेज़ लेखक के इस कथन की व्याख्या कीजिए—"हमारी पद्धति एक स्पंज के समान है जो गंगा-तट से सब अच्छी चीज़ों को चूस कर टेम्स तट पर जा निचोड़ती है।"

६. "स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी हब्शी गुलाम से सस्ती जिन्स था।" क्यों ? और ऐसा होने के क्या परिणाम हुए ?

७. भारत में अंग्रेज़ी उपनिवेशों की स्थापना के लिए कब कौन से प्रयत्न किये गये ? वे सफल क्यों न हुए ?

८. अंग्रेज़ी शासन में भारत में इंग्लैंड से प्रतिवर्ष नमक का आयात क्यों होता रहा

९. "ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ में भारत गिरवी था।" उससे छुटा कैसे ?

१०. सन् १८०० से १८५९ तक कब कब किन किन ने भारत के मुख्य राज्यों के नेताओं को एक साथ उठ कर स्वतन्त्र होने का यत्न करने को पुकारा ? या कब एक साथ उठने के अच्छे अवसर आये ? वे कैसे विफल हुए ?

११. भारत की पुरानी लिपियाँ कैसे पढ़ी गईं ?

१२. आर्य नृवंश का पता पहलेपहल कैसे मिला ?

१३. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) फेरूशहर की लड़ाई में सिक्खों की तोपें (२) 'लोकहितवादी' (३) बापूदेव शास्त्री।

अध्याय ७

विक्टोरिया युग

(१८५८—१९०१ ई०)

§१. **विक्टोरिया युग**—विक्टोरिया इंग्लैंड में सन् १८३७ से राज करने लगी थी; १९०१ में उसकी मृत्यु हुई। उसका प्रशासन-काल अंग्रेज़ी साम्राज्य के चरम उत्कर्ष का युग था। १८७६ में उसने महारानी के बजाय सम्राज्ञी पद धारण किया। वह एक नई लहर का सूचक था, जिसकी तह में यह

विचार था कि युरोपी लोगों की प्रभुता समूचे विश्व पर छा जायगी और छा जानी चाहिए। इंग्लैंड ने साम्राज्य बनाने में युरोप के दूसरे देशों से कैसे बाजी मार ली थी सो हमने देखा है। नैपोलियन की अन्तिम हार के धक्के से सँभल कर फ्रांस सन् १८३० से फिर साम्राज्य की तलाश करने लगा। उसने तुर्की साम्राज्य का अलजीरिया और चीन साम्राज्य का हिन्दचीन प्रदेश जीत लिया और सुएज़ नहर बना कर मिस्र में प्रभाव जमाया। इतालिया और जर्मनी १९वीं शताब्दी के मध्य तक टुकड़ों में बँटे हुए थे। सन् १८६० के बाद ये दोनों राष्ट्र संघटित हुए, और तब ये भी साम्राज्य और उपनिवेशों की खोज करने लगे। अमरीका महाद्वीप के पुराने बाशिंदों का युरोप वालों ने संहार ही कर डाला था, और उनकी जगह पर अपने नये राष्ट्र खड़े कर लिये थे। अफरीका का तट युरोपियों के अधीन था और यह स्पष्ट था कि यदि वे भीतर घुसें तो वहाँ उनका मुकाबला करने वाला कोई न होगा। उत्तरी अफरीका नाम को तुर्कों के साम्राज्य में था। एशिया महादेश में भारत जैसा पुरानी सभ्यता वाला देश न केवल युद्ध और राजनीति में प्रत्युत शिल्प और व्यापार में भी युरोप के मुकाबले में पस्त हो चुका था, और चीन, ईरान और तुर्की बार-बार पछाड़ खा चुके थे। युरोप के राष्ट्रों को अब यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि शीघ्र ही समूचे संसार पर उनकी प्रभुता हो जाना निश्चित है। इस विश्वास के साथ वे एक दूसरे से होड़ करते हुए पुराने खोखले राज्यों पर गिद्धों की तरह झपटने लगे। प्रुशिया के राजा ने प्रायः सब छोटी-छोटी जर्मन रियासतों को अधीन कर सन् १८७१ में जर्मन सम्राट् का पद धारण किया। उसी की नकल पर इंग्लैंड की महारानी १८७६ में भारत-सम्राज्ञी बनी।

भारत में विक्टोरिया के सीधे प्रशासन का काल यों दो अंशों में बँटता है, पहला १८५८ से ७६ तक, दूसरा १८७६ से १९०१ तक। इंग्लैंड के मंत्रि-मंडल में १८५८ से एक भारत-सचिव भी नियुक्त किया जाने लगा। उसकी सहायता को एक समिति (कौंसिल) रहती। भारत का गवर्नर-जनरल राजप्रतिनिधि (वाइसराय) भी कहलाने लगा। १८५८ से ७६ तक ये राजप्रतिनिधि हुए—

कैनिंग १८५८–६२, एल्गिन १८६२–६३,
लौरेंस १८६४–६६, मेयो १८६६–७२,
नौर्थब्रुक १८७२–७६ ।

विक्टोरिया के पिछले राज्यकाल में निम्नलिखित राजप्रतिनिधि हुए—
लिटन १८७६–८०, रिपन १८८०–८४,
डफरिन १८८४–८८, लैंसडौन १८८८–६४,
एल्गिन १८६४–६६, कर्जन १८६६–१६०५ ।

§२. सन् ५७ के बाद का नीतिपरिवर्त्तन—सन् १८५७ के भारतीय क्रान्ति युद्ध के तजरबे से अंग्रेज शासकों ने अपनी शासन-नीति को कई अंशों में बदल दिया ।

(१) उन्होंने गोरी फौज की संख्या बढ़ा दी और देसी की घटा दी, तथा यह निश्चय किया कि आगे से तोपखाने में देसियों को न लिया जाय । सन् १८५६ में भारत की सेना में २६० हजार देसी और ४५ हजार गोरे थे; सन् १८६१ में १२० हजार देसी और ७६ हजार गोरे रक्खे गये । आगे यही अनुपात रहा । इसके साथ ही हथियार कानून बना कर भारतीय जनता को निहत्था कर दिया ।

(२) भारत में गोरी बस्तियाँ बसाने की कोशिश फिर जारी की । ऐसी बस्तियाँ किसी क्रान्ति के समय हिन्दुस्तानियों को दबा रखने में सहायक होतीं । असम और नीलगिरि में गोरों को माफी जमीनें दी गईं ।

(३) देसी रियासतों को तोड़ने से क्रांति का प्रवाह उमड़ा था और उस प्रवाह के बीच ग्वालियर, हैदराबाद आदि बची हुई रियासतों ने बाँध का काम दिया था । अतः अब निश्चय किया कि आगे से देसी रियासतों का ऊपरी रूप न बिगाड़ा जाय, पर "भीतर से अंग्रेजों की देखरेख जितनी पक्की हो सके, रक्खी जाय ।" इसी उद्देश से काठियावाड़, राजस्थान और अन्य स्थानों में राजकुमारों और जागीरदारों के लिए स्कूल खोले जिनमें उन्हें बचपन से ही अंग्रेजी प्रभाव में रक्खा जा सके ।

(४) क्रान्ति के गुप्त संघटन का अंग्रेजों को कुछ पता न चला था ।

अब उन्होंने पुलिस और खुफिया पुलिस का पक्का आयोजन किया।

(५) क्रान्ति-युद्ध में मुसलमानों ने विशेष भाग लिया था। मेयो के समय से मुसलमानों को रियायतें दे कर राष्ट्रीय आन्दोलनों से खींचे रखने की नीति चलाई गई।

(६) रेलपथ बना कर भारत को लोहे के डंडों में जकड़ लेने की कोशिश की। मेयो के शब्दों में "भाप-जहाज और रेलपथ इंग्लैंड को हर साल भारत पर अपनी गिरिफ्त दृढतर करने में समर्थ बना रहे हैं।" "कार्यक्षम पुलिस, रेलपद्धति के विकास और सेना के हाथ में नई राइफलों द्वारा भारत १८७० ई० में पहले से कम खर्चीली सेना द्वारा काबू में रक्खा जा सकता है।" इसके अलावा सन् १८६९ में सुएज़ नहर के खुल जाने से युरोप से भारत का रास्ता बहुत छोटा हो गया। इस नहर को फ्रांसीसी इञ्जिनियर दि-लेसेप ने खोदा। उसने १८५४-५६ ई० में एक कम्पनी खड़ी की और उसके लिए तुर्की के सुलतान से नहर की जमीन ९९ साल के ठेके पर ले ली। तुर्की के सुलतान, मिस्र के खदीव (राज-प्रतिनिधि) तथा फ्रांसीसी महाजनों ने कम्पनी के हिस्सों का मुख्य भाग खरीदा। पीछे १८७५ ई० में अंग्रेज़ों ने खदीव के सब हिस्से तथा और भी हिस्से खरीद लिये।

(७) सन् १८३३ से गवर्नर-जनरल की शासन-समिति में एक कानून-सदस्य के शामिल होने से वही विधान समिति (लेजिस्लेटिव कौंसिल) बन जाती थी। सन् १८५३ से उसमें हर बड़े प्रान्त का एक अफसर और दो-चार और व्यक्ति शामिल किये जाने लगे थे। अब सन् १८६१ से उसमें गवर्नर-जनरल के पसन्द किये ६ से १२ तक सदस्य, जिनमें आधे गैरसरकारी होते, रक्खे जाने लगे। प्रान्तों में भी वैसी विधान-समितियाँ बनीं।

(८) थोड़ा-बहुत स्थानीय स्वशासन भारतीयों को दिया। १८७५-७६ में मुम्बई और कलकत्ता नगरों को स्वशासन दिया। १८८१ में प्रान्तीय सरकारों को सब नगरों गाँवों को स्वशासन देने का अधिकार दे दिया।

§ ३. **कृषक-स्वत्व कानून**—अंग्रेज़ों के ज़मीन-बन्दोबस्त से भारतीय किसान कैसे अपनी सम्पत्ति से वञ्चित होते गये, सो हमने देखा है। कौर्नवालिस

का यह उद्देश न था। किन्तु अंग्रेज़ी कानून की दृष्टि में जो मालगुजारी देता वही जमीन का मालिक था, क्योंकि इंग्लैंड में १८वीं शताब्दी के आरम्भ से ही जागीरदार ज़मीन के पूरे मालिक बन चुके थे। भारत में भी उस कानून के प्रयोग से ठेकेदार ज़मीन के मालिक और किसान निरे जोते बनते गये। इससे जनता में घोर कष्ट और असन्तोष फैलने लगा। सन् ५७ के बाद अंग्रेज शासकों ने उस असन्तोष को शान्त करने का कुछ यत्न किया। भारतीय परम्परा को थोड़ा-बहुत बचाने के लिए उन्होंने यह कल्पना की कि जमींदारों के स्वामित्व के साथ-साथ किसानों के भी "दखीलकारी" या "मौरूसी" स्वत्व हैं, और इसके अनुसार सन् १८५६ से १८७३ तक कानून बनाये। किन्तु उन कानूनों से किसानों को कुछ राहत न मिली। जमींदारों और किसानों के सम्बन्ध जिन रिवाजों के अनुसार थे, वे अब टूट रहे थे। कानून की मदद से अपनी आमदनी से निश्चिन्त हो जाने से ज़मींदार शहरों में बस रहे थे। इस दशा में रिपन ने अपने शासन-काल में किसानों को उनके स्वत्वों का एक अंश वापिस दिलाने की फिर कोशिश की। उसके प्रस्तावित कानून डफरिन के समय स्वीकृत हुए।

सन् १८६१ में मध्य प्रान्त की रचना करके वहाँ नया ज़मीन-बन्दोबस्त शुरू किया गया। उस प्रान्त में मराठा युग से मालगुज़ार चले आते थे, जिन्हें किसानों से बन्दोबस्त करने, कर वसूल करने, तालाब आदि बनवाने तथा किसानों को बेदखल करने के भी अधिकार थे, पर ज़मीन को बेचने या रहन रखने के अधिकार न थे। वे वास्तव में मालगुजारी वसूल करने वाले कर्मचारी थे, जिनके पद वंशानुगत हो गये थे। अंग्रेज हाकिमों ने अब उन्हें जमीन का मालिक मान लिया और उनकी मालगुजारी इतनी बढ़ा दी कि वे भी किसानों का लगान बढ़ाये बिना न रहें।

रैयतवारी इलाकों के लिए सन् १८२५ में ही कम्पनी के डायरेक्टरों ने यह मान लिया था कि "सरकार का हक लगान नहीं, भूमिकर है"—अर्थात् ज़मीन के मालिक किसान ही हैं। इसके अनुसार १८६४ में भारत-सचिव ने आदेश दिया कि उपज में से लागत-खर्च काट कर वास्तविक आय पर ही कर लगाया जाय और वह उस आय के आधे से अधिक न हो। किन्तु इस आदेश

पर अफसरों को चलाने के लिए कोई कानून नहीं बना। जहाँ एक-एक कलक्टर डेढ़-डेढ़ लाख किसानों से बन्दोबस्त करता और बिना कारण बताये मालगुजारी बढ़ा सकता था, तथा जहाँ किसान को उसके विरुद्ध न्यायालय में अपील करने का अधिकार भी न था, वहाँ इस आदेश का अमल में आना असम्भव था। जमींदारी इलाकों के जमींदारों पर सरकार ने जो बन्धन लगाये, रैयतवारी इलाकों के अपने अफसरों पर वे नहीं लगाये। परिणाम यह हुआ कि "५० फी सदी मालगुजारी सिर्फ कागजी सलाह रही। व्यवहार में समूचा लगान (अर्थात् मालिक का हक) लिया जाता रहा और अनेक बार मुनाफे का अंश भी।"

सन् १८६० ई० में ठेठ हिन्दुस्तान में घोर अकाल पड़ा। सरकारी जाँच से मालूम हुआ कि अकाल अनाज की कमी से नहीं, प्रत्युत जनता में अनाज खरीदने की शक्ति न होने से हुआ। तब यह प्रस्ताव किया गया कि समूचे भारत में स्थायी बन्दोबस्त कर दिया जाय, "जिससे जमीन-मालिकों के स्वार्थ अंग्रेजी राज की स्थिरता में गड़ जायँ" और अकाल न पड़ें। इसपर एक अरसे तक विचार होता रहा। अन्त में सन् १८८३ में भारत-सचिव ने इसका निषेध कर दिया। सन् ५७ के क्रान्ति-युद्ध के बाद जनता की खुशहाली की खातिर सरकार अपनी आय छोड़ने को तैयार थी; पर बाद में जनता ने बराबर शान्तिमय प्रवृत्ति दिखाई तो वैसे त्याग की ज़रूरत न रही।

§४. वलीउल्लाही और नामधारी—१८वीं शताब्दी में आर्थिक समानता की पुकार उठाने वाले शाह वलीउल्लाह का उल्लेख हो चुका है। [१०,५ § ५]। उसके सम्प्रदाय में १९वीं शताब्दी आरम्भ में बरेली का सैयद अहमदशाह प्रमुख व्यक्ति हुआ। अंग्रेज़ों ने उसके और उसके साथियों के मजहबी जोश को सिक्ख राज्य के विरुद्ध फेर दिया। सन् १८२६ में दिल्ली से एक बड़ा दल ले कर सिन्ध, कन्दहार के रास्ते अहमदशाह पेशावर पहुँचा, और सीमा पर सिक्खों से लड़ता हुआ १८३१ में मारा गया। उसके अनेक अनुयायी सीमा पर ही रह गये। १८५७ के क्रान्तियुद्ध में दिल्ली प्रदेश के वलीउल्लाहियों की तरह उन्होंने भी भाग लिया। १८६३ में उन्होंने फिर सीमा पर लड़ाई छेड़ी। तभी यह पता चला कि उत्तर भारत में जगह-जगह उनके

गुप्त केन्द्र हैं। तब कई षड्यन्त्र के मुकदमे चला कर उनके नेताओं को जेल भेजा गया। २०-६-१८७१ को बंगाल का चीफ जस्टिस कचहरी की सीढ़ियों पर मारा गया। ८-२-१८७२ को अंडमान जेल का निरीक्षण कर लौटते हुए गवर्नर-जनरल मेयो को एक पठान ने मार डाला। इसके बाद यह लहर ठंडी पड़ गई।

अंग्रेज़ों ने इन वलीउल्लाहियों को वहाबी कह कर भारतीय मुसलमानों की दृष्टि में गिराने का यत्न किया। १८वीं शताब्दी में अरब में अब्दुल वहाब नामक सुधारक हुआ था, जो खुदा के स्थान में मुहम्मद की उपासना को बुरा कहता था और जिसके अनुयायियों ने मुहम्मद की कब्र उखाड़ फेंकी थी। अंग्रेज़ों का यह मिथ्या प्रचार इतना सफल रहा कि अब तक भारत के इतिहासों में इन मुस्लिम क्रान्तिकारियों को वहाबी कहा जाता है।

वलीउल्लाहियों के मुख्य नेताओं ने अपनी विचार-परम्परा जारी रखने के लिए सन् १८६७ में देवबन्द (जि० सहारनपुर) में एक विद्यालय स्थापित किया।

इसी समय लुधियाना जिले में गुरु रामसिंह नामक सिक्ख सुधारक ने अंग्रेजी राज से पूरा असहयोग करने का प्रचार किया। रामसिंह के अनुयायी नामधारी या कूके कहलाये। सन् १८७१-७२ में कूकों ने विद्रोह किया। गुरु रामसिंह को कैद कर बरमा भेजा गया और बहुत से कूके कैदी तोपों के मुँह पर बाँध कर उड़ा दिये गये।

§५. भारत अंग्रेज़ी पूँजीशाही के शिकंजे में—हमने देखा है कि भारत की मालगुजारी में से ५ फी सदी नफे की गारंटी पा कर अंग्रेज पूँजीपतियों ने रेल-कम्पनियाँ खड़ी की थीं। नफे की गारंटी के कारण उन्होंने अत्यंत फिज़ूलखर्ची से लाइनें बनवाईं। जब कभी हिसाब में गबन के कारण उन्हें घाटा हुआ, तब भी उन्हें ५ फी सदी नफा तो अपने बेहोश मालिक भारतीय किसान की तरफ से दिलाया ही गया। मेयो के समय से कम्पनी-रेलों के अतिरिक्त सरकारी रेलें भी शुरू की गईं।

भारत की पराधीनता से लाभ उठाने का दूसरा तरीका इसकी आयात-चुंगी के नियंत्रण द्वारा था। सन् ५७ के बाद की आर्थिक कठिनाई में कैनिंग ने आयात पर थोड़ी-सी चुंगियाँ बढ़ा दीं। किन्तु अंग्रेज व्यापारियों के दबाव से

उसे वे चुंगियाँ दो बरस में ही घटानी पड़ीं। अगले "दस वर्ष में भारत का व्यापार बढ़ा, पर आयात-चुंगी की आय घटी। उस आय की मात्रा उपहासास्पद थी।" सूती धागों के आयात पर ३½ फी सदी और कपड़े के आयात पर ५ फी सदी चुंगी थी। उस समय तक कातने-बुनने की एक दर्जन मिलें मुम्बई में और २-३ कलकत्ते में खुल चुकी थीं। लंकाशायर के व्यापारियों को इतने से भी चिढ़ थी। सन् १८७५ में नौर्थब्रुक पर दबाव डाला गया कि इस ५ फी सदी चुंगी को भी हटा दे। तब नौर्थब्रुक ने इस्तीफा दे दिया।

भारतीय दस्तकारी का नाश होने पर बेकार जनता की सस्ती मजदूरी से भी अंग्रेज पूँजीपतियों ने लाभ उठाया। मेयो को आशा थी कि "भारत की सस्ती मजदूरी अंग्रेज व्यवसायी के कर्तृत्व के लिए नया क्षेत्र उपस्थित करेगी।" चाय, काफी, सिनकोना, जूट और नील की काश्त की सफलता का उल्लेख कर उसने कहा कि हमें जंगलों, खानों और समुद्र की मछलियों पर भी ध्यान देना है, और इसलिए उसने जंगल, भूगर्भ तथा समुद्री पर्यवेक्षाओं (सर्वे) के महकमे खोले। जिन कारबारों में अंग्रेज़ों की पूँजी लगी थी, उनकी पूँजी का नफा हर साल भारत से बाहर जाता।

भारत के खर्चे पर अंग्रेज़ों के हित के अनेक काम तथा भाड़ैत भारतीय सेना द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य को बढ़ाने की चेष्टाएँ विक्टोरिया के राज में कम्पनी-राज से कई गुनी अधिक की गईं। वह भारत को लूटने का सब से सीधा तरीका था। उनके कारण भारत का ऋण बढ़ता गया। सन् १८६५ में भारत से इंग्लैंड तक समुद्र के भीतर पनडुब्बा तार लगाया गया, और उसका कुल खर्चा भारत पर डाला गया। सन् १८५८ में कम्पनी की १२० लाख पौंड पूँजी और ६९५ लाख पौंड ऋण भारत का ऋण बना दिया गया था। विक्टोरिया के राज के पहले १९ सालों में वह ऋण दूना हो गया। उसके सूद और इंग्लैंड में भारत-सरकार के खर्चे के नाम पर भारत को १८७० के बाद १½ से २ करोड़ पौंड वार्षिक का माल आयात की अपेक्षा अधिक इंग्लैंड भेजना पड़ता। यों विक्टोरिया के राज के १२ बरसों में भारत से धन की वार्षिक निकासी चौगुनी हो गई और इस धारा की पूर्ति के लिए जनता के कर का बोझ ५० फी सदी

बढ़ गया, जिसमें नमक-कर ही विभिन्न प्रान्तों में ५० से १०० फी सदी तक बढ़ा।

भारत न केवल कपड़ा और अन्य कारीगरी की चीजें अन्न दे कर खरीदता, प्रत्युत अपना यह खिराज भी अन्न और कच्चे माल से चुकाता। अनाज का निर्यात इस अरसे में वार्षिक ३० से ८० लाख पौंड मूल्य का हो गया। तेलहन और कच्चे चमड़े का निर्यात भी इसी तरह बढ़ा। तेलहन की खली सर्वोत्तम खाद होती है, इसलिए उसका निर्यात "जमीन की उपजाऊ शक्ति का निर्यात" था। कच्चे चमड़े के निर्यात का बढ़ना चमारों के कारबार के ह्रास का सूचक था।

यह पद्धति हमारे देश में इस रूप में अंग्रेजी जमाने के अन्त तक जारी रही। जाड़े के मौसम में गाँवों और मंडियों में अनाज का चुस्त चालान दिखाई देता। वह स्वतन्त्र व्यापार नहीं, प्रत्युत गरीब किसानों का अपना पेट काट कर गुलामी का खिराज देना होता था। इसीलिए अकाल के सालों में भी वह "व्यापार" वैसी ही चुस्ती से चलता रहता। विदेशी व्यापार सब हुंडियों द्वारा होता है। भारत के जो व्यापारी माल बाहर भेजते, वे उन व्यापारियों से दाम पा कर हुंडियाँ दे देते जिन्होंने बाहर से माल मँगाया होता। लेकिन चूँकि मँगाया हुआ माल हर साल भेजे हुए माल से कम होता, इसलिए माल मँगाने वालों से भेजने वालों को पूरा मूल्य नहीं मिलता। उस कमी के लिए लन्दन में भारत-सचिव हुंडियाँ निकालता, जिनका भुगतान भारत के खजानों से हो जाता।

§६. **भारत द्वारा ब्रितानवी साम्राज्य-वृद्धि**—भारत के क्रांति-युद्ध के कारण भारत से फौज चीन जाते-जाते रोकी गई थी। वह युद्ध समाप्त होते ही सन् १८६० में वह भेजी गई और भारत के खर्च से दूसरा अफीम-युद्ध लड़ा गया जिससे अंग्रेजों ने चीन के बन्दरगाहों पर अधिकार जमा लिया।

न्यूजीलैंड के मूल निवासी मावरियों के सरदारों से सन् १८४० में संधि कर अंग्रेजों ने वहाँ बसना शुरू किया था। मावरियों ने देखा कि अंग्रेज उन्हें गुलाम बना डालेंगे तो अपना एक संघ बना कर अंग्रेजों के हाथ जमीन बेचना बन्द कर दिया। तब सन् १८६०-६१ में भारत से वहाँ सेना भेजी गई और दस बरस में मावरियों को कुचल दिया गया।

सन् १८६५ में भूटान से युद्ध हुआ, जिससे (१) भूटान की तराई या "दुआर" अंग्रेज़ों को मिले और (२) भूटान और सिकिम के बीच अंग्रेज़ी पच्चर घुस गया, जिसमें हो कर तिब्बत का सीधा रास्ता जाता है। दुआरों के प्रदेश में अब चा-बागान हैं।

सन् १८६७ में ब्रितानिया ने अबीसीनिया से युद्ध किया। तब मुम्बई से एक सेना अबीसीनिया भेजी गई।

मेयो ने सन् १८७१-७२ में पूरबी सीमा के लुशाई पहाड़ियों के विरुद्ध सेना भेजी। दूसरी तरफ उसने ईरान की पूरबी सीमा, सीस्तान के दक्खिनी छोर से समुद्रतट के ग्वादर शहर तक, अंकित करा दी, जिससे कलात के साथ साथ लासबेला रियासत भी अंग्रेज़ी प्रभावक्षेत्र में आ गई। मेयो ने उनमें दस्तंदाजी करने को एक अफसर भेजा।

मलाया प्रायद्वीप में अंग्रेज़ १८वीं शताब्दी के अन्त से हस्तक्षेप कर रहे थे। सन् १८७४-७५ में भारत से फौज भेज कर उन्होंने सिंगापुर के उत्तर पेरक रियासत को धर दबाया। उससे पड़ोस की रियासतें भी वश में आ गईं।

§७. **दूसरा आंग्ल-अफगान युद्ध**—सन् १८७६ में उमड़ी साम्राज्य-लोलुपता की नई झोंक में ब्रितानिया के अमात्यों ने तय किया कि मध्य एशिया में रूस के साम्राज्य से अपनी सीमा भिड़ा दी जाय। यों दूसरा आंग्ल-अफगान युद्ध हुआ।

अफगानिस्तान के अमीर दोस्तमुहम्मद के मरने पर उसका बेटा शेरअली गद्दी पर बैठा था (१८६३ ई०)। सन् १८६६ तक वहाँ घरेलू लड़ाई चलती रही, पर अन्त में शेरअली सफल हुआ। भारत के अंग्रेज़ शासक उस समय भारतीय राज्यों में हस्तक्षेप न करने की उस नीति पर चल रहे थे जिसे उन्होंने सन् १८५७ के तजरबे से अपनाया था। इसलिए गवर्नर-जनरल लौरेंस ने उस झगड़े में दखल न दिया। पर उधर इसी बीच रूसी साम्राज्य भारत के नज़दीक पहुँच रहा था। सन् १८४६ में अंग्रेज़ों ने जब पंजाब जीता था, तभी रूसियों ने उत्तरी कास्पियन से सीर नदी के मुहाने अर्थात् अराल सागर तक जीत लिया था। १८५४ ई० में उन्होंने बलकाश के दक्खिन ईली का काँठा ले

लिया था। सन् १८६४ से ६८ तक उन्होंने ईली और सीर के मुहानों के दक्खिन, फरगाना का एक अंश तथा बोखारा की समूची उज्बक सल्तनत, जिसमें ताशकन्द और समरकन्द भी थे, जीत ली। लौरेंस ने इसपर यह प्रस्ताव किया कि रूस और इंग्लैंड अपने प्रभाव-क्षेत्र बाँट लें और रूस यदि उस रेखा से आगे बढ़े तो युद्ध हो। इसके अनुसार रूस ने अफगानिस्तान की तरफ वंक्षु नदी (आमू दरिया) को अपनी सीमा स्वीकार किया। इसके बाद सन् १८७३ में रूसियों ने कास्पियन के पूरबी तट से बढ़ते हुए खीवा सल्तनत को जो वंक्षु के मुहाने पर और इसलिए उस नियत सीमा से प्रायः ६०० मील उत्तर है, जीत लिया। पर इस समय तक ब्रितानवी राजनेता अपनी नई जगी साम्राज्य-लोलुपता में अहस्तक्षेप की नीति को भूल रहे थे। लन्दन से भारत-सचिव ने वाइसराय नौर्थब्रुक को लिखा कि हरात और कन्दहार में अंग्रेज एजेंट रक्खे जायँ। नौर्थब्रुक को सो न जँचा और उसने इस्तीफा दे दिया। तब उन्होंने लिटन को भारत का वाइसराय बना कर भेजा।

लिटन ने कलकत्ते से सीधे अम्बाले आ कर अमीर शेरअली के पास सन्देश भेजा कि काबुल में अंग्रेज रेजिडेंट रखना अभीष्ट है, और हरात में तो अंग्रेज कारिंदा रखना ही होगा। इस बातचीत के दौरान में ही वह अफगानिस्तान को घेरने भी लगा। अफगान देश की दक्खिनपूरबी सीमा सिवी है, जिसके उत्तरपच्छिम, बोलान दर्रे के उस पार, शालकोट ('कोइटा') † का खुला पठार मानो अफगान किले का दक्खिनी बुर्ज है। दर्रा बोलन तक कलात की सीमा है। कलात, लासबेला और बलोचिस्तान में अंग्रेज कारिंदे दस्तन्दाजी कर ही रहे थे। दिसम्बर १८७६ में कलात और लासबेला के खानों तथा बलोच सरदारों से एक सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिये गये जिससे अंग्रेजी सेना को बोलान के रास्ते 'कोइटा' में घुसने का मौका मिला और अंग्रेज "वस्तुतः कलात के मालिक बन गये।" पूरब तरफ लिटन ने कावग्नारी को कोहाट से कुर्रम दून में

---

†'शालकोट' नाम का पहला अंश मिट गया, और पिछला अंग्रेजी में 'कोइटा' या 'क्वेटा' बन गया। 'कोइटा' स्टेशन पर पहले विश्वयुद्ध तक शालकोट नाम लिखा रहता था।

घुसने को भेजा, और उत्तरपूरब तरफ कश्मीर के महाराजा को शस्त्र दे कर उभाड़ा कि वह चितराल के रास्ते के दर्रे काबू कर ले। उसने गिलगित में अंग्रेज़ी एजेंसी स्थापित कर ली, और कश्मीर के दिवालिये राज के खर्च पर वहाँ तक तार की पाँत पहुँचा दी। उसी के शब्दों में उसका "लक्ष्य अफगान शक्ति को क्रमशः खंडित और कमजोर करना था।"

युद्ध की इन तैयारियों की बीच विक्टोरिया के साम्राज्ञी बनने के उपलक्ष में १ जनवरी सन् १८७७ को दिल्ली में दरबार किया गया। तभी मद्रास और मैसूर प्रान्तों में घोर दुर्भिक्ष था, जिसमें बरस भर में ५० लाख मनुष्य भूख से तड़प-तड़प कर मर गये और यह दिखा गये कि अंग्रेज़ी साम्राज्य की नींव उनकी लाशों पर थी।

अंग्रेज़ी और रूसी साम्राज्यों के बीच अफगानिस्तान, ईरान और तुर्की साम्राज्य थे। मिस्र से मोरक्को तक समूचा उत्तरी अफरीका पहले तुर्की साम्राज्य में ही था; बालकन प्रायद्वीप, पच्छिमी एशिया, अरब और ईराक भी तब उसके अधीन थे। इस समय बालकन प्रायद्वीप के युरोपी राष्ट्रों ने तुर्क साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया। उनकी मदद में रूसी सेना कुस्तुन्तुनिया के दरवाज़ों पर आ पहुँची। रूस का कुस्तुन्तुनिया ले लेना अंग्रेज़ों के सुएज़ मार्ग के लिए खतरनाक होता, इसलिए उन्होंने अपना बेड़ा दर्रे-दानियाल में ला घुसेड़ा और तुर्की के सुल्तान से यह कह कर कि वे रूस से उसका बचाव करेंगे, एक गुप्त सन्धि की, जिसका सार यह था कि तुर्क साम्राज्य का एशियाई प्रदेश ब्रितानवी प्रभाव-क्षेत्र बन जायगा और तुर्की साम्राज्य का क्युप्रोस ('साइप्रस') द्वीप अंग्रेज़ों को मिलेगा। अंग्रेजों ने माल्ता द्वीप में हिन्दुस्तानी फौज भी मँगा ली। जर्मनी की मध्यस्थता से दोनों साम्राज्यों के बीच युद्ध होता-होता रुका और बर्लिन में युरोपी राष्ट्रों की 'कांग्रेस' हुई (जून-जुलाई १८७८ ई०)। तुर्क साम्राज्य की बन्दरबाँट करना उस कांग्रेस का मुख्य उद्देश था। शुरू में ही प्रत्येक राष्ट्र के प्रतिनिधियों से यह ऐलान करने को कहा गया कि वे कोई गुप्त सन्धि करके नहीं आये हैं। ब्रितानवी मन्त्री डिजरायली और सालिस्बरी ने वैसा ऐलान कर दिया। पर कुछ दिन बाद ही उनका भेद खुल गया। उनकी इस करतूत से खीझ कर

फ्रांसीसी प्रतिनिधि सभा छोड़ जाने लगा। तब एक और गुप्त सन्धि द्वारा फ्रांस को मनाया गया, जिसका सार यह था कि (१) फ्रांस यदि तुर्क साम्राज्य का त्यूनिस प्रान्त दबा ले तो ब्रितानिया आपत्ति न करेगा, (२) मिस्र के आर्थिक नियन्त्रण में फ्रांस का आधा हिस्सा होगा, और (३) सीरिया में षड्यन्त्र करने का एकाधिकार फ्रांस को रहेगा।

माल्ता में हिन्दी सेना देख कर रूसियों ने सोचा कि उस सेना को अपने घर के नजदीक काम दिया जाय। इसलिए जिस दिन बर्लिन में सन्धि-सभा शुरू हुई, उसी दिन ताशकन्द से जनरल स्तोलतौफ ने काबुल को कूच किया। शेर-अली ने रूस से सन्धि कर काबुल में रूसी रेजिडेंट रखना मान लिया, पर बर्लिन की सन्धि हो जाने पर स्तोलतौफ काबुल से लौट गया।

उसके लौट जाने पर लिटन अफगानिस्तान पर टूट पड़ा। अंग्रेजी सेना तीन तरफ से बढ़ी। एक टुकड़ी ने खैबर से बढ़ कर जलालाबाद ले लिया; दूसरी ने कुर्रम के रास्ते घुस कर पैवार घाटा छीन लिया; और तीसरी ने शालकोट से कूच कर कन्दहार जीत लिया। शेरअली तुर्किस्तान भाग गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके बेटे याकूबखाँ ने २६-५-१८७६ को गन्दमक पर सन्धि की जिसके अनुसार अफगानिस्तान ने (१) अपनी विदेश नीति अंग्रेजों को सौंप दी; (२) काबुल में अंग्रेज रेजिडेंट तथा हरात आदि नाकों में अंग्रेज कारिन्दे रखना माना; और (३) पैवार घाटे सहित कुर्रम दून, 'कोइटा'-पिशीन, थल-छोटियाली और सिबी के इलाके अंग्रेजों को दे दिये। यह भी तय हुआ कि कन्दहार में अंग्रेजी सेना जाड़े तक ठहरेगी, बाकी इलाकों से लौट जायगी। गन्दमक की सन्धि से अफगानों की स्वतन्त्रता समाप्त हुई; वे अंग्रेजों के रक्षित बन गये और उन्होंने अपने देश के दक्खिन-पूरबी जिले, जिनकी जनता शुद्ध पठान है, अंग्रेजों को दे दिये।

लेकिन विदेशी सेना को अपने देश में देखना अफगान बरदाश्त नहीं कर सकते। ३-६-१८७६ को विद्रोह कर उन्होंने रेजिडेंट कावग्नारी को मार डाला। इसपर सेनापति रौबर्ट्स कुर्रम से शुतुरगर्दन घाटा पार कर चारासिआब पर अफगानों को दबाते हुए काबुल आया और फौजी कचहरी बैठा कर ८७

अफ़गानों को फाँसी दिला दी। याकूबखाँ को नज़रबन्द कर मेरठ भेजा गया। फाँसियों से अफगान फिर भड़के और रौबर्ट्स को घेर लिया। कन्दहार से स्टिवर्ट ने आ कर उसे घेरे से निकाला। परन्तु अब अंग्रेज़ों ने अपने को फँसा पाया। वे सारे अफगानिस्तान को जीत न सकते थे और वहाँ कोई शासन खड़ा किये बिना लौटते तो सन् १८४२ वाली घटनाएँ दोहराई जातीं। कन्दहार उन्होंने एक कटपुतले शासक के हाथ सौंप दिया था, पर बाकी इलाकों के लिए कोई शासक मिलता न था। लिटन ने रौबर्ट्स को आदेश भेजा कि "काबुल पहुँचते ही हमें उस चूहेदानी से निकालने का ढंग सोचना।" इस बीच शेरअली का भतीजा अब्दुर्रहमान, जो तब तक रूसी तुर्किस्तान में शरणागत था, अफगानिस्तान आया। लिटन ने उस "जंगल के बीच इस मेढ़े" को पा कर खैर मनाई। तभी लिटन का उत्तराधिकारी बना कर रिपन को भारत भेजा गया।

हरात शेरअली के बेटे आयूबखाँ के काबू में था। रिपन गन्दमक की सन्धि में से अफगानिस्तान में अंग्रेज़ कारिंदे रखने की शर्त हटा कर, बाकी शर्त्तों को रखते हुए, अब्दुर्रहमान को अफगानिस्तान देने को तैयार था। अब्दुर्रहमान भी इतने से सन्तुष्ट था। उनकी बातचीत चल ही रही थी कि आयूब ने कन्दहार पर हमला कर जनरल बरोज़ को माईवन्द पर करारी हार दी (२७-७-१८८० ई०)। रिपन ने तब रौबर्ट्स को कन्दहार भेजा और बाकी सेना काबुल से लौटा ली। रौबर्ट्स ने आयूब को हरा दिया। सन् १८८१ के शुरू में अंग्रेज़ी सेना कन्दहार भी खाली कर आई। अब्दुर्रहमान ने तब कन्दहार और हरात भी जीत लिये।

दूसरे आंग्ल-अफगान युद्ध के सिलसिले में सिबी तक रेलपथ पहुँचा दिया गया।

§८. मिस्र पर अंग्रेज़ी शिकंजा—मिस्र के जिस खदीव के समय सुएज़ नहर खुली थी, उसने अपनी फिजूलखर्ची से बड़ा कर्ज कर लिया था। उसने सुएज़ नहर के अपने हिस्से अंग्रेज़ों के हाथ बेच दिये और सन् १८७६ में अपने देश की मालगुजारी भी अपने फ्रांसीसी और अंग्रेज़ उत्तमर्णों के हाथ गिरवी रख दी। फ्रांस और इंग्लैंड के शासन के विरुद्ध मिस्री लोगों ने सन् १८८२

में अरबी पाशा के नेतृत्व में विद्रोह किया। फ्रांसीसी सरकार ने खर्च से और फ्रांसीसी खून बहुत गिरने से घबरा कर हार मान ली, तब अंग्रेज़ों ने भारत के खर्च पर और भारत से सेना भेज कर उस विद्रोह को कुचल दिया। तब से मिस्र पर अकेले ब्रितानिया का नियन्त्रण रहने लगा, नाम को तुर्की का आधिपत्य और खदीव का शासन बना रहा।

सूदान और सोमाली देश भी मिस्र के अधीन थे। वहाँ तभी 'महदी' के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। मिस्री फौजें महदी के मुकाबले में हारीं और उनके साथ का अंग्रेज़ी तोपखाना छिन गया। जनरल गौर्डन को तब सूदान की राजधानी खार्तूम पर भेजा गया, लेकिन वह ११ हज़ार फौज के साथ कैद हो गया। सन् १८८४ के अन्त में उसे छुड़ाने को फिर चढ़ाई की गई, पर इस सेना के खार्तूम पहुँचने के दो दिन पहले सब कैदी मार डाले गये। अंग्रेज़ों ने सूदान तट के सुआकीम और सोमाली तट के ज़ैला, बर्बरा आदि गढ़ों में भारतीय सेना डाल कर सन्तोष किया।

§९. रूस अफगान-सीमा-निर्णय—सन् १८८४ में रूसियों ने मर्व शहर जीत लिया जो अफगान सीमा से १५० मील पर है। इसपर अंग्रेज़ फिर बिदके। अन्त में यह ठहरा कि रूसी और अंग्रेज़ प्रतिनिधियों का सम्मिलित मंडल हरीरूद से आमू दरिया तक अफगानिस्तान की सीमा अंकित कर दे। यह मंडल सीमा पर पहुँचा तो रूसियों और अफगानों की छीनझपट जारी थी। रूसियों ने मर्व के सौ मील दक्खिन पंजदेह बस्ती अफगानों से छीन ली। इसी बीच भारत में रिपन की जगह डफरिन आ गया था और अमीर अब्दुर्रहमान उससे रावलपिंडी में भेंट कर रहा था। डर था कि अफगान रूसियों को रोकेंगे तो रूसी हरात पर हमला करेंगे। कोइटा में डफरिन ने भारी सेना जमा की और अब्दुर्रहमान से पूछा कि हरात की रक्षा के लिए सेना भेजी जाय। अब्दुर्रहमान नहीं चाहता था कि अंग्रेज़ी सेना अफगानिस्तान में घुसे। इसलिए रूसी दक्खिन तरफ जहाँ तक बढ़ना चाहते थे, वह सीमा उसने स्वयं मान ली।

§१०. तीसरा आंग्ल-बरमी युद्ध—फ्रांस के हिन्दचीन ले लेने से वह बरमा राज्य का पड़ोसी बन गया था। अंग्रेज़ों के शिकंजे से बचने के लिए

बरमा के राजा ने फ्रांस, जर्मनी और इतालिया से व्यापारिक सन्धियाँ कीं। मन्दाले में फ्रांसीसी बैंक और फ्रांसीसी रेल खोलने की योजना बनी। अंग्रेजी सरकार ने फ्रांस पर दबाव डाल कर उसे तोड़ दिया। उसके बाद नवम्बर १८८५ में इरावती से अंग्रेजी बेड़ा ऊपर चढ़ा और दस दिन में उत्तरी बरमा को ले लिया। बरमा के राजा को कैद कर रत्नागिरि भेजा गया। लेकिन देश को जीतने के बाद अंग्रेज बरमा से सेना और पुलिस खड़ी न कर सके, और कई बरस तक बरमी लोग छापामार युद्ध करते रहे। भारत की सेना और खर्च से ही अंग्रेजों ने बरमा को दबाये रक्खा।

§११. राणाशाही की दूसरी पीढ़ी—नेपाल के जंगबहादुर [११,३§१८] को सन् १८७६ में अपनी मृत्यु आती दिखाई दी। उसके भाइयों में से तब दो बचे थे—रणोद्दीप और धीरशमशेर। जंग ने धीर को बुला भेजा, पर धीर को खटका हुआ कि उससे छल न किया जाय, और वह नहीं आया। इस बीच जंग चल बसा और रणोद्दीप नेपाल का प्रधान मन्त्री बना। डेढ़ बरस बाद युवराज त्रैलोक्यविक्रम ने, राणाशाही का अन्त कर स्वतन्त्र होने का प्रयत्न किया, पर वह सफल नहीं हुआ और उसकी मृत्यु हुई (१७७८)। सन् १८८१ में फिर ५५ सरदारों ने मिल कर उठने की कोशिश की, पर वे भी पकड़े और मारे गये और उनके ब्राह्मण सहयोगी नेपाल से निर्वासित किये गये।

धीर भी इस बीच चल बसा। उसके बेटों ने सोचा रणोद्दीप के बाद यदि जंग और रण के बेटे पहले शासन करते हैं तो हमारी बारी तो कभी आयगी नहीं। अतः दिसम्बर १८८५ में एक रात उन्होंने अपने चचा की छल से हत्या की और जंग के और उसके बेटों का भी निपटारा कर दिया। धीर का बड़ा बेटा बीरशमशेर प्रधान मन्त्री बना।

रणोद्दीप की हत्या बीर के दो छोटे भाइयों खड्ग और चन्द्रशमशेर ने स्वयं गोली मार कर की थी। दो बरस बाद इन्होंने अपने भाई बीर का भी निपटारा करने का यत्न किया, पर इनका भेद खुल गया। बीर ने खड्ग को कैद में डाला और चन्द्र को सावधान कर छोड़ दिया। सन् १८८८ में बहुत से नेपाली निर्वासितों ने नेपाल तराई पर चढ़ाई की। उन्होंने कहा हम राजा को कैद से छुड़ा

कर राणाशाही वाली सनद रद्द करायेंगे। पर अन्त में उन्हें हार कर लौटना पड़ा।

इसके बाद १६०० ई० तक वीरशमशेर ने निर्विघ्न शासन किया। उसकी मृत्यु पर उसका भाई देवशमशेर प्रधान मन्त्री बना। देव के विचार प्रगतिशील थे। वह नेपाल में प्रजा-प्रतिनिधियों की शासन-परिषद् स्थापित करने की बात भी सोचता था। वह कुछ ही मास शासन कर पाया था कि उसके सगे भाई चन्द्रशमशेर ने एक दिन उसे धोखे से पकड़ कर कैद कर लिया, और स्वयं प्रधान मन्त्री बन बैठा।

जंगबहादुर ने छल और हत्या से शासन हथियाने का जो नमूना दिखाया था, उसके वंश के लोगों का आपसी बर्ताव भी उसके साँचे में ढले बिना नहीं रह सकता था। और चूँकि उस पद्धति में प्रत्येक शासक को भी डर रहता कि किसी भी दिन एकाएक वह अपने सर्वस्व से हाथ धो सकता है, इसलिए वह अपने शासन-काल में अधिक से अधिक धन प्रजा से चूस कर नेपाल के बाहर जमा करने लगा।

§१२. सीमान्तों पर अग्रसर नीति का नया दौर—सन् १८८५ में रूसी खतरे के नाम पर जो अतिरिक्त सेना खड़ी की गई उसे स्थायी करके आगे बीस बरस तक भारत-सरकार ने सीमान्तों पर अग्रसर नीति जारी रक्खी। डफरिन के शासन-काल में सिन्ध-पंठे का रेल-पथ तैयार हुआ, अफगान कबीलों और चितराल के मामलों में दखल दिया जाने लगा, और गिलगित ले लेने की योजना बनी। बरमा के जीते जाने से लुशाई-चिन प्रदेश चारों तरफ से घिर गये।

लैंसडौन के शासन-काल में अफगान कबीलों के झगड़ों से लाभ उठा कर झोब प्रदेश अंग्रेजी संरक्षण में लिया गया, मणिपुर और लुशाई के विद्रोह दबा कर लुशाइयों को निःशस्त्र किया गया, चितराल ने अपनी विदेश नीति और सीमाओं की रक्षा भारत सरकार को सौंप दी, गिलगित में अंग्रेज अफसर बिठाया गया, तथा गिलगित के उत्तर तरफ हुञ्जा और नगर पर चढ़ाई कर उन्हें भी अधीन किया गया। इसी समय रूसी पामीर जीतने लगे, इसलिए पामीर के सीमा-निर्णय के लिए मिश्रित प्रतिनिधि-मंडल बैठाया गया। इस बीच सरहदी रेलपथ दर्रा खोजान के पार कोइटा और चमन तक, जो अफगानिस्तान

की ज़मीन में था, पहुँच गया। तभी भारत सरकार ने चीन, तिब्बत और अफ़गानिस्तान से सीमा-निर्णय किया। चीन के सीमा-निर्णय से कचीन प्रदेश और शान रियासतें अंग्रेज़ों की रक्षित हो गईं और तिब्बत के सीमा-निर्णय से सिकिम पूरी तरह अंग्रेज़ी आधिपत्य में आ गया। अमीर अब्दुर्रहमान ने मोहमन्द, अफ़रीदी, वज़ीरी और झोब इलाकों और चमन पर जो सब पठान प्रदेश हैं, आधिपत्य छोड़ दिया, तथा चितराल, दीर, बाजौर और स्वात में दखल न देना स्वीकार किया। उसने कहा, "ब्रितानिया अफ़गानिस्तान का कोई टुकड़ा चाहता नहीं, तो भी उड़ाने का कोई मौका चूकता नहीं; रूस की बनिस्बत इस दोस्त ने ज़्यादा ले लिया है।" उसने यह भी कहा कि कबीलों के इलाकों में युद्ध हुए बिना न रहेगा।

यह भविष्यवाणी लैन्सडौन के उत्तराधिकारी एल्गिन के शासन-काल में ही पूरी हो गई। सन् १८९५ के शुरू में चितराल में विद्रोह हुआ। गिलगित से एक अंग्रेज़ी टुकड़ी वहाँ भेजी गई, पर वह भी घेर ली गई। तब मलाकन्द और गिलिगत से दो बड़ी फौजें भेज कर चितराल फिर जीता गया। इसी वर्ष अंग्रेज़ों ने कुर्रम नदी की दक्खिनी शाखा टोची की दून पर भी कब्ज़ा कर लिया और चितराल में छावनी रखना तथा वहाँ तक सड़क और थाने बनाना तय किया। इससे सन् १८९७ में टोची से स्वात तक समूचा सीमान्त भड़क उठा। मलाकन्द से एक अंग्रेज़ सेनापति स्वातियों के खिलाफ़ तथा पेशावर से दूसरा अफ़रीदी-तीराह में घुसा। सन् १८५७ के बाद से भारत में यही सब से कठिन युद्ध हुआ। तीराह की चढ़ाई से अफ़रीदी दबे नहीं, और उन्होंने फिर यह दिखा दिया कि पठान अपने इलाके में विदेशी सेना को देख नहीं सकते। इसीलिए एल्गिन के उत्तराधिकारी कर्ज़न ने खैबर, कुर्रम और वज़ीरिस्तान से धीरे-धीरे सेना लौटा ली और वहाँ स्थानीय लश्कर खड़े किये। १९०१ ई० में कर्ज़न ने उत्तर-पच्छिमी इलाकों को पंजाब से अलग कर एक सीमा-प्रान्त बना दिया, पर क्वेटा से झोब तक के पठान प्रदेश उससे भी अलग कर तथाकथित बलोचिस्तान में रक्खे। १९०१ में ही अमीर अब्दुर्रहमान चल बसा और उसका बेटा हबीबुल्ला गद्दीनशीन हुआ।

§१३. टकसालों का बन्द किया जाना और विनिमय का नियन्त्रण—हमने देखा है कि वाइसराय नौर्थब्रुक के इस्तीफा देने का एक कारण यह भी था कि वह विलायती कपड़े पर से चुंगी हटाने को अन्याय समझता था। लिटन आते ही उस चुंगी को हटा देता, पर तभी चाँदी का भाव गिरने तथा मद्रास में घोर दुर्भिक्ष होने से भारत सरकार की आय बहुत गिर गई जिससे उसे रुकना पड़ा। तब भारत-सचिव ने उसे लिखा कि भारत में "पाँच और मिलें काम जारी करने वाली हैं"—मानो कोई बड़ा अनर्थ होने वाला है—और सन् १८७६ में, जब आंग्ल-अफगान युद्ध जारी था, और दक्खिन में सन् १८७७ तथा उत्तर भारत में सन् १८७८ के दुर्भिक्षों को प्रभाव बाकी थे, लिटन ने ३० कौंट तक के कपड़े पर से चुंगी हटा कर भारतीय आय का वह स्रोत सुखा दिया। सन् १८८२ में रिपन ने नमक और शराब को छोड़ सब चीजों का आयात बिना चुंगी के कर दिया। डफरिन और लैन्सडौन के समय सामरिक खर्च की बढ़ती के कारण १८९४ में फिर सब आयात पर ५% चुंगी लगाई गई, पर साथ ही भारतीय मिलों के २० कौंट से ऊपर के कपड़े पर भी उतनी ही चुंगी बैठा दी गई। लंकाशायर के व्यवसायी इतने से सन्तुष्ट न हुए; इसलिए १८९६ में विदेशी और भारतीय, बारीक और मोटे, सभी कपड़े पर ३½% चुंगी कर दी गई।

एक तरफ आय के इस स्रोत का बलिदान किया जाता था, तो दूसरी तरफ अंग्रेजी साम्राज्य-लोलुपता के युद्धों का बोझ भारत पर पड़ता था। आंग्ल-अफगान-युद्ध के खर्च का ⅙ तथा मिस्र-युद्ध के खर्च का ⅓ से कम ब्रितानिया ने दिया; बाकी सब भारत पर पड़ा।

इस बीच दुनिया में चाँदी की उपज अधिक होने से सन् १८७० से रुपये का भाव गिरने लगा था। उससे पहले १९वीं शताब्दी में रुपये का भाव बराबर दो शिलिंग था। रुपया सस्ता होने से उपज के दाम बढ़े और भारत के व्यापार-व्यवसायों को कुछ स्फूर्ति मिली। बन्दोबस्त-अफसरों ने उसी हिसाब से मालगुजारी बढ़ा दी, इसलिए सरकारी आय में कुछ फरक नहीं पड़ा। भारत को चाँदी की मन्दी से कोई कष्ट न होता, उलटा लाभ ही था। लेकिन भारत ब्रितानिया को

हर साल जो खिराज देता था, उसका हिसाब ब्रितानिया चाँदी में गिनने को तैयार न था, वह उसे सोने के हिसाब से ही लेता रहा। इससे कठिनाई बढ़ी।

इस दशा में सन् १८७८ में लिटन ने प्रस्ताव किया कि रुपये का टकसालना परिमित करके उसका दाम बढ़ाया जाय। यदि जनता को अपनी चाँदी टकसालों में ले जा कर मनचाही मात्रा में रुपये बनवाने का अधिकार रहता तो चाँदी और रुपये के दाम एक ही सतह पर रहते। किन्तु यदि जनता के लिए टकसालें बन्द कर दी जायँ तो कम-ज़्यादा संख्या में रुपया बना कर सरकार रुपये का दाम ज़्यादा या कम कर सकती थी। लिटन इसी ढंग से रुपये का दाम बढ़ाना चाहता था। लेकिन रुपया सस्ता होने पर जो टैक्स बढ़ाये गये थे, वे रुपये को मँहगा करके फिर घटाये न जाते। यों लिटन का उद्देश था जनता से धोखे से अधिक कर वसूल करना। ब्रितानवी सरकार ने वैसा करने की स्वीकृति न दी। डफरिन ने फौजी खर्च की खातिर भारत का कर्ज़ बढ़ाया, जिससे विनिमय की दर भारत के खिलाफ और गिरी। तब उसने फिर लिटन वाले प्रस्ताव को दोहराया, पर ब्रितानवी सरकार ने फिर स्वीकृति न दी। लैन्सडौन और एल्गिन के समय उजाड़ू फौजी खर्च की खातिर कर्ज़ और बढ़ गया; और रुपये का भाव गिरते-गिरते १३१ पेनी पर पहुँच गया। तब सन् १८९३ से १८९९ ई० तक भारत-सरकार ने ब्रितानवी सरकार की सहमति से टकसालें बन्द कर दीं, और "११ आने के सच्चे रुपये को १६ आने का झूठा रुपया बना कर करदाता से धोखे से ४५ फी सदी अधिक कर वसूल करना" शुरू किया। तब से रुपया सांकेतिक सिक्का रह गया। उसमें अपने मूल्य के बराबर की चाँदी न रही, और उसका मूल्य पौंड के मूल्य पर निर्भर हो गया। भारत की मुद्रा के नियन्त्रण द्वारा भारतीय जनता के समूचे आर्थिक जीवन को वश में रखने का एक नया साधन अंग्रेज़ी सरकार ने अपने हाथ में ले लिया।

अबोध जनता ने समझा, उसकी किस्मत के फेर से मन्दी आ गई है और उसे पहले जितनी ही मालगुजारी देने के लिए अधिक अनाज बेचना पड़ता है। उसे क्या मालूम था कि यह मन्दी सरकार की ही लाई हुई थी, जो इस ढंग से दस-बारह करोड़ वार्षिक का अनाज किसानों से इस कारण अधिक

वसूल करने लगी थी कि उसे अब विलायत को इतना खिराज अधिक देना पड़ता था। सन् १८९७-९८ से १९०१-२ तक भारत की कुल मालगुजारी रुपयों में प्रायः उतनी ही रही, पर पौंडों में ६४२½ लाख से ७६३½ लाख हो गई—और ये वर्ष वे थे जब सारे देश में लोग दुर्भिक्षों से तड़प-तड़प कर मर रहे थे।

रुपये का दाम बढ़ने से लाखों किसानों के कर्ज भी बढ़ गये—"भारत के गरीब कर्जदार वर्ग के गले में बँधी पत्थर की चक्की का बोझ बढ़ गया" और *"उन समृद्ध वर्गों को लाभ हुआ जो जनता की मुसीबत पर जीते हैं।"* और लाभ हुआ उन अंग्रेज नौकरों और व्यवसायियों को जो भारत से अपनी बचत या लाभ इंग्लैंड को भेजते थे। "पर यह लाभ भारतीय करदाता के खर्च पर—भारत में हर कर्ज को बढ़ा कर" हुआ। भारत के गरीबों की बचत चाँदी के तुच्छ गहनों के रूप में थी। "भारत सरकार के प्रस्ताव का अर्थ (था) गरीबों की उस बचत का ¼ जब्त कर लेना। रुपये का दाम कृत्रिम रूप से बढ़ने से किसानों के चाँदी के कँगने और बाजूबन्द लागत से कम पर बिकने लगे। यों एक कलम की मार से सरकार ने गरीबों का असल धन छीन लिया, जिससे कि वह अपने कर्ज (खिराज) को सुविधा से चुका सके।"

करों की इस चौमुखी वृद्धि के अलावा सन् १८७५ से १९०५ ई० तक भूमिकर में साधारणतया ५० फीसदी बढ़ती हुई, और ज़मीन के मामलों में अमलों का हस्तक्षेप कानूनों द्वारा अधिकाधिक बढ़ाया गया। सन् १८७५ में भारत-सचिव सालिसबरी ने लिखा था, "भारत का खून निकालना यदि ज़रूरी है, तो नश्तर उन अंगों पर लगाना चाहिए जहाँ खून ज्यादा है।" लेकिन यह सलाह अमल में नहीं आई, और कर का बोझ किसानों पर ही पड़ता रहा। १९वीं सदी के अन्त में भारत के निर्यातों और आयातों का अंतर करीब दो करोड़ पौंड वार्षिक रहा। यह खिराज अनाज के रूप में ही जाता रहा। भारतीय जनता की हालत तब यह थी कि देहात में मजदूरी की दर दो आना रोज़ थी और "भूखे रहना बहुत कुछ आदत बन गया था।"

§१४. भारत द्वारा ब्रितानवी साम्राज्य-साधन का नया दौर—हमने देखा है कि सन् १८८२-८४ में अंग्रेज सूदान को जीत न पाये

थे । १८९६ में सेनापति किचनर ने मिस्र से नील के काँठे में ऊपर बढ़ कर समूचे सूदान को ले लिया। सूदान के उपरले हिस्से में फशोदा पर फ्रांसीसी सेना थी; वह अंग्रेज़ी सेना को बढ़ती देख हट गई, जिससे इंग्लैंड फ्रांस का युद्ध होता होता टला। सूदान के साथ सोमाली देश भी अंग्रेज़ों ने लेना चाहा, पर वहाँ एक मुल्ला ने उनका सामना किया जो १८९९ से १९२० ई० तक लड़ता रहा। उसके मुकाबले को सिक्ख सेना वहाँ रक्खी गई।

सन् १८९४-९५ में जापान ने चीन साम्राज्य को हरा कर तैवान (फौरमोसा) द्वीप ले लिया। चीन की यह कमज़ोरी देख युरोपी राष्ट्र "चीनी तरबूज की फाँकें काटने" लगे। चीन साम्राज्य का ८० फी सदी प्रदेश उन्होंने अपने "प्रभावक्षेत्रों" में बाँट लिया (१८९९)। अंग्रेज़ों ने सबसे बड़ी फाँक ली—याङ्चे नदी का समूचा काँठा अंग्रेज़ी प्रभावक्षेत्र माना गया। अपने देश की यह लांछना देख कर चीन में एक दल खड़ा हुआ जिसने युरोपियों को मार कर चीन से निकालना चाहा। ये अपने को 'घूँसेबाज' कहते थे। इन 'घूँसेबाज़ों' (बौक्सरों) से बदला चुकाने को सन् १९०० में ब्रितानिया रूस और जर्मनी की सेनाएँ एक साथ चीन पर आ चढ़ीं। ब्रितानवी सेना भारत की ही थी। चीन को हराने और अनेक बर्बर कार्य करने के बाद इन्होंने उसे एक अरब रुपया हर्जाना देने और चीन के अनेक शहरों में इन राष्ट्रों की सेना रखने को बाधित किया। हर्जाने के बदले में कई बन्दरगाहों की आय गिरवी रक्खी गई।

ईरान की खाड़ी पर सत्रहवीं शताब्दी से अंग्रेज़ों ने एकाधिकार क़ायम कर रक्खा था। १८५२ में उन्हें उसे सब राष्ट्रों के जहाजों के लिए खोलना पड़ा था, तो भी वे वहाँ के तुर्क, अरब और ईरानी सरदारों के झगड़ों में एकमात्र मध्यस्थ होने का—अर्थात् उस खाड़ी के आधिपत्य का—दावा करते थे। १८९८ में फ्रांस ने ओमन के सुलतान से मस्कत के ५ मील दक्खिनपूरब बन्दर जिस्सा ले लिया। यह खबर पाते ही कर्ज़न ने कलकत्ते से बेड़ा भेजा और सुलतान के महल पर गोलाबारी की धमकी दे कर फ्रांसीसियों का ठेका रद्द करा दिया। सन् १९०० में रूस का वैसा ही प्रयत्न विफल हुआ। उसी वर्ष जर्मनी ने अपनी बर्लिन-बगदाद रेलवे योजना के लिए ईरान खाड़ी पर कोवैत के शेख

से ज़मीन लेनी चाही, पर अंग्रेज़ों ने लेने न दी।

हम देख चुके हैं कि दक्खिनी अफरीका में ओलन्देजों का का उपनिवेश "केप कौलोनी" नेपोलियन के समय अंग्रेज़ों ने छीन लिया था [११,१§११]। वहाँ के ओलन्देज उपनिवेशकों ने, जो बोअर कहलाते हैं, तब उत्तर हट कर ओरांज और नाताल उपनिवेश बसाये। अंग्रेज़ों ने नाताल भी ले लिया, तब वे वाल नदी के पार जा बसे। ओरांज और ट्रांसवाल पर भी अंग्रेज़ों ने आधिपत्य कर लिया, पर भीतरी शासन में बोअरों को स्वतन्त्रता रही। सन् १८८५ में दक्खिनी ट्रांसवाल में सोने की खानें निकल आईं, तब बहुत से अंग्रेज़ भी वहाँ जा बसे। १८९५ में उन अंग्रेज़ों ने षड्यंत्र कर ट्रांसवाल पर कब्जा करना चाहा। बोअरों ने तब युद्ध ठाना और १८९९ ई० में नाताल और केप कौलोनी पर हमला कर अंग्रेज़ों को खदेड़ने लगे। उस दशा में भारतीय सेना वहाँ भेजी गई, जिसने लेडीस्मिथ का गढ़ बोअरों के हाथ न जाने दिया और नाताल को बचाया। यह युद्ध सन् १९०१ तक चलता रहा। उसी बीच महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई। अंत में समूचे दक्खिनी अफरीका पर अंग्रेज़ों का आधिपत्य हो गया।

§१५. नव जागरण का उदय—हमने देखा है कि भारत के लोग युरोपियों से लगातार हार कर भी जब अपनी हार के कारणों की ओर न देख दूसरी बातों में उलझे रहते, तब एक रघुनाथ हरि ने यह देखा-समझा था कि ज्ञान में पिछड़ जाना हमारी हारों का मूल कारण था [१०,५§५]। उसी रघुनाथ हरि की परम्परा से सम्पर्क रखने वाले कुछ व्यक्तियों ने पहलेपहल यह भी देखा कि भारत को अंग्रेज़ों ने भारतीय सेना द्वारा ही काबू कर रक्खा है [११,४§५; ११,५§१] और उस सेना को जगा कर क्रान्ति का पहला युद्ध लड़ा। उस युद्ध में भारत की जागृति के एक और अग्रदूत शाह वलीउल्लाह के अनुयायियों ने भी खुल कर योग दिया।

अंग्रेज़ों की पहली शिक्षा-पद्धति से जिन भारतीयों की आँखें खुलीं उनमें से भी कइयों का ध्यान अपने देश की दशा की ओर गया था। राममोहन राय, बाळशास्त्री जांभेकर, गोपाल हरि देशमुख और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर इन्हीं में से थे। इन्होंने समाज-सुधार और देसी भाषाओं द्वारा ज्ञान-प्रसार को भारत

को उठाने का मुख्य मार्ग माना। राममोहन और गोपाल हरि ने यह भी कहा कि इस प्रकार देश के उन्नत होने पर स्वतन्त्रता भी प्राप्त होगी, पर उसे उन्होंने दूर की वस्तु माना था। गोपाल हरि ने स्वदेशी कारबार के विकास और विदेशी-वस्तु-बहिष्कार को भी देश की उन्नति का एक उपाय बताया।

पर अधिकतर लोगों ने अंग्रेज़ी शिक्षा निजी लाभ के लिए पाई थी, और मैकाले की शिक्षा-पद्धति ज्यों ज्यों बढ़ती गई त्यों त्यों उस शिक्षा द्वारा जनता की भाषाओं में ज्ञान पहुँचाने की बात विस्मृत होती गई। सन् ५७ के क्रान्तियुद्ध की विफलता से देश में जो गहरी पस्तहिम्मती छा गई, उससे अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुए अमला-वकील-वर्ग को, जो अंग्रेज़ी राज को अटल मानता और जिसकी हैसियत उस राज के कारण ही थी, विशेष बढ़ावा मिला। उस वर्ग की कई ऐसी संस्थाएँ, जो अंग्रेज़ों से अधिकारों की भीख माँगा करती थीं, सन् ५७ से पहले ही खड़ी हो गई थीं। क्रान्तियुद्ध के विफल होने के बाद अंग्रेज़ों के इशारे पर उस वर्ग के कुछ मुसलमानों ने अपने सहधर्मियों में यह लहर चलाई कि मुसलमान अंग्रेज़ी शिक्षा पाने और अंग्रेज़ों से सहयोग करने में पिछड़े न रहें। सन् ५७ में जब समूचा रुहेलखंड अंग्रेज़ों से लड़ रहा था, तब सैयद अहमदखाँ वहीं अंग्रेज़ों को बचाने में लगा था। वही सैयद अहमद इस नई लहर का नेता था, और उसने सन् १८७७ में वाइसराय लिटन से जो कि तब मुस्लिम अफगानों की स्वतन्त्रता हरने के प्रयत्न में लगा था, अलीगढ़ मुस्लिम कालेज की नींव रखवाई। हमने देखा है कि वलीउल्लाहियों ने क्रान्ति-युद्ध विफल होने के बाद भी अंग्रेज़ी राज से मुठभेड़ जारी रक्खी और अपना एक विद्यालय देवबन्द में स्थापित किया था। भारतीय मुसलमानों में देवबन्द और अलीगढ़ की विचारधाराओं का संघर्ष चलता रहा। नामधारियों के उठने से भी प्रकट हुआ कि भारत के स्वाधीनतावादियों ने हार न मानी थी।

यों क्रान्तिकारी भावना १८५९-६० के बाद भी बुझी नहीं। उसे फिर से जगाने, व्यापक रूप देने और साथ ही १८५७-५९ की हार के कारणों को समझ कर ठीक उपाय करने का पहला दृढ प्रयत्न काठियावाड़ के दयानन्द यती (१८२४-१८८३) ने किया। दयानन्द का पहला नाम मूलशंकर था।

वह बचपन से चिन्तनशील था। १३ बरस की आयु में शिवरात्रि का जागरण करते समय शिवलिंग पर चूहे को कूदता देख वह हिन्दू धर्म के उपस्थित रूप के बारे में सोच में पड़ गया था। उसका ध्यान अपने देश की दुर्दशा की ओर गया। उसे संस्कृत की गहरी शिक्षा मिली, पर अंग्रेज़ों से अछूता रहा। २२ वर्ष की आयु में वह घर छोड़ प्रकाश की तलाश में निकल पड़ा। बहुत भटकने के बाद १८४७ में उसे नर्मदा के किनारे विद्वान् महाराष्ट्र साधुओं की संगत मिली जिनमें से एक ने उसे संन्यास-दीक्षा दी। १८५५ में गढ़वाल जाने का संकल्प कर वह हरद्वार आया जहाँ एक बूढ़े सन्यासी के सामने उसने अपने प्रश्न रक्खे। तब यह तय हुआ कि वह उस संन्यासी के पजाबी शिष्य प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द के पास मथुरा जा कर शिक्षा लेगा। विरजानन्द (१७६७-१८६८) के अनेक शिष्यों ने तीसरे आंग्ल-मराठा युद्ध में और उसके बाद ब्रज और उत्तरी राजस्थान में, अंग्रेज़ों से टक्कर ली थी। पर गढ़वाल से उतर कर दयानन्द मथुरा के बजाय कानपुर चला गया, और दस मास उसके आस-पास घूमने के बाद मार्च १८५७ में नर्मदा प्रदेश को रवाना हुआ। अगले तीन वर्षों का अपने काम का ब्यौरा उसने कभी किसी को नहीं दिया, पर जान पड़ता है वह १८५५ में ही क्रान्ति-संघटन के सम्पर्क में आ चुका था और उसके काम से रामेश्वरम् तक घूमा। क्रान्ति-युद्ध की समाप्ति पर अक्तूबर १८६० में वह विरजानन्द के पास मथुरा पहुँचा। अढ़ाई वर्ष तक वे गुरु-शिष्य देश की दशा पर विचार करते रहे। अन्त में १८६३ में विरजानन्द ने गुरुदक्षिणा रूप में दयानन्द से यह वचन ले कर उसे विदा किया कि वह अपना जीवन लोक-कल्याण के लिए लगा देगा। अगले बीस बरस वह अनथक घूमता कार्य करता रहा, और अन्त में विष दिया जा कर शहीद हुआ।

स्वामी दयानन्द

दयानन्द ने राममोहन और 'लोकहितवादी' की तरह यह तो पहचाना ही कि भारत के पुनर्जागरण के लिए गहरे धार्मिक सामाजिक संशोधन की तथा युरोप के सब नये ज्ञान और शिल्प को अपना लेने की आवश्यकता है। धार्मिक सामाजिक संशोधन के लिए उसने 'लोकहितवादी' को साथ लेकर 'आर्यसमाज' की स्थापना की। इसके अतिरिक्त उसने यह भी सोचा कि भारत को अपनी भाषाओं में नये ज्ञान का विकास करने और अपने राष्ट्रीय आदर्शों के परिपालन के लिए राष्ट्रीय शिक्षापद्धति खड़ी करनी होगी तथा नया विज्ञान सीखने में ब्रितानिया के उठते हुए प्रतिद्वन्द्वी जर्मनी से सहायता मिलेगी। इस दृष्टि से उसने अपने कच्छी शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा को युरोप भेजा। सन् ५७ की हार से हार न मानते हुए उसने खुल कर कहा—"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है...।" उसने 'लोकहित-वादी' के 'स्वदेशी' मन्त्र को भी दोहराया। विदेशों से सामरिक ज्ञान पाने के लिए देश में जिम्मेदार और दृढ क्रान्तिकारी संघटन खड़ा करना आवश्यक था। श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा शायद दयानन्द के राजस्थानी शिष्य कृष्णसिंह बारहट ने सब से पहले वैसे संघटन की नींव डाली। उनका क्षेत्र पच्छिमी भारत रहा। देश गहरा सोया हुआ और अन्ध रूढियों से ग्रस्त था, इस कारण बहुत धीरे-धीरे उनका कार्य आगे बढ़ा।

बाळशास्त्री जांभेकर का शिष्य दादाभाई नवरोजी (१८२४–१९१७) दयानन्द का समवयस्क था। उसने पहलेपहल अपने देश की आर्थिक दशा और दरिद्रता के कारणों को ठीक ठीक समझ कर उन पर प्रकाश डाला। इसी समय महेन्द्रलाल सरकार ने बंगाल में भारतीय विज्ञान-परिषद् की स्थापना की तथा बंगाली साहित्यकार बंकिमचन्द्र चटर्जी (१८३८–१८९४ ई०) और मराठी लेखक विष्णुशास्त्री चिपळूणकर ने भी स्वाधीनता के आदर्श की खुल कर घोषणा की। बंकिम ने लिखा—"स्वदेशरक्षा...समस्त जगत् के हित का उपाय है। परस्पर के आक्रमण से सब के...अधःपतित होने पर कोई परस्वलोलुप पापिष्ठ जाति अधिकार हथिया ले तो पृथ्वी से धर्म और उन्नति लुप्त हो जायगी।" चिपळूणकर ने लिखा—"हमारी प्रस्तुत गरीबी का मुख्य कारण..."

बंकिमचन्द्र

विदेशी राज है ......। अंग्रेजों के मालिक बन बैठने से पहले यह देश सम्पन्न था और मुसलमानों का प्रशासन, जिसे जुलमी कहा जाता है, आज के सुधरे प्रशासन से सौ गुना अच्छा था।" बंकिम ने वारन हेस्टिंग्स के समय बंगाल में छापामार लड़ाई लड़ने वाले संन्यासियों के चरित से एक कहानी बना कर आनन्दमठ नाम से स्वतन्त्रता के योद्धाओं का आदर्श अंकित किया (१८८२ ई०)। उस मठ के साधुओं से उन्होंने काली-वन्दना के बहाने मातृभूमि की वन्दना 'वन्दे मातरम्' गीत से कराई। बंकिम की चलाई लहर की प्रतिध्वनि गुजराती कवि नर्मद, उर्दू कवि हाली और हिन्दी कवि हरिश्चन्द्र की कृतियों में हुई। बंकिम के साथी प्रमथ मित्र ने और बंगाली संन्यासी विवेकानन्द के साथियों ने बंगाल में पहले-पहल क्रान्ति-टोलियों की नींव डाली।

संन्यासी सुधारकों और साहित्यिकों की चलाई यह लहर सन् ५७ का सा विस्फोट फिर पैदा न कर दे, ऐसी आशंका अंग्रेज शासकों को हुई। उन्होंने सोचा, भारत की राजनीतिक आकांक्षाएँ प्रकट करने का नेतृत्व अंग्रेज़ों पर निर्भर अंग्रेज़ी बोलने वाले वकील वर्ग के हाथ में रहे तो इस लहर का बल टूटता रहेगा। इस दृष्टि से वाइसराय डफरिन की प्रेरणा से इटावे के भूतपूर्व कलक्टर ह्यूम ने, जो सन् ५७ में वहाँ से ओढ़नी ओढ़ कर बच निकला था, दिसम्बर १८८५ में "इंडियन नेशनल कांग्रेस" की स्थापना कराई। ह्यूम का कहना था कि "ब्रितानवी साम्राज्य को भविष्य में अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए" कांग्रेस जैसी संस्था की, जो भारतीय जनता में "बढ़ती हुई (साम्राज्यविरोधी) शक्तियों को निकाल देने के लिए सुरक्षा-कपाटी का काम करे, उस समय बड़ी आवश्यकता थी," अन्यथा "भयानक क्रांति का खतरा था।" वकौल डफरिन कांग्रेस के इन "भारतीय नेताओं के सामने यही आदर्श था कि भारत की

विदेशी हमलों से"'रक्षा ब्रितानवी सेना ही करती रहे; पर भीतरी मामलों का प्रबन्ध उन्हें गोरों की दस्तन्दाजी के बिना सौंप दिया जाय।" उनका "अग्रगामी पक्ष भी अधिक से अधिक प्रांतीय कौंसिलों का सुधार ही माँगता था।"

पर इसके साथ स्वाधीन राष्ट्रवाद की लहर भी चलती रही। श्यामजी कृष्ण वर्मा के अतिरिक्त चिपळूणकर के साथी बाल गंगाधर टिळक और विवेकानन्द ने १८८५ के बाद उसे जारी रक्खा।

मैकाले शिक्षापद्धति में अंग्रेज़ी साहित्य और कानून की शिक्षा का जितना महत्त्व था, स्वाधीन राष्ट्रवाद की लहर में नये विज्ञान के उपार्जन और उसे अपनी भाषाओं में दर्ज करने पर उतना ही बल दिया जाता था। इस प्रेरणा से अनेक भारतीयों ने नये विज्ञानों का उपार्जन किया और उस क्षेत्र में स्वतंत्र चिन्तन की ऊँची योग्यता दिखाई। १८६०-६५ के बीच इन विद्वानों के ज्ञान और चिन्तन के पहले फल मराठी, बँगला और हिन्दी में प्रकट हुए, जिनमें इतिहास के क्षेत्र में शंकर बालकृष्ण दीक्षित, हरप्रसाद शास्त्री और गौरीशंकर ओझा की कृतियाँ मार्के की थीं। इसी प्रसंग में नवम्बर १८६४ में जगदीशचन्द्र बसु ने संसार भर में पहलेपहल बिना तार के बिजली की लहर दौड़ा दिखाई*। वह एक महान् आविष्कार था। भारत के लोग अपने पराभव के स्पष्ट कारणों को भी न देखते और उन्हें दूर करने के उपाय न करते थे, इससे युरोपियों ने यह परिणाम निकाला था कि भारतीय अपनी आँखों के सामने की वस्तुस्थिति को नहीं देख सकते, केवल दार्शनिक कल्पनाएँ कर सकते हैं। १८६४-६५ की इन वैज्ञानिक कृतियों से इस कल्पना की गलती पहलेपहल प्रकट हुई।

सन् १८६६-६७ में भारत में व्यापक दुर्भिक्ष फैला, जिसमें करीब १० लाख आदमी मरे। उस दुर्भिक्ष के बीच भी सीमान्त का खर्चीला युद्ध चलता रहा, और १४ करोड़ रुपये का अनाज इंग्लिस्तान गया। उसी साल मुम्बई में पहलेपहल प्लेग आई। जनता में घोर असंतोष था और वह अंग्रेज़ी शासन को ही अपने इन कष्टों का कारण अनुभव करने लगी थी। सरकारी अफसरों ने

---

* देखिए परिशिष्ट ७।

प्लेग के कारण लोगों के रहन-सहन में दस्तन्दाजी की तो लोग और भी खीझे, और पूने में दो अंग्रेज मारे गये। तब सरकार ने दमन शुरू किया; टिळक को डेढ़ साल की कैद दी गई। श्यामजी को भारत छोड़ भागना पड़ा।

सन् १६०० में दयानन्द के शिष्य मुंशीराम ने राष्ट्रीय शिक्षा की नींव डालने के लिए पंजाब में एक 'गुरुकुल' की स्थापना की। दो बरस बाद वे उस संस्था को हरद्वार के पास कांगड़ी गाँव में ले आये। जैसा कि कहा जा चुका है [११,६§११] सन् १८५४ से भारतीय व्यवसायी नये कल-कारखाने भी स्थापित करने लगे थे।

§१६. विधान-सभा तथा पंजाब भूमि हस्तान्तरण कानून—सन् १८६२ में अंग्रेजी पार्लिमेंट ने भारतीय विधानसभा कानून (इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट) बनाया। उसके अनुसार बड़े प्रान्तों की विधानसभाओं में सदस्यों की संख्या बढ़ा कर २०-२१ कर दी गई, और उनमें आधे गैर-सरकारी सदस्य म्युनिसिपैलिटियों, ज़िला-बोर्डों आदि की सिफारिश पर नामज़द किये जाने लगे। केन्द्रीय कौंसिल के १० गैर-सरकारी सदस्यों में से ४ प्रान्तीय कौंसिलों से चुन कर आने लगे। बहुपक्ष सब जगह सरकारी सदस्यों का ही रहा। पहले जब कोई नया टैक्स लगाना हो तभी अर्थसचिव कौंसिल में प्रस्ताव लाता था। अब से आय व्यय की वार्षिक कूत (बजट) पेश होने लगी, पर सदस्य उसपर विचार ही प्रकट कर सकते थे, उनके मत न लिये जाते थे। सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार भी दिया गया।

सन् १६०० में पंजाब भूमि हस्तान्तरण कानून बनाया गया। उसका प्रकट उद्देश यह था कि किसानों की ज़मीनें गैर-किसान महाजनों के हाथ न जायँ। पर उसमें किसान की परिभाषा यह न थी कि जो खेती करे, प्रत्युत किसान जातें, कबीले और फिरके गिना दिये गये थे, और वह भी इस प्रकार कि सभी सिक्ख, मुसलमान और ईसाई 'किसान' थे, पर खेत-मजदूरी करने वाले हिन्दू अछूत भी 'किसान' न थे। यों जिस जात-पाँत को भारतीय सुधारक अपने समाज से निकालना चाहते थे, अंग्रेज़ों ने उसे आर्थिक जीवन में भी गाड़ दिया। मुसलमानों में जो अंग्रेज़ों पर आश्रित जमींदार-अमला-वकील वर्ग था, वह इस

कानून से 'किसान' बना रहा। यों इस कानून का स्पष्ट परिणाम यह होने को था कि मुस्लिम किसानों को हिन्दू महाजनों से ऋण न मिले, ऋणदाताओं की संख्या घट जाने से उन्हें ऋण मँहगा मिले, और उनकी जमीनें मुस्लिम जमींदार-अमला-वकील वर्ग के हाथ तेजी से जाती जायँ। सन् ५७ के बाद से अंग्रेज़ों की भाड़ैत सेना की भरती मुख्यतः पंजाबी किसानों में से होती थी। वे किसान एक ऐसे वर्ग के वश में रहें जो अंग्रेज़ों की कृपा से ही पनपे, यह इस कानून का असल उद्देश था।

परिशिष्ट ७

जगदीशचन्द्र बसु और बेतार की बिजली

आज के सभ्य जगत् के दैनिक जीवन में बिना तार के चलने वाली बिजली का बड़ा महत्त्व है। उसके आविष्कार की कहानी संक्षेप में यों है।

सन् १८६४ में अंग्रेज़ गणितज्ञ क्लार्क मैक्सवेल ने हिसाब लगा कर बताया कि बिजली की भी लहरें होती होंगी, जो प्रकाश की लहरों की तरह आकाश (ईथर) में हो कर चलती होंगी। उसके बाद १८८७ में जर्मन वैज्ञानिक हेर्त्ज़ ने एक यन्त्र बना कर उससे बिजली की लहरें उठा कर दिखा दीं। वे लम्बी लहरें थीं, जिन्हें एक छोर से उठा कर दूसरे छोर पर पकड़ना सुगम न था तो भी हेर्त्ज़ के आविष्कार ने दुनियाँ में हलचल मचा दी। हेर्त्ज़ के काम को जगदीशचन्द्र बसु ने आगे बढ़ाया और अपने यन्त्र से बहुत छोटी तरंगें उठाईं जिनकी लम्बाई $\frac{1}{6}$ इंच थी।

जब यह सिद्ध हो गया कि बिजली की लम्बी छोटी तरंगें होती हैं जो आकाश में चलती हैं तब यह सोचा जाने लगा कि उन तरंगों को यदि पकड़ा जा सके तो उनके द्वारा धातु के तार के बिना भी सन्देश भेजे जा सकेंगे। यह काम भी पहलेपहल जगदीशचन्द्र ने किया। सीसे की कच्ची धात के टुकड़े पर एक तार लगा कर उससे उन्होंने अपने यन्त्र से आकाश द्वारा भेजी बिजली-तरंग पकड़ी। पकड़ने वाले यन्त्र को उन्होंने कृत्रिम चक्षु कहा, क्योंकि चक्षु

जैसे प्रकाश तरंग को पकड़ती है वैसे यह बिजली-तरंग को पकड़ता था। नवम्बर १८६४ में उन्होंने प्रेसिडेंसी कालेज कलकत्ते के प्रांगण में एक परीक्षण कर दिखाया। अपने साथी अध्यापक प्रफुल्लचन्द्र राय के मकान से बिजली-तरंग उठाई। उस मकान का दरवाजा बन्द रक्खा, उसपर जगदीश के पुराने अध्यापक फादर लाफों पहरा देते रहे। आगे अध्यापक पेडलर के मकान में एक पिस्तौल भरा रक्खा था। प्रफुल्लचन्द्र के मकान से उठाई गई बिजली की लहर ने उस पिस्तौल को चला दिया।

तभी रूसी वैज्ञानिक पोपोव और इतालवी मार्कोनी भी ऐसे परीक्षणों में लगे थे। पोपोव ने कहते हैं ७ मई १८६५ को रूसी वैज्ञानिकों की एक सभा में अपने यन्त्र से बिना तार के बिजली का सन्देश भेज दिखाया था। मार्कोनी १८६५ की गर्मियों में पहलेपहल वैसा कर सका। जगदीशचन्द्र भी उस वर्ष अपने यन्त्र से बराबर बिना तार के बिजली-सन्देश भेज कर दिखाते रहे। उनका यन्त्र और सब यन्त्रों से अच्छा था यह बात उस वर्ष (१८६५) इंग्लैंड की वैज्ञानिक पत्रिका 'इलेक्ट्रीशियन' में कही गई थी। उसी वर्ष ब्रितानवी जंगी बेड़े के प्रधान सेनापति सर हेन्री जैक्सन ने उस यन्त्र को अपने बेड़े में लगवा लिया था। ५-२-१८६७ को वैज्ञानिक पत्रिका 'इलेक्ट्रिक इंजीनियर' में छपा था—"वसु की विद्युत्-तरंग पकड़ने के यन्त्र की युक्ति तथा सब यन्त्रों में उसका शीर्ष स्थान होना ...अत्यन्त चामत्कारिक है। आश्चर्य है कि इस यन्त्र के निर्माण-कौशल को उन्होंने कभी छिपाया नहीं, पृथ्वी के लोगों को उससे काम लेने और आमदनी करने में कोई बाधा नहीं है।" पर मार्कोनी ने अपनी ईजाद १८६६ में इंग्लैंड जा कर "पेटंट" करा ली, अर्थात् उसपर अपना स्वत्व सरकारी दफ्तर में दर्ज करवा लिया, और उस स्वत्व को एक अंग्रेज कम्पनी को कुछ शर्तों पर दे दिया, जिसने

जगदीशचन्द्र वसु
(१८५८-१९३८)
[वसु विज्ञानमन्दिर कलकत्ता—श्री आत्माराम कानोडिया के सौजन्य से]

इससे करोड़ों रुपये पैदा किये। गुलाम भारत अपने वैज्ञानिक के आविष्कार से कोई लाभ न उठा सका।

वसु ने अपने आविष्कार का विवरण पहले बँगला में लिखा था। बाद में यह प्रश्न उठने पर कि बेतार बिजली का पहला आविष्कारक कौन है, उन्हें युरोप जा कर अपने लेख का अनुवाद देना पड़ा। उस बारे में सन् १६२१ में उन्होंने लिखा—"...इस विषय की अदालत विदेश में है। वहाँ वाद-प्रतिवाद केवल युरोपी भाषा में ही गृहीत हो पाता है। (हमारे) राष्ट्रीय जीवन के लिए इससे बढ़ कर क्या अपमान हो सकता है?" [चारुचन्द्र भट्टाचार्य—जगदीश-चन्द्रेर आविष्कार, कलकत्ता, १६४३]

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सन् १८५७ के तजरबे से भारत के अंग्रेज़ शासकों ने अपनी शासननीति में क्या परिवर्त्तन किये?

२. अंग्रेज़ों के किये जमीन-बन्दोबस्त से भारतीय किसान अपने स्वत्वों से कैसे वञ्चित हुए? उन्हें उनके स्वत्व वापिस दिलाने के लिए १९वीं शताब्दी उत्तरार्ध में कब क्या यत्न किये गये? फल क्या हुआ?

३. वलीउल्लाही कौन थे? १९वीं शताब्दी में उनके कार्यों का परिचय दीजिए।

४. उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध में अंग्रेज़ पूँजीपतियों ने भारत का विदोहन (एक्स्प्लौयटेशन) कैसे किया? उसका विवरण दीजिए।

५. विक्टोरिया युग में भारत के साधनों द्वारा ब्रितानवी साम्राज्य की वृद्धि कैसे हुई? विवरण दीजिए।

६. दूसरा आंग्ल-अफगान युद्ध किन दशाओं में हुआ? उसका परिणाम क्या हुआ?

७. मिस्र अंग्रेज़ों के नियन्त्रण में कब कैसे आया?

८. भारत की टकसालें किन दशाओं में क्यों जनता के लिए बन्द की गईं? उस बन्दिश का परिणाम क्या हुआ?

९. नेपाल में राणाशाही का विकास कैसे हुआ? उससे जनता के जीवन पर क्या प्रभाव हुआ?

१०. सन् १८९७ का उत्तरपच्छिमी सीमान्त का युद्ध किन दशाओं में कैसे हुआ? उसका परिणाम?

११. सन् १८५७ के बाद भारत में स्वाधीन राष्ट्रवाद की लहर फिर कब कैसे चली?

उसमें और इंडियन नैशनल कांग्रेस की लहर में क्या अन्तर था ?

१२. बिना तार के बिजली-सन्देश भेजने का आविष्कार किन दशाओं में कब कैसे हुआ ?

१३. सन् १९०० के पंजाब भूमि हस्तान्तरण कानून का अर्थ और अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

१४. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए (१) गुरु रामसिंह (२) सर सैयद अहमद खाँ (३) न्यूजीलैंड में अंग्रेज़ी उपनिवेश स्थापित होना (४) सिंगापुर पर अंग्रेज़ी आधिपत्य-स्थापना (५) दूसरा अफ़ीम युद्ध (६) "वहाबी" (७) "चीनी तरबूज़ की फाँकें काटना" (८) श्यामजी कृष्ण वर्मा (९) आनन्दमठ।

अध्याय ८

क्रान्तिकारी दलों का उदय

(१९०१-१९१९ ई०)

§१. क्रान्ति-टोलियों की नींव पड़ना—हमने देखा है कि १९वीं शताब्दी के अन्तिम अंश में स्वाधीन राष्ट्रवादी विभिन्न प्रान्तों में क्रान्तिकारी टोलियाँ संघटित करने लगे थे। पच्छिमी भारत में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने उनका बीज बोया था। महाराष्ट्र, राजस्थान, पंजाब आदि में एक अभिनव-भारत-समिति की अनेक शाखाएँ स्थापित हुईं। बंगाल में प्रमथ मित्र ने और विवेकानन्द की मंडली ने संघटन आरम्भ किया था। १९०० ई० के बाद वहाँ सखाराम गणेश देउस्कर और वारीन्द्र घोष ने भी उसे बढ़ाया। देउस्कर महाराष्ट्र होते हुए भी बँगला में लिखते थे। वारीन्द्र पहले बड़ोदे में थे। पंजाब में तभी स्वामी रामतीर्थ के साथियों शिष्यों ने भी वैसे संघटन में भाग लिया। श्यामजी ने युरोप जा कर पहले लन्दन से, फिर पैरिस से, अपने विचारों और संघटन को फैलाना जारी रक्खा। उन्हें वहाँ काठियावाड़ के सरदारसिंह राणा और मुम्बई की श्रीमती कामा का सहयोग मिला। इन्होंने विदेशी क्रान्तिकारियों से भी सम्पर्क बनाये। श्यामजी से छात्रवृत्तियाँ पा कर नासिक के विनायक सावरकर और दिल्ली के हरदयाल युरोप गये। हरदयाल के लौटने पर पंजाब का संघटन और बढ़ा।

§२. फारिस-खाड़ी और तिब्बत पर चढ़ाई—साम्राज्य-स्थापना की जो नई लहर ब्रितानिया में सन् १८७६ से उठी थी, उसका वेग १९०५ तक

बना रहा। सन् १६०३ में वाइसराय कर्ज़न खुद फारिस-खाड़ी में गया और वहाँ के मुख्य शहरों में अंग्रेज़ 'व्यापार-दूत' स्थापित किये। ईरान की भूमि में मिट्टी के तेल का पता मिला था। उसे निकालने का एकाधिकार अंग्रेज़ों ने ले लिया।

चीन के बोदे साम्राज्य का तिब्बत पर अधिकार ढीला-ढाला था। पच्छिमी तिब्बत में सोने की खानें हैं। १६०३ में कर्जन ने भारत से कर्नल यंगहस्बैंड के अधीन एक सेना उत्तरी बंगाल से तिब्बत की चढ़ाई के लिए भेजी, जो तिब्बत के धनी मन्दिरों को लूटती हुई ३-८-१६०४ को ल्हासा जा पहुँची। तिब्बत का शासक दलाई लामा वहाँ से भाग गया था। उसके प्रतिनिधि ने सन्धि की और तिब्बत की विदेशी-नीति अंग्रेज़ों को सौंप दी। ग्याँचे में अंग्रेज़ "व्यापार-दूत" और यातुङ और गारतोक में व्यापार-निरीक्षक रखना भी स्वीकार किया।

§ ३. वंग-भंग—पुरातत्त्व-विभाग की स्थापना कर्ज़न का एक अच्छा कार्य था, अन्यथा "इस छोकरे से राजनीतिचारी" की याद उसके दमन के कार्यों और इतराये दिमाग के भाषणों से की जाती है। सन् १६०४ में उसने युनिवर्सिटियों पर सरकारी नियन्त्रण बढ़ाने को एक कानून जारी किया और फिर बंगालियों की जागती हुई राष्ट्रीयता को दबाने के लिए अक्तूबर १६०५ में बंगाल को तोड़ कर पूरबी बंगाल और असम का एक तथा पच्छिमी बंगाल और बिहार का दूसरा प्रान्त बना दिया, जिससे बँगला-भाषी क्षेत्र दो टुकड़े हो गया।

§ ४. स्वदेशी आन्दोलन—इसके जवाब में स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार और अंग्रेज़ी माल के बहिष्कार का आन्दोलन बंगाल में शुरू हो कर सारे भारत में फैल गया। बहिष्कार आन्दोलन के संचालक 'गरम दल' के कहलाते, और उनके मुकाबले में कांग्रेस के नेता 'नरम दल' के। टिळक, अरविन्द घोष, विपिनचन्द्र पाल आदि गरम दल के अगुआ थे। उनके आन्दोलन से स्वाधीनतावादी संघटन को पुष्टि मिली। स्वदेशी व्यवसायों, राष्ट्रीय शिक्षणालयों और क्रान्तिकारी टोलियों की स्थापना और विस्तार उस संघटन के मुख्य रूप थे। इस लहर को विश्व-परिस्थिति ने भी पनपाया।

सन् १६०४ में रूस और जापान का युद्ध हुआ, जिसमें जापान ने रूस

को पछाड़ दिया। युरोप की विश्व-प्रभुता के विचार को इससे जोर का धक्का लगा। १८६६ तक जापान भी एशिया के दूसरे राष्ट्रों की तरह था। तब से उसने युरोप के विज्ञान, शिल्प और आर्थिक राजनीतिक संघटन को समझ कर अपनाना शुरू किया था। जापान की इस जीत से एशिया के देशों में बिजली की लहर सी दौड़ गई।

हरद्वार गुरुकुल में अब आधुनिक विज्ञान की शिक्षा भी हिन्दी में दी जाने लगी। उसकी देखा-देखी बंगाल में भी "जातीय शिक्षा परिषद्" स्थापित हुई, जिसका जादवपुर (कलकत्ता) में स्थापित किया शिल्प और इंजिनीयरिंग विद्यालय हमारे देश में उस प्रकार का सर्वोत्तम विद्यालय है। १९०६ में बारीन्द्र ने विवेकानन्द के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त से मिल कर 'युगान्तर' पत्र जारी किया जो खुल कर स्वाधीन राष्ट्रवाद का प्रचार करने लगा। ढाके और कलकत्ते में 'अनुशीलन समितियाँ' स्थापित हुईं (१९०६)। अगले दो बरस में ढाका समिति की ५०० शाखाएँ बंगाल और उत्तर भारत में खड़ी हो गईं। इन समितियों में युवक व्यायाम और स्वाध्याय के लिए जुटते थे। इस लहर की जड़ में यह विचार था कि "हमें पूर्ण स्वाधीनता चाहिए...फिरंगी की कृपा से मिले अधिकारों पर हम थूकेंगे; हम अपनी मुक्ति स्वयं पायेंगे।" युरोप में श्यामजी और उनके साथियों ने इसका विशेष यत्न किया कि भारत के योग्य युवकों को समर-विज्ञान की ऊँची शिक्षा मिल सके।

कला, वाङ्मय और विज्ञान में भी इस जागृति ने मौलिक कृतियों को उत्पन्न किया। उन्नीसवीं शताब्दी में पहाड़ी कलम [१०, ५ § ७] का अन्त होने के बाद से भारतीय कलाकारों की प्रतिभा पाश्चात्य शैली के सामने पराभूत सी रही थी। रविवर्मा नामक केरल चित्रकार ने पच्छिमी शैली में भारतीय कल्पनाओं को प्रकट करना चाहा, पर उनकी रचनाएँ भद्दी हुई थीं। सन् १९०३-४ में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक नई चित्रण-शैली का विकास किया जो विदेशी शैलियों की अनेक बातें अपना लेने के बावजूद भी पूरी तरह भारतीय रही। रविवर्मा के 'शिव' और अवनीन्द्र के शिष्य नन्दलाल बसु के 'शिव' की तुलना से उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले अंश और सन् १९०५-८ की भारतीय

मनोवृत्तियों का अन्तर मानो आँखों के सामने आ जाता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बँगला और सुब्रह्मण्य भारती के तमिळ गीतों में उसी नई लहर की गूँज थी। भारती ने गाया—हम नाचेंगे, हम गायेंगे, हम आज स्वतन्त्र हैं! टिळक की वाणी मराठी वाङ्मय में जो नई जान फूँक रही थी, उसकी प्रतिध्वनि भारत की अन्य भाषाओं में भी सुनाई देती। विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे और गोविन्द सखाराम सरदेसाई की मराठा इतिहास विषयक महान् कृतियों के पहले अंश १८६७-१६०२ के बीच प्रकट होने लगे थे।

§५. आंग्ल-रूसी समझौता—जर्मनी अब प्रबल राष्ट्र हो उठा था। उससे हार कर फ्रांस ने सन् १८६३ में रूस से स्थायी मैत्री की सन्धि कर ली। जर्मन व्यवसायी दुनिया के बाज़ारों में अंग्रेज़ों को पछाड़ने लगे और जर्मन राजनेता विश्व-साम्राज्य के सपने देखने लगे। तुर्की के सम्राट् से मैत्री करके उन्होंने बर्लिन से बगदाद तक रेल-पथ बनाने की योजना की। इससे अंग्रेज़ अत्यन्त आशंकित हो उठे और फ्रांस और रूस से अपना पुराना वैर भूल कर मैत्री की सन्धियाँ कर लीं (१६०५-०७)। इनके अनुसार, ब्रितानिया और फ्रांस ने स्याम को तथा ब्रितानिया और रूस ने ईरान को अपने प्रभाव-क्षेत्रों में बाँट लिया। उत्तरी ईरान रूस का और दक्खिनी अंग्रेज़ों का प्रभाव-क्षेत्र माना गया। इस बँटवारे से "ईरान का गला घोंटना" शुरू हुआ। चीन साम्राज्य में से तिब्बत अंग्रेज़ों का और मंगोलिया रूसियों का प्रभावक्षेत्र माना गया।

§६. मौर्ले मिंटो सुधार और दमन—बंग-भंग के एक महीना बाद कर्जन ने भारत से विदा ली; उसका उत्तराधिकारी मिंटो आया। जौन मौर्ले तब भारत-सचिव था। मौर्ले और मिंटो ने 'दाहिने हाथ से दमन और बाएँ हाथ से शमन' का रास्ता पकड़ा।

मिंटो ने अपने एक भाषण में सूचना दी कि भारतीयों को कुछ स्व-शासनाधिकार दिये जायँगे, और साथ ही मुस्लिम रईसों को इशारा किया कि वे विशेष अधिकार माँगें। इशारा पाते ही आगाखाँ आदि कुछ जने उसके पास यह प्रार्थना ले कर पहुँचे (१-१०-१६०६) कि यदि देश के निर्वाचित प्रतिनिधियों को कुछ अधिकार देने हों तो मुसलमानों को अलग प्रतिनिधि चुनने

दिया जाय। मिंटो ने इससे सहमति प्रकट की और उसके इशारे पर मुस्लिम लीग स्थापित की गई। जिसका पहला ध्येय था "भारतीय मुसलमानों में ब्रितानवी सरकार के प्रति राजभक्ति के भाव बढ़ाना"। सन् १६०७ में पंजाब में अजीतसिंह और लाजपतराय ने भूमि हस्तान्तरण कानून के बारे में किसानों को जगाने का यत्न किया। उन्हें कैद कर ६ मास बरमा में रक्खा गया। राष्ट्रीय आन्दोलन के उग्र होने पर नरम दल उसका साथ न दे सका। दिसम्बर १६०७ में सूरत में कांग्रेस हुई; वहाँ दोनों दलों में मारपीट हो गई। गोपाल कृष्ण गोखले के नेतृत्व में नरम दल का कांग्रेस पर कब्जा रहा; गरम दल अलग हो गया।

तमिळनाड में चिदम्बरम् पिल्लै ने एक स्वदेशी जहाज कम्पनी चलाई थी, जिसके जहाज तमिळ तट और सिंहल के बीच चलने लगे थे। १६०८ में सरकार ने चिदम्बरम् को जेल भेज कर कम्पनी यह कह कर तोड़ दी कि यह राजनीतिक उद्देश से चलाई गई है। कलकत्ते के एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने कई युवकों को बेतों की सजा दी। खुदीराम बसु नामक युवक ने मुजफ्फरपुर में बम द्वारा उस मजिस्ट्रेट को दण्ड देने का यत्न किया (२०-४-१६०८)। इस मामले में बारीन्द्र और उनके कई साथी पकड़े गये। टिळक को खुदीराम के पक्ष में लिखने पर छः बरस की कैद मिली। तभी प्रेस ज़ब्त करने का कानून बना, बंगाल के अश्विनीकुमार दत्त आदि नौ नेता निर्वासित किये गये, और ढाका समिति तथा अन्य कई समितियाँ गैरकानूनी करार दी गईं। तब से वे गुप्त काम करने लगीं।

बाल गंगाधर टिळक
(१८५६–१६२०)

सन् १६०६ में अंग्रेजी पार्लिमेंट ने भारतीय शासन का नया कानून बनाया। उसके अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान-समितियों की सदस्य-संख्या बढ़ाई गई, पर मुसलमानों के प्रतिनिधि अलग चुनने की तजवीज की गई। विधान-सभाएँ मुख्यतः राष्ट्र के आर्थिक और राजनीतिक जीवन को नियमित करती हैं। इस

के यत्न से सान फ्रांसिस्को में इन्हीं लोगों में एक 'गदर दल' स्थापित हुआ।

कैनेडा की सरकार ने ऐसा कानून बनाया जिससे भारतीय मजदूरों का वहाँ जाना प्रायः असम्भव हो जाय। अंग्रेज़ी साम्राज्य में भारतीयों की कैसी दुर्गति है, यह दिखलाने को पंजाब के गुरुदत्तसिंह ने जापानी जहाज कोमागाता मारू किराये पर लिया, और हाङकाङ से पंजाबी श्रमियों को उसमें ले कर वंकोवर पहुँचे (२३-५-१९१४)। दो मास तक वह जहाज वंकोवर बन्दर पर खड़ा रहा, पर कैनेडा सरकार ने भारतीय श्रमियों को अपनी जमीन पर पैर नहीं रखने दिया और अन्त में एक जंगी जहाज गोलाबारी के लिए भेज कर लौटने को बाधित किया।

§१०. चीन की क्रान्ति, तिब्बत में अंग्रेज़ी दस्तन्दाजी—सन् १९१२ में चीन में क्रान्ति हुई और साम्राज्य के स्थान में गणराज्य स्थापित हुआ। इससे पहले कि नया प्रजातन्त्र समूचे चीन-साम्राज्य में पैर जमा सके, रूसियों और अंग्रेज़ों ने उसके टुकड़े काट लिये। मंगोलिया का रूस की तरफ का बड़ा भाग चीन से अलग हो कर "बाहरी मंगोलिया" बन गया। भारत से अंग्रेज़ी सरकार ने तिब्बत और असम की सीमा की अबोर जाति के प्रदेश पर चढ़ाई कर उसे हथिया लिया, तथा १९१३-१४ में तिब्बत के मुख्य भाग को अपना रक्षित बना लिया। तब से तिब्बत में भारत की डाक-तार चलने लगी।

चीन की जागृति का एक और परिणाम यह हुआ कि १९१३ से भारत से चीन को अफीम जाना बिलकुल बन्द हो गया।

§११. पहला विश्व-युद्ध—सन् १९१४ में रूस, फ्रांस और ब्रितानिया का, जो अपने को "मित्र राष्ट्र" कहते थे, जर्मनी से युद्ध ठन गया। जर्मन सेना फ्रांसीसी सेना को ढकेलती हुई पैरिस के ६० मील तक जा पहुँची, किन्तु वहाँ फ्रांसीसी डट गये। अफरीका के जर्मन उपनिवेशों पर अंग्रेज़ों ने भारत से चढ़ाइयाँ कीं। युद्ध शुरू होते ही अंग्रेज़ी पार्लिमेंट ने निश्चय किया कि भारतीय सेना से इस युद्ध में पूरा काम लिया जाय और उसका पूरा खर्च भी भारत ही उठाय। इसके अनुसार युद्ध के शुरू के महीनों में दो लाख से ऊपर भारतीय सेना बाहर भेजी गई।

पैरिस की ओर विफल हो कर जर्मन अक्तूबर-नवम्बर (१९१४) में इंग्लिश चैनल की ओर बढ़े। तट से २० मील तक वे पहुँच गये, पर तट को न पा सके। वहाँ उनकी बाढ़ जिस सेना ने रोकी, उसकी हरावल सिक्खों की थी। जैसा कि बाद में एक जर्मन विद्वान् ने लिखा, "फ्रांस की खन्दकों की दीवारें जिन बालू के बोरों से बनीं थीं वे बंगाल की चटकलों (जूट-कारखानों) में तैयार हुए थे, उन बोरों के पीछे से जो सैनिक गोलियाँ दागते थे, वे भारतीय थे।"

अक्तूबर में तुर्की जर्मनी के पक्ष में मिल गया। भारतीय मुसलमान इससे भड़क न उठें ऐसा खटका हुआ, पर अंग्रेज़ों ने निज़ाम और आगाखाँ से घोषणाएँ निकलवा कर तथा उग्रपन्थी मुसलमानों को नज़रबन्द कर उन्हें शीघ्र शान्त कर दिया, और पीछे तो भारतीय मुस्लिम सेना को खास तुर्कों के साथ भी भिड़ाते रहे। अरब, इराक, फिलिस्तीन और सीरिया तब तक तुर्क साम्राज्य में थे, और मिस्र पर भी तुर्की का नाम का आधिपत्य था। भारत से तुरन्त एक सेना इराक (मेसोपोतामिया) को और एक मिस्र को भेजी गई। पहली सेना ने बसरा ले लिया। दक्खिनी ईरान में भारतीय सेना बढ़ाई गई, और कोइटा नुश्की रेल-पथ को ठीक ईरान की सीमा पर दुज़्दाप (ज़ाहीदन) तक पहुँचाने की योजना की गई।

फरवरी १९१५ में तुर्कों ने सुएज़ पर चढ़ाई की। वह विफल हुई, उलटा अप्रैल में मित्र सेना दरे-दानियाल में घुसी। गालीपोली पर तुर्कों ने उसे रोके रक्खा।

बसरा वाली भारतीय सेना बगदाद के २५ मील तक जा पहुँची। वहाँ से तुर्कों ने उसे पीछे ढकेला और कुत-उल-अमरा पर आ कर चारों तरफ से घेर लिया। जनवरी १९१६ में गालीपोली से अंग्रेज़ी सेना को हटना पड़ा और अप्रैल में कुत में घिरी सेना ने हथियार रख दिये। पर १९१७ में अंग्रेज़ी भारतीय सेना ने कुत को वापिस ले कर बगदाद भी जीत लिया। यों सारा इराक तुर्क साम्राज्य से छिन गया।

तभी रूस की प्रजा और सेना के भीतर क्रान्ति का उबाल आ रहा था। १५ मार्च १९१७ को ज़ार (रूस-सम्राट्) ने गद्दी छोड़ दी और रूसी नरम

दल के नेता करेंस्की ने गणराज्य स्थापित किया। लेकिन रूसी किसानों-मज़दूरों और सैनिकों का गरम दल (बोल्शेविकी) इससे सन्तुष्ट न हुआ, और लेनिन के नेतृत्व में ७-११-१९१७ की क्रान्ति में उन्होंने सदियों की गुलामी से मुक्ति पाई। १५-१२-१९१७ को उन्होंने जर्मनों से सन्धि कर ली।

अमरीकियों ने मित्र राष्ट्रों को युद्ध-खर्च के लिए बड़ा कर्ज़ दिया था। उनके हारने से वह रकम डूब जाती; इसलिए अप्रैल १९१७ में अमरीका भी उनकी तरफ से युद्ध में शामिल हुआ।

लौरेन्स नामक एक अंग्रेज़ कर्नल अरब फिरकों के अन्दर तुर्कों के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा था। उसने अरबों को तुर्कों से भिड़ा दिया, और अरबों के संरक्षक बन कर अंग्रेज़ों ने नवम्बर-दिसम्बर १९१७ में फिलिस्तीन भी ले लिया।

रूसी साम्राज्य के टूटने पर मार्च १९१८ में जर्मन काले सागर और काकेशस पर आ पहुँचे, और तुर्क ईरान में घुस कर भारत की ओर बढ़ने लगे। इधर दुज़्दाप तक रेल-पथ तैयार हो चुका था। इस दशा में अंग्रेज़ भारतीय सेना को ले कर ईरान को रौंदते हुए जर्मनों-तुर्कों के मुकाबले को बढ़े। कुछ समय के लिए उन्होंने बाकू भी ले लिया।

सन् १९१८ में लाखों की संख्या में ताज़ी अमरीकी सेना के फ्रांस में आने से जर्मन पक्ष दबने लगा। तभी फ्रांस ने तुर्की का सीरिया प्रान्त जीत लिया। ३० अक्टूबर १९१८ को तुर्कों ने हथियार रख दिये। तब ११ नवम्बर को जर्मनों ने भी हथियार रक्खे।

भारत से कुल १२ लाख आदमी, जिनमें ८ लाख योद्धा थे, इस युद्ध के विभिन्न मोर्चों पर गये। किन्तु इनका काम सिर्फ़ सैनिक मजदूरों का था। अफसरों की माँग आने पर भारत में कई सामरिक विद्यालय खोले गये और उनमें कलकत्ता-मुम्बई के गोरे व्यापारियों के लड़कों को सिखा कर २३ हजार अफसर तैयार किये गये। भारत से युद्ध में भेजे गये ढोर-डंगर और सामान की कोई हद न थी।

इस युद्ध के समय भारत का सामरिक खर्च २ से ३ करोड़ पौंड वार्षिक होता रहा। उस समय भारत सरकार की कुल मालगुजारी वार्षिक १० करोड़

पौंड से कम थी। दिसम्बर १६१५ में भारत में पहला युद्ध-ऋण उठाया गया। उसके बाद तो कई युद्ध-ऋण लिये गये।

प्रत्येक सरकार जो कागजी मुद्रा या दूसरी सांकेतिक मुद्रा चलाती है, उसकी खातिर सोने का एक रक्षित भंडार रखती है। भारत में टकसालें बन्द होने पर भारत का एक 'स्वर्ण मान भंडार' तथा एक 'कागज मुद्रा भंडार' लन्दन में रखा गया था। युद्ध के समय इन भंडारों में से १३ करोड़ पौंड ब्रितानवी सरकार को उधार दिये गये। यदि ब्रितानिया हारता तो भारत में चलने वाले कागजी नोट निरे कागज रह जाते।

मार्च १६१७ में भारत-सरकार ने ब्रितानिया को युद्ध की खातिर १० करोड़ पौंड "दान" दे दिया। सितम्बर १६१८ ई० में ४½ करोड़ पौंड का और "दान" देना तय हुआ, पर युद्ध समाप्त हो जाने से वह समूची रकम दी न गई। ये रकमें भारत में ही ऋणों द्वारा उठाई गईं। ऋण उठाने में काफी जोर-जबरदस्ती की गई। उन ऋणों से धनियों ने तो सूद पैदा किया, और गरीब जनता पर ३० बरस के लिए १० करोड़ वार्षिक सूद का बोझ चढ़ गया।

खर्चे की दिक्कत के कारण सन् १६१७ में सरकार को विलायती कपड़े पर भी ७½ फी सदी चुंगी लगानी पड़ी। वैसे भी युद्ध के कारण भारत के व्यवसायों को कुछ बढ़ावा मिला। यों तो भारत ने सब तरह की रसद-सामग्री ब्रितानिया की मदद को भेजी, पर यहाँ लोहे की कीलें, पेंच, कमानियाँ, तार के रस्से जैसी साधारण वस्तुएँ भी तैयार न हो सकती थीं। अंग्रेज शासकों ने देखा कि भारत में व्यवसायों को न पनपने देने की उनकी पुरानी नीति युद्ध जैसे समय में घातक हो सकती है, और तब से भारतीय पूँजीपतियों को अपने साथ लेने की नीति पकड़ी।

§१२. पहले विश्व-युद्ध के समय की क्रांति-चेष्टाएँ—युद्ध छिड़ते ही अमरीका के भारतीय गदर दल ने अपने सदस्यों को भारत भेजना प्रारम्भ किया। सब से पहले आने वालों में एक युवक कर्त्तारसिंह था, जिसने अमरीका में वायुयान-इंजिनियरिंग सीखा था। सरकार ने इन आगन्तुकों की नजरबन्दी के लिए भारत-प्रवेश-अध्यादेश ('इंग्रेस इंटु इंडिया ऑर्डिनांस') निकाला।

गारों पर पहला हमला कर देते । इसलिए उन्होंने कोशिशें जारी रक्खीं । कर्त्तारसिंह और पिंगले छावनियों के बीच पकड़े गये । इसके बाद इंग्लिस्तान से बहुत सी नई गोरी फौज भारत मँगा ली गई । आगे से भारतीय सेना बाहर भेजी जाती और गोरी भारत में रक्खी जाती ।

अमरीका से गदर-दल के नेता रामचन्द्र ने ३० हजार राइफलों और जर्मन अफसरों के साथ एक जर्मन जहाज को जावा भेजने का प्रबन्ध किया था । वह जहाज १ जुलाई १६१५ को सुन्दरबन में पहुँचता । बंगाली क्रांतिकारियों की योजना थी कि बालेश्वर और चक्रधरपुर पर बंगाल-नागपुर रेलवे के तथा देवघर के पास अजय नदी पर ईस्ट इंडियन रेलवे के पुलों को उड़ा कर बरसात में वे बंगाल पर कब्जा कर लेंगे और जर्मन अफसर उन्हें सामरिक शिक्षा देने लगेंगे । पर वे शस्त्र अमरीकी सरकार ने पकड़ लिये । पीछे अंग्रेज़ों को इस भेद का पता मिलने पर कलकत्ता दल के नेता यतीन मुखर्जी और उनके साथी बालेश्वर के पास एक जंगल में खन्दकों में लड़ते हुए मारे गये (६-६-१६१५)। यतीन के साथी नरेन्द्र भट्टाचार्य तथा रासबिहारी वसु भारत से निकल गये । इन्होंने शांघाई और जावा के जर्मन दूतों और चीनी क्रांतिकारियों के सहयोग से फिर शस्त्र भेजने की चेष्टाएँ कीं, पर वे भी विफल हुईं । दिसम्बर १६१५ के बाद फिर कोई कोशिश नहीं हुई । सन् १६१५ से १७ तक इन कोशिशों के फलस्वरूप अनेक मुकदमे चले । पंजाब और बंगाल में सैकड़ों आदमियों को फाँसी और कालापानी मिला और कई हजार नज़रबन्द किये गये । इसके बाद पूरबी बंगाल के सिवाय भारत के सब प्रान्तों में मुर्दनी छा गई ।

सन् १६१५ में एक जर्मन-तुर्की-हिन्दी प्रतिनिधि-मंडल काबुल भी पहुँचा । महेन्द्रप्रताप और बरकतुल्ला इसमें शामिल थे । इन्होंने आरजी आजाद हिन्द सरकार स्थापित की और अफगानों को भी उठाने की कोशिश की ।

§ १३. किसान जागरण, कांग्रेस-लीग समझौता—सन् १६११ में बंगाल के कुछ ज़िलों में पहलेपहल "रैयत समितियाँ" खड़ी हुई थीं ।

सन् १६१३ से मेवाड़ के बीजोल्याँ प्रदेश के किसानों ने लाग बेगार आदि के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा था । पीछे युद्ध-ऋण वसूलने की कोशिश होने पर उनका

संघर्ष गहरा हो गया। राजस्थान के कुछ क्रान्तिकारियों को मेवाड़ अजमेर की सीमा पर टाडगढ़ के गढ़ में कैद कर रक्खा गया था, जहाँ से वे निकल भागे थे। उन भागे हुओं में से एक ने विजयसिंह पथिक नाम धर के १९१६ से बीजोल्यां के किसान संघर्ष का नेतृत्व किया। क्रान्तिकारियों की कोशिशें बेकार हुईं, पर उनके बलिदानों से देश में एक कराह उठी जिससे दूसरे लोग भी कुछ करने को बेचैन होने लगे। अप्रैल १९१६ में टिळक ने पूने में 'होमरूल-लीग' की स्थापना की। दिसम्बर १९१६ में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में नरम और गरम दलों में मेल हो गया, और मुसलिम लीग ने भी उनके साथ मिल कर शासन-सुधारों की नई माँग तैयार की। इस योजना में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को मान लिया गया।

गान्धी १९१५ के शुरू में भारत चले आये थे। १९१७ में उन्हें बिहार के लोग चम्पारन के निलहे गोरों के जुल्मों की जाँच करने ले गये। वहाँ उन्हें ज़िले में न घुसने का हुक्म मिला, पर उन्होंने सत्याग्रह किया, जाँच हुई, और निलहों ने इंग्लिस्तान का रास्ता लिया। प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा की जाँच के लिए गान्धी ने अपने मित्रों को फिजी भेजा। उसके बाद उन्होंने घोषणा की कि यदि यह प्रथा न उठायी जायगी तो वे सत्याग्रह शुरू करेंगे। तब हार्डिंज के उत्तराधिकारी चेम्सफोर्ड ने उस प्रथा को उठा दिया (१९२०)। सन् १९१८ में खेड़ा और अहमदाबाद के किसानों और मजदूरों के कष्टों को दूर करने के लिए भी गान्धी ने सत्याग्रह का प्रयोग किया। उसी वर्ष वे इन्दौर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हुए। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होगी, यह विचार दयानन्द के समय --१८७३-७४-- से चल रहा था, किन्तु द्राविडभाषी प्रान्तों में भी हिन्दी का प्रचार कभी हो सकेगा, यह सन्दिग्ध था। गान्धी ने इन्दौर में "दक्खिन भारत हिन्दी प्रचार" की नींव डाल दी।

§१४. मौंटेगू-चेम्सफोर्ड सुधार और जलियाँवाला कत्ले-आम—१९१५ की क्रान्ति-चेष्टा दबाने के साथ ही भारत के शासकों ने समझ लिया कि और शासन-सुधार देने होंगे, और उन सुधारों की रूपरेखा मार्च १९१६ में बना ली। २० अगस्त १९१७ को भारत सचिव मौंटेगू ने घोषणा

की कि भारत में अंग्रेज़ी साम्राज्य के अन्तर्गत उत्तरदायी शासन धीरे-धीरे स्थापित करना अंग्रेज़ी सरकार का लक्ष्य है। उस जाड़े में मौंटेगू भारत आया और नये वाइसराय चेम्सफोर्ड के साथ देश में घूमा।

तभी राउलट नामक जज की अध्यक्षता में एक कमिटी क्रान्तिकारियों को दबाने के उपाय सुझाने को बिठाई गई। सन् १९१८ में राउलट कमिटी ने जो रिपोर्ट दी उसका सार यह था कि भारत-रक्षा कानून द्वारा न्यायालय के विचार किये बिना नज़रबन्द करने के जो विशेष अधिकार युद्ध-काल में सरकार ने ले लिये थे, वे स्थायी कर दिये जायँ। इसके अनुसार केन्द्रीय विधान-समिति में दो कानूनों के मसविदे पेश किये गये। गांधी ने उन कानूनों के शान्तिमय उल्लंघन की घोषणा की। ६-४-१९१९ को समूचे देश में हड़तालें और प्रदर्शन हुए। गान्धी मुम्बई से पंजाब जाते हुए गिरफ्तार कर मुम्बई वापिस भेजे गये। इसपर अहमदाबाद, वीरमगाम और नडियाद में दंगे हो गये। अमृतसर में आन्दोलन के नेता गिरफ्तार हुए तो जनता ने कुछ सरकारी इमारतें जला दीं और ५ अंग्रेज़ों को मार डाला। कसूर (जि० लाहौर) और गुजराँवाले में भी वैसी घटनाएँ हुईं। बात यह थी कि युद्ध के समय पंजाब में भरती कराने और युद्ध-ऋण उठाने में जो ज़्यादतियाँ की गई थीं, उनसे जनता चिढ़ी हुई थी, और मौका पाते ही उसका गुस्सा उबल पड़ा।

पंजाब में सौर तिथि का चलन है, और नया वर्ष वैशाख-संक्रान्ति (१३ अप्रैल) को शुरू होता है। उस उत्सव के दिन अमृतसर की घनी बस्ती के बीच जलियाँवाला बाग नामक तंग मैदान में सन्ध्या को एक सभा हो रही थी। जनरल डायर ने सौ देसी सिपाहियों और ५० गोरों के साथ उस बाग के एक-मात्र दरवाजे को रोक लिया और निहत्थी भीड़ पर गोलियों की बौछार शुरू की जिससे ४०० आदमी मरे और डेढ़ हजार घायल हुए। घायलों को वहीं कराहता छोड़ कर वह चला गया।

१५ अप्रैल से पंजाब में फौजी राज घोषित किया गया, जो ११ जून तक जारी रहा। इस बीच जनता से सब वाहन छीन लिये गये और दो से अधिक आदमियों के इकट्ठा चलने की मनाही कर दी गई। अमृतसर की एक गली में

लोगों को पेट के बल रेंगाया गया। लगभग हजार आदमियों पर फौजी अदालतों में मुकदमे चले, फांसी और कालापानी की सजाएँ खुले हाथों दी गईं। खुली टिकटिकियाँ लगा कर लोगों को उनपर नंगा बाँध कर बेंत लगाये गये। गाँवों पर हवाई जहाजों से बम बरसाये गये। रेलगाड़ियाँ जनता के लिए शुरू में ही रोक दी गई थीं। बाहर से कोई आदमी पंजाब न जा सकता था, और न पंजाब की खबर बाहर जा पाती थी।

पंजाब की गाड़ियाँ खुलते ही कांग्रेस की ओर से एक कमिटी जाँच के लिए वहाँ गई। यह जाँच अभी जारी थी कि मौंटेगू-चेम्सफोर्ड योजना कानून बन गई। उसका सार यह था कि केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान-सभाओं में निर्वाचित बहुमत होगा; निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर होगा। केन्द्रीय सभा की सम्मति को मानना या न मानना गवर्नर-जनरल की इच्छा पर निर्भर होगा। प्रान्तीय सभाओं का शिक्षा, आबकारी आदि विषयों पर नियन्त्रण होगा, जो 'हस्तान्तरित' कहलायेंगे; उन्हें चलाने वाले मन्त्री उन सभाओं के चुने हुए होंगे। बाकी विषय, जैसे अमनचैन की रक्षा आदि, गवर्नरों के हाथ में 'रक्षित' रहेंगे।

इसके बाद युद्ध के समय के सब नजरबन्द तथा अधिकांश क्रान्तिकारी कैदी भी छोड़ दिये गये।

§ १५. अफगानिस्तान का स्वतन्त्र होना—तरुण अफगानों की स्वतन्त्रता-भावना अब फिर जाग उठी। अंग्रेजों का मित्र अमीर हबीबुल्ला मारा गया (२०-२-१९१९), उसका बेटा अमानुल्ला गद्दी पर बैठा।

भारत में अशान्ति देख अमानुल्ला ने सोचा यह स्वाधीन होने का अच्छा मौका है, और खैबर पर चढ़ाई कर दी (३-५-१९१९)। वजीरिस्तान के पठानों ने भी विद्रोह किया। अंग्रेजों ने जलालाबाद और काबुल पर हवाई जहाजों से बम गिराये तथा खैबर और चमन की तरफ से अफगान प्रदेश में घुसना शुरू किया। तब २८ मई १९१९ को अमानुल्ला ने सन्धि की प्रार्थना की। सन्धि की बातचीत अढ़ाई बरस चलती रही।

सन् १९१८ में जर्मनों से छुट्टी पाते ही फ्रांसीसियों और अंग्रेजों ने रूसी

गद्दारों, पोलैंड और इस्तोनिया द्वारा रूस पर चढ़ाइयाँ शुरू करवाईं। इंग्लिस्तान ने इन चढ़ाइयों पर १० करोड़ पौंड खर्च किया। १९२० के अन्त तक रूसी क्रान्तिकारियों ने इन सब शत्रुओं को मार भगाया। उन्होंने तुर्की, ईरान, चीन और अफगानिस्तान के बारे में ज़ारशाही रूस के इंग्लिस्तान से जो गुप्त और प्रकट समझौते थे, उन्हें प्रकाशित और रद्द कर दिया। अंग्रेज़ों ने देखा, अब वे अफगानिस्तान को दबाये रखना चाहें तो वहाँ क्रान्तिमार्गी रूस का प्रभाव और बढ़ेगा, इसलिए उसे विदेशी सम्बन्धों में पूरी स्वतन्त्रता दे दी (२२-११-१९२१)।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सन् १९०४-०५ में जापान के रूस से जीतने का इतिहास में क्या महत्त्व है? उस जीत का प्रभाव भारत पर एशिया के अन्य देशों पर तथा विश्व पर क्या हुआ?

२. सन् १९०७ में भारतीय राजनीति में जो गरम और नरम पक्ष थे, उनकी दृष्टि में क्या क्या अन्तर था? दोनों पक्षों का विकास कैसे हुआ था? १९०७ में उनके नेता कौन थे?

३. सन् १९०७ का आंग्ल-रूसी समझौता क्या था? किन दशाओं में वह हुआ?

४. साम्प्रदायिक निर्वाचन का अर्थ क्या है? उसमें क्या बुराई है? भारत में वह पद्धति कब कैसे चली?

५. ईरान के मिट्टी-तेल का एकाधिकार अंग्रेज़ों के हाथ पहलेपहल कब कैसे गया?

६. तिब्बत में आंग्ल प्रभाव कब कैसे स्थापित हुआ था?

७. पहले विश्व-युद्ध में "फ्रांस की खंदकों में जो बालू के बोरे थे वे भारतीय जूट के थे, उनके पीछे से जो सैनिक गोलियाँ दागते थे वे भारतीय थे।" क्यों? भारतीय सैनिक जर्मनों से लड़ने क्यों और किन दशाओं में गये थे? पहले विश्व-युद्ध में भारतीय सैनिकों ने अंग्रेज़ों की और क्या क्या सेवा की?

८. सन् १९१७ में विश्व इतिहास में कौन सी सबसे बड़ी घटना घटी?

९. पहले विश्वयुद्ध में भारतीय क्रान्तिकारियों ने भारत को स्वतन्त्र कराने की जो चेष्टाएँ की उनका विवरण लिखिए।

१०. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए (१) अनुशीलन समिति (२) सखाराम गणेश देउस्कर (३) सुब्रह्मण्य भारती (४) चिदम्बरम् पिल्लै (५) अवनीन्द्रनाथ ठाकुर (६) खुदीराम बसु (७) अजीतसिंह (८) कोमागातामारू (९) अरब वाला कर्नल लारेंस

(१०) यतीन्द्र मुकर्जी (११) चम्पारन में गान्धी (१२) राउलट कानून (१३) दक्खिन भारत में हिन्दी प्रचार (१४) जलियाँवाला बाग (१५) अफगानिस्तान का स्वतन्त्र होना।

११. मौंटेगू-चेम्सफोर्ड भारत-शासन-विधान की रूपरेखा क्या थी? किन बातों ने अंग्रेज़ी सरकार को वे शासन-सुधार देने का इरादा करने को प्रभावित किया था?

अध्याय ९

गान्धी-युग

(१९२०—१९४१ ई०)

§१. खिलाफत और असहयोग—विश्व युद्ध में अंग्रेज़ों और उनके मित्रों ने तुर्की साम्राज्य को तोड़ कर अरब को उससे अलग कर दिया और उसके इराक, फिलिस्तीन, शीरिया प्रान्तों को पर दबाया ही था, अब वे ठेठ तुर्की को भी दबा रहे थे। भारतीय मुसलमान १९वीं सदी से तुर्की के सुलतान को इस्लाम का खलीफा मानते थे। खलीफा के साम्राज्य को टूटता देख वे क्षुब्ध होने लगे। गान्धी ने उन्हें सरकार से असहयोग करने की सलाह दी। एक भारतीय खिलाफत कमिटी इस समय बन गई, जिसने मई १९२० में अंग्रेज़ी सरकार से असहयोग की घोषणा की।

दिसम्बर १९१९ में अमृतसर में कांग्रेस की बैठक हुई थी जिसने कांग्रेस को जनता की संस्था बनाने के लिए उसका नया संविधान बनाने का काम गान्धी को सौंपा था। गान्धी ने कांग्रेस को खिलाफत आन्दोलन का साथ देने और सरकार से असहयोग करने की सलाह दी। तिलक को यह पसन्द न था कि खिलाफत का साम्प्रदायिक आन्दोलन भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जोड़ा जाय। पर १-८-१९२० को तिलक चल बसे। सितम्बर में कलकत्ते में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में अंग्रेज़ी विधान-सभाओं, स्कूल-कालेजों और अदालतों का बहिष्कार तय हुआ। विदेशी कपड़े का बहिष्कार होने पर स्वदेशी मिलों का कपड़ा काफ़ी न होगा, इसलिए हाथ की कताई-बुनाई को बढ़ावा देने का निश्चय हुआ। दिसम्बर में गान्धी का बनाया नया संविधान भी, जो मसलन भाषानुसार प्रान्तों

के आधार पर बनाया गया था, स्वीकार किया गया। कांग्रेस का ध्येय तब से "अंग्रेज़ी साम्राज्य के भीतर स्वशासन पाने" के बजाय "शान्तिमय और उचित उपायों द्वारा स्वराज पाना" हो गया। नये संविधान से कांग्रेस जनता की देश-व्यापी संस्था बनने लगी। कांग्रेस की पुकार पर सरकारी स्कूलों-कालेजों के विद्यार्थी उन्हें छोड़ने लगे और राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना हुई। अदालतें खाली तो न हुईं, पर उनका रोब जाता रहा। विधान-सभाओं में कांग्रेसी नहीं गये। असहयोग का अन्तिम रूप कर-बन्दी होगा, यह सब के मन में था। उसकी तैयारी के लिए ३० जून तक कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाना तथा स्वराज्य कोश में एक करोड़ रुपया जमा करना तय हुआ।

जुलाई १९२१ में कराची में खिलाफत सम्मेलन में घोषणा की गई कि मुसलमानों के लिए अंग्रेज़ी फौज में रहना हराम है। कांग्रेस ने विदेशी कपड़े का पूरा बहिष्कार करना तय किया। उस प्रसंग में स्वयंसेवक घर-घर से विदेशी कपड़ा इकट्ठा कर उसकी होली करते। सरकार ने जोर का दमन जारी किया। कराची घोषणा की खातिर मुस्लिम नेता गिरफ्तार किये गये, तब कांग्रेस कार्य-समिति के आदेश से देश भर में सभाएँ कर यह बात दोहराई गई कि किसी भी भारतीय का अंग्रेज़ी सरकार की नौकरी करना राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रहित के विरुद्ध है।

नवम्बर में प्रान्तीय कांग्रेस समितियों को सामूहिक सत्याग्रह करने का अधिकार दिया गया। चुनी हुई तहसीलों या जिलों में करबन्दी करना उस सत्या-ग्रह का मुख्य अंश होता। इसके बाद दमन और बढ़ा। दिसम्बर तक प्रायः ३० हजार सत्याग्रही जेलों में बन्द हो चुके थे।

सन् १९२१ के अन्त में अहमदाबाद में कांग्रेस हुई, जिसमें अगले संघर्ष के लिए महात्मा गान्धी को अधिनायक नियत किया गया। वे सूरत जिले के बारडोली तालुके में कर-बन्दी की तैयारी कर रहे थे। १ फरवरी १९२२ को उन्होंने वाइसराय रीडिंग को, जिसने अप्रैल १९२१ में चेम्सफोर्ड से कार्यभार लिया था, लिखा, "मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप देश की अहिंसात्मक हलचल में...सरकार की तटस्थता की घोषणा कर दें।...यदि आप सात दिन के भीतर ऐसी घोषणा कर देंगे तो मैं तब तक के लिए सत्याग्रह मुलतवी कर

दूँगा, जब तक सारे कैदी छूट कर नये सिरे से विचार न कर लें।"

सरकार भला अपने विरुद्ध की जाती तैयारी में तटस्थ कैसे हो जाती? और वह भी उस दशा में जब उसके लिए ज्यादतियाँ करके—खास कर स्त्रियों पर बलात्कार करके—जनता को भड़का देना बहुत ही सुगम था? वही हुआ। वह हफ्ता बीतते-बीतते गोरखपुर जिले के चौरीचौरा स्थान में उसी प्रकार भड़काई हुई जनता ने कुछ पुलिस को थाने में खदेड़ कर उस थाने में आग लगा दी। गान्धी ने इसपर सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर दिया। १३ मार्च को गान्धी गिरफ्तार किये गये। उन्हें ६ साल की कैद दी गई।

§२. साम्प्रदायिक विद्वेष का उभड़ना—खिलाफत आन्दोलन द्वारा मुसलमानों की साम्प्रदायिक भावनाएँ अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उभाड़ी गई थीं; अंग्रेजों ने अब उन्हीं को फेर कर राष्ट्रीय आन्दोलन से टकरा दिया। इस काम में पंजाब का नया मुस्लिम जमींदार वर्ग उनका विशेष सहायक हुआ। पंजाब की नई विधान-सभा में उस वर्ग की प्रधानता थी; उसका नेता फजले-हुसेन नये विधान के अनुसार मिनिस्टर बना था। उसने सरकारी नौकरियों के भी सम्प्रदाय-वार बँटवारे की नीति चलाई। सितम्बर १९२२ में मुलतान में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। खिलाफत और कांग्रेस के नेता उसे शान्त न कर सके। उसके बाद फिसाद बढ़ता ही गया, और सभी प्रान्तों में दंगे होते रहे।

इसी बीच खिलाफत का विचित्र ढंग से अन्त हो गया। तुर्की के सुलतान ने ठेठ तुर्की का स्मिर्ना प्रान्त यूनान को देना मान लिया था। अंग्रेजों-फ्रांसीसियों का जंगी बेड़ा तुर्की को घेरे पड़ा था, यूनान तो उनकी कठपुतली था। यूनानियों ने स्मिर्ना लेना चाहा तो तरुण तुर्कों ने कमाल अतातुर्क के नेतृत्व में उनका सामना किया, अंकरा में राष्ट्रीय विधान-सभा बुला कर तुर्क गणराज्य की नींव डाल दी, और रूस से गोला-बारूद की मदद पा कर यूनानियों को मार भगाया (अक्तूबर १९२२)। *तुर्की का सुलतान तब अंग्रेजों की शरण में भाग गया।* राष्ट्रीय विधान-सभा ने उसके भतीजे को खलीफा बनाया, पर उसे कोई राजनीतिक अधिकार नहीं दिया। मित्र राष्ट्रों ने तुर्कों से सन्धि कर अपनी सेनाएँ हटा लीं

गुरद्वारों के महन्तों से घोषणा करवा दी थी कि वे धर्मद्रोही हैं। १९२० में जेलों से छूटने पर उन्हीं ने गुरद्वारों के सुधार के लिए संघर्ष खड़ा किया। यह सुधार चाहने वाले सिक्ख अपने को अकाली कहने लगे। १९२१ से २४ तक एक न एक प्रश्न को ले कर वे अहिंसात्मक लड़ाई चलाते रहे। उनके जत्थे लाठियों की मार और गोलियों की बौछार के सामने भी डटे रहते। इस संघर्ष के संचालन के लिए उन्होंने एक "शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक समिति" बना ली थी, जो गैरकानूनी करार दी गई, तो भी वह गुप्त रूप से संघर्ष चलाती रही। १९२५ में सरकार ने गुरद्वारा कानून बना कर गुरद्वारों को सिक्खों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ सौंप दिया, तब यह संघर्ष शान्त हुआ। अकाली सत्याग्रह के नमूने पर देश में अनेक छोटे-मोटे सत्याग्रह हुए। १९२८ में बारडोली के किसानों ने वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में लगान की बढ़ती के विरुद्ध सत्याग्रह किया जो सफल हुआ।

§९. **क्रांति-दलों का फिर उठना, युवक और मजदूर जागरण**—बीजोल्याँ का किसान आन्दोलन [११,८§१३] इस बीच बराबर चलता रहा था। उससे सारे राजस्थान में जागृति हुई। विजयसिंह पथिक और उनके साथियों ने एक 'राजस्थान-सेवा-संघ' खड़ा कर उसके द्वारा जगह जगह किसानों को संघटित किया। कई राजाओं ठिकानेदारों (जागीरदारों) को उनके कार्य से भीतरी सहानुभूति थी। किसानों और ठिकानेदारों के बीच विवाद आने पर वे प्रायः समझौता कराने का यत्न करते, पर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध खड़ा होने की भावना जगाते। अंग्रेजी सरकार ने अनेक रियासतों में अंग्रेज हाकिम भेज कर इस लहर को कुचलने का यत्न किया, सितम्बर १९२२ में 'भारतीय राज्यों में असन्तोषविरोधी रक्षा-कानून' बनाया और अनेक स्थानों पर जलियाँवाला बाग से अधिक घिनौने कांड रचे। १९२३ के अन्त तक सेवा-संघ के सब मुख्य कर्मी पकड़ लिये गये; उसके बाद भी जनता से टक्करें होते रहे। पंजाब के "गदर" दल के कुछ लोग जहाँ अकाली संघर्ष के पीछे थे, वहाँ कुछ ने समूहवादी (कम्यूनिस्ट)* रूसी क्रांति से प्रेरणा पा कर

* कम्यूनिज़्म का मूल सिद्धान्त यह है कि उत्पत्ति के साधन व्यक्तिगत सम्पत्ति न

"किरती"† किसान संघटन के लिए प्रचार आरम्भ किया। बंगाल से १९१५ में भागे हुए नरेन्द्र भट्टाचार्य ने भी रूस पहुँच मानवेन्द्रनाथ राय नाम धर के और वहाँ सार्वभौम क्रांति की चेष्टा करने वालों के साथ उच्च पद पा कर भारतीय क्रांतिचेष्टा को रूसी क्रांति की दिशा में फेरने का यत्न आरम्भ किया। बंगाल के क्रांतिदलों ने अपने को १९२१-२२ में पुनः संघटित किया।

रासबिहारी बसु के १९१५ के साथी शचीन्द्रनाथ सान्याल ने युक्तप्रांत और पंजाब में अपने संघटन को "हिन्दुस्तान प्रजातंत्र मंडल" नाम से पुनर्जीवित कर उसका पूर्वी बंगाल की अनुशीलन-समिति [११,८§४] से सम्बन्ध जोड़ा। मंडल का उद्देश्य था "भारत के संयुक्त जनपदों का संघ-प्रजातंत्र स्थापित करना।" उसके नेताओं ने यह भी सोचा कि २०-२५ बरस बाद फिर बड़ा युद्ध होगा, उस समय अंग्रेज़ों की भारतीय सेना को अपनी ओर मिलाने के लिए पहले से अपने आदमी उसमें भेजने होंगे, और उस सेना के संचालन के लिए क्रांतिकारी युवकों को अभी से शिक्षा दिलानी होगी। इसके लिए उन्होंने विदेशों में यत्न आरम्भ किया। रासबिहारी के प्रयत्न से जापान सरकार ने उनके दल द्वारा भेजे गये युवकों को ऊँची सामरिक शिक्षा देना मान लिया।

इस बीच बंगाल में कुछ युवकों ने त्रास के कार्य शुरू कर दिये सरकार को दमन का मौका मिल गया। २५-१०-१९२४ को बंगाल सरकार ने एक अध्यादेश (आर्डिनांस) निकाल कर एकाएक नजरबन्दियाँ शुरू कीं युक्तप्रांत में हि० प्र० मंडल वालों ने भी त्रास के कार्य किये, जिससे उनके मुख्य केन्द्र पकड़े गये और सामरिक शिक्षा वाली योजना गड़बड़ा गई।

सार्वजनिक जीवन में भी कांग्रेसी और क्रांतिकारी आदर्शों का टाक होने लगा। कांग्रेस का ध्येय भी स्वराज था, पर उसका अर्थ किया जाता था- "सम्भव हो तो अंग्रेज़ी साम्राज्य के भीतर, आवश्यक हो तो बाहर।" क्रांतिका

हो पर समूह (कम्यून) की सम्पत्ति हो, इसलिए उसे समूहवाद कहना चाहिए। समूहय शब्द और बेहतर होगा।

† पंजाबी 'किरत' संस्कृत 'कृति' का रूपान्तर है। किरती = किरतवाला, कर्मं श्रमी, मज़दूर।

पूर्ण स्वराज्य चाहते थे। उसके लिए सदा शान्तिमय साधनों तक परिमित रहना भी उन्हें न जँचता था। समझौतों से हिन्दू-मुस्लिम-समस्या सुलझाने के बजाय वे संयुक्त निर्वाचन चाहते थे। इन उद्देशों से हि० प्र० मण्डल वालों ने १६२५ में "स्वाधीन भारत संघ" की और १६२६ में लाहौर में "नौजवान भारत सभा" की स्थापना की। उसकी देखा-देखी समूचे देश में युवक सभाएँ स्थापित होने लगीं। तभी अनेक मजदूर-संघटन भी खड़े हुए।

"१६२७ के मध्य से दिगन्त पर फिर प्रकाश आने लगा।" रीडिंग की जगह अर्विन वाइसराय हो कर आ चुका था (अप्रैल १६२६)। उसने घोषणा की कि भारत को नये शासन-सुधार देने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति होगी। उसके अध्यक्ष का नाम साइमन होने से वह साइमन कमीशन कहलाया। दिसम्बर १६२७ में कलकत्ते में एक एकता-सम्मेलन हुआ, और मुस्लिम लीग ने उसकी बात मान कर विधान-सभाओं में मुसलमानों के लिए सुरक्षित स्थान रहने की शर्त पर संयुक्त निर्वाचन मान लिया। तभी कांग्रेस ने अपने मद्रास अधिवेशन में यह मन्तव्य पारित किया कि पूर्ण स्वतन्त्रता भारतीय जनता का ध्येय है। पर इसके साथ ही भारत का सर्वसम्मत संविधान-मसविदा बनाने के लिए एक सर्व-दल-सम्मेलन बुलाना तय किया, और यह प्रकट था कि वह पूर्ण स्वतन्त्रता वाला मसविदा न बनायगा। गान्धी ने कहा पूर्ण स्वतन्त्रता वाला मन्तव्य जल्दबाजी में बिना सोचे-समझे पारित किया गया है।

१६२८ में अधिकतर नजरबन्द छोड़ दिये गये। फरवरी १६२८ में साइमन कमीशन भारत आया। जहाँ-जहाँ वह गया, जनता ने उसके बहिष्कार के प्रदर्शन किये। प्रदर्शनकारियों पर अनेक जगह लाठियों की मार पड़ी। उसके जवाब में क्रान्तिकारियों ने लाहौर में एक अंग्रेज अफसर को मृत्युदण्ड दिया। समूहवादियों (कम्यूनिस्टों) के कार्य के कारण उस वर्ष मजदूरों में बड़ी जागृति देखाई दी। वर्ष के अन्त में कलकत्ते में कांग्रेस हुई जहाँ क्रान्तिमार्गियों ने फिर पूर्ण स्वाधीनता को ध्येय मनवाना चाहा। पर गान्धी के कहने से यह तय हुआ कि अंग्रेजी सरकार यदि एक बरस में भारत को अभीष्ट शासनपद्धति न दे, तो कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनता को लक्ष्य बना कर करबन्दी शुरू करेगी।

१६२६ में भारत भर के ३१ मजदूर नेताओं पर मेरठ में तथा भगतसिंह आदि हि० प्र० मण्डल के कुछ कर्मियों पर लाहौर में मुकदमा चलाया गया। लाहौर के अभियुक्तों ने राजनीतिक कैदियों से मनुष्योचित व्यवहार की माँग पर भूख-हड़ताल शुरू की, जिसमें यतीन्द्रनाथ दास ने ६२ दिन के अनशन के बाद प्राण त्याग दिये (१३-६-१६२६)। तभी बरमा में राजनीतिक कैदी भिक्खु विजय का १६४ दिन के अनशन के बाद देहान्त हुआ (१६-६-१६२६)। इन बलिदानों से देश में नई लहर उमड़ आई। भगतसिंह और यतीन दास दोनों उन युवकों में से थे जो १६२४ में सामरिक शिक्षा के लिए जापान भेजे जाने वाले थे। भगतसिंह सन् १६०६ में भारत से भागे हुए क्रान्तिकारी अजीतसिंह का भतीजा था।

यतीन्द्रनाथ दास

[यतीन दास का यह एकमात्र चित्र खुफिया पुलिस ने हवालात में लिया था। फोटो लेते समय यतीन ने अपना मुँह कुछ बनाया और हिला दिया था।—श्री किरणदास के सौजन्य से।]

दिसम्बर १६२६ में गान्धी अर्विन से यह जानने को मिले कि अंग्रेजी सरकार भारत को अपने साम्राज्य के भीतर उपराज्य (डोमीनियन) पद देने को तैयार है कि नहीं। वे खाली हाथ लौटे। तब उस मास के अन्त में लाहौर में कांग्रेस ने भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना लक्ष्य घोषित किया। उसने यह भी कहा कि स्वाधीन भारत अंग्रेजी सरकार द्वारा भारत के नाम पर लिये गये ऋण को निष्पक्ष जाँच कराये बिना स्वीकार न करेगा।

§७. **अफगानिस्तान में राजक्रान्ति**—अफगानिस्तान का अमीर अमानुल्ला अपने देश के उन भागों को स्वतन्त्र कराने को बेचैन था जिन्हें अंग्रेजों ने दूसरे आंग्ल-अफगान युद्ध के समय दबा लिया था। उसने यह प्रयत्न आरम्भ किया कि उन इलाकों के पठान अंग्रेजों की सेना में भरती न

हों। तब अंग्रेज़ों ने अमानुल्ला के सुधारों के विरुद्ध अपने कारिन्दों द्वारा अफ़गानों के साम्प्रदायिक भावों को उभाड़ा, और उसी कर्नल लारेंस को, जिसने तुर्कों के विरुद्ध अरबों को उभाड़ा था, अफ़गानिस्तान भेज वहाँ विद्रोह करा दिया (१६२८)। अमानुल्ला को देश छोड़ भागना पड़ा। पेशावर के एक होटल में काम करने वाले बच-ए-सक्का अर्थात् भिश्ती के बेटे ने काबुल की गद्दी हथिया ली। किन्तु छः मास के भीतर वहाँ फिर विद्रोह हुआ और सरदार नादिरखाँ काबुल जीत कर नादिरशाह नाम से गद्दी पर बैठा। उसने अपने देश में दृढ और प्रगतिशील शासन स्थापित किया और धीरे-धीरे सुधार करने की नीति अपनाई, पर उसे अंग्रेज़ों से दब कर चलना पड़ा।

§८. नमक सत्याग्रह और गोलमेज़ सम्मिलनी—२६ जनवरी १६३० को समूचे भारत में महात्मा गांधी की लिखी यह स्वाधीनता-घोषणा पढ़ी गई—

"स्वाधीन होना, अपने श्रमों का फल भोग करना और जीवन की आवश्यक वस्तुएँ पाना भारतीय जनता का अपरिहार्य अधिकार है। यदि कोई शासन जनता को इन अधिकारों से वंचित कर पीडित करता है, तो जनता का अधिकार है कि उसे बदल दे या उखाड़ दे।...अंग्रेज़ी शासन ने भारत के लोगों को न केवल उनकी स्वाधीनता से वंचित किया, प्रत्युत जनता के विदोहन-शोषण पर अपनी नींव डाली है और भारत को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पहलुओं से उजाड़ डाला है।

महात्मा गांधी
दांडी यात्रा से ठीक पहले की सन्ध्या को
[श्री नवीनचन्द्र गांधी के सौजन्य से]

आर्थिक रूप से भारत को उजाड़ दिया गया है। हमारी जनता से हमारी आय के अनुपात से बेहिसाब मालगुज़ारी ली जाती है। हमारी औसत आय दैनिक सात पैसा है; और हम जो भारी कर अदा करते हैं, उनमें से २० फी

सदी किसानों से ली जाने वाली जमीन-मालगुजारी से और ३-फी सदी नमक-कर से आता है, जिसका कड़ा बोझ प्रायः गरीबों पर पड़ता है।

ग्राम-व्यवसाय... नष्ट कर दिये गये हैं, जिससे किसान साल में चार मास बेकार रहते हैं, और दस्तकारी के अभाव में उनकी बुद्धि कुंठित होती है।

आयात-निर्यात-चुंगी और मुद्रा-पद्धति को इस तरह चलाया गया है कि किसानों पर और बोझ लदें। आयात-चुंगी की दरों से ब्रितानवी कारखानेदारों का स्पष्ट पक्षपात प्रकट है।...शासन अत्यन्त फिजूलखर्ची से (चलता है)। विनिमय-दर को और भी मनमाने ढंग से चलाया जाता है, जिससे देश से करोड़ों रुपये बाहर बहा करते हैं।

राजनीति में भारत का पद कभी इतना गिरा नहीं रहा जितना अंग्रेजी राज में। सुधारों से जनता को कोई असल राजनीतिक शक्ति नहीं मिली। हममें से बड़े से बड़ों को विदेशी के आगे झुकना पड़ता है। हमें अपने विचार प्रकट करने और परस्पर मिलने की स्वतन्त्रता नहीं है...। (हमारी) शासन की प्रतिभा मार दी गई है...।

हमारी संस्कृति को दबाते हुए अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति हमें अपनी परिस्थिति से उखाड़ने की कोशिश करती और अपनी जंजीरों से चिपटे रहना सिखाती है।

हमें निहत्था करके आध्यात्मिक रूप से नामर्द बना दिया गया है, और हमारे देश पर कब्जा किये बैठी विदेशी सेना द्वारा...हमें यह सुझाया जाता है कि हम स्वयं अपने देश और अपने घर-द्वार की...रक्षा नहीं कर सकते। हमें विश्वास है कि यदि हम इस अमानुषी शासन को सहायता देना और कर देना बन्द कर दें, और उत्तेजित किये जाने पर भी हिंसा के लिए न उभड़ें तो इसका अन्त निश्चित है...।"

गांधी के १९२१ के साथी खिलाफती नेताओं ने, जो अब मुस्लिम लीगी थे, मुसलमानों से कहा कि इस संघर्ष में न पड़ें। पर जमियतुल-उलमा-ए-हिन्द अर्थात् मुस्लिम धार्मिक विद्वानों की संस्था ने संघर्ष में जी जान से साथ दिया। मुस्लिम लीग अंग्रेजी-पढ़ों की संस्था थी, जमियतुल-उलमा पुराने ढर्रे के विद्वानों की संस्था, जिसे वलीउल्लाही देशभक्तों ने स्थापित किया था।

गांधी सत्याग्रह के पहले अधिनायक नियत हुए। उन्होंने सबसे पहले नमक कानून तोड़ना तय किया, क्योंकि एक तो वह कर गरीबों के लिए स्वयं अभिशाप था, और दूसरे भारत का वार्षिक खिराज इंगलिस्तान तक पहुँचाने की कल का वह एक ज़रूरी पुर्ज़ा था [११,६९७]। गान्धी ने सूरत ज़िले के समुद्र-तट के दाँडी गाँव में नमक कानून तोड़ना तय किया, और उसके लिए १२-३-१९३० को ७९ साथियों के साथ अपने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद से पैदल रवाना हुए। ६-४-१९३० को उन्होंने दांडी में मुट्ठी भर नमक चुगा और वह संकेत पाते ही भारत भर में नमक-कानून तोड़ा गया। जगह-जगह गिरफ्तारियाँ हुईं और जनता पर गोलियाँ चलीं।

उधर बंगाल के एक त्रासवादी दल ने १८ अप्रैल की रात को चटगाँव में फौजी शस्त्रागार को लूट लिया। उसी रात बंगाल में नया अध्यादेश चलाया गया, और बंगाल के क्रांतिकारी नेताओं ने, जो १९२८ में जेलों से छुटे थे, अपने को फिर नज़रबन्द पाया।

२२ अप्रैल को पेशावर में जनता के जुलूस को गोलियों की मार से हटाने की कोशिश की गई। वीर पठान गोली खा कर गिरते गये, पर पीछे न हटे। चारसद्दा के खान अब्दुलगफ्फार खाँ जिन्हें वलीउल्लाहियों के सम्पर्क से जन-सेवा की प्रेरणा मिली थी, उन पठानों के नेता थे। उस प्रसंग में गढ़वाली सैनिकों को निहत्थी जनता पर गोली दागने को कहा गया। चन्दनसिंह के नेतृत्व में उन सैनिकों ने वैसा करने से इनकार किया। उन्हें फौजी कानून से सज़ाएँ दी गईं। पीछे पेशावर शहर को फौज के हाथ में दे दिया गया।

खान अब्दुलगफ्फार खाँ
[श्री नवीन गान्धी के सौजन्य से]

उधर गांधी ने सूरत ज़िले में धरासना के सरकारी नमकघर पर 'धावा' मारना तय किया। इसपर उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेजा गया। इसके बाद

विभिन्न प्रान्तों में अनेक कानूनों को तोड़ना और अंग्रेजी माल का बहिष्कार जारी रहा। गुजरात में बारडोली और बोरसद के और कर्णाटक में उत्तरी कनड़ तट के किसानों ने मालगुजारी देना बन्द कर दिया। बंगाल के मेदिनीपुर जिले में भी कर-बन्दी हुई। बंगाल में विदेशी कपड़े का आयात साल के अन्त में ६५ फी सदी तक गिर गया। जिन इलाकों में कर-बन्दी हुई थी, वहाँ समूचे गाँवों को घेर कर पीटना, लूटना, जलाना, अश्लील अत्याचार, किसानों से वसूली न होने पर जिस किसी राही से उसका माल छीन लेना और उससे कहना कि अमुक किसान से वसूल कर लो—इन तरीकों से शासन चलाया गया। बोरसद में ३० वर्गफुट का एक पिंजरा १८ कैदियों के लिए हवालात का काम देता। दिनरात में केवल एक बार वह खोला जाता। बारडोली में गिरफ्तार किसानों को नपुंसक बनाने का डर दिखाया जाता। भारतीय पुलिस और सेना विदेशी के कहने पर ऐसे कार्य क्यों करती रही? बात यह थी कि साधारण पुलिस और सेना के दिल में काफी सहानुभूति थी, पर राष्ट्र के नेता इतनी दूर तक जाने को तैयार न थे कि उन्हें नौकरी छोड़ देने को कहते, और यदि उनका अधिकांश नौकरी छोड़ देता तो उससे उत्पन्न परिस्थिति की जिम्मेदारियाँ उठा लेते।

इस बीच सरकार ने भारत से ७३ आदमियों को विभिन्न प्रान्तों और रियासतों का प्रतिनिधि कह कर लन्दन भेजा, और वहाँ पार्लिमेंट के १३ सदस्य इन लोगों के साथ शासन-सुधारों के विषय में बातचीत करने लगे। युरोप में बराबरी की हैसियत से खुली बातचीत मेज़ के चौगिर्द गोल दायरे में बैठ कर की जाती है, इसलिए यह गोलमेज़-सम्मिलनी कहलाई। १९-१-३१ को पहली गोल-मेज़ सम्मिलनी को विसर्जित करते हुए ब्रितानिया के प्रधान मन्त्री ने नये शासन-विधान की रूपरेखा यों प्रकाशित की—'भारत का केन्द्रीय शासन संघीय विधान-सभा के प्रति, जिसमें प्रान्तों और रियासतों के प्रतिनिधि होंगे, अंशतः जिम्मेदार होगा; अंशतः इसलिए कि सामरिक, वैदेशिक और अर्थनीतिक साख के मामलों में संघ-सभा का नियन्त्रण न चलेगा; और प्रान्तों को भीतरी मामलों में पूरी स्वतन्त्रता दी जायगी।'

इसके बाद कांग्रेस कार्य-समिति के सब सदस्य छोड़ दिये गये। गान्धी और अर्विन की बातचीत चली और दोनों का समझौता हो गया। कांग्रेस ने संघ के ध्येय को माना, गोलमेज़-सम्मिलनी में अपना प्रतिनिधि भेजना स्वीकार किया, तथा सत्याग्रह और अंग्रेज़ी माल का बहिष्कार बन्द किया। सरकार ने सत्याग्रह-विरोधी अध्यादेश, मुक़दमे, सज़ाएँ और ज़ब्तियाँ रद्द कीं। पर गांधी ने राष्ट्र नेता रूप में नहीं, एक पक्ष के नेता रूप में बात की। क्रान्तिकारी कैदियों और नज़रबन्दों की तो बात दूर, उन सैनिकों को भी छुड़ाने की चर्चा भी उन्होंने न की जिन्होंने सत्याग्रही जनता पर गोली चलाने से इनकार किया था।

मार्च १६३१ में कराची में कांग्रेस की बैठक हुई। उससे ठीक पहले २३ मार्च को भगतसिंह और उसके साथियों को फाँसी लगी। "उस समय भगतसिंह का नाम भारत में उतना ही प्रसिद्ध और प्रिय था जितना गान्धी का।" कराची कांग्रेस ने गान्धी-अर्विन समझौता स्वीकार किया, और भारत के ऋण की निष्पक्ष जाँच की माँग की। उसने जनता के मूल अधिकारों के विषय में भी अपना मन्तव्य प्रकाशित किया। कांग्रेस के १५-१६ प्रतिनिधि गोलमेज़-सम्मिलनी में लेने को अंग्रेज़ी सरकार तैयार थी, पर कांग्रेस ने गांधी को अपना एकमात्र प्रतिनिधि चुना। गांधी ने मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मदअली जिना से इस आशा से फिर मोलभाव शुरू किया कि सम्मिलित माँग तैयार कर सकें। सुभाषचन्द्र वसु और दो राष्ट्रवादी मुसलमानों ने गान्धी से कहा कि ऐसा व्यर्थ प्रयत्न करके राष्ट्र-विरोधियों की हैसियत बढ़ावें नहीं, प्रत्युत राष्ट्रवादी हिन्दू-मुसलमानों की संयुक्त निर्वाचन के लिए संयुक्त माँग दृढ़ता से उपस्थित करें। पर गान्धी तब उनकी बात का महत्त्व नहीं समझ सके।

तभी अर्विन से विलिंग्डन ने शासनभार लिया और समझौते की शर्तें टूटने लगीं। गान्धी गोलमेज़-सम्मिलनी में गये तो वहाँ भारतीय प्रतिनिधियों से एकमत माँग कराने के उनके सब यत्न बेकार हुए। तब उन्हें अपनी भूल दिखाई दी। उन्होंने कहा—"मैंने पहले (सम्मिलनी के) सदस्यों की सूची पर विचार न किया था। अब देखता हूँ, वे राष्ट्र के चुने हुए नहीं, सरकार के चुने हुए हैं। भारत में जैसे दल हैं उनकी तुलना में इसमें कुछ अत्यन्त स्पष्ट रिक्त स्थान

हैं।"भारतीय प्रतिनिधिमण्डल का स्वरूप ही समझौता न होने का कारण है।" राष्ट्रवादी मुस्लिमों का कोई प्रतिनिधि वहाँ न था। कांग्रेस की तरफ से हिन्दू-मुसलमानों की अच्छी मण्डली वहाँ गई होती और उसने संयुक्त निर्वाचन आदि की संयुक्त माँग रक्खी होती तो वैसी दशा न होती। पर वहाँ जो हिन्दू, मुस्लिम, अछूत, आदि दलों के "प्रतिनिधि" बना कर भेजे गये थे वे 'स्वराज्य' के लाभ के बँटवारे पर दुनियाँ के सामने अनथक किचकिच करते रहे। अन्त में अंग्रेज प्रधान मन्त्री राम्से मैकडौनल्ड ने उन झगड़ती बिल्लियों के बीच अपने को बन्दर रूप में पेश किया। गान्धी ने उस कार्रवाई को 'लाश चीरना' कहा। हिन्दुओं और अछूतों के बीच पचर ठोंक देने की मैकडौनल्ड की कोशिश को देखते हुए उन्होंने कहा—"क्या अछूत सदा अछूत बने रहेंगे? अछूतपन जिन्दा रहे इससे तो मैं हिन्दुत्व का मर जाना पसन्द करूँगा। यदि मुझ अकेले को भी इसका मुकाबला करना पड़ा तो जान तक दे कर करूँगा।"

२८-१२-१९३१ को गान्धी वापिस मुम्बई पहुँचे। तब तक समझौता टूट चुका था। कांग्रेस ने फिर नमक-सत्याग्रह तथा अंग्रेजी माल का बहिष्कार चलाना तय किया। विलिंग्डन ने एकाएक दमन से उसे कुचलने का यत्न किया। आन्दोलन का संचालन गुप्त रूप से होने लगा। गुजरात के किसान इस बार नहीं उठे, पर बंगाल में जनता-संघर्ष के साथ त्रास-प्रतित्रास जारी रहे। मई १९३२ में मुम्बई में हिन्दू-मुस्लिम दंगा शुरू हुआ जो छः सप्ताह चला। उससे आन्दोलन बहुत कुछ पस्त हो गया।

इस बीच अगस्त में राम्से मैकडौनल्ड की "साम्प्रदायिक पंचाट*" प्रकाशित हुई। उसमें अछूतों के लिए पृथक् निर्वाचन भी था। गान्धी ने उसके विरोध में अपनी प्रतिज्ञानुसार आमरण उपवास शुरू किया। तब पूने में हिन्दू नेताओं का सम्मेलन हुआ, जिसमें उस पृथक् निर्वाचन को अंशतः बदल देने की बात सबने मान ली। सरकार ने भी उसे मान लिया।

---

* पंचाट = पंच का निर्णय। यह कश्मीरी शब्द है जिसे भारत के संविधान में हिन्दी में अपना लिया गया है।

तब तक सत्याग्रह आन्दोलन बहुत कुछ कुचला जा चुका था, पर बंगाल में संघर्ष बाढ़ पर था। उसे दबाने को वहाँ सेना भेजी गई और मेदिनीपुर, ढाका, चटगाँव आदि ज़िलों में प्रायः सैनिक शासन स्थापित किया गया।

मई १९३३ में गान्धी ने फिर उपवास शुरू किया; तब उन्हें जेल से छोड़ दिया गया। उन्होंने सत्याग्रह को तीन मास के लिए स्थगित करा के विलिंग्डन से समझौते की बात करनी चाही, और विलिंग्डन के इनकार करने पर यह तय किया कि सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी रक्खा जाय। अगस्त के शुरू में उन्हें फिर एक साल की कैद दी गई। उन्होंने फिर अनशन किया और २३ अगस्त को छोड़ दिये गये। उन्होंने कहा, वे साल भर अपने को कैदी मानेंगे और तब तक केवल हरिजन-सेवा करेंगे। व्यक्तिगत सत्याग्रह भी कुछ देर बाद ठंडा पड़ गया। अप्रैल १९३४ में गान्धी ने देश को सत्याग्रह बन्द करने की सलाह दी। कांग्रेस ने उसे मान कर विधान-सभाओं के चुनाव लड़ना तय किया। तब उसके सामने साम्प्रदायिक पंचाट पर अपना मत देने का प्रश्न आया। कांग्रेस ने कहा वह उसे न स्वीकार करती, न ठुकराती है!

§९. सन् १९३५ का शासन-विधान और कांग्रेस का अंग्रेज़ी साम्राज्य से सहयोग—१९३५ में भारत-शासन का नया विधान अंग्रेज़ी पार्लिमेंट से स्वीकृत हुआ। इसके अनुसार कहने को भारत के विभिन्न प्रान्त और रजवाड़े अपने भीतरी मामलों में स्वतन्त्र थे और उन्हीं का संघ भारत-सरकार होती। भारतवर्ष की एक संघ-प्रजातन्त्र रूप में कल्पना पहलेपहल सन् १९२३-२४ में हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र मंडल वालों ने की थी [ऊपर § ६] किन्तु उस संघ की इकाइयाँ भारत के परम्परागत जनपद (भाषा-प्रदेश) होते। अंग्रेजों के प्रस्तावित इस संघ में अंग्रेज़ी प्रान्त और रजवाड़े ज्यों के त्यों रहते तथा संघ की विधान सभा में प्रान्तों की प्रजा के और रजवाड़ों के राजाओं के प्रतिनिधि होते। उस विधान-सभा का शासन पर पूरा नियन्त्रण न होता—समर-नीति और विदेश-नीति का चलाना तथा भारत की 'अर्थनीतिक साख' बनाये रखना गवर्नर-जनरल के संरक्षित कार्य होते। भारत की अर्थनीतिक साख कायम रक्खी जाती लन्दन के उन महाजनों के हित में जिनके हाथों में भारत गिरवीं था।

उनकी दृष्टि में वह साख तभी तक रहती जब तक भारत अपना सालाना खिराज देता चलता।

संघ के प्रान्त कहने को स्व-शासित थे पर उनमें भी गवर्नरों के विशेष अधिकार थे, तथा मुख्य भृत्य-वृन्दों की नियुक्ति तथा उस नियुक्ति की शर्तें निश्चित करना अंग्रेजी सरकार के भारतसचिव के हाथ में था, और उनकी तनखाहें संरक्षित कर दी गई थीं। १६१६ के संविधान में कुल ७० लाख आदमियों को मत देने का अधिकार था; इसमें ३६० लाख को दिया गया। सम्प्रदायों के अनुसार पृथक् निर्वाचन जारी रक्खा गया; असम और बंगाल में गोरे व्यापारियों को उनकी संख्या से बहुत अधिक स्थान दिये गये। छोटे सम्प्रदायों का संरक्षक अंग्रेज गवर्नरों को बनाया गया। संघ अथवा प्रान्तों की विधान-सभाएँ अंग्रेज व्यापारियों के अहित के कोई काम करें तो उसे रद्द करने के विशेष अधिकार गवर्नरों और गवर्नर-जनरल को दिये गये। भाषाजनपद-आन्दोलन की बात अंशतः मान कर सिन्ध और उड़ीसा पृथक् प्रान्त बनाये गये। पहले सिन्ध मुम्बई प्रान्त के अन्तर्गत था और उड़ीसा बिहार के साथ टँका होता था। अप्रैल १६३६ में विलिङ्डन के स्थान में लिनलिथगो वाइसराय बन कर आया।

१६३७ के शुरू में नई प्रान्तीय विधान-सभाओं के चुनाव हुए। युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, उड़ीसा, मद्रास और मुम्बई में, जहाँ बहुसंख्यक जनता हिन्दू है, कांग्रेस का बहुमत आया। मुस्लिम लीग अब अपने को कांग्रेस के मुकाबले में मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था कहती थी। पर बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्त के मुस्लिम स्थानों में से उसे एक भी न मिला, सब जगह स्वतन्त्र प्रतिनिधि चुने गये। युक्तप्रान्त, मद्रास और मुम्बई के मुस्लिम स्थानों में से प्रायः आधे लीग ले सकी। सीमाप्रान्त में ३८% और असम में ३५% स्थान कांग्रेस को मिले। सीमाप्रान्त में जहाँ ८२% स्थान मुसलमानों के लिए रक्षित थे, मुस्लिम लीग एक भी न पा सकी। सिन्ध विधान-सभा के ६० स्थानों में से कांग्रेस ८ ले पाई, लीग एक भी नहीं। वहाँ मुख्य दल अल्लाबख्श का था जो पूर्णतः राष्ट्रवादी थे; पर उनके दल का भी अकेले बहुमत न था।

पंजाब की विधान-सभा में १६२१ से अंग्रेजों के खड़े किये हुए जमींदार वर्ग की प्रमुखता थी। उनमें मुस्लिमों के अतिरिक्त कुछ हिन्दू सिक्ख भी थे, अतः उन्होंने अपने दल का नाम 'एका-वादी' (यूनियनिस्ट) रक्खा था। राष्ट्रवादियों ने १६२१ से १६३६ तक पंजाबी किसानों को जगा कर उस वर्ग के मुकाबले में खड़ा करने की कोई चेष्टा न की थी, अतः अब भी उसकी प्रमुखता बनी रही।

बंगाल की स्थिति सब से पेचीदा थी। बंगाल प्रान्त जैसा बना हुआ था उसकी जनसंख्या ५४½% मुस्लिम थी; उसकी विधान-सभा के २५० स्थानों में से २६ गोरे और अधगोरे व्यापारियों को दिये गये थे। पूर्वी बंगाल के किसान प्रायः मुस्लिम थे और उनके एक नेता इस समय फजलुल-हक थे। हक ने चाहा कि कांग्रेस उनके साथ मिल मुस्लिम क्षेत्रों में भी उमीदवार खड़े करे। बंगाल कांग्रेस के मुख्य नेता सुभाषचन्द्र वसु तब जेल में थे, और केन्द्रीय कांग्रेस-नेताओं की बंगाली राष्ट्रवादियों से पटती न थी, क्योंकि बंगाली प्रायः क्रान्तिवादी थे। इस दशा में कांग्रेस ने हक का साथ नहीं दिया। चुनाव होने पर ११७ मुस्लिम स्थानों में से ३६ हक के "कृषक प्रजा-दल" को मिले, ४० मुस्लिम लीग को तथा ४१ स्वतन्त्र व्यक्तियों को। कांग्रेसी और उनके साथी ७८ चुने गये। हक ने तब फिर कांग्रेस के साथ सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रस्ताव किया, पर कांग्रेस-नेताओं ने उसे फिर नहीं माना। तब हक ने मुस्लिम लीग और गोरों से मिल कर मन्त्रिमण्डल बना लिया।

अप्रैल १६३७ से बरमा को भारत से अलग किया गया तथा भारत के प्रान्तों में नयें मन्त्रिमण्डल बने। कांग्रेस पक्ष ने पहले मन्त्रि-पद लेने से इनकार किया, पर जुलाई में छः प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल स्थापित हुए। पीछे सीमाप्रान्त में भी कांग्रेसी बहुमत हो गया और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बना; तथा असम में कांग्रेस का सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बन गया। सिन्ध में भी अल्लाबख्श ने कांग्रेस से मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए सहयोग माँगा, पर उन्हें सहयोग नहीं मिला।

कांग्रेस ने अपने शासन में किसानों को राहत देने की तथा नशाबन्दी की कोशिशें कीं। न केवल सब सरकारी कामकाज प्रत्युत युवक-युवतियों को

शिक्षा भी अंग्रेज़ी में ही चलती रही। प्रान्तीय 'स्वशासन' के भीतर अंग्रेज़ी सरकार द्वारा संघटित, नियुक्त और संचालित पुराने भृत्यवृन्द का ढाँचा बना ही था। उसकी भारी तनखाहों-पेंशनों में प्रान्तों की आमदनी का बड़ा अंश निकल जाता था। यह भृत्यवृन्द पिछली शताब्दी के भारतीय राज्यों के भीतर की अंग्रेज़ी आश्रित सेना की तरह प्रान्तीय स्वशासन को भीतर से रेढ़ मार सकता था। मन्त्रिगण यदि उस भृत्य-वृन्द में से राष्ट्र-पक्षपातियों को पहचान कर उन्हें महत्त्व के स्थानों पर बिठाने का, उनके द्वारा किन्हीं राष्ट्रीय आदर्शों को चरितार्थ करने का और उस भृत्यवृन्द में से निचले और गरीब वर्ग को अपनी तरफ मिलाने का यत्न करते तो उनकी और गवर्नरों की आपेक्षिक शक्ति की परख होती। पर वैसा कोई यत्न नहीं हुआ। यह भी प्रकट था कि कांग्रेसी मन्त्री अपने शासन में इस भृत्यवृन्द की शक्तियों का, खास कर पुलिस और सेना का, जितना कम प्रयोग करते, उतने ही शक्तिशाली बनते जाते। महात्मा गांधी इस बात की ओर बराबर ध्यान खींचते रहे। किन्तु मजहबी दंगों में कांग्रेसी मन्त्रियों ने गोरी फौज तक बुलाई और उस फौज से जनता पर गोलियाँ तक चलवाईं। उसके अतिरिक्त किसान और मजदूर आन्दोलनों को काबू रखने के लिए भी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने अंग्रेज़ी सरकार के दमन-यन्त्र से काम लिया; जिसके कारण वे उस सरकार पर अधिक निर्भर होते गये। इस अवधि में मुस्लिम लीग ने कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों के विरुद्ध बराबर आन्दोलन जारी रक्खा।

युक्त प्रान्त और बिहार में जो क्रान्तिकारी कैदी थे, उन्हें कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने आरम्भ में ही छोड़ दिया था, पर बंगाल में मुस्लिम लीग मन्त्रिमण्डल ने उन नजरबन्दों को स्वयं न छोड़ा जो १६३० से जेलों में थे। देश भर में उन्हें छुड़ाने के लिए ज़ोर की पुकार उठी, तब वे छोड़े गये।

फरवरी १६३८ में सिन्ध में अल्लाबख्श मन्त्रिमण्डल बनाने में सफल हुए। उन्होंने स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में संयुक्त निर्वाचन चला दिया जो कि कांग्रेसी प्रान्तों में भी नहीं हुआ था। सिन्ध में मुस्लिम लीग भी खड़ी हुई और अल्लाबख्श पर बहुत दबाव डाला गया कि उसमें सम्मिलित हो जायँ, पर वे सिद्धान्त से न टले। कांग्रेस पक्ष ने तब भी यह कह कर उनका साथ न

घंटे प्रदर्शन किया गया !

§ ११. गांधी युग में सामाजिक सांस्कृतिक प्रगति—गांधी युग में सामाजिक सुधार को बड़ा बढ़ावा मिला। अछूतपन को मिटाना तो गांधी के कार्यक्रम का मुख्य अंश ही था। उसके अतिरिक्त हज़ारों आदमियों के जेल का पानी पी आने से भी हिन्दुओं की छूतछात बहुत कुछ घटी। स्त्रियों ने भी आन्दोलन में भाग लिया, जिससे उनपर लगे हुए निरर्थक सामाजिक बन्धन टूटने लगे। गढ़वाल-कुमाऊँ में बेगार और कुली-उतार [११,२ § १] के विरुद्ध सन् १९२१ भर ज़ोर का आन्दोलन चला। अलमोड़ा ज़िले में बागेश्वर पर माघ-संक्रांति के दिन लोग सरयू में स्नान करते हैं और बड़ा मेला लगता है। जनवरी १९२२ में वहाँ हज़ारों पहाड़ी किसानों ने इकट्ठे हो कर प्रण किया कि आगे से वे बेगार और कुली-उतार न देंगे, और वहीं इकट्ठे हुए पटवारियों ने कुली-उतार विषयक सब कागज़ सरयू में बहा दिये। यों सौ बरस से चली आती वह गुलामी की प्रथा समाप्त हुई।

गान्धी-युग के आरम्भ में अनेक राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना से यह आशा लगी थी कि उनसे राष्ट्रीय शिक्षा की उन्नति और देशी भाषाओं में ऊँचे वाङ्मय के विकास में सहायता मिलेगी। वह आशा विफल हुई। गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, वामनदास बसु, काशीप्रसाद जायसवाल आदि विद्वान् जिन्होंने भारतीय दृष्टि से इतिहास तथा भौतिक आर्थिक सामाजिक परिस्थिति के अध्ययन को दयानन्द-बंकिम युग वाली या १९०५ वाली जागरण की लहर में शुरू किया था और इस युग में भी बहुत कुछ आगे बढ़ाया, वैसे अध्ययन को संघटित रूप से चलाने के लिए अनुरोध करते रहे; पर उनकी पुकार इन राष्ट्रीय संस्थाओं में भी बहरे कानों पर पड़ी। अपने इतिहास का ठीक अध्ययन और ठीक रूप में प्रस्तुत होना हिन्दू-मुस्लिम समस्या और अन्य आर्थिक सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में भी सहायक हो सकता था, पर इस बात को भी इन संस्थाओं के संचालकों ने नहीं देखा। धीरे-धीरे ये विद्यापीठ मिट या मुरझा गये।

गांधीयुग के साहित्य में हिन्दी लेखक प्रेमचन्द की कहानियों का विशेष स्थान है। प्रेमचन्द को मुख्यतः किसान जागरण से प्रेरणा मिली। बँगला कवि

रवीन्द्रनाथ और बँगला कहानी-लेखक शरत् चन्द्र चटर्जी की कृति स्वदेशी आन्दोलन में शुरू हुई थी, इस युग में भी जारी रही। कवि नजरुलइस्लाम का पद बँगला साहित्य में रवीन्द्र से दूसरे दर्जे पर माना जाता है। वे गांधीयुग के कवि हैं, पर उनकी प्रेरणा शुद्ध क्रान्तिकारी है। गुजराती में स्वयं गांधी की बड़ी देन है। उन्होंने उसमें नई जानदार शैली चला दी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. खिलाफत और असहयोग आन्दोलन कैसे चले? कैसे समाप्त हुए?

२. असहयोग आन्दोलन की विफलता के बाद साम्प्रदायिक विद्वेष कैसे उभड़ा १९२७ के अन्त में कैसे शान्त हुआ?

३. उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज़ शासकों की नीति भारत में नये कल-कारखाने न पनपने देने की थी। उन्नीस सौ बीसों में वह नीति क्यों किन दशाओं में बदली?

४. "हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र मंडल" का संघटन कब किसने किया? उसका उद्देश और कार्य-पद्धति क्या थी? अपनी प्रस्तावित पद्धति पर मंडल क्यों न चल सका? वह किस अंश में सफल, किसमें विफल हुआ?

५. २६ जनवरी १९३० को महात्मा गान्धी ने भारत के लोगों से स्वतन्त्रता की जो शपथ लिवाई, उसमें अंग्रेज़ी राज पर कौन से मुख्य अभियोग लगाये गये थे?

६. सन् १९३० में चले सत्याग्रह-संघर्ष में १९३० से १९३४ तक क्या उतार-चढ़ाव हुए? अन्त में वह कैसे समाप्त हुआ?

७. सन् १९३१ में महात्मा गान्धी ने संयुक्त निर्वाचन की माँग के लिए आग्रह क्यों न किया? गोल-मेज़ सम्मिलनी में जा कर उन्होंने अपनी भूल किस अंश में पहचानी?

८. १९३५ के शासन-विधान की रूपरेखा अंकित कीजिए। बंगाल में १९३७ में मुस्लिमलीगी मंत्रिमण्डल क्यों किन दशाओं में बना?

९. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए (१) यतीन दास (२) बध-प-सखा (३) साइमन कमीशन (४) चन्दनसिंह गढ़वाली (५) गान्धी-अर्विन समझौता (६) काजी नजरुल-इस्लाम (७) सन् १९२१ के राष्ट्रीय विद्यापीठ (८) शरत् चन्द्र चटर्जी (९) हैदराबाद सत्याग्रह १९३८-३९ (१०) कश्मीर का राष्ट्रीय आन्दोलन (११) युवराज शास्त्री (१२) कुली-प्रथा का अन्त।

अध्याय १०

आजाद हिन्द का उदय

(१९३९-१९४७ ई०)

§१. **जापान और चीन**—बीसवीं शताब्दी के शुरू में जागृत जापान ने देखा कि रूस और इंग्लिस्तान अपना साम्राज्य फैलाते हुए चक्की के दो पाटों की तरह उसकी ओर बढ़े आ रहे हैं। उसने उन्हें रोकना तय किया और पहले इंग्लिस्तान से मैत्री रख रूस से युद्ध किया। पहले विश्वयुद्ध में भी उसने इंग्लिस्तान से मैत्री रख कर अपने पड़ोस के समुद्रों में जर्मनी द्वारा अधिकृत टापू और बन्दरगाह छीन लिये। किन्तु इस अवधि में उसने बराबर यह अनुभव किया कि उसका असल मुकाबला इंग्लिस्तान से ही होगा। जापान की आबादी बहुत घनी है। पर वहाँ के लोगों के लिए बाहर जा कर बसने को जो स्वाभाविक स्थान हैं वे सब प्रायः अंग्रेज़ों ने रोक रक्खे हैं, जिनमें वे गोरों के सिवाय दूसरों को आने नहीं देते। अंग्रेज़ों की शक्ति यदि जापान के सिर पर आ कर मँडराती थी तो एशिया के दूसरे देशों के सोये होने के कारण। एक अरसे तक जापान उन देशों के जागरण की उत्सुकता से राह देखता रहा।

१९११ में चीन में क्रान्ति होने पर आशा हुई कि चीन के बन्दरगाह युरोपी शिकंजे से शीघ्र छुटकारा पायेंगे। पर वहाँ प्रतिक्रान्ति हुई, अनेक सेना-सरदार अलग अलग प्रान्तों को दबोच बैठे और चीनी राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए उसमें जो भीतरी संशोधन अपेक्षित था उसकी प्रगति रुक गई। रूस में क्रान्ति हो कर समूहवादी शासन स्थापित होने पर चीनी क्रान्ति के प्रवर्त्तक सुँ-यत-सेन ने अपने साथियों को उससे सहयोग करने और उसी मार्ग पर चलने का उपदेश दिया। १९२७ में चीनी क्रान्तिकारी फिर उठे और सेना-सरदारों से प्रदेश छुड़ाते तथा याङ्चे नदी पर के अंग्रेज़ों के दबाये हुए बन्दरगाहों को स्वतन्त्र करते दक्खिन से उत्तर को बढ़े। यों जब वे समूचे चीन को स्वतन्त्र और एक करने वाले थे, तभी उनमें फूट पड़ गई और उनके एक नेता चियाङ्काई शेक ने समूहवादियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। पंजाबी 'गदर' दल के कुछ

धर्मी चीन में अंग्रेजों के भाड़ैत पंजाबी सैनिकों में प्रचार करके चीनी क्रान्तिकारियों से सहयोग कर रहे थे। चियाङ ने उन्हें अंग्रेजों के हाथ सौंप दिया। चियाङ का प्रशासन धीरे-धीरे स्वार्थी पूँजीपतियों का भ्रष्ट शासन बनता गया जो अपने देश की दशा में कुछ सुधार न कर सका। चीन के घरेलू युद्ध में भी दस बरस तक कोई निर्णय न हुआ। समूहवादियों ने उत्तरपच्छिमी प्रान्तों में पैर जमा कर वहाँ अपना अलग शासन खड़ा कर लिया।

जापान ने जब देखा कि चीन के अपने को अंग्रेजी शिकंजे से छुड़ा सकने के कोई लक्षण नहीं हैं, तब उसने सोचा कि वही क्यों न उसे अपने नियंत्रण में ले ले। १६३१ में उसने मंचूरिया पर अधिकार कर लिया। फिर १६३७ में उसकी ठेठ चीन से लग गई। जापानी सेनाओं के चीन की दीवार लाँघने पर समूहवादियों ने चियाङ से अनुरोध किया कि घरेलू युद्ध बन्द कर मिल कर उनका सामना करें। वैसा ही हुआ। जापान ने चीन का पूरबी भाग बहुत सा ले लिया, तो भी वह समूचे चीन को न ले सका और युद्ध में उलझ गया। अनेक जापानी राजनेता अपनी उस विफलता से खीझ कर आश्चर्य करते थे कि अंग्रेज जब भारत को आसानी से अधीन रक्खे हुए हैं तब हम चीन को क्यों नहीं अधीन कर पाते। पर अंग्रेजों को भारत में जैसी भाड़ैत सेना मिल गई थी, वैसी चीन में जापानियों को न मिली थी।

§२. युरोप में युद्ध—१६१६ में कुचला गया जर्मन राष्ट्र १४ बरस बाद आडोल्फ हिटलर के नेतृत्व में फिर शक्तिशाली हो उठा और युरोप में जर्मनभाषी प्रदेशों को धीरे-धीरे मिलाने लगा। प्रकट था कि इसके बाद वह पच्छिमी युरोप के दूसरे राष्ट्रों से विश्व-साम्राज्य में अपना हिस्सा माँगेगा। इस अंश में इतालिया की दशा भी उसके समान थी, इसलिए उन दोनों की सहयोग-सन्धि हो गई। हौलैंड, फ्रांस, ब्रितानिया पर जर्मनी यदि चोट करता तो इन देशों का दक्खिनपूर्वी एशिया के अपने साम्राज्यों पर नियन्त्रण ढीला पड़ जाता और उन्हें वहाँ से खदेड़ने में जापान को सुविधा होती, इसलिए जापान भी जर्मनी का सहयोगी बना।

जर्मनी को फिर उठता देख ब्रितानिया और फ्रांस ने १६३६ में उसके

विरुद्ध रूस से सहयोग-सन्धि की चेष्टा की, पर सफल न हुए। उलटा रूस और जर्मनी ने परस्पर अनाक्रमण-सन्धि कर ली। जर्मनी ने पोलैंड से अपना डानज़िग बन्दरगाह वापिस माँगा और न मिलने पर उसपर चढ़ाई कर दी (२-९-१९३९)। ब्रितानिया और फ्रांस ने जर्मनी से युद्ध की घोषणा की। दो सप्ताह में जर्मनों ने पोलैंड को कुचल डाला और रूस ने पोलैंड के रूसीभाषी प्रदेश तक, जिसे कि पोलैंड ने सन् १९१९-२१ में अंग्रेज़ों-फ्रांसीसियों की सहायता से दबोच लिया था [११,८§१५], बढ़ कर जर्मनी से अपनी सीमा मिला दी।

अंग्रेज़ी सरकार ने युद्ध शुरू होने से पहले ही एक तरफ मिस्र और इराक में और दूसरी तरफ सिंगापुर में अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए भारतीय सेना को भेज दिया था। उसने भारत और जर्मनी के बीच भी युद्ध की घोषणा कर दी, और भारत सरकार ने युद्ध-स्थिति को लक्ष में रख कर कुछ अध्यादेश (और्डिनांस) निकाल दिये। इसके प्रतिवाद में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने नवम्बर १९३९ में पदत्याग कर दिया और प्रान्तों के अंग्रेज़ गवर्नरों ने शासन अपने हाथ में ले लिया।

१९४० की गर्मियों में जर्मनों ने पच्छिम मुँह फेरा और बिजली की तेज़ी से बढ़ते हुए हौलैंड, बेलजियम और फ्रांस को दखल कर लिया। अंग्रेज़ी साम्राज्य की जो सेना फ्रांस-बेल्जियम की मदद को गई थी वह पिटती मार खाती डंकिर्क बन्दरगाह से उलटे पाँव निकल भागी। फ्रांस की स्थल-सेना युरोप में श्रेष्ठ और उसकी अपनी सीमा पर बनाई हुई दुर्ग-पंक्ति अभेद्य मानी जाती थी। उसके ढह जाने से ब्रितानिया पर जर्मनों की चढ़ाई का हरदम खतरा दिखाई देने लगा। इतालिया भी तब जर्मनी की तरफ से युद्ध में कूद पड़ा। जापान ने पूर्वी एशिया में फ्रांस और हौलैंड के उपनिवेशों—हिन्दचीन और हिन्दी द्वीपावली—में विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये।

§३. पाकिस्तान की माँग, भारतीय कांग्रेस में मतभेद और सांकेतिक असहयोग—भारत में मुस्लिम लीग ने मार्च १९४० में यह स्पष्ट माँग पेश की कि भारत के उत्तरपच्छिमी और उत्तरपूर्वी भाग को, जहाँ मुसलमान अधिक हैं, शेष भारत से अलग कर दिया जाय। उस

प्रस्तावित मुस्लिम देश को वे कुछ अरसे से 'पाकिस्तान' कहने लगे थे। यह नाम और यह विचार कई बरस पहले इंग्लैंड की कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी में उपजा था। १९३५-३९ में प्रांतों के कांग्रेसी शासन के समय इसे उग्र रूप दिया गया था। अब खुल कर यह माँग की गई। स्पष्ट था कि इसके पीछे प्रेरणा अंग्रेजों की ही थी।

कांग्रेस ने अंग्रेजों के युद्धोद्योग से असहयोग दिखाने को अपने मंत्रि-मण्डलों से इस्तीफे तो दिला दिये थे, पर भरती-क्षेत्रों और कारखानों में युद्धोद्योग रोकने की कोई चेष्टा उससे न बन पड़ी। जो क्रांतिकारी और समूहवादी वैसी चेष्टा करते, वे नजरबन्द किये गये। बंगाल के प्रमुख क्रांतिकारी जो १९२४ के जेलों में गये हुए १९२८ में और फिर '३० में गये हुए '३८ में निकले थे, यों '४० में फिर भीतर पहुँच गये। जनता में बड़ी बेचैनी थी कि जब विदेशों में ब्रितानवी साम्राज्य ऐसी मार खा रहा है, तब भी भारत में उसका दमनचक्र और हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष उभाड़ने की शरारत जारी है, और उसे यह रोक क्यों नहीं पाती।

दूसरी तरफ, फ्रांस के पतन के बाद अंग्रेजी साम्राज्य का अन्त निकट आता देख भारत के उन वर्गों में दूसरी तरह की बेचैनी फैली जिनकी सब शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी की थी और जिनकी समाज में हैसियत उस शिक्षा की या अंग्रेजी राज्यपद्धति की बदौलत थी। कांग्रेस की कार्यसमिति में भी यह मनोवृत्तियों का भेद प्रकट हुआ। जून-जुलाई १९४० में कार्यसमिति ने यह घोषणा की कि ब्रितानिया यदि भारत की स्वतन्त्रता को सिद्धान्ततः मान ले और फिलहाल केन्द्र में सब दलों की मिली-जुली ("राष्ट्रीय") सरकार और प्रान्तों में भी उत्तरदायी सरकारें फिर से स्थापित कर दे, तो कार्यसमिति युद्धोद्योग में पूरी सहायता देगी। यह घोषणा राजगोपालाचारी और जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से की गई। महात्मा गांधी और खान अब्दुलगफ्फारखाँ इसपर कार्यसमिति से अलग हो गये। अंग्रेजी सरकार ने इस घोषणा के उत्तर में कहा कि वह भारत को स्वशासन देने और केन्द्र में सर्व-दल सरकार बनाने को तैयार है यदि भारत के विभिन्न पक्ष पहले आपस में एकमत हो जायँ। साथ ही उसने

मुस्लिम लीग का रुख और उग्र करा दिया। कांग्रेसी और मुस्लिम लीगी नेताओं का वाग्युद्ध आगे दो साल तक बराबर चलता रहा जिसके फलस्वरूप १९४१ में देश में दंगों की बाढ़ आई रही।

जनता की ओर से प्रतिरोध की बराबर माँग थी, इसलिए गांधी ने अंग्रेज़ों के युद्धोद्योग से सांकेतिक रूप से असहयोग प्रकट करने को व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया। उसमें भाग लेने वाले कहीं सड़क-हाट पर यह नारा लगा कर कि युद्ध में मदद देना पाप है, गिरफ्तार हो जाते थे। पर उनके इतना करने से भी दुनिया को पता मिलता रहा कि भारत के राष्ट्रवादी युद्ध में अंग्रेज़ों के साथ नहीं हैं, और उनके इस ढोंग की कि वे दुनिया की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं, कलई खुलती रही।

इसी बीच सुभाषचन्द्र वसु देश के बाहर से स्वतन्त्रता का युद्ध चलाने के विचार से २६-१-१९४१ को एकाएक गायब हो गये और अंग्रेज़ों के कड़े पहरे में से निकल कर अफगानिस्तान और रूस के रास्ते जर्मनी जा पहुँचे।

§४. जर्मनी की रूस पर चढ़ाई—१९४०-४१ के जाड़े और '४१ के वसन्त में जर्मनों ने पूर्वी युरोप के प्रायः सब देशों पर आधिपत्य कर लिया। उत्तरी अफरीका के इतालवी साम्राज्यान्तर्गत लिबिया (त्रिपोली) देश से मिस्र में घुस कर वे सुएज़ नहर से आधी राह तक पहुँच गये। रूस और जापान में भी इस बीच अनाक्रमण-सन्धि हो गई थी। इसके बाद जब यह जान पड़ता था कि जर्मनी और उसके साथी अंग्रेज़ी साम्राज्य की गरदन पर पच्छिमी एशिया में अन्तिम चोट करेंगे, तब २२ जून १९४१ को हिटलर ने रूस पर एकाएक चढ़ाई कर दी। ब्रितानिया और रूस के बीच इससे हठात् मैत्री हो गई। संयुक्त राज्य अमरीका जो कि अब तक ब्रितानिया को युद्धसामग्री नकद दामों पर दे रहा था, अब उधार भी देने लगा और युद्ध में उतरने की तैयारी करने लगा। रूस और ब्रितानिया ने मिल कर ईरान को धर दबोचा और उसे दो हिस्सों में बाँट वहाँ अपनी सेनायें डाल दीं, जिससे इस रास्ते दोनों का सम्बन्ध बना रहे। भारत के समूहवादी जो अब तक कहते थे कि ब्रितानिया साम्राजिक युद्ध कर रहा है, अब कहने लगे कि वह 'लोक-युद्ध' में लगा है, अतः वे जेलों से छोड़े

गये और अंग्रेज़ी सरकार से सहयोग करने लगे।

§५. पूर्वी एशिया में युद्ध—अमरीका को युद्ध में आता देख जापान ने पहल की और ७-१२-१९४१ को युद्ध में कूद पड़ा तथा प्रशान्त महासागर के बीचोंबीच हवाई द्वीप के पर्ल बन्दरगाह पर जो अमरीकी जंगी बेड़ा जापान पर चढ़ने को खड़ा था उसे एकाएक डुबा दिया। अमरीका और पच्छिम-युरोपी राष्ट्रों के अधीन पूर्वी एशिया के देशों—फिलिपीन, हाङ्काङ, हिन्दचीन, हिन्दी द्वीपावली, मलाया—पर उसने एक साथ चढ़ाई की। मलाया-सिंगापुर को बचाने को ब्रितानिया ने अपने सब से बड़े दो युद्ध-पोत भेजे, जो यह माना जाता था कि डुबाये ही नहीं जा सकते। जापानियों ने उन्हें आन की आन में डुबा दिया और सिंगापुर और मलाया प्रायद्वीप ले कर बरमा की ओर बढ़े। १९४२ की गर्मियों तक उसे भी ले कर वे भारत के दरवाजे तक आ पहुँचे। मलाया और बरमा की लड़ाइयों में अंग्रेज़ों की भाड़ैत भारतीय सेना के अनेक दस्ते जापानियों से जा मिले और उस सेना का मुख्य अंश कैद हुआ। युरोपी राष्ट्रों की जो धाक एशिया के देशों में दो शताब्दियों से बैठी हुई थी, जापानियों ने उसे धूल में मिला दिया।

§६. आजाद हिन्द फौज की नींव पड़ना—पहले विश्वयुद्ध में जापानी अंग्रेज़ों के मित्र थे, और रासबिहारी वसु जब जापान पहुँचे तब अंग्रेज़ों ने उन्हें जापान से माँगा था। पर जापानियों ने रासबिहारी की देशभक्ति और वीरता से मुग्ध हो कर और यह देख कर उन्हें शरण दी थी कि एक दिन हमारा अंग्रेज़ों से युद्ध होना ही है। रासबिहारी ने पूर्वी एशिया में एक स्वतन्त्र-भारत-संघ स्थापित किया था। दूसरे विश्वयुद्ध में जापान के पड़ते ही उन्होंने जापान-सरकार से कहा कि उसके अधिकार में जो देश आयें, वहाँ भारतीयों को शत्रु-प्रजा न मान कर मित्र-प्रजा माना जाय, और उनमें से तथा अंग्रेज़ों के भाड़ैत उन भारतीय सैनिकों में से, जो कैद हों, स्व० भा० संघ को अपनी आजाद हिन्द फौज खड़ी करने दिया जाय। जापान सरकार ने यह मान लिया और स्व० भा० संघ को मित्र सरकार का सा पद दे दिया। पूर्वी एशिया के ३० लाख भारतीयों की यों न केवल जान माल इज्जत सुरक्षित हो गई, प्रत्युत उन्हें ऐसी स्वतन्त्रता

और प्रतिष्ठा मिली जैसी पहले अपने जीवन में कभी न मिली थी। जापानी सेना की टुकड़ियों के साथ स्व० भा० संघ के प्रचारक भारतीय सैनिकों से सम्पर्क करने भेजे गये। ऐसे दो प्रमुख प्रचारक स्याम में रहने वाले सत्यानन्द पुरी और प्रीतमसिंह ज्ञानी थे। सत्यानन्द का पहला नाम प्रफुल्ल सेन था, वे "अनुशीलन" दल के थे; प्रीतमसिंह "गदर" दल के थे। प्रीतमसिंह ने दिसम्बर १९४१ में उत्तरी मलाया में कैद हुए कप्तान मोहनसिंह को आजाद हिन्द फौज खड़ी करने की प्रेरणा दी और काम सौंपा। जनवरी १९४२ में मोहनसिंह ने आजाद हिन्द फौज के दो पहले जत्थे बना कर एक को बरमा मोर्चे पर भेजा और दूसरे को मलाया के भारतीय सैनिकों में प्रचार के लिए रक्खा। आजाद हिन्द फौज के शिक्षक सब भारतीय थे जो अब अंग्रेज़ों के बजाय हिन्दुस्तानी आदेश-शब्दों से अपनी सेना को चलाते थे। सेना के रूप में उसके प्रत्येक महकमे का संघटन किया गया। इस सेना में आरम्भ से ही यह विचार भरा जाता कि सब हिन्दुस्तानी भाई-भाई और मानव स्वतन्त्रता के पूरे अधिकारी हैं, तथा खानपान आदि में जात-पाँत का कोई भेद नहीं रक्खा जाता रहा।

रासबिहारी बसु
(१८८५—१९४५ ई०)
[श्री जितेन्द्रनाथ सान्याल के सौजन्य से]

१५-२-१९४२ को सिंगापुर में अंग्रेज़ी सेना ने आत्मसमर्पण किया। जापानियों ने अंग्रेज़ों को भारतीयों से अलग कर कैदी बनाया और भारतीय सैनिकों की एक सभा कर उनसे कहा कि उनके साथ हारे हुए शत्रु का सा नहीं प्रत्युत भाइयों का सा बर्ताव किया जायगा, और उन्हें मोहनसिंह के जिम्मे सौंप दिया। मोहनसिंह ने तब उनमें से आ० हि० फौ० के लिए स्वेच्छा-सैनिक भरती शुरू की। अंग्रेज़ कैदी शिविरों का प्रबन्ध भी जापानियों ने आ० हि० फौ० को सौंप दिया।

मार्च १९४२ में तोकियो में एक भारतीय सम्मेलन किया गया। सत्यानन्द पुरी और प्रीतमसिंह ज्ञानी उसमें जाते हुए विमान-दुर्घटना के शिकार हुए। जून १९४२ में बंकोक में फिर एक बड़ा भारतीय प्रतिनिधि सम्मेलन हुआ। उसने स्व० भा० संघ द्वारा भारत की स्वतन्त्रता का युद्ध जारी रखने का समर्थन किया, संघ के सभापति रासविहारी वसु की सहायता के लिए नई कार्यसमिति नियत कर दी, मोहनसिंह को आ० हि० फौ० का प्रधान सेनाप नियुक्त किया, और अपने युद्ध के संचालन के लिए सुभाषचन्द्र वसु को जर्म से बुलाना तय किया। सम्मेलन ने यह घोषणा की कि भारत एक अविभाज्य है; यह निश्चय भी किया कि संघ जापान सरकार से युद्धसाम की जो सहायता लेगा वह उधार रूप में होगी। इस सम्मेलन के बाद स्व० भा संघ की शाखाएँ समूचे पूर्वी एशिया में फैल गईं। सब जगह ये भारतीयों भलाई के सब काम करतीं, उनमें शिक्षा फैलातीं तथा आत्माभिमान भ्रातृभा और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के भाव जगातीं।

§७. क्रिप्स पेशकश और 'भारत छोड़ो' घोषणा—इधर भार में अंग्रेजों के दमनचक्र के मुकाबले में स्वयं कुछ न कर पाने से जनता खीझ दिन-ब-दिन बढ़ती गई। १९४०-४१ से अनाज और अन्य आने वस्तुओं के यातायात, बिक्री और मूल्य पर नियन्त्रण कर सरकार उन्हें युद्ध में भेजने को खरीद रही थी। जनता को अन्नवस्त्र कठिनाई से मिलता था कांग्रेस ने कराची अधिवेशन (१९३१) में यह घोषणा की थी कि अंग्रेज ने भारत पर मनमाने ढंग से जो ऋण लाद दिया था, स्वतन्त्र होने पर भार उसकी निष्पक्ष जांच करायगा और उचित अंश को ही स्वीकार करेगा। कि अंग्रेजी सरकार अब जांच का मौका दिये बिना ही भारत के सिर थोपे ऋण को स्वयं वसूल कर उसी के मूल्य से भारत से अन्न और युद्ध-साम खरीद रही थी; जब यह ऋण पूरा वसूला जा चुका तब भारत से ऋण में युद्ध-सामान खींचती रही। इस जबरदस्ती चुकाये गये और जबरदस्ती लि गये ऋण के मूल्य का माल जनता से खरीदने को विशाल संख्या में कागा नोट छापे गये, जिनकी बाढ़ से वस्तुओं के दाम बढ़ते गये। भारत में चल

वाले कागज़ी नोटों के पीछे भारत का जो स्वर्ण-भण्डार था, वह पहले से ही लन्दन में रक्खा गया था और अब युद्धसामग्री की खरीद में खर्चा गया। यदि युद्ध में अंग्रेज़ यदि हारते तो भारत में चलने वाले ये कागज़ी नोट निरे कागज़ की कीमत के रह जाते। जापानियों के बरमा पहुँचते पहुँचते अंग्रेज़ी सरकार ने उनकी चढ़ाई की आशंका से बंगाल से जनता के काम आने वाले धान के भंडार हटा लिये। उड़ीसा, बिहार, मद्रास और पूर्वी युक्तप्रान्त से भी सामान हटाने और पुलों, रेलमार्गों, बिजलीघरों, पानीकलों आदि को तोड़ कर हट आने की योजनाएँ हाकिमों के पास भेजी जा रही थीं, जिनमें पीछे रहने वाली जनता को क्या कष्ट होगा इसकी जरा भी परवा न की गई थी।

यह सब चलता था जब मार्च १९४२ में ब्रितानिया का दूत स्टैफर्ड क्रिप्स भारत के नेताओं से बात करने दिल्ली आया। उसकी पेशकश यह थी कि भारत के नेता जापान के विरुद्ध युद्ध में पूरा सहयोग दें तो युद्ध के बाद भारत को ब्रितानवी साम्राज्य में उपराज्य (डोमीनियन) पद दिया जायगा और अभी केन्द्र में सर्व-दल सरकार बना दी जायगी। पर भारत की जनता अंग्रेज़ी साम्राज्य को बचाने के लिए जापानियों से लड़ने को तैयार न थी। अतः गान्धी क्रिप्स की पेशकश को दिवालिया बैंक की बाद की तारीख की हुंडी कह कर उसकी बातचीत में सम्मिलित होने से इनकार कर दिल्ली से चले गये। पर जवाहरलाल नहरू और उनके विचार के वे नेता जो अंग्रेज़ों की हार और जापान-जर्मनी की जीत की आशंका से चिन्तित थे तथा जिनका गान्धी से मत-भेद जुलाई १९४० से प्रकट हो चुका था, बातचीत करते रहे। अंग्रेज़ी सरकार ने देखा कि उन नेताओं के साथ होने से भी वह भारत की जनता से युद्ध में उससे अधिक सहयोग न पा सकेगी जितना वह जोर-जुल्म से ले रही है, इसलिए बातचीत का सिलसिला तोड़ दिया।

इसके बाद गान्धी की प्रेरणा से मई में कांग्रेस की महासमिति ने यह घोषणा की कि अंग्रेज़ भारत छोड़ चले जायँ—वे भारत में बने रहेंगे तो जापानी उन्हें निकालने के नाम पर भारत पर चढ़ाई कर सकते हैं। ८ अगस्त की अपनी बैठक में उसने जनता को पुकारा कि इस घोषणा को चरितार्थ कराने को संघर्ष

छेड़ दे। मुख्य नेता तो अगले सबेरे तक पकड़ लिये गये; पर जनता जगह जगह उठ खड़ी हुई। अनेक स्थानों पर प्रदर्शन करते समय वह गोलियों की मार से भी नहीं टली और सभी जगह उसने छातियों पर गोलियाँ झेलीं। अंग्रेजों के युद्धोद्योग में बाधा पहुँचाने को उसने यातायात, संचार-साधनों और युद्ध सामग्री को नष्ट करने का मार्ग पकड़ा। पूर्वी युक्तप्रान्त और बिहार में तथा बंगाल के मेदिनीपुर जिले में संघर्ष का सबसे अधिक ज़ोर रहा। पूर्वी युक्तप्रान्त से असम-बरमा सीमान्त तक जाने वाली अवध-तिरहुत रेलवे उस समय युद्ध की दृष्टि से सब से महत्त्व की प्रणाडी थी। उसे जनता ने उखाड़ फेंका। जनता आशा कर रही थी कि बरसात बाद जापानी और आजाद हिन्द फौज भारत पर चढ़ाई करेगी, इसलिए अक्तूबर नवम्बर तक संघर्ष पूरे ज़ोर पर रहा। उसके बाद धीरे धीरे वह ढीला पड़ता गया।

§८. आ० हि० फौ० में संकट खड़ा होना—अगस्त १९४२ की भारत की घटनाओं के समाचार मलाया पहुँचने पर मोहनसिंह ने एक नया दल भारत से सम्पर्क करने को बरमा मोर्चे पर भेजा। सीमा पर पहुँचने पर इस दल का एक व्यक्ति जो मोहनसिंह का अति विश्वस्त था, आ० हि० फौ० के अत्यन्त गोपनीय कागज लिये हुए अंग्रेजों से जा मिला। जापानी इसके बाद आ० हि० फौ० के साथ बर्त्तने में कुछ सावधानी करने लगे।

शुरू अक्तूबर में आ० हि० फौ० की सब इकाइयों का अगुआ दल बरमा भेजा गया जिससे वह नवेम्बर-दिसम्बर में आने वाली बड़ी सेना के लिए प्रबन्ध कर रक्खे। पर इधर मोहनसिंह और उनके साथियों ने कई छोटी बातों को ले कर जापानियों से बिगाड़ ली। जापानी जंगी जहाज जब सिंगापुर से आ० हि० फौ० को बरमा ले चलने को तैयार खड़े थे, तब मोहनसिंह ने सेना को चलने का आदेश न दिया और स्व० भा० सं० की कार्यसमिति ने इस्तीफा दे दिया। रासविहारी ने कहा कि वे उन सब छोटी उलझनों को सुलझा देंगे और मोहनसिंह से आग्रह किया कि सेना के कुछ मुख्य अफसरों को उनके पास भेजें तो उन्हें स्थिति को पूरी तरह समझा दें। पर मोहनसिंह ने किसी भी अफसर को उनसे मिलने न दिया। इसपर स्व० भा० संघ के सभापति की हैसियत से रा

विहारी ने मोहनसिंह को जो सेनापति ('जनरल') का पद दिया था, वह छीन कर मोहनसिंह की गिरफ्तारी का आदेश दिया। मोहनसिंह ने पहले से ही वैसी आशंका से अपने साथियों से कह रक्खा था कि वे आ० हि० फौ० को तोड़ दें। सो उन लोगों ने अपने शस्त्र इकट्ठे कर रख दिये, बिल्ले जला दिये, सैनिक शिक्षा बन्द कर दी और अपने को युद्ध-कैदी बनाने के लिए पेश किया। जापानियों ने उन्हें कैदी बनाने से इनकार किया।

१९४१-४२ के पाँच महीनों में जापानियों ने दक्खिनपूरबी एशिया से चार शताब्दी पुरानी पच्छिमी युरोप की प्रभुता उखाड़ फेंकी थी। किन्तु एशिया में युरोपी शक्ति की धुरी अंग्रेज़ों का भारतीय साम्राज्य था, जिसके किनारे पहुँच कर वे रुक गये थे। अंग्रेज़ और अमरीकी उस समय जापान के मुकाबले को तैयार न थे। भारत के पूर्वी सीमान्त से भी कभी कोई बड़ा शत्रु आ सकता है यह बात अंग्रेज़ों ने कभी सोची भी न थी। १९४२ की गर्मियों में वे बंगाल उड़ीसा आन्ध्र और तमिळ तट तथा असम से लखनऊ तक के प्रदेश को छोड़ कर झाड़खंड से राजस्थान तक मध्यमेखला के पहाड़ी प्रदेशों में छापेमारी लड़ाई की योजनाएँ बना रहे थे। भारतीय समुद्र में भी उनका कोई प्रबल बेड़ा न था जिससे अंग्रेज़ों को अपने अफरीकी साम्राज्य के लिए भी ऐसा खतरा दिखाई दिया कि उन्होंने मदगास्कर द्वीप में, जो जर्मनों के वशंवद फ्रांसीसियों के हाथ में था, अपनी सेना उतार दी (मई '४२)। अमरीकियों ने पहली मार खाते ही अपने महान् कारखानों से अमित युद्धसामग्री बनाना शुरू कर दिया था। इसे ले कर प्रशान्त महासागर के एक-एक टापू को जीतते हुए जापान तक पहुँचना उनके लिए एक रास्ता था। पर केवल इससे वे जापान को हरा न सकते यदि भारत से भी अंग्रेज़ों के पैर उखड़ गये होते तथा यहाँ की अड़ैत सेना और खेतों खानों कारखानों की उपज उन्हें प्राप्त होने के बजाय उनके विरुद्ध खड़ी हो गई होती।

अपने देश से ५,००० मील पर भारत की सीमा पर पहुँच कर जापानियों को भी दिखाई दिया कि भारतीयों के पूरे सहयोग के बिना वे भारत के २००० मील के फैलाव में आगे बढ़ते नहीं जा सकते। भारतीय क्रान्तिकारियों ने जापान

और भारत का वैसा सहयोग स्थापित कर १९४२ में ही भारत पर चढ़ने का यत्न किया, जब कि भारत की जनता भी उनकी राह देख रही थी। पर वह दुर्लभ अवसर उन्हें इस कारण चूकना पड़ा कि वे आ० हि० फौ० के संघटन और संचालन के लिए भी उन लोगों पर निर्भर थे जो कल तक अंग्रेज़ों के भाड़ैत थे और जो ऐन मौके पर डगमगा गये कि कहीं हम जापानियों के भी हथियार न बन जायँ! १९२३-२४ में भारतीय क्रान्तिकारियों ने जापान से सम्पर्क करके जो तैयारी शुरू की थी [११,६§६], यदि तुच्छ त्रास और प्रदर्शन के कार्यों में पड़ कर उसे बिगाड़ न लेते, तो एक तो अब उनके पास अपने अनुभवी सेना-नायक तैयार होते और दूसरे, जापानी राजनेताओं और भारतीय क्रान्तिकारियों ने इस प्रकार एक दूसरे के उद्देश्यों को समझा हुआ और आपसी सब समस्याओं को सुलझाया हुआ होता कि अब वे यों रहने को विवश न होते।

§९. आ० हि० फौ० का पुनःसंघटन और आज़ाद हिन्द सरकार की स्थापना—मलाया में हारी अंग्रेज़ों की भारतीय सेना में *जगन्नाथ भोंसले, लोकनाथन, अनिल चटर्जी आदि कई अफसर मोहनसिंह से* ऐंठे थे, जो आ० हि० फौ० के विघटन के विरोधी थे। रासबिहारी ने इनकी सहायता से फरवरी १९४३ तक नई आ० हि० फौ० खड़ी कर ली। उक्त नायकों के अतिरिक्त शाहनवाजखाँ, मुहम्मद ज़मान कियानी और एहसान कादिर ने इस बार के संघटन में प्रमुख भाग लिया। नई फौज में दनादन भरती होने लगी। अप्रैल १९४३ से लक्ष्मी स्वामिनाथन् ने एक स्त्रियों का जत्था बनाना शुरू किया, जिसे लड़ाई और परिचर्या दोनों की शिक्षा दी जाने लगी। बाद में वह झाँसी-रानी जत्था कहलाया।

अपनी ढलती आयु और २७ बरस से देश के बाहर रहने के कारण रासबिहारी के लिए इस सेना का नेतृत्व करना शक्य न था, इसलिए उन्होंने सुभाषचन्द्र बसु को जर्मनी से बुलाया। सुभाष फिर अपनी जान हथेली पर लिये एक जर्मन पनडुब्बी से मदगस्कर और फिर एक जापानी पनडुब्बी से पिनाङ पहुँचे। तोकियो हो कर वे सिंगापुर वापिस आये जहाँ रासबिहारी ने उन्हें स्वतन्त्र भारत संघ का नेतृत्व सौंपा; तब से वे 'नेताजी' पद से प्रसिद्ध हुए।

२१ अक्तूबर १९४३ को सिंगापुर में, जिसके नाम में प्राचीन भारतीय उपनिवेश सिंहपुर की याद बनी है, स्व० भा० संघ का बड़ा सम्मेलन जुटा कर आरज़ी आज़ाद हिन्द सरकार की स्थापना की घोषणा यों की गई—"...चूँकि, हिन्दुस्तान के सब नेता जेलों में हैं और देश के भीतर लोग...निहत्थे हैं, अतः अब पूर्वी एशिया के स्वतन्त्र भारत संघ का कर्त्तव्य है कि वह आरज़ी आज़ाद हिन्द सरकार बना ले। आरज़ी सरकार को इसका हक है और वह इसकी माँग करती है कि हिन्दुस्तानी उसके तईं वफादार रहें।...वह भारत के लोगों को भरोसा दिलाती है कि उन्हें...समान अधिकार प्राप्त होंगे...हम हिन्दुस्तान के लोगों का आवाहन करते हैं कि हमारे झंडे के नीचे इकट्ठे हों...।" सुभाषचन्द्र ने आरज़ी सरकार के प्रमुख रूप में शपथ ली। चार दिन बाद आज़ाद हिन्द सरकार ने ब्रितानिया और अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की।

§१०. **बंगाल दुर्भिक्ष**—१९३९ में सुभाष कांग्रेस से निकाले गये थे, पर बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस में उन्हीं का बहुपक्ष था। कांग्रेस के अध्यक्ष ने बंगाल कांग्रेस को स्थगित कर नई प्रान्तीय कांग्रेस खड़ी करने का यत्न किया। तब बंगाल में दो कांग्रेसें हो गईं और विधान-सभा के कांग्रेसी सदस्य भी दो टोलियों में बँट गये। उधर फजलुल-हक की भी मुस्लिम लीग से बहुत दिन न पटी। दिसम्बर १९४१ में हक ने सुभाष के बड़े भाई शरच्चन्द्र की सहायता से नया सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बनाया। शरत् को इसके शीघ्र बाद भारत-सरकार ने नजरबन्द कर दिया। १९४२ में अंग्रेज़ बरमा से हटते समय अराकान का सब अनाज नष्ट करते आये थे; फिर बंगाल से भी उन्होंने सब अन्न-भंडार हटा लिये। यों बंगाल की स्थिति बड़ी नाजुक हो गई। मार्च १९४२ में गवर्नर ने हक को इस्तीफा देने को बाधित किया और उसके बाद धींगाधांगी से मुस्लिगलीगी मन्त्रिमण्डल स्थापित किया। प्रान्त में अनाज पहले ही कम था जो था उसे भी भ्रष्ट मन्त्रिमण्डल के कृपापात्र नफाखोरों ने रोक कर बहुत महँगा कर दिया। आज़ाद हिन्द सरकार की ओर से सुभाषचन्द्र वसु ने बरमा और स्याम का चावल बंगाल भेजने का प्रस्ताव किया। किन्तु अंग्रेज़ी सरकार ने वह न माना और ३५ लाख आदमी भूख से तड़प कर तथा १२ लाख बीमारी से

मरने दिये।

बंगाल की तरह सिंध में भी गवर्नर ने अक्तूबर १६४२ में अल्लाबख्श को प्रधानमन्त्री पद से हटा कर मुस्लिमलीगी मन्त्रि-मण्डल स्थापित कराया। सात मास बाद अल्लाबख्श की हत्या की गई। पीछे उनके भाई मौलाबख्श ने राष्ट्रवादी मुस्लिमों का दल बनाया, पर उन्हें भी कांग्रेस पक्ष का समर्थन न मिला।

बंगाल दुर्भिक्ष की चर्चा फैलने से भारत में अंग्रेजी राज की बड़ी बदनामी हुई तो लिनलिथगो को वापिस बुला कर भारत के तत्कालीन सेनापति वेवल को गवर्नर-जनरल बनाया गया। वेवल ने ऐसा उपाय किया कि बंगाल के गाँवों से भूखे मरते लोग कलकत्ते न आने पायें।

§११. आज़ाद हिन्द फौज की भारत चढ़ाई—आ० हिं० फौ० की बागडोर थामते ही सुभाषचन्द्र ने उसे 'चलो दिल्ली' का मन्त्र और 'जय हिन्द' का नारा दे कर रवाना किया और स्वयं भी रंगून आ टिके। बरमा के जापानी सेनापति के साथ उन्होंने तय किया कि आ० हिं० फौ० अपने सेना-नायकों के मातहत रहेगी और उसका नियमन अपने फौजी कानून से होगा, जापानी सेना के साथ वह भारत के जिस जिस अंश को मुक्त कराती जायगी उसपर तिरंगा फहरायगा और उसका शासन मेजर-जनरल अनिल चटर्जी करेंगे। उन्होंने और उनकी प्रेरणा से जापानी सेनापति ने भी अपने सैनिकों को आदेश दिया कि भारत की भूमि पर कोई भी सैनिक लूटमार या बलात्कार करने लगे तो उसे फौरन गोली मार दी जाय।

१६४२-४३ में अमरीकी युद्धसामग्री और सेना भारत में बराबर जुट रही थी। '४३ में जापानी बेड़े और वायु-बेड़े को प्रशान्त के मोर्चे पर जाना पड़ा और बरमा पर लगातार हवाई मार पड़ती रही जो बड़ी चढ़ाई की तैयारी थी। अंग्रेज-अमरीकियों की समूची पूर्वी एशिया की चढ़ाई का संचालन लुई मौंटबाटन कर रहा था। उनकी मुख्य सेना असम के पूर्वी छोर से इरावती दून में उतर कर म्यितचीनः ('म्यतकिना') से रंगून तक रेलपथ के साथ बढ़ने को थी। मणिपुर, लुशाई-चिन और अराकान से दूसरी सेनाएँ उसका साथ देने को थीं। इस चढ़ाई के लिए जब पूर्वी असम में पूरी सेना जुट गई, और विमानों

अंग्रेज़ी सेना दिन में विमानों तोपों टंकों के सहारे बढ़ती और रात को कँटीले तारों में घिरी रहती। जापानी और आजाद हिन्द सेना दिन में खेतों जंगलों में लुकती और रात को बिना रोशनी के चल कर छोटे शस्त्रास्त्र से शत्रु पर हमले करती।

५-३-१९४५ को अंग्रेज़ों ने मित्थिला ले लिया। जापानी एक मास तक उसे वापिस लेने को हमले करते रहे। मित्थिला चले जाने के बाद मध्य बरमा में प्रतिरोध जारी नहीं रह सकता था, पर जापानियों ने बरमा के पहाड़ी प्रदेश—अराकानयोमा और पगूयोमा—में अन्त तक लड़ना तय किया। अंग्रेज़ों ने अपने शासनकाल में बरमियों को कभी सेना में स्थान न दिया था; जापानियों ने उन्हें पहलेपहल आधुनिक युद्धकला की शिक्षा दी थी। मार्च १९४५ में बरमी जनरल औं सां को जापानियों ने बरमी सेना के साथ अराकानयोमा के मोर्चे पर भेजा। औं सां और उनकी सेना थ्येत्म्यो पहुँच कर जापानियों पर उलट पड़े! जापानियों ने उनका विद्रोह दबाने को आ० हि० फौ० से सहायता माँगी; पर आ० हि० फौ० ने बरमियों पर शस्त्र चलाने से इनकार किया। बरमी विद्रोह से बरमा में जापानी प्रतिरोध की कमर टूट गई, पर इस दशा में भी मित्थिला, प्पोपा और मग्वे के मोर्चों पर वे और आ० हि० फौ० अप्रैल तक लड़ते रहे। अन्त में जब शत्रु ने मित्थिला के सौ मील दक्खिन बढ़ कर उन्हें घेर लिया, तब वे पीछे हटे। कुछ दस्ते शत्रु की पाँतों को भी चीरते निकल गये, कुछ ने वीर-गति प्राप्त की, और कुछ ने अन्तिम गोली चुकने तक लड़ कर इसलिए हथियार रक्खे कि आ० हि० फौ० की कहानी भारत पहुँच जाय। लौटती आ० हि० फौ० को औं सां ने पूरी सहायता दी।

जापानी सेना का एक अंश पगूयोमा में चला गया जहाँ वह जुलाई अन्त तक लड़ता रहा। शेष सेना को मौलम्यैं ('मोलमीन') हटने का आदेश मिला। २३-४-१९४५ को उन्होंने रंगून खाली किया। सुभाष झाँसी-रानी जत्थे की बरमा वाली सैनिकाओं को उनके घर पहुँचा कर, शेष को और प्रेमसिंह तूड़ी के आदेश में ६०० सैनिकों के "जाँबाज़" जत्थे को साथ ले कर तथा १००० के एक दस्ते को मे० जन० लोकनाथन् के आदेश में अंग्रेजों के आने

तक रंगून में व्यवस्था रखने का भार दे कर २४ अप्रैल की रात वहाँ से चले। सिताङ नदी से पहले ही उनकी सब सवारियाँ शत्रु-विमानों ने नष्ट कर दीं; तब मोलम्यें तक वे पैदल गये। रंगून छोड़ते समय उन्होंने कहा था—"हम अपनी लड़ाई के पहले दौर में हार गये हैं...अभी हमें कई दौरों में लड़ना है।" सो वे नई लड़ाई की तैयारी में बंकोक और मलाया में वहाँ की आ० हि० फौ० को तैयार करते रहे। युरोप में ७-५-१६४५ को जर्मनों ने हथियार रख दिये, तो भी सुभाष का कहना था कि "पूर्वी एशिया के युद्ध का अन्तिम परिणाम चाहे जो हो, वह युद्ध लम्बा और कड़ा होगा।" प्रशान्त के एक-एक टापू में जापानी अन्तिम दम तक लड़ रहे थे।

मणिपुर कोहिमा से लौटा आ० हि० फौ० का पहला विभाग प्यिंमन: ("पिनमना") में था। उसमें जो बीमार न थे, उनका 'ख' जत्था बना कर कर्नल ठाकुरसिंह के आदेश में रक्खा गया था। शत्रु के रंगून ले लेने तक वह लड़ता रहा। अन्त में ठाकुरसिंह अपने हजार योद्धाओं के साथ पूरब हट कर शत्रु पाँतों और पहाड़ी जंगलों में से रास्ता काटते मोलम्यें जा निकले और वहाँ से बंकोक। ये लोग शुरू १६४४ से चलने लगे थे, २७-५-१६४५ को बंकोक पहुँचे। मलाया से मणिपुर हो कर बंकोक तक उनकी युद्धयात्रा की कहानी सामरिक इतिहास में अनूठी है।

§१३. दूसरे विश्व-युद्ध का अन्त—जर्मनी से युद्ध समाप्त होने पर जून १६४५ में कांग्रेस कार्यसमिति जेलों से छोड़ दी गई और वाइसराय वेवल ने घोषणा की कि वह अपनी शासन-समिति भारत के राजनीतिक दलों के नेताओं से बनाने को तैयार है, बशर्ते कि वे पूर्वी एशिया के युद्ध में सहयोग दें और कि उस समिति में सवर्ण हिन्दुओं के प्रतिनिधि रूप में कांग्रेस के और मुसलमानों के प्रतिनिधि रूप में मुस्लिम लीग के बराबर प्रतिनिधि होंगे। इसपर सुभाष चन्द्र बसु ने सिंगापुर रेडियो पर कांग्रेस नेताओं से कहा कि कांग्रेस का अपने को केवल सवर्ण हिन्दुओं का प्रतिनिधि मान कर और युद्धोद्योग में सहायता का वचन दे कर शिमला-सम्मिलनी में जाना आत्महत्या के समान होगा, और कि यदि कांग्रेस नेता वैसा करेंगे तो भी पूर्वी एशिया के भारतीय आजाद हिन्द

सरकार के अधीन युद्ध जारी रक्खेंगे ही। इसपर भी कांग्रेस के नेता शिमला-
ः सम्मिलनी में शामिल हुए ही। फल भी कुछ न निकला, क्योंकि मुस्लिम लीग
इ ने आग्रह किया कि शासन-समिति में जो मुसलमान लिये जायँ वे उसी के
आदमी हों। अंग्रेज़ी सरकार को कांग्रेस का सहयोग लेने की गरज होती तो
ट मुस्लिम लीग से वैसा आग्रह न करवाती; उसे केवल यह देख लेना और दिखा
व देना था कि कांग्रेस अपनी हार मान कर कहाँ तक झुकने को तैयार है।

प्र जुलाई के पहले सप्ताह में ब्रितानिया में निर्वाचन हुए। विन्स्टन चर्चिल
ने इस युद्ध में प्रधानमन्त्री रहा था और पहले विश्व-युद्ध में भी ब्रितानिया को
ने जिताने में उसका बड़ा हाथ था। पर ब्रितानिया के लोग युद्धजनित अवस्थाओं
बरा से थक और ऊब चुके थे, उन्होंने चर्चिल पक्ष को हटा कर बड़े बहुमत से मज़दूर
मो पक्ष को पदासीन किया।

उल उधर अमरीकियों ने सीधी लड़ाई से ऊब कर परमाणु बम नामक
माँग अत्यन्त संहारक अस्त्रों का प्रयोग शुरू किया। सब पदार्थों के परमाणुओं से
विद्रो बने होने की स्थापना प्राचीन भारतीय और यूनानी दार्शनिकों ने की थी।
मिति उनका विचार था परमाणु के खंड नहीं हो सकते पर हमारे सांख्य दार्शनिकों
लड़ा का कहना था कि परमाणु भी गुणों या शक्तियों का समुच्चय है। आधुनिक
वेर। वैज्ञानिक १९वीं शताब्दी के अन्त तक परमाणु को अखंड्य तथा पदार्थ और
गये, शक्ति को भिन्न भिन्न मानते रहे। पर तब उन्हें इसके प्रमाण मिले कि परमाणु
इसलि भी विद्युत्-शक्तिकणों का समुच्चय है। उन शक्तिकणों को अलग करने के परी-
लौटते क्षण होने लगे। १९३९ में युद्ध शुरू होने से पहले जर्मन वैज्ञानिक ओटो हान
को परमाणु में ग्रथित शक्तिकणों का विशरण कर उस शक्ति से काम लेने की
ग्रन्त दिशा में सफलता मिली। हान की एक यहूदी शिष्या इस खोज में उसके साथ
मेला थी। जर्मनी में यहूदियों का दमन चल रहा था जिससे उसे देश छोड़ना पड़ा।
अत्ये क अंग्रेज़-अमरीकियों ने उसके ज्ञान का लाभ उठाया। जर्मन परीक्षणशालाओं
तूड़ी में जब बमवर्षा के कारण काम न हो सका तभी अमरीका में परमाणु की
१,००० विशीर्ण शक्ति द्वारा चलने वाले बम तैयार हो गये। उनके द्वारा जो विस्फोट-
परम्परा चलती वह बड़े क्षेत्र में सभी प्राणियों को नष्ट या पंगु कर देती।

आजाद हिन्द फौज का युद्ध
१९४४–४५
डिब्रूगढ़
ब्रह्मपुत्र
जोरहाट
गोहाटी
कोहिमा
इम्फाल
विशनपुर
ढाका
नारायणगंज
म्यितचीन
यून्नान
लाशियो
मन्दले
थाजी
मितियला
शान — रियासतें
हिन्दचीन
पोपा
येनांग
चटगाँव
आक्याब
अराकान योमा
प्यिमना

५ और ६ अगस्त १९४५ को अमरीकियों ने जापान के दो नगरों—हिरोशिमा और नगासाकी—पर वैसे बम फेंक उन्हें मटियामेट कर दिया।

अमरीकी मंचूरिया पर भी अधिकार न कर लें इस डर से रूस ने जापान से युद्ध छेड़ मंचूरिया पर चढ़ाई की। निरीह जनता का संहार होते देख १५-८-१९४५ को जापान ने हथियार रख दिये। अगले दिन सुभाषचन्द्र सिंगापुर से बंकोक आये। जापान से यह घोषणा की गई कि १८-८-४५ को तोकियो आते हुए तैवान (फ़ौरमोसा) द्वीप पर विमान गिरने से उनकी मृत्यु हुई।

युद्ध में चीन अंग्रेजों का मित्र रहा था। पर हाङ्काङ से जापानी सेना हटते ही अंग्रेजों ने वहाँ झट अपनी सेना डाल दी कि चीनी अपने उस बन्दरगाह को वापिस न ले लें। हिन्दचीन और हिन्द-द्वीपों (इंदोनीसिया) से जापानियों के हटने पर वहाँ के राष्ट्रवादियों ने, जिन्हें जापानियों ने अपने शासन में अच्छी युद्ध-शिक्षा और जाते समय यथेष्ट शस्त्रास्त्र दे दिये थे, अपना गणराज्य स्थापित कर स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। ये देश पहले फ्रांस और हौलैंड के अधीन थे। अंग्रेजों ने इनमें तुरंत भाड़ैत भारतीय सेना भेजी जिससे कि यह फ्रांस और हौलैंड की सेनाएँ वहाँ पहुँचने तक नये गणराज्यों को कुचल दे या दबाये रक्खे। फ्रांस और हौलैंड स्वयं जर्मनी द्वारा रौंदे जा चुके थे, पर अब वे अमरीका से पाये शस्त्रास्त्रों द्वारा अपना साम्राज्य वापिस लेना चाहते थे। हिन्द-द्वीपों में जो भारतीय सेना भेजी गई उसमें से कुछ वहाँ के देशभक्तों से जा मिली, और कुछ को जब उनपर गोली चलाने को कहा गया तब उसने आसमान की ओर गोलियाँ चलाईं। वहाँ संघर्ष जारी रहा। ब्रितानिया की "समाजवादी" मजदूर सरकार ने जिस तत्परता से हाङ्काङ को हथियाया और हिन्दचीन और हिन्दद्वीपों में युरोपी साम्राज्य बनाये रखने को भाड़ैत भारतीय सेना भेजी, उससे स्पष्ट प्रकट हुआ कि इंगलिस्तान के मजदूर नेता भी दूसरे अंग्रेजों से किसी तरह कम साम्राज्यलिप्सु नहीं हैं। उनके समाजवाद का केवल यह अर्थ है कि साम्राज्य की लूट को ब्रितानिया के मजदूर भी पूँजीपतियों के बराबर भोगें।

दूसरे विश्व युद्ध में भारत सरकार प्रतिवर्ष कई अरब रुपया युद्ध पर खर्च करती रही। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ों ने भारत पर थोपा हुआ अपना ४६६ करोड़ रु० का ऋण चुका लिया तथा १६ अरब रुपये का माल ऋण रूप में जबरदस्ती ले लिया। वह भारत का स्टर्लिंग (पौंड) पावना कहलाता है।

§ १४. **नौसेना-विद्रोह**—आज़ाद हिन्द फौज के जो नायक अंग्रेज़ों के हाथ पड़े, उन्हें उन्होंने सैनिक कानून से दण्ड देने की तैयारी की। उसे देख जनता में उनके पक्ष में अनायास लहर उमड़ पड़ी, जिससे स्थान-स्थान पर प्रदर्शन हुए और उन्हें छुड़ाने की माँग की गई। नवम्बर १६४५ में दिल्ली के लाल किले में आ० हि० फौजियों का पहला मुकदमा शुरू हुआ। उससे आ० हि० फौ० सम्बन्धी घटनाएँ जैसे जैसे प्रकाश में आईं, वैसे वैसे देश में वह लहर उत्कट होती गई। कलकत्ते में विद्यार्थी और मजदूर प्रदर्शनकारी गोलियों की बौछार से भी पीछे न हटे। अन्य शहरों में भी वैसे प्रदर्शन होने लगे। १६४२ के बाद यह जनता का दूसरा उत्थान था। आ० हि० फौ० के नायकों में मुस्लिम अधिक थे। भारत के अनेक कैदी-शिविरों में आ० हि० फौजियों को लाने के बाद अंग्रेज़ों ने उनमें फिर से हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव खड़ा करने की जी-तोड़ कोशिशें कीं, जो सब बेकार हुईं। इन बातों का भारत की मुस्लिम जनता पर भी प्रभाव हुआ। इसलिए जनता के इस उत्थान में हिन्दू मुस्लिम सब दिल से साथ थे, और इससे साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने का कृत्रिम आन्दोलन फीका पड़ गया। अन्त में जनवरी १६४६ में पहले तीन अभियुक्तों को नाम की सजा दे कर छोड़ दिया गया। किन्तु और मुकदमे चलते रहे, और ११ फरवरी को एक अभियुक्त को सात वर्ष की सजा सुनाई जाने पर कलकत्ते में फिर संघर्ष शुरू हुआ जो सात दिन चला।

उसी प्रसंग में १८ फरवरी को मुम्बई में भारतीय नौसैनिकों ने शान्तिमय विद्रोह किया। उन्होंने जंगी जहाजों पर से अंग्रेज़ी झंडे उतार कर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के झंडे फहरा दिये, और आ० हि० फौजियों को छोड़ने तथा हिन्द-द्वीपों (इंदोनीसिया) से भारतीय सेना लौटाने की माँग की। नौ-सेना का विद्रोह कलकत्ता, विशाखापट्टन, मद्रास और कराची में भी फैल गया; वायुसेना

का कुछ अंश भी उसमें संमिलित हुआ; मुम्बई में तीन लाख मिल-मजदूरों ने सहानुभूति में हड़ताल की । हड़तालियों को दबाने को भारतीय सेना बुलाई जाती तो वह भी उनसे मिल जाती इसलिए गोरी सेना से हड़तालियों पर गोली चलवा कर २५० को मारा गया । कराची में हड़ताली नौसैनिकों को दबाने का यत्न किया गया तो उन्होंने भी अपने जहाजों से गोलाबारी आरम्भ की।

सेना और जनता के उस एक साथ उत्थान को आगे मार्ग दिखाने वाले कोई सैनिक-राजनीतिक नेता भारत में न थे । यों १६वीं शताब्दी के भारत में नेतृत्व के अभाव की जो कमजोरी बार बार प्रकट हुई थी [११,६§१०], वह अब फिर वैसे ही स्पष्ट रूप में दिखाई दी जैसे १८५७ में राजस्थान में दी थी [११,५§४(३)] । कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के नेताओं ने कम से कम एक बार सहमत हो कर इस उत्थान की निन्दा की। कांग्रेस के नेताओं ने भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए सेना को अपने साथ लेने की कभी कल्पना न की थ [११,६§८] । सो अब उन्होंने और उनकी देखादेखी मुस्लिम लीग के नेताओं ने नौसैनिकों से अनुरोध किया कि आत्मसमर्पण कर दें, जिस पर २३ फरवरी के नौसैनिकों ने हड़ताल समाप्त कर समर्पण कर दिया । पर आजाद हिन्द फौज की जिस छूत ने उन्हें जगाया था वह आगे और फैलती ही गई। अगले महीने में सेना और पुलिस के कर्मचारियों ने अनेक स्थानों पर हड़तालें कीं।

तभी कश्मीर में नया आन्दोलन चला । कश्मीर राज्य गुलाबसिंह को सन् १८४६ में अपनी गद्दारी के पुरस्कार में तथा ७५ लाख रुपया नजरान दे कर मिला था [११,३§१७] । कश्मीर के नेता शेख अब्दुल्ला ने कहा, ७५ लाख रु० से कश्मीरी जनता की पीढ़ी-दर-पीढ़ी को कोई खरीद नहीं सकता और महाराजा अब कश्मीर छोड़े । अब्दुल्ला को इसपर जेल दी गई।

§१५. अंग्रेजों का भारत छोड़ने का संकल्प—भारत में अंग्रेज राज की नींव भाड़ैत भारतीय सेना पर पड़ी थी [१०,२§२;११,५§§१,१०], भारत के बाहर भी अंग्रेजी साम्राज्य उसी के जोर पर खड़ा हुआ था [११,१§१६ ११,२§§८,१२; ११,४§३; ११,७§§६,७,८,१०,१२,१४; ११,८§§२,१०,११] सेना और पुलिस में आजाद हिन्द फौज की छूत फैल जाने से १६४६ में व

नींव हिल गई। यदि इसके बाद भी अंग्रेज़ भारत में बने रहते तो कभी अकस्मात् बड़े विद्रोह में उन सब के एक साथ फँस जाने का खतरा होता। इसलिए उन्होंने भारत छोड़ने का इरादा किया। १८ फरवरी को भारतीय नौसेना की हड़ताल शुरू हुई थी; १९ फरवरी को ब्रितानिया के प्रधानमन्त्री ऐटली ने पार्लिमेंट में कहा कि ब्रितानवी मन्त्रिमण्डल के प्रतिनिधि भारत जा कर वहाँ के नेताओं से भारत को स्वतन्त्रता देने के बारे में बातचीत करेंगे।

भारत के पच्छिम तरफ़ अफरीका में और दक्खिनपूरब तरफ़ आस्ट्रेलिया में अंग्रेज़ों के बड़े उपनिवेश हैं। अफरीका के करोड़ों मूल निवासियों पर कई लाख गोरे प्रभुत्व जमाये हुए हैं। आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल समूचे भारतवर्ष से पौने दो गुना है, पर उसमें गोरे उपनिवेशकों की आबादी एक करोड़ भी नहीं है। बाकी देश खाली पड़ा है, फिर भी अंग्रेज़ वहाँ गोरों के सिवाय और किसी को बसने नहीं देते। जापान से भारत तक एशिया का भूभाग संसार के सबसे घने बसे भागों में से है। इस भूभाग के देश यदि शक्त बन खड़े हों तो आस्ट्रेलिया में गोरों का एकाधिकार बना नहीं रह सकता और अफरीका में उनके साम्राज्य को भी खतरा होगा। इस दशा में भारत से हट जाने का निश्चय कर लेने के बाद भी अंग्रेज़ों का स्वार्थ इसमें था और है कि जब तक बने एशिया के ये देश उठने न पायँ, इनमें मारकाट मची रहे और इनकी प्रगति में बाधाएँ पड़ती रहें। ब्रितानवी मन्त्रि-प्रतिनिधिमण्डल इसी नीति पर चला। उसने साम्प्रदायिक आधार पर राजनीतिक शक्ति बाँटने की किचकिच को फिर जगाया, साथ ही अंग्रेज़ शासक अपने नीचे के हिन्दू और मुस्लिम अमलों में विद्वेष उभाड़ने लगे। उनकी इस शरारत को रोकने का एकमात्र उपाय नौसेना-विद्रोह जैसी और घटनाओं को उपस्थित करना था, जिससे वे स्वयं फँस जाने के डर से भारत का अधिक बिगाड़ किये बिना यहाँ से हट जाते। पर जैसा कि हमने देखा है भारत की सेना और जनता चाहे इसके लिए तैयार थी, तो भी देश में ऐसे कोई नेता न थे जो उसका निदेशन-संचालन कर सकते। भारत के सार्वजनिक जीवन के जो नेता थे उनसे अंग्रेज़ों ने उलटा अपना खेल खूब खेलवाया।

र्वाचन—१९४५-४६ के जाड़े में विधान-

सभाओं के नये चुनाव भी हुए। मुस्लिम-बहुल प्रान्तों में से सीमाप्रान्त में शुद्ध कांग्रेसी बहुमत रहा। पंजाब में मुस्लिम स्थानों में से ७३ मु० लीग ले गई और २० पुराने 'एकावादियों' को मिले—उग्र सम्प्रदायवादी मु० लीग में चले गये और बाकी एकावादियों में बचे। हिन्दू स्थान इस बार सब कांग्रेस ने जीत लिये। १७५ की सभा में कांग्रेसी, एकावादी और अकाली मिला कर ९३ थे, अतः उन्होंने सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बनाया। सिन्ध में कुल ६० सदस्यों में से राष्ट्रवादी मुस्लिम और कांग्रेसी मिला कर ३०, मु० लीगी २७ तथा युरोपी ३ आये। अंग्रेज गवर्नर ने लीगी और युरोपियों का सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बनवाया। मार्च १९४६ में लीग दल में एक की घटी हो जाने से वह मन्त्रिमण्डल हार गया, तब भी गवर्नर ने उसे बनाये रक्खा। बंगाल में ११३ मु० लीगियों के मुकाबले में स्वतन्त्र मुस्लिम केवल ९ आये थे; वहाँ लीगी और युरोपियों का मिला कर बहुपक्ष रहा। हिन्दू-बहुल प्रान्तों में सब जगह कांग्रेस को बहुमत मिला; पर उनके मुस्लिम स्थानों में मु० लीगी पहले से अधिक चुने गये। दिसम्बर १९४६ में सिन्ध में फिर निर्वाचन किया गया, तब वहाँ मु० लीगी बहुमत आया।

§१७. ब्रितानवी मन्त्रि-प्रतिनिधिमण्डल—मार्च १९४६ में तीन अंग्रेज़ मन्त्रियों का प्रतिनिधिमण्डल, जिसमें क्रिप्स भी था, भारत आया। उसने शिमले में अपने साथ बात करने को कांग्रेस और मु० लीग नेताओं की सम्मिलनी बुलाई। यह बात तीनों पक्ष कहते थे कि भारत के भावी संविधान का निश्चय चुने हुए प्रतिनिधि करें, पर मु० लीग की माँग यह थी कि मुस्लिम-बहुल प्रान्तों की अलग संविधान-सभा बने। कांग्रेसी और लीगियों के सहमत न होने पर अंग्रेज़ प्रतिनिधिमण्डल ने १६ मई को अपना निर्णय दिया। उसका सार यह था कि (१) भारत का संविधान प्रान्तीय विधान-सभाओं के सदस्यों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि मिल कर बनायेंगे; (२) भारत का एक संघ होगा जिसके हाथ में देश की रक्षा, विदेश नीति और संचारसाधन रहेंगे; (३) शासन के बाकी सब कार्य स्वायत्त प्रान्तों और रजवाड़ों के अथवा उनके मंडलों के हाथ में रहेंगे, जिनका संविधान उनके प्रतिनिधि इन तीन मंडलों में बँट कर

बनायेंगे—एक, असम-बंगाल मंडल, दूसरा पंजाब-सिन्ध-बलोचिस्तान-सीमाप्रान्त मंडल, तथा तीसरा शेष भारत का मंडल; (४) रजवाड़े अपनी इच्छानुसार किसी मंडल में सम्मिलित हो सकेंगे, या स्वतन्त्र या ब्रितानवी साम्राज्य के अन्तर्गत रह सकेंगे; (५) इन मंडलों में बने संविधान के अनुसार प्रान्तीय निर्वाचन होने के बाद कोई प्रान्त अपनी विधान-सभा के निश्चय द्वारा एक मंडल से निकल कर दूसरे में जा सकेगा; ये मंडल यह भी निश्चय करेंगे कि इनका अपना कोई साझा संविधान हो या न हो; (६) भारत की संविधान-सभा और ब्रितानिया के बीच सन्धि द्वारा हुए निश्चय के अनुसार ब्रितानिया उसे शक्ति सौंप देगा; (७) जब तक नये संविधान बनते हैं तब तक के मध्यवर्त्ती काल के लिए गवर्नर-जनरल की शासन-समिति कांग्रेस, मु० लीग और अन्य राजनीतिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों से बनेगी।

गांधी ने कहा—इन प्रस्तावों में इस दुखी देश का दुःख दूर करने का बीज है। मु० लीग ने इन्हें स्वीकार कर लिया अर्थात् उसकी पाकिस्तान की पुकार का यही अर्थ था कि वह भारत-संघ के भीतर उत्तरपच्छिमी और उत्तर-पूर्वी प्रान्तों की पूरी स्वायत्तता चाहती थी। पर कांग्रेस कार्यसमिति ननु-नच करती रही, क्योंकि उसे डर था कि उत्तरपच्छिमी और उत्तरपूर्वी संविधानमंडलों का मुस्लिम बहुपक्ष असम और सीमाप्रान्त के कांग्रेसी बहुमत को दबा कर उनके लिए ऐसा संविधान न बना दे जो उनकी इच्छा के प्रतिकूल हो, और उसे इसका भरोसा न था कि उसके बाद भी उन प्रान्तों में कांग्रेसी विचार के लोग अपनी विधान-सभाओं में बहुमत करके उन मंडलों से निकल सकेंगे। इसके अतिरिक्त मध्यवर्त्ती सरकार के विषय में भी कांग्रेस कार्यसमिति मोलतोल करती रही। उस विषय पर भी उसका और लीग का समझौता न होने पर अंग्रेज़ प्रतिनिधिमंडल ने अपनी पंचाठ यों दी कि केन्द्रीय शासन-समिति में ५ कांग्रेसी हिन्दू, ५ मु० लीगी तथा ४ अन्य सदस्य होंगे जिनमें से एक कांग्रेसी हरिजन होगा। मु० लीग ने इस निर्णय को भी मान लिया; कांग्रेस ने नहीं माना, पर कहा कि हम संविधान-सभा में जायेंगे और प्रान्तों का मंडलों में बाधित रूप से बटवारा नहीं मानेंगे, मानो उसे न मान कर अंग्रेज़ों की इच्छा-विरुद्ध कोई

संविधान बना कर चला सकने की शक्ति उसके हाथ में थी। अंग्रेज़ प्रतिनिधि-मंडल यह घोषणा करके कि इस दशा में सरकारी अफ़सरों की शासन-समिति बनेगी, जून के अन्त में वापिस चला गया। कांग्रेस के नेताओं ने वाइसराय वेवल से मोलभाव द्वारा उक्त योजना में थोड़ा फेरफार करवाने का यत्न जारी रक्खा। वे अपनी एकाध छोटी-मोटी बात मनवाने में सफल हुए तो मु० लीग ने समूची योजना को ठुकरा दिया और घोषणा कर दी कि केन्द्र में अकेली कांग्रेस की सरकार बनी तो हम 'सीधी चोट' करेंगे। इसके बाद अगस्त में कांग्रेस ने समूची योजना को मान लिया और उसकी ओर से जवाहरलाल ना ने केन्द्रीय सरकार बनाना स्वीकार किया।

१९४५-४६ के जाड़े में आज़ाद हिन्द लहर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता अद्भुत वातावरण बना दिया था। इधर तीन मास तक भारत के नेता अं नेताओं के साथ बैठ कर स्वराज्य से प्राप्य अधिकारों को साम्प्रदायिक आध पर बाँटने की जो चर्चा और उसके बाद किचकिच करते रहे, उससे वह वा वरण नष्ट हो गया। जून १९४६ से फिर साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये।

§१८. **अंग्रेज़ों का भारत को तोड़ कर जाना**—एक ओर ना ने जिना की मिन्नत आरम्भ की कि मु० लीग भी केन्द्रीय सरकार में सम्मिलि हो; दूसरी ओर १६ अगस्त से लीग 'सीधी चोट' लगाने लगी। कलकत्ते में अ मु० लीगी मन्त्रिमंडल था उस दिन हड़ताल मनवाने के नाम पर लीगी स्वेच्छ सेवकों के भेस में सरकारी वाहनों और साधनों के साथ गुंडों के दल निकल प लूटमार, बलात्कार, आग लगाना दिन-दहाड़े चल पड़ा। ये सब कार्य अत्य पाशविक ढंग से किये गये। मुस्लिम लीगियों ने जैसा किया, हिन्दुओं ने पीछे 'संघटित' हो कर उसका वैसा ही जवाब दिया। तब पुलिस और फ़ौज उन्हें दबाया। दोनों सम्प्रदायों के गरीबों पर मार पड़ी। आठ दिन तक सं चलता रहा। शहर की नालियाँ लाशों से रुँध गईं। वाइसराय वेवल ने प्रान्त "स्वशासन" में दख़ल देने में असमर्थता प्रकट करते हुए एक अंगुली न हिला

कलकत्ते की सड़कों पर जमा खून अभी धुला न था कि २ सित० १९ को कांग्रेसी नेताओं ने केन्द्रीय सरकार में मन्त्रिपद सँभाले। अक्तूबर में पृ

बंगाल के नोआखाली, कोमिल्ला ज़िलों में लूटमार शुरू हुई। १५ अक्तूबर को मु० लीग के प्रतिनिधि भी केन्द्रीय सरकार में सम्मिलित हुए, पर उन्होंने संविधान-सभा के बहिष्कार का अपना निश्चय न बदला और दंगे उभाड़ना जारी रक्खा। दिल्ली के पास ही मेवात प्रदेश में मेवों और जाटों की लड़ाई शुरू हो गई जिसमें केन्द्रीय मन्त्री और सरकारी अफसर विभिन्न पक्षों को भीतर भीतर से उभाड़ते और शस्त्रास्त्र देते। पूर्वी बंगाल से भगाई कुछ स्त्रियाँ बिहार में देखी गईं तो वहाँ भी दंगे फूटे जिन्हें कांग्रेसी सरकार ने सैनिक कार्रवाई कर शीघ्र दबा दिया। बिहार की प्रतिक्रिया रावलपिंडी हजारा में हुई।

९ दिस० १९४६ से दिल्ली में संविधान-सभा बैठने वाली थी। उससे पहले समझौता करने के लिए नहरू और जिना को लन्दन बुलाया गया, पर वहाँ भी समझौता न हुआ। अंग्रेज़ प्रधानमन्त्री ऐटली ने घोषणा की कि भारत की जनता के एक बड़े भाग के प्रतिनिधियों—अर्थात् मु० लीगियों—के सहयोग बिना यदि कोई संविधान बनेगा तो उसे अंग्रेज़ी सरकार न मानेगी। इधर केन्द्रीय मंत्रिमंडल के लीगी मन्त्री अपने कांग्रेसी साथियों से सीधे मुँह बात भी न करते। फ़रवरी में अर्थमन्त्री लियाकतअलीखाँ ने नये साल के आय-व्यय की जो कूत तैयार की उसमें पूँजीपतियों के मुनाफे पर काफी कर बैठा दिया। अधिकतर पूँजीपति हिन्दू थे, वे इससे घबड़ा उठे। दंगों को अंग्रेज़ हाकिम उभाड़ रहे थे, और वे चले जायँ तो शान्ति हो जायगी यह भी दिखाई देता था। इस दशा में कांग्रेसी नेता किसी भी मूल्य पर अंग्रेज़ों और मुस्लिम लीगियों से छुटकारा पाना चाहने लगे। ऐटली ने लुई मौंटबाटन को भारत का अन्तिम वाइसराय बना कर भेजने की घोषणा की। उसका लक्ष्य था भारत के नेताओं से जल्दी विभाजन मनवा लेना।

पंजाब में 'एका-वादी'-कांग्रेसी सम्मिलित मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध मु० लीग ज़बर आन्दोलन कर रही थी, जिसे गवर्नर और अंग्रेज़ अमले शह दे रहे थे। पंजाब कांग्रेस तब भी आपसी झगड़ों में उलझी थी। इस दशा में ३-३-१९४७ को प्रधानमन्त्री खिज़रहयातखाँ को इस्तीफा देना पड़ा और लीगी मन्त्रिमण्डल बना। उसी दिन से पंजाब में दंगे शुरू हो गये। ८ मार्च को कांग्रेस कार्यसमिति

ने माँग की कि पंजाब का विभाजन कर पश्चिमी मुस्लिम-बहुल अंश से पूर्वी हिन्दू-बहुल अंश को अलग किया जाय। बंगाल में बसे हुए मारवाड़ी हिन्दू पूँजीपतियों ने बंगाल के विभाजन की माँग उठाई, जिसका कांग्रेस-नेताओं ने समर्थन किया। १६०५ में वंग-भंग से स्वदेशी आन्दोलन उठा था, अब स्वयं कांग्रेसी नेताओं ने वंग-भग की माँग की! इसका यह अर्थ था कि उन्होंने अब समझ लिया था कि भारत का विभाजन तो हम रोक सकेंगे नहीं, इसलिए देश का जितना अधिक अंश हमें मिल सके उतना अच्छा। मई जून १६४६ में वे मु० लीग की इतनी माँग भी मानने को तैयार न थे कि भारत-सघ के भीतर मुस्लिम बहुल प्रान्तों को स्वायत्तता दी जाय। पर सात महीनों की 'सीधी चोट' से, जिसमें निरी गुंडई के सिवाय कुछ न था, वे देश का बँटवारा मानने को झुक गये।

२४ मार्च को मौंटबाटन ने शासनसूत्र सँभाला। उसने कांग्रेस की न माँग पर कान दिया और अंग्रेजों से भारत को शीघ्र छुड़वा देने का भरोस दिलाया बशर्तें कि वे भारत का विभाजन मान जायँ। कांग्रेस और मु० ली के नेताओं ने तब मौंटबाटन की पंचाठ मान ली। कांग्रेस नेताओं ने देश क और मु० लीग नेताओं ने तब बगाल पंजाब का विभाजन माना। इसे विधिव करने के लिए कुछ रस्मी कार्रवाइयाँ तय की गईं। गान्धी तब बंगाल में थे मौंटबाटन ने उन्हें बुला कर यह खबर दी तो उनके मुँह से निकला—सर्वना हो गया! पर उनसे कुछ करते न बना।

विभाजन के समय मध्य पंजाब में मारकाट न हो इसके लिए 'दूध व राखी बिल्ली' का सिद्धान्त मान कर एक अंग्रेज सेनापति के आदेश में सीमा-सेन रखना तय हुआ। सीमा प्रान्त का बहुमत १६४६ के चुनाव में मु० लीग वे विरुद्ध प्रकट हो चुका था, पर पच्छिमी पंजाब के भारत से अलग हं जाने पर सीमाप्रान्त भारत में कैसे रहता? अतः वहाँ फिर जन-मत लेन तय हुआ। अब्दुलगफ्फारखाँ ने कहा कि मत इस प्रश्न पर न लिया जाय वि हम भारत के साथ रहें कि पाकिस्तान के, प्रत्युत इसपर कि पाकिस्तान में जा कि अलग पख्तूनिस्तान (पठान-देश) में रहें। उनकी किसी ने न सुनी। इसवे अतिरिक्त अंग्रेज गवर्नर और अमले बराबर मु० लीग का पक्ष ले रहे थे, इस

लिए पठानों ने मतगणना का बहिष्कार किया। बंगाल में भी शरच्चन्द्र बसु ने प्रस्ताव किया कि बंगाल एक राज्य बना रहे और वह पीछे चाहे तो भारत या पाकिस्तान के साथ मिल जाय। जिना यह बात मानने को तैयार थे, गान्धी ने भी इसे असीसा, पर कांग्रेस कार्यसमिति ने न माना।

निश्चित रस्मों को पूरा करके १५ अगस्त १६४७ तक अंग्रेज़ों का भारत छोड़ना तय हुआ। पाकिस्तान का गवर्नर-जनरल इंगलिस्तान के सम्राट् ने जिना को बनाया, भारत में वह पद कांग्रेस नेताओं के अनुरोध पर मौंटबाटन को ही सौंपा गया, क्योंकि इसके द्वारा वे रजवाड़ों के राजाओं को अपने प्रभाव में लाना चाहते थे। पाकिस्तान के हिन्दू और भारत के मुस्लिम अमलों को छूट दी गई कि वे चाहें तो दूसरे देश की सेवा में चले जायँ। पर पाकिस्तान की हिन्दू जनता से कांग्रेसी नेता अन्त तक कहते रहे कि वह अपने स्थान पर डटी रहे। १०-११ अगस्त को जब पच्छिमी पंजाब से हिन्दू और पूरबी पंजाब से मुस्लिम पुलिस सेना और अमले हटाये जाने लगे तब वहाँ की असहाय निहत्थी हिन्दू और मुस्लिम जनता पर बड़े अधिकारियों और सरकारी अमलों द्वारा उभाड़े हुए गुंडों के दल टूट पड़े और अपने सहधर्मी पुलिस और सैनिकों की सहायता से उसे हज़ारों की संख्या में घेर कर मारने जलाने लगे। जहाँ अंग्रेज सेनापति की सीमा-सेना थी, वहाँ शेखूपुरे में १५००० और गुरदासपुर जिले की शकरगढ़ तहसील में २०००० आदमी एक स्थान में यों घेर कर मारे गये। जलती बस्तियों की इस मारकाट के बीच १५ अगस्त १६४७ को कांग्रेसी नेताओं को दिल्ली और मुस्लिम लीगी नेताओं को कराची की राजगद्दी पर बिठा कर अंग्रेज़ भारत छोड़ चले गये। कुछ बड़े अंग्रेज़ अधिकारी इन नये गद्दी पर बैठने वालों को सहारा देने को रह गये।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. जापान दूसरे विश्व-युद्ध में क्यों पड़ा?

२. सन् १९४० में जर्मनों के हौलैंड फ्रांस जीत लेने से (क) दक्खिनपूरबी एशिया पर क्या प्रभाव हुआ? (ख) भारतीय कांग्रेस में कैसा मतभेद खड़ा हुआ?

३. जापानी १९४२ में भारत-सीमा तक कैसे पहुँचे? अंग्रेज़ी सरकार ने उनके

भारत चढ़ आने की आशंका से १९४२ में उनके मुकाबले की क्या योजना बनाई थी ?

४. आज़ाद हिन्द फौज की नींव कैसे पड़ी ?

५. क्रिप्स पेशकश क्या थी ? अंग्रेज़ी सरकार ने उस पेशकश को क्यों लौटा लिया ।

६. आज़ाद हिन्द फौज १९४२-४३ में भारत को मुक्त कराने क्यों न आ सकी ? उसके उसी वर्ष न आ सकने का इतिहास पर क्या प्रभाव हुआ ? क्या दशाएँ होतीं तो वह १९४२ में आंग्ल-अमरीकी कमजोरी का लाभ उठा सकती ?

७. सन् १९४३ का बंगाल दुर्भिक्ष मनुष्य-निर्मित कहा जाता है ? क्यों ?

८. आज़ाद हिन्द फौज की भारत चढ़ाई का विवरण लिखिए ।

९. भारत-सीमा से लौटने के बाद बरमा में आज़ाद हिन्द फौज और जापानियों के आंग्ल-अमरीकियों से युद्ध का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखिए ।

१०. ब्रितानिया की मजदूर सरकार ने १९४५-४७ में ब्रितानवी साम्राज्य बनाये रखने में कहाँ तक तत्परता दिखाई ? प्रमाण सहित लिखिए ।

११. सन् १९४६ का नौसेना विद्रोह किन दशाओं में हुआ ? क्यों शीघ्र समाप्त हुआ ? उसका फल क्या हुआ ?

१२. अंग्रेज़ों ने १९४७ में भारत क्यों छोड़ा ? और क्यों तोड़ा ?

१३. भारत का विभाजन कैसे हुआ ? मुस्लिम लीग ने उसे पहले किस रूप में माँगा था ? उस माँग के अनुसार कार्य क्यों न हुआ ? कांग्रेस नेताओं ने विभाजन कैसे मान लिया ?

१४. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—(१) सुँयन सेन (२) चियांगकाईशेक (३) सन् १९४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह या सांकेतिक असहयोग (४) झाँसी-रानी जत्था (५) पौंड पावना (६) परमाणु बम (७) पख्तूनिस्तान (८) १९४२ की 'भारत छोड़ो' पुकार और संघर्ष (९) अंग्रेज़ मजदूर नेताओं का समाजवाद ।

१२. अभिनव भारत पर्व

(१९४७—   )

अध्याय १

अंग्रेज़ी राष्ट्रपरिवार में खण्डित भारत का गणराज्य

§१. **विभाजन-कृत जनोच्छेद**—विभाजन के समय पंजाब और पड़ोसी प्रान्तों में जो जनोच्छेद शुरू हुआ वह बाद के महीनों में भी चलता रहा। अमृतसर फीरोजपुर के पच्छिम की समूची और सिन्ध की अधिकांश हिन्दू जनता जो शताब्दियों के मुस्लिम शासनों में वहाँ टिकी रही थी इन महीनों में उखड़ गई; उसी प्रकार पूरबी पंजाब की समूची और उसके पास-पड़ोस की बहुत-सी मुस्लिम जनता भी। मारकाट और बलात्कार के तरीकों में मनुष्य ने पशुओं को मात कर दिया। प्रायः दस लाख आदमी मारे गये जिनकी लाशें सड़कों पर और बस्तियों में महीनों सड़ती रहीं। लगभग १½ करोड़ मनुष्य दोनों राज्यों से उखड़ कर बेघरबार हो गये। इनके उखड़ने के कारण दोनों राज्यों का आर्थिक सामाजिक ढाँचा जड़ से हिल गया। पच्छिम से आने वाले हिन्दुओं में अधिकांश शहरी व्यापारी और बुद्धिजीवी थे। इधर से जाने वाले मुसलमान प्रायः मजदूर-कारीगर वर्ग के थे। उत्तरी राजस्थान के बहादुर मेव कृषकों को राजपूत जागीरदारों ने उखाड़ डाला, उनकी ज़मीनें वीरान हो गईं। इस जनोच्छेद में गरीबों और भले आदमियों पर ही अधिक मार पड़ी। बंगाल में इस समय मारकाट उतनी नहीं हुई, पर वहाँ भी लाखों लोग बेघरबार हुए। सन् १९५० के पहले महीनों में पूरबी बंगाल और पड़ोस के प्रान्तों के बीच भी वैसी तरह लाखों की संख्या में लोगों की आने जाने वाली धाराएँ चलीं।

§२. **कश्मीर का झगड़ा**—भारत के रजवाड़े अंग्रेज़ी की कठपुतलियाँ थे। अंग्रेज़ी सेना के चले जाने पर उनकी कोई टेक न रही और उनमें

से अधिकांश ने विभाजन से पहले ही अपनी भूमि-स्थिति के अनुसार भारत या पाकिस्तान में मिलना मान लिया। कश्मीर के राजा ने अपनी स्थिति को न समझा और स्वतन्त्र रहने की सोची। उसने अपनी उत्तरपच्छिमी सीमा के गिलगित प्रदेश का फौजदार बना कर एक अंग्रेज को भेजा। पाकिस्तान ने १५ अगस्त के बाद कश्मीर के सब रास्ते रोक कर माल का जाना बन्द कर दिया और राज्य की दक्खिनी सीमा पर धावे शुरू किये। राजा ने तब जनता का सहयोग लेने के लिए शेख अब्दुल्ला को जेल से छोड़ा। अक्तूबर में गिलगित के अंग्रेज फौजदार ने विद्रोह कर यह इलाका दबा लिया। तभी पाकिस्तानी धावामार अंग्रेज और अमरीकी साहसिक सेनानायकों के नेतृत्व में राज्य की पच्छिमी सीमा से घुसे और रास्ते की बस्तियों में लूटमार मचाते हुए दोमेल के महत्त्वपूर्ण नाके तक, जहां जेहलम और कृष्णगंगा दो नदियों का मेल होता है और मुज़फ्फराबाद की बस्ती है, बेरोकटोक बढ़ आये। उसे लूट जला कर वे ठेठ कश्मीर दून के द्वार बारामूला तक पहुँच गये। वहां प्रत्येक घर का कोना कोना लूटने और प्रत्येक युवती के घर्षण में लग जाने से उनकी बाढ़ रुक गई। कश्मीर के राजा ने अपने राज्य को भारत में मिलाने का सन्देश भेजा और जन-नायक अब्दुल्ला ने भी भारत से सहायता माँगी। भारतीय सेना विमानों से श्रीनगर उतरी और उसने शीघ्र ही धावामारों को बारामूला के आगे ऊरी तक धकेल दिया। वह उन्हें समूचे राज्य से भी शीघ्र निकाल देती, पर तभी मौंटबाटन की प्रेरणा से भारत के मन्त्रियों ने इस मामले को "संयुक्त राष्ट्र संघ" में भेज दिया। "संयुक्त राष्ट्र संघ" दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विजेता राष्ट्रों ने मिल कर बनाया है। उसमें संसार के प्रायः सब राष्ट्रों के प्रतिनिधि हैं, पर बहुमत अंग्रेज अमरीकियों और उनके पिछलग्गुओं का है। १९४८ में कश्मीर का युद्ध मन्द गति से चलता रहा। गिलगित के दक्खिनपूरब स्कर्दू के गढ़ में कश्मीर की सेना नौ मास तक लड़ती रही, पर उसके पास कोई रसद कुमुक या आदेश न पहुँचने से १५ अगस्त १९४८ को उसे समर्पण करना पड़ा। १-१-१९४९ को भारत सरकार ने युद्ध थाम दिया। राष्ट्रसंघ साढ़े चार बरस से इस मामले को टाल रहा है और प्रकट है कि अंग्रेज-अमरीकी कश्मीर का जितना अंश भी

सके पाकिस्तान को दिला कर उसका मध्य एशिया में रूसी सोवियत संघ के विरुद्ध स्वयं उपयोग करना चाहते हैं। राष्ट्र संघ के इस रुख को देखते हुए कश्मीर के लोकनेताओं ने निश्चय किया कि कश्मीर की जनता अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर ले और इस उद्देश से १९५१ में वहाँ की सब वयःस्थ प्रजा का मत ले कर संविधान-सभा का निर्वाचन कराया। यह सभा कश्मीर का संविधान बना रही है।

§३. भारतीय समुद्र पर अंग्रेज़ी अधिकार बना रहना—भारत के विभाजन में सफल हो जाने से अंग्रेज़ों ने देखा कि वे एशिया में अपना साम्राज्य अंशतः बचाये रख सकते हैं। सिंहल में भी कुछ शासन-सुधार उन्हें ने पड़े, तो भी वहाँ अभी तक उनकी स्थल और जलसेना है। मालदिव द्वीपों ो उन्होंने सिंहल से अलग कर अपनी सीधी रक्षा में ले लिया। सब से बढ़ कर न्होंने मलाया और सिंगापुर को, जो कि हिन्द महासागर और प्रशान्त महा- ागर के बीच स्थल की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गरदन है, अपने हाथ रखना तय केया। इस प्रयोजन से उन्होंने नवम्बर १९४७ में नेपाल के राणा तथा भारत ी नई सरकार से एक सन्धि कर आठ बटालियन गोरखा भाड़ैत सैनिकों को ेपाल और भारत से भरती कर ले जाने का अधिकार पा लिया। मलाया को े इस सेना द्वारा अधीन रखने का यत्न कर रहे हैं, पर वहाँ के लोग, विशेष कर हाँ बसे हुए चीनी, चार बरस से अद्वितीय वीरता से लड़ रहे हैं। मलाया में अंग्रेज़ों के टिके होने से हिन्दचीन या व्येतनम में फ्रांसीसी भी टिके हैं, और हाँ भी युद्ध चल रहा है। अंग्रेज़ों को १९४८ में बरमा और फिलिस्तीन से टना पड़ा। ओलन्देज (डच) भी हिन्द-द्वीपों को फिर दबाने का यत्न करते हे, पर उन्हें १९४९ में वहाँ से हटना पड़ा।

ईरान की खाड़ी और मिस्र-सूदान को अंग्रेज़ों ने भारतीय सेना के ज़ोर र दबा रक्खा था [११, ७ §§ ८, १४; ११, ८ § २], ईरान के मिट्टी-तेल ा एकाधिकार भी उसी के जोर पर लिया था। १९५१ में ईरानी मजलिस संसद्) ने अपने तैलकूपों को अपने राष्ट्र की सम्पत्ति बनाना तय किया। ितानवी सरकार ने ईरान-खाड़ी में जंगी जहाज भेज तथा पड़ोस के देशों में

विमानों से छतरी-सेना उतार कर ईरानियों को डराना चाहा, पर ईरानी अपने प्रधान मन्त्री मुसद्दीक़ के नेतृत्व में इन बन्दरघुड़कियों से नहीं डरे। अंग्रेज़ों को ईरान के तैलकूप छोड़ जाना पड़ा। वे अब ऐसी चेष्टा में लगे हैं कि ईरानी किसी दूसरे देश को तेल न भेज सकें।

अक्तूबर १६५१ में मिस्र ने सुएज की रक्षा के लिए अंग्रेज़ी सेना रखने की पुरानी सन्धि को मानने से इनकार कर दिया। वहाँ भी संघर्ष चल रहा है। सुएज़ और सिंगापुर भारतीय समुद्र के दो कन्धे हैं। जब तक वे सुदूर ब्रितानिया के शिकंजे से नहीं छुटते, ये संघर्ष जारी रहेंगे।

§४. गांधी की हत्या—विभाजन के समय महात्मा गांधी ने बंगाल में बहुत कुछ शान्ति बनाये रक्खी। वहाँ से वे पंजाब का जनोच्छेद रोकने को पच्छिमी पंजाब जाना चाहते थे, पर रास्ते में दिल्ली को भी दंगों से ग्रस्त देख वहाँ रुक गये। जनवरी १६४८ तक उन्होंने दिल्ली और उसके पासपड़ोस में ऐसी दशा ला दी कि वहाँ से उखड़े हुए मुसलमान वापिस आ कर रह सकें और बेखटके घूम सकें। उसके बाद वे पच्छिमी पंजाब जाने की तैयारी कर रहे थे जिससे वहाँ से उखड़ कर आये हुए हिन्दुओं को वहाँ वापिस ले जा कर बसाने का उपाय कर सकें। पर इस बीच ३० जनवरी की सन्ध्या को एक व्यक्ति ने उनकी हत्या कर दी। इस हत्या के षड्यन्त्र की सूचना सरकार को १०-१२ दिन पहले मिल गई थी, तो भी वृद्ध गांधी को बचा न सकी।

§५. रजवाड़ों का मज्जन—अनेक रजवाड़ों के १६४७ में ही भारत में मिल जाने की बात कही जा चुकी है। पर कुछ राजाओं ने जब स्वयं यह न देखा कि उनके पीछे अब कोई शक्ति नहीं है; तब उनकी प्रजा उठ खड़ी हुई जूनागढ़, उड़ीसा, टिहरी-गढ़वाल आदि में इस तरह की लहरें चलीं। टिह की प्रजा जब राजकीय दफ्तरों पर कब्जा करने लगी तब राजा ने अपनी पुलि को उसे रोकने भेजा, पर पुलिस भी प्रजा से जा मिली। भारत के गृहमन वल्लभभाई पटेल ने बड़ी कुशलता से काठियावाड़ राजस्थान आदि की छो छोटी रियासतों के संघ बना कर उनके राजाओं में से एक का राज-प्रमु नियत होना उनसे मनवा लिया; बहुत सी रियासतों को प्रान्तों में मिल

दिया। हैदराबाद ने एक अरसे तक स्वतन्त्र रहने का यत्न किया। रजाकार नाम के उग्र साम्प्रदायिक मुस्लिम दल ने वहाँ के शासन पर अधिकार कर हिन्दू प्रजा पर, जो भारत में मिलना चाहती थी, अत्याचार आरम्भ किये। अंग्रेज़ और पाकिस्तानी उनके पास छिपे छिपे और वायुपथ से शस्त्रास्त्र पहुँचाने लगे। उस दशा में वहाँ के समूहवादियों ने किसान प्रजा को उभाड़ कर निज़ाम और जागीरदारों का शासन उखाड़ अपनी पंचायतें स्थापित करना शुरू किया। सितम्बर १९४८ में भारत सरकार ने हैदराबाद पर चढ़ाई कर वहाँ रजाकार गुंडई का अन्त किया, और हैदराबाद भी भारत-संघ में सम्मिलित हुआ।

§६. **पख्तून संघर्ष**—पाकिस्तान की स्थापना के सात दिन बाद ही गवर्नर-जनरल जिना ने सीमाप्रान्त के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल को पदच्युत कर दिया। जून १९४८ में खान अब्दुलगफ्फारखाँ को जेल में बन्द किया गया। अगस्त १९४८ में चारसद्दा में उनके लाल कुर्ती वाले अनुयायियों की एक सभा को जलियाँवाला बाग की तरह घेर कर पुलिस और सेना ने ३०० आदमियों को मार डाला और उनके घर जला दिये। जिना की तो सितम्बर १९४८ में मृत्यु हुई, और तब बंगाल के ख्वाजा नाज़िमुद्दीन को गवर्नर-जनरल बनाया गया, पर पठानों या पख्तूनों का पाकिस्तान से स्वतन्त्र होने का संघर्ष जारी है। उनके पड़ोसी अफगानिस्तान का कहना है कि दूसरे आंग्ल-अफगान युद्ध में जो प्रदेश अंग्रेज़ों ने छीने थे [११,७§७] अंग्रेज़ों को उन्हें किसी दूसरे के हाथ दे जाने का अधिकार न था।

§७ **भारत गणराज्य का संविधान**—भारत की संविधान-सभा ने दो बरस श्रम करके "भारत को प्रभु लोकतन्त्रात्मक गण-राज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को...न्याय...स्वतन्त्रता और...समता प्राप्त कराने...तथा उनमें...बन्धुता बढ़ाने के लिए" नवम्बर १९४९ में नया संविधान अङ्गीकृत...और...आत्मार्पित" किया। उसके अनुसार २६ जनवरी १९५० को भारत गणराज्य बना और संविधान-सभा ने नये संविधान के अनुसार चुनाव होने तक राजेन्द्रप्रसाद को आरज़ी राष्ट्रपति चुना। उससे पहले जून १९४८ में माउंटबाटन चला गया था और अंग्रेज़ी सरकार ने राजगोपालाचारी को गवर्नर-

जनरल बनाया था। पर भारत का गणराज्य अब भी अंग्रेजी "राष्ट्रपरिवार" का उपराज्य है।

नये संविधान की नींव प्रजा के समता और स्वतन्त्रता के मूल अधिकारों पर रक्खी गई है। उसमें प्रत्येक वयस्थ भारतीय को मताधिकार दिया गया है। तो भी उसमें "निवारक निरोध" अर्थात् न्यायालय से विधिवत् जाँच किये बिना नजरबन्द किये जाने की बात अर्थात् राउलट कानून [११,८६१४] का तत्त्व भी है। भारत का जो रूप अंग्रेजों ने बना दिया था, रजवाड़ों के मज्जन के अतिरिक्त वह वैसा ही रक्खा गया है। रजवाड़ों का मज्जन भी संविधान-सभा में विचार कर किये हुए निश्चय से नहीं, प्रत्युत गवर्नर-जनरल के आदेश से अर्थात् दो एक मुख्य शासन-नेताओं की इच्छानुसार हुआ। संविधान-सभा ने बाद में उसपर अपनी मुहर अवश्य लगा दी, पर उस सभा में अनेक रजवाड़ों के प्रतिनिधि नाम को ही थे और हैदराबाद का तो वैसा भी कोई प्रतिनिधि न था। स्वराज्य पाने के बाद भारत को पुराने भाषा-जनपदों के संघ का रूप देने का ध्येय जो १९२० से सामने था, वह चरितार्थ नहीं हुआ। भूतपूर्व रजवाड़ों के क्षेत्र पर भारत सरकार के रियासत विभाग का विशेष निरीक्षण रक्खा गया है, अर्थात् उन क्षेत्रों की जनता को शेष भारत की जनता के समान प्रभु नहीं माना गया।

राजकाज की भाषा कम से कम अगले १५ बरस तक अंग्रेजी रक्खी गई है। अंग्रेजों का छोड़ा हुआ पुराना शासनयन्त्र और नौकरतन्त्र भी ज्यों का त्यों बना है। उसे बनाये रखने का वचन अंग्रेजों से राज्यशक्ति पाते समय नेताओं ने दे दिया था, इसलिए संविधान द्वारा पुराने अमलों के अधिकार नियत किये गये। उनके वेतन आदि भी ज्यों के त्यों बने हैं, जिससे शासन का खर्चा घटने नहीं पाता। देश में महँगी बनी रहने का यह एक बड़ा कारण है

इधर (१२-६-१९५२) कश्मीर की संविधान-सभा ने यह निश्चय कि है कि वहाँ अंग्रेजों द्वारा स्थापित किया राजवंश [११,३६१७] न रहे व निर्वाचित राज्यपति होगा। भारत में अंग्रेजों की परम्परा को तोड़ने का य पहला प्रयत्न है।

भारत का संविधान जैसे अंग्रेजों के बनाये सन् १९३५ वाले भारत

शासन-विधान के साँचे में ढाला गया है, वैसे ही भारत की सेना भी अभी तक उसी साँचे में ढलती आती तथा उसी परम्परा पर खड़ी है जिसे क्लाइव और उसके साथियों ने बनाया था। नौ-सेना और नभ-सेना के प्रमुख अधिकारी अब भी अंग्रेज़ हैं; भारतीय सेना के सब मर्म या तो अंग्रेज़-अमरीकियों के हाथ में हैं या उनके सामने खुले हैं। उस सेना के नायक बनने के लिए शिक्षा पाने वाले हमारे युवकों को अंग्रेज़ों की भाड़ैत भारतीय सेना द्वारा विदेशों में ब्रितानवी साम्राज्य फैलाने के लिए किये प्रयत्नों पर अभिमान करना तथा कान्होजी आंग्रे [१०,६§८] को चांचिया, यशवन्तराव होल्कर और अमरसिंह थापा को अपना शत्रु और नानासाहब और तात्या टोपे को विद्रोही कहना सिखाया जाता है!

भारत का रिज़र्व बैंक भारत की पूँजी का विनियोग अब भी मुख्यतः ब्रितानवी सरकार के ऋणपत्रों में करता है, और भारत का रुपया अब भी अंग्रेज़ी पौंड के साथ बँधा है। अंग्रेज़ी ज़माने में भारत के आयात-निर्यात व्यापर में अन्य देशों पर ब्रितानवी साम्राज्य को जो तरजीह ('इम्पीरियल प्रेफरेंस') दी जाती थी और जिसका भारतीय राष्ट्रवादी सदा विरोध करते रहे, वह आज भी ज्यों की त्यों जारी है। अंग्रेज़ी पूँजी द्वारा भारत का विदोहन भी जारी है।

और तो और, जिस अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति के विषय में २६ जनवरी सन् १९३० को स्वाधीनता का प्रण लेते हुए लाखों हिन्दुस्तानियों ने महात्मा गान्धी के ये शब्द दोहराये थे कि वह "हमारी संस्कृति को दबाते हुए...हमें अपनी परिस्थिति से उखाड़ने की कोशिश करती और अपनी जंजीरों से चिपटे रहना सिखाती है" [११,९§८], वह भी ज्यों की त्यों जारी है। भारत के अंग्रेज़ी शिक्षित वर्ग का उन जंजीरों से लगाव आज भारत में अंग्रेज़ों के सामरिक-राजनीतिक-आर्थिक ढाँचे को बनाये रखने का मुख्य कारण है।

§८. नेपाल में लोकतन्त्र का उदय—१९३७ से ४५ तक चीन समूहवादी दल और राष्ट्रीय दल (कुओमिङ ताङ) ने मिल कर काम किया था। युद्ध समाप्ति के बाद राष्ट्रीय दल के नेता चियाङ काई शेक ने फिर समूहवादियों को कुचलने का यत्न किया। पर उसे सफलता नहीं हुई; उलटा समूह-

वादियों ने १९४८-४९ में समूचे चीन में अपना शासन स्थापित कर लिया और चियाङ तैवान (फारमोसा) भाग गया। शिङकियाङ या सीता-तारीम कांठे पर भी उनका पूरा अधिकार हो गया। समूहवादी शासन स्थापित होने के बाद से चीन का कायापलट हो गया है और वह दो वर्ष में ही एशिया की महान् शक्ति बन कर उठ खड़ा हुआ है। १९५० के जाड़े में चीनी तिब्बत की ओर बढ़े, जिससे उसे कर्ज़न के समय से स्थापित अंग्रेजी आधिपत्य [११,८§९,१०] के प्रभाव से मुक्त करें। तिब्बत के अंग्रेजी प्रभाव से मुक्त होने की आशा से नेपाल की राणाशाही की टेक और भी ढहने लगी। राणाओं की तीसरी पीढ़ी ने १९४६ में ही शासन आरम्भ किया था। नवम्बर १९५० में नेपाल की प्रजा उठ खड़ी हुई, और भारत में निर्वासित नेपालियों के दलों ने कई ओर से रियासत पर चढ़ाई की। नेपाल के कैदी राजा ने काठमांडू के भारतीय दूतावास में, फिर दिल्ली में शरण ली। भारत-सरकार ने तब बीच-बिचाव किया, जिससे राणाओं और प्रजा के नेताओं का सम्मिलित मन्त्रिमण्डल बनाना तय हुआ, और फरवरी १९५१ में राजा त्रिभुवनवीरविक्रम ने वापिस आ कर शासन की अध्यक्षता अपने हाथ ली। पर राणाशाही को बचाये रखने का अर्थ गुंडई को वैधानिक पद देना था, क्योंकि राणाशाही का अर्थ ही यह था कि राणा परिवार का सबसे सफल गुंडा प्रधानमन्त्री हो [११,३§१८; ११,७§११]। लोकतन्त्र में राणाशाही की कलम लगाने की चेष्टा विफल हुई। कुछ मास बाद दो प्रजा-नेता मन्त्रियों में से एक की हत्या की चेष्टा की गई, जिसमें राणा परिवार के कुछ व्यक्ति पकड़े गये। इसके बाद राजा ने सेना का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया और राणा प्रधानमन्त्री ने विदा ली (नवम्बर १९५१)।

नेपाल में अब संविधान बनाने को संविधान-परिषद् के चुनाव के लिए यत्न हो रहा है। पर जनता की बेचैनी बीच-बीच में उभड़ती है। इस बेचैनी का कारण यह है कि राणाओं ने अपने सौ बरस के शासन में जो जागीरें जमीनें और पूँजी हथिया ली वह उनके पास ज्यों की त्यों बनी होने से जनता की आर्थिक सामाजिक दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। दृढ़ सैनिक-राजनीतिक शक्ति के बिना वैसा सुधार नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से नेपाल की दशा शेष

भारत के समान ही है।

§९. **पाकिस्तान में विप्लव-चेष्टा और बँगला आन्दोलन—** जुलाई १९५१ में रावलपिंडी और अन्य स्थानों में पाकिस्तानी सेना के १००० के लगभग बड़े छोटे सेनाधिकारी और सैनिक एकाएक गिरफ्तार किये गये। पंजाब और पूर्वी बंगाल के कुछ समूहवादी भी उस प्रसंग में पकड़े गये। उनके मुखियों पर पाकिस्तान के शासन को उलटने के षड्यन्त्र का मुकदमा हैदराबाद-सिन्ध में बन्द कचहरी में चलाया गया। पाकिस्तान की सेना में पच्छिमी पंजाब के लोग ही मुख्यतः हैं। आजाद हिन्द फौज में भी वहाँ के सैनिक बड़ी संख्या में थे। १६ अक्तूबर १९५१ को रावलपिंडी की एक सभा में भाषण करते हुए पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री लियाकतअली खाँ की हत्या की गई। बंगाल का ख्वाजा नाज़िमुद्दीन नया प्रधानमन्त्री नियत हुआ।

पूर्वी बंगाल में बँगला भाषा को दबा कर उर्दू को थोपने का यत्न पाकिस्तान सरकार ने किया। इसके विरुद्ध वहाँ बराबर लहर चल रही थी, जो फरवरी १९५१ में प्रबल हो उठी। उसे दबाते हुए अधिकारियों ने ढाके में ८ विद्यार्थियों को गोली से मारा, बहुतों को गिरफ्तार किया। उससे वह लहर और उभड़ी और प्रान्त भर में फैल गई।

उर्दू पाकिस्तान के किसी अंश की भाषा नहीं है, वह मेरठ-रुहेलखंड में बोली जाने वाली हिन्दी की खड़ी बोली [१,२§१; २,२§१] की विशिष्ट शैली है। जिना, लियाकतअली और उनके मुख्य साथी जिन्होंने पाकिस्तान की पुकार उठाई थी, स्वयं गुजराती और हिन्दी-उर्दू प्रान्तों के थे। पच्छिमी पंजाब में अंग्रेजों के खड़े किये हुए बड़े मुस्लिम जमींदारों [११,७§१६; ११,८§२; ११,९§९; ११,१०§१६] ने उनका साथ दिया था। आज पूर्वी बंगाल के अमले मुख्यतः हिन्दी-उर्दू प्रान्तों से गये हुए मुसलमान हैं, वहाँ की पुलिस और सेना सब पच्छिमी पंजाब की है। १९५१-५२ की घटनाओं से प्रकट है कि न केवल पूर्वी बंगाल की जनता इन बाहर वालों के शासन से ऊब रही है, प्रत्युत पच्छिमी पंजाब के वीर योद्धा कृषक भी ठेठ हिन्दुस्तान से आये हुए राजनीति-खिलाड़ियों और अपने जमींदारों के शासन में बेचैन हैं। भारत-पाकिस्तान विभाजन और

पंजाब और बंगाल का विभाजन भौमिक नृवंशीय आर्थिक और ऐतिहासिक दृष्टियों से अत्यन्त अस्वाभाविक है। जब तक वह बना है उससे कोई न कोई विस्फोट होते रहेंगे। १६५१ के सेना-षड्यन्त्र के बाद पाकिस्तानी सेना को पुनः संघटित करने के लिए अखंडित भारत का अन्तिम अंग्रेज प्रधान सेनापति औकिनलेक पाकिस्तान में बैठा रहा। अब (१६५२) वह वहाँ गलीचों का कारबार करने के नाम पर स्थायी रूप से जा बैठा है। देखना है पच्छिमी पंजाब के वीर किसानों में जागृति फैलना अंग्रेज कब तक रोक पाते हैं।

§१०. सन् १६५१-५२ के निर्वाचन—सन् १६५१-५२ के जाड़ों में नये संविधान के अनुसार भारत में पहले निर्वाचन हुए। अनेक प्रान्तों में कांग्रेस का शुद्ध बहुपक्ष आया; पटियाला-और-पूर्वी-पंजाब-रियासत-संघ के सिवाय सभी जगह वह अपने मन्त्रिमण्डल बना सकी। कुल दिये गये मतों में से लगभग ४३% कांग्रेस के पक्ष में पड़े। विरोधी मत अनेक पक्षों में बँट जाने के कारण प्रभावशाली नहीं हुए। इन निर्वाचनों में जनता का वास्तविक मत कहाँ तक प्रकट हुआ है यह अभी देखना है। पर कांग्रेस का जितना विरोध हुआ और वह जिस प्रकार अनेक पक्षों में बँट कर हुआ उससे यह भी प्रकट है कि देश में असन्तोष बहुत है, पर लोगों को कोई रास्ता नहीं सूझ रहा। निर्वाचनों के बाद राजेन्द्रप्रसाद फिर राष्ट्रपति तथा जवाहरलाल नहरू प्रधानमन्त्री चुने गये हैं।

§११. उपसंहार—स्वतंत्र होने पर "अभिनव भारत" का जो रूप देखने की कल्पना जनता करती थी, वह उसे देखना नहीं मिला। पिछले पाँच बरस में उसके साधारण जीवन की तंगी भी चरम सीमा तक पहुँच गई है। अपने पिछले और हाल के इतिहास का जो चित्र यहाँ अंकित किया गया है, उसपर जितना ध्यान दिया जायगा उतना ही हमारी आज की दशा और उसके कारण स्पष्ट दिखाई देंगे। अपनी दशा को सुधारना हमारे अपने हाथ में है। विदेशी राज से मुक्त हो जाने के कारण आज हमारे लिए उसे सुधारना पहले से सुगम है। किन्तु उसके लिए पहला काम यह है कि हम अपनी स्थिति को ठीक ठीक देखें समझें। हमने देखा है कि अपनी स्थिति को ठीक न देखने

समझने के ही कारण हमारे राष्ट्र ने कैसी ठोकरें खाईं और कैसे कष्ट [१०,२§§६,१४; १०,५§४] । हमारे नव जागरण ने हमें अपने इतिहास फिर से समझने की प्रेरणा दी है । यह ग्रन्थ उसी प्रेरणा की उपज है । भ की सन्तान को इससे अपनी अतीत और वर्तमान स्थिति ठीक-ठीक दिखाई और उसका भविष्य का मार्ग आलोकित हो!

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. कश्मीर पर पाकिस्तानी चढ़ाई किन दशाओं में हुई ?

२. दक्खिनपूरबी एशिया में गत ५ बरसों से कहाँ कहाँ युद्ध चल रहा है और क्‍

३. ईरान और मिस्र का ब्रितानिया से संघर्ष किस-किस बात पर चल रहा कैसे आरम्भ हुआ ?

४. पख्तूनिस्तान की माँग का अर्थ क्या है ?

५. भारत के रजवाड़े भारत संघ में कैसे सम्मिलित हुए ?

६. भारत गणराज्य के संविधान की मुख्य बातें क्या हैं ?

७. नेपाल में लोकतन्त्र का उदय कैसे हुआ ?